एम.ए. पूर्वार्द्ध
समाजशास्त्र, द्वितीय प्रश्नपत्र

सामाजिक अनुसंधान की पद्धति

(METHODOLOGY OF SOCIAL RESEARCH)

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल
MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Shailja Dubey, Professor,
   Institute for Excellence in Higher Education, Bhopal (M.P.)
2. Dr. Madhavi Lata Dubey, Professor,
   Govt. Dr. Shyama Prasad Mukharjee Science and Commerce College, Bhopal (M.P.)
3. Dr. Archana Chauhan, Assistant Professor,
   Govt. S.N. (PG) Autonomous College, Bhopal (M.P.)

Advisory Committee

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)
2. Dr. L.S. Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)
3. Dr. Anjali Singh
   Director, Student Support
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)
4. Dr. Shailja Dubey, Professor,
   Institute for Excellence in Higher Education, Bhopal (M.P.)
5. Dr. Madhavi Lata Dubey, Professor,
   Govt. Dr. Shyama Prasad Mukharjee Science and Commerce College, Bhopal (M.P.)
6. Dr. Archana Chauhan, Assistant Professor,
   Govt. S.N. (PG) Autonomous College, Bhopal (M.P.)

COURSE WRITERS
Akanksha Mishra, Visiting Faculty, Amity Institute of Education, Amity University, UP
Units (1.2.2-1.2.4, 1.3.1-1.3.3, 1.4, 1.4.4, 1.4.5, 3.2, 3.3.8, 3.4, 4.3-4.3.2, 4.4, 4.4.3)
Dr. Chander Shekhar Goswami
Units (1.5.3, 2.2.2-2.2.3, 3.3.2, 4.4.1)
Dr. Nutan Singh, Associate Professor, Ginni Devi Modi Girls P.G. College, Modinagar, U.P.
Units (1.0-1.2.1, 1.3, 1.4.1, 1.5.1-1.5.2, 1.6-1.10, 2.3.1, 3.0-3.1, 3.3, 3.3.3, 3.3.4, 3.3.5, 3.3.6, 3.3.9, 3.4.1, 3.5-3.9, 4.0-4.1, 4.2, 4.2.2, 4.2.3-4.2.5, 4.4.2, 4.5-4.5.1, 4.5.2, 4.6-4.10, 5.0-5.1, 5.2.5, 5.4.3, 5.5-5.9)
Dr. Arvinder A. Ansari, Professor, Department of Sociology, Jamia Millia Islamia, New Delhi
Units (1.4.2, 1.4.3, 2.0-2.2.1, 2.2.6, 2.3-2.3.2, 2.4-2.8, 3.3.1, 5.2.3)
Dr Manisha Jha, Visiting Faculty, Amity Law School, Noida
Units (1.5)
Dr. Saidur Rahman, Associate Professor, Department of Sociology and Social Work, College of Arts and Social Sciences, Eritrea Institute of Technology, Ministry of Education, Asmara, Eritrea
Unit (2.2.4-2.2.5)
Dr. Kirti Agarwal, Director, Smt. Vimla Devi Education Society, Delhi
Mukesh Gupta, Faculty, Smt. Vimla Devi Education Society, Delhi
Units (2.3.3-2.3.5)
Dr. Rupesh Tyagi, Assistant Professor (Contractual), Dept. of Economics, C.C.S. (Chaudhary Charan Singh) University, Ramgarhi, Meerut
Units (3.3.7, 3.4.2-3.4.3, 4.2.6, 5.2.4)
Dr. Suman Lata, Lecturer, Department of Economics, Ginni Devi Modi Girls P.G. College, Modinagar, Ghaziabad, U.P.
Unit (3.4.4)
G.S. Monga, Dean, Invertis Institute of Management Studies, Bareilly, U.P.
Unit (3.4.5)
Dr. Arun Mittal, Assistant Professor, Birla Institute of Technology, Noida, U.P.
Units (4.2.1, 5.3-5.3.2, 5.4.1-5.4.2)
Mukesh Gupta, Faculty, Smt. Vimla Devi Education Society, Delhi
Units (5.2-5.2.2, 5.4)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

सामाजिक अनुसंधान की पद्धति

Syllabi	Mapping in Book
इकाई—1 सामाजिक अनुसंधान के दार्शनिक आधार : ज्ञान मीमांसा सिद्धांत के मुद्दे, ज्ञान के रूप और प्रकार, ज्ञान की पुष्टि सामाजिक अनुसंधान के दार्शनिक आधार, ज्ञान मीमांसा सिद्धांत के मुद्दे ज्ञान के रूप और प्रकार, ज्ञान की पुष्टि सामाजिक विज्ञान का दर्शन : प्रबोधन, तर्क और विज्ञान, कार्तीय दर्शन, वैज्ञानिक क्रांति की संरचना (कुह्न) प्रबोधन, तर्क और विज्ञान कार्तीय दर्शन वैज्ञानिक क्रांति की संरचना (कुह्न) प्रत्यक्षवाद एवं इसकी आलोचना : कॉम्टे, दुर्खीम और पॉपर का प्रत्यक्षवाद में योगदान, प्रत्यक्षवाद के आलोचक : फेयरबेंड और गिडेंस कॉम्टे का प्रत्यक्षवाद, दुर्खीम का प्रत्यक्षवाद, कार्ल पॉपर का प्रत्यक्षवाद, प्रत्यक्षवाद के आलोचक, फेयरबेंड और गिडेंस हर्मेनेयुटिक्स : आगमनात्मक विश्लेषण, परिघटनावादी समाजशास्त्र, नृवंशविज्ञान दृष्टिकोण तथा समाजशास्त्रीय सिद्धांत आगमनात्मक विश्लेषण, परिघटनावादी समाजशास्त्र नृवंशविज्ञान दृष्टिकोण तथा समाजशास्त्रीय सिद्धांत	**इकाई 1** : सामाजिक अनुसंधान के दार्शनिक आधार **(पृष्ठ 3—72)**
इकाई—2 सामाजिक यथार्थ, प्रत्यक्षवाद, घटना विज्ञान, नृजाति कार्यप्रणाली, प्रतीकात्मक क्रियावाद, व्याख्यात्मक समझ सामाजिक यथार्थवाद प्रत्यक्षवाद घटना विज्ञान नृजाति कार्यप्रणाली प्रतीकात्मक क्रियावाद व्याख्यात्मक समझ सामाजिक विज्ञान अनुसंधान : तार्किक समीक्षा आगमनात्मक और निगमनात्मक विधियां सामाजिक अनुसंधान में सिद्धांत निर्माण सामाजिक अनुसंधान में वैज्ञानिक पद्धति वस्तुनिष्ठ मूल्य निष्पक्षता परिकल्पना	**इकाई 2** : सामाजिक यथार्थ की प्रकृति और उसके दृष्टिकोण **(पृष्ठ 73—132)**
इकाई—3 परिमाणीकरण (मात्रात्मक) और माप की मान्यताएं सर्वेक्षण तकनीक परिचालन अनुसंधान अभिकल्प निदर्शन रचना निदर्शन पद्धति की कमियां	**इकाई 3** : मात्रात्मक विधियां एवं सर्वेक्षण अनुसंधान **(पृष्ठ 133—371)**

निदर्शन चयन की विधियां
प्रश्नावली निर्माण, अनुसूची और साक्षात्कार
मापन और स्केलिंग
विश्वसनीयता और वैधता
सामाजिक विश्लेषण में कम्प्यूटर का उपयोग
सामाजिक अनुसंधान में सांख्यिकी
सांख्यिकी के गुण व दोष
केंद्रीय प्रवृत्ति की माप : माध्य, माध्यिका और बहुलक
विचलनशीलता की माप : मानक/चतुर्थक विचलन
सह संबंध–विश्लेषण
प्रतीपगमन विश्लेषण

इकाई–4

गुणात्मक अनुसंधान की तकनीक और विधियां
अवलोकन की अवधारणा
सहभागी अवलोकन
नृवंशविज्ञान पद्धति
इंटरव्यू गाइड
केस अध्ययन पद्धति
सामग्री विश्लेषण
मौखिक इतिहास का विवरणात्मक विश्लेषण
मौखिक इतिहास की कार्य पद्धति
जीवन इतिहास वंशावली
गुणात्मक अनुसंधान में पद्धतिगत दुविधाएं और मुद्दे
फील्डवर्क का संघर्ष और अनुभव
कार्यक्षेत्र रिपोर्ट
गुणात्मक आंकड़ों का प्रारूप और प्रसंस्करण
गुणात्मक अनुसंधान में वैधता और विश्वसनीयता
गुणात्मक अनुसंधान में वैधता
गुणात्मक शोध में विश्वसनीयता

इकाई 4 : गुणात्मक अनुसंधान तकनीक
(पृष्ठ 373–444)

इकाई–5

सामाजिक अनुसंधान में समष्टि सांख्यिकी एवं द्वितीयक स्रोतों की विधियां और उपयोग (दुर्खीम का आत्महत्या का सिद्धांत, जनगणना तथा राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण
समष्टि सांख्यिकी
तथ्य संकलन के द्वितीयक स्रोत
दुर्खीम का आत्महत्या का सिद्धांत
जनगणना
राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण
त्रिकोणीय सर्वेक्षण : गुणात्मक और मात्रात्मक पद्धति का मिश्रण
मात्रात्मक एवं गुणात्मक शोध
मात्रात्मक एवं गुणात्मक शोध में अंतर
सामाजिक शोध, क्रियात्मक शोध, सहभागी शोध : सामाजिक शोध में नैतिक मुद्दे
क्रियात्मक शोध
सहभागी शोध
सामाजिक शोध में नैतिक मुद्दे

इकाई 5 : सामाजिक अनुसंधान में समष्टि सांख्यिकी और द्वितीयक स्रोत, त्रिकोणीय सर्वेक्षण विधियां एवं सीमाएं
(पृष्ठ 445–524)

विषय–सूची

परिचय 1–2

इकाई 1 सामाजिक अनुसंधान के दार्शनिक आधार 3–72

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 सामाजिक अनुसंधान के दार्शनिक आधार : ज्ञान मीमांसा सिद्धांत के मुद्दे, ज्ञान के रूप और प्रकार, ज्ञान की पुष्टि
1.2.1 सामाजिक अनुसंधान के दार्शनिक आधार
1.2.2 ज्ञान मीमांसा सिद्धांत के मुद्दे
1.2.3 ज्ञान के रूप और प्रकार
1.2.4 ज्ञान की पुष्टि
1.3 सामाजिक विज्ञान का दर्शन : प्रबोधन, तर्क और विज्ञान, कार्तीय दर्शन, वैज्ञानिक क्रांति की संरचना (कुह्न)
1.3.1 प्रबोधन, तर्क और विज्ञान
1.3.2 कार्तीय दर्शन
1.3.3 वैज्ञानिक क्रांति की संरचना (कुह्न)
1.4 प्रत्यक्षवाद एवं इसकी आलोचना : कॉम्टे, दुर्खीम और पॉपर का प्रत्यक्षवाद में योगदान, प्रत्यक्षवाद के आलोचक : फेयरबेंड और गिडेंस
1.4.1 कॉम्टे का प्रत्यक्षवाद
1.4.2 दुर्खीम का प्रत्यक्षवाद
1.4.3 कार्ल पॉपर का प्रत्यक्षवाद
1.4.4 प्रत्यक्षवाद के आलोचक
1.4.5 फेयरबेंड और गिडेंस
1.5 हर्मेनेयुटिक्स : आगमनात्मक विश्लेषण, परिघटनावादी समाजशास्त्र, नृवंशविज्ञान दृष्टिकोण तथा समाजशास्त्रीय सिद्धांत
1.5.1 आगमनात्मक विश्लेषण
1.5.2 परिघटनावादी समाजशास्त्र
1.5.3 नृवंशविज्ञान दृष्टिकोण तथा समाजशास्त्रीय सिद्धांत
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 सामाजिक यथार्थ की प्रकृति और उसके दृष्टिकोण 73–132

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 सामाजिक यथार्थ, प्रत्यक्षवाद, घटना विज्ञान, नृजाति कार्यप्रणाली, प्रतीकात्मक क्रियावाद, व्याख्यात्मक समझ
2.2.1 सामाजिक यथार्थवाद
2.2.2 प्रत्यक्षवाद
2.2.3 घटना विज्ञान
2.2.4 नृजाति कार्यप्रणाली
2.2.5 प्रतीकात्मक क्रियावाद
2.2.6 व्याख्यात्मक समझ

2.3 सामाजिक विज्ञान अनुसंधान : तार्किक समीक्षा
2.3.1 आगमनात्मक और निगमनात्मक विधियां
2.3.2 सामाजिक अनुसंधान में सिद्धांत निर्माण
2.3.3 सामाजिक अनुसंधान में वैज्ञानिक पद्धति
2.3.4 वस्तुनिष्ठ मूल्य निष्पक्षता
2.3.5 परिकल्पना
2.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.5 सारांश
2.6 मुख्य शब्दावली
2.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.8 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 मात्रात्मक विधियां एवं सर्वेक्षण अनुसंधान **133–371**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 परिमाणीकरण (मात्रात्मक) और माप की मान्यताएं
3.3 सर्वेक्षण तकनीक
3.3.1 परिचालन
3.3.2 अनुसंधान अभिकल्प
3.3.3 निदर्शन रचना
3.3.4 निदर्शन पद्धति की कमियां
3.3.5 निदर्शन चयन की विधियां
3.3.6 प्रश्नावली निर्माण, अनुसूची और साक्षात्कार
3.3.7 मापन और स्केलिंग
3.3.8 विश्वसनीयता और वैधता
3.3.9 सामाजिक विश्लेषण में कम्प्यूटर का उपयोग
3.4 सामाजिक अनुसंधान में सांख्यिकी
3.4.1 सांख्यिकी के गुण व दोष
3.4.2 केंद्रीय प्रवृत्ति की माप : माध्य, माध्यिका और बहुलक
3.4.3 विचलनशीलता की माप : मानक/चतुर्थक विचलन
3.4.4 सह संबंध–विश्लेषण
3.4.5 प्रतीपगमन विश्लेषण
3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 गुणात्मक अनुसंधान तकनीक **373–444**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 गुणात्मक अनुसंधान की तकनीक और विधियां
4.2.1 अवलोकन की अवधारणा
4.2.2 सहभागी अवलोकन
4.2.3 नृवंशविज्ञान पद्धति
4.2.4 इंटरव्यू गाइड

4.2.5 केस अध्ययन पद्धति
4.2.6 सामग्री विश्लेषण
4.3 मौखिक इतिहास का विवरणात्मक विश्लेषण
4.3.1 मौखिक इतिहास की कार्य पद्धति
4.3.2 जीवन इतिहास वंशावली
4.4 गुणात्मक अनुसंधान में पद्धतिगत दुविधाएं और मुद्दे
4.4.1 फील्डवर्क का संघर्ष और अनुभव
4.4.2 कार्यक्षेत्र रिपोर्ट
4.4.3 गुणात्मक आंकड़ों का प्रारूप और प्रसंस्करण
4.5 गुणात्मक अनुसंधान में वैधता और विश्वसनीयता
4.5.1 गुणात्मक अनुसंधान में वैधता
4.5.2 गुणात्मक शोध में विश्वसनीयता
4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 सामाजिक अनुसंधान में समष्टि सांख्यिकी और द्वितीयक स्रोत, त्रिकोणीय सर्वेक्षण विधियां एवं सीमाएं **445–524**

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 सामाजिक अनुसंधान में समष्टि सांख्यिकी एवं द्वितीयक स्रोतों की विधियां और उपयोग (दुर्खीम का आत्महत्या का सिद्धांत, जनगणना तथा राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण
5.2.1 समष्टि सांख्यिकी
5.2.2 तथ्य संकलन के द्वितीयक स्रोत
5.2.3 दुर्खीम का आत्महत्या का सिद्धांत
5.2.4 जनगणना
5.2.5 राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण
5.3 त्रिकोणीय सर्वेक्षण : गुणात्मक और मात्रात्मक पद्धति का मिश्रण
5.3.1 मात्रात्मक एवं गुणात्मक शोध
5.3.2 मात्रात्मक एवं गुणात्मक शोध में अंतर
5.4 सामाजिक शोध, क्रियात्मक शोध, सहभागी शोध : सामाजिक शोध में नैतिक मुद्दे
5.4.1 क्रियात्मक शोध
5.4.2 सहभागी शोध
5.4.3 सामाजिक शोध में नैतिक मुद्दे
5.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.6 सारांश
5.7 मुख्य शब्दावली
5.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.9 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'सामाजिक अनुसंधान की पद्धति' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित एम.ए. (पूर्वार्द्ध) के पाठ्यक्रम के अनुरूप लिखी गई है।

आदिकाल से ही मानव ने अपने चारों ओर विद्यमान परिस्थितियों और वातावरण को समझने का प्रयास किया है। जीवन को सहज बनाने के लिए उसने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु नई खोज तथा आविष्कार किए हैं। उसकी यह नैसर्गिक विशिष्टता उसे खुद को नियति के हवाले कर 'यथास्थितिवादी' नहीं बनने देती। अपनी इच्छाओं–आवश्यकताओं को दृष्टिगत रख सतत् सक्रिय रहना उसका स्वभाव है। इसी मानवीय स्वभाव के परिणामस्वरूप इस दौरान हमारे द्वारा अपनाई गई प्रक्रियाओं के रूप में शोध की कतिपय पद्धतियां भी अस्तित्व में आई हैं। जब मनुष्य इन विचारों पर गहन चिंतन करता है तथा प्रयोगों व विश्लेषणों के द्वारा उनकी सत्यता को प्रमाणित करता है तब ये विचार व्यवस्थित ज्ञान में परिवर्तित हो जाते हैं। नया ज्ञान व्यवस्थित शोध का प्रतिफल है। शोध की एक विशेषता व्यवस्थितीकरण भी है। शोध कार्य जितना व्यवस्थित होगा, उसका परिणाम भी उतनी ही जल्दी एवं सुव्यवस्थित रूप में प्राप्त होगा। शोधार्थी को अनेक चरणों से होकर गुजरना पड़ता है। यह पुस्तक सामाजिक अनुसंधान के संदर्भ में प्रमुख शोध दृष्टिकोणों, पद्धतियों और शोध अभिकल्पों से हमारा परिचय कराती है।

प्रस्तुत पुस्तक में शोध पद्धतियों, अभिकल्पों, प्रक्रियाओं एवं रिपोर्ट लेखन से संदर्भित विभिन्न पहलुओं का व्यवस्थित विवेचन किया गया है। प्रत्येक इकाई के आरंभ में विषय का विश्लेषण करने से पहले उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' स्तंभ के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता को परखने के लिए प्रश्न दिए गए हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए संपूर्ण पुस्तक को पांच इकाइयों में विभाजित किया गया है, जिनका विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई में सामाजिक अनुसंधान के दार्शनिक आधारों के महत्वपूर्ण पक्षों का विवेचन किया गया है।

दूसरी इकाई सामाजिक यथार्थ की प्रकृति और उसके दृष्टिकोण पर आधारित है जिसमें विषय को समझाते हुए इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

तीसरी इकाई मात्रात्मक विधियों एवं सर्वेक्षण अनुसंधान से हमारा परिचय कराती है। इसके अंतर्गत सर्वेक्षण अनुसंधान में प्रयुक्त होने वाली विभिन्न मात्रात्मक विधियों को प्रस्तुत किया गया है, साथ ही सामाजिक अनुसंधान में सांख्यिकी के प्रयोग की जानकारी भी दी गई है।

चौथी इकाई गुणात्मक अनुसंधान तकनीक से संदर्भित विविध पक्षों से अवगत कराती है।

पांचवीं इकाई सामाजिक अनुसंधान में समष्टि सांख्यिकी, द्वितीयक स्रोतों, त्रिकोणीय सर्वेक्षण में प्रयुक्त विभिन्न विधियों के उपयोग एवं सामाजिक शोध के मुद्दों पर आधारित है।

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक में सामाजिक अनुसंधान की पद्धतियों से संदर्भित विविध पक्षों का सांगोपांग अध्ययन किया गया है। इन इकाइयों के अध्ययन से छात्र संबंधित विषयों से भली–भांति अवगत हो सकेंगे। हमें आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक छात्र–छात्राओं की जिज्ञासा को शांत कर उनका ज्ञानवर्धन करेगी।

इकाई 1 सामाजिक अनुसंधान के दार्शनिक आधार

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 सामाजिक अनुसंधान के दार्शनिक आधार : ज्ञान मीमांसा सिद्धांत के मुद्दे, ज्ञान के रूप और प्रकार, ज्ञान की पुष्टि
1.2.1 सामाजिक अनुसंधान के दार्शनिक आधार
1.2.2 ज्ञान मीमांसा सिद्धांत के मुद्दे
1.2.3 ज्ञान के रूप और प्रकार
1.2.4 ज्ञान की पुष्टि
1.3 सामाजिक विज्ञान का दर्शन : प्रबोधन, तर्क और विज्ञान, कार्तीय दर्शन, वैज्ञानिक क्रांति की संरचना (कुह्न)
1.3.1 प्रबोधन, तर्क और विज्ञान
1.3.2 कार्तीय दर्शन
1.3.3 वैज्ञानिक क्रांति की संरचना (कुह्न)
1.4 प्रत्यक्षवाद एवं इसकी आलोचना : कॉम्टे, दुर्खीम और पॉपर का प्रत्यक्षवाद में योगदान, प्रत्यक्षवाद के आलोचक : फेयरबेंड और गिडेंस
1.4.1 कॉम्टे का प्रत्यक्षवाद
1.4.2 दुर्खीम का प्रत्यक्षवाद
1.4.3 कार्ल पॉपर का प्रत्यक्षवाद
1.4.4 प्रत्यक्षवाद के आलोचक
1.4.5 फेयरबेंड और गिडेंस
1.5 हर्मेनेयुटिक्स : आगमनात्मक विश्लेषण, परिघटनावादी समाजशास्त्र, नृवंशविज्ञान दृष्टिकोण तथा समाजशास्त्रीय सिद्धांत
1.5.1 आगमनात्मक विश्लेषण
1.5.2 परिघटनावादी समाजशास्त्र
1.5.3 नृवंशविज्ञान दृष्टिकोण तथा समाजशास्त्रीय सिद्धांत
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

दार्शनिक आधार सामाजिक अनुसंधान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है जिसमें एक विशेष ढांचे के संदर्भ में सामाजिक दुनिया को देखने की अवधारणा शामिल है। एक सामाजिक शोध में उपयोग किए जाने वाले सामान्य रूप से दार्शनिक ढांचे में उत्तर आधुनिकतावाद, प्रतीकात्मक अंतःक्रियावाद और कार्यात्मकता है।

सामाजिक विज्ञान का दर्शन फलस्वरूप एक मेटा–सैद्धांतिक प्रयास है– सामाजिक जीवन के सिद्धांतों के बारे में एक सिद्धांत। अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, सामाजिक विज्ञान के दार्शनिक सामाजिक विज्ञानों के अभ्यास और उन संस्थाओं की

प्रकृति की जांच करते हैं जिनका अध्ययन सामाजिक विज्ञान करता है– अर्थात् स्वयं मनुष्य।

वैज्ञानिक अनुसंधान दर्शन शोधकर्ता के विचार की एक प्रणाली है, जिसके बाद शोध वस्तु के बारे में नया, विश्वसनीय ज्ञान प्राप्त होता है। दूसरे शब्दों में, यह अनुसंधान का आधार है, जिसमें अनुसंधान रणनीति का चुनाव, समस्या का निरूपण, डेटा संग्रह, प्रसंस्करण और विश्लेषण शामिल हैं।

ऐतिहासिक रूप से, सामाजिक अनुसंधान की पश्चिमी परंपराओं ने भौतिक विज्ञान में स्थापित विधियों को सामाजिक जांच के मॉडल के रूप में लिया है। ऑगस्ट कॉम्टे (1798–1857), पहले सामाजिक शोधकर्ताओं में से एक, ने दावा किया कि प्रामाणिक ज्ञान व्यक्तिगत रूप से आया है। कई अन्य विद्वानों ने इस विषय को अपने विचारों से समृद्ध किया है।

प्रस्तुत इकाई में सामाजिक अनुसंधानों के दार्शनिक आधार, सामाजिक विज्ञान के दर्शन, प्रत्यक्षवाद एवं इसकी आलोचना एवं हर्मेन्युटिक्स के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया गया है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- सामाजिक अनुसंधान के दार्शनिक आधारों को समझ पाएंगे;
- सामाजिक विज्ञान दर्शन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन कर पाएंगे;
- प्रत्यक्षवाद से संबंधित दार्शनिकों के विचार एवं उनकी आलोचना के बारे में जान पाएंगे;
- हर्मेन्युटिक्स से संबद्ध विभिन्न पक्षों के बारे में जान पाएंगे।

1.2 सामाजिक अनुसंधान के दार्शनिक आधार : ज्ञान मीमांसा सिद्धांत के मुद्दे, ज्ञान के रूप और प्रकार, ज्ञान की पुष्टि

सामाजिक अनुसंधान के दार्शनिक आधारों के अंतर्गत ज्ञान मीमांसा सिद्धांतों के मुद्दों, ज्ञान के रूप तथा प्रकार एवं ज्ञान की पुष्टि का अध्ययन इस प्रकार किया जा सकता है–

1.2.1 सामाजिक अनुसंधान के दार्शनिक आधार

सामाजिक अनुसंधान का दार्शनिक आधार सामाजिक विज्ञान जैसे कि मानव विज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र आदि के तर्क, तरीके और आधार का अध्ययन है। सामाजिक विज्ञान के दार्शनिक सामाजिक विज्ञान और प्राकृतिक विज्ञान के बीच अंतर और समानताओं, सामाजिक घटनाओं के बीच प्रयोजनार्थक संबंधों, सामाजिक कानूनों के संभावित अस्तित्व तथा संरचना और अभिकरणों के सत्तामीमांसा (Ontological) विषयक महत्व पर विचार करते हैं। सामाजिक वैज्ञानिक सामाजिक

टिप्पणी

तथ्यों की जांच के लिए विभिन्न प्रकार की अनुसंधान विधियों, संसाधनों और तकनीकों जैसे ऐतिहासिक विधि, केस स्टडी विधि, सर्वेक्षण विधि, सांख्यिकीय पद्धति, साक्षात्कार, प्रश्नावली, अवलोकन, दस्तावेज और फिल्में आदि का उपयोग कर रहे हैं।

सामाजिक अनुसंधान का दार्शनिक आधार सामाजिक अनुसंधान का एक महत्वपूर्ण आयाम है जिसे सामाजिक अनुसंधान विवरण और उसके संबंधों की समस्याओं का विश्लेषण करने के लिए प्रयोग किया जाता है। दार्शनिक स्तर पर, मात्रात्मक और गुणात्मक अनुसंधान के बीच अपरिवर्तनीय असंगत संघर्ष रहता है। यह प्राकृतिक विज्ञान के दायरे में सामाजिक घटनाओं का वर्णन करता है और साथ ही सामाजिक दुनिया के सामाजिक विज्ञान के ज्ञान के विभिन्न पहलुओं के बौद्धिक अधिकार से संबंधित है। सामाजिक अनुसंधान दार्शनिक दृष्टिकोण के माध्यम से वैध अध्ययन का एक संघर्ष है। सामाजिक अनुसंधान का दर्शन उस विषय के सामान्यीकृत अर्थ से संबंधित है और सामाजिक दुनिया के बारे में अनुभव साझा करने पर केंद्रित है जिसमें लोगों का दृष्टिकोण एक–दूसरे से भिन्न होता है। सामाजिक अनुसंधान हमेशा प्रकृति में बहु–परिप्रेक्ष्य और बहु सांस्कृतिक रहा है जो सामाजिक दुनिया को समझने के लिए सबसे अच्छा होने के बारे में विभिन्न दावे प्रदान करने की सुविधा प्रदान करता है। अध्ययन का उद्देश्य सामाजिक अनुसंधान में दार्शनिक विज्ञान की प्रमुख कार्यप्रणाली से संबंधित मुद्दों को सुलझाना और दर्शन तथा सामाजिक अनुसंधान के बीच संबंधों के संक्षिप्त विवरण का चित्रण करना है और अंत में यह पता लगाने की कोशिश करता है कि कैसे दार्शनिक दृष्टिकोण अपने पैटर्न को बदलते हैं और सामाजिक अनुसंधान में जगह लेते हैं।

1.2.2 ज्ञान मीमांसा सिद्धांत के मुद्दे

ज्ञान मीमांसा, दर्शनशास्त्र का वह क्षेत्र है जो मानव ज्ञान की प्रकृति और और उसके औचित्य से संबंधित है। मानवविज्ञानियों और शिक्षकों की रुचि, व्यक्तिगत ज्ञानमीमांसीय विकास और ज्ञानमीमांसीय विश्वास के क्षेत्र में दिन ब दिन बढ़ती चली जा रही है। आखिर लोगों को सिद्धांतों और अपने विश्वासों के बारे में जानकारी कैसे प्राप्त होती है और किस तरह इस प्रकार के ज्ञानमीमांसीय क्षेत्र, सोच और तर्क की ज्ञान–संबंधी प्रक्रियाओं का हिस्सा बनकर उन्हें प्रभावित करते हैं। ज्ञान मीमांसा ज्ञान की प्रकृति, ज्ञान पद्धति के औचित्य, विश्वास की तर्कसंगतता तथा अन्य कई संबंधित मामलों की खोज करता है। ज्ञान मीमांसा को नैतिकता, तर्क और तत्वमीमांसा के साथ दर्शन की एक शाखा समझा जाता है।

ज्ञान मीमांसा में होने वाला वाद–विवाद आमतौर पर चार मुख्य क्षेत्रों के इर्द–गिर्द ही घूमता है–

1. सत्य तथा औचित्य जैसी ज्ञान के निर्माण हेतु विश्वास के लिए आवश्यक जानकारी की प्रकृति और परिस्थितियों का दार्शनिक विश्लेषण।
2. ज्ञान और न्यायसंगत विश्वास के संभावित स्रोत, जैसे कि धारणा, कारण, स्मृति और साक्ष्य।
3. ज्ञान या न्यायसंगत विश्वास के एक निकाय की संरचना जिसमें यह भी शामिल है कि क्या सभी उचित विश्वास, उचित मूलभूत विश्वासों से निकाले जा सकते हैं या शायद औचित्य को केवल सशक्त विश्वासों की आवश्यकता होती है।

4. दार्शनिक संशयवाद, जो ज्ञान की संभावना और उससे संबंधित समस्याओं पर सवाल उठाता है जैसे कि क्या संशयवाद हमारे सामान्य ज्ञान के दावों के लिए एक चुनौती है तथा क्या संशयी तर्कों को झुठलाना संभव है।

टिप्पणी

ज्ञान मीमांसा का मूल शब्द है 'ज्ञान' और यह विषय, ज्ञान के विज्ञान से संबंधित है। ज्ञान शब्द तथा उससे संबंधित शब्दों को कई प्रकार से प्रयोग किया जाता है। 'जानने' का एक आम उपयोग, मनोवैज्ञानिक धारणा व्यक्त करता है। उदाहरण के लिए, हो सकता है कि हम किसी को यह कहता सुनें, "मैं जानता था कि बारिश नहीं होगी, लेकिन फिर भी बारिश हो गई।" हालांकि, शायद इसे सही उपयोग कहा जा सकता है, तत्वज्ञानी 'जानना' शब्द का प्रयोग तथ्य की तरह करते हैं।

बतौर तत्वज्ञान की शाखा, ज्ञान मीमांसा निम्न सिद्धांतों से संबंधित है–

विश्वास

ज्ञान एक मानसिक स्थिति है अर्थात ज्ञान का वास व्यक्ति के मन में होता है, और जो चीज सोच नहीं सकती उसे किसी बात का ज्ञान भी नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त, ज्ञान, मानसिक अवस्था का विशेष प्रकार है। जबकि 'उस' अनुच्छेद का प्रयोग इच्छाओं तथा धारणाओं को व्यक्त करने हेतु भी किया जा सकता है, इनसे ज्ञान का निर्माण नहीं हो सकता। बल्कि, ज्ञान एक प्रकार का विश्वास है। यदि किसी को किसी विशेष बात का विश्वास नहीं है, तो उसे उसका ज्ञान भी नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए, मान लो मेरी इच्छा है कि मेरे वेतन में वृद्धि हो जाए, और मैं इसके लिए कुछ भी करने को तैयार हूं। इसके विपरीत, मान लो कि मुझे अपनी वेतन वृद्धि पर पूर्ण विश्वास नहीं है, चाहे किसी भी कारण से। तो इसका अर्थ यह हुआ कि मुझे अपनी वेतन वृद्धि का ज्ञान नहीं है। मुझे किसी बात का ज्ञान तभी हो सकता है यदि मेरा उस बात की ओर झुकाव हो, उस बात पर विश्वास हो। इसी प्रकार, जो विचार कभी किसी व्यक्ति के मन में भी न आए हों, उसका विश्वास नहीं बन सकते, और इसलिए वो कभी उसके ज्ञान का हिस्सा नहीं बन सकते। व्यक्ति द्वारा सक्रिय रूप से बनाए रखे जाने वाले विश्वासों को प्रत्यक्ष विश्वास कहा जाता है। व्यक्ति के अधिकतर विश्वास, अप्रत्यक्ष विश्वास होते हैं। ऐसे विश्वास, व्यक्ति के जीवन में, पृष्ठभूमि में रहते हैं, वे उस समय प्रबलित नहीं होते। तदनुसार, हमारा अधिकतर ज्ञान अप्रत्यक्ष या पृष्ठभूमि में होता है। व्यक्ति के पूर्ण ज्ञान की केवल कुछ ही मात्रा सक्रिय रूप से उसके मन में रहती है।

सत्य

विश्वास आवश्यक है लेकिन केवल विश्वास, ज्ञान के लिए पर्याप्त नहीं है। हम सब बहुत बार अपने विश्वास को लेकर गलत समझ बैठते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो, हमारे कई विश्वास अवश्य सत्य होते हैं, लेकिन कई गलत भी होते हैं। ज्ञान प्राप्त करने की कोशिश में हम अपने सच्चे विश्वासों के भंडार में वृद्धि की कोशिश करते हैं। सत्य, ज्ञान की एक स्थिति है अर्थात असत्य विश्वास के आधार पर कभी ज्ञान नहीं जुटाया जा सकता। इसी तरह, अगर सत्य नहीं तो ज्ञान का होना संभव नहीं है। और अगर सत्य नाम की कोई चीज है भी लेकिन इसमें कोई ऐसा क्षेत्र है जिसमें सत्य नहीं है तो उस क्षेत्र में ज्ञान नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए, यदि खूबसूरती देखने वाले की नजर में है तो, किसी चीज के खूबसूरत होने का विश्वास सच या झूठ नहीं हो सकता, और इस प्रकार यह ज्ञान निर्मित नहीं कर सकता।

टिप्पणी

औचित्य

ज्ञान को तथ्यात्मक विश्वास की आवश्यकता होती है। हालांकि, यह ज्ञान की प्रकृति को समझने के लिए पर्याप्त नहीं है। जैसे ज्ञान को सच्चे विश्वास का उद्देश्य सफलतापूर्वक प्राप्त करने की आवश्यकता है, इसी प्रकार, इसे उस विश्वास के निर्माण के संबंध में भी सफलता की आवश्यकता होती है। दूसरे शब्दों में कहें तो, सभी सच्चे विश्वास ज्ञान का निर्माण नहीं करते। केवल वही सच्चे विश्वास ज्ञान का निर्माण करते हैं जिन पर सही तरीके से पहुंचा गया हो।

तो, विश्वास तक पहुंचने का सही तरीका क्या है? सच्चाई के अतिरिक्त, एक विश्वास को ज्ञान में निर्मित करने के लिए अन्य कौन सी विशेषताएं होनी चाहिए? इस बात से शुरुआत की जा सकती है कि ठोस तर्क और साक्ष्य, ज्ञान प्राप्त करने का एक तरीका है। इसके विपरीत, एक शुभ अनुमान ज्ञान का निर्माण नहीं कर सकता। इसी प्रकार, गलत जानकारी और दोषपूर्ण तर्क के आधार पर भी ज्ञान का निर्माण नहीं हो सकता, चाहे वो एक सच्चे विश्वास की ओर ही क्यों न जाते हों। एक विश्वास को केवल एक ही रूप में उचित कहा जा सकता है, अगर उसे सही ढंग से प्राप्त किया गया हो। हालांकि, पहली नजर में देखने में तो औचित्य, विश्वास के साक्ष्यों तथा तर्क पर स्थापित मामले जैसा दिखाई देता है, न कि किस्मत या गलत जानकारी के आधार पर।

ज्ञान में औचित्य सम्मिलित होने की आवश्यकता का अर्थ यह नहीं कि ज्ञान को पूर्ण निश्चितता की आवश्यकता होती है। मनुष्य, भ्रमशील प्राणी होते हैं, और भ्रमशीलता का अर्थ है कि अपने सच्चे विश्वासों के झूठे साबित होने पर भी ज्ञान होने की संभावना। अनिवार्य रूप से सत्य एवं पूरी तरह से भाग्य आधारित सत्य से बने विश्वासों के बीच विश्वासों की एक विस्तृत श्रेणी है जिनके संबंध में हमारे पास यह विश्वास करने के लिए कुछ रक्षात्मक कारण होते हैं कि वे सत्य होंगे। उदाहरण के लिए, यदि मैं मौसम का भविष्य बताने वाले व्यक्ति की बातें सुनकर यह मान लूं कि बारिश होने की 90% संभावना है, और इस बात के कारण मुझ में बारिश होने के प्रति विश्वास उत्पन्न हो जाए तो मेरा यह सच्चा विश्वास केवल संयोग के आधार पर सच नहीं था। चाहे मेरे विश्वास के झूठ होने की कुछ संभावना अवश्य थी, लेकिन उस विश्वास के आधार पर ज्ञान के निर्माण की भी बहुत संभावना थी। ऐसा कहा जा सकता है कि, ज्ञान के निर्माण हेतु, विश्वास का सच्चा तथा उचित होना आवश्यक है।

1.2.3 ज्ञान के रूप और प्रकार

ज्ञान की एक सटीक एकल परिभाषा, जो सभी के लिए, सभी संदर्भों में सार्वभौमिक रूप से स्वीकार्य हो, यह बिल्कुल ही असंभव है। एक स्रोत, एक दार्शनिक अवधारणा, एक सामाजिक संपत्ति आदि के रूप में, ज्ञान की खोज में रुचि रखने वाले विद्वानों द्वारा कई परिभाषाएं दी गई हैं। रैंडम हाउस डिक्शनरी (आरएचडी) के अनुसार, 'ज्ञान' तथा इसके समानार्थक शब्दों का अर्थ इस प्रकार दिया गया है– किसी विशेष विषय या विषय की शाखा के तथ्यों या सिद्धांतों, उसकी जांच या खोज, सामान्य विद्वता, परिचय आदि के साथ जान पहचान। देखने, अनुभव या रिपोर्ट द्वारा जान पहचान की अवस्था या भाव उदाहरण के लिए, 'मानव प्रकृति का ज्ञान'।

जानने की अवस्था या भाव, तथ्य या सत्य का स्पष्ट बोध : किसी तथ्य या परिस्थिति के संबंध में जागरुकता जिसके बारे में पता है या हो सकता है; जानकारी और लोगों द्वारा, बीतते समय में इकट्ठा किया गया सत्यों या तथ्यों का निकाय,

उदाहरण के लिए, 'मनुष्य का चांद के बारे में ज्ञान'। आरएचडी में प्रबोधन, सूचना, समझ, विवेक, बोध, निर्णय, बुद्धि, विद्या, और विज्ञान शब्द, बतौर ज्ञान के पर्यायवाची दिए गए हैं।

टिप्पणी

ज्ञान के ही समान 'पहचानना' एक अन्य ऐसा शब्द है जिसका एक समान मूल 'gnosis' (ग्रीक) है। हम अपनी पहचान से बखूबी वाकिफ हैं। इसका अर्थ यह है कि हम अपने अनुभवों का मानसिक तौर पर विकास करते हैं, हम इन्हें ऐसे मानसिक आकार देते हैं जिनकी हम पहचान कर सकें। इस प्रकार हम अपने अनुभव को पहचान देकर, उसे ज्ञान के क्षेत्र में लाते हैं। ज्ञान के अर्थ का यह दृष्टिकोण, आरडीएच द्वारा दिए गए ज्ञान के अर्थ को काटता है। हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के समाजशास्त्र के प्रोफेसर, डेनियल बेल द्वारा 'ज्ञान' पर (बतौर, औद्योगिक समाज के बाद, चलाने वाली शक्ति) चर्चा करते हुए उसकी इस प्रकार व्यापक परिभाषा दी गई है– "ज्ञान, तथ्यों तथा विचारों का एक व्यवस्थित कथन है। यह तर्कपूर्ण निर्णय या प्रायोगिक परिणाम प्रस्तुत करता है, जो अन्य लोगों तक, एक व्यवस्थित ढंग से, किसी संचार माध्यम द्वारा पहुंचाया जाता है। ज्ञान में नए निर्णय (खोज तथा विद्वत्ता) या पुराने निर्णयों की प्रस्तुति शामिल होती है, जैसा कि किताबों, प्रशिक्षण तथा सीख में शामिल होता है और पुस्तकालय और अभिलेखीय सामग्री के रूप में एकत्र किया जाता है।"

फ्यूचर शॉक, थर्ड वेव और पावर शिफ्ट के प्रसिद्ध लेखक ऐल्विन टॉफ्लर द्वारा ज्ञान को एक अन्य अर्थ दिया गया है। इसमें डेट, जानकारी, छवियों तथा कल्पना के साथ व्यवहार, मूल्य तथा समाज के अन्य प्रतीकात्मक उत्पाद शामिल हैं चाहे सच्चे, अनुमानित या झूठे।

"ज्ञान, तैयार अनुभव, मूल्य, प्रासंगिक जानकारी और विशेषज्ञ अंतर्दृष्टि का एक प्रवाही मिश्रण है जो नए अनुभव तथा जानकारी को टटोलने और उसे समाविष्ट करने के लिए वातावरण तथा ढांचा उपलब्ध करवाता है। यह जानने वाले के मन में उत्पन्न होता है और वहीं इसे लागू किया जाता है। संगठनों में, यह न केवल दस्तावेजों या भंडारों में जड़ा जाता है बल्कि यह संगठनात्मक दिनचर्या, प्रक्रियाओं, प्रथाओं, और मानदंडों में पाया जाता है।" ज्ञान, मनुष्यों का एक बहुत उच्च बौद्धिक उत्पाद है जिसमें व्यक्तिगत अनुभव, कौशल, हमारी गतिविधियों के संचालन के भिन्न संदर्भों की समझ, इन सबका आत्मसात्करण और दूसरों को संचारित करने हेतु इन्हें विशेष प्रकार से अभिलिखित करना सम्मिलित है। रिकॉर्ड किए गए इस अनुभव, डेटा, जानकारी आदि का संचार आगे विकास के काम आता है।

व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक ज्ञान

ज्ञान को मुख्य रूप से दो समूहों में बांटा गया है, व्यक्तिगत ज्ञान (निजी ज्ञान) और सामाजिक ज्ञान (सार्वजनिक ज्ञान)। व्यक्तिगत ज्ञान, आदमी का अपना ज्ञान होता है और यह दूसरों के लिए केवल तब उपलब्ध होता है जब इसे संचारित किया जाए। एक समाज को प्राप्त सामूहिक ज्ञान को सामाजिक ज्ञान कहा जाता है। यह समाज के प्रत्येक व्यक्ति के पास समान रूप से उपलब्ध होता है। पुस्तकालय तथा सूचना केंद्र यह ज्ञान उपलब्ध करवाते हैं। हालांकि, यहां इस बात का जिक्र करना अनिवार्य है कि ये दोनों प्रकार के ज्ञान एक दूसरे से परस्पर संबंधित नहीं हैं। सामाजिक ज्ञान,

व्यक्तिगत ज्ञान का एक अनिवार्य स्रोत है और अधिकतर सामाजिक ज्ञान, व्यक्तिगत ज्ञान के आधार पर निर्मित होता है।

स्पष्ट ज्ञान और सूचित ज्ञान

माइकल पोलायनी द्वारा ऊपर दिए ज्ञानों का भिन्न तरीके से वर्णन किया गया है। मौखिक या रिकॉर्ड किए गए रूप में, दूसरों के सामने व्यक्त किए गए ज्ञान को स्पष्ट ज्ञान कहते हैं और सूचित ज्ञान, वह व्यक्तिगत ज्ञान होता है जिसे एक व्यक्ति द्वारा व्यक्त किया भी जा सकता है और नहीं भी। आमतौर पर लोग, निजी कारणों के चलते, अपने व्यक्तिगत ज्ञान को एक स्तर के आगे व्यक्त करना पसंद नहीं करते। कई बार वे ऐसा जान–बूझ कर करते हैं और कई बार इसलिए, क्योंकि यह उनके सामर्थ्य के परे होता है। उदाहरण के लिए, एक विशेषज्ञ अपनी कला और कौशल को केवल प्रदर्शित करता है, वह उसकी व्याख्या नहीं करता। संगीत में, हो सकता है कि एक विशेषज्ञ द्वारा एक संगीत वाक्यांश का केवल एक अंश प्रदर्शित किया जाए, क्योंकि वह वर्णन किए जाने या समझाए जाने के अनुकूल न हो।

इससे पोलायनी इस ओर इशारा करते हैं कि हम जितना दूसरों को बताते हैं उससे कहीं ज्यादा जानते हैं। "स्पष्ट और सूचित ज्ञान के बीच एक अन्य प्रकार से अंतर किया जा सकता है– स्पष्ट ज्ञान, ज्ञान का वह निकाय है जो व्यक्तिपरक, व्यावहारिक और अनुरूप है जबकि सूचित ज्ञान वस्तुपरक, सैद्धांतिक और डिजिटल है।" कई बार हम शारीरिक भाषा, मुख के भावों तथा अन्य ऐसे संकेतों की बात करते हैं जो व्यक्ति के बिना कुछ कहे उसके इरादे व्यक्त कर देते हैं। इसलिए ऐसा कहा जाता है कि स्पष्ट ज्ञान बहुत व्यक्तिपरक होता है जिसे औपचारिक रूप देना बहुत मुश्किल होता है, जिस कारण इसका संचार या इसे साझा करना भी मुश्किल होता है।

एक सिद्धांत के रूप में, ज्ञान में ऐसे तथ्य शामिल होते हैं जिन्हें वर्तमान अनुभवों या पुराने अनुभवों के संबंध द्वारा पाया जाता है। साधन के आधार पर, ज्ञान को दो प्रकारों में बांटा जा सकता है–

1. प्रत्यक्ष ज्ञान
2. अप्रत्यक्ष ज्ञान।

प्रत्यक्ष या अनुमानित ज्ञान वह ज्ञान है जो बोध के साधनों द्वारा इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। प्रत्येक मनुष्य की पांच इंद्रियां होती हैं यानी दृष्टि, गंध, स्पर्श, स्वाद और श्रवण। इन इंद्रियों द्वारा मनुष्य बाहरी संसार को समझने–बूझने की कोशिश करता है। दूसरी ओर, स्पष्ट ज्ञान के समर्थकों का यह भी मानना है कि केवल आनुभविक स्रोतों द्वारा देखा समझा गया संसार ही असल संसार है और संसार में केवल उन्हीं चीजों का अस्तित्व है जिन्हें देखा या समझा जा सकता है।

डेसकार्टेस और कान्ट जैसे, अनुमानित ज्ञान में विश्वास रखने वाले तत्वज्ञानियों का यह मानना है कि ज्ञान केवल मन द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। बतौर मनुष्य, हमारे पास यह सोचने की शक्ति है जिसके जरिए हमें अपने तथा अन्य चीजों के अस्तित्व का अहसास होता है। दरअसल, मनुष्य केवल प्राणी नहीं, बल्कि 'सोचने वाले प्राणी' हैं। तर्क और सोचने की शक्ति के बिना, मनुष्य के अस्तित्व का कोई अर्थ नहीं है।

ज्ञान के स्रोत

पश्चिमी तत्त्वमीमांसा में, ज्ञान प्राप्त करने के केवल चार निम्न तरीके हैं–

- सहज बोध
- अनुभवात्मक
- तर्कसंगत
- आधिकारिक।

सहज बोध

सहज बोध द्वारा ज्ञान प्राप्त करने का अर्थ है कि मनुष्य बेइरादा तरीके से भी ज्ञान प्राप्त कर सकता है। कई बार एक व्यक्ति को अंदर से एक गहरा अहसास होता है या वह किसी परिस्थिति को लेकर सहज महसूस करता है। हालांकि, ऐसे स्रोत का कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है, और ऐसे स्रोतों द्वारा प्राप्त किए गए ज्ञान की पुष्टि भी नहीं की जा सकती, लेकिन यह आम देखा गया है कि मनुष्य अपने पुराने अनुभवों के साथ अपने नए अनुभव अकसर जोड़ दिया करते हैं और वे प्राकृतिक रूप से, जीवन के अनुभवों को लेकर प्रकल्पित भावनाएं रखते हैं।

अनुभवात्मक

अनुभवी ज्ञान अकसर बोध ज्ञान के नाम से जाना जाता है। इसमें बोध के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया शामिल होती है। प्रत्येक मनुष्य के पास पांच बोध इंद्रियां होती हैं– दृष्टि, गंध, स्पर्श, स्वाद और श्रवण जिनके जरिए वे बाहरी संसार की चीजों को समझने बूझने की कोशिश करते हैं। अनुभवजन्य स्रोत, ज्ञान के वैध स्रोत माने जाते हैं, क्योंकि इनकी पुष्टि की जा सकती है।

तर्कसंगत

तार्किक माध्यमों के जरिए ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया में मनुष्य की तर्क करने की क्षमता शामिल होती है। यह मन के तार्किक विचार और उसकी विश्लेषणात्मक शक्ति पर आधारित होता है। तार्किक ज्ञान को अधिक वैज्ञानिक तथा वैध माना जाता है।

ज्ञान प्राप्त करने के तार्किक तरीकों को दो भागों में बांटा जा सकता है, आगमनात्मक तथा निगमनात्मक ज्ञान। इसका विवरण, निगमनात्मक तर्क के आधार पर, एक युक्तिवाक्य के रूप में किया जा सकता है, उदाहरण के लिए,

सभी मनुष्यों की मृत्यु निश्चित है

मैं एक मनुष्य हूं

इसलिए, मेरी मृत्यु निश्चित है।

हालांकि, आगमनात्मक तर्क में शामिल तार्किक विश्लेषण काफी सूक्ष्म होता है और इसमें आनुमानिक विश्लेषण भी शामिल होता है। इसे पांच स्तरीय उपदेशात्मक तर्क पर आधारित उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है–

पहाड़ पर आग लगी है

क्योंकि पहाड़ से धुआं उठता दिखाई दे रहा है

जहां धुआं होगा, वहां आग अवश्य होगी

चूंकि पहाड़ पर धुआं है

इसलिए, पहाड़ पर आग जरूर लगी होगी।

आधिकारिक

टिप्पणी

अधिकार को, बतौर ज्ञान का स्रोत, सबसे वास्तविक स्रोत माना जाता है, इसमें, पहले से मौजूद, लिखित तथा दस्तावेज किए गए साहित्य में उपलब्ध ज्ञान मौजूद होता है। इसे सारे ज्ञान को प्राथमिक स्रोत भी माना जाता है। हालांकि, आधिकारिक ज्ञान को इसकी प्रासंगिकता और प्रामाणिकता के प्रति जवाबदेह होना चाहिए। ऐसे स्रोतों के साथ संदेहवाद का रवैया अपनाना जरूरी है, ताकि प्रस्तुत तथ्यों को बंद आंखों से स्वीकार करने की गलती न हो।

ज्ञान की प्रकृति

जैसा कि ऊपर बताया गया है, ज्ञान में व्यवस्थित तथा संरचनात्मक विचार शामिल होते हैं, जिनकी पुष्टि की जा सकती है। ज्ञान मीमांसा, ज्ञान की प्रकृति पर केंद्रित रहा है। यह एक ऐसी मान्यता है जिसे तथ्यों का समर्थन प्राप्त होता है, एक ऐसा ज्ञान जिसे सत्य प्रमाणित किया जा सके केवल उसे ही बतौर ज्ञान स्वीकृत किया जा सकता है। जो ज्ञान प्रमाणित नहीं किया जा सकता है, उसे 'अज्ञात' माना जाता है। ज्ञान की मुख्य विशेषताएं और उसकी प्रकृति इस प्रकार हैं–

- ज्ञान असीम है।
- यह निरंतर और गतिशील है।
- इसका विश्लेषण, आलोचना, सुधार, विरोधाभास और संशोधन किया जा सकता है।
- यह अनुभवजन्य होने के साथ तार्किक भी है।
- यह जांच और वैधता पर आधारित होना चाहिए।

इसे प्राप्त किए जाने के ढंग या तरीके के आधार पर ज्ञान को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है–

1. प्राथमिक ज्ञान, वह ज्ञान होता है जिसका झूठ या जिसकी सच्चाई अनुभव करने से पहले ही या अनुभव के बिना ही जानी जा सकती है (प्राथमिक यानी 'पहले से')। प्राथमिक ज्ञान को वैश्विक मान्यता प्राप्त होती है, और एक बार इसके सच साबित हो जाने के बाद (शुद्ध तर्क के प्रयोग द्वारा) इसे और किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं रहती। तार्किक और गणितीय सत्य प्राकृतिक तौर पर प्राथमिक होते हैं। इन्हें अनुभवजन्य पुष्टि की आवश्यकता नहीं होती। पारंपरिक तत्वज्ञानियों का मानना है कि प्राथमिक ज्ञान अन्य सभी प्रकार के ज्ञानों से उच्च है। ज्ञान की इस श्रेणी में आने वाले प्रस्ताव, विश्लेषणात्मक प्रस्ताव माने जाते हैं। विश्लेषणात्मक प्रस्ताव वह होता है जिसके सत्य को, केवल, उसे व्यक्त करने वाले वाक्य के अर्थ के विश्लेषण से निर्धारित किया जा सकता है। इसकी सच्चाई या इसके झूठ को केवल तर्क के आधार पर तय किया जा सकता है, बिना अनुभव द्वारा पुष्टि का रास्ता अपनाए हुए, उदाहरण के लिए, यह कथन "कुंवारे, अविवाहित पुरुष होते हैं" या "दो और दो मिलकर चार बनाते हैं"।

2. पहले का अनुमान किया हुआ ज्ञान (प्राथमिक), अवलोकन और अनुभव पर आधारित होता है। यह वैज्ञानिक तरीके का ज्ञान है जो सटीक अवलोकन और यथार्थ विश्लेषण पर जोर देता है। इस श्रेणी में आने वाले कथनों को इस दृष्टिकोण से देखा जा सकता है कि क्या इनमें कोई तथ्यात्मक सामग्री है और इन्हें, इनकी सच्चाई या इनके झूठ को तय करने के लिए प्रयोग किए गए मानदंड के नजरिए से भी देखा जाता है। उदाहरण के लिए, हमारे पास यह कथन है कि बर्फ पिघलती है। यह सफेद रंग की होती है। धातु गर्मी और बिजली का संचालन करते हैं। ये कथन ऐसी तथ्यात्मक जानकारी प्रदान करते हैं जिसका सच या झूठ केवल अवलोकन तथा पुष्टि द्वारा तय किया जा सकता है। इन्हें कृत्रिम कथन कहा जाता है। एक विश्लेषणात्मक प्रस्ताव एक ऐसा कथन है, जिसका प्रतिवाद स्व–विरोधाभासी है। मान लो कोई यह कहता है कि "काला, काला नहीं होता", इसका अर्थ है कि वह अपना ही खंडन कर रहा है। इस कथन को कि, "बर्फ सफेद होती है", नकारा जा सकता है– यह मानते हुए कि बर्फ का सफेद रंग उसकी विशेषता नहीं हो सकती– हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि "बर्फ सफेद नहीं होती"। अब, ऐसा कहना चाहे झूठ अवश्य है लेकिन, स्व–विरोधाभासी नहीं है।
3. अनुभवी ज्ञान सदा प्रयोगात्मक होता है जिसका अनुभव से पहले होना या अवलोकन से निकाला जाना संभव नहीं है। मान्य होने हेतु, इसका अनुभव होना आवश्यक है।

1.2.4 ज्ञान की पुष्टि

कथनों की पुष्टि का अर्थ है ऐसे अवलोकन करना जो हमारी, निश्चित रूप से, कथन के सच या झूठ तक पहुंचने में सहायता करें। पुष्टि करने का अर्थ है ऐसे अवलोकन करना जो इसकी सच्चाई या इसके झूठ की संभावना को, बिना किसी भी ओर (सत्य या असत्य) स्थापित किए, बढ़ाने या घटाने की क्षमता रखते हों। यदि 100 में से 50 कंचे काले रंग के हैं तो, हमने इस प्रस्ताव की केवल पुष्टि की है, लेकिन इस बात का सत्यापन नहीं किया कि बैग में रखे सभी कंचे काले रंग के हैं। जब तक सारे 100 कंचों की जांच न की जाए इसका सत्यापन नहीं हो सकता।

सत्यापन और पुष्टिकरण, दोनों, ही हमारे द्वारा किए जाने वाले कार्य हैं। जब तक हमें पुष्टिकरण तथा सत्यापन किए जाने वाले कथन का ज्ञान न हो तो तब तक हम उस बात की पुष्टि नहीं कर सकते हैं। परीक्षा की कसौटी यह निर्धारित करती है कि हम किसी बात का अर्थ केवल तब जान सकते हैं जब हमें उसकी पुष्टि या उसके सत्यापन का तरीका पता हो। चाहे यह किसी व्यक्ति द्वारा पहले किया गया है या नहीं। चलिए एक सितारे का उदाहरण लेते हैं जो 1000 प्रकाश वर्ष दूर है, हमारे लिए उस सितारे की सतह पर होने वाली घटनाओं का अनुभव करना संभव नहीं है, क्योंकि 186000 मील प्रति सेकंड की गति से चलने वाली, उस सितारे से उत्पन्न होने वाले प्रकाश को, धरती तक पहुंचते हुए 1000 वर्ष लग जाते हैं, लेकिन फिर भी हम आज, सितारों की सतह पर धब्बों का जिक्र करते हैं। यह बात अर्थहीन नहीं है। यहां तार्किक

पुष्टिकरण की आवश्यकता है। इसलिए, किसी कथन का, उसके तार्किक सच्चे ज्ञान के आधार पर पुष्टिकरण करना संभव है, चाहे यह आनुभविक रूप से संभव न हो।

पुष्टिकरण के समय निम्न बिंदुओं को ध्यान में अवश्य रखा जाना चाहिए–

टिप्पणी

1. पुष्टिकरण किस समय किया जाना चाहिए?

यह एक महत्वपूर्ण विचार है, क्योंकि, भूतकाल या भविष्य के किसी कथन की वर्तमान में पुष्टि नहीं की जा सकती। "जूलियस सीजर की 44 बीसी में हत्या की गई थी"। यह कथन, बीते समय में घटी घटना का वर्णन करता है। यह सच है कि हम आज इसकी पुष्टि करने की स्थिति में नहीं हैं, क्योंकि ऐसा करने के लिए हमें 44 बीसी के रोमन सीनेट में उपस्थित होना होगा, जोकि अब, तार्किक रूप से हमारे लिए संभव नहीं है। यह वाक्य बीते समय में घटी एक घटना के बारे में है, लेकिन इससे संबंधित मिलने वाले कोई भी प्रमाण वर्तमान समय के हैं, क्योंकि दुनिया की कोई भी चीज हमें भूतकाल में नहीं ले जा सकती। वर्तमान समय में हम ज्यादा से ज्यादा इस बात की पुष्टि कर सकते हैं, जिसका अर्थ है इसके सच होने का कोई प्रमाण ढूंढ़ना। भविष्य के कथनों के मामले में भी यही नियम लागू होता है। "अगले पांच वर्षों के भीतर दुनिया में एक गंभीर आर्थिक मंदी होगी"। चाहे यह कथन पूरी तरह से अर्थपूर्ण है लेकिन अभी इसकी पुष्टि नहीं की जा सकती। लेकिन भविष्य में इसकी पुष्टि अवश्य की जा सकती है, और इस नियम के अनुसार यह इसे अर्थपूर्ण बनाने के लिए काफी है। व्यापक तौर पर, भविष्य से संबंधित कथनों के मामले में हम केवल यह देखने का इंतजार कर सकते हैं कि भविष्यवाणी किए गए समय पर क्या होगा।

2. पुष्टिकरण का कार्य किसके द्वारा किया जाना चाहिए?

ज्ञान का सिद्धांत और उसकी प्रकृति– किसी एक द्वारा पुष्टिकरण के विचार को इस संदेह की नजर से देखा गया है कि कहीं वह बहुत सारे कथनों को अर्थपूर्ण न बना दे, ऐसा बिल्कुल नहीं होना चाहिए। उदाहरण के लिए, "मैंने इस बात की पुष्टि की कि अनंतता कांच की तरह है, क्योंकि मैंने आज इस बात का अनुभव किया"। लेकिन हमें यह बात अपने मन में साध लेनी चाहिए कि ऐसा कोई भी कथन केवल व्यक्ति की भावनाओं से संबंधित है– यह किसी वस्तुपरक सच्चाई का दावा नहीं करता, बस इतना जरूर है कि इसे किसी और द्वारा परखा अवश्य जा सकता है। अपने अनुभवों की बात करें तो (मेरे दांत में दर्द है, मुझे दर्द महसूस हो रहा) ऐसा कहना शायद ठीक होगा कि हमें इनकी पुष्टि करने की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि, आत्मनिरीक्षण द्वारा इनकी पुष्टि होती है, खुद को यह आश्वासन देकर कि हमें दर्द हो रहा है। पुष्टि की बात वहां होती है जहां हमारे सामने, अपने अनुभवों से हटकर और कोई कथन आता है, जब हमें किसी प्रक्रिया के जरिए किसी कथन के सच या झूठ होने का पता लगाना होता है।

3. अनंत या अनिश्चित काल की श्रेणी वाले कथनों की पुष्टि किस प्रकार की जा सकती है?

चलिए इस कथन का उदाहरण लेते हैं, "सभी कौवे काले होते हैं"। वैसे तो कौवे अनंत नहीं हैं लेकिन इनकी गिनती करना संभव नहीं है। इसके अलावा, हमारे लिए हमारे जन्म से पहले और भविष्य में पैदा होने वाले कौवों की गिनती करना आसान नहीं है।

टिप्पणी

4. पृथ्वी का अस्तित्व क्या सदैव बना रहेगा?

बहुत कम लेकिन कुछ ऐसे कथन होते हैं जिनकी सकारात्मक पुष्टि पर उनकी स्थिति, उनकी नकारात्मक पुष्टि से अलग होती है। आओ जरा इस कथन पर ध्यान दें, "सभी जीवित प्राणियों के खत्म हो जाने के बाद भी पृथ्वी का अस्तित्व सदैव सलामत रहेगा"। अब कोई मनुष्य इस बात की पुष्टि नहीं कर सकता क्योंकि इसकी पुष्टि के लिए कोई जीवित ही नहीं बचेगा। लेकिन फिर भी हम इस कथन का अर्थ समझते हैं और इसकी सच्चाई पर विचार कर सकते हैं। हम बिना मनुष्यों और जीव जंतुओं के, पृथ्वी का एक चित्र बना सकते हैं। तार्किक रूप से इस बात की पुष्टि करना असंभव है क्योंकि, पुष्टि करने के लिए कोई होगा ही नहीं। एक कथन के सच प्रमाणित होने के लिए कुछ घटनाओं का अभी यानी कि वर्तमान में या पहले यानी कि भूतकाल में घटना आवश्यक है, ना कि उसका पुष्टिकरण। पुष्टिकरण का काम हमारा है, और इस काम के लिए किसी का मौजूद रहना जरूरी है।

साध्यता

ऐसी कठिनाइयों के चलते, हम पुष्टिकरण की जगह साध्यता की बात करते हैं। उदाहरण के लिए, इस बात की पुष्टि नहीं की जा सकती कि "सभी कौवे काले होते हैं", लेकिन हजारों कौवों की जांच करने के बाद, उन्हें काला पाया जाने पर इस बात को साध्य माना जा सकता है। इस बात की भी पुष्टि नहीं की जा सकती कि एक दिन धरती पर जीवन खत्म हो जाएगा, लेकिन इस बात की साध्यता को झुठलाया नहीं जा सकता कि जीवित प्राणियों तथा मनुष्यों के खत्म हो जाने के बाद भी निर्जीव वस्तुएं चलती रहेंगी और यह परिणाम भी निकाला जा सकता है कि सूरज की गर्मी और प्रकाश खत्म हो जाने के बाद धरती इतनी ठंडी हो जाएगी कि यह किसी भी प्रकार के जीवन हेतु सहायक न रहे। यह देखा जा सकता है कि हम कुदरत के नियमों को किस प्रकार आसानी से साध्य मान लेते हैं (सूर्य पूर्व दिशा में उदय होता है; पानी 212 डिग्री फारेनहाइट के तापमान पर उबलता है, आदि), हम उनकी पुष्टि के बारे में नहीं सोचते। साध्यता की अपनी कुछ विशेष समस्याएं हैं। इस कौवे के काले रंग को देखकर मैं इस बात को कैसे मान लूं कि "सभी कौवे काले होते हैं"। जब तक मुझे इस बात का अर्थ नहीं पता कि "सब कौवे काले होते हैं", मैं सब कौवों को काला कैसे मान सकती हूं। यदि, हम साध्य होने वाले कथन का अर्थ नहीं समझते, तो हम किसी भी अवलोकन को छोड़ नहीं सकते जो इसकी पुष्टि के रूप में सामने रखा गया है। इसका यह सार निकलता है कि, किसी परिस्थिति को तार्किक रूप से जांचने के बारे में जानकारी होने से पहले हमें इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि क्या वह परिस्थिति तार्किक रूप से संभव भी है या नहीं।

किसी वाक्य को सिद्ध करने या उसकी पुष्टि करने से पहले उसका अर्थ पता होना अनिवार्य है। वाक्य के अर्थ की जानकारी प्राथमिक है और उसकी पुष्टि के तरीके का ज्ञान, अर्थ की जानकारी के ज्ञान का परिणाम है। अंत में हम यह कह सकते हैं कि पुष्टिकरण या साध्यता मानदंड, बतौर एक सामान्य मानदंड पर्याप्त नहीं होंगे।

(1) इसमें विश्लेषणात्मक कथन शामिल नहीं होंगे, क्योंकि वे संसार के अवकोलन द्वारा हरगिज पुष्टिकृत नहीं होते।

(2) इनमें गैर–मुखर वाक्य शामिल नहीं होंगे जैसे, प्रश्न, आदेशात्मक तथा विस्मयादिबोधक वाक्य। चूंकि ये किसी भी बात पर जोर नहीं देते, इसलिए कुछ भी सच या झूठ नहीं हो सकता।

(3) इसमें अपने अनुभवों से संबंधित कथन शामिल नहीं होंगे, क्योंकि इनकी आसानी से पुष्टि नहीं की जा सकती।

(4) इसमें "यह अच्छा है" या "यह तारीफ के काबिल है" जैसे कथन शामिल नहीं होंगे। ऐसे वाक्य, मूल्य कथन होते हैं।

(5) इसमें आध्यात्मिक कथन शामिल नहीं होंगे।

केवल एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें साध्यता या पुष्टिकरण संभव है, वह है रोजाना जीवन या विज्ञान से संदर्भित अनुभजन्य कथन। नियमों या सिद्धांतों के रूप में व्यक्त किए गए निराकरण ज्ञान को, घटना से सिद्धांत की बेजोड़ता के आधार पर नकारा जा सकता है। तकरीबन हर सिद्धांत के लिए साध्यता प्राप्त करना कोई मुश्किल काम नहीं है– साध्यताओं को ढूंढ़ते हुए हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि केवल उन साध्यताओं को गिना जाए जो जोखिम भरी भविष्यवाणियों का नतीजा हैं, अर्थात, संदर्भित सिद्धांत द्वारा सहायता न मिलने पर। इसलिए ऐसा कह सकते हैं कि, किसी घटना के प्रश्न से असंगत होने पर उसे नकारा जा सकता है। साध्य करने वाले प्रमाण तब तक गिने नहीं जाने चाहिए जब तक वे सचमुच एक जांचे गए सिद्धांत का परिणाम न हों, और इसका यह अर्थ है कि इसे सिद्धांत को झुठलाने के गंभीर लेकिन असफल प्रयास के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। एक सिद्धांत का कोई भी ठोस परीक्षण, उसे झुठलाने या नकारने का प्रयास होता है। परीक्षाकरण, झुठलाने का एक तरीका है। लेकिन परीक्षाकरण के कई स्तर होते हैं।

औरों की तुलना में, कई सिद्धांत अधिक परीक्षणीय होते हैं, इन्हें नकारे जाने की अधिक संभावना होती है। कंजेक्चर्स एंड रेफ्युटेशंस नामक अपने उत्कृष्ट कार्य में पॉपर ने मार्क्स के समाज के सिद्धांत और फ्रायड के मनुष्य व्यवहार के सिद्धांत का बतौर ऐसे उदाहरण प्रयोग किया है, जो इस महत्वपूर्ण मानदंड पर पूरे नहीं उतरते।

मान्यताएं और उनकी सीमाएं

मान्यता का अर्थ है, केवल बहस के विचार से किसी प्रस्ताव की सच्चाई को मान कर चलना। प्रचीन तर्क शास्त्रियों द्वारा इन शब्दों का प्रयोग एक युक्तिवाक्य की तरह बतौर एक तकनीकी नाम किया जाता था। बाद में इनका दोहरा प्रयोग होने लगा, गणितीय सच्चाइयां नामित करने के लिए, किसी साक्ष्य में एक प्रस्थान बिंदू की तरह और एक कथन की सच्चाई या उसका झूठ सिद्ध करने हेतु अमूर्तता में किसी नतीजे के आरंभिक बिंदू को नामित करने के लिए। आमतौर पर अर्थ का यही भाव लिया जाता है। स्वयंसिद्ध, परिकल्पना तथा अभिधारणा जैसे शब्दों के परिवार में मान्यता का सबसे कम सटीक अर्थ माना गया है। दूसरी ओर, हमारे पास ऐसे उदाहरण भी मौजूद हैं जैसे, "प्रकृति का नियम" जहां हमें यह आश्वासन देने के लिए किसी मान्यता की आवश्यकता नहीं है कि प्रकृति कुछ नियमों का पालन करती है। एक नियम केवल, वास्तव में घटने वाली घटनाओं का विवरण करता है। एक मान्यता है कि प्रकृति के नियम निरंतर हैं। यह एक बेहद दिलचस्प मान्यता है। हालांकि इसमें

तथ्यात्मक सामग्री है लेकिन इस मान्यता को गलत सिद्ध करना संभव नहीं है। चूंकि मनुष्य केवल सीमित मान्यताओं की क्षमता रखते हैं, तो हम इस मान्यता को लेकर चल सकते हैं कि प्रकृति के नियम निरंतर होते हैं। मान्यता का एक अन्य उदाहरण यह मान्यता है कि हम तीन आयाम वाले अंतरिक्ष में रहते हैं। भौतिक प्रमाणों के आधार पर हम यह मान लेते हैं कि हम तीन आयामी अंतरिक्ष में रहते हैं। लेकिन हमारे पास अन्य आयाम होने का कोई ठोस भौतिक सबूत नहीं है। हम केवल इतना कह सकते हैं कि हमने अब तक जो देखा है उसे तीन आयामी नियमों की मान्यता द्वारा संतुष्टिपूर्वक ढंग से स्पष्ट किया जा सकता है। मूल मान्यता सच होने की स्थिति में, अनुमान के माध्यम से निकलने वाला निष्कर्ष भी सच होगा। मान्यता के झूठ होने की स्थिति में, निकल कर आने वाला निष्कर्ष भी झूठ होगा। तथापि, एक मूल मान्यता के माध्यम से एक सच्चा मामला निकालने वाले नियमों को वैध माना जाना चाहिए। कई ऐसे मामले होते हैं जहां मान्यताएं सच पाई जाती हैं, लेकिन एक विशिष्ट मामले का अनुमान लगाना संभव नहीं होगा, क्योंकि हो सकता है कि प्रत्येक मान्यता की अपनी कुछ शर्तें भी हों। एक मान्यता को कभी भी सम्पूर्ण नहीं माना जा सकता (उदाहरण के लिए, तीन आयामी दुनिया और कुछ विशेष प्राकृतिक घटनाओं से संबंधित अनंत अवलोकन)।

ज्ञान मीमांसा, दर्शनशास्त्र की वह शाखा है जिसका संबंध सिद्धांतों, स्रोतों और ज्ञान की वैधता से होता है। ज्ञान का प्रदर्शन मान्यताओं के रूप में होता है। किसी मान्यता की सच्चाई भांपने के लिए, हमें मान्यताओं में शामिल शब्दों और उन शब्दों के अंतर्निहित सिद्धांतों का ज्ञान होना चाहिए। एक मान्यता की पहचान हेतु कुछ आवश्यकताएं होती हैं, अर्थात, (1) मान्यता सच्ची होनी चाहिए, (2) हमें मान्यता की सच्चाई में विश्वास होना चाहिए, (3) मान्यता में विश्वास हेतु कारण या साक्ष्य होना चाहिए।

ज्ञान, मुख्य रूप से, तीन भागों में श्रेणीगत है (प्राप्त किए गए तरीकों के आधार पर)। ये तरीके हैं (1) प्राथमिक ज्ञान, (2) पहले का अनुमान किया हुआ ज्ञान, (3) अनुभवी ज्ञान। ज्ञान, उसकी प्राप्ति के स्रोतों पर आधारित होता है जैसेकि, इंद्रीय अनुभव, तर्क, अधिकार, सहज–बोध, विश्वास और श्रुति। इनमें, इंद्रीय अनुभव और तर्क द्वारा प्राप्त ज्ञान को ज्ञान का सबसे भरोसेमंद स्रोत माना जाता है।

मनुष्य द्वारा, भिन्न स्रोतों के जरिए इकट्ठे किए गए ज्ञान में अनेक सिद्धांत तथा तथ्य शामिल होते हैं जो जीवन की प्राकृतिक घटनाओं के निरंतर अवलोकन द्वारा भौतिक घटनाओं और मनुष्य के विकास से संबंधित होते हैं। सच्चा ज्ञान अपने स्वयं की व्याख्या, सत्यापन और स्पष्टीकरण उपलब्ध करवाता है। नियम एवं सिद्धांत प्रकृति में घटने वाली घटनाओं का स्पष्टीकरण करते हैं। ये स्पष्टीकरण, एक अनुक्रम स्थापित करते हैं, जहां सबसे निम्न स्तर पर तथ्यों को सिद्धांतों द्वारा स्पष्ट किया जाता है, और प्रत्येक सिद्धांत का, उच्च स्तरीय सिद्धांतों द्वारा एक तार्किक ढंग से स्पष्टीकरण किया जाता है। ज्ञान की वैधता जांचने हेतु, सत्यापन तथा पुष्टि के मानदंड का प्रयोग किया जाता है। अवधारणाओं, तथ्यों, सामान्यताओं, नियमों और सिद्धांतों की अपनी खास विशेषताओं के आधार पर, ज्ञान भिन्न विषयों के अंतर्गत, भिन्न प्रकारों में संरचित होता है। इसका पाठ्यक्रम नियोजन और किसी विषय के तरीकों एवं ज्ञानक्षेत्र को समझने में बेहद निहितार्थ होता है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. ज्ञान मीमांसा में होने वाला वाद–विवाद आमतौर पर कितने मुख्य क्षेत्रों के इर्द–गिर्द ही घूमता है?

   (क) 2 (ख) 3

   (ग) 4 (घ) 5

2. पश्चिमी तत्व मीमांसा में, ज्ञान प्राप्त करने के कितने स्रोत हैं?

   (क) 3 (ख) 4

   (ग) 5 (घ) 6

1.3 सामाजिक विज्ञान का दर्शन : प्रबोधन, तर्क और विज्ञान, कार्तीय दर्शन, वैज्ञानिक क्रांति की संरचना (कुह्न)

सामाजिक विज्ञान का दर्शन, दर्शन की शाखा है जो सामाजिक विज्ञान की अवधारणाओं, विधियों और तर्क की जांच करती है। सामाजिक विज्ञान का दर्शन फलस्वरूप एक सैद्धांतिक प्रयास है– और यह सामाजिक जीवन के सिद्धांतों के बारे में एक सिद्धांत है। अपने अंत को प्राप्त करने के लिए, सामाजिक विज्ञान के दार्शनिक सामाजिक विज्ञानों और उन संस्थाओं की प्रकृति की जांच करते हैं जो सामाजिक विज्ञान अध्ययन करते हैं– अर्थात् मनुष्य स्वयं। सामाजिक विज्ञान का दर्शन व्यापक रूप से वर्णनात्मक (सामाजिक विज्ञान में मौलिक वैचारिक साधनों का पता लगाना और उन्हें अन्य मानव प्रयासों में नियोजित उपकरणों से संबंधित करना) या निदेशात्मक (अनुशंसा करते हैं कि सामाजिक विज्ञानों द्वारा एक निश्चित दृष्टिकोण अपनाया जाए जो वे पूरा कर सकते हैं, जो दार्शनिक सोचता है कि सामाजिक विज्ञान को पूरा करना चाहिए) हो सकता है, या दोनों का कुछ संयोजन।

ऐतिहासिक रूप से, सामाजिक विज्ञान के कई दार्शनिकों ने अपने विषय के मूल प्रश्न पर विचार किया है कि क्या सामाजिक विज्ञान उसी तरह "वैज्ञानिक" हो सकता है जैसे कि प्राकृतिक विज्ञान है। इस प्रश्न का उत्तर देने वाले दृष्टिकोण को यथार्थवाद (प्रकृतिवाद) कहा जाता है, जबकि जो इसका नकारात्मक रूप से उत्तर देता है उसे मानववाद के रूप में जाना जाता है, हालांकि कई सिद्धांत इन दोनों दृष्टिकोणों को मिलाने का प्रयास करते हैं। इस रूपरेखा को देखते हुए, 'सामाजिक विज्ञान' शब्द अवश्य भ्रामक है, क्योंकि यह बताता है कि इस विषय का संबंध सामाजिक विज्ञानों के साथ है क्योंकि सामाजिक विज्ञान, विज्ञान या वैज्ञानिक हैं; तो इस प्रकार सामाजिक विज्ञान यथार्थवाद (प्रकृतिवाद) को दर्शाता है। इस स्थिति से बचने के लिए, चिंतक कभी–कभी अपने इस विषय के क्षेत्र को "सामाजिक अनुसंधान का दर्शन" या "सामाजिक अध्ययन का दर्शन" बताते हैं। क्षेत्र को जो भी नाम दिया जाए, यह स्पष्ट होना चाहिए कि मानव सामाजिक व्यवहार का अध्ययन वैज्ञानिक है या नहीं, यह एक खुला प्रश्न है, जिसे संबोधित करना सामाजिक विज्ञान के दार्शनिकों के काम का हिस्सा है।

"सामाजिक विज्ञान" के अध्ययन के अंतर्गत मानव व्यवहार और संबंधों के अनुसंधान का क्षेत्र बहुत व्यापक है। अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, नृविज्ञान और समाजशास्त्र के मुख्य विषयों के अलावा, सामाजिक विज्ञान में पुरातत्व, जनसांख्यिकी, मानव भूगोल, भाषा विज्ञान, सामाजिक मनोविज्ञान, और संज्ञानात्मक विज्ञान के पहलुओं के रूप में ऐसे असमान विषयों को भी शामिल किया गया है। यह क्षेत्र के विस्तार को इंगित करता है कि कितने भिन्न प्रकार के विषय सामाजिक विज्ञान के दर्शन में शामिल हैं और इस विषय के प्रश्नों, विधियों, अवधारणाओं, और व्याख्यात्मक रणनीतियों में कितनी विविधता है।

1.3.1 प्रबोधन, तर्क और विज्ञान

अठारहवीं सदी के ज्ञान का केंद्र है, प्रमुख फ्रांसीसी विचारकों (अठारहवीं सदी के मध्य–दशकों) की ढीली व्यवस्थित गतिविधियां। इन्हें 'दार्शनिक' कहा जाता था। कुछ उदाहरण हैं– वोल्टेयर, डी. एलेम्बर्ट, डाइडेरॉट, मॉन्टेसक्यू कान्ट और ह्यूम।

प्रबोधन को अकसर इसकी राजनीतिक क्रांतियों तथा आदर्शों से जोड़ कर देखा जाता है, खासकर 1789 की फ्रांसीसी क्रांति। प्रबोधन विचारकों की उत्तेजना द्वारा रचित तथा व्यक्त ऊर्जा ने, अठारहवीं सदी में, फ्रांस में बढ़ने वाली सामाजिक अराजकता को बढ़ावा दिया। यह सामाजिक अराजकता पारंपरिक तथा पदानुक्रम तौर से संरचित प्राचीन शासन को ले डूबी (राज–तंत्र, कुलीन वर्ग के विशेषाधिकार, ईसाई जगत की राजनीतिक ताकत)। फ्रांसीसी क्रांतिकारियों का उद्देश्य था प्राचीन शासन के स्थान पर, एक नया तर्क–आधारित पंथ स्थापित करना और स्वतंत्रता एवं समानता जैसे प्रबोधन के आदर्श स्थापित करना। हालांकि, बतौर एक भिन्न बौद्धिक तथा सामाजिक आंदोलन, प्रबोधन का कोई स्थाई अंत नहीं है, लेकिन 1970 के दशक में हुआ फ्रांसीसी क्रांति का हस्तांतरण, मोटे तौर पर अठारहवीं सदी के अंत और रूमानवाद जैसे विपरीत आंदोलनों के अनुरूप है। इस समय को बतौर प्रबोधन का अंत देखा जा सकता है और एक ऐतिहासिक दौर माना जा सकता है।

हालांकि, स्वयं प्रबोधन विचारकों हेतु, प्रबोधन एक ऐतिहासिक दौर नहीं, बल्कि यह एक सामाजिक, मनोवैज्ञानिक या आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया है, जो समय या स्थान द्वारा सीमित नहीं। इम्मैनुएल कान्ट द्वारा, अपने प्रसिद्ध लेख, "ऐन आंसर टू द क्वेश्चन : वॉट इस एनलाइटनमेंट?" (1784) में "प्रबोधन" की परिभाषा देते हुए, इसे मनुष्यजाति की स्वयं उठाई गई अपरिपक्वता से मुक्त कहा है– "अपरिपक्वता का अर्थ है, किसी दूसरे के मार्गदर्शन बिना, अपनी खुद की समझ प्रयोग कर पाने की अयोग्यता"। प्रबोधन विचारकों द्वारा, व्यापक रूप से भिन्न सिद्धांतों पर साझा किए गए अपने विचारों पर अपनी धारणाएं व्यक्त करते हुए कान्ट विश्वास और कार्य करने हेतु, प्रबोधन को सोचने और अपनी बौद्धिक क्षमताओं को काम में लाने की प्रक्रिया की तरह देखते हैं। विश्व के हर भौगोलिक एवं लौकिक क्षेत्र में प्रबोधन दार्शनिकों को मनुष्य की बौद्धिक शक्तियों पर बेहद भरोसा है, दोनों, प्रकृति का सुसंगत ज्ञान प्राप्त करने हेतु और व्यावहारिक जीवन में एक आधिकारिक मार्गदर्शक की तरह करने के लिए। आमतौर पर, इस भरोसे के साथ अन्य प्रकार या अधिकार के वाहकों (जैसे कि परंपरा, अंधविश्वास, पूर्वाग्रह, मिथक और चमत्कार) के लिए बैर देखा गया है। ऐसा इसलिए क्योंकि इन्हें मनुष्य के अपने तर्क एवं अनुभव के अधिकार की प्रतिस्पर्धा करता समझा

टिप्पणी

जाता है। प्रबोधन दर्शनशास्त्र, स्थापित धर्म के विरोध में भी खड़ा पाया जाता है। आज कल के समय में जहां तक स्वयं उठाई गई अपरिपक्वता से मुक्ति पाने का, अपने लिए सोचने की हिम्मत करने का और अपनी बौद्धिक ताकतों को जगाने का प्रश्न है वहां, अपनी सोच एवं कार्य को दिशा दिखाने के लिए आमतौर पर स्थापित धर्म का विरोध करने की आवश्यकता जरूर पड़ती है। प्रबोधन का विश्वास– प्रबोधन की वह प्रक्रिया है जिसमें मनुष्य, अपनी बौद्धिक ताकतों को जागरूक करके, अपनी सोच और अपने कार्य को लेकर व्यापक ढंग से आत्म–निर्देशित बन जाता है। ऐसा करने से मनुष्य का अस्तित्व बेहतर एवं भरपूर बन जाता है।

रेने डेसकार्टेस की दर्शनशास्त्र की तर्कसंगत प्रणाली एक ऐसा आधार है जिसपर प्रबोधन विचार टिका है। डेसकार्टेस (1596–1650) द्वारा विज्ञानों को एक सुरक्षित आध्यात्मिक आधार पर स्थापित करने की शुरुआत की गई है। इस काम के लिए, डेसकार्टेस द्वारा अपनाया गया प्रसिद्ध संदेह का तरीका, प्रबोधन की विशेषता के रवैये का उदाहरण देता है (कुछ हद तक अतिरंजित करके)। डेसकार्टेस के अनुसार, आधारभूत दार्शनिक अनुसंधान में खोजक का उन सभी प्रस्तावों पर संदेह करना स्वाभाविक है, जिन पर संदेह किया जा सकता है। खोजक, एक प्रस्ताव के झूठ होने के संभावित परिदृश्य का निर्माण करके, इस बात को निर्धारित करता है कि वह विवाद योग्य है कि नहीं। मूलभूत वैज्ञानिक (दार्शनिक) खोज के क्षेत्र में, अपनी धारणा के अलावा और किसी अधिकार पर विश्वास नहीं किया जा सकता, और अपनी धारणा पर भी क्रूर, संदेहपूर्ण जांच–पड़ताल के बाद ही विश्वास किया जा सकता है। इस तरीके के साथ, डेसकार्टेस इंद्रियों पर (बतौर एक आधिकारिक ज्ञान का स्रोत) संदेह करते हैं। उनका मानना है कि, भगवान और अभौतिक आत्मा, दोनों, इंद्रियों की वस्तुओं की जगह, सहज विचारों के आधार पर बेहतर पहचाने जाते हैं। मन और शरीर के द्वैतवाद के अपने प्रसिद्ध सिद्धांत के जरिए, कि मन और शरीर दो भिन्न वस्तुएं हैं, प्रत्येक का अपना सार है। इंद्रियों द्वारा जाना जाने वाला संसार "बाहरी" संसार माना जाता है, यह उन विचारों से बाहर है जो व्यक्ति तुरंत अपनी चेतना में एकत्र कर लेता है। इस प्रकार, डेसकार्टेस की खोज, एक केंद्रीय ज्ञानवादी समस्या स्थापित करती है, न केवल प्रबोधन की बल्कि आधुनिकता की भी– हमारे अनुभवजन्य ज्ञान में वस्तुनिष्ठता की समस्या की। यदि, अतिरिक्त–मानसिक भौतिक सच्चाई के बारे में प्रस्तावों की सच्चाई के हमारे साक्ष्य हमेशा मानसिक सामग्री तक ही सीमित रहेंगे, मन के सामने संतुष्ट, तो हमें यह कैसे निश्चित होगा कि अतिरिक्त–मानसिक सच्चाई, हमारे अस्तित्व के प्रतिनिधित्व से अलग नहीं है? डेसकार्टेस का समाधान, हमारे द्वारा, पहले से ही, भगवान के प्रति विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर लेने पर निर्भर है। दरअसल, डेसकार्टेस का यह कहना है कि सम्पूर्ण मनुष्य ज्ञान (न केवल इद्रियों द्वारा प्राप्त किया गया भौतिक संसार का ज्ञान) भगवान के आध्यात्मिक ज्ञान पर निर्भर करता है।

डेसकार्टेस के भगवान संबंधित आध्यात्मिक ज्ञान में सम्पूर्ण वैज्ञानिक ज्ञान के बसे होने के आधार के बावजूद, इनकी प्रणाली का इस दौर में प्राकृतिक विज्ञानों की वृद्धि में महत्वपूर्ण सहयोग रहा है। इनके द्वारा शैक्षिक–ऐरिस्टॉटलवादियों की लंबे समय से चलती आ रही मान्यताओं पर आक्रमण किया गया है जिनका बौद्धिक प्रभुत्व नए विज्ञान के विकास के रास्ते की रुकावट बन गया। इन्होंने पदार्थ संबंधी ऐसी धारणा विकसित की जिसने भौतिक घटनाओं की यांत्रिक व्याख्या को सक्षम किया। इसके अलावा, इनके

टिप्पणी

द्वारा कुछ मूलभूत गणितीय स्रोतों का भी विकास किया गया– विशेष तौर पर, ज्यामितीय समस्याओं को हल करने के लिए बीजीय समीकरणों को नियोजित करने का एक तरीका– जिससे भौतिक क्षेत्र को सटीक, सरल गणितीय सूत्रों द्वारा व्याख्यायित करने की योग्यता प्राप्त हुई। इसके अलावा, भौतिक विज्ञान तथा सापेक्षया सरल एवं शिष्ट तर्कवादी अध्यात्मविज्ञान के सम्पूर्ण ज्ञान में इनकी जानकारी, ज्ञान की कठोर एवं पूर्ण धर्मनिरपेक्ष प्रणाली का मॉडल दर्शाती है। हालांकि, ज्यादातर प्रबोधन विचारकों (उदाहरण के लिए वॉल्टेयर अपनी लेटर्स ऑन दी इंगलिश नेशन, 1734) द्वारा डेसकार्टेस की जगह न्यूटन की भौतिक प्रणाली को अपनाया गया है, लेकिन न्यूटन की प्रणाली खुद डेसकार्टेस के पहले कार्य पर निर्भर है, ऐसी निर्भरता जिसे न्यूटन की स्वयं की स्वीकृति प्राप्त है।

सत्रहवीं सदी के बाद के दशकों में कार्टेसी दर्शन ने भिन्न विवादों को भी हवा दी, ऐसे विवाद जो बौद्धिक उथल पुथल का संदर्भ उपलब्ध करवाते थे, और जिससे प्रबोधन निकल कर आया। इन विवादों में कुछ इस प्रकार हैं– क्या मन और शरीर वास्तव में अलग प्रकार के पदार्थ हैं, यदि हां, तो प्रत्येक की प्रकृति क्या है, और इनका आपस में संबंध क्या है, दोनों, मनुष्य (जिसके पास मन और शरीर दोनों हैं) एवं एकीकृत संसार निकाय में? यदि पदार्थ निष्क्रिय है (डेस्कार्टेस के दावे के अनुसार) तो भौतिक संसार में गति एवं करणीय संबंध का स्रोत क्या होगा? और भिन्न प्रकार की ज्ञान पद्धति संबंधी समस्याएं– वस्तुनिष्ठता की समस्या, हमारा ज्ञान सुरक्षित करने में भगवान की भूमिका, सहज विचारों का सिद्धांत तथा अन्य।

बारूक स्पिनोजा के व्यवस्थित तर्कवादी अध्यात्मविज्ञान, जो उनके द्वारा उनके कार्य एथिक्स (1677) में, बतौर कार्टीसी निकाय की समस्याओं की प्रतिक्रिया विकसित की गई है, प्रबोधन विचार के लिए एक महत्वपूर्ण आधार है। स्पिनोजा ने कार्टीसी द्वैतवाद, एक सत्तामूलक अद्वैतवाद के विपरीत विकास किया है, इसके अनुसार केवल एक ही पदार्थ है, भगवान या प्रकृति, इस पदार्थ की दो विशेषताएं हैं मन और शरीर से संवादी। स्पिनोजा द्वारा, दृढ़ दार्शनिक तर्क के आधार पर एक पारलौकिक परमात्मा के अस्तित्व, भगवान की प्रकृति के साथ पहचान का इनकार किया गया है। उनका यह इनकार नास्तिकता और प्रकृतिवाद के धागों को बढ़ावा देता है, जो प्रबोधन दर्शन का ताना बाना बनाता है। स्पिनोजा के तार्किक सिद्धांत उन्हें एक दृढ़ निश्चय का दावा करने और व्याख्या में किसी अंतिम कारण की भूमिका से इनकार करने का भी बढ़ावा देते हैं।

ह्यूम, प्रबोधन विचारकों में से एक प्रमुख विचारक हैं जिनमें "मन का न्यूटन" बनने की महत्वाकांक्षा थी; उनकी महत्वाकांक्षा थी कि वो ऐसे मूल नियमों की स्थापना करें जो मनुष्य के कार्य के दौरान उसके तत्वों का नियंत्रण करें। अलेक्जेंडर पोप द्वारा, एन एसे ऑन मैन (1733), में लिखा प्रसिद्ध दोहा, "खुदको पहचानो, भगवान द्वारा स्कैन किए जाने का अनुमान न लगा कर बैठो/मनुष्यजाति की सही जांच है मनुष्य", प्रबोधन के संदर्भ में मानवता को मिली दिलचस्पी को बखूबी व्यक्त करता है, भगवान और पारलौकिक क्षेत्र में पारंपरिक दिलचस्पी हेतु एक अधूरा विकल्प। जिस प्रकार कॉपरनिकस के ब्रह्माण्डीय निकाय में धरती की जगह सूरज ब्रह्माण्ड के केंद्र में स्थान लेता है, वैसे ही, प्रबोधन में मानवता की जागरुकता के केंद्र में मानवता भगवान का स्थान लेती है। प्रबोधन के विज्ञान हेतु जुनून को देखते हुए, आत्म–निर्देशित ध्यान, प्राकृतिक रूप से,

उस समय काल में मानवता की जांच के वैज्ञानिक रूप की वृद्धि का आकार ले लेता है।

उस दौर में मानवता की वैज्ञानिक खोज का उत्साह, ब्रह्माण्ड में मानवता के स्थान के प्रति विरोध या विरोधाभास पैदा करता है, क्योंकि प्रबोधन दर्शन और विज्ञान के संदर्भ में ब्रह्माण्ड की पुनर–कल्पना की गई है। प्रबोधन के आरंभिक दौर में, न्यूटन के गति के सार्वभौमिक नियमों के अंतर्गत प्रकृति की घटना के क्षेत्र में, एक सरल गणितीय फॉरमूले द्वारा व्यक्त की गई सफलता, प्रकृति की बतौर एक बेहद जटिल मशीन की धारणा करने के लिए प्रोत्साहित करती है, एक ऐसी मशीन जिसके पुर्जे और जिसकी सामग्री, गति एवं विशेषताओं का सम्पूर्ण हिसाब निर्धारणात्मक करणीय नियमों द्वारा रखा जाता है। लेकिन यदि, प्रकृति के बारे में हमारी धारणा, विशेष रूप से भौतिक क्षेत्र से संबंधित और निर्धारणात्मक, यांत्रिक नियमों द्वारा शासित है और यदि उसके साथ हम ब्रह्मांड में अलौकिक के स्थान से भी इनकार करते हैं, तो मानवता ब्रह्माण्ड में किस प्रकार फिट बैठेगी? दूसरी ओर, सामान्य तौर पर प्राकृतिक विज्ञानों की सफलताएं, प्रबोधन की शान हैं, जो विशिष्ट मानवीय क्षमताओं की उत्कृष्टता को प्रकट करती हैं। प्रबोधन में, मानवता का गर्व और उसकी आत्म–मुखरता कई प्रकार से खुद को व्यक्त करते हैं, यहां मानवता पर खोज ही उसका मुख्य मुद्दा है। दूसरी ओर, प्रबोधन में मानवता की खोज, मुख्य रूप से हमारा ऐसा चित्र दर्शाती है जो किसी दिशा से प्रशंसापूर्ण या हमें ऊंचा दिखाने वाला नहीं होता। प्रकृति में एक विशेष स्थान प्राप्त कए हुए दर्शाए जाने की जगह, भगवान की छवि जैसे, प्रबोधन में मानवता मुख्य तौर पर एक प्राकृतिक जीव की तरह दर्शाई गई है, जिसकी अपनी मर्जी नहीं होती, जिसकी आत्मा अमर है और जिसकी इंद्रियां गैर–बौद्धिक तर्क की हैं। लगता है जे ओ डी ला मेट्री द्वारा लिखित मैन ए मशीन (1748), उदाहरण के लिए, मानवता की आत्म–धारणा की हवा निकालने हेतु डिजाइन की गई है। और इस संबंध में यह, प्रबोधन की एक विशेषता है, शायद अधिक कट्टरपंथी फ्रेंच प्रबोधन में विशेष रूप से काम करती है– हेलवेटियस द्वारा लिखित ऑफ द स्पिरिट (1758) और बैरन डी हॉलबैच द्वारा लिखित सिस्टम ऑफ नेचर (1770) उल्लेखनीय हैं। ये अपनी वैज्ञानिक अपेक्षाओं में, प्रबोधन की मानवीय विशेषता की उल्लेखनीय आत्म–मुखरता को तुरंत व्यक्त करते हैं और इसके साथ–साथ मानवता का एक ऐसा चित्र बनाते हैं जो उसकी प्रकृति में विशेष स्थान की पारंपरिक आत्म–छवि को, नाटकीय रूप से घटा हुआ दर्शाता है।

इस दौर में, ज्ञानवाद की कार्य पद्धति भी इसी प्रकार का द्वंद्व प्रस्तुत करती है। डेस्कार्टेस की ज्ञान प्रणाली में उनकी प्रसिद्ध ज्ञान मीमांसा संबंधी भूमिका "कोगिटो एर्गो सम" की भूमिका में उनके ज्ञानवाद का भगवान के ज्ञान को प्रमुखता देने की जगह आत्म–ज्ञान को विशेषाधिकार देने की ओर हस्तांतरित होते देखा जा सकता है। हालांकि, डेसकार्टेस के ज्ञान मीमांसा में यह हमेशा सच रहेगा कि भगवान से संबंधित ज्ञान, सम्पूर्ण मानव ज्ञान हेतु आवश्यक आधार का काम करता है। ह्यूम द्वारा रचित ट्रीटीस, ऐसे पुनरभिविन्यास को कम अस्पष्ट ढंग से दर्शाता है। जैसाकि देखा गया है, ह्यूम का अर्थ है अपने काम में, मन या मनुष्य का विज्ञान शामिल करना। प्रस्तावना में ह्यूम द्वारा, प्रभावी रूप से, मनुष्य के विज्ञान को सभी अन्य विज्ञानों का आधार बताया गया है, क्योंकि सभी विज्ञान "मनुष्यों के संज्ञान में रहते हैं, और इनका मूल्यांकन इनकी बाहरी और आंतरिक शक्तियों द्वारा किया जाता है"। दूसरे शब्दों में, चूंकि सारे विज्ञान

टिप्पणी

मानव विज्ञान हैं, मानवता का ज्ञान, विज्ञानों का आधार है। ह्यूम द्वारा मानव विज्ञान को अन्य सभी विज्ञानों का आधार मानना, प्रबोधन के भीतर "मानवजाति द्वारा मनुष्य की खोज" का उदाहरण होने के साथ–साथ उसकी व्याख्या भी करता है। विज्ञानों के निकाय में ह्यूम का क्रियाविधि अनुसार विशेषाधिकार, तीव्र रूप से उनके मानवता के संबंध में विज्ञानों पर की गई टिप्पणी के बिल्कुल विपरीत है। ह्यूम के मानव विज्ञान में, तर्क पर, बतौर ज्ञान का संकाय, आक्रमण करते हुए उसे तुच्छ कहा/समझा गया है; तर्क को अन्य जानवरों की विशेषता भी माना गया है; विश्वास को प्रथा तथा आदत का हिस्सा माना गया है; और स्वतंत्र इच्छा को अस्वीकार किया गया है। इसलिए चाहे, ज्ञान के निकाय में मानवजाति का ज्ञान भगवान के ज्ञान की जगह एक प्रधान सिद्धांत का स्थान लेता है, मानवजाति पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से मानवजाति के आत्म–निर्धारण (प्राकृतिक व्यवस्था में एक विशेष स्थान अपनाने के) को चुनौती देता है। इम्मैनुएल कान्ट, विशिष्ट रूप से, ज्ञान मीमांसा में, कॉपरनीकी खगोल विज्ञान के मॉडल पर तैयार, एक क्रांति दर्शाते हैं। प्रबोधन ज्ञान मीमांसा की विशेषता के अनुसार, कान्ट, अपने क्रिटीक ऑफ प्योर रीजन (1781, दूसरा संस्करण 1787) हमारे ज्ञान को सीमित करने के साथ प्रकृति को वैज्ञानिक आधार करने हेतु गंभीर रूप से ज्ञान के हमारे मानवीय संकायों की जांच करते हैं। चाहे उनके द्वारा तार्किक ज्ञान को दृढ़ रूप से सीमित किया गया है, लेकिन फिर भी वो तर्क की बतौर ज्ञान का संकाय, तर्क द्वारा झेली जाने वाली संशयवादी चुनौतियों के बीच, बचाव करने की कोशिश करते हैं। उनके अनुसार इसकी प्राकृतिक विज्ञान में विशेष भूमिका है। कान्ट के अनुसार, प्रकृति के प्रति वैज्ञानिक ज्ञान का अर्थ प्रकृति में दरअसल घटने वाली घटनाओं का ज्ञान नहीं होता, बल्कि इसका अर्थ है प्रकृति के करणीय नियमों का ज्ञान जिसके अनुसार दरअसल घटनाएं घटनी चाहिए। लेकिन प्रकृति में आवश्यक करणीय जोड़ का ज्ञान संभव कैसे है? ह्यूम द्वारा विचार पर की गई जांच में इस बात को स्पष्ट कर दिया था कि हम अनुभव के माध्यम से करणीय आवश्यकता को नहीं जान सकते। अनुभव हमें, ज्यादा से ज्यादा, केवल असल में घटी घटना का ज्ञान देता है, न कि इस बात का कि क्या घटना चाहिए। इसके अतिरिक्त, कान्ट के अपने, पहले के तर्कवाद के सिद्धांतों की आलोचना ने उन्हें इस बात को मानने हेतु तैयार कर दिया कि (सामान्य) तर्क के सिद्धांत भी असल आवश्यक संबंधों (प्रकृति में) के ज्ञान का औचित्य सिद्ध नहीं कर सकते; गैर–विरोधाभास का औपचारिक सिद्धांत, ज्यादा से ज्यादा, एक प्रस्ताव से दूसरा प्रस्ताव निकाले जाने को दृढ़ कर सकता है, लेकिन यह इस बात का दावा नहीं कर सकता कि एक गुण या एक घटना के बाद, प्राकृतिक रूप से दूसरा गुण या दूसरी घटना अवश्य घटती है। कान्ट द्वारा क्रिटीक ऑफ प्योर रीजन में जिस सामान्य ज्ञानवादी समस्या को संबोधित किया है वो है– विज्ञान किस प्रकार संभव है (प्राकृतिक विज्ञान, गणित, अध्यात्मविज्ञान सम्मिलित), यह मानते हुए कि इस प्रकार का पूर्ण ज्ञान सच्ची एवं मूल आवश्यकताओं का ज्ञान होना चाहिए, केवल तार्किक या औपचारिक नहीं। शब्दों में कान्ट द्वारा यह बात इस प्रकार व्यक्त की गई है, समस्या यह है– कृत्रिम, प्राथमिक ज्ञान किस प्रकार संभव है?

इस समस्या को संबोधित करते हुए, ज्ञानवाद में, कान्ट की कॉपरनीकी क्रांति के अनुसार, मनुष्यों को वस्तुओं के अनुरूप होने की जगह वस्तुओं को मनुष्यों के अनुरूप होना चाहिए। कुछ ज्ञान–संबंधी आकार हमेशा मनुष्य के दिमाग में तैयार रहते हैं–

इसके मुख्य उदाहरण हैं पदार्थ एवं कारण के शुद्ध सिद्धांत और अंतर्ज्ञान, स्थान एवं समय के रूप, मानव अनुभव (बतौर प्रकृति के अनुभवजन्य ज्ञान) के लिए यह जरूरी है कि प्रत्यक्ष अभ्यावेदन इन रूपों और प्रकारों के अनुरूप हों। हम प्रकृति से संबंधित प्राथमिक ज्ञान इसलिए प्राप्त कर पाते हैं क्योंकि हम उसे कुछ संज्ञानात्मक रूपों के अनुसार निर्मित कर लेते हैं। उदाहरण के लिए, हम प्रकृति को एक करणीय तौर पर तैयार क्षेत्र समझ सकते हैं क्योंकि हम असल में करणीय संबंध की श्रेणी के आधार पर प्राथमिक को बहुत ज्यादा संवेदनशीलता प्रदान करते हैं, जिसका स्रोत मनुष्य के मन में होता है।

कान्ट, प्रकृति के तार्किक ज्ञान को, प्रकृति के तार्किक ज्ञान तक सीमित करके उसकी रक्षा करते हैं। कान्ट के अनुसार, हमें केवल संभव अनुभव के क्षेत्र का तार्किक ज्ञान हो सकता है, भगवान या आत्मा जैसी मानसिक वस्तुओं का नहीं। इसके अतिरिक्त, कान्ट का सुझाव अपने साथ एक प्रकार का आदर्शवाद लेकर आता है– अनुभव की वस्तुएं गठित करने हेतु मन की भूमिका को ध्यान में रखते हुए, हम वस्तुओं को केवल दिखावे की तरह जानते हैं, केवल उतना ही जितना हम उनका अपनी इंद्रियों द्वारा बोध कर सकते हैं, बल्कि उनके असल (अपने) रूप और प्रकार द्वारा नहीं। यह कान्ट के ज्ञानवाद का मनोवाद है। तार्किक परंपरा के ज्ञान की संकल्पना को मानव केंद्रित विचार से बदल कर कान्ट का ज्ञान मीमांसा प्रबोधन विचार का उदाहरण प्रदान करता है।

हालांकि, कान्ट चाहते हैं कि उनकी प्रणाली मानवता की व्यावहारिक और धार्मिक आकांक्षाओं के लिए जगह बनाए जिसमें उत्कृष्ट के लिए भी स्थान हो। कान्ट के आदर्शवाद के अनुसार, प्रकृति का क्षेत्र, दिखावे के क्षेत्र तक सीमित है, और हम बुद्धिमानी से भगवान, स्वतंत्रता और आत्मा जैसी मानसिक वस्तुओं के बारे में सोच सकते हैं, चाहे हम इन्हें जान नहीं सकते। बतौर दिखावे का दौर, प्रकृति के दौर की जगह, अंजान आदर्श (चीजों में स्वयं) के दौर की परिकल्पना द्वारा, कान्ट ऐसे व्यावहारिक सिद्धांतों के लिए जगह बनाने की कोशिश करते हैं जो हमारी समझ को लेकर हमारे लिए केंद्रीय हैं, प्रकृति के अपने वैज्ञानिक ज्ञान को नियतात्मक करणीय नियम क्षेत्र द्वारा शासित करने के बावजूद। हालांकि, शुरुआती प्रकाशन से ही कान्ट का आदर्शवाद बेहद विवादास्पद है, लेकिन कान्ट के अनुसार इसके पक्ष में एक बात इसे दृढ़ करती है कि यह एक अकेले सुसंगत विरोध को स्वीकार करती है। प्रबोधन की प्रकृति को लेकर धारणा के संबंध में विरोध को, जैसा कि नियतात्मक करणीय नियमों द्वारा निर्धारित किया गया है, और प्रबोधन के बारे में हमारी धारणा– नैतिक तौर पर स्वतंत्र, सम्मान युक्त और पूर्ण करने योग्य।

1.3.2 कार्तीय दर्शन

पश्चिमी दर्शन के इतिहास में कान्ट को सबसे प्रतिष्ठित और प्रभावशाली दार्शनिकों में से एक माना जाता है, खासकर अध्यात्मविज्ञान की शाखा में। दर्शन के क्षेत्र में इनके योगदान का ज्ञान मीमांसा नैतिकता, सौंदर्यशास्त्र और अध्यात्मविज्ञान पर बहुत भारी प्रभाव पड़ा है। अध्यात्मविज्ञान के क्षेत्र में इनका सबसे प्रसिद्ध कार्य है, "द क्रिटीक ऑफ प्योर रीसन"। कान्ट का यह मानना है कि ज्ञान के निर्माण में मन का बहुत बड़ा हाथ होता है, और यह कि अकेला अनुभव ही ज्ञान का स्रोत नहीं होता। इस प्रकार कान्ट का अध्यात्मवाद, ज्ञान को तर्क से जोड़ने की कोशिश करता है।

कान्ट दो मौलिक प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने की कोशिश करते हैं—

- क्या तर्क को सुरक्षित ढंग से स्थापित किया जा सकता है?
- तर्क की प्रासंगिकता क्या है?

टिप्पणी

कान्ट के कार्यों को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यावहारिक तर्क ही उनके दर्शन की नींव है। हालांकि, कान्ट विचारों और समझ में अवश्य अंतर करते हैं। अपने लेखन, क्रिटीक ऑफ प्योर रीजन के पहले हिस्से में कान्ट इस बात पर जोर देते हैं कि मनुष्य केवल संवेदनशीलता और समझदारी के जरिए ही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, अर्थात, अपनी बुद्धि द्वारा। इसके अलावा वे, मन और शरीर के संबंध पर भी जोर देते हैं, चीजों के बोध और अनुभव की क्षमता, सिद्धांत निर्माण की योग्यता की सहायता करती है, और इसी प्रकार व्यक्ति अनुभवजन्य निर्णय ले सकता है।

सभी इंद्रियों का केंद्रीय उपयोग सभी वस्तुओं के बारे में ज्ञान इकट्ठा करने में सहायक साबित हो सकता है। क्योंकि इंद्रियों के द्वारा व्यक्ति, वस्तु के प्रकार और आकार का ज्ञान प्राप्त करता है तथा तर्क द्वारा वह उसकी मानसिक छवि बनाकर, अपने पुराने अनुभव के साथ उसे ग्रहण करने की कोशिश करता है। कान्ट का यह कहना है कि सम्पूर्ण बाहरी आनुभविक संसार की तर्क द्वारा कल्पना की जानी चाहिए। प्रत्येक स्थिति की मन में उपस्थित पुरानी स्थितियों से तुलना की जानी चाहिए। इस प्रकार तर्क एक अनुक्रम उत्पन्न करता है, जो मन में हर धारणा को जोड़ता है। कान्ट के लिए तर्क स्वतंत्र है और साथ ही यह मनुष्यों को भी स्वतंत्रता उपलब्ध करवाता है। यह तर्क का ही परिणाम है कि मनुष्य को उसकी इच्छा के अनुसार तर्क करने की योग्यता प्राप्त होती है, यह जीवन के प्रत्येक कार्य का मार्गदर्शन करता है। हालांकि, कान्ट यहां एक और मुद्दा उठाते हैं कि केवल तर्क ही मनुष्यों को संसार के अन्य जीवों से भिन्न नहीं करता बल्कि उनकी नियमों का पालन करने की योग्यता भी इसके लिए काफी हद तक जिम्मेदार है। मनुष्यों के लिए नैतिक कानून का पालन करना निर्णयात्मक रूप से अनिवार्य है। इनके द्वारा इस अनिवार्यता को तीन फार्मूलों में श्रेणीबद्ध किया गया है।

- नियमों के अनुसार कार्य करना।
- नियमों के अनुसार कार्य करना और यह सुनिश्चित करना कि आपके कार्य प्रकृति के सार्वभौमिक नियमों का औचित्य सिद्ध करते हैं।
- मानवता से कार्य करना।

बेहतर होने के लिए, मनुष्यों को किसी एक लक्ष्य या निजी दिलचस्पी की ओर अपना झुकाव हटाना चाहिए। हमें अपने कार्यों में आवेगशील नहीं होना चाहिए, और निजी लक्ष्यों के बारे में नहीं सोचना चाहिए, हमारे सभी कार्य हमें सार्वभौमिक भलाई की ओर ले जाने चाहिए। कान्ट के अनुसार असल सेवा, असल विचार और असल भलाई 'सद्भावना' में है। कान्ट का यह मानना था कि कुछ प्रकार के कार्यों पर पूरी तरह से रोक लगा देनी चाहिए जैसे, हत्या, चोरी और झूठ बोलना। कान्ट का यह भी कहना था कि हमें खुद से दो सवाल पूछने चाहिए—

1. क्या मैं इस बात की तर्कपूर्ण इच्छा कर सकता हूं कि सभी मेरे द्वारा प्रस्तावित ढंग से व्यवहार करेंगे?

2. क्या मेरे कार्य अन्य मनुष्यों के लक्ष्यों का आदर करेंगे, और सिर्फ अपना ही उद्देश्य पूरा नहीं करेंगे?

कान्ट का नैतिक दर्शन आचरण– शास्त्रीय नैतिक सिद्धांत का एक उदाहरण है, जिसके अनुसार हमारे कार्यों का ठीक होना हमारे लाभ या हानि पर निर्भर नहीं करना चाहिए, बल्कि इससे कोई बड़ी भलाई होनी चाहिए।

संसार के दर्शनशास्त्रियों और उनके कार्यों के अनुसार, डेस्कार्टेस निगमनिक तरीकों के उत्सुक प्रस्तावक थे। उनका इस बात में दृढ़ विश्वास था कि वस्तुपरक होने के लिए, किसी भी ज्ञान के लिए सिद्धांतों का पालन करना आवश्यक है। इस तरीके को लागू करके, "वस्तुपरक सच्चाई" का विचार बनाया गया। डेस्कार्टेस के तरीके का दार्शनिकों (पुराने व आधुनिक) द्वारा व्यापक रूप से प्रयोग किया गया। यह तरीका निम्न, चार स्तरीय मानदंड, अपनाता है।

1. कभी भी किसी ऐसे विचार को सच मत मानो जो स्पष्ट रूप से सच्चा न दिखाई दे, इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिए।
2. प्रत्येक जटिल प्रश्न को सरल प्रश्नों में बांटो।
3. अपने विचारों को सरल से जटिल की ओर क्रमबद्ध करो।
4. निष्कर्षों की शृंखलाओं पर पुनर्विचार करो ताकि शृंखला में किसी तरह की टूट या झूठी कड़ी पकड़ में आ सके।

ये सिद्धांत, डेस्कार्टेस द्वारा तैयार किए गए पहले ध्यान और ज्ञान के उनके आरंभिक विचारों का भी पालन करेंगे। इस प्रक्रिया में उनके द्वारा प्रस्तावित पहले कदम ने शायद डेस्कार्टेस को एक नई शुरुआत करने हेतु पूर्वकल्पित ज्ञान को फेंकने के लिए प्रोत्साहित किया। यह शुरुआत थी शुद्ध रूप से तार्किक एवं संसाधित विचार के विकास की।

1.3.3 वैज्ञानिक क्रांति की संरचना (कुह्न)

वैज्ञानिक क्रांतियों का विषय, थॉमस कुह्न के 'द स्ट्रक्चर ऑफ साइंटिफिक रेवोल्यूशंस (1962, 1970)' के लेख के समय से दार्शनिक रूप से महत्वपूर्ण रहा है। 1996 में कुह्न की मृत्यु और स्ट्रक्चर (संरचना) की पच्चासवीं वर्षगांठ ने इनके कार्यों में उठाए गए मुद्दों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। कुह्न के नजरिए से कोई क्रांति हुई है या नहीं, ऐसा कहना विवादास्पद है। एक कुह्नी क्रांति क्या है या क्या हो स्कती है, इस बात का विश्लेषण करना भी विवादास्पद है। वैसे तो, क्रांति के विषय को जरूरत से ज्यादा उछाला जाता है, लेकिन अधिकतर विश्लेषक भिन्न प्रकार के परिवर्तनकारी वैज्ञानिक विकासों से सहमत हैं, चाहे वो कुह्नी हों या नहीं। वैज्ञानिक क्रांतियों के अस्तित्व और उनकी प्रकृति का विषय विज्ञानों तथा उनकी व्याख्या के संबंध में बहुत सारे मूल–भूत प्रश्न पैदा करता है। यह एक ऐसा विषय है जो विज्ञान के दार्शनिकों तथा उसके करीबी विषयों से संबंधित दार्शनिकों से संबंधित तकरीबन सभी मुख्य मुद्दों को काटता है। अगर कॉपरनिकस से लेकर न्यूटन तक चलने वाली वैज्ञानिक क्रांति, प्रबोधन के आकर्षक सामंतवाद से आधुनिकता के हस्तांतरण के दृश्य में पूरी उतरती है (इस दावे पर भी सवाल उठाए गए हैं।) प्रौढ़ विज्ञानों में कल्पित क्रांतियां (उदाहरण के लिए), (सापेक्षता और क्वांटम यांत्रिकी), स्थाई तार्किक तथा पद्धति के मानकों के प्रबोधन विचार को जो

टिप्पणी

विज्ञानों एवं तकनीकों के अंतर्निहित हैं, चुनौती देती हैं। आज के वैज्ञानिक इस यथार्थवादी दृश्य के सबसे स्पष्ट दिखाई देने वाले वारिस हैं। वैसे तो कई दार्शनिकों तथा दार्शनिक या ऐतिहासिक चिंतनशील वैज्ञानिकों द्वारा बीसवीं सदी के भौतिक विज्ञान के बदलावों पर टिप्पणी की गई है, लेकिन कुह्न के समय तक ऐसे विकास ज्ञानमीमांसीय या सत्तामूलक स्तर पर, विज्ञान की पारंपरिक धारणाओं के प्रति चुनौतीपूर्वक दिखाई दिए– और इस प्रकार सामान्य तौर पर हमारी ज्ञान पाने की समझ के प्रति भी। अब कुह्न के कार्य और उनके समय में ही इतना बड़ा बदलाव क्यों देखा गया, यह अपने आप में बेहद दिलचस्प सवाल हैं, जिनकी खोज की जानी चाहिए, जहां अन्य (विट्‌गेन्स्टाइन, फ्लेक, बैचलार्ड, पोलेनी, टॉलमिन और हैन्सन) ने पहले ही महत्वपूर्ण "कुह्नी" विषयों को छेड़ दिया था।

कुह्न के अनुसार स्ट्रक्चर में, शिथिल रूप से वर्णित गतिविधियों का समूह, जिसमें अक्सर प्रतिस्पर्धी विचारों के समूह शामिल थे, एक प्रौढ़ विज्ञान का रूप ले लेते हैं तब समस्याओं/प्रश्नों के कुछ एक ठोस समाधान, उस क्षेत्र में, अच्छी खोज के लिए सामग्री प्रदान करते हैं। ये उदाहरणीय समस्या और समाधान के जोड़े एक "उदाहरण" का आधार बनते हैं जो "सामान्य विज्ञान" के कार्य परिभाषित करते हैं। जैसा कि इसके नाम से अनुमान लगाया जा सकता है सामान्य विज्ञान, प्रौढ़ विज्ञान और उसका निर्माण करने वाले खोजकों की त्रुटि स्थिति है। यह उदाहरण खोजकों को सूचित करती है कि उनका संसार का क्षेत्र किस प्रकार है और व्यवहारिक तौर पर यह गारंटी देती है कि सभी वैध समस्याओं/प्रश्नों को उनके तरीकों से हल किया जा सकता है। सामान्य विज्ञान सक्रिय तौर पर क्रांतिकारी शुरुआतों खासतौर पर खास (अचानक होने वाली) खोजों को हतोत्साहित करता है। क्योंकि ये उदाहरण को चुनौती देती हैं। हालांकि, सामान्य खोज इतनी विस्तृत और केंद्रित होती है कि इससे अनौपचारिक प्रयोगात्मक और सैद्धांतिक परिणाम निकलकर आना स्वाभाविक है, जिनमें से कई लंबे समय तक इनके समाधान का विरोध करने में सफल होते हैं। मार्गदर्शक उदाहरण और सभी खोजकों की अशुद्धता बताने में शामिल ऐतिहासिक आकस्मिकताओं को ध्यान में रखते हुए, हर चीज के बढ़िया तरीके से काम करने की संभावना नहीं है। कुह्न के अनुसार, विसंगतियों का होना तो अपेक्षित है। ऐतिहासिक तौर पर सभी उदाहरण और सिद्धांत जटिलताओं को हर समय विसंगतियों का सामना करना पड़ता है। यदि उत्कृष्ट खोजकों द्वारा किए गए दृढ़ प्रयास ये विसंगतियां मिटाने में असफल हो जाते हैं, तो समुदाय उदाहरणों में अपना विश्वास खोने लगता है और एक ऐसे संकट काल की शुरुआत होती है जिसमें गंभीर विकल्पों के बारे में सोचा जा सकता है। यदि एक विकल्प में, मुख्य खोजकों के प्रभावी गुट को पुराने उदाहरण से दूर आकर्षित करने की पर्याप्त प्रतिष्ठा हो तो उदाहरण में परिवर्तन या बदलाव देखा जा सकता है– और इसे कहते हैं कुह्न की क्रांति। कट्टरवादी इस चीज की उपलब्धि सामान्य समस्याओं और उनकी समाधान तकनीकों के बदले नए उदाहरणों द्वारा करते हैं, ऐसा करने से पुरानी प्रथाएं गलत या पुराने जमाने की दिखाई देती हैं।

पुराने उदाहरण को भविष्य की खोज के लिए एक सक्षम मार्गदर्शक न बताते हुए, नया उदाहरण उसे पलट देता है। स्ट्रक्चर के प्रसिद्ध 10वें अध्याय में कुह्न ने यह दावा किया है कि परिवर्तन विशेष रूप से इतना दृढ़ होता है कि दोनों उदाहरणों की सामान्य लक्ष्य तथा क्रियाविधि अनुसार मानकों व मूल्यों के मद्देनजर, एक दूसरे से तुलना नहीं

टिप्पणी

की जा सकती। इसके अलावा, भौतिकी में, 'एक साथ', 'द्रव्यमान' और 'बल' जैसी मुख्य शब्दावली के अर्थों में परिवर्तन के कारण संचार टूट सकता है। वास्तव में, एक उदाहरण को लेकर विरोधी मत वाले वैज्ञानिक "अलग संसारों में रहते हैं"। कुह्न के अनुसार वैज्ञानिकों को एक तरह के समष्टि परिवर्तन या धार्मिक बदलाव का अनुभव होता है। उनका कहना है कि, बहस की गर्म बयानबाजी और उसके परिणामस्वरूप होने वाले सामाजिक पुनर्निर्माण एक राजनीतिक क्रांति की तरह दिखाई देते हैं। "राजनीतिक संस्थानों के बीच चुनाव की तरह, प्रतिस्पर्धी उदाहरणों के बीच का चुनाव भी सामुदायिक जीवन की असंगत प्रणालियों के बीच चुनाव जैसा दिखाई देता है" (1970, 94)। 'क्रांति' शब्द के उलझे हुए इतिहास को देखकर वैज्ञानिक एवं राजनीतिक क्रांतियों की तुलना पर आश्चर्य नहीं किया जाना चाहिए, लेकिन कुह्न द्वारा किए गए इतनी नजदीकी के दावे ने उनके दार्शनिक एवं सांस्कृतिक आलोचकों को गुस्सा दिला दिया।

एक ठेठ मिसाल के परिवर्तन में ज्यादा नए अनुभवजन्य परिणाम शामिल नहीं होते, कुह्न का कहना है (अध्याय 9 और 10)। बल्कि यह तो पहले से जानी हुई सामग्री का सैद्धांतिक पुनर्निर्माण है, जैसा सापेक्षता क्रांति में होता है। उदाहरण में परिवर्तन खास तौर पर लक्ष्यों, मानकों, भाषाई अर्थों, मुख्य वैज्ञानिक प्रथाओं में बदलाव लाता है, जिस प्रकार तकनीकी सामग्री और प्रासंगिक विशिष्ट समुदाय दोनों की व्यवस्था होती है, और जिस प्रकार वैज्ञानिक संसार का बोध करते हैं। हम प्रबोधन सोच की वैज्ञानिक प्रगति की पुरानी, रैखिक, संचयी अवधारणा को बरकरार भी नहीं रख सकते; क्योंकि, कुह्न का कहना है, यह दिखाने की कोशिश करना कि नए उदाहरण में (कुछ हद तक या किसी तरीके से) पुराना सम्मिलित है, संतुलन का भ्रम पैदा करने की कोशिश होगा। अर्थ में परिवर्तन, संसार की कल्पित आंटॉलोजी में दृढ़ परिवर्तन प्रतिबिंबित करता है। कुह्न द्वारा, सार्वजनिक प्रगति पर किए गए दूसरे एतराज को 'कुह्न लॉस' कहा जाता है। ऐसा बहुत कम होता है कि नया उदाहरण उन सारी समस्याओं का समाधान ढूंढ़ पाए जो उससे पहले उदाहरण द्वारा ढूंढ़ा गया है। इस हिसाब से भी नया उदाहरण पुराने उदाहरण से जुड़ने में असफल हो जाता है। कुह्न के अनुसार इसका परिणाम यह है कि, सिद्धांत छूट या एक सिद्धांत तथा समानता संबंध (उदाहरण के लिए, एक सीमित करने वाला संबंध) द्वारा लगातार व्यापक वैज्ञानिक प्रगति की सुरक्षा करने के प्रयास का असफल होना अनिवार्य है। क्रांतियां अलगाव पैदा करती हैं।

इन सब परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए, कुह्न का यह दावा था कि दो प्रतिस्पर्धी उदाहरण "अतुलनीय" होते हैं, एक ऐसा तकनीकी शब्द जिसकी स्पष्टता प्रदान करने का उन्होंने बार बार प्रयास किया। आनुभविक परिणामों और तार्किक बहसों के प्रति पारंपरिक अपीलें, बहस खत्म करने के लिए काफी नहीं हैं। अतुलनीयता बहस की विस्तृत जानकारी हासिल करने के लिए "दी इनकमेंसुरबिलिटी ऑफ साइंटिफिक थ्योरीज" नामक एंट्री और ह्योनिंगेन–ह्युएन एवं सैंकी (2001) देखें, ये अतुलनीयता पर साहित्य का एक बेहतरीन सैंपल है।

विज्ञान के पारंपरिक दर्शन की कुह्न द्वारा की गई आलोचना की सामान्य समस्या यह है कि चाहे भिन्न विज्ञानों को सफलता प्राप्त हुई है, हमें इस बात का ज्ञान नहीं कि उन्हें यह उपलब्ध कैसे हुआ है और हम यह भी नहीं जानते कि इस सफलता का वर्णन किस प्रकार किया जाए। प्रबोधन–स्टाइल व्याख्याएं तो असफल साबित हुई हैं। उदाहरण के लिए, कुह्न और फेयरबेंड (1975), पॉपर से पहले, इस दावे के खोखलेपन

को सबके सामने लाने वाले पहले दार्शनिकों में से थे कि इस सफलता की व्याख्या एक विशिष वैज्ञानिक खोज द्वारा की जा सकती है, एक ऐसा दृष्टिकोण जो आज भी सेकंडरी स्कूलों में व्यापक तौर पर पढ़ाया जाता है। और इस निष्कर्ष के कारण कुह्न और विज्ञान विषय का व्यवसाय इस समस्या में उलझ कर रह गए कि आखिर विज्ञान काम कैसे करता है? इस सफलता के कारण की व्याख्या करना इनके लिए एक तत्काल समस्या बन गई– एक बार फिर, इस समस्या को अनेक विज्ञान विद्वानों (दार्शनिकों के अलावा) द्वारा बोगस ठहरा कर नकार दिया गया।

स्ट्रक्चर में कुह्न का एक और घोषित कार्य था प्रौढ़ विज्ञान के लिए सामाजिक व्यवस्था की समस्या का समाधान निकालना, यानी, संयोगनशील आधुनिक विज्ञान (खासकर सामान्य विज्ञान) किस प्रकार संभव है (बर्नेस 1982, 2003)। इनका एक और उद्देश्य था अपने मॉडल का आंतरिक विकास करके, खोज के तर्क के अस्तित्व को नकारते हुए, वैज्ञानिक खोज को दार्शनिक चर्चा में वापिस लाना। जबकि तार्किक अनुभवतावादियों तथा पॉपर द्वारा विज्ञान के दर्शन में से खोज के मुद्दे निकाल बाहर कर दिए गए थे और पुष्टीकरण का सिद्धांत अपना लिया गया था, कुह्न पुष्टीकरण सिद्धांत के आलोचक थे और खोज पर ऐतिहासिक एवं दार्शनिक कार्य के समर्थक। उनका यह कहना था कि खोजें अस्थायी और संज्ञानात्मक रूप से संरचित होती हैं और ये विज्ञान की ज्ञान–मीमांसा का एक अनिवार्य हिस्सा होती हैं। कुह्न के सामान्य विज्ञान में समस्याएं बेहद अच्छे तरीके से संरचित होती हैं और इनके समाधानों की भी गारंटी होती है, उदाहरणों के स्रोतों के बारे में यह मान कर चलते हुए कि समस्याएं पहेलियां बन जाती हैं। यहां कुह्न द्वारा, इस बात को नकार कर चीजों पर नियंत्रण रखा गया कि सामान्य वैज्ञानिक आवश्यक नवीनीकरण की खोज करते हैं, क्योंकि, जैसाकि ऊपर बताया गया है, मुख्य, अनपेक्षित खोजें, वर्तमान उदाहरण को चुनौती देती हैं और इसलिए वे जोखिम और क्रांति को भी चुनौती देती हैं। इसलिए, सामान्य विज्ञान में भी, कुह्न को यह मानना पड़ा कि मुख्य खोजें, वर्तमान के सर्वमान्य उदाहरण के लिए अनपेक्षित चुनौतियां लेकर आती हैं। ये असंगत होती हैं, यहां तक कि बाहरी भी, क्योंकि ये सामान्य निकाय के बाहर से झटके के रूप में आते हैं।

लेकिन यह कार्यकारी वैज्ञानिकों का दृष्टिकोण है। जैसा कि देखा गया है, सामान्य विज्ञान में ऐसी मुश्किलें आना स्पष्ट है जो समाधान का विरोध करती हैं, जिनमें, कम से कम कुछ को समुदाय द्वारा पहचान प्राप्त हो जाती है। कुह्न के अपने विचार में, मैदान के ऊपर खड़े, बतौर एक इतिहासकार और दार्शनिक, जानी–बूझी, व्यवस्थित सामान्य खोज ही, सबसे आसानी से, क्रांति के बीज बोएगी जिससे तीव्र वैज्ञानिक विकास होगा। प्राचीन संगीतकार के जोक के अनुसार, कार्नेगी हॉल तक पहुंचने का सबसे तेज तरीका है आहिस्ता अभ्यास करना। कुह्न के लिए, क्रांतिकारी नवीनीकरण तक पहुंचने का सबसे तेज तरीका है, तीव्रता से विस्तृत सामान्य विज्ञान।

जब कुह्न द्वारा की गई क्रांति की बात आती है, सामाजिक व्यवस्था नाटकीय ढंग से अस्त–व्यस्त हो जाती है। और रचनात्मक सामान्य खोज को नियंत्रित करने की यह रणनीति, जिससे कि स्पष्ट खोज के लिए जगह बन जाए (खोज समस्याओं की पहेलियों में कटौती), भी बिगड़ जाती है। कुह्न को यह मानना पड़ा कि उन्हें इस बात की बिल्कुल जानकारी नहीं थी कि असाधारण खोज संदर्भों में वैज्ञानिक कैसे अति चतुर नए विचार और नई तकनीकें लेकर आते हैं। इस असफलता के कारण उनकी इस बात

की व्याख्या करने की समस्या को तीव्र कर दिया कि किस प्रकार की निरंतरता एक क्रांतिकारी शुरुआत में अंतर्निहित होती है जो हमें (पूछताछ के क्षेत्र में) घटना को एक क्रांति के रूप में पहचानने में सहायता करती है। जैसाकि उनके द्वारा बाद में लिखा गया है– जो यहां तक मेरे साथ चले हैं, जानना चाहेंगे कि मेरे द्वारा विस्तृत मूल्य–आधारित संस्था एक विज्ञान की तरह कैसे विकसित हो सकती है, बारंबार भविष्यवाणी और नियंत्रण हेतु शक्तिशाली नई तकनीकें निर्मित करती हुई। इस प्रश्न का, दुर्भाग्यपूर्ण है कि मेरे पास कोई उत्तर नहीं है।"

निष्कर्ष

सौंदर्य आनंद और विवेक में कल्पना की गतिविधि की भूमिका पर दिया गया कान्ट द्वारा जोर, प्रबोधन विचार में एक झुकाव का प्रतीक है। जबकि प्रबोधन की शुरुआत में, फ्रांसीसी वर्गवाद और कुछ हद तक अन्य जर्मन तर्कवाद के आंकड़ों में, कहीं न कहीं स्थाई तार्किक व्यवस्था एवं तुलना और तर्क के दृढ़ सार्वभौमिक नियमों या कानूनों पर ही जोर रहा है। प्रबोधन सौंदर्य के विकास के दौरान झुकाव कल्पना के खेल और उसके संबंधों के निर्माण की उर्वरता पर जोर का रहा है।

चाहे फ्रांस और जर्मनी में शुरुआती प्रबोधन के समय, सौंदर्यशास्त्र दार्शनिक तर्कवाद का आधार बना, इंग्लैंड तथा स्कॉटलैंड में, अनुभववादी परंपरा के विचारकों द्वारा प्रबोधन सौंदर्यशास्त्र के कई मुख्य विषयों की प्रस्तावना दी गई। खासकर, इस क्षेत्र में अनुभववाद और विषयवाद के चढ़ाव के कारण, ध्यान विषय के सौंदर्य के अनुभव की ओर मुड़ जाता है, बजाय विषय की सौंदर्य प्रतिक्रिया की ओर। उस समय काल के विचारकों द्वारा हमारे सौंदर्य की ग्रहणशीलता को विशिष्ट रूप से मनुष्य की प्रकृति और उसकी उत्कृष्टता को समझने की कुंजी पाया गया।

अपनी प्रगति जांचिए

3. "ऐन आंसर टू द क्वेश्चन : वॉट इज एनलाइटनमेंट?" लेख के लेखक कौन हैं?
   (क) कान्ट (ख) वोल्टेयर
   (ग) रेने डेसकार्टेस (घ) कुह्न
4. किस लेखक के लेख "द स्ट्रक्चर ऑफ सांइटिफिक रेवोल्यूशंस (1962, 1970)' के समय से वैज्ञानिक क्रांतियों का विषय दार्शनिक रूप से महत्वपूर्ण रहा है?
   (क) बारूक स्पिनोजा (ख) ह्यूम
   (ग) कान्ट (घ) कुह्न

1.4 प्रत्यक्षवाद एवं इसकी आलोचना : कॉम्टे, दुर्खीम और पॉपर का प्रत्यक्षवाद में योगदान, प्रत्यक्षवाद के आलोचक : फेयरबेंड और गिडेंस

प्रत्यक्षवाद एक दार्शनिक सिद्धांत है जो "वास्तविक" ज्ञान (कोई भी ऐसा ज्ञान जो परिभाषा द्वारा सच न हो) केवल प्राकृतिक घटना उसकी विशेषताओं तथा संबंधों में से निकाला जा सकता है है। इस प्रकार, संवेदी अनुभव द्वारा पाया गया अनुभव (तर्क द्वारा

टिप्पणी

समझा गया), सम्पूर्ण निश्चित ज्ञान का विशिष्ट स्रोत बनता है। इस प्रकार प्रत्यक्षवाद सम्पूर्ण वास्तविक ज्ञान को अनुमानित ज्ञान मानता है।

संवेदन द्वारा प्राप्त किए गए सत्यापित डेटा (सकारात्मक तथ्य) को अनुभवजन्य प्रमाण कहा जाता है, इस प्रकार प्रत्यक्षवाद अनुभववाद पर आधारित है।

प्रत्यक्षवाद का यह भी मानना है कि, जैसे भौतिक संसार सामान्य नियमों के अनुसार चलता है। अंतर्दर्शनात्मक और सहज ज्ञान नकार दिया जाता है, जिस प्रकार तत्वमीमांसा और धर्मशास्त्र को नकारा जाता है, क्योंकि तत्वमीमांसीय और धर्मशास्त्रीय दावों की इंद्रियों के अनुभव द्वारा पुष्टि नहीं की जा सकती। वैसे, प्रत्यक्षवाद का दृष्टिकोण, एक विषय के रूप में, पश्चिमी विचार में बार बार उठता रहा है, आधुनिक दृष्टिकोण का निर्माण दार्शनिक ऑगस्ट कॉम्टे द्वारा, उन्नीसवीं सदी के शुरुआती दौर में किया गया था। कॉम्टे का यह कहना था कि जैसे शारीरिक संसार ग्रेविटी तथा अन्य दृढ़ नियमों के अनुसार चलता है, समाज भी वैसे ही चलता है।

प्रत्यक्षवाद इस बात पर जोर देता है कि सम्पूर्ण विश्वसनीय ज्ञान पुष्टीकरण की अनुमति देता है और यह कि सम्पूर्ण विश्वसनीय ज्ञान यह मानता है कि केवल वैज्ञानिक ज्ञान ही वैध है। हेनरी डी सेंट साइमन (1760–1825), पियेर–साइमन लैपलेस (1749–1827) और ऑगस्ट कॉम्टे (1798–1857) जैसे विचारकों का यह मानना था कि वैज्ञानिक तरीका, सिद्धांत और अवलोकन की चक्रधार निर्भरता को विचार के इतिहास में तत्वमीमांसा की जगह लेनी चाहिए। इमाइल दुर्खीम (1858–1917) ने सामाजिक प्रत्यक्षवाद को बतौर सामाजिक खोज का आधार, पूर्वनिर्मित किया था।

इसके विपरीत, विलहेल्म डिल्थे (1833–1911) ने इस मान्यता के खिलाफ दृढ़ लड़ाई लड़ी कि केवल विज्ञान से निकली व्याख्याओं को ही वैध नहीं मानना चाहिए। उन्होंने इस बात को दोहराया (जो पहले से वीको में दर्ज है) कि वैज्ञानिक व्याख्याएं घटना की आंतरिक प्रकृति तक नहीं पहुंचती हैं और मानव ज्ञान ही हमें विचारों, भावनाओं और इच्छाओं के प्रति अंतर्दृष्टि देता है। डिल्थे, कुछ हद तक, लिओपोल्ड वॉन रैंक (1795–1886) के इतिहासवाद से प्रभावित थे।

1.4.1 कॉम्टे का प्रत्यक्षवाद

ऑगस्ट कॉम्टे (1798–1857) द्वारा 'द कोर्स इन पॉजिटिव फिलॉसफी' (1830 और 1842 के बीच प्रकाशित शृंखला) में ज्ञानवाद के दृष्टिकोण की व्याख्या की गई है। इसके बाद उन्होंने 1844 में 'ए जनरल व्यू ऑफ पॉजिटिविज्म' (1848 में फ्रेंच में और 1865 में अंग्रेजी में प्रकाशित) लिखी। कोर्स के पहले तीन संस्करण, मुख्य रूप से पहले से मौजूद भौतिक विज्ञानों (गणित, खगोल विज्ञान, भौतिकी, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान), द्वारा जबकि बाद के दो में सामाजिक विज्ञानों के आने की अनिवार्यता पर जोर दिया गया। विज्ञान में सिद्धांत और अवलोकन की निर्भरता को देखते हुए और विज्ञानों को इस प्रकार श्रेणीबद्ध करते हुए, कॉम्टे को, आधुनिक तरीके से, विज्ञान का पहला दार्शनिक कहा जा सकता है। उनके अनुसार, भौतिक विज्ञान, आवश्यक रूप से पहले आए थे, मानवता द्वारा सही ढंग से अपनी कोशिशों को चुनौतीपूर्वक व जटिल ढंग से राह दिखाने से भी पहले। इसलिए, प्रत्यक्षवाद के उनके दृष्टिकोण ने सामाजिक तरीकों के लक्ष्य परिभाषित करने का काम किया।

ऑगस्ट कॉम्टे का प्रत्यक्षवाद में योगदान

प्रत्यक्षवाद का जन्मदाता कॉम्टे को माना जाता है। कॉम्टे प्रत्यक्षवाद को 'विज्ञानवाद' के नाम से पुकारते हैं और उनका विचार है कि समस्त ब्रह्मांड अपरिवर्तनीय प्राकृतिक नियमों के माध्यम से व्यवस्थित और निर्देशित होता है। यदि हमें इन अपरिवर्तनीय प्राकृतिक नियमों को समझना है तो हम धार्मिक अथवा तात्विक आधारों पर नहीं, बल्कि विज्ञान की विधियों के माध्यम से इसे समझ सकते हैं। वैज्ञानिक विधियां निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग और वर्गीकरण की एक व्यवस्थित कार्यप्रणाली होती हैं। इस तरह से निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग और वर्गीकरण पर आधारित वैज्ञानिक विधियों के माध्यम से समझना और समग्र ज्ञान की प्राप्ति करना प्रत्यक्षवाद होता है।

कॉम्टे के अनुसार अनुभव, निरीक्षण, प्रयोग और वर्गीकरण की व्यवस्थित कार्यप्रणाली के माध्यम से केवल प्राकृतिक घटनाओं का अध्ययन ही संभव नहीं है, समाज का भी अध्ययन संभव है, क्योंकि समाज भी तो इसी प्रकृति का एक अंग है। जिस तरह से प्राकृतिक घटनाएं कुछ निश्चित नियमों पर आधारित होती हैं, उसी प्रकार प्रकृति के अंग के रूप में सामाजिक घटनाएं भी कुछ निश्चित नियमों के तहत घटित होती हैं। इस तरह से सामाजिक घटनाएं किस प्रकार घटित होती हैं अथवा उनका क्या क्रम और गति होती है, इसका अध्ययन वास्तविक रूप में निरीक्षण, परीक्षण और वर्गीकरण के माध्यम से संभव है।

प्रत्यक्षवाद स्वयं को धार्मिक और तात्विक विचारों से दूर रखने का प्रयास करता है, क्योंकि इनमें वैज्ञानिक अध्ययन प्रणाली संभव नहीं है। प्रत्यक्षवाद कल्पना अथवा ईश्वर की महिमा के आधार पर नहीं, अपितु निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग तथा वर्गीकरण के आधार पर सामाजिक घटनाओं की व्याख्या प्रस्तुत करता है। यह किसी निरपेक्ष विचार को नहीं मानता है, क्योंकि सामाजिक जीवन में परिवर्तन उसी प्रकार स्वाभाविक है जिस प्रकार प्राकृतिक जगत में स्वाभाविक होता है। प्रत्यक्षवाद में यह माना जाता है कि सामाजिक घटनाओं की क्रियाशीलता कुछ प्राकृतिक नियमों के माध्यम से निर्देशित और नियंत्रित होती है, किसी ईश्वरीय शक्ति अथवा इच्छा के माध्यम से नहीं।

कहा जा सकता है कि प्रत्यक्षवादी प्रणाली के आधार पर किये गये अध्ययन तथा उसके द्वारा प्राप्त निष्कर्ष वैज्ञानिक एवं विश्वसनीय होते हैं। यही कारण है कि धार्मिक और तात्विक विचार को वैज्ञानिक अधिक महत्व नहीं देते हैं। कॉम्टे के अनुसार उनका अध्ययन केवल सामाजिक क्षेत्र तक सिमटकर रह गया है और यदि हम सामाजिक अध्ययन को वैज्ञानिक स्तर पर लाना चाहते हैं तथा समाजशास्त्र का विज्ञान बनाना चाहते हैं तो इसके क्षेत्र से धार्मिक और तात्विक विचार को निकालकर प्रत्यक्षवादी अध्ययन विधि को लागू करना होगा। कॉम्टे के अनुसार प्रत्यक्षवादी अध्ययन प्रणाली के अंतर्गत अग्रलिखित क्रम से अध्ययन की प्रक्रिया को अपनाया जाता है–

- सबसे पहले अध्ययन–विषय का चुनाव किया जाता है,
- अवलोकन अथवा निरीक्षण के माध्यम से उस विषय से संबंधित प्रत्यक्ष होने वाले तथ्यों का संग्रह किया जाता है,
- इन संग्रहित तथ्यों का विश्लेषण करके सामान्य विशेषताओं के आधार पर इनका वर्गीकरण किया जाता है, तथा
- अंत में विषय से संबंधित कोई निष्कर्ष निकाला जाता है।

टिप्पणी

कॉम्टे का मानना है कि जिन घटनाओं को हम प्रत्यक्ष तौर पर देख सकते हैं अथवा निरीक्षण कर सकते हैं, प्रत्यक्षवाद वहीं तक सीमित है। इस प्रकार प्रत्यक्षवाद अज्ञेय या अज्ञात के पीछे बिना किसी वास्तविक आधार के ऐसे ही नहीं भागता है। प्रत्यक्षवादी एक समय में उसी सीमा तक देख पाता है या केवल उन्हीं घटनाओं का अध्ययन करता है जहां तक उस घटना से संबंधित तथ्यों का वास्तविक निरीक्षण और परीक्षण संभव हो और उस सीमा तक सभी घटनाएं और विषय स्पष्ट हो जाते हैं तो उससे आगे कुछ और प्रयास नहीं किया जाता है, जिससे आगे किसी स्तर पर काल्पनिक चिंतन का सहारा लिया जाए।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम कॉम्टे के प्रत्यक्षवाद की प्रमुख विशेषताओं को निम्न प्रकार से समझ सकते हैं–

(1) प्रत्यक्षवाद का दृष्टिकोण वैज्ञानिक है तथा वह स्वयं विज्ञान है। प्रत्यक्षवाद स्व–निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग को आधार मानकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अपना अध्ययन पूरा करता है।

(2) प्रत्यक्षवाद मानता है कि जिस तरह से प्राकृतिक घटनाएं अचानक नहीं होती हैं, अपितु निश्चित नियमों के अनुसार घटित होती हैं, उसी तरह सामाजिक घटनाएं भी अचानक घटित नहीं होती हैं। प्रकृति का एक भाग होने के चलते समाज में सामाजिक घटनाएं भी कुछ निश्चित नियमों के अनुसार घटित होती हैं एवं वास्तविक निरीक्षण, परीक्षण और प्रयोग के माध्यम से इन नियमों की खोज की जा सकती है।

(3) प्रत्यक्षवाद का किसी ऐसी घटना से कोई संबंध नहीं होता जिसे हम प्रत्यक्ष तौर पर देख नहीं सकते हैं अथवा निरीक्षण नहीं कर सकते हैं। यह प्रत्यक्ष–योग्य अथवा वास्तविक रूप में निरीक्षण–योग्य घटनाओं तक ही सीमित होता है। यह अज्ञात और अप्रत्यक्ष के पीछे बिना किसी वास्तविकता के ऐसे ही नहीं दौड़ता है।

(4) प्रत्यक्षवाद स्वयं को धार्मिक और दार्शनिक चिंतन से दूर रखता है। यह अपने को वैज्ञानिक अध्ययन प्रणाली के माध्यम से वास्तविक ज्ञान से संबंधित मानता है। यह किसी भी निरपेक्ष विचार को नहीं मानता है, क्योंकि सामाजिक जीवन में परिवर्तन स्वाभाविक है।

(5) प्रत्यक्षवाद केवल 'विज्ञान' ही नहीं है, अपितु 'धर्म' भी है तथा यह मानवता का धर्म है। प्रत्यक्षवादी भावना से प्रेरित मानवता का धर्म आदर्शों पर आधारित एक नये सामाजिक व्यवस्था की स्थापना को अपना प्रमुख लक्ष्य मानता है। प्रत्यक्षवाद से वास्तविक ज्ञान संभव है और यह वास्तविक ज्ञान समाज में बौद्धिक तथा नैतिक एकता को पनपने में सहायता करता है। इस तरह की एकता से मानव कल्याण सरलता से हो सकता है। इस दृष्टि से प्रत्यक्षवाद मानवता का धर्म है, क्योंकि धर्म का भी अंतिम उद्देश्य मानव का कल्याण ही होता है।

(6) प्रत्यक्षवाद एक उपयोगितावादी विज्ञान है तथा इस रूप में विश्वास करता है कि प्रत्यक्षवाद के द्वारा प्राप्त वास्तविक ज्ञान को समाज के पुनर्निर्माण के साधन के तौर पर प्रयोग किया जा सकता है।

(7) प्रत्यक्षवाद वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ वैज्ञानिक कार्य–प्रणाली से भी संबंधित है। इसके अंतर्गत घटनाओं का अध्ययन मनमाने ढंग से नहीं किया जाता, बल्कि इसके लिए समुचित वैज्ञानिक पद्धति को अपनाया जाता है। इस वैज्ञानिक कार्यप्रणाली के तहत सबसे पहले अध्ययन के विषय का चुनाव किया जाता है, फिर उस विषय के तथ्यों का वास्तविक निरीक्षण के आधार पर संग्रहण किया जाता है, संग्रहित तथ्यों का पुनःपरीक्षण और वर्गीकरण किया जाता है तथा सबसे अंत में कोई निष्कर्ष निकाला जाता है।

इस प्रकार प्रत्यक्षवाद का उद्देश्य धार्मिक एवं तात्विक चिंतन अथवा अवधारणाओं से मानव मस्तिष्क को मुक्त कर सामाजिक अध्ययन और अनुसंधान को वैज्ञानिक स्तर पर लाना है। यह प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धति को सामाजिक अध्ययनों में प्रयोग करके सामाजिक विज्ञान को उतना ही वास्तविक बनाने का प्रयत्न करता है जितना प्राकृतिक विज्ञान है। कहा जा सकता है कि प्रत्यक्षवाद वह वैज्ञानिक साधन है जिसके माध्यम से मानव का बौद्धिक विकास संभव और आसान होता है। बिना बौद्धिक विकास के सामाजिक विकास असंभव है। इस प्रकार प्रत्यक्षवाद सामाजिक प्रगति में सहायक हो सकता है, क्योंकि सामाजिक तथ्यों के निरीक्षण, परीक्षण और वर्गीकरण के व्यवस्थित कार्यविधि द्वारा सामाजिक प्रगति को संभव बनाया जा सकता है और सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए भी आधार तैयार किया जा सकता है।

मानवता का धर्म

कॉम्टे का उद्देश्य अपने अध्ययन को केवल वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करना भर नहीं था, बल्कि बौद्धिक और नैतिक एकता के आधार पर समाज का संगठन करना भी था। इस उद्देश्य की प्राप्ति ज्ञान के बिना संभव नहीं होती है तथा ज्ञान की प्राप्ति प्रत्यक्षवादी सिद्धांतों के आधार पर ही हो सकती है। प्रत्यक्षवादी विधि से जिस ज्ञान की प्राप्ति होती है वह वास्तविक ज्ञान होगा तथा उसी के आधार पर संपूर्ण मानवता एक सूत्र में बंध जाएगी। इस तरह से प्रत्यक्षवाद केवल एक विज्ञान ही नहीं है, बल्कि यह मानवता के लिए एक धर्म भी है। धर्म का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य जनता के सामने कुछ नैतिक नियमों को प्रस्तुत करना है जिसके आधार पर समाज के सदस्य एकता के सूत्र में बंध जाएं तथा समाज में नैतिक एकता स्थापित हो सके। यह नैतिक विकास तब तक असंभव है जब तक जनता का बौद्धिक स्तर उच्च नहीं हो और बौद्धिक विकास के लिए ज्ञान की बढ़ोत्तरी प्रत्यक्षवाद के आधार पर ही संभव है। इस प्रकार प्रत्यक्षवाद लोगों के ज्ञान में वृद्धि करके समाज में नैतिक एकता लाने में सहायता करता है। इस दृष्टि से प्रत्यक्षवाद मानव कल्याण का एक मौलिक कारक है। वास्तविकता में धर्म का अंतिम लक्ष्य भी मानव का कल्याण ही है। प्रत्यक्षवाद मानवता का एक ऐसा धर्म है जो अपना संबंध अलौकिक शक्ति से उतना नहीं जोड़ता जितना बौद्धिक तथा नैतिक एकता के आधार पर सामाजिक संगठन और प्रगति से जोड़ता है। इसी आधार पर कॉम्टे ने स्पष्ट किया है कि प्रत्यक्षवाद वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण है जिसका उद्देश्य संपूर्ण मानव समाज अथवा राष्ट्रों का भौतिक, बौद्धिक तथा नैतिक कल्याण करना है, जिसकी प्राप्ति विशिष्ट निर्देश और शिक्षा के माध्यम से संभव है। इस उद्देश्य के लिए कॉम्टे ने प्रत्यक्षवाद को तीन आयामों में वर्गीकृत किया है–

- **विज्ञानों का दर्शन**– विज्ञानों के दर्शन का मूल तत्व है कि मानव को अपनी उन्नति के लिए परिश्रम और प्रयास पर विश्वास करना चाहिए। इसके तहत गणित, खगोलविज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र, जैसे विषय आते हैं।
- **वैज्ञानिक धर्म तथा नीतिशास्त्र**– प्रत्यक्षवाद का संबंध किसी अलौकिक शक्ति से नहीं होता है। यह संपूर्ण मानवता का धर्म है। इसके नैतिक नियम दूसरों की सेवा हेतु अधिकाधिक उपयुक्त होने के लिए शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक विकास को समाज का लक्ष्य मानते हैं।
- **प्रत्यक्ष राजनीति**– प्रत्यक्ष राजनीति का लक्ष्य युद्ध को खत्म करके यूरोप के राज्यों को मिलाकर मित्रराष्ट्र का निर्माण करना है।

समाज को उपर्युक्त आदर्शों के अनुसार परिवर्तित होने के लिए प्रत्यक्षवाद किसी भी प्रकार की हिंसक प्रणाली का बहिष्कार करता है तथा समस्त मानवता के लिए प्रेम के सिद्धांत के आधार पर प्रगति का उद्देश्य निर्धारित करता है। इस प्रकार से कॉम्टे ने अपने प्रत्यक्षवादी चिंतन में धार्मिक अथवा नैतिक पक्ष को वैज्ञानिक पक्ष से अधिक महत्व प्रदान किया है। उनके दृष्टिकोण से इस परिवर्तन को उनके आलोचकों ने 'पतन' के तौर पर देखा है। लेकिन, कॉम्टे का मानना था कि उनका प्रत्यक्षवाद धर्म तथा विज्ञान दोनों है एवं मानव की प्रगति के लिए इनका अलग होना सही नहीं होगा, बल्कि इनके समन्वय से ही मानव का विकास हो सकेगा।

1.4.2 दुर्खीम का प्रत्यक्षवाद

समाजशास्त्र के आधुनिक शैक्षिक विषय की शुरुआत इमाइल दुर्खीम के कार्य (1858–1917) से हुई। जहां दुर्खीम द्वारा कॉम्टे के ज्यादातर दर्शन को नकारा गया था वहीं उन्होंने कॉम्टे के तरीकों को न सिर्फ बरकरार रखा बल्कि उनमें सुधार भी लाए, यह मानते हुए कि मानव गतिविधियों के क्षेत्र में, सामाजिक विज्ञान, प्राकृतिक विज्ञानों की तार्किक शृंखला है और इस बात पर जोर देते हुए कि ये वही वस्तुनिष्ठता, बुद्धिवाद, और कार्य–कारण का दृष्टिकोण बरकरार रखेंगे। 1895 में पहला यूरोपीय समाजशास्त्र विभाग दुर्खीम द्वारा स्थापित किया गया। इसमें इन्होंने रूल्स ऑफ सोशिऑलोजी मेथड (1895) प्रकाशित किया। अपने कार्य के संदर्भ में इनका कहना है, "हमारा मुख्य लक्ष्य है वैज्ञानिक तार्किकता का मानव व्यवहार तक विस्तार करना.... जिसे हम प्रत्यक्षवाद कहते हैं, वह दरअसल इस तार्किकता का परिणाम है।"

दुर्खीम का प्रत्यक्षवाद में योगदान

दुर्खीम के समाजशास्त्र की आधारभूत विशेषता इसके दृढ़ आधार में ठोस एवं ज्ञानमीमांसा का होना है। वस्तुतः फ्रांसीसी समाजशास्त्रियों की बौद्धिक पद्धति समाजशास्त्र को निरंतर प्रयासों द्वारा एक ठोस ज्ञानमीमांसात्मक आधार देना रहा है, (वास्तव में, ज्ञानमीमांसात्मक चिंता उनके शोध के प्रति अभिरुचि का केन्द्र रहा है)। दुर्खीम के समाजशास्त्र में हम दो सामान्य सिद्धान्त देखते हैं– (1) समाजशास्त्र को प्रत्यक्षवाद पर आधारित भौतिक–प्राकृतिक विज्ञान के समान पद्धति के जैसा विज्ञान होना चाहिए एवं (2) समाज का यह प्रत्यक्षवादी विज्ञान दर्शन और मनोविज्ञान के विपरीत है।

समाजशास्त्र की स्थापना करने वालों में एक ऑगस्ट कॉम्टे के प्रत्यक्षवाद को दुर्खीम के द्वारा 'विज्ञान' के एक नमूने के रूप में लिया गया। यह ध्यान रखना अनिवार्य है कि दुर्खीम के समाजशास्त्र पर ऑगस्ट कॉम्टे का गहरा प्रभाव है। ऑगस्ट कॉम्टे के विचारों ने सभी विज्ञानों की सकारात्मक प्रगति का, जिसका अंतिम पड़ाव समाजशास्त्र होगा, बचाव किया (जिसे उन्होंने आरंभ में सामाजिक भौतिक का नाम दिया) यह सबसे अधिक परिष्कृत सकारात्मक विज्ञान था क्योंकि इसने पूर्व के सभी विज्ञानों के योगदानों को अध्ययन की विषयवस्तु में एकीकृत किया।

दुर्खीम विज्ञान को विचारों या अवधारणाओं से नहीं, बल्कि वस्तु से संबद्ध मानते हैं। इसलिए, उनका आरंभिक कार्य संवेदनशील है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि वस्तुनिष्ठ रूप में विज्ञान की शुरुआत अवधारणा के रूप में नहीं हुई, बल्कि संवेदना के रूप में हुई। इसे संवेदनशील तथ्यों के तत्वों से सीधे तौर पर आरंभिक परिभाषा में लेना चाहिए। निश्चय ही यह सकारात्मकता उनके सर्वाधिक विख्यात एवं विवादास्पद ज्ञानमीमांसात्मक नियमों के प्रतिपादन की ओर ले जाती हैः उसे सामाजिक तथ्यों को वस्तु के रूप में विचारा जाना चाहिए। जब फ्रांसीसी समाजशास्त्री 'वस्तु' अभिव्यक्ति का प्रयोग करते हैं तो वे इसे पूर्णतः वास्तविक रूप में करते हैं : 'अवलोकन पर आरोपित करने की बजाय, वह सब कुछ जो दिया गया है, जो प्रस्तावित है, निश्चय ही, यह एक वस्तु है। घटना को वस्तु के जैसा समझना, उसके तथ्य के गुणों को समझना, जिससे विज्ञान का आरंभिक बिंदु बनता है।' दुर्खीम के लिए वस्तु कोई सामग्री के अर्थ में नहीं है जैसा सामान्य रूप से पहले कहा गया था। वस्तुतः, 'वस्तु' की अभिव्यक्ति का प्रयोग 'विचार' के संभावित सशक्त विरोध में किया गया। इसका कारण यह नहीं है कि समाजशास्त्र को भौतिक सामग्री के साथ संबंध रखना चाहिए, बल्कि समाजशास्त्र को पूर्वाग्रहित विचारों से दूर रहना है। अतः इसे समाजशास्त्रीय आदर्शों से दूर रहने की आवश्यकता है। जिससे पहले के विचारों के विश्लेषण को रोका जाएगा जिन्हें शोध के आरंभिक बिंदु के रूप में लिया जाता है तथा जिसके अनुसार आवश्यकता को वास्तविकता से समायोजित किया जाता है। 'वस्तु' की अभिव्यक्ति में शब्दार्थ की संशयात्मकता के बावजूद दुर्खीम ने इसके दो उद्देश्यों का दावा किया–

1. विज्ञान के भौतिक–प्राकृतिक सकारात्मक प्रतिमानों के अनुसार, समाजशास्त्र का एक स्पष्ट उद्देश्य एवं वास्तविक वैज्ञानिक विशेषता सुनिश्चित करता है। भौतिक विज्ञान या खगोलशास्त्र की तरह समाजशास्त्र भी अपने शोधकर्ताओं के लिए उंगलियों पर गिने जाने लायक स्पष्ट सीमित तथ्य के साथ विषय सामग्री की भांति होता है। इसलिए समाजशास्त्र भ्रम या काल्पनिक आवेशों के साथ व्यवहार नहीं करता है।
2. समाजशास्त्रियों के द्वारा 'वस्तु' को अधिक स्पष्ट अर्थों में इस तथ्य के द्वारा – जो सामाजिक एवं ऐतिहासिक रूप से निर्मित हैं, आरोपित किया गया है। निश्चय ही, सामाजिक वास्तविकता संरचित है, यद्यपि यह मूर्त हो जाती है। यहां 'वस्तु' का सही अर्थ है वह सामाजिक तथ्य जो मानव निर्मित है तथा यह उसी रूप में हमारे समक्ष आता है तथा समाजशास्त्री इसकी परख करते हैं और इसे परिभाषित एवं विश्लेषित करते हैं। महत्वपूर्ण यह है कि दुर्खीम के अनुसार, अन्य विज्ञान की तरह समाजशास्त्र अवलोकन पर आधारित है। इसलिए, सामाजिक तथ्यों को वस्तु के जैसा देखा जाता है एवं वैज्ञानिक अवलोकन द्वारा

दोगुनी विशेषता सुस्पष्ट होती है। वे व्यक्ति के बाहर होते हैं एवं उनके लिए अनिवार्य होते हैं।

दुर्खीम का उद्देश्य दर्शनशास्त्र को संरक्षित रखने के लिए इसकी शिक्षा माध्यमिक स्तर पर करने की थी। यद्यपि, इसके लिए वे दर्शनशास्त्र को मात्र अमूर्त साहित्य के रूप में नहीं रखना चाहते थे। मात्र ऐसी अभिव्यक्ति जो कलाकार के इस क्षमता पर आधारित हो, जिस प्रकार केवल आनंद पाने के लिए न कि किसी कारण को संतुष्ट करने के लिए, जिसमें केवल वह सौन्दर्य या कलात्मक प्रभाव दर्शाता है न कि किसी अभिव्यक्ति को, वह एक दृश्य और इसके विभिन्न रूपों के सम्मिश्रण से करता है। वे दर्शन को अधिक वैज्ञानिक बनाना चाहते थे जो आध्यात्मिक गणनाओं से परे हो। वस्तुतः, तत्वमीमांसा की अस्वीकृति ही दुर्खीम के ज्ञानमीमांसा के मार्गदर्शक सिद्धान्तों में एक था। दर्शन के प्रति उनका मतभेद का उद्देश्य समाजशास्त्र को एक अस्पष्ट सामाजिक दर्शन से अधिक बनाना था, अर्थात् सामाजिक तथ्यों के अध्ययन को अधिक सकारात्मक निरंतरता देना था।

उनके द्वारा अलौकिक या आध्यात्मिक दृष्टिकोण से होने वाली समस्या को अस्वीकार करना एक सामाजिक तथ्य था जो नैतिक आधार में अपनी भूमिका अदा करता था, जैसे कैंट ने ईश्वर को व्यवहारिक कारणों के लिए स्वयंसिद्ध माना था।

व्यक्ति सामाजिक तथ्यों को बाहरी एवं आवश्यक समझता है क्योंकि इसका मूल उनके अधिकार में नहीं होता है बल्कि यह समाज की अद्वितीय वास्तविकता होती है। हालांकि दुर्खीम इस बात से इनकार नहीं करते हैं कि समाज का निर्माण लोगों के द्वारा होता है। वस्तुतः, समाज की बुनियाद व्यक्ति के रूप में होती है, लेकिन यह उन्हीं तक सीमित नहीं है। 'यदि यह एक खास तरह से कहना संभव है कि सामूहिक प्रतिनिधित्व व्यक्तिगत विवेक के बाहर है, यह इसलिए है क्योंकि यह अलग व्यक्ति से प्राप्त नहीं होता है बल्कि उनके समूह से प्राप्त होता है, जो बहुत भिन्न होता है। अपने शोध का उदाहरण उन्होंने रासायनिक संश्लेषण से किया है। जिसमें यह अपने संघटक तत्वों में नहीं सीमित हो जाता है, बल्कि बने पदार्थ को नया गुण प्रदान करता है। यह स्पष्ट है कि समाजशास्त्र में गेब्रिएल टार्ड से मूलभूत विरोध है, जिन्होंने समाजशास्त्र को व्यक्तिगत विवेक एवं सामूहिक व्यवहार को अनुकरण के द्वारा सामाजिक संक्रमण के अध्ययन तक सीमित कर दिया। दुर्खीम का उद्देश्य था कि समाजशास्त्र की मनोविज्ञान से अलग एक खास अध्ययन सामग्री होना चाहिए तथा सामाजिक वास्तविकता के निर्माता के रूप में जिसका अध्ययन समाजशास्त्र करता है और इसलिए उन्होंने सामाजिक सिद्धान्तों को अद्वितीय सत्यता के रूप में आरंभ किया।

1.4.3 कार्ल पॉपर का प्रत्यक्षवाद

प्रसिद्ध दार्शनिक कार्ल रायमुंड पॉपर (1902–1994) का जन्म वियना (आस्ट्रिया) में हुआ था, किंतु बाद में वे ब्रिटेन में स्थायी रूप से बस गए। वे सन् 1945 में 'लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स' में आ गए। यहां वे 1969 में सेवानवृत्ति तक तर्कशास्त्र और वैज्ञानिक विधि के आचार्य रहे। पॉपर के अध्ययन–अनुसंधान के प्रमुख विषय सामाजिक दर्शनशास्त्र और विज्ञान के दर्शन रहे हैं। सत्य के उद्घाटन और प्रस्थापना के लिए विज्ञान का प्रयोग कैसे किया जाना चाहिए, विज्ञान के दर्शन से जुड़े इस विषय में उन्होंने अपनी प्रसिद्धि 'मिथ्याकरणवाद' की अवधारणा प्रस्तुत की है। इस अवधारणा के

अनुसार, विज्ञान का प्रमुख लक्ष्य प्राक्कल्पनाओं की रक्षा करना नहीं अपितु उनका खंडन करना है। विचारधारा (आइडिऑलॉजी) के विपरीत, विज्ञान की अंतिम कसौटी 'मिथ्याकरण' है। उन्होंने अपने ये विचार 'वैज्ञानिक अन्वेषण के तर्क' (1934) नामक अपनी प्रसिद्ध कृति में व्यक्त किए और इनका विस्तृत विवेचन 'अनुमान और खंडन' (1963) नामक ग्रंथ में किया है।

पॉपर ने अपने ग्रंथों में वैज्ञानिक ज्ञान के स्वरूप के बारे में तार्किक प्रत्यक्षवादियों के इस विचार का खंडन किया है कि समस्त ज्ञान तात्कालिक अनुभव पर आश्रित होता है तथा वैज्ञानिक ज्ञान की कसौटी उसके सत्यापन किए जाने की क्षमता है। यही कसौटी विज्ञान को तत्वमीमांसा या पराभौतिकी से अलग–थलग करती है। विज्ञान और वैज्ञानिक ज्ञान की इन मान्यताओं के विपरीत, पॉपर ने कहा कि "वैज्ञानिक ज्ञान की कसौटी उसकी सत्यापनशीलता नहीं है, अपितु उसकी 'मिथ्यापनशीलता' है।" अतः 'पराभौतिकीय ज्ञान अर्थहीन नहीं होता, वह बहुधा विज्ञान का पूर्व संकेत देता है।' इसी प्रकार, पॉपर ने तार्किक प्रत्यक्षवादियों की 'आगमन पद्धति' अर्थात 'विशिष्ट से सामान्य की ओर' से भी अपनी असहमति प्रकट करते हुए 'निगमन पद्धति; अर्थात 'सामान्य से विशिष्ट की ओर' का समर्थन किया है। पॉपर का इस संबंध में तर्क है कि वैज्ञानिक अन्वेषण शुद्ध प्रेक्षण–अवलोकन से प्रारंभ नहीं किया जा सकता, बल्कि स्वयं प्रेक्षण–अवलोकन किन्हीं सैद्धांतिक पूर्व–मान्यताओं से किसी न किसी रूप में निर्देशित होता है, अर्थात हमारा प्रेक्षण चयनात्मक होता है। 'निगमन पद्धति' का समर्थन करते हुए पॉपर ने कहा कि यदि किसी विषय पर हमारे समक्ष दो प्राक्कल्पनाएं हों तो हमें उस प्राक्कल्पना को परीक्षण के लिए चुनना चाहिए जिसके 'मिथ्यापन' की संभावना अधिक हो ताकि उसका उत्तरोत्तर संशोधन करते हुए हम सत्य के निकट पहुंच सकें। पॉपर ने यथार्थवाद और 'पद्धतिवादी व्यक्तिवाद' का भी समर्थन किया है।

कार्ल पॉपर का प्रत्यक्षवाद में योगदान

पॉपर के अनुसार, समाजों का संगठन दार्शनिक तर्क–वितर्क की भांति होना चाहिए, उनके बारे में प्रश्न खड़े किए जाने और अनुमान लगाए जाने की गुंजाइश होनी चाहिए। सामाजिक सुधार और सामाजिक पुनर्निर्माण के बारे में पॉपर की यह मान्यता रही है कि सामाजिक सुधार विशाल आधार पर नियोजित सामाजिक परिवर्तनों द्वारा नहीं किए जा सकते, अपितु सामाजिक सुधार टुकड़ों–टुकड़ों में छोटे आधार पर ही संभव है। चूंकि मानवीय ज्ञान हमेशा अपूर्ण होता है, अतः किसी भी मानवीय क्रिया के ऐसे दुष्परिणामों का खतरा बना रहता है जिसका हमें पहले से कोई अनुमान नहीं होता।

पॉपर के अनुसार, विज्ञान और स्वतंत्रता दोनों का ऐसे समाज में विकास होता है जो मुक्त या खुला समाज हो और जिसमें नये विचारों को प्रश्रय दिया जाता हो। पॉपर ने प्रामाणिक नियमों और ऐतिहासिक प्रवृत्तियों में अंतर बताते हुए कहा है कि ऐसा कोई नियम नहीं हो सकता जो संपूर्ण ऐतिहासिक प्रक्रिया की व्याख्या कर सकता हो क्योंकि प्रत्येक ऐतिहासिक परिवर्तन अपने आप में एक अनुपम एवं विशिष्ट घटना होती है। तथाकथित ऐतिहासिक नियम अधिकाधिक किसी ऐतिहासिक प्रवृत्ति का संकेत मात्र देते हैं, वे सही अर्थ में प्रामाणिक नियम नहीं होते।

कार्ल पॉपर के योगदान को निम्न बिंदुओं द्वारा समझा जा सकता है–

- सिद्धांत वही है जो अपनी त्रुटियों को जांचने के बाद त्याग देता है।

टिप्पणी

- पुष्टिकरण के माध्यम से हम सिद्धांत का सत्यापन कर सकते हैं।
- जब भी कहीं संदेह होता है तो उसकी जांच की जाती है।
- सिद्धांत के जो भी अनुगामी होते हैं वह झूठ को स्वीकार नहीं करता और इसलिए वह चलता जाता है।
- जिसे खंडन नहीं किया जा सकता है वह कल्पना ही विज्ञान नहीं।
- एक सच्चा सिद्धांत अपनी सच्चाई की बार–बार परख करता है।
- सत्यापन करने का अर्थ यही है कि उसको झूठा साबित नहीं किया जा सकता।
- कार्ल पॉपर का मानना था कि वैज्ञानिक ज्ञान अंतिम है – इस समय हम सबसे अच्छा कर सकते हैं।
- पॉपर को मिथ्याकरण सिद्धांत के साथ प्रेरण को प्रतिस्थापित करके, वैज्ञानिक पद्धति के शास्त्रीय प्रत्यक्षवादी खाते का खंडन करने के अपने प्रयास के लिए जाना जाता है।
- कार्ल पॉपर द्वारा प्रस्तावित मिथ्याकरण सिद्धांत, विज्ञान को गैर–विज्ञान से अलग करने का एक तरीका है। यह सुझाव देता है कि किसी सिद्धांत को वैज्ञानिक माने जाने के लिए उसका परीक्षण किया जाना चाहिए और अनुमानतः गलत साबित होना चाहिए।

  उदाहरण के लिए, "सभी हंस सफेद होते हैं" की परिकल्पना को काले हंस को देखकर गलत साबित किया जा सकता है।
- पॉपर के लिए, विज्ञान को सैद्धांतिक परिकल्पनाओं का लगातार समर्थन करने के प्रयास के बजाय एक सिद्धांत का खंडन करने का प्रयास करना चाहिए।

पॉपर आइंस्टीन के कार्य से प्रेरित थे, और उनके विचार वैज्ञानिकों को सही लगे। उन्हें अक्सर वैज्ञानिकों का तत्वज्ञानी कहा जाता है।

• मिथ्याकरण से सत्य तक पहुंचना

कार्ल पॉपर के अध्ययन में उन सिद्धांतों के लिए मिथ्याकरण (Flasifiability) तथा पुष्टिकरण (Corroboration) शब्दों का प्रयोग किया गया है, जो सिर्फ प्रत्यक्ष होने के आधार पर अनुमोदित होता है। यह जो गलत साबित हो जाने का परीक्षण/अवलोकन है वहीं विज्ञान तथा विज्ञान के बीच की बारीक सूत है। वास्तव में वह सिद्धांत वैज्ञानिक होने के कारण झूठा या गलत साबित हो सकता है। अर्थात जो सिद्धांत मिथ्याकरण के योग्य है वही वेज्ञानिक है और जिस सिद्धांत को चालाकी से अनुमोदित कर दिया जाता है और उसे औचित्यपूर्ण ठहरा दिया जाता है वह छद्म विज्ञान है। बार–बार परीक्षण की परीक्षा में सफल होने का अर्थ यही है कि उस सिद्धांत में त्रुटि की कमी है और जितनी ही उस सिद्धांत में त्रुटि की कमी होगी वह सिद्धांत सत्य के करीब पहुंचता है।

कार्ल पॉपर सैद्धांतिक मतों का विरोध करते हुए यह कहते हैं कि जो विषय गणित से प्रमाणित नहीं किए जा सकते हैं वह केवल वस्तुनिष्ठ प्रत्यक्ष पर आधारित होते हैं, इन्हें विज्ञान नहीं कहा जा सकता है। स्वतः सिद्ध सिद्धांतों में सदा ही मिथ्या होने की संभावना बनी होती है, जो इसे और भी सत्य के करीब पहुंचने के लिए प्रमाण

खोजने में उत्साह देती है, इसलिए इसे वास्तव के समकक्ष कहा जाता है। तथाकथित परिभाषा को पुष्ट करने के लिए अनौपचारिक प्राक्कल्पना एवं संशयपूर्ण तथ्यों का संग्रहण किया जाता है। जो विज्ञान के सिद्धांत नहीं हैं, बल्कि सत्य तक पहुंचने के लिए एक चुनौती है।

ज्ञान – मिथ्याकरण का सिद्धांत

पॉपर का कहना है कि कोई भी ज्ञान तभी विज्ञान या प्रभावित ज्ञान होता है जब उनके नियमों, सिद्धांतों को खुद के अपने बनाए हुए नियमों को चुनौती देने या गलत साबित करने की संभावना बनी रहती है। ज्ञान की वह श्रेणी जिसमें कि उस ज्ञान से संबंधित नियमों व सिद्धांतों की चुनौती बनी रहती है, वही ज्ञान कहलाता है और जो ज्ञान अपने नियमों को चुनौती देने की इजाजत नहीं देता है वो विज्ञान की श्रेणी में नहीं आता है, जैसे धर्म। धर्म में हमें चुनौती देने की इजाजत नहीं होती है तो इसे हम विज्ञान नहीं मान सकते हैं। क्योंकि इसमें हमें चुनौती देने की संभावना नहीं होती इसलिए उसे मिथ्या करने की संभावना भी नहीं होती और यही मिथ्याकरण का सिद्धांत है।

वही ज्ञान सत्य होता है जो मिथ्याकरण की प्रक्रिया से गुजरता है यानी अपने ही द्वारा स्थापित किए गए नियमों को चुनौती देता है, सार्थकता की जांच करता है और उसको नकारने की चेष्टा करता है। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि वह उसे गलत साबित नहीं कर रहा बल्कि गलत साबित करने की चेष्टा कर रहा है।

मिथ्याकरण विज्ञान को चुनौती देने और उसको गलत साबित करने के लिए तमाम नियम लगाने के बाद भी अगर वह सही साबित हो रहा है तो वो विज्ञान है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए हम जिस प्रक्रिया को अपनाते हैं और प्रक्रिया के दौरान किसी चीज की जांच करते हुए अगर वो मिथ्या साबित हो रहा है तो इसका अर्थ है कि हम सत्य के निकट पहुंच रहे हैं। पॉपर ने कोपेन हेगन के क्वांटम मैकिनिक्स के बारे में भी कहा कि पदार्थ की जो अंतिम अवस्था है वो भी सत्य के अवलोकन के आधार पर बदल जाएगी।

मिथ्याकरण आगमन की समस्या

दर्शन के लिए उनका योगदान आगमन की समस्या का हल है। वह बताते हैं कि यदि सूर्य उदय होता है तो उसे साबित करने का और तरीका नहीं है तो यह सिद्धांत बनाना संभव है कि प्रत्येक दिन सूर्य उदय होता है और यदि किसी निश्चित दिन से सूर्य उदय नहीं होता तो यह सिद्धांत गलत होगा और फिर इसे किसी भिन्न सिद्धांत से परिवर्तित किया जाएगा। तब तक इस अवधारणा को खंडित करने की जरूरत नहीं होगी जब तक यह सिद्धांत सत्य है। पॉपर के अनुसार और जटिल अवधारणा बनाना कि किसी निश्चित दिन को सूर्य उदय होगा उचित नहीं है लेकिन हमें अतिरिक्त शर्तों के साथ समरूप कथनों को कहने से रोकना होगा। पॉपर ने पाया कि यदि ज्ञात तथ्य जिसे कोई तार्किक रूप से वरीयता देता है उसे सबसे कम या सबसे आसानी से मिथ्याकरण किया जा सकता है।

दार्शनिक चिंतन में कार्ल पॉपर का हस्तक्षेप

कार्ल पॉपर एक ऐसे बुद्धिजीवी दार्शनिक हैं, जिनका पूरा लेखन अपने प्रश्नवाची तेवरों के लिए जाना जाता है। उनकी नजर से देखने पर यह संसार हमारे लिए पहले जैसा

ही नहीं रह जाता है। उन्होंने ज्ञानात्मक विमर्श को अपने ढंग से विश्लेषित किया। वैज्ञानिकता की पहचान और परख को नए दृष्टिकोण से देखा। देखने का उनका अंदाज इतना निराला था कि उन्होंने अपने जमाने के कई ऐसे बेहद प्रतिष्ठित सिद्धांतों की बुनियादें हिला दी थीं जो वैज्ञानिक होने का दम भरते थे। पॉपर की निगाह ने पहली बार पकड़ा कि कुछ चीजें इस सृष्टि में कुदरती ढंग से घटती हैं, लेकिन वे मानस में बसी बौद्धिक रूढ़ियों या स्वयं–स्वीकृतियों के कारण एक औसत विचार होने के बावजूद किसी चर्चित दर्शन या सिद्धांत के अनुरूप घटती दिखाई देती हैं। दार्शनिक चिंतन के क्षेत्र में कार्ल पॉपर का यह एक जबरदस्त हस्तक्षेप था।

वे दर्शन में अपने 'आलोचनात्मक तर्कवाद' तथा विज्ञान में 'अवधारणात्मक–निगमनात्मक' विधि के लिए जाने जाते हैं। उनका सबसे चर्चित काम वैज्ञानिक तथा छद्म वैज्ञानिक स्थापनाओं के बीच एक लक्ष्मण रेखा खींचना था, जिसे Line of Demarcation कहा जाता है।

कार्ल पॉपर निर्देशात्मक है, और वर्णन करता है कि विज्ञान को क्या करना चाहिए (न कि यह वास्तव में कैसे व्यवहार करता है)। पॉपर एक तर्कवादी हैं और उन्होंने तर्क दिया कि विज्ञान के दर्शन में केंद्रीय प्रश्न विज्ञान को गैर–विज्ञान से अलग करना था।

1.4.4 प्रत्यक्षवाद के आलोचक

कार्ल पॉपर द्वारा विकसित दार्शनिक सिद्धांत 'आलोचनात्मक तर्कवाद' में तीन मुख्य दावे शामिल हैं जिन पर वे सारे दार्शनिक सहमत हैं जो इस विशिष्ट दार्शनिक विचारधारा से सहमत हैं। ये इस प्रकार हैं, पहला लगातार गिरावट, यह मान्यता कि हर मनुष्य गिर सकता है, न केवल अपने संज्ञानात्मक अभ्यास में, बल्कि समस्याएं सुलझाने की अपनी कोशिशों में भी; दूसरा, आलोचनात्मक यथार्थवाद, यह मान्यता कि हम सब, सैद्धांतिक रूप से, अपने से अलग असल संबंधों को पहचानने के योग्य हैं, यानी, इनके बारे में सच्चे कथनों तक पहुंचना; और तीसरा, कार्यप्रणालीयुक्त संशोधनवाद, यह मान्यता कि हमारे द्वारा किए गए सारे दावों को, आलोचनात्मक जांच के बाद संशोधित किए जाने की आवश्यकता हो सकती है। इसके अतिरिक्त, सच का समानता सिद्धांत भी है, यह मान्यता कि प्रतिष्ठित तर्क लागू होता है, जो निगमनात्मक तर्क, प्रेरण की अस्वीकृति, समस्या समाधान के हठधर्मिता की अस्वीकृति में सहायता करता है। इसके अलावा, आलोचनात्मक तर्कवाद, परंपरा के महत्व पर जोर देता है, दोनों, वैज्ञानिक अंतर्दृष्टि और सभ्यता के प्रति संदर्भ में, इसके साथ–साथ ज्ञान और समाज जैसी संस्थाओं की प्रासंगिकता के लिए तर्क देते हैं। संयोगवश, आज आलोचनात्मक तर्कवाद के अनेक संस्करण मौजूद हैं, जो विभिन्न भेद प्रदर्शित करते हैं।

पारंपरिक/शास्त्रीय और आलोचनात्मक तर्कवाद

ज्ञान के सिद्धांत में, औचित्य की समस्या को आमतौर पर मुख्य मुद्दा माना जाता है। ज्ञान प्राप्त करने के प्रयास में, हम कुछ असल संबंधों की प्रकृति की सच्चाई जानने की उम्मीद करते हैं। ऐसा करते हुए, इस सच्चाई के संबंध में निश्चितता की खोज करना प्राकृतिक लगता है। हालांकि, यह केवल तभी संभव लगता है जब हम अपने ज्ञान को हर संदेह से दूर रख सकते हैं। अनिवार्य रूप से, हम अपनी अंतर्दृष्टियों का आधार

स्थापित करने की कोशिश कर रहे हैं। इस प्रकार, हम इस सिद्धांत तक पहुंचते हैं जिसे तर्कसंगत विचार की कार्यप्रणाली का सामान्य संकेत माना जा सकता है– व्यक्ति को हमेशा, अपने सारे दावों के लिए पर्याप्त कारण ढूंढने चाहिए। औचित्य की इस समस्या का समाधान है प्रतिष्ठित तर्कवाद, जो आलोचनात्मक तर्कवाद से अलग होता है। औचित्य समस्याएं सुलझाने का प्रतिष्ठित प्रस्ताव, तार्किक कारणों के चलते हार जाता है। ऐसा इसलिए क्योंकि यह एक गतिरोध परिस्थिति की ओर ले जाता है, जिसे मुंचौसियन ट्राइलेमा का नाम दिया जा सकता है। इसके परिणामस्वरूप, हम केवल तीन विकल्पों में से चुनाव कर सकते हैं और इनमें से कोई भी स्वीकृत नहीं है। इनके नाम हैं, अनंत निकासी, जो व्यावहारिक रूप से असंभव है जिस कारण यह एक ठोस आधार और कार्यवाही का अंत प्रदान नहीं करता, जिसके लिए पर्याप्त कारण के सिद्धांत के मनमाने विलंबन की आवश्यकता होगी। स्पष्ट रूप से, प्रतिष्ठित तर्कवाद, औचित्य की समस्या के समाधान का प्रस्ताव लेकर घूम रहा है। बहरहाल, कार्ल पॉपर के आलोचनात्मक तर्कवाद की स्वीकृति पर, समस्या का स्वीकार्य समाधान ढूंढा जा सकता है।

अनुभवजन्य आधार की समस्या

जहां तक वैज्ञानिक ज्ञान के लिए अनुभवजन्य आधार का मामला है, आधुनिक अनुभववाद के कई अन्य प्रतिपादकों की तरह, मनोवैज्ञानिक मामलों से स्पष्टतः अलगाव स्थापित करने हेतु, कार्ल पॉपर द्वारा तथाकथित आधारभूत कथन के अनुसार, इस समस्या को एक प्रकार के दावे के रूप में देखा गया। दूसरे शब्दों में, वो ज्ञान मीमांसा को अनुभवजन्य प्रकृति के विचारों से अलग रखना चाहते थे। हालांकि, इस प्रकार का समस्या समाधान अत्यधिक संदिग्ध है। मनोवैज्ञानिक खोज के रास्ते में, व्याख्यात तथ्यों को संदर्भित किए बिना, जैसेकि बोध के क्षेत्र में परस्पर–संबंध। इस प्रकार के कथनों का पर्याप्त रूप में वर्णन करना संभव नहीं है।

अनुभवजन्य आधार की समस्या, जो अनुभववाद के लिए बहुत महत्वपूर्ण है, पूरी तरह से गायब हो जाती है। पॉल फेयरबेंड ने यह दिखाया है कि बोध में, खोज से प्राप्त अंतर्दृष्टि के मूल कथनों को आलोचनात्मक ढंग से जांचने हेतु प्रयोग किया जा सकता है और इस प्रकार उनकी वैधता पर सवाल उठाया जा सकता है। वो कुछ ऐसे कथनों का अस्तित्व प्रमाणित कर पाए थे जो एक विशिष्ट अवलोकनात्मक परिस्थिति में पूर्ण रूप से भरोसेमंद होते हैं (या कम से कम इस वाक्य जितना भरोसेमंद 'मुझे इस समय दर्द का अहसास हो रहा है', और जिसमें यह खंडन भी शामिल है– यह, जैसाकि उन्होंने सही कहा है, उनके सत्य पर संदेह करने का ठोस कारण प्रदान करता है। कार्ल बुह्लेर (1965) के साथ, हम बोध को चिह्न समझने की ऐसी प्रक्रिया के रूप में समझ सकते हैं जिससे वस्तुओं के संसार का निर्माण होता है। इस प्रक्रिया में बोध परिकल्पनाओं का लगातार विकास शामिल है, जिन्हें इंद्रियों के प्रयोग द्वारा नियंत्रित किया जाता है। पूर्व–भाषा बोध की अवस्था से पहले भी, ऐसा लगता है कि ऐसी व्याख्याएं निर्मित की जा रही हैं जो उन वस्तुओं के अस्तित्व की मान्यता पर निर्भर हैं जिनमें कुछ विशेषताएं हैं। स्पष्टतः, पहले से मौजूद संवेदी डेटा की उत्तमता, बोध के क्षेत्र में हमारे सामने पहले से खड़ा रहता है। बतौर एक यथार्थवादी दर्शन, आलोचनात्मक तर्कवाद को इन खोज परिणामों को अपने उद्देश्य सिद्ध करने में कोई परेशानी नहीं होती। वैज्ञानिक अंतर्दृष्टि की इसकी व्याख्या, अंदर मौजूद धारणाओं की व्याख्या पर

टिप्पणी

आधारित हो सकती है। संवेदी डेटा की चिह्नित विशेषता भी इस व्याख्या हेतु प्रासंगिक है। आलोचनात्मक तर्कवाद, वैज्ञानिक सिद्धांतों के निर्माण और आंकलन की धारणा कर सकता है, पेनसिलवेनिया स्टेट युनिवर्सिटी में मार्च 5, 2016 को जारी प्रक्रिया के सिलसिले के रूप में, कुछ हद तक अन्य साधनों का प्रयोग करके और चिह्नों की जटिल प्रणालियां लागू करके, जैसेकि भाषा। अनुभवहीन यथार्थवाद, खासकर उन साधनों के माध्यम से जिनकी सहायता से हम अपनी इंद्रियों के प्रदर्शन का सुधारात्मक स्पष्टीकरण कर सकते हैं, जो इन्हें– अधिक या कम– पर्याप्त सन्निकटन के रूप में व्याख्यात करता है।

हेयूरिस्टिक्स और विधियों की समस्या

वोलकर गैडेन्न ने इस ओर ध्यान आकर्षित किया कि कार्ल पॉपर द्वारा सिद्धांतों के विकास और उनकी जांच में तीव्र विविधता बरकरार रखी गई है। दूसरी ओर, जैसाकि 'ट्रीटीज ऑन क्रिटिकल रीजन' में भी कहा गया है, "मैंने यह निर्धारित किया है कि औचित्य की धारणा को त्याग कर– कार्यप्रणाली में से अनुमानों की समस्या को अनदेखा नहीं किया जा सकता। प्रतिष्ठित तर्कवाद, तर्क की केंद्रीय भूमिका का काम करता है, बतौर तर्क का एक यंत्र।" तर्क, तर्कवाद की धारणा के संदर्भ में, जो औचित्य की धारणा के पारंपरिक सोच की भूमिका निभाता है। एक मूल्यांकन निर्मित करने के लिए, मुझे लगता है कि तार्किक तर्क की संभव सफलताओं और कुछ संबंधित प्रासंगिक कड़ियों को व्यक्त करना ही ठीक है। शोध निम्न छह व्याख्याएं प्रदर्शित करते हैं जो मेरे प्रश्न का उत्तर देने हेतु अनिवार्य तथ्यों को चिह्नित करते हैं 1. एक वैध नियोजक तर्क की नई जानकारी प्रदान नहीं करता। 2. एक वैध वियोजक तर्क संरक्षण करता है। यह बस इन बातों की गारंटी देता है (क) सकारात्मक सच मूल्य की विशेषताओं के सेट से लेकर अंत तक हस्तांतरण, इसके परिणाम स्वरूप, (ख) और नकारात्मक सच मूल्य का अंत से लेकर विशेषताओं के सेट तक उल्टा हस्तांतरण। 3. झूठे तथ्यों से सच्चे तथ्य निकालना हमेशा संभव होता है, लेकिन इसका उल्टा कभी भी संभव नहीं होता। 4. ऐसी विशेषताएं जिनमें तार्किक रूप से आपस में असंगत विशेषताएं शामिल होती हैं अकसर किसी भी मनचाहे परिणाम तक पहुंच सकती हैं। 5. प्रत्येक तथ्य अनगिनत वैकल्पिक संभव विशेषताओं द्वारा अनुमानित किया जा सकता है, जो कुछ हद तक एक दूसरे से असंगत हो सकती हैं। 6. तथ्यों के सेट की सामग्री जितनी कम ठोस होगी, संभव निष्कर्षों की संख्या उतनी ही कम व्यापक होगी। एक सीमांत मामले में, अनुलापिक कथनों के सेट हमारे सामने आ जाते हैं, एक ओर सम्पूर्ण सामग्री और दूसरी ओर बिना विस्तार के। जैसाकि (5) में स्पष्ट दर्शाया गया है, कथनों के एक सेट के संभव परिणाम समझ से आगे निकलते हैं, जिसका अर्थ है कि प्रत्येक कथन के अभी भी अनदेखे (सच्चे या झूठे) परिणाम हैं। झूठे परिणाम खोजे जाने पर (2ख) यह दर्शाता है कि कथन स्वयं में ही झूठ होगा। सच्चे परिणाम खोजे जाने पर, (3) यह दिखाता है कि कथन का अपने आप में सच्चा होना कोई जरूरी नहीं है। बाकी चीजों के बीच, (6) इस तथ्य को रेखांकित करता है कि एक कथन से जुड़ी अनेक संभव विशेषताओं के सेट की गिनती नहीं की जा सकती, जिसका अर्थ, प्रत्येक कथन की, अनदेखी संभव (सच्ची या झूठी) विशेषताएं हो सकती हैं। (5) के अनुसार, प्रत्येक सिद्धांत में अनगिनत जवाबी–उदाहरण होते हैं। परिणामस्वरूप, हो सकता है कि किसी सिद्धांत का, पहले से अनदेखा जवाबी उदाहरण अभी तक ढूंढे जाने के इंतजार में हो। अंत में, (6) का

तात्पर्य है कि तथ्यों के हर कथन को अनगिनत संभव सिद्धांतों द्वारा व्याख्यात किया जा सकता है। इससे यह क्रियाविधि पूर्व निष्कर्ष निकलता है कि, सैद्धांतिक रूप से, विकल्प या गलतियां ढूंढ़ने का कोई विकल्प नहीं है। दोनों मिल कर, ये आपसी संबंध हमें संज्ञानात्मक अभ्यास के लिए विराधाभासों के महत्व की ओर ले जाते हैं। वो जो औचित्य के स्थान पर अच्छी व्याख्याओं तथा इन व्याख्याओं को जांचने तथा परखने के अवसरों को खोजते हैं, उनके पास विरोधाभासों की ओर ध्यान देने का हर कारण मौजूद है, और इस तरह वे गंभीर रूप से संभव विकल्पों तथा त्रुटियों की ओर भी ध्यान देते हैं। यह संज्ञानात्मक अभ्यास की कल्पना का महत्व भी दिखाता है। इसके अतिरिक्त, वैकल्पिक व्याख्यात्मक दृष्टिकोणों का विकास तथा जवाबी उदाहरणों की खोज, विधिपूर्वक अनुशासित कल्पना का मामला है। जैसे कि, सैद्धांतिक रूप से अच्छी व्याख्याओं की खोज का कोई अंत नहीं, नियमों की कोई ऐसी प्रणाली नहीं हो सकती जो अंतिम निर्णय की आज्ञा दे। लगातार फॉलिबिलिस्म के दायरे के भीतर, केवल वो निर्णय संभव हैं जिन्हें संशोधित किया जा सकता है। मेरे विचार में, कार्यप्रणाली ही 'तर्कसंगत अनुमानों' का एक उदाहरण प्रदान करती है, जो संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के नियंत्रण का काम कर सकती है। मेरा ऐसा मानना है कि पवित्र और गैर–संशोधनीय 'वैज्ञानिक खोज के तर्क' जैसी कोई चीज नहीं है, जिसे संज्ञानात्मक प्रगति पाने के लिए व्यावहारिक खोज में लागू किया जा सके। मेरे विचार में, खोज को स्थायी रूप से ठोस और पद्धतिगत धारणाओं से संबद्ध रहना चाहिए, जिसकी वैधता को कभी निश्चिततापूर्वक स्थापित नहीं किया जा सकता। इसे एक कला समझा जा सकता है, एक तकनीकी विषय जिसे प्रासंगिक ज्ञानमीमांसीय धारणाओं की पृष्ठभूमि में देखा जा सकता है, जो मानवीय संज्ञानात्मक अभ्यास के कुछ उद्देश्यों के साथ उन्मुख है।

ज्ञानमीमांसा की विशेषताओं पर

जहां तक ज्ञानमीमांसा का सवाल है, कार्ल पॉपर के विचार को, काफी हद तक ठीक, तार्किक कहा जा सकता है। उन्होंने, तर्क द्वारा उपलब्ध करवाए गए साधनों द्वारा ज्ञानमीमांसा के मुद्दे हल करने की कोशिश की। उनकी यह कोशिश उन्हें, उदाहरण के लिए, अनुभवजन्य आधार की समस्या के पारंपरिक समाधान की ओर ले गई, जो सिद्धांतों को लागू करने और उनका मूल्यांकन करने के लिए आवश्यक, अवलोकन संबंधी कथनों की समस्या थी। हो सकता है कि उनसे मानवीय अनुभूति का लाभ उठाने की उम्मीद की गई हो, लेकिन उनका यह मानना था कि धारणाओं की जगह मानवविज्ञान में है और इसके फलस्वरूप इनकी ज्ञानमीमांसा में कोई भूमिका नहीं होनी चाहिए। मनोविज्ञान और इस प्रकार सापेक्षवाद को नकारने के लिए, उन्होंने अनुभवजन्य आधार की समस्या का पारंपरिक समाधान स्वीकार कर लिया। और फिर भी, यह एक सत्य है कि ज्ञानमीमांसा में धारणाओं के विचार सापेक्षवाद की ओर नहीं ले जाते।

1.4.5 फेयरबेंड और गिडेंस

विएन्ना के चक्र के तार्किक प्रत्यक्षवादियों से तार्किक अनुभववाद तक, विज्ञान के दर्शन में प्रत्यक्षवाद के लंबे विकास के वर्णन के बाद गिडेंस ने अपना रुख 'रूढ़िवादी मॉडल' पर 'प्रत्यक्षवाद के बाद' के हमले की ओर कर लिया। उन्होंने इस हमले में शामिल कई लेखकों का नाम लिया (टॉलमिन, फेयरबेंड, हेस्से, कुह्न) और फिर यह विख्यात किया कि पॉपर उनसे पहले थे। कुछ प्रत्यक्षवादियों ने मामलों में उलझन पैदा कर दी इस बात

टिप्पणी

पर जोर देकर कि पॉपर उनमें से ही एक थे, विज्ञान में समान दिलचस्पी के कारण उनके इस अभियान के प्रति मतभेद आंतरिक थे। इसके फलस्वरूप, गिडेंस यह समझ पाए कि "मुद्दे आसानी से सुलझाए नहीं जा सकते.... यह वर्णित किया जाना चाहिए कि. ... उनकी प्रेरण की पूर्ण अस्वीकृति और "संवेदी निश्चितता" की उनकी सहवर्ती अस्वीकृति.... वैधता की जगह असत्यकरण का उनका विकल्प.... उनका, परंपरा का बचाव, जो महत्वपूर्ण भावना के साथ संयोजन के रूप में विज्ञान का एक हिस्सा है और तत्त्वमीमांसा को बकवास सिद्ध करके उसे खत्म करने के तार्किक सकारात्मक लक्ष्य का प्रतिस्थापन है, ताकि, विज्ञान और छद्म विज्ञान के बीच सीमांकन का लक्ष्य स्थापित हो सके।"

जहां तक उनके द्वारा देखी गई समानताओं का सवाल है, पॉपर का यह मानना है कि वैज्ञानिक ज्ञान, अपूर्ण होने के बावजूद, सबसे अधिक निश्चित और विश्वसनीय ज्ञान है जिसकी मनुष्य महत्वाकांक्षा कर सकते हैं.... और तार्किक सकारात्मकतावादियों की तरह, उनका विज्ञान का विशेषीकरण प्रक्रियात्मक है– विज्ञान, परंपरा के अन्य प्रकारों से अलग है क्योंकि इसके सिद्धांत और इसकी खोज अनुभवजन्य परीक्षण और इस प्रकार संभवी असत्यकरण के योग्य हैं।

दरअसल, समानताएं वैसी नहीं हैं जैसी गिडेंस समझते हैं। पॉपर कभी भी निश्चितता या उसकी प्रत्यौषधि, संभावना से संबद्ध नहीं थे।

अपनी किताब, 'अगेंस्ट मेथड एंड साइंस इन ए फ्री सोसाइटी' में फेयरबेंड ने इस विचार का समर्थन किया है कि ऐसे कोई पद्धति संबंधित नियम नहीं हैं जिनका हमेशा वैज्ञानिकों द्वारा प्रयोग किया जाए। उन्होंने हर ऐसी किसी नियमित वैज्ञानिक विधि का विरोध किया जो वैज्ञानिकों की गतिविधियों को सीमित करे, और इस प्रकार वैज्ञानिक प्रगति में बाधा डाले। उनके विचार में, विज्ञान को सबसे अधिक फायदा होगा सैद्धांतिक अराजकतावाद की एक 'खुराक' से। उनका यह भी मानना था कि सैद्धांतिक अराजकतावाद वांछित है, क्योंकि यह अन्य संस्थागत प्रणालियों से अधिक मानवीय है, यह वैज्ञानिकों पर दृढ़ नियम नहीं लागू करती।

क्योंकि, क्या यह संभव नहीं कि जैसाकि हम आज विज्ञान को जानते हैं, या पारंपरिक दर्शन के स्टाइल में "सच की खोज", एक दानव को जन्म देगी? क्या यह संभव नहीं कि, निजी संबंधों पर ऐतराज करने वाले एक वस्तुपरक दृष्टिकोण की जांच से लोगों को नुकसान होगा, यह इन्हें ऐसे दुखी, अमित्र, स्वधर्मी तंत्र बना देगी जिनमें न कोई आकर्षण होगा और न ही हास्य? कीर्केगार्ड यह पूछते हैं, "क्या यह संभव नहीं कि मेरी गतिविधि, बतौर प्रकृति की एक वस्तुपरक अवलोकक, मनुष्य होने की मेरी ताकत को कमजोर बना देगी?" मुझे लगता है कि इन बहुत से प्रश्नों का उत्तर हां है और मेरा यह मानना है कि विज्ञानों में एक ऐसे सुधार की तुरंत आवश्यकता है जो इन्हें अधिक अराजक और व्यक्तिपरक बना दे।

विज्ञान के दर्शन में फेयरबेंड की स्थिति उग्र मानी जाती थी, क्योंकि यह इस बात की संकेतक है कि दर्शन न तो विज्ञान की सामान्य व्याख्या उपलब्ध करवाने में सफल हो सकता है, और न ही वैज्ञानिक उपभोगों को मिथकों जैसी गैर–वैज्ञानिक संस्थाओं से अलग कर सकता है। (फेयरबेंड की स्थिति इस बात का भी संकेत देती है कि अगर वैज्ञानिक प्रगति का लक्ष्य रखते हैं तो उनके द्वारा दार्शनिक मार्गदर्शकों को अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए।)

इनकी इस बात का समर्थन करने के लिए कि पद्धति संबंधी नियम आमतौर से वैज्ञानिक सफलता में योगदान नहीं देते, फेयरबेंड द्वारा जवाबी उदाहरण दिए गए हैं कि (अच्छा) विज्ञान एक निश्चित विधि के अनुसार काम करता है। उन्होंने विज्ञान में हुई कुछ घटनाओं का उदाहरण लिया जिन्हें आमतौर पर प्रगति के निर्विवाद उदाहरण माना जाता है (उदाहरण के लिए कॉपरनिकी क्रांति), और उनका आगे यह कहना है कि इन घटनाओं द्वारा विज्ञान के सभी सामान्य विधि अनुसार नियमों का उल्लंघन किया गया। इसके अलावा, उनका यह भी मानना था कि यदि ऐसे नियमों को ऐतिहासिक परिस्थितियों में लागू किया जाता तो सच में वैज्ञानिक क्रांति से बचा जा सकता था।

फेयरबेंड द्वारा वैज्ञानिक सिद्धांतों का मूल्यांकन करने वाले जिन मानदंडों पर हमला किया गया है, उनमें से एक है स्थिरता मानदंड। उनका कहना है कि नए सिद्धांतों को पुराने सिद्धांतों के संगत होने से, पुराने सिद्धांतों को अविवेकी फायदा होता है। उनके द्वारा यह तार्किक मुद्दा भी उठाया गया कि यदि एक नया सिद्धांत किसी पुराने दकियानूसी सिद्धांत के संगत हो तो उसकी वैधता या सच्चाई में वृद्धि नहीं होती, समान सामग्री के लिए विकल्प के रूप में। यानी, यदि हमें दो समान व्याख्यात्मक शक्ति वाले दो सिद्धांतों में से किसी एक को चुनना हो तो किसी पुरने सिद्धांत के संगत सिद्धांत को चुनने का अर्थ है तार्किक नहीं बल्कि एक सौंदर्यात्मक विकल्प। ऐसे सिद्धांत से सुपरिचय इसे वैज्ञानिकों के लिए अधिक आकर्षक बना सकता है, क्योंकि उन्हें पुराने तथा मनचाहे पूर्वाग्रहों को अनदेखा नहीं करना पड़ेगा। इसलिए, इसे सिद्धांत के पास "अनुचित लाभ" होना कहा जा सकता है।

फेयरबेंड द्वारा मिथ्यात्व की भी आलोचना की गई है। उनका यह मानना था कि कभी कोई दिलचस्प सिद्धांत सारे प्रासंगिक तथ्यों के संगत नहीं होता। यह बात इस अल्हड़ असत्यकरण नियम के प्रयोग को अस्वीकृत करता है कि ऐसे वैज्ञानिक सिद्धांतों को नकार दिया जाना चाहिए जो ज्ञात तथ्यों से मेल न खाते हों। बाकियों के साथ, फेयरबेंड द्वारा जानबूझ कर परिमाण यांत्रिकी में "पुनर्सामान्य होने" का उत्तेजक विवरण प्रयोग किया गया है– "इस प्रक्रिया में कुछ गणनाओं के परिणामों को काटकर इनके बदले में ऐसे विवरण रखे जाते हैं जिनका दरअसल अवलोकन किया गया है। इस प्रकार हमें इस निहितार्थ से मानना पड़ता है कि सिद्धांत को एक नए नियमानुसार खोज (आविष्कार) बनाने के समय, सिद्धांत मुश्किल में पड़ जाएगा। जहां क्वांटम सिद्धांतकार इस समस्या से दूर वाले मॉडलों पर काम कर रहे थे, फेयरबेंड ने इस बात का समर्थन किया कि वैज्ञानिकों को पुनर्सामान्यकरण जैसे आवश्यक तरीकों का प्रयोग करना चाहिए। दरअसल, ऐसे तरीके विज्ञान की प्रगति के लिए आवश्यक हैं क्योंकि "विज्ञान में असमतल विकास होता है"। उदाहरण के लिए, गैलिलिओ के समय में, ऑप्टिकल सिद्धांत दूरबीन के माध्यम से देखी गई घटनाओं की जानकारी नहीं दे सकता था। इसलिए, दूरबीन अवलोकन का उपयोग करने वाले खगोलवादियों को आवश्यक नियम का तब तक प्रयोग करना पड़ता था जब तक वे अपनी मान्यताओं को "ऑप्टिकल सिद्धांत" द्वारा वैध न साबित कर दें।

फेयरबेंड ऐसे हर दिशानिर्देश की आलोचना करते थे जो ज्ञात तथ्यों से तुलना करने के बाद वैज्ञानिक सिद्धांतों की उत्तमता के संबंध में निर्णय लेने का लक्ष्य रखते थे। उनका यह मानना था कि पिछला सिद्धांत शायद, अवलोकित घटना की प्राकृतिक व्याख्याओं को प्रभावित कर दे। वैज्ञानिक, आवश्यक रूप से, वैज्ञानिक सिद्धांतों की

टिप्पणी

उनके द्वारा अवलोकित तथ्यों से तुलना करते समय निहित धारणाएं स्थापित कर लेते हैं। नए सिद्धांत को अवलोकनों के संगत बनाने हेतु ऐसी मान्यताओं में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। फेयरबेंड द्वारा दिए गए प्राकृतिक मान्यताओं के प्रभाव का मुख्य उदाहरण है टावर तर्क। टावर तर्क, हिलती धरती के सिद्धांत के विरुद्ध की गई आपत्ति में से मुख्य आपत्ति है। ऐरिस्टॉटल के समर्थकों का यह दृढ़ विश्वास था कि धरती अपनी जगह से हिलती नहीं है। आवेग और सापेक्ष गति के प्राचीन सिद्धांतों का प्रयोग करने पर, कॉपरनिकस का सिद्धांत, असल में, इस तथ्य के अनुसार झूठा नजर आता है कि वस्तुएं लम्ब रूप से धरती पर गिरती हैं। कोपरनिकस के सिद्धांत से संगत बनाने के लिए इस अवलोकन की एक नई व्याख्या की आवश्यकता है। गैलीलियो, आवेग और सापेक्ष गति की प्रकृति के संबंध में एक बदलाव लाने में सफल रहे। ऐसे सिद्धांतों को व्यक्त करने से पहले, गैलीलियो को आवश्यक तरीकों का प्रयोग करना पड़ा और जवाबी उपादान की ओर बढ़ना पड़ा। इस प्रकार, "आवश्यक" परिकल्पनाओं का दरअसल सकारात्मक कार्य होता है– ये अस्थाई रूप से नए सिद्धांत को तथ्यों के संगत बनाती हैं, जब तक बचाव किए जाने वाले सिद्धांत को बाकी सिद्धांतों का समर्थन न मिल जाए।

अपनी प्रगति जांचिए

5. निम्न में से कौन प्रत्यक्षवाद के प्रमुख आलोचकों में हैं?
   - (क) फेयरबेंड और गिडेंस
   - (ख) कॉम्टे
   - (ग) दुर्खीम
   - (घ) पॉपर
6. हेयूरिस्टिक्स और विधियों की समस्या के अंतर्गत शोध कितनी व्याख्याएं प्रदर्शित करते हैं?
   - (क) 3
   - (ख) 6
   - (ग) 9
   - (घ) 12

1.5 हर्मेनेयुटिक्स : आगमनात्मक विश्लेषण, परिघटनावादी समाजशास्त्र, नृवंशविज्ञान दृष्टिकोण तथा समाजशास्त्रीय सिद्धांत

काफी समय से सामाजिक विज्ञान के दर्शन पर दो मुख्य परंपराएं हावी रही हैं, द्वंद्व इन दोनों के बीच है, एक तरफ वो जिनके लिए सामाजिक विज्ञान, कारणों की खोज के माध्यम द्वारा सामाजिक घटनाओं का विवरण है और दूसरी तरफ वो जिनके लिए सामाजिक विज्ञान का अर्थ है सामाजिक कार्यवाही के अर्थ की समझ तथा उसका विवरण। सामाजिक विज्ञान की प्रकृति को लेकर होने वाले विवाद का एक लंबा इतिहास है, जिसमें यह अनेक प्रकारों में दिखाई दिया है। जर्मनी में, अर्थशास्त्र में 1890 के दशक के तरीकों को लेकर कई मतभेद हुए और और कार्ल मेंगर (1841–1921), एक पारंपरिक आस्ट्रियायी अर्थशास्त्री द्वारा इस बात पर जोर दिया गया कि सैद्धांतिक अर्थशास्त्र के सटीक नियम मेकैनिक्स जैसे प्राकृतिक विज्ञानों के समान थे। जर्मन यंगर

टिप्पणी

इकोनॉमिक हिस्टरी स्कूल के गुस्ताव श्मोलर (1838—1917), द्वारा कार्ल मेंगर का विरोध किया गया (ब्रायेंट 1985 देखें)। श्मोलर 'सामाजिक नीतियों हेतु समिति' (वेरीन फर सोजिल पॉलिटिक) के सदस्य भी थे, जिसकी स्थापना ईसेनैक में 1872 में की गई थी, बतौर एक सुधार आंदोलन। इस समाज द्वारा कभी ठोस राजनीतिक प्रोग्राम नहीं चलाए गए, बल्कि इसके द्वारा सामाजिक—आर्थिक क्षेत्र में विशिष्ट ठोस समस्याओं पर कई खोजों से संबंधित अनेक प्रकाशन किए गए। इन खोजों के लिए, श्मोलर द्वारा, मेंगर के वियोजक और अमूर्त दृष्टिकोण की जगह आगमनात्मक, अनुभवजन्य और ऐतिहासिक दृष्टिकोण का समर्थन किया गया। इस जगह, कुछ नव—कान्टवादी दार्शनिकों का बहस में प्रवेश हुआ और यह द्वंद्व सामाजिक विज्ञान की प्रकृति के बारे में बन गया। जर्मनी में सामाजिक विज्ञानों पर होने वाली बहस, वैज्ञानिक खोज के उद्देश्यों तथा उसके मूल्यों पर होने वाली बहस ने एक महत्वपूर्ण रूप ले लिया। इसकी शुरुआत 1903 में हुई और यह तकरीबन 10 साल तक चली, इसके एक प्रसिद्ध प्रतिभागी थे कार्ल मार्क्स। वेबर ने अपने विशेष ढंग से इस बहस को बीच में से काटा, चाहे वो खुदको ऐतिहासिक स्कूल (श्मोलर, विंडेलबैंड) के वंशजों में से एक मानते थे। उनके लिए सामाजिक संसार, अद्वितीय वस्तुओं और विलक्षन विन्यासों से बना था। इन्होंने सामाजिक विज्ञानों के संबंध में करणीय विश्लेषण को अस्वीकार नहीं किया। सम्पूर्ण सामाजिक कार्यवाही की 'मूल्य प्रासंगिकता' में विश्वास रखते हुए, वेबर 'व्याख्यात्मक समझ' की विधि को सामाजिक विज्ञान के लिए आवश्यक समझते थे, लेकिन उनका यह भी कहना था कि इसकी करणीय विश्लेषण के साथ पूर्ति की जानी चाहिए। वेबर की 'मूल्य प्रासंगिकता' की श्रेणी में करणीय विश्लेषण की ही कमी नहीं थी, बल्कि इसमें वेबर का 'मूल्य मुक्त' सामाजिक विज्ञान का समर्थन भी शामिल था और उन्होंने 1900 के दशक के शुरुआती दौर में श्मोलर के साथ इसी मुद्दे पर बहस की थी। अंत में, दूसरे विश्व युद्ध के बाद प्रत्यक्षवाद या सकारात्मक द्वंद्व पर, जर्मनी में बहस हुई। इसकी शुरुआत 1961 में, ट्यूबिंजेन में, पॉपर द्वारा जर्मन समाजशास्त्रीय संघ में दिए उद्घाटन भाषण से हुई। पॉपर द्वारा सामाजिक विज्ञानों के तर्क पर सत्ताईस थीसिस प्रस्तुत किए गए और ऐडोर्नो ने इनका जवाब दिया। यह बहस, पॉपर द्वारा समर्थित प्रत्यक्षवादी कार्यप्रणाली और ऐडोर्नो के गैर—प्रत्यक्षवादी रुख के बीच होनी थी, लेकिन पॉपर ने, खुदको प्रत्यक्षवाद का आलोचक होने का दावा करते हुए इस कार्यवाही को बढ़ावा दिया। ऐडोर्नो (1903—1969) के हैबरमास से जुड़ जाने के बाद भी झगड़ा जारी रहा। दोनों ने मिलकर पॉपर बतौर एक प्रत्यक्षवादी क्रियाविधि और हैंस ऐलबर्ट (1904—1973) द्वारा इस विधि के समर्थन पर हमला जारी रखा। पहले की अन्य बहसों की तरह, इस बहस में भी, एक पक्ष द्वारा प्राकृतिक विज्ञान से अलग, मानवीय/ऐतिहासिक/ सांस्कृतिक/सामाजिक विज्ञानों की अपनी विधियों पर जोर दिया गया। मानव विज्ञानों की इस विभिन्न विधि को हर्मेनेयुटिक्स का नाम दिया गया।

एक तरह से, हर्मेनेयुटिक्स की कहानी इन विधि संबंधित झगड़ों से कहीं पुरानी है। क्या हर्मेनेयुटिक्स की इस कहानी की शुरुआत, बतौर सामाजिक विज्ञानों की क्रियाविधि हर्मीज से की जाए, जो ग्रीक भगवानों का संदेश मनुष्यों तक लाए थे? एक दूत होने के नाते क्या हर्मीज ने भगवानों के शब्द प्रतिशब्द बस दोहराए थे? या क्या उन्हें पहले इन शब्दों की "व्याख्या" करने की आवश्यकता पड़ी थी? क्या मनुष्यों तक भगवानों के शब्द के 'अर्थ' पहुंचाने से पहले उन्हें इन शब्दों को "समझना" पड़ा था? (ग्रीक भगवान "हर्मीनज का अर्थ है एक व्याख्याता)।

टिप्पणी

सुधार के समय, जब चर्च प्राधिकरण और परंपरा पर कैथोलिक आग्रह के खिलाफ, पवित्र ग्रंथों को समझने और उनकी व्याख्या करने के मामलों में प्रोटेस्टेंट सुधारक बाइबल की व्याख्या के वैकल्पिक सिद्धांत लेकर आए, उस समय हर्मेनेयुटिक्स ने अपना खूब रंग दिखाया। क्या चर्च के, उसके पदाधिकारियों पर, इसाई धार्मिक लेखों के संबंध में आग्रह का अर्थ था कि ये धार्मिक ग्रंथ अपने आप में पूरे नहीं थे? और इनका अर्थ समझने के लिए एक पादरी की आवश्यकता थी? वह व्यक्ति जो इन सभी तत्वों को जोड़ने के लिए जिम्मेदार था, और जिसे आधुनिक हर्मेनेयुटिक्स का पिता माना जाता है उसका नाम था स्क्लीयरमार्कर (1768–1834)। जहां स्क्लीयरमार्कर बर्लिन विश्विद्यालय में 1810 और 1834 के बीच प्रोटेस्टेंट धर्मशास्त्र के संबंध में कार्यरत थे, उन्होंने हर्मेनेयुटिक्स का भी एक कोर्स पढ़ाया। स्क्लीयरमार्कर (1819–75) ने इस बात पर जोर दिया "कि ये दोनों हर्मेनेयुटिक्स संबंधित कार्य पूरी तरह एक समान थे, और इन पर व्याकरणिक व्याख्या, 'निम्न कार्य' और मनोवैज्ञानिक व्याख्या 'उच्च कार्य' का लेबल लगाना अनुचित होगा। व्याकरणिक व्याख्या, समझ के भाषाई पहलू से मेल खाती है। यह आयाम अर्ध और पूर्ण के हर्मेनेयुटिक्स संबंधित घेर से बंधा है, क्योंकि इसमें कार्य के अकेले भाव और भाषा या साहित्य की पूर्व–प्राप्त पूर्णता के बीच के संबंध का मामला शामिल है। दूसरी ओर, मनोवैज्ञानिक व्याख्या एक दिव्य आयाम है जो हर्मीज को दोबारा पाने की कोशिश करता है। समझने का लक्ष्य है कि पहले लेख को भी समझा जाए और फिर उसके लेखक को। चूंकि हमरे पास लेखक के मन की बात की कोई प्रत्यक्ष जानकारी नहीं है, हमें उन बहुत सी बातों को समझने की कोशिश करनी चाहिए जिनके बारे में शायद वह खुद भी अंजान रहा हो, इस बात को छोड़कर कि वह अपने कार्य पर विचार करे और स्वयं अपना पाठक बन जाए।

गैडेमर का यह कहना है कि यदि हम समझ के इस दावे को बतौर जीवन की एक श्रेणी की गंभीरता से लें, तो हमें हर्मेनेयुटिक्स एक कार्यविधि के यंत्र के समान दिखाई देगा, लेकिन हमें इसे 'सार्वभौमिक' हर्मेनेयुटिक्स की तरह देखना चाहिए, क्योंकि सम्पूर्ण मानव अनुभव में हर्मेनेयुटिक्स आयाम शामिल है। एक गैर–आत्मसचेत ढंग से, हम हर समय हर्मेनेयुटिक को समझने के कार्य में लगे रहते हैं, लेकिन हम उसके बारे में केवल तभी जागरूक होते हैं जब हमें गलतफहमी का अनुभव होता है, जब हमें यह अहसास होता है कि हमने शायद परिस्थिति को ठीक से समझा नहीं। जिस प्रकार एक जीवित व्यक्ति के लिए सांस लेने की प्रक्रिया उसके जिंदा रहने का निरंतर हिस्सा है, उसी प्रकार हर बात को 'समझना', संसार का हिस्सा बने रहने के लिए जरूरी है। ट्रुथ एंड मेथड की प्रस्तावना में, गैडेमर (1975) ने जोर देते हुए यह कहा है कि उनके द्वारा विकास किए जाने वाला हर्मेनेयुटिक्स, मानव विज्ञानों की क्रियाविधि नहीं है। ट्रुथ एंड मेथड के दार्शनिक प्रश्न थे– "समझ का क्या अर्थ है? और यह किस प्रकार संभव है?"

हर्मेनेयुटिक्स के संबंध में अपने विचारों को लेकर, डिलथी और स्क्लीयरमार्कर से कहीं अधिक, गैडेमर द्वारा खोजक की स्थिति को भी समस्याजनक बनाया गया है। गैडेमर के लिए, 'बीते समय की कोई भी व्याख्या, चाहे एक इतिहासकार, दार्शनिक या भाषा विशेषज्ञ द्वारा दी गई हो व्याख्याता के अपने समय एवं स्थान की रचना होती है क्योंकि खोज के दायरे में घटनेवाली घटना, इतिहास में उसके अपने समय का एक हिस्सा थी। बीते समय की समझ को लेकर, खोजक अपने पूर्वाग्रहों पर अकसर निर्भर

टिप्पणी

होते हैं। समझ या व्याख्या के कार्यों को समझे जाने के लिए घटना की विचित्रता को नियंत्रित करके उसे एक जानीबूझी वस्तु के रूप में हस्तांतरित करने की आवश्यकता होती है जिसमें ऐतिहासिक घटना और व्याख्याता के क्षितिज एक हो जाते हैं। खोज के विषय और वस्तु के क्षितिजों का यह मिलन संभव है क्योंकि ऐतिहासिक वस्तु और व्याख्याता का कार्य, दोनों, अधिभावी ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक परंपरा का हिस्सा हैं, जिसे गैडेमर प्रभावी इतिहास का नाम देते हैं।

हर्मेनेयुटिक्स के क्षेत्र में अपना योगदान देने वाले अगले विचारक हैं जोरगेन हैबेरमास। हैबेरमास, हर्मेनेयुटिक्स से फ्रैंकफर्ट स्कूल द्वारा मध्यस्थ मार्क्सवाद से उभरे थे, उनके क्रियाविधि सिद्धांतों में दोनों, मार्क्सवादी तथा फ्रॉयडवादी सिद्धांतों का प्रभाव देखा जा सकता है। हैबरमास के लिए, मनुष्य विज्ञानों का इतिहास यह दर्शाता है कि मनुष्यों द्वारा ज्ञान का पालन मुख्य रूप से इन तीन बिंदुओं के कारण किया गया–

1. अनुभवजन्य–विश्लेषणात्मक विज्ञानों की ज्ञान विधान दिलचस्पी तकनीकी नियंत्रण में है।
2. सांस्कृतिक विज्ञानों की ज्ञान विधान दिलचस्पी व्यावहारिक है।
3. जटिल विज्ञानों की ज्ञान विधान दिलचस्पी मुक्ति में है।

किसी विज्ञान के तार्किक–पद्धति संबंधी नियमों और उसकी ज्ञान विधान दिलचस्पियों के बीच संबंध निर्धारित करते हुए हैबेरमास इस बात पर जोर देते हैं कि समाज के जटिल विज्ञान के लिए फ्रायडियन मनोविश्लेषण की पद्धति संरचानात्मक है। हैबेरमास, मनोविश्लेषण के तरीके को 'गहरे हर्मेनेयुटिक्स' का एक प्रकार बताते हैं, जो क्रियाविधिपूर्व आत्म–प्रतिबिंबन की ओर उन्मुख विज्ञान में व्याख्या और समझ उत्पन्न करते हैं। सफल मनोविश्लेषणात्मक अभ्यास को ऐसे रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें मरीज अपने खुद के न्युरोसिस को समझ कर उससे उभरने की योग्यता रखता हो। इस विचार को ऐसी स्थिति में सामान्यकृत किया जा सकता है जिसमें मनुष्य की, प्रकृति में वस्तुओं के विपरीत, संवेदना होती है और अपने द्वारा किए जा रहे कार्य की समझ भी होती है। यदि समाज शास्त्री इतनी सी समझ में सीमित नहीं रहना चाहता, तो उसे इसको झूठी चेतना कह कर नकारना नहीं चाहिए। हैबेरमास गहरी हर्मेनेयुटिक्स की अपनी श्रेणी का प्रयोग गैडेमर के दार्शनिक या सार्वभौमिक हर्मेनेयुटिक्स के सिद्धांत के प्रतिद्वंद्वी तक रूप में करते हैं। हैबेरमास का यह मानना है कि यदि किसी अनजान दिखने वाली चीज का अर्थ समझना हो तो तो अनजान कार्यवाही को उसके ऐतिहासिक तथा सामाजिक संदर्भ में देखना चाहिए। लेकिन 'व्यवस्थित रूप से विकृत संचार' के मामले में, वो समझ की कमी की समस्या की ओर इशारा करते हैं जो कार्यवाही के संदर्भित होने के बाद भी बरकरार रहती है। हम न्यूरोसिस का अदाहरण ले सकते हैं– मान लीजिए, हाथों की अनिवार्य, बार बार धुलाई। यदि हम किसी की निरंतर हाथ धोने की समस्या को समझने की कोशिश करें, तो ऐसे व्यक्ति को उसके सामाजिक क्षितिज में रखने के अलावा, हमें उस व्यक्ति में उस न्यूरोसिस के शुरुआती बिंदु की भी खोज करनी होगी।

अंत में, हर्मेनेयुटिक्स में, पॉल राइक्योर इस व्याख्या को और विस्तृत करते हैं। अपनी 'द मॉडल ऑफ द टेक्स्ट में, सबसे पहले, हर्मेनेयुटिक्स की बतौर सामाजिक विज्ञानों से प्रासंगिकता सिद्ध करने के लिए, राइक्योर मानव के कार्य तथा लेखों में

समानता दर्शाते हैं। राइक्योर (1971) सबसे पहले लिखित और बोले गए प्रवचनों में अंतर बताते हैं। लिखित प्रवचन में, बोले गए प्रवचन के विपरीत, लेखक और उसके लेख के अर्थ के बीच की कड़ी और लिखे गए लेख के अर्थ तथा उस विशिष्ट वार्ताकार जिसे उसे संबोधित किया गया है, पॉल राइक्योर के बीच का संबंध टूटा हुआ है। लिखित प्रवचन की तरह, मानव द्वारा कार्यवाही को भी उसके लेखक से अलग किया जा सकता है; इसके अपने ही परिणाम होते हैं, यह हमेशा अपनी शुरुआती परिस्थिति की प्रासंगिकता से परे जाती है, और इसे एक असीमित संख्या को संबोधित करते देखा जा सकता है। इस प्रकार की अनेक समानताएं कार्यवाही को टेक्स्ट समझने के लिए काफी हैं, और इस प्रकार, मानवीय कार्यवाही पर हर्मेनेयुटिक्स प्रवचन की विशिष्ट परिस्थिति की वैधता जताने हेतु, हैबेरमास की तरह, राइक्योर भी मनोविश्लेषण को हर्मेनेयुटिक्स के एक प्रकार की तरह देखते हैं। राइक्योर का कहना है कि इस हर्मेनेयुटिक्स को एक विश्वास के रूप में नहीं देखा जा सकता, बल्कि यह संदेह का हर्मेनेयुटिक्स है। जहां विश्वास का हर्मेनेयुटिक्स अपनी ताकत, सुनने की इच्छा और एक वस्तु के पूज्य होने के विश्वास से प्राप्त करता है, संदेह का हर्मेनेयुटिक्स, दिए गए के प्रति संदेह और वस्तु के लिए आदर की अस्वीकृति से ऊर्जा प्राप्त करता है। केवल मनोविश्लेषण ही नहीं है जो अर्थ उत्पादक विषय के अधिकार पर सवाल उठाता है, बल्कि संरचनावाद भी यह काम करता है– पाठ का वस्तुनिष्ठ अर्थ लेखक के व्यक्तिपरक उद्देश्य से अलग होता है, और इसलिए सही समझ की समस्या को लेखक के इरादे पर लौटकर सुलझाया नहीं जा सकता। ऐसा नहीं है कि स्क्लीयरमार्कर और डिलथी के हाथों में हर्मेनेयुटिक्स ने वैचारिकता के अर्थ को कम किया था, लेकिन राइक्योर में नई बात यह है कि वो 'समझ से व्याख्या' और 'व्याख्या से समझ' के हस्तांतरण के बारे में बात की शुरुआत करते हैं। राइक्योर (1971) का यह कहना है कि हमें संरचनात्मक विश्लेषण को एक 'भोली' व्याख्या और एक 'आलोचनात्मक' व्याख्या और 'सतही' व्याख्या तथा 'गहरी' व्याख्या के बीच की महत्वपूर्ण अवस्था समझना चाहिए। व्याख्या के द्वंद्व की अंतिम चाल, इस प्रकार समझने की क्रिया में खत्म होती है जिसकी मध्यस्तता संरचनात्मक विश्लेषण की व्याख्यात्मक प्रक्रियाओं द्वारा की जाती है।

निष्कर्ष

हर्मेनेयुटिक्स का कार्यान्वयन पारंपरिक लेखों के प्रयोग से संदर्भित है, जैसे एक न्यायाधीश एक केस के मामले में कानून की व्याख्या के बाद उसका प्रयोग करता है, या एक उपदेशक एक समकालिक नैतिक मामले के संबंध में एक धार्मिक सिद्धांत की व्याख्या करके उसका प्रयोग करता है। इसी प्रकार, हर्मेनेयुटिक्स हमारे आस–पास, हर जगह दिखाई देता है और हम आशा करते हैं कि उसका खोजों में प्रयोग किया जा सके। आने वाले खंडों में आप सामाजिक खोज में प्रयोग होने वाले समकालिक दृष्टिकोणों के बारे में पढ़ेंगे। आपको यह जानकर आनंद आएगा कि कैसे कई आधुनिक सामाजिक खोजों में हर्मेनेयुटिक्स का प्रयोग किया गया है।

1.5.1 आगमनात्मक विश्लेषण

आगमनात्मक विश्लेषण पद्धति में निगमन पद्धति के विपरीत ढंग से अध्ययन कार्य किया जाता है। इसका अर्थ है आगमन पद्धति में हम विशिष्ट से सामान्य, सूक्ष्म से व्यापक सत्य को प्रतिपादित करते हैं। अतः इस पद्धति में तर्क का क्रम विशिष्ट से

सामान्य की ओर होता है। इसके बाद अनुभव व प्रयोग के आधार पर इस सामान्य सिद्धांत की जांच की जाती है। उदहारण के लिए, विभिन्न व्यक्तियों को एक न एक दिन मरते देखकर हम यह सामान्य निष्कर्ष तर्क के आधार पर निकालते हैं कि मनुष्य मरणशील है। यहां पर तर्क का क्रम विशिष्ट से सामान्य की ओर है। स्पष्ट है कि इस पद्धति में अनुभवों के आधार पर नियम बनाए जाते हैं अतः इसे अनुभावाश्रित पद्धति (Empirical method) भी कहा जाता है।

टिप्पणी

आगमनात्मक विश्लेषण पद्धति के गुणों (Merits) को इस प्रकार देखा जा सकता है–

- इस पद्धति की सहायता से निकाले गए निष्कर्ष वास्तविकता के अधिक निकट होते हैं, क्योंकि यह वास्तविक विशिष्ट घटनाओं और तथ्यों के निरीक्षण पर आधारित होते हैं।
- इस पद्धति का दृष्टिकोण अधिक गतिशील (Dynamic) होता है, क्योंकि बदली हुई परिस्थितियों में जो नवीन विशिष्ट तथ्य या घटनाएं सामने आती हैं, उनका पूरा ध्यान निष्कर्ष निकालते समय रखा जाता है।
- इस पद्धति द्वारा निकाले गए निष्कर्षों की फिर से जांच या पुनः परीक्षा संभव है, क्योंकि आवश्यकता होने पर निष्कर्षों को अन्य तथ्यों या परिवर्तित तथ्यों द्वारा जांचा जा सकता है।
- यह पद्धति निगमन पद्धति की पूरक (Complementary) है अर्थात निगमन पद्धति द्वारा निकाले गए निष्कर्षों की जांच व सुधार इस पद्धति द्वारा की जा सकती है।

आगमनात्मक विश्लेषण पद्धति में निम्नलिखित दोष (Demerits) पाए जाते हैं–

- इस पद्धति का प्रयोग कठिन है, क्योंकि विशिष्ट घटनाओं का वैज्ञानिक निरीक्षण करना तथा उनके अनुक्रम (Sequence) को ढूंढ़ निकालना सरल कार्य नहीं होता। इसके लिए आवश्यक प्रशिक्षण (Training) की बहुत जरूरत होती है।
- इस पद्धति द्वारा निकाले गए निष्कर्ष यथार्थ नहीं होते, विशेषकर उस दशा में जबकि निरीक्षण का क्षेत्र बहुत सीमित रखा गया हो और थोड़े–से आंकड़ों के आधार पर ही निष्कर्ष निकाल लिया गया हो। इस अवस्था में निष्कर्षों के गलत होने की संभावना अधिक रहती है।
- इस पद्धति के अंतर्गत पक्षपातपूर्ण निष्कर्षों की बहुत संभावना रहती है, क्योंकि अनुसंधानकर्ता आंकड़ों को अपनी इच्छानुसार किसी भी तरफ झुका सकता है। 'आंकड़ों द्वारा कुछ भी सिद्ध किया जा सकता है'– यह कथन प्रायः इस पद्धति पर लागू हो जाता है।
- इस पद्धति में दो बातों को एक साथ देखकर उनमें से एक को कारण और दूसरे को परिणाम मान लिया जाता है। जैसे– यदि एक परिवार में नशेड़ी पिता और बाल–अपराध ये दो तथ्य मौजूद हैं तो नशेड़ी पिता को कारण और बाल–अपराध को परिणाम मान लिया जाता है। लेकिन यह कार्य–कारण संबंध हमेशा ही होगा यह मान लेना गलत है। विद्वानों का कहना है, "यदि कुछ दशाओं में दो चीजें एक साथ देखी जाती हैं तो यह मान लेना कि उनमें कार्य–कारण (अथवा कारण और परिणाम) का संबंध अवश्य है, यह सांख्यिकीय अनुसंधान का सबसे खतरनाक भ्रम है।"

टिप्पणी

1.5.2 परिघटनावादी समाजशास्त्र

सामाजिक व्यवहार के कार्यात्मक स्वरूप पर जोर डालने वाले अन्य पारम्परिक सिद्धांतों एवं कार्य प्रणालियों के विपरीत, परिघटना और नृजाति कार्यप्रणाली समाजशास्त्र में सामाजिक जीवन से संबंधित वह व्याख्यात्मक दृष्टिकोण हैं जो, 'सामाजिक अभिनेता के नजरिए से सामाजिक क्रिया को समझने की आवश्यकता' पर जोर देता है। मनुष्य की स्वयं को जानने और दूसरे के प्रति अपने संबंध समझने की मौलिक आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, ये दृष्टिकोण अनुकूल दिखाई पड़ते हैं– 1. लोगों द्वारा अपने संसार के संदर्भ में समझा गया अर्थ– चीजें, लोग, घटनाएं 2. लोगों को खुद को और दूसरों को देखने का नजरिया 3. उनके व्यवहार को प्रभावित करने वाले उद्देश्य।

यहां पारम्परिक समाजशास्त्र के ज्ञान और समकाल में प्रचलित परिघटना समाजशास्त्र के बीच की विभिन्नता स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। ध्यान से देखा जाए तो बहुत ज्यादा फर्क नहीं है, क्योंकि इसमें विश्लेषणात्मक दृष्टिकोणों और नजरियों पर जोर दिया गया है, क्योंकि 'अगर परिघटना समाजशास्त्रियों की दिलचस्पी की बात की जाए तो, वे रोजमर्रा के जीवन में अंतरव्यक्तिपरक चेतना के आधार में रूचि रखते हैं (व्यक्ति का अपना व्यक्तिगत चिंतन), ज्ञान का पारम्परिक समाजशास्त्र सामाजिक–ऐतिहासिक परिस्थितियों तथा ज्ञान से संबंधित रहा है, विशेष रूप से बौद्धिक ज्ञान से।

एडमंड हसर्ल (1859–1938) द्वारा उनके प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रंथ, 'आइडियाज इंट्रोडक्शन टू प्योर फिनॉमोनॉलोजी (1913)' में किया गया 'परिघटना' शब्दों का प्रयोग, सबसे पहले दार्शनिक और वैज्ञानिक तरीके के सिद्धांत का वर्णन करता है। प्राकृतिक विज्ञान का सबसे सामान्य तरीका स्वीकृत सच्चाई के गुट से चल कर, प्रकृति से प्रश्न पूछता हुआ और उन प्रश्नों के उत्तरों की व्याख्या करता हुआ, अज्ञात पर अपनी विजय प्रस्तुत करता है। परिघटना और अवरोधक परिकल्पना अवलोकन, विवरण तथा श्रेणीकरण करने की ऐसी तकनीकें ढूंढ़ती है जो उसे संरचनाओं और संबंधों का ऐसा खुलासा करने की क्षमता प्रदान करती है जैसा प्रयोगात्मक तकनीकों से संभव होना मुश्किल है।

धारणाओं को लिखने के पीछे परिघटना मनोविज्ञान के बीच विभिन्नता के स्पष्टीकरण का विचार था, जो हसर्ल ने वैध ठहराया है, लेकिन विज्ञान और परिघटना तत्वज्ञान, जिससे बनाए रखने के लिए वे तैयार थे, सभी विज्ञानों का आधार है। जब एक समाजशास्त्री या मनोवैज्ञानिक, परिघटना संबंधित जांच करता है तो वह उस क्षेत्र में प्रधान सभी सामान्य सिद्धांतों तथा मान्यताओं को अलग रख देता है; लेकिन वह खुद को सभी पूर्वधारणाओं से पृथक नहीं कर सकता (उदाहरण के लिए, बाहरी संसार, प्रकृ ति की स्थिरता, आदि में विश्वास)। प्लेटो के नजरिए से, सभी विज्ञान (तत्वविज्ञान के अलावा), किसी न किसी मान्यता पर आधारित होने चाहिए। अपना वादा पूरा करने हेतु, अंत में, परिघटना दृष्टिकोण को हमें सम्पूर्णतः पूर्वधारणा रहित विज्ञान तक पहुंचाना चाहिए।

समाजशास्त्र में, परिघटना दृष्टिकोण को अनुशासन के विकास के शुरुआती दौर में देखा जा सकता था, लेकिन इस सदी के तीसरे भाग में यह मुख्य सैद्धांतिक तथा कार्यात्मक विचारधारा बन गया है, भारी मात्रा में इसके प्रमुख अनुयायी देखे जा सकते

टिप्पणी

हैं, जो विज्ञान में योगदान देने हेतु कड़ी मेहनत कर रहे हैं। परिघटना समाजशास्त्र, समाजशास्त्र के अनुभवसिद्ध आधार पर सवालिया निशान लगाता है, जिससे पारम्परिक सामाजिक ज्ञान की पर्याप्तता और सार्थकता चुनौती के दायरे में आ जाती है। टिमाशेफ के अनुसार, यदि परिघटना समाजशास्त्र को विभिन्न दृष्टिकोण का दावा करना है हसर्ल के परिघटना से कोई संबंध साधना है तो, 'उसे व्यक्ति की चेतना की संरचना और उस चेतना के सामाजिक ताने बाने से संबंध पर अपना ध्यान केंद्रित करना होगा'।

यहां इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि हसर्ल को वास्तव में सामाजिक एवं व्यवहार संबंधी विज्ञानों की ठोस तथा सैद्धांतिक समस्याओं के बारे में ज्यादा ज्ञान नहीं था। कुछ दार्शनिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में परिघटना समाजशास्त्र के संभव न होने के बारे में दृढ़ भावना प्रचलित है, लेकिन फिर भी समाजशास्त्रियों का एक मुखर, साक्षर और बढ़ता संगठन है जिनका इस प्रकार के कार्य में विश्वास दृढ़ होता जा रहा है, वे परिघटना समाजशास्त्र के संस्थापक द्वारा रखी गई नींव पर ईमारत बनाने का काम कर रहे हैं, या कम से कम इन्होंने अमेरिकी जमीन पर उस विषय की शुरुआत और विकास का दायित्व उठाया है। अपने कार्य में उन्होंने मैक्स वेबर के 'कार्य' के सिद्धांत और उनके 'आदर्श प्रकार' ढंग के निर्माण का स्पष्टीकरण करने की कोशिश की है। शट्ज के योगदान पर चर्चा करने से पहले, यहां यह बताना जरूरी है कि यूरोप में तत्वविज्ञान की ओर झुकाव वाले शुरुआती समाजशास्त्रियों ने, परिघटना से संबंधित कई मामलों पर जांच करनी शुरू कर दी थी, खासकर जर्मन समाजशास्त्री एल्फ्रेड वीरकैंट्ड (1867–1952) और उसी अवधि के फ्रेंच विज्ञानी, ज्यूल्स मॉन्नेरट ने। वीरकैंट्ड, जिन्होंने 'नैचुरल एंड कल्चरल पीपल (1895) और 'थ्योरीऑफ सोसाइटी (1922)', लिखी है, का यह मानना था कि समाज मानव की परस्पर क्रिया और उसके तरीकों का कुल योग है जिसे 'विचारात्मक अमूर्त' कहा जाता है और जिसमें 'चिंतन द्वारा स्पष्ट की गई मौलिक स्थिति सिद्धांतों' की तलाश शामिल है, 'स्थिति' तथा 'चिंतन' शब्दों पर दबाव, शट्ज के कार्यों को काफी हद तक प्रभावित करता है। जैसाकि 'सोशियल फैक्ट्स आर नॉट थिंग्स (1946)' में दर्शाया गया है, इसके लेखक मॉनेरट, घोर रूप से दुर्खिम के विरुद्ध थे। इनके कार्य में सामाजिक परिस्थितियों की जांच सम्मिलित थी जो समाजशास्त्र द्वारा विश्लेषण योग्य तात्कालिक अनुभवों को ठोस रूप देती है– एक ऐसे समाजशास्त्र द्वारा जो इस धारणा पर निर्मित है कि दुर्खिम द्वारा सामाजिक घटना कहे जाने वाले 'सामाजिक तथ्य' दरअसल केवल मानवीय ढंग से परिभाषित और 'शर्तों' या परिस्थितियों के रूप में देखे जाते हैं, इस प्रकार इन्हें केवल मानवीय तरकीब होने के आधार पर वास्तविक माना जा सकता है।

एल्फ्रेड शट्ज (1899–1959) एक सामाजिक तत्वविज्ञानी थे, जिन्होंने नाजियों के डर से 1939 में जर्मनी छोड़ दिया। बैंकिंग और चातुर्य में गुणवान और प्रतिभाशाली, शट्ज ने 1943 में, अपने गुजर बसर के लिए सुबह के समय न्यूयॉर्क सिटी बैंक में नौकरी करनी शुरू की और शाम के समय सामाजिक खोज के लिए न्यू चिंतनधारा में सामाजिक तत्वविज्ञान पढ़ाना शुरू किया। नौ साल बाद वे समाजशास्त्र और तत्वविज्ञान के प्रोफेसर बन गए और 1959 में, अपनी मृत्यु तक वे न्यू चिंतनधारा में पढ़ाने का काम करते रहे। अमेरिकी समाजशास्त्र में परिघटना की शुरुआत का श्रेय शट्ज को जाता है। इन्होंने, लोगों द्वारा रोजमर्रा के जीवन से जोड़ने वाले अर्थों को केंद्रीय महत्व प्रदान

किया और हसर्ल के तत्वविज्ञान को समाजशास्त्र के अनुकूल बनाने के साथ वेबर वर्सचेर या उनके व्यक्तिपरक समझ के संद्धांत को अपनी प्रणाली में सम्मिलित किया। हसर्ल के परिघटना तत्वज्ञान को सामाजिक विज्ञान समस्याओं पर लागू करने की कोशिश में, शट्ज को यह अहसास हुआ कि वेबर द्वारा प्रस्तावित 'वर्सचेर' का सिद्धांत उनके द्वारा दिए गए व्यक्तिगत चेतना के जोर के अनुकूल था।

शट्ज, मूल रूप से इस बात में विश्वास रखते थे कि, 'अनुभव और मान्यताओं के साझा किए गए अर्थ सामाजिक जीवन के लिए आधार प्रदान करते हैं'।

दैनिक जीवन का अंतर–व्यक्तिपरक संसार

अपने प्रमुख कार्य, 'द मीनिंगफुल स्ट्रक्चर ऑफ सोशियल वर्ल्ड' में एल्फ्रेड शट्ज ने कुछ सामाजिक विज्ञानों के मुख्य सिद्धांतों की, चेतना के मौलिक वर्णन में, जड़ तक पहुंचने की कोशिश की है। इस तरह इन्होंने वेबर के 'समझौता समाजशास्त्र' और हसर्ल की दिव्य परिघटना में संबंध की ओर इशारा किया है।

शट्ज का कहना है कि रोजमर्रा का सामाजिक जीवन, 'सदा अंतर–व्यक्तिपरक होता है'। इस संसार को मैं अपने साथियों के साथ बांटता हूं जिनके अपने अनुभव होते हैं, और जिनका वे अपने अनुसार अर्थ निकालते हैं। इसलिए मेरा संसार कभी भी सम्पूर्णतः निजी नहीं हो सकता। अपनी चेतना में भी मैं, दूसरों का सबूत ढूंढ़ता हूं, इस बात का सबूत कि मेरी अनोखी जैविक परिस्थिति केवल मेरे द्वारा किए गए कार्यों का नतीजा नहीं है। हम में से हरेक व्यक्ति, एक ऐसे ऐतिहासिक संसार में जन्मा है जो एक ही समय पर प्राकृतिक भी है और सामाजिक–सांस्कृतिक भी। इस संसार का अस्तित्व मेरे जन्म से पुराना है और मेरे मरने के बाद भी यह संसार यूं ही चलता रहेगा। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की जीवन परिस्थिति का एक तत्व है। मैं उन्हें प्रभावित करता हूं और वे मुझे, और हम सब इस रोजमर्रा के संसार को समान रूप से अनुभव करते हैं। रोजमर्रा के जीवन का हमारा अनुभव सामान्य–रूप प्रकार का है, क्योंकि हम सब अपने संगी साथियों के अस्तित्व को सदा के लिए मानते हैं, हमें लगता है कि हमारी तरह वे भी उसी प्राकृतिक ऐतिहासिक, सामाजिक–सांस्कृतिक संसार में जीवित रहेंगे'।

दूसरों का ज्ञान

शट्ज सामान्य–रूप, सदा के लिए, रोजमर्रा शब्दों की विशेषताओं का वर्णन करते हैं, हसर्ल के 'लेबेंस्वेल्ट' का विस्तार। शट्ज ने हसर्ल के प्रस्तुति के देश का प्रयोग करते हुए यह स्पष्ट करने की भी कोशिश की है कि किस प्रकार हमें दूसरों का ज्ञान होता है और हम उनसे संचार करते हैं। 'केवल दूसरे का शरीर मेरे सामने प्रस्तुत किया जाता है, उसका मन नहीं। उसका सचेत जीवन अनुभवों के साथ प्रस्तुत होता है केवल प्रस्तुत नहीं। मेरी चेतना को उसके सचेत जीवन का संकेत प्राप्त होता है और उसके शरीर के दृश्य बोध, उसकी क्रियाओं और उसके प्रति दूसरों की क्रियाओं से ज्यादातर अनुभव होते हैं'। हसर्ल ने इन अच्छी तरह व्यवस्थित संकेतों को अनुभवों के साथ प्रस्तुत प्रणाली का नाम दिया है, जिसे वे पहले चिह्न प्रणाली का स्रोत और बाद में भाषा का स्रोत मानते हैं। संक्षेप में कहा जाए तो, हम दूसरे के भौतिक शरीर को उसके आत्मिक अस्तित्व का व्यक्तव्य मानते हैं– लगभग स्केलर के 'व्यक्ति' और संकेतक परस्पर क्रिया 'आत्म' के समान।

यह प्रक्रिया उस प्रक्रिया के समान है जिसमें हम किसी सांस्कृतिक वस्तु में अर्थ ढूंढ़ते हैं– जैसेकि कोई किताब, यंत्र या एक घर। एक किताब पढ़ते समय में उस किताब को एक भौतिक वस्तु से नहीं बल्कि उसके शब्दों में छिपे अर्थ समझने से संबंद्ध होता है। हम किसी भी वस्तु के आत्मिक अर्थ को अनुभवों के साथ प्रस्तुत करने व समझने की कोशिश करते हैं, बल्कि न केवल उसकी दिखावट के साथ। हम हर वस्तु को उसके अर्थ से जोड़कर देखते और समझते हैं।

दृष्टिकोणों का परस्पर लेन–देन

जब शट्ज, माइक्रो संसार की 'आमने–सामने' की परस्पर क्रिया की बात करते हैं तो, वे 'मेरी असल पहुंच में संसार' और 'मेरे जोड़–तोड़ क्षेत्र के भीतर का संसार', जैसे वाक्यांशों का भी प्रयोग करते हैं। विलियम जेम्स और जॉर्ज हरबर्ट मीड द्वारा चाहे इन यथार्थ शब्दों का न सही, बल्कि इन सिद्धांतों का प्रयोग तो अवश्य किया गया है।

यह माइक्रो संसार, मेरी असल पहुंच का क्षेत्र वो नहीं जो तुम्हारी पहुंच में आता है, इसका मतलब यह हुआ कि तुम्हारा 'वहां' मेरा 'यहां' है। इसमें कोई शक नहीं कि मेरा और तुम्हारा संसार आपस में मेल–जोल कर सकता है, जिस कारण कई चीजें हम दोनों के जोड़–तोड़ क्षेत्र में आ जाती हैं। इसके बावजूद, सभी चीजें और घटनाएं हमें अपने अपने नजरिए के अनुसार अलग रूप में दिखाई देंगी', सामान्य–रूप, सदा के लिए व्यवहार के अनुसार हम अपनी अपनी जगह बदल सकते हैं और यदि हमने ऐसा किया तो हम दूसरे के अनुसार संसार को देखने में सक्षम हो जाएंगे।

शट्ज हमें यह याद दिलाते हैं कि, 'दृष्टिकोणों की अदला बदली' एक बिल्कुल सरल माइक्रो संसार में भी एक आदर्श रूप देने जैसा है। खैर, वैसे तो यह सच है कि हम अक्सर अपने दृष्टिकोणों की अदला बदली करके अपने नजरिए परिवर्तित कर सकते हैं।

कम से कम व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए, एक दूसरे के संसार के लिए एक प्रकार की अनिवार्य श्रेष्ठता भी है। जैविक रूप में अनोखी परिस्थितियों से उत्पन्न उनकी अपनी–अपनी प्रासंगिकता के अलावा, श्रेष्ठता का एक और प्रकार है, जो 'हम–संबंध' से प्रकट होता है। शट्ज के अनुसार यह घटना, रोजमर्रा के जीवन के अर्थ के दायरे से संबंधित है और इसे केवल संकेतक रूप में समझा जा सकता है।

विभिन्न वास्तविकताएं

यहां शट्ज ने विलियम्स जेम्स के 'उप ब्रह्मांड' के विचार को परिवर्तित किया है। जेम्स का यह मानना था कि हमें उत्तेजित या प्रेरित करने वाली अन्य चीज को हम वास्तविक मानते हैं और यह धारणा हमारे मन में तब तक सच बनी रहती है जब तक इसका विरोध सिद्ध न हो जाए। हमें भिन्न प्रकार की वास्तविकताओं या 'उप ब्रह्मांडों' का अनुभव होता है, इनमें से सबसे महत्वपूर्ण हैं भौतिक चीजों का संसार, विज्ञान की दुनिया, आदर्श संबंध का, जनजाति की मूर्तियां, अलौकिकता, व्यक्तिगत राय और अंत में, निरा पागलपन और मौज। अपनी मनोवैज्ञानिक दिलचस्पी के कारण, जेम्स ने भिन्न वास्तविक व्यवस्थाओं के सामाजिक निहितार्थ को आगे नहीं बढ़ाया और शट्ज बिल्कुल यही करना चाहते थे।

अंत में, वैज्ञानिक सिद्धांत एक संसार है, जिसे शट्ज ने जानबूझ कर संकीर्ण रूप से यह कह कर परिभाषित किया है कि यह एक ऐसी गतिविधि है जिसका लक्ष्य है

संसार का अवलोकन और उसे समझना, लेकिन उस पर प्रभुत्व पाना नहीं। व्यावहारिक और सुधारात्मक उद्देश्य वास्तव में, 'वैज्ञानिक सैद्धांतीकरण की प्रक्रिया का तत्व' नहीं है।

सामान्य समझ और सामाजिक विज्ञान—एल्फ्रेड शट्ज

आमतौर पर तत्वज्ञानी इस बात से सहमत होते हैं कि सम्पूर्ण समझ, यहां तक कि सबसे सरल चीज की समझ भी, पूरी तरह संवेदी कभी नहीं होती, बल्कि इसमें कल्पना और सिद्धांत शामिल होते हैं। दिखना, सुनना, छूना आदि हमेशा सोच तथा चेतन गतिविधि के मध्यस्थ तथा उसके साथ संभव होता है। यह, दैनिक जीवन के सामान्य—समझ प्रकार और विज्ञान, दोनों, के लिए सच है। इसलिए यह मानना कि हम संसार को तात्कालिक और प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं— गलत होगा। हमारे द्वारा देखा जाने वाला संसार किसी भी हाल में, 'ठोस' या 'वास्तविक' संसार नहीं होता, क्योंकि सबसे अधिक मौलिक सामान्य—समझ संवेदन में उच्चतम जटिल सारांशन सम्मिलित होता है। हमारे द्वारा देखी गई कोई भी 'चीज', 'बस यूं ही, 'वहां' नहीं होती। बल्कि, यह तो एक ऐसी विचार वस्तु होती है जिसका योगदान हमारी चेतना द्वारा दिया जाता है। कोई भी सामान्य व्यक्ति या वैज्ञानिक जो, इस बात का ध्यान नहीं रख पाता, एल्फ्रेड ऑर्थ वाइटहेड के शब्दों में, 'गलत स्थूलता के भ्रम में जीता है'।

इसके बाद, सारा ज्ञान बौद्धिक प्रतिक्रिया द्वारा मध्यस्थ किया जाता, क्योंकि इसमें सामान्यीकरण, आदर्शवाद और अमूर्तता सम्मिलित होती है। इस सिलसिले में जिन्हें 'तथ्य' कहा जाता है और कभी कभी 'स्वयं के लिए बोलते हुए' भी परिभाषित किया जाता है, दरअसल ऐसा नहीं करते, लेकिन इनके साथ हमेशा अर्थ जुड़े होते हैं और अनिवार्य रूप से चुने और समझाए गए अमूर्त तथ्य होते हैं।

आदर्श रूप में, एक प्राकृतिक वैज्ञानिक अपनी समस्याओं का चुनाव करता है और इस बात का भी निर्णय करता है कि वास्तविकता के किन पहलुओं का अध्ययन किया जाना चाहिए। उसकी जांच के विषय द्वारा तथ्यों का पूर्वचुनाव या पुनर्व्याख्या नहीं की जाती, क्योंकि अर्थ उसके द्वारा जांची गई बुद्धिहीन वस्तुओं की प्रकृति के लिए आंतरिक नहीं होते।

शट्ज के अनुसार, सामाजिक विज्ञान ऐसी समस्याएं प्रस्तुत करते हैं जिन्हें विशिष्ट कार्यप्रणाली उपकरणों के जरिए हल किया जा सकता है। इस संबंध में वेबर के अनुयायी वेबर की कार्रवाई व्याख्या को परिघटना की अंतर्दृष्टि से पूरा करते हैं।

रोजमर्रा अनुभवों की प्रारूपता

हम सब का संसार हमेशा से पूर्व—अनुभवी और पूर्व—पुनर्व्याख्यात रहा है, ताकि संसार के प्रति हमारा ज्ञान हमेशा हमारे पूर्वजों एवं समकालीनों के अनुभव पर आधारित रहे। इससे हमारा सदा के लिए निर्विवाद वैसे कभी संदिग्ध भूमि के प्रति ज्ञान स्थापित होता है।

यहां या कहीं भी होता यह है कि 'मैं', अपनी दिलचस्पी या आवश्यकता के आधार पर केवल कुछ पहलुओं को चुनता हूं और बाकी पहलुओं को अनदेखा कर देता हूं। यहां 'दिलचस्पी' और 'आवश्यकता' मुख्य शब्द हैं। आप और मैं, सामाजिक—सांस्कृतिक संसार में भिन्न स्थितियों पर हैं, जिस कारण हमारी दिलचस्पियां और आवश्यकताएं भी अलग हैं। अपने विभिन्न स्थानों के बावजूद, 'हम' कई बार यह मान लेते हैं कि, 1.हमारे

दृष्टिकोण आपस में बदले जा सकते हैं, कि 2. हमारी आवश्यकता प्रणालियां 'सभी व्यावहारिक कारणों' से अनुकूल हैं। इस 'हम' में सम्मिलित सभी लोग, इन मान्यताओं को सदा के लिए ले लेते हैं और इन्हें आदर्श रूप प्रदान कर देते हैं।

टिप्पणी

इन मान्यताओं के साथ, अपने अपने जैविक अनोखी परिस्थितियों के दृष्टिकोण से ज्ञान कभी 'मेरा', 'तुम्हारा' या 'उनका' नहीं दिखाई पड़ता। बल्कि, यह 'सबके ज्ञान' के रूप में प्रतीत होता है, और 'वस्तुपरक एवं अनाम' दिखाई पड़ता है जो हमारे दृष्टिकोण और परिस्थितियों से प्रभावित नहीं होता। बेशक, रोजमर्रा के जीवन के प्रति हमारे ज्यादातर ज्ञान में, सामान्य रूप से स्वीकृत, व्यावहारिक तथा वातावरण के अनुकूल बनने के निपुण तरीके सम्मिलित हैं।

'के लिए' उद्देश्य और 'क्योंकि' उद्देश्य

'के लिए' उद्देश्य स्पष्ट रूप से भविष्य की स्थिति से संदर्भित है जो एक अभिनेता अपने कार्यों द्वारा स्थापित करना चाहता है। 'क्योंकि' उद्देश्य, दूसरी ओर, अतीत से संदर्भित हैं। ये, अभिनेता द्वारा किए जा रहे या किए जा चुके कार्य के एक प्रकार और एक मात्रा को निर्धारित करते हैं। अभिनेता द्वारा की जा रही कार्रवाई के दौरान वह केवल 'के लिए' उद्देश्यों के प्रति सचेत होता है 'क्योंकि' उद्देश्यों के प्रति नहीं। 'क्योंकि' उद्देश्य का ज्ञान उसे अपने कार्य की पूर्ति या कम से कम शुरुआती चरणों की सम्पन्नता के बाद होता है। यह जागरुकता चिंतन द्वारा, पूर्वव्यापी प्राप्त की जाती है। लेकिन इसके आगे शट्ज का यह मानना है कि 'अभिनेता अभिनय करना बंद कर देता है; वह स्वयं का समीक्षक बन जाता है।

सामाजिक संपर्क में— उदाहरण के लिए, प्रश्न करना और उत्तर देना— एक अभिनेता 'के लिए' उद्देश्य, दूसरे अभिनेता के 'क्योंकि' उद्देश्य बन जाते हैं। हम इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि सामान्य रूप से हमारे प्रश्नों का कोई दूसरा व्यक्ति अवश्य उत्तर देगा जिससे हमें वस्तु के प्रति आवश्यक जानकारी प्राप्त होगी। कई मामलों में उद्देश्य सरल और स्पष्ट होते हैं।

भौतिक एवं सामाजिक, सभी विज्ञान सारांशन का प्रयोग करके, अनोखी नहीं बल्कि सामान्य घटनाओं की जांच करते हैं। सामाजिक विज्ञानों के लिए ऐसा करना बिल्कुल उपयुक्त है क्योंकि हर तथ्य, घटना या अनुभव की जांच में लोग सम्मिलित होते हैं।

शट्ज के अनुसार, सामाजिक विज्ञानों की विशेष समस्या और दायित्व है 'कार्यात्मक उपकरणों का प्रयोग करके उद्देश्य और व्यक्तिपरक अर्थ संरचना का जांच योग्य ज्ञान प्राप्त करना'। इस काम को पूरा करने हेतु सामाजिक वैज्ञानिक को विशेष ज्ञान प्राप्त होना चाहिए, इसके अलावा सामान्य समझ और सामाजिक विज्ञान के प्रारूपी निर्माणों के संबंध में व्यवस्थित जागरुकता भी होनी चाहिए। इस तरह, सामाजिक वैज्ञानिक उदासीन अवलोकन का विशेष उदाहरण है। शट्ज का यह कहना है कि उदासीनता एक प्रकार का रवैया है। यह एक आदर्श दशा है जिसे पाने की सामाजिक वैज्ञानिक को कोशिश करनी चाहिए। इस दशा को प्राप्त करने के लिए वह लागू करने की आवश्यकता है जो शट्ज के परिघटना पूर्वजों द्वारा निर्धारित किया गया है— एक व्यक्ति सामाजिक संसार में अपनी स्थिति, परिस्थिति और अनुभव और उनसे प्राप्त मूल्यों एवं हितों पर चिंतन करता है।

सामाजिक विज्ञान के निर्माण और मॉडल

खतरे के स्रोत की तलाश में, शट्ज सामाजिक वैज्ञानिकों की प्ररूपी प्रक्रियाओं का पुनर्निरीक्षण करते हैं। कुछ कार्रवाइयों के स्पष्टीकरण हेतु वे आदर्श कार्रवाइयों के प्रारूपी कारणों का निर्माण करते हैं। इनके द्वारा किया गया यह कार्य विशिष्ट वैज्ञानिक समस्याओं से संबंधित है।

शट्ज द्वारा कुछ सामान्य एवं कार्यक्रम संबंधी तत्वों का सुझाव दिया गया है। ये सामाजिक वैज्ञानिक का मॉडल्स के निर्माण में दिशा निर्देशन करते हैं, जो उसे मनुष्य की कार्रवाइयों और उनके व्यक्तिपरक अर्थ से वस्तुपरक ढंग से निपटने के योग्य बनाता है। साथ ही साथ, तत्व वैज्ञानिकों को ऐसे मॉडल निर्मित करने के खतरे से आगाह करवाते हैं जो दैनिक जीवन की सामान्य–समझ की विचार वस्तुओं से दूर हो गए हों। अंत में, यह कहना व्यर्थ होगा कि किसी भी हाल में तत्व, वैज्ञानिक प्रक्रियाओं की मौलिक डोंगियों की जगह नहीं ले सकते, लेकिन इसके पूरक अवश्य बन सकते हैं; इस काम के लिए शट्ज ने तीन तत्वों का सुझाव दिया है–

1. **तार्किक संगति के तत्व**– वैज्ञानिक की निर्माण प्रणाली में सर्वोच्च स्पष्टता तथा भिन्नता के साथ औपचारिक तार्किक सिद्धांतों के प्रति अनुकूलता होनी चाहिए। यही औपचारिक तार्किक विशेषता वैज्ञानिक चिंतन को सामान्य–समझ विचारों से भिन्न करती है।
2. **व्यक्तिपरक व्याख्या के तत्व**– यह वेबर की समाजशास्त्र के मुख्य कार्य की धारणा को रेखांकित करता है; वैज्ञानिक के मॉडल्स तथा सिद्धांतों को उसे मनुष्य की कार्रवाई को संदर्भित करने और उसके परिणामों को शामिल अभिनेताओं के व्यक्तिपरक अर्थ से जोड़ने के लिए सामर्थ्य प्रदान करना चाहिए।
3. **उपयुक्तता के तत्व**– ये तत्व वैज्ञानिक को अपने निर्माणों एवं सामाजिक वास्तविकता के अनुभव की सामान्य–समझ के बीच स्थिरता लाने की आज्ञा प्रदान करते हैं।

शट्ज का कार्य मुख्य रूप से कार्यक्रम संबंधी है; यहां सारांशित विचारों के अलावा, इनके द्वारा प्रसारित ढंग का बहुत कम विकास या उपयोग किया गया है।

1.5.3 नृवंशविज्ञान दृष्टिकोण तथा समाजशास्त्रीय सिद्धांत

नृवंशविज्ञान शोध या अनुसंधान दस्तावेज और सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान के रूप में भौतिक वर्णन पर आधारित जातीय समूहों का विश्लेषण करने के लिए किया जाता है, तथा समाजशास्त्री नृवंशविज्ञान को सामाजिक समूहों के रूप में एवं एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में अध्ययन एवं प्रस्तुतीकरण के लिए प्रयोग करते हैं।

नृवंशविज्ञान उपागमों में सामाजिक शोध कार्यों में विशिष्ट प्रकार के गुणात्मक शोध की विधियां उपयोग की जाती हैं जो कि मुख्य रूप से मानव विज्ञान के क्षेत्र से ली गई हैं। मानव विज्ञान के क्षेत्र से ली जाने वाली शोध विधियों के कारण ही ऐसा भी माना जाता है कि नृवंशविज्ञान वास्तव में, मानव शास्त्र अथवा मानव विज्ञान की एक शाखा है। नृवंशविज्ञान की सहायता से समाज की विभिन्न संस्कृतियों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है जो एक विशेष भौगोलिक क्षेत्र में रहती है। परंतु नृवंशविज्ञान का उपयोग समाज के अन्य पहलुओं के अध्ययन के लिए भी किया जाता है।

नृवंशविज्ञान आधारित शोध

टिप्पणी

मानवशास्त्र, मानव–जाति विज्ञान या नृविज्ञान (Anthropology) मानव, उसके जेनेटिक्स, संस्कृति और समाज के वैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से अध्ययन है। इसके अंतर्गत मनुष्य के अतीत और वर्तमान के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। सामाजिक नृवंशविज्ञान और सांस्कृतिक नृविज्ञान के तहत मानदंडों और समाज के मूल्यों का अध्ययन किया जाता है। भाषाई नृवंशविज्ञान में पढ़ा जाता है कि कैसे भाषा सामाजिक जीवन को प्रभावित करती है। जैविक या शारीरिक नृवंशविज्ञान में मनुष्य के जैविक विकास का अध्ययन किया जाता है।

नृवंशविज्ञान एक वैश्विक अनुशासन है, जिसमें मानविकी, सामाजिक और प्राकृतिक विज्ञान को एक दूसरे का सामना करने के लिए मजबूर किया जाता है। मानव विज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान के समेत मनुष्य उत्पत्ति, मानव शारीरिक लक्षण, मानव शरीर में बदलाव, मनुष्य प्रजातियों में आये बदलावों इत्यादि से ज्ञान की रचना करता है, परंतु मुख्य रूप से इस विज्ञान का उद्देश्य मानव का वंश संबंधी अध्ययन करना है।

सामाजिक–सांस्कृतिक नृवंशविज्ञान भी, संरचनात्मक और उत्तर आधुनिक सिद्धांतों से से प्रभावित हुआ है, क्योंकि हम जानते हैं कि सामाजिक परिवर्तन के कारण होने वाले विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों से कोई विज्ञान भी अछूता नहीं रह सकता है एवं तदानुसार प्रमुख विज्ञान को अपने अंदर आधुनिक सिद्धांतों को समाहित करना समय की आवश्यकता हो जाता है। इस प्रकार से हम यह भी कहने की स्थिति में आ जाते हैं कि नृवंशविज्ञान का विषयक्षेत्र मात्र मनुष्यों के संस्कृति एवं परंपराओं तथा वंशों से संबंधित अध्ययन करने मात्र तक ही सीमित नहीं है वरन इसका कार्य क्षेत्र अत्यंत विशाल है।

जो सामाजिक शोधकर्ता नृवंशविज्ञान की सहायता से मानव समाजों का अध्ययन करता है उसे नृवंशविज्ञानी कहा जाता है। एक नृवंशविज्ञानी को, मूलतः समाज के अंदर जाकर अध्ययन करना होता है। इस प्रकार से समाज के अंदर जाकर किए जाने वाले अध्ययन कार्य को एक प्रमुख प्रकार की शोध पद्धति के माध्यम से किया जाता है जिसे बुनियादी सिद्धांत (grounded theory) कहा जाता है। यद्यपि नृवंशविज्ञान पर आधारित शोध का प्रमुख उद्देश्य समाज में मनुष्य के जीवन से संबंधित अंदरूनी सूचनाएं एकत्रित करके उनका विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना होता है, जिससे कि यह स्पष्ट किया जा सके कि समाज में व्यक्ति अपनी दिन प्रतिदिन की कार्यवाहियों को किस प्रकार से करते हैं तथा उनका जीवन किस प्रकार का है।

समाजशास्त्र, प्राकृतिक विज्ञान तथा भारतीय नृवंशविज्ञान में भी गुणात्मक शोध उपागमों का उपयोग किया जाता है जैसे कि–

- प्रकरण अथवा घटना शास्त्र (Phenomenology)
- अनुसंधान क्षेत्र (Field research)

नृवंशविज्ञान में बुनियादी सिद्धांत विधि

नृवंशविज्ञान में बुनियादी सिद्धांत विधि को सामाजिक अध्ययन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण उपकरण माना जाता है। समाज की संस्कृति से संबंधित आंकड़ों को समाज से वर्तमान के संदर्भ में एकत्रित किया जाता है। नृवंशविज्ञान में बुनियादी सिद्धांत विधि का उपयोग

तो किया ही जाता है इसी के साथ इस विधि का उपयोग विज्ञान की अन्य शाखाओं में भी किया जा रहा है एवं यह समान रूप से महत्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध होता हुआ एक नया विषय है जिसके माध्यम से समाजशास्त्रीय अध्ययन किए जा रहे हैं। उदाहरण के लिए हम देख रहे हैं कि तकनीक एवं सामाजिक शोध विधियों में होने वाले विकास के कारण, गुणात्मक शोध विधियां नित्य नए क्षेत्र में प्रसिद्धि प्राप्त कर रही हैं जैसे कि ग्राहक शोध। इसका एक प्रमुख कारण बढ़ता हुआ उपभोक्तावाद एवं उससे संबंधित प्रवृत्तियों में होने वाले परिवर्तन हैं। परिणामस्वरूप उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों का ही ध्यान बाजार अनुसंधान विधियों की तरफ जा रहा है एवं यह तेजी से उभरते हुए शोध के क्षेत्र हैं एवं इनमें अनेक नए सिद्धांत को प्रतिपादित करना अभी बाकी है। परंतु गुणात्मक का उपयोग नृवंशविज्ञान के अध्ययनों में किया जा रहा है एवं विद्वान तो उपभोक्ता बाजार एवं इसके पुनरुत्पादन व्यवस्था में इस पद्धति का महत्वपूर्ण उपयोग मानते हैं। इस पद्धति का उपयोग करते हुए नगरीय एवं शहरी क्षेत्रों में निवास करने वाले व्यक्तियों के उपभोक्ता प्रतिमानों का अध्ययन किया जा सकता है जिससे बाजार में अपेक्षित परिवर्तन करते हुए उत्पादक अपने उत्पादों में तदानुसार बदलाव ला सकें। अतः यह निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि यह विषय अनेक प्रकार के शोध बिंदुओं एवं परिवर्तनीय प्रकार की पद्धतियों के द्वारा किया जा रहा है। होलब्रुक के शब्दों में– It is leading to different types of research topics with variable types of method. (Holbrook 1995).

वैश्वीकरण के कारण बढ़ते उपभोक्तावाद एवं उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों के बढ़ते हुए अनुभव में उपभोक्ता शोध के नए द्वार खोल दिए हैं। जैसे कि बेल्क के शब्दों में एवं अन्य के द्वारा की गई शोध के अनुसार यह कहा जा रहा है कि उपभोक्ता शोध को भी अनेक प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है। बेल्क के ही शब्दों में– As per research which was conducted recently consumer research can be classified in different ways. (Belk 1996)

नृवंशविज्ञान की अवधारणा

अपने मूल अर्थ एवं सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य में नृवंशविज्ञान एवं मानवशास्त्र प्रमुख रूप से सांस्कृतिक विविधताओं एवं पूर्व में पाए जाने वाली विभिन्न विभिन्नताओं का सही ढंग से अध्ययन करके उनकी व्याख्या करना होता है। विभिन्न संस्कृतियों का यह अध्ययन तुलनात्मक रूप से होता है तथा अध्ययन को सामान्यकृत करके शोधकर्ता प्रस्तुत करता है जिससे विभिन्न संस्कृतियों की तुलना प्रस्तुत की जा सके तथा संस्कृति को अन्य संस्कृति से पृथक रखकर बिंदु निश्चित किए जा सकें।

जैसा कि सभी प्रकार के शोध कार्य में होता है अनुसंधान समस्या के निर्धारण हो जाने के पश्चात शोधकर्ता को अपने हाइपोथिसिस एवं मान्यताओं के अनुसार आंकड़ों को संग्रहित करना होता है। यह संग्रहित आंकड़े ही तत्पश्चात विश्लेषण के माध्यम से शोधकर्ता निष्कर्षों के रूप में प्रस्तुत करते हैं जोकि प्रस्तुतीकरण की विधा के ऊपर निर्भर करता है। यह निष्कर्ष शोधकर्ता श्रोताओं एवं विषयों के विशेषज्ञों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

अनेक सामाजिक शोधकर्ता नृवंशविज्ञान का उपयोग समाज के विभिन्न पहलुओं के अध्ययन के स्वरूप का आकलन करने के लिए कर रहे हैं जैसे कि इनका उपयोग किसी विशेष उत्पाद के उपभोग से है तथा समाज में मनुष्य के दैनिक जीवन में

उपभोक्ता वस्तुओं के उपयोग एवं भूमिका से संबंधित है। जैसा कि बेल्क ने भी अपने अध्ययन में कहा है–

Several social researchers have used ethnography to study different aspects of the society such in the form of micro level analysis as far as consumption of the product is concerned to the rule of consumption in everyday life of human beings in the society. (Belk 1987).

कुछ सामाजिक शोधकर्ता प्राकृतिक विधियों का उपयोग भी सामाजिक शोध में करते हैं एवं यह विधियां अनुसंधान एवं अन्वेषण करते हुए बाजार के क्षेत्र में, बाजार तथा उपभोक्ताओं के व्यवहार को सूक्ष्म स्तर पर समझने के लिए कर रहे हैं। (Sheth and Gross 1988).

समाजशास्त्र से संबंधित शोध करने वाले शोधकर्ता अपने शोध कार्य में कर्म, कर्त्ता, प्रकृति, खोज के तरीकों का उपयोग कर रहे हैं। (Annells 1996).

इस प्रकार से हम यह भी कह सकते हैं कि नृवंशविज्ञान एक प्रकार की प्राकृतिक अनुसंधान विधि है तथा यह विधि मानव समाज एवं किसी विशिष्ट संस्कृति के अध्ययन के लिए उपयोग में लाई जाती है। सारांटकोस के शब्दों में–

This way we can say that the ethnography can be considered as a type of ethnography in a form of naturalistic investigation and it has specific types of interest in the study of a particular culture in human society. (Sarantakos 1993).

ऐसा कहने के अनेक कारणों में से प्रमुख कारण यह भी है कि हर वर्ष विज्ञान का प्रमुख उपयोग मनुष्य के वंशों से संबंधित अध्ययन करना होता है, अर्थात यह भी कहा जा सकता है कि नृवंशविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो कि संस्कृति का लेखन है।

नृवंशविज्ञान पर आधारित अध्ययन मानव संस्कृति के सामाजिक सदस्यों के बारे में एवं उनकी पारस्परिक अंतर क्रियाओं को लिखित रूप से समझने का एक शास्त्र है। (Arnould and Wallendorf 1994).

नृवंशविज्ञान की कार्यप्रणाली

नृवंशविज्ञान एक शोध पद्धति होने के कारण यह भी अन्य पद्धतियों की भांति, अनेक प्रकार के प्रयोगात्मक आंकड़ों एवं इन आंकड़ों को एकत्रित करने की विधि जैसे प्रेक्षण, डायरी, छवियां, लिखित आंकड़े एवं साक्षात्कार इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। अन्य शोध कार्यों की ही तरह ही नृवंशविज्ञान में भी अनुसंधान क्षेत्र से आंकड़े एकत्रित करने के पश्चात उन्हें विभिन्न विधियों के द्वारा विश्लेषण करना होता है। यह विश्लेषित आंकड़े शोधकर्ता के द्वारा उपयुक्त निष्कर्षों के साथ शोध परिणामों के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं।

शोध के लिए आवश्यक समय अवधि

किसी भी शोध कार्य को संपन्न करने के लिए यह अवश्य ही सावधानी बरतनी चाहिए कि शोधकार्य एक निश्चित समयावधि में संपूर्ण हो जाए तथापि शोध कार्य में लगने वाला वास्तविक समय शोध के प्रकार एवं प्रयुक्त पद्धति पर निर्भर करता है। जैसा कि साधारण शोध कार्यों में होता है कि एक विशेष प्रकार के अनुसंधान समस्या में लगभग 6 से 8 सप्ताह का समय अवश्य ही लग जाता है, इस अवधि में शोधकर्ता के पास पर्याप्त समय होता है कि वह समाज में व्यक्तियों के साथ संपर्क करते हुए आवश्यक

सूचनाओं को एकत्रित कर सकते हैं। परंतु पुनः समझ लेना चाहिए कि यह कोई स्थापित मानक नहीं है वरन सूचनाओं को एकत्रित करना अनुसंधान क्षेत्र के आकार एवं सूचनाओं के प्रकार के ऊपर भी निर्भर करता है।

टिप्पणी

नृवंशविज्ञान और मानव जाति विज्ञान

जैसा कि स्पष्ट ही है कि नृवंशविज्ञान एवं नर विज्ञान आपस में अंतर संबंधित जटिल उपागम हैं जिनका उपयोग समाजशास्त्रीय अध्ययन, वैज्ञानिक आधार पर करने का कार्य किया जाता है।

मानव जाति विज्ञान (यूनानी शब्द एथनॉस, अर्थ 'लोग, राष्ट्र, नस्ल') मानव शास्त्र की एक शाखा है जो मानवों के सजातीय, नस्ली और राष्ट्रीय वर्गों के उद्गमों, वितरण, तकनीकी, धर्म, भाषा तथा सामाजिक संरचना की तुलना तथा विश्लेषण करती है।

मानव जाति शास्त्र, (संस्कृति के प्रत्यक्ष संपर्क द्वारा एकल समूहों का अध्ययन) की तुलना में मानव जाति विज्ञान उन शोधों को स्वीकार करता है जो मानव जाति विज्ञानियों ने एकत्रित किया है और फिर उनके आधार पर भिन्न संस्कृतियों की समानताओं और असमानताओं की तुलना करता है। वाक्यांश, मानव जाति विज्ञान का श्रेय एडम फ्रेंज कॉल्लर को दिया जाता है जिन्होंने 1783 में वियना में प्रकाशित अपनी पुस्तक में इसका प्रयोग किया था और इसे परिभाषित किया था। भाषाई और सांस्कृतिक भिन्नता में कॉल्लर की रूचि अपने पड़ोसी, बहुभाषी किंगडम ऑफ हंगरी की परिस्थिति और इसके स्लोवाक्स लोगों के बीच उनकी जड़ें होने के कारण तथा सर्वाधिक सुदूर बालकन्स में ओट्टोमैन साम्राज्य की क्रमिक पराजय के फलस्वरूप शुरू हुए स्थानांतरण के कारण पैदा हुआ।

मानव इतिहास का पुनर्निर्माण और सांस्कृतिक अपरिवर्तनशीलताओं का निरूपण तथा मानव स्वभाव के व्यापकीकरण का निरूपण, एक सिद्धांत जिसकी 19वीं शताब्दी से अनेक दार्शनिकों (हीगल, मार्क्स, संरचनात्मकतावाद आदि) द्वारा आलोचना की जा रही है। मानव जाति विज्ञान के उद्देश्यों में से एक रहा है, जैसे कि कौटुम्बिक व्यभिचार का प्रतिबन्ध और सांस्कृतिक परिवर्तन। विश्व के कुछ भागों में मानव जाति विज्ञान, जांच के स्वतंत्र मार्ग और शैक्षणिक सिद्धांत के मार्ग पर विकसित हुआ है और इसके साथ ही सांस्कृतिक मानव शास्त्र संयुक्त राज्य अमेरिका में और सामाजिक मानव शास्त्र ग्रेट ब्रिटेन में अधिक प्रभावशाली हो गया है। इन तीनों शब्दों के मध्य अंतर बहुत अधिक अस्पष्ट है। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से ही मानव जाति विज्ञान को एक शैक्षिक क्षेत्र के रूप में देखा जा रहा है, विशेषतः यूरोप में और इसे कभी–कभी मानव समूहों के तुलनात्मक अध्ययन के रूप में भी समझा जाता है।

15वीं शताब्दी में अन्वेषकों द्वारा किये गए अमेरिका के अन्वेषण ने पश्चिम की नयी विचारधारा के निरूपण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी, जैसे कि, 'अन्य' के सम्बन्ध में धारणा। इस शब्द का प्रयोग 'असभ्य' के साथ किया गया था, जिसे निर्दयी जंगली के रूप में देखा जाता है। इस प्रकार, सभ्यता का निर्दयता के प्रति दोहरा विरोध किया जा रहा था, जो एक प्राचीन विरोध था और जिसमें सार्वजनिक रूप से सहभाजित और भी अधिक मानव जातिवाद संघटित था। मानव जाति विज्ञान की प्रगति, उदहारण के लिए क्लौडे लिवाइस स्ट्रॉस के संरचनात्मक मानव शास्त्र के साथ, ने रेखीय प्रगति के सिद्धांतों की आलोचना का मार्ग प्रशस्त किया, या 'इतिहास संपन्न समाजों' और

टिप्पणी

'इतिहास रहित समाजों' के मध्य आभासी विरोध का मार्ग प्रशस्त किया और संचयी विकास द्वारा गठित इतिहास के सीमित दृष्टि कोण पर बहुत अधिक निर्भर होकर न्याय किया। लेवी–स्ट्रॉस प्रायः, मानव जाति विज्ञान के प्रारंभिक उदाहरण के रूप में नरभक्षण पर मांटैग्ने द्वारा लिखे गए निबंध की ओर संकेत करते थे। एक संरचनात्मक तरीके द्वारा, लेवी–स्ट्रॉस का उद्देश्य मानव समाज में सार्वलौकिक अपरिवर्तनशीलताओं को खोजना है। उनका मत था कि इसमें कौटुम्बिक व्यभिचार पर प्रतिबंध प्रमुख था। हालांकि, 19वीं और 20वीं शताब्दी के अनेक सामाजिक विचारकों, जिनमें मार्क्स, नीत्शे, फूको, एलथूसर और डेल्यूज भी शामिल थे, द्वारा भी सांस्कृतिक सार्वलौकिकता के दावों की आलोचना की गयी है।

सन् 1950 के दशक के प्रारंभ में मार्सेल ग्रिऔले, जर्मेन डायटरलेन, क्लौडे लेवी–स्ट्रॉस और जीन रॉच के साथ, फ्रेंच स्कूल ऑफ एथोनोलॉजी, शाखा के विकास में विशेष रूप से महत्वपूर्ण था। शोध की आवश्यकता के अनुसार नृवंशविज्ञान में अन्वेषण के लिए दो प्रकार की पद्धतियों का उपयोग किया जा सकता है।

नृवंशविज्ञान सिद्धांत का उद्‌भव

ऐसा विश्वास किया जाता है कि नृवंशविज्ञान को प्रथम बार एक व्यक्तिगत विषय के रूप में गैरहार्ड मूलर ने विकसित किया है। उन्हीं को यह श्रेय भी जाता है कि नृवंशविज्ञान से संबंधित सैद्धांतिक अवधारणाओं को भी उन्होंने ही प्रतिस्थापित किया है। ऐसा भी विश्वास किया जाता है कि मानव शास्त्र एवं तत्व संबंधी नृवंशविज्ञान का विकास मुख्य रूप से 19 वीं शताब्दी में पश्चिमी देशों में हुआ था एवं बाद में इसका विस्तार बीसवीं शताब्दी में अमेरिका में ही हो गया था। नृवंशविज्ञान के संबंध में अन्य प्रमुख कार्य प्रख्यात समाजशास्त्री बी टेलर को भी दिया जाता है जोकि इंग्लैंड के निवासी थे। इसी प्रकार से अमेरिका के प्रख्यात विचारक मोरगन को भी इस क्षेत्र में अनेक सांस्कृतिक एवं सामाजिक विमाए स्थापित करने का श्रेय जाता है। इसी प्रकार से अमेरिका के Franz Boas (1858-1942), Bronislaw Malinowski (1858-1942), Ruth Benedict and Margaret Mead (1901-1978), का एक बड़ा शोध–समूह था जिन्होंने इस क्षेत्र में पर्याप्त योगदान दिया है।

नृवंशविज्ञान एवं बुनियादी सिद्धांत में संबंध

अनेक शोध शास्त्रियों ने बुनियादी (ग्राउंडेड) सिद्धांत एवं नृवंशविज्ञान को आपस में जोड़ने का कार्य भी किया है। इस प्रकार के शोध कार्य विस्तारपूर्वक व्याख्या करने में सहायता प्रदान करते हैं, इस प्रकार की व्याख्या सूचनाओं के पद में महत्वपूर्ण होती है जोकि बुनियादी सिद्धांत के आधार पर की जाती है। (Glaser and Strauss 1967)।

परंतु जहां तक प्राकृतिक प्रकार की खोज का संबंध है, उसमें भी नृवंशशास्त्र पर आधारित परीक्षण एवं विश्लेषण महत्वपूर्ण है एवं जो स्थितियां समाज में प्राकृतिक रूप से घटित हो रही हैं उनका अध्ययन इस विज्ञान के माध्यम से किया जा सकता है। (Longabaugh 1980).

इसी प्रकार से बुनियादी सिद्धांत पर आधारित शोध कार्य किसी दी हुई प्राकृतिक सेटिंग में उत्तम प्रकार का विश्लेषण करने में भी सहायक सिद्ध हुई है। (Robrecht 1995).

इस तुलनात्मक अध्ययन एवं समानता के रूप में देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह दोनों परिप्रेक्ष्य, प्रतीकात्मक अंतः क्रियावाद से लिए गए हैं। (Goulding 1998, Annells 1996)

टिप्पणी

फलस्वरूप यह दोनों ही सिद्धांत कभी–कभी प्रतिभागियों के प्रेक्षण पर भी विश्वास करते हैं। (Wells 1995, Arnould and Wallendorf 1994)। आंकड़ों अथवा नमूने का चयन नृवंशविज्ञान एवं बुनियादी सिद्धांत दोनों में ही महत्वपूर्ण होता है (Wells 1995, Belk 1988)। इसी प्रकार से बारनीस का विचार है कि इन दोनों अवधारणाओं में समानता इस कारण से भी है कि इन दोनों में व्यवहार का विवरणात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है। उन्हीं के शब्दों में : Both of these approaches trying to achieve descriptions of behavior. (Barnes 1996)।

उपरोक्त के आधार पर हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि बुनियादी सिद्धांत एवं नृवंशविज्ञान दोनों में काफी समानता है। यह समानता है प्रमुख रूप से आंकड़ों के संग्रहण करने में तथा कंडक्टिविटी एंड एक्टिव सिद्धांत निर्माण तक में है जैसा कि स्टार्स ने भी कहा है : the ethnography offers a method of data collection that is conducive to inductive theory building. (Glaser and Strauss 1967)।

नृवंशविज्ञान के प्रकार

नृवंशविज्ञान के अनेक प्रकारों को समाजशास्त्रियों तथा मानव शास्त्रियों ने विकसित किया है जैसे कि स्वीकारोक्ति पर आधारित नृवंशविज्ञान, जीवन इतिहास, महिलावादी नृवंशविज्ञान परंतु इसके उपरांत भी दो ही प्रकार के नृवंशविज्ञान प्रमुख हैं–

- यथार्थवादी नृवंशविज्ञान
- आलोचनात्मक नृवंशविज्ञान

नृवंशविज्ञान अनुसंधान की विशेषताएं

नृवंशविज्ञान पर आधारित अनुसंधान की अनेक प्रकार की विशेषताएं हैं एवं किसी विशिष्ट प्रकार की विशेषता के आधार पर ही शोधकर्ता इस सिद्धांत को अपने शोध कार्य के अन्वेषण में प्रयोग कर लेते हैं। कई बार शोधकर्ता अपने शोध कार्य में प्राथमिक रूप से संरचनात्मक प्रकार के आंकड़ों को प्रयोग कर लेते हैं। इस प्रकार के आंकड़े मूलतः प्रमुख अनुसंधान और क्षेत्र से एकत्रित नहीं किए जाते हैं, वरन इन्हें द्वितीयक सूत्रों के माध्यम से एकत्र करके अपने शोध कार्य में विश्लेषण के लिए प्रयुक्त कर लिया जाता है। पहला उपागम समस्या आधारित है जोकि, शोध समस्या के सिद्धांत से संबंधित अन्वेषण को बहुत नजदीकी तौर पर समझने में सहायक है। परंतु इसका उपयोग भली भांति चिन्हित किए हुए मुख्य एवं विशेष प्रकार के मानव शास्त्रीय सिद्धांत के आधार पर ही किया जा सकता है।

इस क्षेत्र में दूसरा उपागम प्रेरक दो प्रकार का है जोकि अनुसंधान कार्य अथवा समस्या के चिंतन के लिए किया जाता है तथा इसका उपयोग, अनुसंधान के क्षेत्र से लिए गए अनुभव, उनकी संरचना तथा व्याख्या के लिए किया जाता है। द्वितीय प्रकार के उपागम को मुख्यतः द्वितीय विश्वयुद्ध के समय से किया जा रहा है। इस पद्धति का विकास भी द्वितीय विश्वयुद्ध के समय में भी हुआ माना जाता है

टिप्पणी

नृवंशविज्ञान शोध करने की विधियां

अन्य शोध पद्धतियों का उपयोग नृवंशविज्ञान में शोध करने के लिए भी कर लिया जाता है जैसे कि अन्य विज्ञान अथवा समाजशास्त्र के क्षेत्र में किया जाता है। अतः उपयुक्त शोध पद्धति का उपयोग करते हुए अनुसंधान समस्या एवं क्षेत्र का चयन कर लेना चाहिए। इस शोध अध्ययन का प्रमुख विषय कृषि संस्कृति अथवा सांस्कृतिक ग्रुप के विचार, भाषा, व्यवहार अथवा अन्य समस्या है जो इन समूहों के द्वारा महसूस किए जा रहे हैं, का अध्ययन मुख्य विधि से कर लिया जाता है। शोध की विधियां वही हैं जो कि सामान्य विज्ञान या सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में प्रयोग की जाती हैं। नृवंशविज्ञान पर शोध करने में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य है उस सांस्कृतिक समूह की पहचान करना है जिसके संबंध में शोध किया जाना है। इस समूह में सबसे प्रमुख बात यह होनी चाहिए कि यह लंबे समय से इस समूह का सदस्य रह रहा हो तथा वंश के बारे में संपूर्ण जानकारी रखता हो। क्योंकि किसी एक वंश के बारे में वही व्यक्ति सूचनाएं दे सकता है जो इस वर्ष के साथ में संबंधित हो तथा उसकी परंपरा एवं संस्कृति से भली भांति परिचित भी हो। जैसा कि अनेक विचारकों ने स्पष्ट भी किया है कि अनेक प्रकार की समस्याएं तथा सिद्धांत अध्ययन के फ्रेमवर्क एवं उसकी विषयवस्तु को सांस्कृतिक साझेदारी के आधार पर समझने में सहायता करते हैं।

यहां पर यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि अनुसंधान क्षेत्र से संबंधित कार्य में बहुत सावधानीपूर्वक कार्य करना चाहिए विशेषकर उन तथ्यों को स्पष्ट करने में जो नृवंशविज्ञान से केंद्रीय रूप से संबंधित हो। किसी एक सांस्कृतिक साझेदारी समूह से लिए गए आंकड़ों तथा उनके नृवंशविज्ञान पर आधारित विश्लेषण के संदर्भ में अनेक प्रकार के माध्यमों से आंकड़े एकत्रित किए जा सकते हैं एवं इस समूह का संपूर्णता में प्रस्तुतीकरण भी किया जा सकता है। यह प्रस्तुतीकरण कोष सांस्कृतिक समूहों की समग्रता में चारित्रिक विशेषताओं के प्रकटीकरण में भी सहायक होता है। (Wolcott, 1994b).

अपनी प्रगति जांचिए

7. आधुनिक हर्मेनेयुटिक्स का पिता किसे माना जाता है?
   (क) कॉम्टे (ख) कान्ट
   (ग) स्क्लीयरमार्कर (घ) हैबरमास
8. मनुष्यों द्वारा ज्ञान का पालन मुख्य रूप से कितने बिंदुओं के कारण किया गया?
   (क) 3 (ख) 4
   (ग) 5 (घ) 6

1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (ख)
3. (क)

टिप्पणी

4. (घ)
5. (क)
6. (ख)
7. (ग)
8. (क)

1.7 सारांश

सामाजिक अनुसंधान का दार्शनिक आधार सामाजिक अनुसंधान का एक महत्वपूर्ण आयाम है जिसे सामाजिक अनुसंधान विवरण और उसके संबंधों की समस्याओं का विश्लेषण करने के लिए प्रयोग किया जाता है। दार्शनिक स्तर पर, मात्रात्मक और गुणात्मक अनुसंधान के बीच अपरिवर्तनीय असंगत संघर्ष रहता है। यह प्राकृतिक विज्ञान के दायरे में सामाजिक घटनाओं का वर्णन करता है और साथ ही सामाजिक दुनिया के सामाजिक विज्ञान के ज्ञान के विभिन्न पहलुओं के बौद्धिक अधिकार से संबंधित है। सामाजिक अनुसंधान दार्शनिक दृष्टिकोण के माध्यम से वैध अध्ययन का एक संघर्ष है। सामाजिक अनुसंधान का दर्शन उस चीज़ के सामान्यीकृत अर्थ से संबंधित है और सामाजिक दुनिया के बारे में अनुभव साझा करने पर केंद्रित है जिसमें लोगों का दृष्टिकोण एक–दूसरे से भिन्न होता है। सामाजिक अनुसंधान हमेशा प्रकृति में बहु–परिप्रेक्ष्य और बहु सांस्कृतिक रहा है जो सामाजिक दुनिया को समझने के लिए सबसे अच्छा होने के बारे में विभिन्न दावे प्रदान करने की सुविधा प्रदान करता है। अध्ययन का उद्देश्य सामाजिक अनुसंधान में दार्शनिक विज्ञान की प्रमुख कार्यप्रणाली से संबंधित मुद्दों को सुलझाना और दर्शन तथा सामाजिक अनुसंधान के बीच संबंधों के संक्षिप्त विवरण का चित्रण करना है और अंत में यह पता लगाने की कोशिश करता है कि कैसे दार्शनिक दृष्टिकोण अपने पैटर्न को बदलते हैं और सामाजिक अनुसंधान में जगह लेते हैं।

फ्यूचर शॉक, थर्ड वेव और पावर शिफ्ट के प्रसिद्ध लेखक ऐल्विन टॉफ्लर द्वारा ज्ञान को एक अन्य अर्थ दिया गया है। इसमें डेट, जानकारी, छवियों तथा कल्पना के साथ व्यवहार, मूल्य तथा समाज के अन्य प्रतीकात्मक उत्पाद शामिल हैं चाहे सच्चे, अनुमानित या झूठे।

ज्ञान को मुख्य रूप से दो समूहों में बांटा गया है, व्यक्तिगत ज्ञान (निजी ज्ञान) और सामाजिक ज्ञान (सार्वजनिक ज्ञान)। व्यक्तिगत ज्ञान, आदमी का अपना ज्ञान होता है और यह दूसरों के लिए केवल तब उपलब्ध होता है जब इसे संचारित किया जाए। एक समाज को प्राप्त सामूहिक ज्ञान को सामाजिक ज्ञान कहा जाता है। यह समाज के प्रत्येक व्यक्ति के पास समान रूप से उपलब्ध होता है। पुस्तकालय तथा सूचना केंद्र यह ज्ञान उपलब्ध करवाते हैं। हालांकि, यहां इस बात का जिक्र करना अनिवार्य है कि ये दोनों प्रकार के ज्ञान एक दूसरे से परस्पर संबंधित नहीं हैं। सामाजिक ज्ञान, व्यक्तिगत ज्ञान का एक अनिवार्य स्रोत है और अधिकतर सामाजिक ज्ञान, व्यक्तिगत ज्ञान के आधार पर निर्मित होता है।

टिप्पणी

प्राथमिक ज्ञान, वह ज्ञान होता है जिसका झूठ या जिसकी सच्चाई अनुभव करने से पहले ही या अनुभव के बिना ही जानी जा सकती है (प्राथमिक यानी 'पहले से')। प्राथमिक ज्ञान को वैश्विक मान्यता प्राप्त होती है, और एक बार इसके सच साबित हो जाने के बाद (शुद्ध तर्क के प्रयोग द्वारा) इसे और किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं रहती। तार्किक और गणितीय सत्य प्राकृतिक तौर पर प्राथमिक होते हैं। इन्हें अनुभवजन्य पुष्टि की आवश्यकता नहीं होती।

पहले का अनुमान किया हुआ ज्ञान (प्राथमिक), अवलोकन और अनुभव पर आधारित होता है। यह वैज्ञानिक तरीके का ज्ञान है जो सटीक अवलोकन और यथार्थ विश्लेषण पर जोर देता है। इस श्रेणी में आने वाले कथनों को इस दृष्टिकोण से देखा जा सकता है कि क्या इनमें कोई तथ्यात्मक सामग्री है और इन्हें, इनकी सच्चाई या इनके झूठ को तय करने के लिए प्रयोग किए गए मानदंड के नजरिए से भी देखा जाता है।

अनुभवी ज्ञान सदा प्रयोगात्मक होता है जिसका अनुभव से पहले होना या अवलोकन से निकाला जाना संभव नहीं है। मान्य होने हेतु, इसका अनुभव होना आवश्यक है।

सामाजिक विज्ञान का दर्शन, दर्शन की शाखा है जो सामाजिक विज्ञान की अवधारणाओं, विधियों और तर्क की जांच करती है। सामाजिक विज्ञान का दर्शन फलस्वरूप एक सैद्धांतिक प्रयास है– और यह सामाजिक जीवन के सिद्धांतों के बारे में एक सिद्धांत है। अपने अंत को प्राप्त करने के लिए, सामाजिक विज्ञान के दार्शनिक सामाजिक विज्ञानों और उन संस्थाओं की प्रकृति की जांच करते हैं जो सामाजिक विज्ञान अध्ययन करते हैं– अर्थात् मनुष्य स्वयं। सामाजिक विज्ञान का दर्शन व्यापक रूप से वर्णनात्मक (सामाजिक विज्ञान में मौलिक वैचारिक साधनों का पता लगाना और उन्हें अन्य मानव प्रयासों में नियोजित उपकरणों से संबंधित करना) या निदेशात्मक (अनुशंसा करते हैं कि सामाजिक विज्ञानों द्वारा एक निश्चित दृष्टिकोण अपनाया जाए जो वे पूरा कर सकते हैं, जो दार्शनिक सोचता है कि सामाजिक विज्ञान को पूरा करना चाहिए) हो सकता है, या दोनों का कुछ संयोजन।

इम्मैनुएल कान्ट द्वारा, अपने प्रसिद्ध लेख, "ऐन आंसर टू द क्वेश्चन : वॉट इस एनलाइटनमेंट?" (1784) में "प्रबोधन" की परिभाषा देते हुए, इसे मनुष्यजाति की स्वयं उठाई गई अपरिपक्वता से मुक्त कहा है– "अपरिपक्वता का अर्थ है, किसी दूसरे के मार्गदर्शन बिना, अपनी खुद की समझ प्रयोग कर पाने की अयोग्यता"। प्रबोधन विचारकों द्वारा, व्यापक रूप से भिन्न सिद्धांतों पर साझा किए गए अपने विचारों पर अपनी धारणाएं व्यक्त करते हुए कान्ट विश्वास और कार्य करने हेतु, प्रबोधन को सोचने और अपनी बौद्धिक क्षमताओं को काम में लाने की प्रक्रिया की तरह देखते हैं।

रेने डेसकार्टेस की दर्शनशास्त्र की तर्कसंगत प्रणाली एक ऐसा आधार है जिसपर प्रबोधन विचार टिका है। डेसकार्टेस (1596–1650) द्वारा विज्ञानों को एक सुरक्षित आध्यात्मिक आधार पर स्थापित करने की शुरुआत की गई है। इस काम के लिए, डेसकार्टेस द्वारा अपनाया गया प्रसिद्ध संदेह का तरीका, प्रबोधन की विशेषता के रवैये का उदाहरण देता है (कुछ हद तक अतिरंजित करके)। डेसकार्टेस के अनुसार, आधारभूत दार्शनिक अनुसंधान में खोजक का उन सभी प्रस्तावों पर संदेह करना

टिप्पणी

स्वाभाविक है, जिन पर संदेह किया जा सकता है। खोजक, एक प्रस्ताव के झूठ होने के संभावित परिदृश्य का निर्माण करके, इस बात को निर्धारित करता है कि वह विवाद योग्य है कि नहीं। मूलभूत वैज्ञानिक (दार्शनिक) खोज के क्षेत्र में, अपनी धारणा के अलावा और किसी अधिकार पर विश्वास नहीं किया जा सकता, और अपनी धारणा पर भी क्रूर, संदेहपूर्ण जांच–पड़ताल के बाद ही विश्वास किया जा सकता है। इस तरीके के साथ, डेसकार्टेस इंद्रियों पर (बतौर एक आधिकारिक ज्ञान का स्रोत) संदेह करते हैं। उनका मानना है कि, भगवान और अभौतिक आत्मा, दोनों, इंद्रियों की वस्तुओं की जगह, सहज विचारों के आधार पर बेहतर पहचाने जाते हैं। मन और शरीर के द्वैतवाद के अपने प्रसिद्ध सिद्धांत के जरिए, कि मन और शरीर दो भिन्न वस्तुएं हैं, प्रत्येक का अपना सार है। इंद्रियों द्वारा जाना जाने वाला संसार "बाहरी" संसार माना जाता है, यह उन विचारों से बाहर है जो व्यक्ति तुरंत अपनी चेतना में एकत्र कर लेता है। इस प्रकार, डेसकार्टेस की खोज, एक केंद्रीय ज्ञानवादी समस्या स्थापित करती है, न केवल प्रबोधन की बल्कि आधुनिकता की भी।

ह्यूम, प्रबोधन विचारकों में से एक प्रमुख विचारक हैं जिनमें "मन का न्यूटन" बनने की महत्वाकांक्षा थी; उनकी महत्वाकांक्षा थी कि वो ऐसे मूल नियमों की स्थापना करें जो मनुष्य के कार्य के दौरान उसके तत्वों का नियंत्रण करें। अलेक्जेंडर पोप द्वारा, एन एसे ऑन मैन (1733), में लिखा प्रसिद्ध दोहा, "खुद को पहचानो, भगवान द्वारा स्कैन किए जाने का अनुमान न लगा कर बैठो/मनुष्यजाति की सही जांच है मनुष्य", प्रबोधन के संदर्भ में मानवता को मिली दिलचस्पी को बखूबी व्यक्त करता है, भगवान और पारलौकिक क्षेत्र में पारंपरिक दिलचस्पी हेतु एक अधूरा विकल्प। जिस प्रकार कॉपरनिकस के ब्रह्माण्डीय निकाय में धरती की जगह सूरज ब्रह्माण्ड के केंद्र में स्थान लेता है, वैसे ही, प्रबोधन में मानवता की जागरुकता के केंद्र में मानवता भगवान का स्थान लेती है। प्रबोधन के विज्ञान हेतु जुनून को देखते हुए, आत्म–निर्देशित ध्यान, प्राकृतिक रूप से, उस समय काल में मानवता की जांच के वैज्ञानिक रूप की वृद्धि का आकार ले लेता है।

कुह्न के अनुसार स्ट्रक्चर में, शिथिल रूप से वर्णित गतिविधियों का समूह, जिसमें अक्सर प्रतिस्पर्धी विचारों के समूह शामिल थे, एक प्रौढ़ विज्ञान का रूप ले लेते हैं तब समस्याओं/प्रश्नों के कुछ एक ठोस समाधान, उस क्षेत्र में, अच्छी खोज के लिए सामग्री प्रदान करते हैं। ये उदाहरणीय समस्या और समाधान के जोड़े एक "उदाहरण" का आधार बनते हैं जो "सामान्य विज्ञान" के कार्य परिभाषित करते हैं। जैसा कि इसके नाम से अनुमान लगाया जा सकता है सामान्य विज्ञान, प्रौढ़ विज्ञान और उसका निर्माण करने वाले खोजकों की त्रुटि स्थिति है। यह उदाहरण खोजकों को सूचित करती है कि उनका संसार का क्षेत्र किस प्रकार है और व्यवहारिक तौर पर यह गारंटी देती है कि सभी वैध समस्याओं/प्रश्नों को उनके तरीकों से हल किया जा सकता है। सामान्य विज्ञान सक्रिय तौर पर क्रांतिकारी शुरुआतों खासतौर पर खास (अचानक होने वाली) खोजों को हतोत्साहित करता है। क्योंकि ये उदाहरण को चुनौती देती हैं। हालांकि, सामान्य खोज इतनी विस्तृत और केंद्रित होती है कि इससे अनौपचारिक प्रयोगात्मक और सैद्धांतिक परिणाम निकलकर आना स्वाभाविक है, जिनमें से कई लंबे समय तक इनके समाधान का विरोध करने में सफल होते हैं। मार्गदर्शक उदाहरण और सभी खोजकों की अशुद्धता बनाने में शामिल ऐतिहासिक आकस्मिकताओं को ध्यान में रखते

हुए, हर चीज के बढ़िया तरीके से काम करने की संभावना नहीं है। कुह्न के अनुसार, विसंगतियों का होना तो अपेक्षित है।

टिप्पणी

प्रत्यक्षवाद एक दार्शनिक सिद्धांत है जो ”वास्तविक” ज्ञान (कोई भी ऐसा ज्ञान जो परिभाषा द्वारा सच न हो) केवल प्राकृतिक घटना उसकी विशेषताओं तथा संबंधों में से निकाला जा सकता है है। इस प्रकार, संवेदी अनुभव द्वारा पाया गया अनुभव (तर्क द्वारा समझा गया), सम्पूर्ण निश्चित ज्ञान का विशिष्ट स्रोत बनता है। इस प्रकार प्रत्यक्षवाद सम्पूर्ण वास्तविक ज्ञान को अनुमानित ज्ञान मानता है।

ऑगस्ट कॉम्टे (1798–1857) द्वारा द कोर्स इन पॉजिटिव फिलॉसफी (1830 और 1842 के बीच प्रकाशित श्रृंखला) में ज्ञानवाद के दृष्टिकोण की व्याख्या की गई है। इसके बाद उन्होंने 1844 में ए जनरल व्यू ऑफ पॉजिटिविज्म (1848 में फ्रेंच में और 1865 में अंग्रेजी में प्रकाशित) लिखी। कोर्स के पहले तीन संस्करण, मुख्य रूप से पहले से मौजूद भौतिक विज्ञानों (गणित, खगोल विज्ञान, भौतिकी, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान), जबकि बाद के दो द्वारा सामाजिक विज्ञानों के आने की अनिवार्यता पर जोर दिया गया। विज्ञान में सिद्धांत और अवलोकन की निर्भरता को देखते हुए और विज्ञानों को इस प्रकार श्रेणीबद्ध करते हुए, कॉम्टे को, अधुनिक तरीक से, विज्ञान का पहला दार्शनिक कहा जा सकता है। उनके अनुसार, भौतिक विज्ञान, आवश्यक रूप से पहले आए थे, मानवता द्वारा सही ढंग से अपनी कोशिशों को चुनौतीपूर्वक व जटिल ढंग से राह दिखाने से भी पहले। इस लिए, प्रत्यक्षवाद के उनके दृष्टिकोण ने सामाजिक तरीकों के लक्ष्य परिभाषित करने का काम किया।

समाजशास्त्र के आधुनिक शैक्षिक विषय की शुरुआत इमाइल दुर्खीम के कार्य (1858–1917) से हुई। जहां दुर्खीम द्वारा कॉम्टे के ज्यादातर दर्शन को नकारा गया था वहीं उन्होंने कॉम्टे के तरीकों को न सिर्फ बरकरार रखा बल्कि उनमें सुधार भी लाए, यह मानते हुए कि मानव गतिविधियों के क्षेत्र में, सामाजिक विज्ञान, प्राकृतिक विज्ञानों की तार्किक श्रृंखला है और इस बात पर जोर देते हुए कि ये वही वस्तुनिष्ठता, बुद्धिवाद, और कार्य–कारण का दृष्टिकोण बरकरार रखेंगे। दुर्खीम द्वारा 1895 में बॉर्डॉक्स विश्वविद्यालय में पहला यूरोपीय समाजशास्त्र विभाग स्थापित किया गया। इसमें इन्होंने रूल्स ऑफ सोशिऑलोजी मेथड (1895) प्रकाशित किया। अपने कार्य में इनका कहना है, ”हमारा मुख्य लक्ष्य है वैज्ञानिक तार्किकता का मानव व्यवहार तक विस्तार करना. ... जिसे हम प्रत्यक्षवाद कहते हैं, वह दरअसल इस तार्किकता का परिणाम है।

विएन्ना के चक्र के तार्किक प्रत्यक्षवादियों से तार्किक अनुभववाद तक, विज्ञान के दर्शन में प्रत्यक्षवाद के लंबे विकास के वर्णन के बाद गिडेंस ने अपना रुख 'रूढ़िवादी मॉडल' पर 'प्रत्यक्षवाद के बाद' के हमले की ओर कर लिया। उन्होंने इस हमले में शामिल कई लेखकों का नाम लिया (टॉलमिन, फेयरबेंड, हेस्से, कुह्न) और फिर यह विख्यात किया कि पॉपर उनसे पहले थे। कुछ प्रत्यक्षवादियों ने मामलों में उलझन पैदा कर दी इस बात पर जोर देकर कि पॉपर उनमें से ही एक थे, विज्ञान में समान दिलचस्पी के कारण उनके इस अभियान के प्रति मतभेद आंतरिक थे। इसके फलस्वरूप, गिडेंस यह समझ पाए कि ”मुद्दे आसानी से सुलझाए नहीं जा सकते.... यह वर्णित किया जाना चाहिए कि.... उनकी प्रेरण की पूर्ण अस्वीकृति और ”संवेदी निश्चितता” की उनकी सहवर्ती अस्वीकृति.... वैधता की जगह असत्यकरण का उनका विकल्प.... उनका, परंपरा का बचाव, जो महत्वपूर्ण भावना के साथ संयोजन के रूप में

विज्ञान का एक हिस्सा है और तत्त्वमीमांसा को बकवास सिद्ध करके उसे खत्म करने के तार्किक सकारात्मक लक्ष्य का प्रतिस्थापन है, ताकि, विज्ञान और छद्म विज्ञान के बीच सीमांकन का लक्ष्य स्थापित हो सके।"

टिप्पणी

काफी समय से सामाजिक विज्ञान के दर्शन पर दो मुख्य परंपराएं हावी रही हैं, द्वंद्व इन दोनों के बीच है, एक तरफ वो जिनके लिए सामाजिक विज्ञान, कारणों की खोज के माध्यम द्वारा सामाजिक घटनाओं का विवरण है और दूसरी तरफ वो जिनके लिए सामाजिक विज्ञान का अर्थ है सामाजिक कार्यवाही के अर्थ की समझ तथा उसका विवरण। सामाजिक विज्ञान की प्रकृति को लेकर होने वाले विवाद का एक लंबा इतिहास है, जिसमें यह अनेक प्रकारों में दिखाई दिया है। जर्मनी में, अर्थशास्त्र में 1890 के दशक के तरीकों को लेकर कई मतभेद हुए और और कार्ल मेंगर (1841–1921), एक पारंपरिक आस्ट्रियायी अर्थशास्त्री द्वारा इस बात पर जोर दिया गया कि सैद्धांतिक अर्थशास्त्र के सटीक नियम मेकैनिक्स जैसे प्राकृतिक विज्ञानों के समान थे। जर्मन यंगर इकोनॉमिक हिस्टरी स्कूल के गुस्ताव श्मोलर (1838–1917), द्वारा कार्ल मेंगर का विरोध किया गया (ब्रायेंट 1985 देखें)। श्मोलर 'सामाजिक नीतियों हेतु समिति' (वेरीन फर सोजिल पॉलिटिक) के सदस्य भी थे, जिसकी स्थापना ईसेनैक में 1872 में की गई थी, बतौर एक सुधार आंदोलन। इस समाज द्वारा कभी ठोस राजनीतिक प्रोग्राम नहीं चलाए गए, बल्कि इसके द्वारा सामाजिक–आर्थिक क्षेत्र में विशिष्ट ठोस समस्याओं पर कई खोजों से संबंधित अनेक प्रकाशन किए गए। इन खोजों के लिए, श्मोलर द्वारा, मेंगर के वियोजक और अमूर्त दृष्टिकोण की जगह आगमनात्मक, अनुभवजन्य और ऐतिहासिक दृष्टिकोण का समर्थन किया गया। इस जगह, कुछ नव–कान्टवादी दार्शनिकों का बहस में प्रवेश हुआ और यह द्वंद्व सामाजिक विज्ञान की प्रकृति के बारे में बन गया। जर्मनी में सामाजिक विज्ञानों पर होने वाली बहस, वैज्ञानिक खोज के उद्देश्यों तथा उसके मूल्यों पर होने वाली बहस ने एक महत्वपूर्ण रूप ले लिया। इसकी शुरुआत 1903 में हुई और यह तकरीबन 10 साल तक चली

आगमनात्मक विश्लेषण पद्धति में निगमन पद्धति के विपरीत ढंग से अध्ययन कार्य किया जाता है। इसका अर्थ है आगमन पद्धति में हम विशिष्ट से सामान्य, सूक्ष्म से व्यापक सत्य को प्रतिपादित करते हैं। अतः इस पद्धति में तर्क का क्रम विशिष्ट से सामान्य की ओर होता है। इसके बाद अनुभव व प्रयोग के आधार पर इस सामान्य सिद्धांत की जांच की जाती है। उदहारण के लिए, विभिन्न व्यक्तियों को एक न एक दिन मरते देखकर हम यह सामान्य निष्कर्ष तर्क के आधार पर निकालते हैं कि मनुष्य मरणशील है। यहां पर तर्क का क्रम विशिष्ट से सामान्य की ओर है। स्पष्ट है कि इस पद्धति में अनुभवों के आधार पर नियम बनाए जाते हैं अतः इसे अनुभावाश्रित पद्धति (Empirical method) भी कहा जाता है।

परिघटनावादी समाजशास्त्र काफी हद तक अल्फ्रेड शुट्ज़ के कार्यों से विकसित हुआ है, जो 'द फेनोमेनोलॉजी ऑफ द सोशल वर्ल्ड (1967)' के लिए सबसे ज्यादा जाने जाते हैं।

शुट्ज़ के अनुसार अपनी क्रियाओं के दौरान, हम समाज के बारे में धारणाओं को नियोजित करते हैं कि यह कैसे काम करता है और हम दूसरों की क्रियाओं की भविष्यवाणी करने के लिए अपरिष्कृत तरीके से वर्स्टेन (verstehen) का उपयोग करते हैं। नतीजतन, हमारे कार्य 'सार्थक' इसलिए नहीं हैं, कि हमारा कोई विशेष इरादा या

टिप्पणी

उद्देश्य है, बल्कि इसलिए कि अन्य (व्यक्ति – अभिनेता) हमारे कार्यों की व्याख्या प्रतीकात्मक महत्व के रूप में करते हैं। ऐसा कहा जाता है कि घटनात्मक दृष्टिकोण में व्याख्यात्मक दृष्टिकोण प्रयुक्त होता है, जिसे आरम्भ में मैक्स वेबर द्वारा विकसित किया गया और बाद में अन्य विचारकों द्वारा चरम पर ले जाया गया।

एथनोमेथोडोलॉजी शब्द हेरोल्ड गारफिंकेल द्वारा गढ़ा गया था जो अपने कार्य 'स्टडीज इन एथनोमेथोडोलॉजी (1967)' के लिए सबसे ज्यादा जाने जाते हैं। 'एथनो' (ethno) समाज के सदस्यों हेतु उपलब्ध सामान्य ज्ञान के भंडार को संदर्भित करता है; 'पद्धति' (methodology) उन रणनीतियों को संदर्भित करती है जो व्यक्ति (अभिनेता) अपने अर्थ को समझने योग्य बनाने के लिए विभिन्न परिवेश (सेटिंग्स) में उपयोग करते हैं।

नृवंशविज्ञान समाजशास्त्र के भीतर एक परिप्रेक्ष्य है जो इस बात पर ध्यान केंद्रित करता है कि लोग अपनी रोजमर्रा की दुनिया को कैसे समझते हैं। इस संबंध में, गारफिंकेल ने पुष्टि की है कि, "एथनोमेथोडोलॉजिकल अध्ययन रोजमर्रा की गतिविधियों का विश्लेषण व्यक्तियों (सदस्यों) के तरीकों के रूप में करते हैं ताकि वे समान गतिविधियों को सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए तर्कसंगत और रिपोर्ट योग्य बना सकें।"

1.8 मुख्य शब्दावली

- **मीमांसा** : गंभीर मनन और विचार।
- **साध्यता** : होने की संभावना, करणीयता।
- **प्रबोधन** : जगाना, जागना, ज्ञान होना।
- **कार्तीय दर्शन** : गणितीय विधि, तार्किक विधि (डेसकार्टेस से संबंधित)।
- **प्रत्यक्षवाद** : ऐसा सिद्धांत जो केवल वैज्ञानिक पद्धति से प्राप्त ज्ञान को ही उपयुक्त, विश्वसनीय एवं प्रामाणिक मानता है।
- **आगमनात्मक विश्लेषण** : विश्लेषण की जिस प्रक्रिया में एकाकी प्रेक्षणों के ज्ञान तथ्यों को जोड़कर अधिक व्यापक कथन निर्मित किया जाता है, वह आगमनात्मक विश्लेषण कहलाता है।

1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. बतौर तत्वज्ञान की शाखा, ज्ञान मीमांसा जिन सिद्धांतों से संबंधित है उनका संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. ज्ञान के रूप एवं प्रकारों के बारे में संक्षेप में बताइए।
3. ज्ञान की पुष्टि का आशय स्पष्ट कीजिए।
4. प्रबोधन का अर्थ बताइए।
5. कार्तीय दर्शन के प्रणेता का नाम बताइए।

6. प्रत्यक्षवाद के प्रमुख आलोचकों के नाम बताइए।
7. आगमनात्मक विश्लेषण से क्या तात्पर्य है? संक्षेप में बताइए।

टिप्पणी

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. 'सामाजिक अनुसंधान के दार्शनिक आधार' का समीक्षात्मक विवेचन कीजिए।
2. ज्ञान मीमांसा सिद्धांत के सभी मुद्दों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
3. ज्ञान के रूप, स्रोत, प्रकृति एवं पुष्टि से संबद्ध सभी पक्षों का सविस्तार वर्णन कीजिए।
4. सामाजिक विज्ञान के दर्शन में प्रबोधन, तर्क, विज्ञान एवं कार्तीय दर्शन का विवेचनात्मक अध्ययन कीजिए।
5. वैज्ञानिक क्रांति की संरचना के बारे में कुह्न के विचारों को विस्तार से समझाइए।
6. प्रत्यक्षवाद के बारे में प्रमुख दार्शनिकों कॉम्टे, दुर्खीम एवं पॉपर की विचारधारा स्पष्ट कीजिए।
7. प्रत्यक्षवाद की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।
8. फेयरबेंड और गिडेंस द्वारा प्रत्यक्षवाद की आलोचना पर प्रकाश डालिए।
9. हर्मेनेयुटिक्स पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
10. आगमनात्मक विश्लेषण को सविस्तार समझाइए।
11. परिघटनावादी समाजशास्त्र से आप क्या समझते हैं? बताइए।
12. नृवंशविज्ञान दृष्टिकोण तथा समाजशास्त्रीय सिद्धांत में इसके अनुप्रयोग के बारे में बताइए।

1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

Charles, C. Ragin. 1994. *Constructing Social Research: The Unity and Diversity of Method*. USA: Pine Forge Press.

Barton, Keith. C. 2006. *Research Methods in Social Studies Education.* USA: Information Age Publishing Inc.

Williman, Nicholas. 2006. *Social Research Methods.* London: Sage Publications Ltd.

Kumar, Dr. C. Rajendra. 2008. *Research Methodology.* New Delhi: APH Publishing Corporation.

Bulmer, Martin. 2003. *Sociological Research Methods: An Introduction*. USA: Transaction Publishers.

Scheurich, James J. 2001. *Research Method in The Postmodern.* Philadelphia: RoutledgeFalmer.

Singh, Kultar. 2007. *Quantitative Social Research Methods.* New Delhi: Sage Publications India Private Ltd.

इकाई 2 सामाजिक यथार्थ की प्रकृति और उसके दृष्टिकोण

टिप्पणी

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 सामाजिक यथार्थ, प्रत्यक्षवाद, घटना विज्ञान, नृजाति कार्यप्रणाली, प्रतीकात्मक क्रियावाद, व्याख्यात्मक समझ
 2.2.1 सामाजिक यथार्थवाद
 2.2.2 प्रत्यक्षवाद
 2.2.3 घटना विज्ञान
 2.2.4 नृजाति कार्यप्रणाली
 2.2.5 प्रतीकात्मक क्रियावाद
 2.2.6 व्याख्यात्मक समझ
2.3 सामाजिक विज्ञान अनुसंधान : तार्किक समीक्षा
 2.3.1 आगमनात्मक और निगमनात्मक विधियां
 2.3.2 सामाजिक अनुसंधान में सिद्धांत निर्माण
 2.3.3 सामाजिक अनुसंधान में वैज्ञानिक पद्धति
 2.3.4 वस्तुनिष्ठ मूल्य निष्पक्षता
 2.3.5 परिकल्पना
2.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.5 सारांश
2.6 मुख्य शब्दावली
2.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.8 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

सामाजिक यथार्थ में एक ऐसी प्रकृति होती है जो इस बात से स्वतंत्र होता है कि लोग उनके बारे में क्या सोचते हैं। अन्य शब्दों में, सामाजिक यथार्थ व्यक्तिगत विषयों पर निर्भर नहीं करता है जैसा कि व्यक्तिगत अनुभव और इच्छाएं करती हैं। सामाजिक यथार्थ के लिए सामाजिक कृत्यों की आवश्यकता होती है, अर्थात् व्यक्तियों के बीच एक निश्चित प्रकार की बातचीत आवश्यक है।

ऐसे सामाजिक यथार्थ तय कर सकते हैं कि हम अपने आसपास की दुनिया को कैसे देखते हैं और बदले में, हमारे विकल्पों और निर्णयों को प्रभावित करते हैं। सामाजिक यथार्थ के महत्व को देखते हुए, विचारक यह कहते हैं कि इंसानों के लिए ऐसी चीजों से केवल इस बात से सहमत होना संभव है कि वे मौजूद हैं।

सामाजिक यथार्थ जैविक वास्तविकता या व्यक्तिगत संज्ञानात्मक वास्तविकता से अलग है, यह सामाजिक संपर्क के माध्यम से बनाया गया एक घटनात्मक स्तर है जिसका कि यह प्रतिनिधित्व करता है और इस प्रकार यह व्यक्तिगत उद्देश्यों और क्रियाओं के पार जाता है।

कॉकटेल पार्टियों, फुटबॉल खेलों, बार, राजनीतिक रैलियों और यहां तक कि राष्ट्रों के बारे में विचार करें। ये सभी सामाजिक यथार्थ हैं। और इस संबंध में वाक्यांश "सामाजिक यथार्थ" के दोनों भाग ध्यान देने योग्य हैं।

टिप्पणी

पांच आधारभूत समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण हैं– प्रकार्यवाद, मार्क्सवाद, नारीवाद, सामाजिक क्रिया सिद्धांत और उत्तर आधुनिकतावाद। समाजशास्त्र में तीन प्रमुख सैद्धांतिक दृष्टिकोण शामिल हैं– कार्यात्मकवादी परिप्रेक्ष्य, संघर्ष परिप्रेक्ष्य, और प्रतीकात्मक अंतःक्रियावादी परिप्रेक्ष्य (कभी–कभी अंतःक्रियावादी परिप्रेक्ष्य, या केवल सूक्ष्म दृष्टिकोण कहा जाता है)।

प्रस्तुत इकाई में सामाजिक यथार्थवाद के अंतर्गत प्रत्यक्षवाद, घटना विज्ञान, नृजाति कार्यप्रणाली, प्रतीकात्मक क्रियावाद, व्याख्यात्मक समझ, सामाजिक विज्ञान, अनुसंधान जांच पद्धति, आगमन व निगमनात्मक विधियां, सिद्धांत निर्माण आदि तथ्यों का अध्ययन किया गया है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- सामाजिक यथार्थ को समझ पाएंगे;
- प्रत्यक्षवाद, घटना विज्ञान, प्रतीकात्मक क्रियावाद आदि तत्वों को समझ पाएंगे;
- सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की जांच पद्धति को जान पाएंगे;
- आगमनात्मक और निगमनात्मक विधियों के बारे में जान पाएंगे;
- सिद्धांत निर्माण के अंतर्गत सामाजिक अनुसंधान की वैज्ञानिक पद्धतियों को समझ पाएंगे;
- वस्तुनिष्ठ मूल्य निष्पक्षता एवं परिकल्पना को समझ पाएंगे।

2.2 सामाजिक यथार्थ, प्रत्यक्षवाद, घटना विज्ञान, नृजाति कार्यप्रणाली, प्रतीकात्मक क्रियावाद, व्याख्यात्मक समझ

सामाजिक यथार्थ जैविक यथार्थ या व्यक्तिगत संज्ञानात्मक यथार्थ से अलग है, यह सामाजिक संवाद के माध्यम से एक घटनात्मक स्तर का निर्माण करता है और इस प्रकार यह व्यक्तिगत उद्देश्यों और कार्यों के पार चला जाता है। मानव संवाद से उत्पन्न सामाजिक यथार्थ के बारे में यह माना जा सकता है कि यह एक समुदाय के स्वीकृत सामाजिक सिद्धांतों से मिलकर बना है जिनमें अपेक्षाकृत स्थिर नियम और सामाजिक प्रतिनिधित्व शामिल हैं। कट्टरपंथी रचनावाद सामाजिक यथार्थ को पर्यवेक्षकों (अवलोकनकारियों) के बीच एकरूपता के उत्पाद के रूप में वर्णित करेगा (चाहे वर्तमान पर्यवेक्षक (अवलोकनकारी) स्वयं शामिल हो या नहीं)।

सामाजिक वास्तविकता की समस्या को दार्शनिकों द्वारा असाधारण परंपरा में समझा गया है, जिन्होंने "सामाजिक दुनिया" शब्द का उपयोग वास्तविकता के इस विशिष्ट स्तर को नामित करने के लिए किया है। सामाजिक दुनिया में, दोनों सामाजिक यथार्थों – एक, जिसको सीधे अनुभव किया जा सकता हो और दूसरा वो जो

तात्कालिक सीमाओं से परे हो किन्तु चाहने पर जिसका अनुभव किया जा सकता हो, में अंतर किया है। इसके अंतर्गत, नृवंशविज्ञान ने सामाजिक यथार्थ के साथ हमारी रोजमर्रा की क्षमता और योग्यता की अनसुनी संरचना को आगे बढ़ाया है।

पहले, इस विषय का समाजशास्त्र के साथ–साथ अन्य विषयों में भी अध्ययन किया गया था। उदाहरण के लिए, दुर्खीम ने "सामाजिक तथ्यों के विशिष्ट स्वरूप पर बल दिया। अन्य के सापेक्ष दुर्खीम ने यथार्थ पर सबसे अधिक विचार किया है"। हर्बर्ट स्पेंसर ने जैविक और मनोवैज्ञानिक स्तर से यथार्थ के सामाजिक स्तर को अलग (ऊपर) करने के लिए सुपर–ऑर्गेनिक शब्द गढ़ा था।

सामाजिक सिद्धांत में इस बात पर भी विवाद है कि क्या सामाजिक यथार्थ, लोगों की इसके साथ भागीदारी से, स्वतंत्र रूप में मौजूद है, या क्या (सामाजिक निर्माणवाद के रूप में) यह केवल चल रहे संवाद की मानवीय प्रक्रिया द्वारा निर्मित है। चिंतकों/विचारकों ने वास्तविकता के सामाजिक निर्माण की आधारभूत प्रक्रिया को लेकर एक नई चिंता का तर्क दिया। उनका कहना है कि वास्तविकता का सामाजिक निर्माण तीन चरणों से बनी एक प्रक्रिया है– **बाह्यकरण, वस्तुकरण और आंतरिकीकरण**। इसी तरह से, एक अन्य विचार के अनुसार, "एक बार अनुभव की कुछ आधारभूत संरचनाओं को साझा करने के बाद, उन्हें वस्तुनिष्ठ यथार्थ के रूप में अनुभव किया जाता है ... वे आंशिक स्वायत्त वास्तविकताओं के बल और चरित्र का अपने तरीके से सामना करते हैं। जीवन के अपने तरीके से।" इस तरह के सामाजिक रूप से वास्तविक समूह "अपने सदस्यों के दृष्टिकोण और कार्यों की बहुलता के अलावा और कुछ नहीं हो सकता है।"

एक अन्य तर्क के अनुसार "एक सामाजिक रूप से निर्मित यथार्थ सभी सामाजिक निर्माणों से स्वतंत्र यथार्थ प्रस्तुत करता है।" साथ ही, यह भी स्वीकार किया जाता है कि सामाजिक यथार्थों का निर्माण मानव द्वारा हुआ है, और यह कि "संस्थागत तथ्यों के निरंतर अस्तित्व को समझने का रहस्य केवल यह है कि इस में शामिल सभी व्यक्तियों में से संबंधित समुदायों के सदस्यों की पर्याप्त संख्या ऐसे तथ्यों के अस्तित्व को पहचानना और स्वीकार करना जारी रखे।"

सामाजिक यथार्थ के अध्ययन में निम्न दृष्टिकोण परिलक्षित होते हैं जैसे कि सामाजिक अनुसंधान में जांच के तर्क के अंतर्गत– समाज का विज्ञान, समाजशास्त्र की प्रकृति पर कॉम्टे के विचार, सामाजिक विज्ञान में अवलोकन, सामाजिक यथार्थ की तार्किक समझ।

अनुभवजन्य दृष्टिकोण (डाटा संग्रह संबंधित) के अंतर्गत– सांस्कृतिक सापेक्षवाद, व्यावहारिक बुद्धि और विज्ञान, नैतिक बनाम सामान्य, सामाजिक अनुसंधान की विविधताएं आदि।

2.2.1 सामाजिक यथार्थवाद

सामाजिक यथार्थ का सामान्य अर्थ है– समाज का यथार्थ अर्थात समाज की वास्तविकता का चित्रण। समाज में जो कुछ भी घटित हो रहा है, उसको सामाजिक यथार्थ के अंतर्गत चित्रित किया जाता है। इसमें व्यक्ति सत्य से अधिक सामाजिक सत्य का उद्घाटन महत्व रखता है। यहां व्यष्टि सत्य को समष्टि सत्य के परिप्रेक्ष्य में महत्ता दी जाती है।

सामाजिक यथार्थ से तात्पर्य है— किसी समूह या समाज के सदस्यों द्वारा धारित दृष्टिकोणों, मतों और विश्वासों की सर्वसम्मति तथा साथ ही हम समाज में स्वयं को भिन्न—भिन्न समय पर भिन्न प्रकार से प्रस्तुत करते हैं अर्थात हम अपनी सुविधानुसार एक सामाजिक यथार्थ का निर्माण भी करते हैं। इस सामाजिक यथार्थ के निर्माण के चरणों के अंतर्गत बाह्यकरण, उद्देश्य एवं आंतरिककरण की क्रिया होती है। इसके अनुसार—

बाह्यकरण— समाज एक मानव उत्पाद है।

उद्देश्य— समाज एक वस्तुपरक वास्तविकता है।

आंतरिककरण— मनुष्य एक सामाजिक उत्पाद है।

संचार के माध्यम के प्रयोग से, एक अंतर्निहित प्रक्रिया होती है जिसमें समुदाय एवं इसके लोग अपने आसपास की दुनिया के किसी विषय पर समरूप या परस्पर विरोधी बातचीत करते हैं जिससे एक सामाजिक यथार्थ का निर्माण उस समाज में होता है जिसमें समुदाय रहता है। यह तब होता है जब दो व्यक्ति अपनी बातचीत में संदेशों के क्रम को समझने/समझाने का प्रयास करते हैं।

सामाजिक—सांस्कृतिक परंपरा की हमारी समझ, अर्थ, मानदंड और नियमों का संचार में अंतःक्रियात्मक रूप से प्रयोग करती है, पालन करती है। यह परंपरा सामाजिक वास्तविकता के निर्माण और अधिनियमन पर केंद्रित है। सामाजिक यथार्थ निर्माणवाद इस विचार के आधार पर कार्य करता है कि सभी ज्ञान सामाजिक संपर्क के माध्यम से निर्मित होते हैं।

उदाहरण के लिए, आपका विद्यालय एक विद्यालय के रूप में मौजूद है न कि केवल एक भवन के रूप में क्योंकि आप और अन्य सहमत हैं कि यह एक विद्यालय है। यदि आपका विद्यालय आपके जन्म से पहले बना है, तो यह आपसे पहले के अन्य लोगों की सहमति से बनाया गया था। एक अर्थ में, यह पहले और वर्तमान दोनों में सर्वसम्मति से मौजूद है।

2.2.2 प्रत्यक्षवाद

प्रत्यक्षवाद की वैज्ञानिक व्याख्या सर्वप्रथम ऑगस्ट कॉम्टे ने की है। कॉम्टे ने अपनी रचनाओं 'Course of Positive Philosophy' (1842) तथा 'The System of Positive Polity' (1851) में इस अवधारणा की व्याख्या की है। इसी कारण कॉम्टे को प्रत्यक्षवाद का प्रवर्तक माना जाता है। कॉम्टे ने मानव इतिहास का अध्ययन करके तथा उसमें औद्योगिक व वैज्ञानिक प्रगति का स्थान निश्चित करके यह दावा किया कि उसने मानव समाज के आधारभूत नियमों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और उसने विश्वास व्यक्त किया कि यदि इन नियमों को सही ढंग से कार्य रूप प्रदान कर दिया जाए तो मानव प्रगति एक वैज्ञानिक तरीके से विकसित होकर अपने पूर्णत्व को प्राप्त हो सकती है। कॉम्टे को यह विश्वास था कि मानव का विकास जब पूर्णता को प्राप्त हो जाएगा, तब प्राचीन मान्यताएं, परम्पराएं एवं मूल्य समाप्त हो जाएंगे और उनका स्थान नवीन परम्पराएं, मान्यताएं व मूल्य ले लेंगे जिससे राज्य का स्वरूप तथा समस्त राजनीतिक एवं सामाजिक रूप—रेखा में बदलाव आ जाएगा।

प्रत्यक्षवाद की अवधारणा की व्याख्या

कॉम्टे ने मानवीय ज्ञान की प्रत्येक शाखा को अपनी प्रौढ़ावस्था तक पहुंचने के लिए तीन चरणों से होकर गुजरना स्वीकार किया है। कॉम्टे का कहना है कि समाज का विकास मानव बुद्धि के द्वारा ही होता है और इसकी तीन अवस्थाएं हैं–

1. धर्मभीरु या मिथ्यापूर्ण अवस्था,
2. आधिभौतिक अवस्था तथा
3. वैज्ञानिक या प्रत्यक्षवादी अवस्था।

प्रथम अवस्था में मनुष्य इस बात में विश्वास करता है कि सृष्टि के निर्माण में प्राकृतिक शक्तियों या देवी–देवताओं का हाथ है अर्थात् वह समस्त घटनाओं की व्याख्या अलौकिक या आध्यात्मिक शक्तियों के सन्दर्भ में करता है।

दूसरी अवस्था में समस्त घटनाओं की व्याख्या अमूर्त तत्वों और अनुमान के आधार पर की जाती है। मनुष्य इस सृष्टि के निर्माण में आत्मा जैसे सूक्ष्म तत्वों पर विचार करने लगता है। यह अवस्था पुरानी अवस्था के स्थान पर नई अवस्था की भूमिका तैयार करने के कारण प्रत्यक्षवाद की जमीन तैयार करने का काम करती है।

तीसरी अवस्था में मनुष्य यह विश्वास करने लगता है कि इस प्रकृति की सारी घटनाएं निर्विकार प्राकृतिक नियमों से बंधी पड़ी हैं। इस अवस्था (प्रत्यक्षवाद) में मानव मन सृष्टि व जगत के निर्माण की बजाय उसकी कार्य प्रणाली, नियम और तर्क बुद्धि की व्यावहारिक बातें सोचता है। इसी आधार पर कॉम्टे ने इतिहास की व्याख्या करके अपना सकारात्मकवाद या प्रत्यक्षवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। कॉम्टे ने विश्वास व्यक्त किया है कि प्रत्यक्ष अवस्था ही मानव विकास की अन्तिम अवस्था होगी और यह अवस्था उतनी शीघ्रता से प्राप्त की जा सकेगी जितनी शीघ्रता से धार्मिक और आधिभौतिक अन्धविश्वासों का अन्त होगा और जनता वैज्ञानिक ढंग से सोचने की प्रक्रिया को अपना लेगी। इसी विश्वास के आधार पर ही कॉम्टे ने अपने सकारात्मक सरकार, सकारात्मक धर्म, सकारात्मक शिक्षा, सकारात्मक राज्य व नियम के सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं ताकि मानव समाज में धार्मिक अन्धविश्वासों के प्रति जागृति आए तथा लोग नए सिरे से सोचने लगें और जनता में वैज्ञानिक सोच का विकास हो।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि कॉम्टे ने वैज्ञानिक पद्धति के अन्तर्गत प्रत्यक्षवाद के विचार का पोषण किया है। कॉम्टे ने इसी बात पर जोर दिया है कि इन्द्रिय ज्ञान से परे कुछ भी वास्तविक नहीं है। वास्तविक वही है जो हम देखते हैं व सुनते हैं तथा अपने जीवन में प्रयुक्त करते हैं। सभी मनुष्यों में निरीक्षण की क्षमता एक जैसी पाई जाती है। इसलिए हम अपने अनुभव को दूसरों के अनुभव से मिलाकर उसकी पुष्टि व सत्यापन कर सकते हैं। इसके बाद अनुभवात्मक कथन तार्किक कथन बन जाते हैं क्योंकि हम प्रत्येक कथन को तर्क की कसौटी पर रखते हैं। राजनीतिक विज्ञान के अन्तर्गत वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करते समय अनुभवात्मक और तार्किक कथन का ही महत्व है क्योंकि उसकी पुष्टि व सत्यापन सरलता से हो जाता है। इसलिए वैज्ञानिक पद्धति के समर्थक राजनीति विज्ञान में ऐसे किसी भी कथन का विरोध करते हैं जो मूल्य–सापेक्ष हो।

टिप्पणी

सामाजिक अनुसंधान में प्रत्यक्षवाद

ऑगस्ट कॉम्टे द्वारा प्रस्तुत किया गया प्रत्यक्षवाद संबंधी अनुसंधान का दर्शन एवं प्रत्यक्षवाद का दर्शन बताता है कि इसे अत्यंत सूक्ष्म एवं परिशुद्ध रूप से परिभाषित करना अत्यंत कठिन कार्य है। इसका प्रमुख कारण यह है कि अनुसंधानकर्ताओं ने प्रत्यक्षवाद को समाज के अध्ययन के लिए बहुत भिन्न–भिन्न विधियों से लागू करते हुए अपने अनुसंधान कार्य संपन्न किए हैं। परंतु प्रत्यक्षवाद का सिद्धांत मूलतः इस तथ्य पर आधारित है कि सत्य को जानने के लिए विज्ञान ही एक मात्र साधन हो सकता है।

प्रत्यक्षवाद का प्राथमिक केंद्रबिंदु दर्शनशास्त्र के दृष्टिकोण से संबंधित है जो कि ज्ञान पर आधारित है। वस्तुतः यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि ज्ञान को परीक्षण के माध्यम से प्राप्त किया जाए। इस प्रकार का ज्ञान जो एकत्रित किया जाता है वह विभिन्न प्रकार के आंकड़ों के द्वारा होता है तथा आंकड़े विश्वसनीय होते हैं। प्रत्यक्षवाद के ऊपर आधारित अध्ययन अनुसंधानकर्ता के लिए बहुत महत्वपूर्ण होते हैं परंतु आंकड़ों के एकत्रित करने में इनका सीमित उपयोग होता है।

आंकड़ों का प्रस्तुतीकरण विषयात्मक उपागम के माध्यम से किया जाता है जहां अनुसंधान कार्य प्रेक्षणीय तथा गणनीय हो जाता है। प्रत्यक्षवाद एवं उससे संबंधित सिद्धांत मुख्य रूप से गणनीय परीक्षणों पर आधारित होते हैं। समाज एवं तत्संबंधी अध्ययन हेतु प्रयोग से यह गणनीय आंकड़े स्वयं ही सांख्यिकी आकलन की ओर अग्रसर होते हैं। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि प्रत्यक्षवाद के ऊपर आधारित अध्ययन दर्शनशास्त्र की भांति प्रयोगात्मक दृष्टिकोण के समरूप होना चाहिए।

यह दृष्टिकोण यह भी स्पष्ट करता है कि विज्ञान को मनुष्य के अनुभव के द्वारा व्यक्त किया जाता है। प्रत्यक्षवाद के ऊपर आधारित सिद्धांतों से प्रेक्षणीय अंतःक्रियाएं तथा परीक्षणों से संबंधित तत्वों की व्याख्या उचित रूप से हो सकी है।

तथापि कुछ विचारकों का मत इस प्रकार की व्याख्या से भिन्न है तथा उनका यह मानना है कि प्रत्यक्षवाद के ऊपर आधारित अध्ययन मूलतः अध्ययन की एक स्वतंत्र पद्धति है तथा इस सिद्धांत में मानव के हित से संबंधित अध्ययन को पर्याप्त स्थान नहीं दिया गया है। (Crowther and Lancaster, 2008)

क्राऊदर एवं लंकास्टर ने सुझाव दिया है कि प्रत्यक्षवाद के ऊपर आधारित अध्ययन केवल सार रूपी उपागम मात्र है। जबकि इसके दूसरी तरफ प्रेरित प्रकार के अनुसंधान उपागम को विभिन्न प्रकार के सैद्धांतिक उपागमों के साथ संबंधित करके देखा जाता है जिसे प्रपंची का दर्शन कहा जाता है। रेंट (Rent) के अनुसार प्रत्यक्षवाद के सिद्धांत के लिए अनुसंधानकर्ता के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह वास्तविक सामाजिक तथ्यों को भी अपने अनुसंधान कार्य में समाहित करते हुए अनुसंधान कार्य करें, तदनुसार अपने अध्ययन में समाज से संबंधित वास्तविक घटनाओं एवं तथ्यों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए, जैसा कि घटना क्रिया सिद्धांत (Phenomenology Philosophy) में सामान्यतः किया जाता है कि समाज की वास्तविक घटनाओं एवं प्रक्रियाओं पर ध्यानाकर्षण होता है।

यहां पर स्वतंत्र का अर्थ इस रूप में लिया जाता है कि अनुसंधानकर्ता के द्वारा सामाजिक अनुसंधान करते समय अनुसंधान प्रतिभागियों के साथ न्यूनतम संपर्क रखना चाहिए। इस अर्थ में प्रत्यक्षवादी सिद्धांतों पर आधारित अनुसंधानों का अर्थ यह हुआ कि

यह अनुसंधान पूर्णतया तथ्यों पर आधारित होते हैं। तथ्यों पर आधारित अनुसंधान के अतिरिक्त प्रत्यक्षवादी अनुसंधान में विषय को केंद्र में होना चाहिए तथा उसे विषयात्मक समझा जाता है। उपरोक्त आधार पर यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि प्रत्यक्षवादी सिद्धांतों पर आधारित अनुसंधान करते समय कुछ निश्चित बातों का पालन किया जाना चाहिए जो निम्न प्रकार से हैं–

- जहां तक विज्ञान द्वारा प्रत्यक्षवाद आधारित अनुसंधान किए जाने का संबंध है, वह इसकी अवधारणा से बहुत अलग अंतर नहीं है।
- अनुसंधान का उद्देश्य एवं अनुसंधान से संबंधित तथ्यों को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जाना चाहिए।
- जो अनुसंधान कार्य विभिन्न प्रकार के मानवीय दृष्टिकोणों एवं प्रश्नों के माध्यम से किए जाते हैं वह प्रयोगात्मक रूप से भी प्रेक्षणीय होने चाहिए।
- प्रेरकत्व उपागमों पर आधारित तार्किकता का विकास करते समय विभिन्न प्रकार के प्रकार्यों तथा परिकल्पना (Hypothesis) का भी विकास किया जाना चाहिए।
- अनुसंधान कार्य में मानी गई सभी मान्यताओं को आंकड़ों के माध्यम से जांचना चाहिए। वास्तव में यह कहा जा सकता है कि कोई विज्ञान का छात्र सामान्य बुद्धि अथवा अनुभव जनित ज्ञान के आधार पर अनुसंधान करते हैं तथा यह अनुभवजनित दृष्टिकोण इस स्थिति में नहीं होता है कि वह अनुसंधान के निष्कर्षों को प्रभावित कर सके, अन्य शब्दों में यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि अनुसंधानकर्ता को अनुभवजनित आधार पर अनुसंधान कार्य में तटस्थता का व्यवहार प्रदर्शित करना चाहिए।

यहां पर उन उदाहरणों को प्रस्तुत किया गया है जो कि प्रत्यक्षवाद आधारित अनुसंधान की विचारधारा एवं दर्शन से जुड़े हुए हैं–

अनेक अध्ययन, निश्चित समय काल में वैश्विक आर्थिक संकट का उल्लेख करते हैं। इस प्रकार के संकट का अध्ययन करने में यह आवश्यक हो जाता है कि अनुसंधानकर्ता विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के प्रभाव को विभिन्न राष्ट्रों के विकास के संबंध में देखता है। एक अनुसंधानकर्ता को अनुसंधान एवं इससे संबंधित तथ्यों का अध्ययन करना होता है जिसमें प्रत्यक्षवाद का सिद्धांत अनेक प्रकार की मान्यताओं एवं परिकल्पनाओं के आधार पर किया जा सकता है।

विज्ञान के संदर्भ में देखा जाए तो प्रत्यक्षवाद के सिद्धांत निम्नलिखित पहलुओं पर निर्भर करते हैं–

विज्ञान का स्वभाव नियतात्मक है, इसका अर्थ यह हुआ कि विज्ञान के अध्ययन पर निर्भर होकर जो वक्तव्य दिए जाते हैं उन्हें वास्तविक आंकड़ों तथा विभिन्न प्रकार के प्रयोगों के द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। जिस प्रकार से कोई भौतिक विज्ञान के प्रयोगों के आधार पर अपने तथ्यों को सत्यापित कर सकता है उसी प्रकार से यह अपेक्षा की जाती है कि एक समाजशास्त्री भी समाज से संबंधित तथ्यों को सत्यापित करने में सक्षम हो।

उदाहरण के लिए X का परिणाम Y के रूप में विभिन्न परिस्थितियों में अलग–अलग हो सकता है ऐसी मान्यता ली जा सकती है।

टिप्पणी

विज्ञान का एक अन्य प्रारूप यांत्रिक रूप भी माना जा सकता है अर्थात विज्ञान का चरित्र भी यांत्रिक प्रकार का हो सकता है जिसमें वैज्ञानिक उपागमों को अनेक प्रकार के माध्यमों से समान रूप से व्याख्यायित करके अनुसंधानकर्ता द्वारा समझा जा सकता है तथा तदनुसार अनुसंधान परिकल्पना स्वीकृत अथवा अस्वीकृत भी हो सकती है।

अनुसंधानकर्ता के द्वारा स्थापित की गई परिकल्पना को विशिष्ट अनुसंधानात्मक माध्यमों का उपयोग करते हुए जांचना तथा सत्यापित किया जाना आवश्यक होता है।

2.2.3 घटना विज्ञान

समाजशास्त्र की महत्वपूर्ण शाखा होने के कारण फिनोमिनालॉजी (घटना विज्ञान) अनेक प्रकार के प्रपंचों का अध्ययन करने का कार्य करता है। कुछ विचारकों ने फिनोमिनालॉजी की संक्षिप्त परिभाषा निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत की है–

"फिनोमिनालॉजी मनुष्य की पारस्परिक जागरूकता व सामाजिक क्रिया के मध्य एक संपर्क का अध्ययन क्षेत्र है। यह शास्त्र इस अवधारणा पर आधारित है कि समाज में मनुष्य ने विभिन्न प्रकार के आधारभूत विश्वास किस प्रकार से स्थापित किए हैं।"

घटना विज्ञान की अवधारणा बहुत निकटतम रूप से सामाजिक घटना विज्ञान से संबंधित है एवं घटना विज्ञानी सामाजिक तथा सांस्कृतिक वास्तविकता के निर्माण की बात करते हैं। जो समाजशास्त्री, घटना विज्ञान के आधार पर समाज की घटनाओं का अन्वेषण करते हैं वे समाजशास्त्री समाज के क्रम को दिन–प्रतिदिन की अंतः क्रियाओं के कारण निर्मित हुई मानते हैं।

जो समाजशास्त्री घटना विज्ञान के आधार पर सामाजिक अध्ययन करता है उसे घटना विज्ञानी कहा जाता है तथा इस तथ्य पर बल देते हैं कि सामाजिक वास्तविकता को किसी निश्चित एवं विषयात्मक वास्तविकता के आधार पर नहीं देखा जाना चाहिए। सामाजिक वास्तविकता मानवीय गतिविधियों का परिणाम होता है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अवधारणात्मक रूप में इसे प्रारूप–प्रदर्शन के प्रकरण द्वारा समझा जाता है।

उद्‌भव

यह प्रश्न भी समान रूप से महत्वपूर्ण है कि घटना–विज्ञान के उद्‌भव के रूप को भी पाठक भली–भांति स्पष्ट कर लें तथा किन कारणों से विज्ञान की किस शाखा को सामाजिक घटना विज्ञान कहा जा सकता है तथा जिसे समाजशास्त्र के क्षेत्र में एक उपागम के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस विज्ञान का प्रमुख उद्देश्य मनुष्य की जागरुकता को तलाश करना है जो कि सामाजिक क्रियाओं के उत्पादन, सामाजिक स्थितियों तथा सामाजिक विश्व के जनन का कार्य करते हैं।

यह विश्वास किया जाता है कि घटना विज्ञान का सिद्धांत मूल रूप से जर्मन गणित वैज्ञानिक एडमंड हसर्ल के द्वारा 19वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में किया गया था। इस विचारधारा के उद्‌भव का प्रमुख केंद्र अथवा स्रोत मानव चेतना से संबंधित है। परिणामस्वरूप यह सिद्धांत इस परिप्रेक्ष्य में बहुत महत्वपूर्ण संबंध रखता है कि मानवीय चेतना को समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य के माध्यम से समझा जा सकता है। यह सिद्धांत वर्ष 1961 में समाजशास्त्र के क्षेत्र में अल्फ्रेड शट्‌ज के द्वारा सम्मिलित किया गया। शट्‌ज ने इन सिद्धांतों को एक साथ समाहित करते हुए एक नई विचारधारा का सर्जन

टिप्पणी

किया जिसे घटना विज्ञानीय दर्शन कहा गया तथा इसमें उन्होंने हसर्ल द्वारा दिए गए घटना विज्ञानीय दर्शन को सामाजिक विज्ञान तथा सामाजिक विषय के क्षेत्र में सम्मिलित किया।

जैसा कि हम जानते हैं कि मानव समाज, सदैव परिवर्तन का विषय रहा है तथा इसमें नए प्रकार के कार्य करने की संस्कृतियां उत्पन्न होती रहती हैं। अनुसंधान से संबंधित परिप्रेक्ष्य को समझने के लिए सामाजिक घटना विज्ञान की अवधारणा को भी समझना आवश्यक है।

घटना विज्ञान के सिद्धांत

घटना विज्ञान से संबंधित प्राथमिक सिद्धांत समाजशास्त्रियों के द्वारा बीसवीं शताब्दी में स्थापित किए गए। घटना विज्ञान एक दार्शनिक अध्ययन है जोकि व्यक्ति के परिदृश्य या विषयात्मक परिप्रेक्ष्य में अनुभवों पर आधारित है। हालांकि इस प्रकार की शब्दावली इस विज्ञान की सीमा को संज्ञानात्मक सूचनाओं जो कि मस्तिष्क के दर्शन में उत्पन्न होती हैं तक ही सीमित करने का कार्य करते हैं। इस विषय का कार्यक्षेत्र वृहद स्तर पर मनुष्य की मंशा अथवा धारण किए हुए विचार, भावना, भाषा, गतिविधि इत्यादि से संबंधित हो सकते हैं विशेषकर जब उस विषय क्षेत्र में अध्ययन किया जा रहा होता है। अनेक विचारकों के मध्य इस प्रकार की बहस अवश्य ही चली हुई है कि इस विज्ञान को किस प्रकार से परिभाषित किया जाए तथा दार्शनिक समुदाय में इसको किस ढंग से उपयोग किया जाए। तदनुसार इस विज्ञान के सिद्धांतों में भी दार्शनिकों में अनेक प्रकार के मतभेद पाए जाते हैं। सामान्य तौर पर घटना विज्ञानी अध्ययन करते समय एक प्रकार का अनुभव महसूस करते हैं, बजाय इसके कि किसी विशेष प्रकार की घटना को देखने के। इस प्रकार से इस विज्ञान का विषय क्षेत्र तथा कार्यक्षेत्र की समग्रता में मानव अनुभव को अपने आप में सम्मिलित करता है जिसमें सभी कुछ मिला–जुला होता है। घटना विज्ञान से संबंधित सिद्धांतों में अन्य अवधारणाओं के अतिरिक्त यह मान्यता भी स्थापित है कि किसी दिए हुए संदर्भ में पुराने अनुभव तथा पुराने अनुभवों के साथ सामान्य व्याख्या भी सम्मिलित होती है। इस सिद्धांत के माध्यम से किसी विशेष प्रकार के अनुभव का अन्वेषण तथा आकलन किया जा सकता है। विचार तथा वक्तव्य समाज की वास्तविकताओं के आधार पर होते हैं एवं इसके साथ ही साथ यह प्रयोगात्मक आंकड़ों के द्वारा समर्थित भी होते हैं क्योंकि कोई भी वास्तविकता आंकड़ों के द्वारा समर्थित होगी उसी स्थिति में उसे वैज्ञानिक कहा जा सकता है। यह माना जाता है कि Neurophenomenology के क्षेत्र में अध्ययन करने से अनुभव को किसी विशेष मस्तिष्क का प्रकार समझा जा सकता है। हालांकि प्रत्येक व्यक्तिगत एवं विशिष्ट मस्तिष्क का पता होना साथ ही साथ उसके कार्य करने की विधि का ज्ञान होना एक अत्यंत जटिल काम है परंतु समाजशास्त्री इस कार्य को घटना वैज्ञानिक उपागम के माध्यम से सरल करने का कार्य करता है तथा इससे संबंधित सिद्धांत इस कार्य में सहायक भी होते हैं। वास्तव में यह भी कहा जाता है कि अनुभव की परास में पृष्ठभूमि के प्रपंच जुड़े हुए होते हैं जो कि व्यक्तिगत आधार पर स्पष्ट जानकारी, अचेतन क्रियाओं के बारे में रखते हैं जो कि कोई विशेष प्रकार का चेतन विचार अपने पास नहीं रखते हैं। हम यह भी जानते हैं कि समाज में प्रत्येक व्यक्तिगत चेतना का स्तर अन्य से सर्वथा भिन्न होता है। चेतना के स्तर में यह भिन्नता अनेक प्रकार के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक

कारकों से हो सकती है। निश्चित रूप से इस प्रकार के कारक अनुभव की रचना करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। किसी भी अनुसंधान कार्य में यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि इन तथ्यों को दार्शनिक विचार–विमर्श के साथ ही जांच लिया जाए।

टिप्पणी

घटना विज्ञान की नई अवधारणाएं समाजशास्त्र के अध्ययन में जोड़ी गई हैं। इस कारण से घटना विज्ञान बहुत विशेष प्रकार का शास्त्र हो जाता है तथा अन्य प्रमुख विषयों जैसे कि दर्शन, सत्तामीमांसा एवं ज्ञानमीमांसा के समकक्ष आ जाता है।

सत्तामीमांसा मूल रूप से 'होने' से संबंधित एक अध्ययन है। इसी प्रकार से ज्ञानमीमांसा मूल रूप से ज्ञान तर्क तथा एथिक्स पर आधारित अध्ययन है।

अल्फ्रेड शट्ज एवं घटना विज्ञानीय समाजशास्त्र

प्रकरण अथवा घटना विज्ञानीय समाजशास्त्र, अल्फ्रेड शट्ज के कारण है जिन्होंने इस क्षेत्र में बहुत योगदान दिया है। उनका जन्म वर्ष 1899 में हुआ था तथा मृत्यु सन 1959 न्यूयॉर्क में हुई थी। उन्होंने सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में घटना विज्ञानीय आधार का सृजन करने में महत्वपूर्ण कार्य किया। हालाकि प्रारंभ न्यूयॉर्क के New School for Social Research in New York में पार्ट टाइम आधार पर कार्य करते हुए किया। शट्ज ने अपने साथी फेलिक्स कफमैन के साथ कार्य किया तथा उन्होंने हसर्ल के कार्य का बहुत गहनता के साथ अध्ययन किया एवं समाज को समझने में उन्होंने मैक्स वेबर का अध्ययन किया। शट्ज ने एक बहुत लंबे समय तक अनुसंधान कार्य किया एवं इस बीच उन्होंने अनेक अनुसंधान पत्रों को घटना विज्ञान के क्षेत्र में प्रकाशित किया तथा अनेक निबंध भी लिखे हैं। शट्ज के लिखे हुए एक निबंध 'बाहरी व्यक्ति' में दिए गए निम्नलिखित वक्तव्य महत्वपूर्ण हैं–

मनुष्य जो समाज में सोचता है एवं कार्य करता है वह ज्ञान मनुष्य के स्वयं के जीवन में समान प्रकार का नहीं होता वरन यह स्पष्ट रूप से होता है एवं यह साथ ही साथ विरोधाभासों से भी भरा हुआ होता है।

इस प्रकार की विचारधारा से यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज में बहुत से व्यक्ति या संभवतया सभी व्यक्ति इस कार्य में अपवाद नहीं हैं एवं व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों एवं समय पर अलग प्रकार से व्यवहार करते हैं।

बावजूद इसके कि अन्य को भी मनुष्य के मस्तिक से संबंधित अध्ययन के केंद्रीय अंग में रखा जाए जो कि सामाजिक अंतःक्रिया के माध्यम से होता है। इस संबंध में सूचना ज्ञान के स्रोत को सामाजिक रूप से प्राप्त किया हुआ मानते हैं एवं इससे संबंधित उन्होंने निम्नलिखित चार मार्ग बताए हैं–

- प्रत्यक्षदर्शी वह व्यक्ति होता है जो कि मनुष्य के समाज में परीक्षण करता है तथा जो भी देखता है वह मुझे सूचित करता है।
- आंतरिक वह व्यक्ति होता है जो किसी घटना विशेष की सूचना मुझे देता है अथवा यह अन्य व्यक्तियों के विचार भी मुझे दे सकता है। यह व्यक्ति जो सूचना देता है वह इस अधिकार पत्र के साथ में देता है कि वह एक समूह विशेष का प्रतिनिधित्व कर रहा है।

टिप्पणी

- विश्लेषक वह व्यक्ति होता है जो मेरी व्यवस्था के साथ साझेदारी करता है। यह व्यक्ति सूचनाओं को एकत्रित करता है, संगठित करता है तथा उनको व्यवस्था की संबंधता के साथ में सत्यापित भी करता है।
- वक्ता वही होता है जो व्यवस्था की संबंधता के साथ भागीदारी नहीं रखता है परंतु वह सूचनाओं को एक विश्लेषक की भांति ही एकत्रित करता है।

सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में यह नहीं भूला जाना चाहिए कि व्याख्या, समझ, उद्देश्यात्मकता एवं सैद्धांतिक रचना, किसी व्यक्ति की पूर्व निर्धारित अवधारणाओं पर उसकी स्थितियों का परिप्रेक्ष्य होती है। किसी एक निश्चित सीमा तक यह विश्वास किया जा सकता है कि विज्ञान वास्तविकता की परम व्याख्या प्रस्तुत कर सकने में सक्षम है। परंतु यदि ऐसा नहीं होता है तो इसको अन्य अनुसंधान कार्यों के माध्यम से सत्यापित अवश्य किया जा सकता है और यदि अनुसंधानकर्ता इसमें असफल होता है तो इस प्रकार के अवधारणात्मक अथवा प्रयोगात्मक परिप्रेक्ष्य को छल कहा जाता है।

प्रामाणिकता के रूप में यह कहा जा सकता है कि हर स्थिति में विज्ञान, पूर्व वैज्ञानिक चक्र की घटनाओं पर अंतर्दृष्टि डालने का कार्य करता है एवं यह विभिन्न प्रकार के उत्तर संबंधित, प्रश्न के उत्तर देने के एक प्रयत्न के रूप में करने का कार्य करता है। परंतु फिनोमिनालॉजी के संबंध में यह कहा जा सकता है कि विज्ञान केवल आंकड़े एकत्रित करने का कार्य नहीं करता है। इसके माध्यम से आज के समाज में वह जानने का प्रयत्न करते हैं कि हम या व्यक्ति वास्तव में क्या करते हैं।

2.2.4 नृजाति कार्यप्रणाली

नृजाति कार्यप्रणाली का अर्थ है वे तरीके जो लोगों द्वारा अपने रोजमर्रा के जीवन की उपलब्धियों हेतु रोजाना प्रयोग किए जाते हैं। इसी बात को थोड़ा अलग ढंग से कहा जाए तो, सामाजिक संसार को एक गतिमान व्यावहारिक उपलब्धि के रूप में देखा जाता है। लोगों को तर्कसंगत माना जाता है, और वे अपनी रोजमर्रा की उपलब्धियों के लिए व्यावहारिक तर्क का उपयोग करते हैं। नृजाति कार्यप्रणाली में, इस बात पर जोर दिया जाता है कि लोग क्या करते हैं, जबकि घटना संबंधी समाजशास्त्र में लोगों के विचारों पर ध्यान दिया जाता है।

नृजाति कार्यप्रणाली शास्त्रियों का ध्यान क्रिया पर केंद्रित होता है, क्योंकि की जाने वाली क्रिया से ही एक विचारशील व्यक्ति (अभिनेता) के सम्मिलन का आभास होता है; वहीं नृजाति कार्यप्रणाली, मानसिक प्रक्रियाओं के अस्तित्व को अस्वीकृत नहीं करती। नृजाति कार्यप्रणाली शास्त्री कुछ ऐसे सामाजिक सिद्धांतों की आलोचना करते हैं (उदाहरण के लिए, संरचनात्मक कार्यात्मकता और संरचनात्मक मार्क्सवाद) जिनमें एक अभिनेता को 'समीक्षात्मक बुद्धू' समझा जाता है। जहां नृजाति कार्यप्रणाली शास्त्री अभिनेताओं को समीक्षात्मक बुद्धू समझने के विरुद्ध है, वहीं उनका इस बात पर भी विश्वास नहीं है कि लोग 'तकरीबन पूरी तरह आत्मक्षेपी, आत्म–सचेत और चतुर होते हैं' बल्कि, शट्ज के दिखाए रास्ते पर चलते हुए, वे इस बात से सहमत हैं कि ज्यादातर क्रियाएं परंपराएं होती है और संबंधित रूप से बिना सोचे समझे की जाती है।

सामान्य समझ तथा प्रक्रियाओं एवं विचारों के परास (रेंज) के अध्ययन में वे साधन सम्मिलित हैं जिनके जरिए समाज के सामान्य सदस्य चीजों को समझते हैं, अपने रास्ते ढूंढ़ते हैं और अपनी परिस्थितियों के अनुरूप क्रिया करने का प्रयास करते हैं।

हैरल्ड गारफिंकल द्वारा, हाल में दी गई नृजाति कार्यप्रणाली की परिभाषा का निरीक्षण करने पर हमें नृजाति कार्यप्रणाली की बेहतर समझ प्राप्त होती है। एमिल दुर्खीम की तरह, गारफिंकल भी 'सामाजिक तथ्यों' को मौलिक सामाजिक घटना का दर्जा देते हैं। लेकिन, गारफिंकल के सामाजिक तथ्य दुर्खीम के सामाजिक तथ्यों से बहुत अलग हैं। दुर्खीम के अनुसार सामाजिक तथ्य व्यक्ति पर बलपूर्वक बाहरी प्रभाव डालते हैं; और ऐसा केंद्र अपनाने वाले व्यक्तियों (अभिनेताओं) को सामाजिक संरचनाओं तथा संस्थाओं द्वारा बंधे या निर्धारित पाते हैं, ऐसे लोग स्वतंत्र निर्णय लेने के योग्य नहीं होते। दुर्खीम के सामाजिक तथ्यों को मैक्रो–वस्तुपरक (समष्टि) घटनाएं कहा जा सकता है; लेकिन दुर्खीम के विपरीत, गारफिंकल इनको माइक्रो–स्तर (व्यष्टि) पर मौजूद नजरिए से देखते हैं। दूसरी तरह से कहा जाए तो, नृजाति कार्यप्रणाली दैनिक जीवन को व्यवस्थित करने से संबंधित है, या गारफिंकल के शब्दों में, यह 'अमर, साधारण समाज' है। इसकी व्याख्या करते हुए, पॉलनर ने इसे साधारण की असाधारण व्यवस्था कहा है। गारफिंकल की परिभाषा का प्रयोग किया जाए तो, समझ आता है कि ऐसा संगठन स्थानीय या अंतर्जात रूप से उत्पन्न होता है और प्राकृतिक ढंग से व्यवस्थित।

मेनार्ड और क्लेमैन के विचार में, गारफिंकल ने समाजशास्त्र के पारम्परिक मामलों को वर्णित करने के लिए नए तरीके अपनाने की कोशिश की है– सामाजिक तथ्यों के दैनिक जीवन पर बाहरी प्रभावशाली दबाव की जगह, सामाजिक तथ्यों की वस्तुपरक वास्तविकता का प्रयोग किया है। इस सम्मिलित कार्य पर अपना ध्यान केंद्रित करते हुए, गारफिंकल इसके लिए आवश्यक संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं से अपना मुंह मोड़ लेते हैं, इसकी जगह उन्हें लोगों की प्रक्रियाओं, उनके तरीकों या प्रथाओं में ज्यादा दिलचस्पी है।

समाज में व्यवस्था की शुरुआत, कुछ हद तक, लोगों की प्रतिक्रियात्मकता द्वारा होती है, अर्थ कि, नृजाति कार्यप्रणाली शास्त्री इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि व्यवस्था केवल नियमों का पालन करने से होती है। बल्कि, यह तो एक व्यक्ति (अभिनेता) की उपलब्ध विकल्पों के प्रति जागरुकता है, और इस बात की प्रत्याशा की योग्यता कि लोग उनके द्वारा कही बात या किए गए कार्य के प्रति किस प्रकार की प्रतिक्रिया देंगे, इससे रोजमर्रा के संसार में व्यवस्था स्थापित करने में सहायता मिलती है।

नृजाति कार्यप्रणाली का विविधीकरण

नृजाति कार्यप्रणाली का 'आविष्कार' गारफिंकल द्वारा, 1940 के दशक के आखिरी भाग में किया गया था लेकिन इसका पहला व्यवस्थीकरण 1967 में उनके द्वारा लिखित स्टडीज इन एथनोमेथोडोलोजी के प्रकाशन के साथ किया गया। समय के साथ, नृजाति कार्यप्रणाली का व्यापक विकास हुआ है और भिन्न दिशाओं में इसका विस्तार हुआ है। इस कारण डॉन जिम्मरमैन ने 1978 में यह निष्कर्ष निकाला था कि उस समय तक केवल एक प्रकार की नृजाति कार्यप्रणाली नहीं बल्कि उसके कई प्रकार विकसित हो गए थे। यह कहना गलत नहीं होगा कि आने वाले कुछ सालों में, उसकी विविधता और द्वंद्व बढ़ने वाले हैं। आखिर नृजाति कार्यप्रणाली का विषय है दैनिक जीवन की

अनंत विविधता। इसके परिणामस्वरूप, कई और अध्ययन किए जाएंगे, कई विविधीकरण होंगे और इसके अतिरिक्त 'विस्तार का दर्द' भी झेलना पड़ेगा।

टिप्पणी

मेनार्ड और क्लेमैन द्वारा नृजाति कार्यप्रणाली में भिन्न प्रकार के किए जाने वाले कार्यों का विवरण दिया है, लेकिन हमारी नजर में इनमें से दो बेहद महत्वपूर्ण हैं। पहला है नृजाति कार्यप्रणाली के अनुरूप संस्थागत विन्यास (सेटिंग्स) की जांच–पड़ताल। गारफिंकल और उनके सहयोगियों द्वारा नृजाति कार्यप्रणाली के अनुरूप की गई शुरुआती जांच–पड़ताल गैर–संस्थागत परिस्थितियों में की गई थीं, जैसेकि किसी के घर में। बाद में, संस्थागत वातावरण में रोजमर्रा की प्रथाओं के अध्ययन की ओर झुकाव बढ़ने लगा उदाहरण के लिए, कोर्टरूम, चिकित्सा क्लीनिक, और पुलिस विभाग। इन जांच–पड़ताल का लक्ष्य यह समझना है कि इन परिस्थितियों में लोग अपना औपचारिक कार्य कैसे निपटाते हैं, और इन संस्थाओं की प्रक्रियाओं और इन्हें निर्मित करने वाले कारकों को समझना।

ऐसे संस्थागत विन्यास (सेटिंग्स) की पारम्परिक सामाजिक जांच–पड़ताल में उनकी संरचनाओं, औपचारिक नियमों, और आधिकारिक प्रक्रियाओं पर ध्यान केंद्रित किया जाता था, ताकि उनमें काम करने वाले लोगों के कार्य का विवरण दिया जा सके। नृजाति कार्यप्रणाली शास्त्रियों के लिए, ऐसी बाहरी बाधाएं संस्था का आंतरिक हाल बताने के लिए अपर्याप्त होती हैं। लोग इन बाहरी ताकतों का प्रयोग अपने कार्यों की उपलब्धि के लिए और उस संस्था के निर्माण करने के लिए करते हैं, जिनमें ये बसते हैं। लोग अपनी व्यावहारिक प्रणालियों का प्रयोग केवल अपना रोजाना जीवन बनाने के लिए ही नहीं बल्कि संस्था के उत्पादों के निर्माण हेतु भी करते हैं। उदाहरण के लिए, पुलिस विभाग द्वारा संकलित क्राइम रेट केवल, स्पष्ट रूप से परिभाषित, आधिकारिक नियमों के पालन का परिणाम नहीं होता बल्कि इस काम के लिए अधिकारियों द्वारा अनेक सामान्य समझ वाली प्रक्रियाओं का प्रयोग किया जाता है, जैसे कि, पीड़ितों को हताहतों या दुर्घटनाओं के रूप में वर्गीकृत किया जाना चाहिए। इस प्रकार, दर तय करने का कार्य विशेषज्ञों के व्याख्यात्मक कार्य पर निर्भर करता है, सरकारी आंकड़ों की व्याख्या करते हुए बेहद ध्यान रखने की आवश्यकता होती है।

दूसरा और अति महत्वपूर्ण, नृजाति कार्यप्रणाली की विविधता एक वार्तालाप विश्लेषण है। वार्तालाप विश्लेषण का लक्ष्य है, 'वार्तालाप परस्पर क्रिया' के मौलिक ढांचों को समझना' (जिम्मरमैन, 1988)।

तीसरा, परस्पर क्रिया की, सामान्य रूप से और वार्तालाप में, विशेष रूप से व्यवस्थित विशेषताएं होती हैं जो व्यक्तियों (अभिनेताओं) की उपलब्धियां होती हैं। नृजाति कार्यप्रणाली शास्त्री उन्हें व्यक्तियों (अभिनेताओं) की संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं और उनके उत्पन्न होने वाले स्थान के व्यापक संदर्भ में देखते हुए, वार्तालापों को स्वतंत्र मानते हैं।

चौथा, 'वार्तालाप की मौलिक संरचना है – अनुक्रमिक संगठन'। अंत में, 'वार्तालापिक परस्पर क्रिया का मार्ग रिटर्न–बाय–रिटर्न या स्थानीय आधार पर प्रबंधित किया जाता है'। यहां जिम्मरमैन, समाजशास्त्री जॉन हेरिटेज द्वारा वार्तालापों के दो प्रकारों, 'संदर्भ–आकार' और 'संदर्भ–नवीकरण' के बीच दी गई भिन्नता का उद्धरण देते हैं। वार्तालाप को संदर्भ–आकार देने का अर्थ है कि वर्तमान में कही गई बात को भविष्य के संदर्भ में प्रयोग किया जा सकता है।

वार्तालाप विश्लेषक, प्राकृतिक परिस्थितियों में वार्तालापों की विधिवत जांच करना पसंद करते हैं। इसके लिए वे अकसर ऑडियो या विडियो टेप का प्रयोग करते हैं। इस तरीके के प्रयोग से, अनुसंधानकर्त्ता द्वारा थोपी जाने की जगह, रोजमर्रा के संसार में से जानकारी निकल कर आती है। अपने नोट्स पर निर्भर होने की जगह, अनुसंधानकर्त्ता एक वास्तविक वार्तालाप का निरीक्षण और पुनर्निरीक्षण कर सकता है। इस तकनीक के जरिए, अनुसंधानकर्त्ता वार्तालापों के संबंध में उच्च स्तरीय विस्तृत विश्लेषण भी कर सकता है।

वार्तालापों का विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित होता है कि वार्तालाप, पारस्परिक संबंधों के अन्य प्रकारों का आधार है। यह परस्पर क्रिया का सबसे व्यापक प्रकार है और वार्तालाप में, 'सामाजिक तौर पर व्यवस्थित संरचनात्मक प्रथाओं और प्रक्रियाओं का पूर्ण मैट्रिक्स सम्मिलित होता है।'

2.2.5 प्रतीकात्मक क्रियावाद

व्यावहारिकता एक व्यापक दार्शनिक स्थिति है जिसमें से हम मीड द्वारा विकसित सामाजिक उन्मुखीकरण को प्रभावित करने वाले भिन्न पहलुओं की पहचान कर सकते हैं। व्यवहारवादियों के अनुसार, 'बाहर संसार में कुछ भी उपस्थित नहीं है; संसार के प्रति और संसार में हमारी क्रिया के कारण वह सक्रिय रूप निर्मित होता जाता है।' इसके अलावा लोगों का संसार के प्रति ज्ञान उनके अनुभवों और उन चीजों तक सीमित है जो उन्हें प्रासंगिक लगती हैं। अंत में यह कहा जा सकता है कि लोगों को अच्छी तरह समझने के लिए उनकी संसार में भूमिका समझना जरूरी होगा। प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावाद के लिए तीन महत्वपूर्ण बिंदु हैं–

1. अभिनेता (कार्य करने वाला) और संसार के बीच परस्पर क्रिया पर केंद्रण।
2. अभिनेता और संसार को स्थित संरचनाओं की जगह गतिशील प्रक्रिया के रूप में देखना।
3. अभिनेता की सामाजिक संसार को समझने की योग्यता को महत्व देना।

दार्शनिक व्यवहारवादी जॉन ड्यूवी के कार्य में अंतिम बिंदु को बहुत महत्व दिया गया है। ड्यूवी के अनुसार मन कोई चीज या ढांचा नहीं है, बल्कि ये इसे एक ऐसी चिंतन प्रक्रिया मानते थे जिसमें पड़ावों की एक श्रृंखला शामिल है, जैसेकि, सामाजिक संसार में चीजों की परिभाषा देना, व्यवहार के संभावित मोड्स की रूपरेखा बनाना, वैकल्पिक कार्यप्रणाली के परिणामों की छवि बनाना, असंभाव्य संभावनाएं मिटाना और अंत में, कार्य करने का सबसे बढ़िया तरीका ढूंढ़ना। प्रक्रिया पर इस प्रकार का केंद्रण प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावाद के विकास में बेहद प्रभावशाली था।

डेविड ल्यूविस और रिचर्ड स्मिथ के विचार में प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावाद के विकास में, मीड की तुलना में ड्यूवी और विलियम जेम्स ज्यादा प्रभावशाली साबित हुए। यह तर्क प्रस्तुत करते समय उन्होंने व्यावहारिकता की दो शाखाओं के बीच की भिन्नता को उभारा है– दार्शनिक यथार्थवाद (मीड से संबंधित) और कल्पनावादी व्यावहारिकता (ड्यूवी तथा जेम्स से संबंधित)।

इनके विचार में, प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावाद पर कल्पनावादी दृष्टिकोण का अधिक प्रभाव था। कल्पनावाद का यह मानना है कि चाहे मैक्रो–स्तर (समष्टि) की

टिप्पणी

घटनाएं घटती हैं, लेकिन उनका लोगों की चेतना और उनके व्यवहार पर निर्धारक प्रभाव नहीं पड़ता। ज्यादा सकारात्मक ढंग से देखा जाए तो, यह दृष्टिकोण व्यक्तियों को स्वतंत्र एजेंट्स की तरह देखता है जो अपने स्वयं के व्यक्तिगत हितों और पल की योजना के अनुसार समुदाय के मानदंडों, भूमिकाओं, विश्वासों, आदि को स्वीकार, अस्वीकार, संशोधित अथवा परिभाषित करते हैं। सामाजिक यथार्थवादियों के विपरीत, समाज पर और समाज के व्यक्ति की मानसिक प्रक्रियाओं के नियंत्रण पर जोर दिया गया है। स्वतंत्र एजेंट्स होने की जगह, अभिनेताओं, उनकी समझ और व्यवहारों पर समाज का व्यापक नियंत्रण रहता है।

इस विभिन्नता को ध्यान में रखते हुए मीड, यथार्थवादी कैंप में ज्यादा फिट बैठते हैं, और इसलिए, वे प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावाद की कल्पनावादी दिशा को अच्छी तरह पकड़ नहीं पाए। कालांतर में, विषय के विकास में, हरबर्ट ब्लमर द्वारा ज्यादा मुख्य भूमिका निभाई गई है।

आचरण

मीड के दृष्टिकोण की ल्यूविस तथा स्मिथ द्वारा दी गई व्याख्या का समर्थन इस बात को सिद्ध करता है कि वे भी मनोवैज्ञानिक आचरण से प्रभावित थे, एक ऐसा दृष्टिकोण जो उन्हें यथार्थवादी और अनुभवसिद्ध दिशा में ले गया। अपनी इस मौलिक सोच को जॉन बी वॉटसन के उग्र आचरण से अलग पहचान देने हेतु उन्होंने अपने इस विचार को सामाजिक आचरण का नाम दिया।

वॉटसन के विचारों से प्रभावित वे उग्र व्यवहारवादी, व्यक्तियों के प्रत्यक्ष व्यवहार में दिलचस्पी रखते थे। उनका ध्यान केवल अवलोकनीय व्यवहार या प्रतिक्रिया उत्पन्न करने वाले उत्तेजकों पर केंद्रित था। उत्तेजना और प्रतिक्रिया के बीच के समय में होने वाली गुप्त मानसिक प्रक्रिया को वे मानना नहीं चाहते थे या उस ओर उनका कोई झुकाव नहीं था। मीड ने प्रत्यक्ष व्यवहार के महत्व को पहचाना, लेकिन उन्हें व्यवहार के गुप्त पहलुओं के अस्तित्व से भी इनकार नहीं था, जिन्हें उग्र व्यवहारवादियों ने पूरी तरह अनदेखा कर दिया था। चूंकि मीड, व्यवहारवाद के लिए मौलिक न होने वाले अनुभववाद को स्वीकृत कर चुके थे, इसलिए वे इन गुप्त घटनाओं को दार्शनिक रूप नहीं देना चाहते थे। बल्कि, उन्होंने तो व्यवहारवाद के अनुभवसिद्ध विज्ञान को उत्तेजना एवं प्रतिक्रिया के बीच के समय में घटने वाली घटनाओं तक विस्तृत करने की कोशिश की।

मीड तथा उग्र व्यवहारवादियों के बीच मानव तथा जानवरों के व्यवहार संबंधों के प्रति विचारों में भी बहुत भिन्नता थी। उग्र व्यवहारवादियों को मनुष्यों और जानवरों के बीच कोई भिन्नता महसूस नहीं होती थी, जबकि मीड का मानना था दोनों के बीच बहुत गुणात्मक विभिन्नता होती है।

इस भिन्नता का मुख्य कारण मनुष्य की मानसिक क्षमताओं में पाया गया जिस कारण लोग उत्तेजना और प्रतिक्रिया के बीच भाषा का प्रयोग करके अपनी प्रतिक्रिया के संबंध में निर्णय ले सकते हैं।

ड्यूवी और मीड के सिद्धांतों पर आधारित व्यावहारिकता और आचरण, को 1920 के दशक में, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो के कई ग्रेजुएट शिक्षार्थियों को समझाया गया। इन शिक्षार्थियों द्वारा, जिनमें से एक हरबर्ट ब्लमर भी थे, जिन्होंने प्रतीकात्मक परस्पर

टिप्पणी

क्रियावाद की विचारधारा को स्थापित किया। अन्य सिद्धांतकारों ने भी इन शिक्षार्थियों को प्रभावित किया, इनमें से सबसे महत्वपूर्ण थे जॉर्ज सिम्मेल। सिम्मेल की कार्य के प्रारूपों और परस्पर क्रिया में दिलचस्पी, मीड के सिद्धांत के अनुरूप भी थी और एक तरह से उसका विस्तार भी करती थी। प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया का विकास, और कई विचारों से भी प्रभावित था लेकिन व्यावहारिकता, उग्र आचरण और सिम्मेल का सिद्धांत, बेहद महत्वपूर्ण प्रभाव थे।

ब्लमर द्वारा 1937 में 'प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया' शब्दों का पहली बार प्रयोग किया गया था, इसके अलावा उन्होंने कई निबंध भी लिखे जो इसके विकास में सहायक बने। मीड ने प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया को आचरण से अलग करने की कोशिश की, जबकि, ब्लमर ने इसे दो पक्षों के बीच द्वंद्व के रूप में देखा। ब्लमर के लिए, दोनों, आचरण और संरचनात्मक कार्यात्मकता का झुकाव मनुष्य के व्यवहार की रचना करने वाले कारकों पर केंद्रित था। उदाहरण के लिए, बाहरी उत्तेजनाएं और मानदंड। जहां तक ब्लमर का सोचना था, दोनों उस महत्वपूर्ण प्रक्रिया को अनदेखा करते थे जिससे अभिनेता, खुद को प्रभावित करने वाली ताकतों और अपने व्यवहारों को अर्थ प्रदान करते हैं।

ब्लमर के अनुसार, व्यक्ति के व्यवहार पर बाहरी उत्तेजकों के प्रभाव पर जोर देने वाले व्यवहारवादी, स्पष्ट रूप से मनोवैज्ञानिक न्यूनीकारक थे। आचरण के अलावा, ब्लमर अन्य कई प्रकार के मनोवैज्ञानिक न्यूनीकरण के विरोधी थे। उदाहरण के लिए, वे उन लोगों की आलोचना करते थे, जो मनुष्य की क्रिया को 'रवैये' के सिद्धांत के पारम्परिक मानदंडों के आधार पर विश्लेषित करते थे। उनके विचार में, इस सिद्धांत का प्रयोग करने वाले ज्यादातर लोग रवैये को अभिनेता के अंदर 'पहले से व्यवस्थित प्रवृत्ति' मानते हैं, इनका यह भी मानना है कि लोगों द्वारा की जाने वाली क्रियाएं उनके रवैये से प्रभावित होती हैं। ब्लमर के अनुसार यह 'यंत्रवत विचारधारा' है। उनके लिए बतौर आंतरिक प्रवृत्ति, रवैया इतना महत्वपूर्ण नहीं है, 'बल्कि उस प्रक्रिया का परिभाषित किया जाना अधिक महत्वपूर्ण है जिसके जरिए अभिनेता अपना कार्य करता है'। ब्लमर ने चेतन तथा अचेतन उद्देश्यों पर ध्यान केंद्रित करने वालों की भी आलोचना की है। वे इस विचार को लेकर क्षुब्ध थे कि अभिनेता स्वतंत्र मानसिक आवेगों से उत्तेजित हो जाते हैं, जिनपर उनका कोई नियंत्रण नहीं होता। अभिनेताओं का कामेच्छा जैसी ताकतों द्वारा उत्तेजित हो जाने वाला फ्रॉयड का सिद्धांत, ऐसे मनोवैज्ञानिक सिद्धांत का उदाहरण है जिसका ब्लमर विरोध करते थे। संक्षेप में कहा जाए तो, ब्लमर किसी भी ऐसे मनोवैज्ञानिक सिद्धांत के विरुद्ध थे जो अभिनेताओं द्वारा अर्थ के निर्माण की प्रक्रिया को अनदेखा करते हों, इस बात की सच्चाई को जानते हुए भी कि अभिनेताओं का एक आत्म होता है और वे अपने आप से संबंध रखते हैं।

हालांकि ब्लमर की सामान्य आलोचना मीड की आलोचना के समान थी, लेकिन इन्होंने अपनी आलोचनाओं को आचरण से परे ले जाकर इसमें अन्य प्रकार के मनोवैज्ञानिक न्यूनीकरण भी सम्मिलित कर दिए।

ब्लमर सामाजिक सिद्धांतों के भी विरुद्ध थे, खासतौर पर संरचनात्मक कार्यात्मकता का सिद्धांत जो व्यक्तिगत व्यवहार को व्यापक बाहरी ताकतों द्वारा निर्धारित मानती है। इस श्रेणी में ब्लमर ने वह सिद्धांत सम्मिलित किए जो सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक कारकों को सामाजिक समझते थे जैसेकि सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक

टिप्पणी

संरचना, संस्कृति, स्थिति पद, सामाजिक भूमिका, प्रथाएं, संस्था, सामूहिक प्रतिनिधित्व, सामाजिक स्थिति, सामाजिक आदर्श और मूल्य। सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक दोनों सिद्धांत, वास्तविकता के अर्थ और सामाजिक निर्माण के महत्व को अनदेखा करते हैं। ब्लमर द्वारा सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों की आलोचना को इस प्रकार सारांशित किया गया है–

प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावाद के मौलिक सिद्धांत

अनेक प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावादियों ने प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावाद के मौलिक सिद्धांतों का विस्तृत विवरण करने की कोशिश की है। मौलिक सिद्धांतों में निम्न सम्मिलित हैं–

1. अन्य तुच्छ प्राणियों से अलग, मनुष्य क्षमता से लैस है।
2. सोचने की क्षमता, सामाजिक परस्पर क्रिया से उत्पन्न होती है, जिसके द्वारा लोग सामाजिक संकेतों के अर्थ समझते हैं एवं वे समाज के अन्य लोगों से संचार के योग्य बनते हैं।
3. लोग, परिस्थिति की अपनी समझ के अनुसार संचार में प्रयोग किए जाने वाले संकेतों के अर्थ परिवर्तित कर देते हैं।
4. लोगों द्वारा किए गए इन परिवर्तनों का कुछ श्रेय उनकी अपने आपसे परस्पर क्रिया को जाता है, जिसके आधार पर वे संभावित कार्यप्रणाली से जुड़े लाभ और हानि का आकलन करके एक विकल्प का चुनाव करते हैं।
5. क्रिया और परस्पर क्रिया के आपस में गुंथे पैटर्न से समूह तथा समाज बनते हैं।

सोचने की क्षमता

यह महत्वपूर्ण मान्यता कि मनुष्य सोचने की क्षमता का स्वामी है, प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावाद को व्यवहारवादी मूल से अलग करता है। यह मान्यता, प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावाद के सम्पूर्ण सैद्धांतिक उन्मुखीकरण का आधार है। बर्नार्ड मेल्ट्जेर, जेम्स पैट्रास और लैरी रेनॉल्ड्स का यह कहना था कि, मनुष्य की सोचने की क्षमता की कल्पना, ड्यूवी, कूली और मीड जैसे शुरुआती परस्पर क्रियावादियों के लिए महत्वपूर्ण योगदान है। सोचने की क्षमता, लोगों को चिंतन के आधार पर कार्य करने हेतु प्रेरित करती है, न कि बिना सोचे समझे। लोगों को हमेशा अपने द्वारा किए गए कार्य को सोच समझ कर दिशा–निर्देश देना चाहिए, बस यूं ही कुछ भी नहीं कर देना चाहिए।

सोचने की क्षमता व्यक्ति के मन में जड़ी है, लेकिन प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावादियों की मनुष्य के मन के बारे में एक असाधारण धारणा है। ये इसे शारीरिक दिमाग से अलग मानते हैं। मन के विकास के लिए व्यक्ति के पास दिमाग होना जरूरी है, लेकिन दिमाग द्वारा मन का निर्माण होना अनिवार्य नहीं है, जैसाकि तुच्छ जानवरों के मामले में देखा गया है (ट्रौयेर, 1946)। इसके अलावा, प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावादी मन को एक चीज, एक भौतिक संरचना नहीं मानते, बल्कि ये उसे एक निरंतर प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। यह प्रक्रिया, उत्तेजना और प्रतिक्रिया की व्यापक प्रक्रिया का एक अंश है। असल में 'मन', परस्पर क्रियावाद के एक अन्य पहलु से जुड़ा हुआ है, जैसेकि समाजीकरण, संकेत/चिह्न, आत्म, परस्पर क्रिया और यहां तक कि समाज।

सोच और परस्पर क्रिया

एक व्यक्ति के पास सोचने की केवल सामान्य क्षमता होती है। इस क्षमता को सामाजिक परस्पर क्रिया की प्रक्रिया द्वारा आकृत तथा परिष्कृत किया जाना चाहिए। इस विचार के आधार पर प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावादी सामाजिक परस्पर क्रिया के एक विशिष्ट रूप पर अपना ध्यान केंद्रित करने के लिए प्रेरित हो जाते हैं। मनुष्य की सोचने की क्षमता का विकास बचपन की शुरुआत में समाजीकरण के दौरान होता है और प्रौढ़ अवस्था के समाजीकरण तक यह क्षमता परिष्कृत होती रहती है। प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावादियों की समाजीकरण प्रक्रिया के प्रति विचारधारा, अन्य समाजशास्त्रियों से अलग है। पारम्परिक समाजशास्त्री, संभवतः समाजीकरण को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में देखते हैं जिसके जरिए लोग उन चीजों का ज्ञान प्राप्त करते हैं जो समाज में जीवित रहने के लिए अनिवार्य हैं (संस्कृति, भूमिका अपेक्षाएं, आदि)। प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावादियों के लिए, समाजीकरण एक अधिक आधुनिक प्रक्रिया है जो लोगों में सोचने की क्षमता का विकास संभव करती है, विशिष्ट रूप से मानवीय ढंग के अनुसार। इसके अतिरिक्त, समाजीकरण कोई सरल, एक तरफा प्रक्रिया नहीं है जिसमें अभिनेता को जानकारी प्राप्त होती है। बल्कि, यह एक गतिशील प्रक्रिया है जिसमें अभिनेता अपनी आवश्यकताओं के अनुसार, प्राप्त की गई जानकारी को आकार देता है।

प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावादी, केवल समाजीकरण में ही दिलचस्पी नहीं रखते बल्कि ऐसी सामान्य परस्पर क्रिया में भी रुचि रखते हैं, जो 'अपने आप में महत्वपूर्ण हो'। परस्पर क्रिया एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें सोचने की क्षमता का विकास भी होता है और अभिव्यक्ति भी। सभी प्रकार की परस्पर क्रिया, हमारी सोचने की क्षमता को परिष्कृत करती है। इसके अलावा चिंतन द्वारा परस्पर क्रिया प्रक्रिया को आकार प्राप्त होता है। तकरीबन सभी परस्पर क्रियाओं में, अभिनेताओं को दूसरों का ध्यान रखते हुए यह सोचना चाहिए कि उनके द्वारा की जाने वाली क्रिया दूसरों की गतिविधियों में कैसे फिट बैठेगी। सभी परस्पर क्रियाओं में चिंतन शामिल नहीं होते। सामाजिक परस्पर क्रियाओं के मौलिक प्रकारों में, ब्लमर द्वारा दी गई यह विभिन्नता (मीड के बाद) यहां प्रासंगिक है। पहली गैर–प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया– मीड के संकेतों का वार्तालाप– में सोचना शामिल नहीं होता। दूसरी प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया में मानसिक प्रक्रियाओं की आवश्यकता होती है।

चिंतन का महत्व, वस्तुओं के प्रति प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावादियों के विचारों में दर्शाया गया है। ब्लमर तीन प्रकार की वस्तुओं की विभिन्नता पर रोशनी डालते हैं– भौतिक वस्तुएं जैसेकि एक कुर्सी या एक पेड़ सामाजिक वस्तुएं जैसेकि एक विद्यार्थी या एक गाय अमूर्त वस्तुएं जैसेकि एक विचार या नैतिक सिद्धांत। वस्तुओं को केवल उन चीजों के रूप में देखा जाता है जो बस 'बाहर' वास्तविक संसार में हैं; इनके संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण चीज है अभिनेताओं द्वारा दी गई इनकी परिभाषा। इससे यह यथार्थवादी विचार स्थापित होता है कि भिन्न लोगों के लिए भिन्न वस्तुओं का भिन्न अर्थ होता है– एक वनस्पतिशास्त्री, एक लकड़हारा, एक कवि और घर का माली एक ही पेड़ को विभिन्न नजरिए से देखेंगे। लोग, समाजीकरण प्रक्रिया के दौरान, वस्तुओं के अर्थ समझते हैं।

टिप्पणी

अर्थ तथा प्रतीक (चिह्न) समझना

प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावादियों (मीड के बाद) द्वारा सामाजिक परस्पर क्रिया को सामान्य महत्व दिया गया है। इस प्रकार, अर्थ मानसिक प्रक्रियाओं से नहीं बल्कि परस्पर क्रिया की प्रक्रिया से उभरता है। यह केंद्रण मीड के व्यवहारवाद से लिया गया है– उन्होंने मनुष्य की क्रिया और परस्पर क्रिया पर विशेष ध्यान केंद्रित किया था, पृथक मानसिक प्रक्रियाओं पर नहीं। प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावादी, सामान्य रूप से, इसी दिशा में चलते चले जा रहे हैं। दूसरी चीजों के साथ, केंद्रीय चिंता का विषय यह नहीं है कि लोग किस प्रकार मानसिक रूप से अर्थों और प्रतीकों की रचना करते हैं, बल्कि यह कि वे सामान्य रूप से परस्पर क्रिया के और विशेष रूप से समाजीकरण के दौरान इन्हें सीखते किस प्रकार हैं।

लोग सामाजिक परस्पर क्रिया के दौरान प्रतीक एवं अर्थ समझते व सीखते हैं। लोग बिना सोचे समझे, संकेतों को प्रतिक्रिया देते हैं, जबकि प्रतीकों को प्रतिक्रिया देते समय, लोग काफी विचार करते हैं। संकेत अपने आप में स्पष्ट होते हैं (उदाहरण के लिए, एक गुस्साए कुत्ते के भाव, या प्यास से मरते हुए आदमी को पानी पिलाने पर उसके भाव)। प्रतीक या चिह्न, वे सामाजिक वस्तुएं हैं जो यह दर्शाते हैं कि लोग जिस बात से सहमत होंगे वे उसी का वर्णन करेंगे। सभी सामाजिक वस्तुएं दूसरी चीजों को नहीं दर्शातीं, लेकिन ऐसा करने वाली चीजों को प्रतीक कहा जाता है। शब्द, शारीरिक कलाकृतियां और शारीरिक क्रियाएं, उदाहरण के लिए, क्रॉस या डेविड का स्टार और एक बंद मुट्ठी, सभी प्रतीक माने जा सकते हैं। अकसर लोग, प्रतीकों के माध्यम से अपने बारे में कुछ सूचित करना चाहते हैं– उदाहरण के लिए, उनका रॉल्स रॉयस चलाना उनके विशेष जीवन स्तर का प्रतीक है।

प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावादी भाषा को प्रतीकों की एक व्यापक प्रणाली के रूप में देखते हैं। शब्द असल में चिह्न होते हैं, क्योंकि ये किसी चीज के लिए प्रयोग किए जाते हैं। शब्द, बाकी सभी प्रतीकों को संभव बनाते हैं। कार्य, वस्तुएं और अन्य शब्द (भाषा के संदर्भ में) होते हैं और इनके 'अर्थ' भी होते हैं क्योंकि इन्हें शब्दों के प्रयोग द्वारा वर्णित किया जाता रहा है और किया जाता रहेगा।

लोगों के लिए, विशिष्ट मानवीय ढंग से संबंध बनाए रखने हेतु, प्रतीक महत्वपूर्ण होते हैं। प्रतीकों के कारण एक मनुष्य, सामने खड़ी वास्तविकता के प्रति निष्क्रिय प्रतिक्रिया नहीं देता, बल्कि अभिनय किए जाने वाले संसार में, सक्रिय रूप से प्रतिक्रिया बनाता है और पुनर्निर्मित करता है।

इस सामान्य उपयोगिता के अतिरिक्त, प्रतीक (सामान्य रूप से) और भाषा (विशेष रूप से) अभिनेता के लिए अनेक विशेष कार्य करते हैं।

पहला– प्रतीक देखी और महसूस की गई चीजों के संबंध में उन्हें नाम देने, श्रेणीबद्ध करने और याद रखने के योग्य बनाकर, लोगों को भौतिक तथा सामाजिक संसार के साथ व्यवहार करने का सामर्थ्य प्रदान करते हैं। इस प्रकार लोग अपने अव्यवस्थित संसार को व्यवस्थित कर सकते हैं। भाषा के प्रयोग से लोग चीजों को नाम दे सकते हैं, उन्हें श्रेणीबद्ध कर सकते हैं और विशेषतौर पर अन्य प्रतीकों, जैसेकि सचित्र छवियों की तुलना में, उन्हें ज्यादा अच्छी तरह याद रख सकते हैं।

टिप्पणी

दूसरा– प्रतीक लोगों की अपने वातावरण को समझने की क्षमता को बेहतर बनाते हैं। अविवेच्य उत्तेजकों के ढेर के नीचे दबने की जगह, अभिनेता को वातावरण के कुछ अंशों की तरफ मोड़ा जा सकता है।

तीसरा– प्रतीक सोचने की शक्ति को बेहतर बनाते हैं। जहां सचित्र प्रतीकों का सेट केवल सीमित सोचने की शक्ति प्रदान करता है वहीं, भाषा इस क्षमता को व्यापक रूप से विस्तृत कर देती है। इस प्रकार सोचा जाए तो, चिंतन को अपने खुद के साथ की जाने वाली प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया कहा जा सकता है।

चौथा– प्रतीक व्यक्ति की समस्याएं सुलझाने की क्षमता में वृद्धि लाता है। मनुष्य प्रतीकात्मक माध्यम से सोच कर एक कार्य करने से पहले कई प्रकार की क्रियाओं का विकल्प ले सकते हैं। इससे भारी गलती करने की संभावनाएं कम हो जाती हैं।

पांचवां– प्रतीकों का प्रयोग अभिनेताओं को समय और स्थान से ऊंचा उठा देता है। प्रतीकों के प्रयोग से अभिनेता जीवन की अतीत या भविष्य में कल्पना कर सकते हैं। इसके अलावा, अभिनेता अपने व्यक्तित्व को प्रतीकात्मक ढंग से ऊंचा उठाते हुए, किसी दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण से संसार की कल्पना कर सकते हैं। यह प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावादियों का प्रसिद्ध 'भूमिका–परिग्रह' सिद्धांत है (मिल्लर,1981)।

छठा– प्रतीक हमें स्वर्ग या नर्क जैसी आध्यात्मिक वास्तविकताओं की कल्पना करने के योग्य बनाते हैं।

सातवां– प्रतीक लोगों को अपने वातावरण का दास बनने से बचाते हैं। ये निष्क्रिय नहीं सक्रिय बनाते हैं, अर्थात अपने द्वारा किए जाने वाले कार्यों में आत्म–निर्देशित।

क्रिया और परस्पर क्रिया

प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावादियों की मुख्य चिंता है 'अर्थ' और 'प्रतीकों' का मनुष्य की क्रिया व परस्पर क्रिया पर प्रभाव। यहां मीड द्वारा परिभाषित गुप्त और प्रकट व्यवहार की विभिन्नता को प्रयोग में लाना लाभदायक रहेगा। गुप्त व्यवहार में वह चिंतन प्रक्रिया सम्मिलित है जिसमें प्रतीकों तथा अर्थों का प्रयोग होता है। प्रकट व्यवहार का अर्थ है अभिनेता द्वारा प्रदर्शित प्रत्यक्ष व्यवहार। किसी प्रकार के प्रकट व्यवहार के लिए गुप्त व्यवहार की आवश्यकता नहीं होती (बाहरी उत्तेजकों के प्रति बिना सोचे समझे दी गई प्रतिक्रिया या स्वाभाविक व्यवहार)। हालांकि, मनुष्यों द्वारा की जाने वाली ज्यादातर क्रिया में दोनों प्रकार के व्यवहार शामिल होते हैं। गुप्त व्यवहार, प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावादियों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, जबकि प्रकट व्यवहार पारम्परिक व्यवहारवादियों या विनिमय सिद्धांतकारों के काम आता है। 'अर्थ' तथा 'प्रतीक' मानव सामाजिक क्रिया (जिसमें केवल एक अभिनेता शामिल होता है) और सामाजिक परस्पर क्रिया (जिसमें दो या दो से ज्यादा अभिनेता परस्पर सामाजिक कार्रवाई करते हैं) को खास विशेषताएं प्रदान करते हैं। सामाजिक कार्य उस कार्य को कहते हैं, जिसमें व्यक्ति 'दूसरों को दिमाग में रखकर कार्य करते हैं' (चौरॉन, 1985)। दूसरे शब्दों में, एक कार्य को करते समय, लोग दूसरे अभिनेताओं पर उस कार्य के प्रभाव का आकलन करने लगते हैं। वैसे तो, लोग बिना सोचे समझे, स्वाभाविक व्यवहार में संलग्न रहते हैं, लेकिन उनमें सामाजिक कार्रवाई में संलग्न होने की क्षमता भी होती है।

सामाजिक परस्पर क्रिया की प्रक्रिया में, लोग कार्रवाई में सम्मिलित अन्य लोगों को प्रतीकात्मक ढंग से अर्थ समझाने की कोशिश करते हैं। अन्य लोग इन प्रतीकों को

समझने की कोशिश करते हैं, उस समझ के आधार पर अपनी प्रतिक्रिया तैयार करते हैं। अन्य शब्दों में, सामाजिक परस्पर क्रिया में, अभिनेता आपसी प्रभाव की प्रक्रिया में शामिल होते हैं।

2.2.6 व्याख्यात्मक समझ

व्याख्यात्मक समझ का सिद्धांत स्वतंत्र इच्छा को अधिक स्वीकार्यता देता है और मानव व्यवहार को पर्यावरण की व्यक्तिपरक व्याख्या के परिणाम के रूप में देखता है। व्याख्यात्मक सिद्धांत व्यक्ति (अभिनेता) की उस स्थिति की परिभाषा पर केंद्रित है जिसमें वे कार्य करते हैं।

व्याख्यात्मक समझ को समाज के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो उन अर्थों की खोज पर केंद्रित है जिसे लोग अपनी सामाजिक दुनिया से जोड़ते हैं। समाजशास्त्र में, व्याख्यात्मक समझ का अध्ययन केंद्रीय महत्व रखता है। इसे 'समझ' के रूप में भी शिथिल रूप से परिभाषित किया जा सकता है, जिसका मूल वेरस्टेन (verstehen – जर्मन शब्द है जिसका अर्थ है 'मानव व्यवहार की सहानुभूतिपूर्ण समझ') में निहित हैं। यह एक दृष्टिकोण है जो सामाजिक व्यवहार और अंतःक्रियाओं का अध्ययन करते समय अर्थ और क्रिया के महत्व को केन्द्रित करता है। यह दृष्टिकोण प्रत्यक्षवादी समाजशास्त्र से अलग हो जाता है, यह पहचान कर कि लोगों के व्यक्तिपरक अनुभव, विश्वास और व्यवहार हम जो देखते हैं उसके आंतरिक पहलू हैं या दूसरे शब्दों में विशुद्ध रूप से वस्तुनिष्ठ घटना जैसी कोई चीज नहीं है। सरल शब्दों में, यह दृष्टिकोण हमें बताता है कि समाज और सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करने और समझने के लिए, हमें 'दूसरों की मनःस्थिति में प्रवेश करना या कदम रखना चाहिए' और बाहर से कुछ भी नहीं समझा जा सकता है। आइए इस अवधारणा को समझने के लिए निम्नलिखित उदाहरणों को देखें और इस तरह इस दृष्टिकोण को बेहतर और आसान तरीके से समझें।

व्याख्यात्मक समाजशास्त्र प्रेरणाओं की तर्कसंगत समझ को नियोजित करता है। मैक्स वेबर (1978) ने सुझाव दिया कि हम उद्देश्य के संदर्भ में 'लकड़ी काटना' या 'बंदूक से निशाना लगाना' को समझते हैं।

हम जानते हैं कि एक लकड़ी काटने वाला (लकड़हारा) मजदूरी के लिए काम कर रहा हो सकता है; या अपने स्वयं के उपयोग के लिए काट रहा हो सकता है या संभवतः मनोरंजन के लिए ऐसा कर रहा हो सकता है। लेकिन वह गुस्से में आगबबूला होकर भी यह काम कर रहा हो सकता है (एक तर्कहीन स्थिति)।

इसी प्रकार हम एक व्यक्ति द्वारा बंदूक से निशाना लगाने के उद्देश्य को भी समझते हैं। हो सकता है कि उसे फायरिंग दस्ते के सदस्य के रूप में गोली मारने का आदेश दिया गया है, क्योंकि वह एक दुश्मन के खिलाफ लड़ रहा है, या फिर वह बदला लेने के लिए ऐसा कर रहा है (वेबर, 1978: 8–9)।

व्याख्यात्मक समझ की शाखाएं : (योगदान कर्ताः जॉर्ज हर्बर्ट मीड, हर्बर्ट ब्लमर, इरविंग गोफमैन)

- **प्रतीकात्मक अंतःक्रियावाद (जॉर्ज हर्बर्ट मीड, हर्बर्ट ब्लमर)**– प्रतीकात्मक अंतःक्रियावाद की कुछ मुख्य विशेषताओं में अंतःक्रियाओं का अध्ययन, क्रिया की

टिप्पणी

व्याख्या और स्वयं का सामाजिक निर्माण शामिल है। प्रतीकात्मक अंतःक्रियावाद समाजशास्त्रीय सिद्धांत का एक प्रमुख ढांचा है। यह परिप्रेक्ष्य उस प्रतीकात्मक अर्थ पर निर्भर करता है जो सामाजिक संपर्क की प्रक्रिया में लोग विकसित करते हैं और भरोसा करते हैं। वास्तविकता के सामाजिक निर्माण की धारणा प्रतीकात्मक अंतःक्रियावादी परिप्रेक्ष्य के केंद्र में है।

- **नाट्य शास्त्र (इरविंग गोफमैन)**— ब्लूमर द्वारा प्रतीकात्मक अंतःक्रियावादी दृष्टिकोण को लोकप्रिय बनाने के अलावा, इस परिप्रेक्ष्य में एक अन्य प्रमुख योगदानकर्ता इरविंग गोफमैन थे। उन्होंने एक विशेष प्रकार की अंतःक्रियावादी पद्धति को लोकप्रिय बनाकर एक विशिष्ट योगदान दिया, जिसे नाट्यशास्त्रीय दृष्टिकोण के रूप में जाना जाता है। नाट्यशास्त्रीय दृष्टिकोण भी व्याख्यात्मक दृष्टिकोण से व्युत्पन्न होता है और यह रोजमर्रा के जीवन की तुलना एक नाटक — एक थिएटर या एक मंच की स्थापना से करता है। "नाटकीय दृष्टिकोण सामाजिक संपर्क का एक ऐसा अध्ययन है जैसे कि प्रतिभागी एक थिएटर में एक नाटक में अभिनेता हैं .... इसलिए; सामाजिक व्यवहार नाट्य नाटक के अनुरूप हो जाता है (अब्राहम, 2015: 98)।

  उदाहरण— कक्षा या परीक्षा के दौरान, हमें एक गंभीर छवि पेश करने की आवश्यकता महसूस हो सकती है; जबकि, किसी पार्टी में, कूल दिखना और दूसरों को खुश करने के लिए गंभीर छवि नहीं दिखाना महत्वपूर्ण लग सकता है।

गोफमैन द्वारा लोकप्रिय यह दृष्टिकोण निम्नलिखित आधारों पर आधारित है। जैसे कि अभिनेता हमारे सामने अभिनय कर रहे हों, हमारे सामने कुछ दृश्य या चित्र प्रस्तुत कर रहे हों, वैसे ही हम व्यक्ति भी अपने व्यक्तित्व के कुछ गुणों को बाहरी दुनिया के सामने प्रस्तुत करना पसंद करते हैं; जबकि हम उनमें से कुछ को छिपाना पसंद करते हैं।

उपर्युक्त उदाहरण से पता चलता है कि गोफमैन का प्राथमिक ध्यान छवि प्रबंधन की प्रक्रिया को समझने पर रहा है। अतः व्यक्ति न केवल खुद को एक दूसरे के सामने प्रस्तुत करने योग्य तरीके से प्रस्तुत करते हैं, बल्कि वे जो छवि प्रस्तुत करते हैं उसे बनाये रखने का प्रयास भी करते हैं। यह पहलू नाट्यशास्त्र को एक महत्वपूर्ण आयाम देता है। अर्थात, यह कल्पना करता है कि 'सारी दुनिया एक मंच है' और लोग आमने—सामने की बातचीत में अपने कार्यों एवं व्यवहार को सचेतन रूप से प्रस्तुत करते हैं। एक प्रकार से यह क्रिया के दृष्टिकोण को एक जटिल आयाम भी देता है। यदि हमें वेबर के अनुसार क्रियाओं के अर्थों को भली प्रकार से समझना है, तो यह आवश्यक होगा कि व्यक्ति की क्रियाओं एवं व्यवहार में हम स्वयं को गहराई से और विषयगत रूप से शामिल करें, ताकि यह पता लगाया जा सके कि कोई व्यक्ति प्रभाव प्रबंधन के कार्य में संलग्न है या नहीं।

इसलिए, बिल्टन एट अल, (1981) का कहना है कि एक क्रिया परिप्रेक्ष्य के रूप में प्रतीकात्मक अंतःक्रियावादी परिप्रेक्ष्य विशेष रूप से छोटे पैमाने पर बातचीत, व्यक्तित्व विकास और विचलित व्यवहार के अध्ययन में व्यापक रूप से प्रभावशाली रहा है। मीड का कार्य जैविक और सहज तत्वों के बहिष्कार एवं स्वयं के सामाजिक निर्माण पर जोर देता है। इस परिप्रेक्ष्य को अपनाने वाला एक उत्कृष्ट अध्ययन गोफमैन का कार्य

'एसाइलम्स (1961)' है जिसमें वह मानसिक रोगियों और अन्य कैदियों के करियर और सामाजिक स्थिति को उनके संबंधित हॉस्पिटल एवं जेल जैसे संस्थानों के परिक्षेत्र में देखता है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. कॉम्टे द्वारा लिखित 'कोर्स ऑफ पॉजिटिव फिलॉसफी' की रचना किस वर्ष हुई?
   (क) 1845 (ख) 1842
   (ग) 1848 (घ) 1851
2. ब्लमर द्वारा 'प्रतीकात्मक परस्पर क्रिया' शब्दों का पहली बार प्रयोग कब किया गया?
   (क) 1937 (ख) 1939
   (ग) 1941 (घ) 1943

2.3 सामाजिक विज्ञान अनुसंधान : तार्किक समीक्षा

समाजशास्त्र की प्रकृति विज्ञान को समाज विज्ञान के रूप में हमारे आसपास की दुनिया को समझने के तरीके के रूप में देखती है। प्राकृतिक दुनिया को वैज्ञानिक आधार पर समझने की तर्ज पर सामाजिक दुनिया की प्रकृति को समझने के लिए सबसे पहला वैज्ञानिक दृष्टिकोण ऑगस्ट कॉम्टे (1798–1857) के कार्यों में पाया जाता है। कॉम्टे के विचारों ने सामाजिक विज्ञानों के अवलोकन और तरीकों को आगे बढ़ाया है। एक वैज्ञानिक अवलोकन एक उच्च–स्तरीय सामान्यीकरण में बदलने या एक सिद्धांत बनाने में सक्षम होता है।

सामाजिक विज्ञान अनुसंधान को मानव विचार के विकास के इतिहास की पृष्ठभूमि में समझा जा सकता है। समाजशास्त्र के विज्ञान की दार्शनिक नींव पश्चिम में यूरोप में प्रारंभिक यूनानी दर्शन के साथ शुरू हुई। अरस्तू पहला तर्कशास्त्री था, जिसने मानव मन के तर्क के संकाय को परंपरा या रीति–रिवाज से अधिक प्रधानता दी। हम महाभारत या प्लेटो से या कन्फ्यूशियस और हम्मूराबी कोड से हमारे विषय वंश के लिए दावा करने की कोशिश नहीं कर रहे हैं बल्कि हम तो सामाजिक जांच के तर्क का अध्ययन कर रहे हैं और इसलिए हम इसको अरस्तू के संदर्भ में देख रहे हैं।

हालांकि, एक लंबे ऐतिहासिक समय के लिए, तर्क के पैरोकारों को अलौकिक डोमेन या ईश्वर की इच्छा पर तर्क और मानव के वर्चस्व को स्थापित करने के लिए लड़ना पड़ा। लगभग अठारहवीं शताब्दी तक यह कम से कम पश्चिम में एक हारी हुई लड़ाई साबित हुआ। यह तो पुनर्जागरण (चौदहवीं शताब्दी में इटली में शुरू होने वाली जोरदार कलात्मक और बौद्धिक गतिविधि जो सत्रहवीं शताब्दी तक चली) था जब आखिरकार यह स्वीकार किया गया कि समाज ईश्वर द्वारा शासित ईश्वर की रचना नहीं है, बल्कि यह मानव द्वारा निर्मित एक रचना है। मानव एक इकाई है जिसका एक उद्देश्य है और बदलते रहने वाला अस्तित्व है जिसका बाहर से अध्ययन किया जा सकता है।

समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण तब संभव हुआ जब यह स्पष्ट रूप से समझा और स्वीकार किया जाने लगा कि समाज मनुष्यों की रचना है न कि ईश्वर की। जिस हद तक हम समाजशास्त्र को एक वैज्ञानिक विषय के रूप में देख सकते हैं, विज्ञान का एक मार्गदर्शक सिद्धांत यह है कि हम प्रमाण के सख्त नियमों से वैध ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं जो विश्वसनीय और मान्य हैं। इस अर्थ में, विज्ञान अन्य विषयों के साथ–साथ समाजशास्त्र के विषय को भी अपने में शामिल करता है। प्राकृतिक विज्ञान के नियमों पर आधारित समाजशास्त्र और वैज्ञानिक पद्धति के बीच के संबंधों की जांच करके, हम समझ सकते हैं कि क्या समाजशास्त्र उसी तरह से वैज्ञानिक है जैसे कि प्राकृतिक विज्ञान होता है। यह पता लगाना भी संभव है कि क्या समाजशास्त्र तब भी वैज्ञानिक हो सकता है जब वह प्राकृतिक विज्ञान की पद्धति और विधियों का पालन नहीं करता है। इस उद्देश्य के लिए, हमें समाजशास्त्रियों द्वारा उनके कार्यों में अनुसरण की जाने वाली विभिन्न पद्धतियों की जांच करने की आवश्यकता है और फिर समाजशास्त्र को वैज्ञानिक विषय कहने के दावे की सराहना करनी चाहिए।

हम सभी वैज्ञानिक ज्ञान की धारणा को एक विशेष स्थान देते हैं क्योंकि यह दुनिया को वैसा ही दर्शाता है जैसी कि यह है ना कि वैसी जैसी कि हममें से कोई इसको किसी खास तरह से दर्शाना चाहता हो। इस अर्थ में वैज्ञानिक ज्ञान हमें सामाजिक और प्राकृतिक दुनिया की प्रकृति की सही समझ प्राप्त करने की संभावना प्रदान करता है। यह समझ किसी राय या अप्रमाणित विश्वास या अंधविश्वास पर आधारित नहीं है। आप आगस्ट कॉम्टे के काम में समाजशास्त्र की ऐसी समझ के शुरुआती विकास को पा सकते हैं। यह कोई अकस्मात नहीं है कि आगस्ट कॉम्टे समाजशास्त्र के संस्थापक के रूप में जाने जाते हैं। अगर हम समाजशास्त्रीय कार्यप्रणाली के विकास को देखें, तो "सोशियोलॉजी" शब्द आगस्ट कॉम्टे के काम से प्राप्त होता है। समाज विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र की सराहना करने के लिए, समाजशास्त्र की प्रकृति पर कॉम्टे के विचारों को रेखांकित करना एक उपयोगी अभ्यास है। यह हमें प्रारंभिक समाजशास्त्रियों के वैज्ञानिक दृष्टिकोण के बारे में एक अंतर्दृष्टि देता है। इस दृष्टिकोण ने समाजशास्त्र को धीरे–धीरे एक परिष्कृत विज्ञान में विकसित होने के लिए एक प्रेरणा दी।

दुर्खीम ने तर्क दिया कि, वैज्ञानिकों की तरह जिन्होंने प्राकृतिक दुनिया का अध्ययन किया और भौतिक दुनिया में पदार्थ के व्यवहार का निर्धारण करने वाले नियमों की प्रकृति की खोज की, इसी प्रकार उन नियमों की खोज करना संभव है जिन्होंने सामाजिक दुनिया में लोगों के व्यवहार को निर्धारित किया है।

कॉम्टे के अनुसार, समाजशास्त्र का मुख्य कार्य सामाजिक विकास के सामान्य नियमों की खोज करना था और उन्होंने सामान्य नियमों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया–

1. **सह–अस्तित्व या सामाजिक स्थैतिकी के नियम** : इन नियमों ने समाज के विभिन्न भागों के बीच संबंधों को नियंत्रित किया और साथ ही उन्होंने विभिन्न भागों के बीच अंतर्संबंधों और कार्यों को निर्धारित किया।
2. **उत्तराधिकार या सामाजिक गतिशीलता के नियम** : इन नियमों ने सामाजिक परिवर्तन को नियंत्रित किया और समय के साथ सामाजिक संस्थानों

के स्वरूप और कार्य के तरीके के अन्वेषण की आवश्यकता थी। हम उपर्युक्त विश्लेषण को कॉम्टे का प्रत्यक्षवाद कह सकते हैं।

अपने विवेचनात्मक प्रत्यक्षवाद के तर्क के आधार पर, कॉम्टे ने मानव समाज के विकास को तीन चरणों में विभाजित किया : (1) धर्म काल (2) तत्वमीमांसा काल और (3) कारण (तर्क) का काल।

2.3.1 आगमनात्मक और निगमनात्मक विधियां

आगमनात्मक और निगमनात्मक विधियों का विस्तारपूर्वक वर्णन निम्न प्रकार से है—

(अ) आगमनात्मक विधि

तर्क की जिस प्रक्रिया में एकाकी प्रेक्षणों के ज्ञात तथ्यों को जोड़कर अधिक व्यापक कथन निर्मित किया जाता है, आगमनात्मक तर्क कहलाता है। यह 'निगमनात्मक तर्क' से बहुत भिन्न तर्क है। फ्रैंसिस बेकन ने सामान्य निष्कर्षों को सीधे अवलोकन द्वारा एकत्रित किए गए विशिष्ट तथ्यों पर आधारित करने की आवश्यकता पर बल दिया। इसे आगमनात्मक तर्क कहते हैं। इसका अर्थ है विशिष्ट से सामान्य की ओर जाना। विशेषज्ञों द्वारा निर्धारित किए गए आधार को पूर्ण सत्य मानने की अपेक्षा बेकन ने मनुष्य को छोटे—छोटे व्यापकीकरण करने के लिए एवं छोटे व्यापकीकरणों से बड़ों तक पहुंचने के लिए स्वयं निकटता से प्रकृति का अवलोकन करने, प्रयोग करने, तथ्यों का सारणीकरण करने की सलाह दी। उसने बिना तथ्यों को एकत्रित किए किसी समस्या का हल न देने एवं कोई भी परिकल्पना न करने की सतर्कता बरतने की सलाह दी।

आगमनात्मक विश्लेषण टिप्पणियों और सिद्धांतों के साथ शुरू होता है जो शोध के निर्णय और टिप्पणियों के परिणाम के समय व्यक्त किया जाता है। Bernard बताते हैं कि आगमनात्मक विश्लेषण विकास की व्याख्या और देखरेख—सिद्धांत परिकल्पना के श्रृंखला के माध्यम से खोजने के तरीकों को शामिल करता है। इसको दूसरे रास्ते से रखने के लिए, आगमनात्मक अध्ययन में कोई सिद्धांत लागू नहीं होता। शोध के शुरुआत में शोधकर्ता के पास शोध के शुरू होने के बाद शोध की दिशा को बदल देने की पूरी आजादी होती है। आगमनात्मक विश्लेषण दृष्टिकोण को चित्र में दिखाया गया है।

आगमनात्मक तर्क को कभी—कभी उल्टी विनियोग विधि (Bottom-up Approach) के नाम से भी जाना जाता है, जिसमें शोधकर्ता प्रेक्षण का प्रयोग किसी घटना जो अध्ययन किया जा रहा है, के चित्र का विवरण करने में करते हैं. इस प्रकार, यह कहा जा सकता है की आगमनात्मक तर्क अनुभव की सीख पर आधारित है। पैटर्न्स, अनुभव (Premises) में सदृश्यता और नियमितता को निर्णय तक पहुंचने के क्रम में समझा जाता है।

(ब) निगमनात्मक विधि

विल्सन के अनुसार "निगमनात्मक विचारधारा विद्यमान सिद्धांत के आधार पर परिकल्पना के निर्माण से संबंधित है। तर्क की जिस प्रक्रिया में एक या अधिक ज्ञात सामान्य कथनों

के आधार पर किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचा जाता है, उसे निगमनात्मक तर्क कहते हैं।" 'निगमनात्मक तर्क' 'आगमनात्मक तर्क अथवा विवेचनात्मक' से बिलकुल भिन्न है। नीचे एक निगमनात्मक तर्क दिया गया है–

टिप्पणी

- सभी मनुष्य नश्वर हैं।
- मोहन मनुष्य है।
- अतः मोहन नश्वर है।

निगमनात्मक विधि में, निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए व्यापकीकरण का पहले से पता होना आवश्यक है। दूसरी ओर, आगमनात्मक तर्क के अंतर्गत एक निष्कर्ष पर दृष्टांतों के अवलोकन एवं दृष्टांतों के माध्यम से संपूर्ण विषय के व्यापकीकरण द्वारा पहुंचा जाता है। आगमनात्मक तर्क में पूर्ण रूप से निश्चित होने के लिए सभी दृष्टांतों का अवलोकन किया जाता है।

आगमनात्मक एवं निगमनात्मक विधियों का मूल्यांकन

आगमनात्मक एवं निगमनात्मक दोनों ही विधियों का यदि पृथक रूप से प्रयोग किया जाए तो दोनों की ही सीमाएं हैं। निगमनात्मक विधि पूर्णतः सत्य निष्कर्षों तक पहुंचने में हमारी सहायता करेगी। यद्यपि ये निष्कर्ष पहले से ही ज्ञात एवं विद्यमान निष्कर्षों से बाहर किसी प्रकार की जांच नहीं करेंगे। अकेले आगमनात्मक विधि का प्रयोग किसी समस्या के संपूर्ण एवं संतोषजनक हल को प्राप्त करने में सहायता नहीं करता। उदाहरणतया किसी एक एकीकरणीय अवधारणा के अभाव में व्यक्तिगत अवलोकनों का यादृच्छ संकलन शायद ही किसी व्यापकीकरण में सहायक सिद्ध हो।

निगमनात्मक विवेचन जिसे निगमात्मक तर्क भी कहते हैं एक ऐसा विवेचन होता है, जो निगमात्मक तर्क का निर्माण और इसका मूल्यांकन करता है। निगमनात्मक तर्क यह दिखाने का प्रयास है कि निष्कर्ष आवश्यक रूप से आधार–वाक्यों के समुच्चय का पालन करता है। कोई भी इसका निगमनात्मक तर्क तभी मान्य होता है जब निष्कर्ष आवश्यक रूप से आधार–वाक्यों का पालन करे अर्थात् यदि आधार–वाक्य सत्य हैं तो निष्कर्ष आवश्यक रूप से सत्य होगा। कोई भी निगमात्मक तर्क तभी सही होता है जब यह मान्य होता है और इसके आधार–वाक्य भी सत्य होते हैं। निगमात्मक तर्क मान्य या अमान्य, मजबूत या कमजोर होते हैं, लेकिन कभी भी न तो ये गलत होते हैं और न ही सही। निगमनात्मक तर्क ज्ञान हासिल करने की विधि है। निगमात्मक तर्क–वितर्क का उदाहरणः

- सभी आदमी मरणशील होते हैं।
- सुकरात एक आदमी है।

इसलिए :

सुकरात मरणशील है।

पहला आधार–वाक्य बताता है कि 'आदमी' के रूप में वर्गीकृत्त सभी चीजों में 'मरणशीलता' का गुण है। दूसरा आधार–वाक्य बताता है कि 'सुकरात' एक आदमी के

टिप्पणी

रूप में वर्गीकृत है—जोकि 'आदमी' समुच्चय का एक सदस्य है। निष्कर्ष से पता चलता है कि 'सुकरात' को अवश्य मरणशील होना चाहिए क्योंकि आदमी के रूप में उसके वर्गीकरण से यह गुण विद्यमान है। कभी—कभी निगमात्मक तर्क, आगमनात्मक तर्क का उल्टा होता है।

निगमनात्मक कथन का मूल्यांकन साधारणतः उनकी मान्यता और सुदृढ़ता की दृष्टि से किया जाता है।

कोई भी तर्क तब मान्य होता है जब इसके तथ्यों का गलत होना असंभव हो, भले ही इसका निष्कर्ष गलत हो सकता है। तथ्यों के गलत होने के बावजूद तर्क मान्य हो सकते हैं।

कोई भी तर्क उस स्थिति में सही होता है जब यदि यह मान्य होता है और तथ्य भी सही हैं। ऐसा तर्क जो मान्य है लेकिन सही नहीं है और आधार—वाक्य गलत है, जबकि तर्क मान्य है, इसका उदाहरण निम्नलिखित है—

- मांस खानेवाला हर व्यक्ति क्वार्टरबैक है।
- जॉन मांस खाता है।

अतः

जॉन क्वार्टरबैक है।

उदाहरण का पहला आधार—वाक्य गलत है (ऐसे लोग हैं जो मांस खाते हैं, जो क्वार्टरबैक नहीं हैं), लेकिन जहां तक आधार—वाक्य सत्य है, निष्कर्ष आवश्यक रूप से सत्य होना चाहिए (अर्थात्, आधार—वाक्यों के लिए सच होना और निष्कर्ष के लिए झूठ होना असंभव है)। अतः तर्क मान्य है लेकिन स्वस्थ नहीं।

निगमनात्मक तर्क का सिद्धांत, जिसे स्पष्ट या शब्द तर्क (कैटगॅरिकल या टर्म लॉजिक) भी कहा जाता है, अरस्तु द्वारा विकसित किया गया लेकिन साध्यात्मक (वाक्यात्मक) तर्क और विधेय तर्क (प्रेडिकेट लॉजिक) ने उसकी जगह ले ली।

निगमनात्मक तर्क को आगमनात्मक तर्क से अलग किया जा सकता है। आगमनात्मक तर्क की स्थिति में भले ही आधार—वाक्य सत्य हों और तर्क 'मान्य' हों, निष्कर्ष के लिए गलत होना संभव है (प्रति उदाहरण या अन्य साधनों से गलत होना तय)।

दार्शनिक डेविड ह्यूम ने आगमन पर सवाल उठाते हुए निगमन के लिए संदेह की पृष्ठभूमि तैयार की। ह्यूम की आगमन की समस्या इस सुझाव के साथ शुरू होती है कि आगमन के सरलतम रूपों के भी प्रयोग से आगमन को सही नहीं ठहराया जा सकता। इसके अलावा आगमन को निगमन से सही नहीं ठहराया जा सकता है। अतः, आगमन को तर्कसंगत तरीके से सही नहीं ठहराया जा सकता है। परिणामस्वरूप, यदि आगमन को सही नहीं ठहराया जाता है तो निगमन स्वयं को तर्कसंगत तरीके से सही ठहराया प्रतीत हो सकता है— ह्यूम का आपत्तिजनक निष्कर्ष।

ह्यूम ने अत्यंत तार्किक समाधान नहीं दिया। उन्होंने बस यह बताया कि हम सहायता नहीं कर सकते हैं, बल्कि प्रेरित कर सकते हैं।

आगमनात्मक तर्क, जिसे साधारण बोल–चाल की भाषा में आगमन या शिष्ट अनुमान कहते हैं, एक तरह का तर्क है जो विशिष्ट प्रेक्षणों के निश्चित समूह से सामान्यीकृत निष्कर्ष लेता है।

आधार–वाक्य निष्कर्ष के लिए कुछ समर्थन (आगमनात्मक प्रायिकता) दर्शाते हैं, लेकिन इसे आवश्यक नहीं बनाते हैं, अर्थात् वे सच सुझाते हैं लेकिन इसे सुनिश्चित नहीं करते।

उदाहरण के लिए, आगमन का प्रयोग निम्नलिखित में किया जाता है :

हम जानते हैं कि जीवन के रूप का अस्तित्व पानी पर निर्भर करता है। (विशिष्ट प्रेक्षण)

हर जिंदगी अपने अस्तित्व के लिए पानी पर निर्भर है। (सामान्यीकृत निष्कर्ष)

आगमनात्मक तर्क इस संभावना की अनुमति देता है कि निष्कर्ष गलत है, भले ही सब–के–सब आधार वाक्य सत्य हों। उदाहरण के लिए :

- हमने जितनी भी बत्तख देखी हैं सफेद हैं।
- सभी बत्तख सफेद होती हैं। (तभी जब काली बत्तख को न लिया जाए)

ध्यान दें कि आगमनात्मक तर्क की इस परिभाषा में गणितीय प्रेरणा शामिल नहीं है, जोकि निगमनात्मक तर्क का एक रूप माना जाता है।

मजबूत और कमजोर आगमन

'मजबूत' और 'कमजोर' शब्द का प्रयोग कभी–कभी आगमनात्मक बहस की अच्छाई की प्रशंसा या इसकी बुराई के लिए किया जाता है। दृष्टिकोण यह है कि जब आपको निष्कर्ष आधार–वाक्यों के अनुरूप लगता है तो आप कहते हैं– 'यह मजबूत आगमन का उदाहरण है।' वैकल्पिक रूप से, जब आपका निष्कर्ष विशिष्ट वैश्विक दृष्टिकोण की नजर में निष्कर्ष आधार–वाक्यों के अनुरूप प्रतीत नहीं होते तो आप कहते हैं कि 'वह कमजोर आगमन है।'

दो वस्तुओं के बीच का गुरुत्वाकर्षण बल, उनके द्रव्यमानों और गुरुत्वाकर्षण स्थिरांक के गुणनफल और उनके बीच की दूरी के वर्ग के भाग के बराबर होता है, इससे हम उन सभी वस्तुओं के गिरने की दर को बता सकते हैं जिनका हमने अवलोकन किया है।

अतः, दो वस्तुओं के बीच का गुरुत्वाकर्षण बल विचार उनके द्रव्यमानों और गुरुत्वाकर्षण स्थिरांक के गुणनफल और उनके बीच की दूरी के वर्ग के भाग के बराबर होता है।

इसका निष्कर्ष पूरी तरह निश्चित नहीं है, चाहे आप आधार वाक्य ही क्यों न दें। गति में हम सामान्यतया यह अनुभव करते हैं कि, न्यूटोनियन मैकेनिक्स सही तरीके से रहता है। किंतु गति की बात करें तो प्रकाश की गति में, न्यूटन की व्याख्या सही नहीं होती है एवं उस स्थिति में निष्कर्ष गलत ही होगा। क्योंकि अधिकतर मामलों में जो कि हम अनुभव करते हैं कि बतलाए गए आधार दिए गए निष्कर्ष के अनुरूप ही होंगे। हम इस विचार को तार्किक रूप से एक मजबूत आगमन ही कहेंगे।

2.3.2 सामाजिक अनुसंधान में सिद्धांत निर्माण

सिद्धांत से तात्पर्य ज्ञान की ऐसी व्यवस्था से है जिससे तथ्य सामान्य सिद्धांतों में समाहित हो जाएं। सामान्यबोधात्मक और वैज्ञानिक ज्ञान के मध्य असमानता यह है कि वैज्ञानिक ज्ञान सुव्यवस्थित और वर्गीकृत होता है। जबकि वर्गीकरण किसी ज्ञान को वैज्ञानिक नहीं बनाता। वास्तविकता में ज्ञान को वैज्ञानिक बनाने के लिए यह समझना आवश्यक है कि सामान्यबोधात्मक ज्ञान तो अधिकांशतः वांछित प्रभावों से संतुष्ट हो जाता है जकि विज्ञान में हर तथ्य/परिघटना (Phenomenon) के कारणों की खोजबीन होती है। सिद्धांत का काम है कि कार्य–कारणात्मक संबंधों को प्रेक्षणीय बारंबार घटित होने वाली या वर्गीकृत हो सकने वाली निरंतरताओं में व्यवस्थित करें ताकि हम ऐसे व्यापक प्रेक्षण कर सकें जिसमें विविध लेकिन संबंधित तथ्य सम्मिलित हों। साथ में, केवल एक और विशिष्ट संबंधों द्वारा ही नहीं बल्कि उच्चतर और अमूर्तरूपी व्यापक 'संबंध' के संदर्भ में हम उनकी व्याख्या कर सकें।

अंतर्निहित कारणों को जानने के लिए इनके बीच सही कार्य–कारणात्मक संबंध स्थापित करने के पश्चात कार्य–कारणात्मकता के एक ही ढांचे के अंतर्गत विभिन्न तथ्यों को एक साथ लाया जाता है। जिस प्रक्रिया द्वारा ऐसा किया जाता है उसे सिद्धांत निर्माण कहते हैं।

सिद्धांत के तीन संघटक या गुण हैं– (क) व्याख्या, (ख) पूर्वानुमान और (ग) सत्यापन। विभिन्न संदर्भों में प्रयुक्त व्यवस्थित रूप से परस्पर संबद्ध समाजशास्त्रीय प्रतिज्ञप्तियों (Prepositions) से सिद्धांतों की रचना होती है। हम इनमें से प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति का परीक्षण कर सकते हैं जिससे मालूम हो सके कि विषय सामग्री से हर प्रतिज्ञप्ति का कितनी अच्छी तरह से ताल–मेल है। यह भी पता लगता है कि एक–दूसरे से संबंध में ये प्रतिज्ञप्तियां कितनी अच्छी तरह परिवेश विशेष में कार्यकारण की कड़ियों को बताती हैं। यदि ऐसा पूर्वानुमान संभव है तो हमारे लिए यह कहना भी संभव है कि परिणाम की व्याख्या ज्ञात प्रतिज्ञप्तियों के संदर्भ में की गई है। समाजशास्त्रीय प्रतिज्ञप्तियों का सत्यापन करते समय तार्किक संबंध एवं अनुभवजन्य संबंध दोनों का ध्यान रखना पड़ता है। इस प्रकार समाजशास्त्रीय सिद्धांत निर्माण में व्याख्या, पूर्वानुमान और सत्यापन घनिष्ठ रूप से परस्पर संबद्ध तत्व हैं।

सिद्धांत की आवश्यकता

सिद्धांतों की आवश्यकता हमें यत्र–तत्र बिखरे, असंबद्ध तथ्यों को एक क्रम में व्रस्थित रूप से रखने में होती है। सिद्धांत के द्वारा तथ्यों के बीच संबंध के स्वरूप को संक्षेप में कुछ सूत्रों के रूप में प्रस्तुत करना संभव है जो सिद्धांत जितना अमूर्त होगा उसकी व्यवहार्यता (Applicability) उतनी ही व्यापक हागी और वास्तविक स्थितियों से उसका हू–ब–हू मिलना असंभव है। अतः यह कहना सही होगा कि दो प्रकार के सिद्धांत होते हैं– (क) औपचारिक (Formal) और (ख) यथार्थमूलक (Substantive)।

औचारिक सिद्धांत इस अर्थ में सर्वाधिक समावेशी और आधारभूत है कि इसका उद्देश्य सिद्धांत के ऐसे एकल पुंज (Set) को विलग करना होता है जो सामाजिक जीवन की आधारशिला हैं। इन सिद्धांतों के माध्यम से प्रत्येक सामाजिक तथ्य की व्याख्या करना संभव है। इनके निदर्शनों (Paradigms) से ही विशाल (Grand) सिद्धांतों का

टिप्पणी

जन्म होता है। इस सिद्धांत में समाज के स्वरूप और हमारी अपेक्षा के अनुरूप रूपांतरणों के स्वरूप से जुड़े व्यापकीकरण की चर्चा मिलती है। इस सिद्धांत का जीवन की दैनिक यथार्थता से मिलान किया जाए तो एक मोटे–मोटे भाव के अलावा इसमें किसी प्रकार की भविष्यवाचिता नहीं दिखाई देती। सिद्धांत को बनाने का अंतिम महत्वपूर्ण प्रयास सोरोकिन (1962) ने किया था। सोरोकिन के सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन के सिद्धांत में दो मूल नियमवत व्यापकीकरणों को स्थापित करने का प्रयास किया गया था।

सिद्धांत चाहे विशाल हो या मध्यम श्रेणी का हो, यह एक आवश्यकता है क्योंकि सिद्धांत यथार्थ को समझने के काम को सरल बनाता है। सिद्धांत यथार्थ को समझने का माध्यम है। अर्थात इसमें ऐसी सुस्पष्ट और सुसंबद्ध व्याख्याएं होती हैं जिन्हें ज्ञात व्याख्यात्मक ढांचे में रखा जा सकता है। सिमेल ने कहा था कि, "...केवल अत्यधिक विविध विषय वस्तुओं के ऐसे सामाजिक तथ्यों को एकत्रित करके और यह निर्धारित करके कि उनमें विविधता के बावजूद सामान्य क्या है, सामाजिक तथ्यों के नियमों की खोज की जा सकती है।" जिमेल (1858–1918) का पूर्वाग्रह है कि समाजशास्त्र के लिए छोटी संख्या में प्रज्ञप्तियों की खोज करना संभव है। विविध संदर्भों में इन प्रज्ञप्तियों को सत्यापित किया जा सकता है। इस अर्थ में, समाजशास्त्रीय सिद्धांतवादियों का काम है सामान्य प्रज्ञप्तियों की खोज करना। ऐसे प्रयास से व्यवस्थित रूप से परस्पर संबद्ध प्रज्ञप्तियों की उत्पत्ति होती है। केवल ऐसी प्रज्ञप्तियों को अस्तित्व में लाने के बाद ही सिद्धांत विशेष की जांच हो सकती है। सिद्धांत विशेष की जांच के लिए हमें यह जांचना होगा कि सिद्धांत की प्रत्येक प्रज्ञप्ति कितनी अच्छी तरह से विषय–सामग्री की पुष्टि करती है।

सिद्धांत निर्माण प्राक्कल्पना का प्रयोग

सिद्धांत विशेष अपने आप में ही एक अमूर्त प्रज्ञप्ति है जिसका परीक्षण नहीं किया जा सकता। यह भी सच है कि आगमनात्मक प्रक्रिया से ही सिद्धांत का निर्माण होता है, भले ही यह सिद्धांत निगमनात्मक अनुभवजन्य पद्धति पर आधारित हो। सिद्धांत का काम होता है परीक्षणीय (Testable) प्राक्कल्पना की उत्पत्ति करना। सिद्धांत की विश्वसनीयता उसकी प्राक्कल्पनाओं की परीक्षणीयता में निहित है। विकासवादी सिद्धांत के बारे में संदेह तब शुरू हुआ जब यह अनुभव किया गया कि इसके द्वारा उत्पन्न प्राक्कल्पना को अनुभवजन्य रूप से सिद्ध नहीं किया जा सकता था। उदाहरण के लिए– मातृसत्ता पहले थी या पितृसत्ता थी– इसे अनुभवजन्य रूप से सिद्ध करना असंभव है। इसके अलावा, इन प्राक्कल्पनाओं को सिद्ध करने के लिए प्रयुक्त शोध पद्धति भी संदेहजनक थी। सिद्धांत द्वारा प्रजनित प्राक्कल्पना वास्तविकता के जितने निकट हो वह सिद्धांत उतना ही बेहतर माना जाता है।

इस प्रकार प्राक्कल्पना एक निगमनात्मक (Deductive) कथन होता है जिसे आगमनात्मक (Inductive) रूप से सिद्ध किए जाने की जरूरत होती है।

सिद्धांतों को निर्मित किए जाने के विविध तरीके पूछे गए प्रश्नों के प्रकार और उन मूल धारणाओं या आधारिकाओं पर निर्भर करते हैं जिन्हें हर प्रकार की स्थिति में नियत या प्रदत्त सत्य के रूप में माना जाता है। ऐसे कोई निर्धारित नियम या विधियां

नहीं हैं जिनके द्वारा हम वैज्ञानिक जांच पड़ताल प्रारंभ कर सकें और अक्सर अपनी आवश्यकताओं के अनुसार विधियों को निर्मित करना पड़ता है।

टिप्पणी

सामाजिक विज्ञानों में सिद्धांत निर्माण के मोटे रूप से दो तरीके हैं। एक तरीका है जो समाजशास्त्रों में सिद्धांत निर्माण के लिए प्राकृतिक विज्ञानों को आदर्श (मॉडल) के रूप में मानता है, अर्थात इसमें समाज और मानवीय व्यवहार के बारे में सर्वव्यापी नियमों और अपरिवर्ती सत्यों की प्रत्याशा की जाती हैं। दूसरा दृष्टिकोण मानव के सृजनात्मक और विविध स्वभाव के कारण ऐसे 'सत्यों' को कभी भी स्थापित करने की संभावना से ही इनकार करता है। यह दृष्टिकोण इस विचार का समर्थक है कि समाज और मानवीय व्यवहार से संबंधित सभी प्रेक्षण ऐतिहासिक रूप से मौजूदा मानव समूहों के संदर्भ में किए जाते हैं और इन्हें कभी भी सार्वभौमिक नहीं कहा जा सकता है।

प्राक्कल्पना की सहायता से ऐसे अध्ययनों को दो प्रकारों से प्रस्तुत किया जा सकता है– एक है जिसमें अध्ययन किए जाने वाले प्रतिरूप तथा कारण की तरह प्रस्तुत परिवर्तियों (Variables) के बीच संबंध को बताया जाता है। दूसरा प्रकार है कि यह पूर्णतः अन्वेषणात्मक अध्ययन हो सकता है जिसमें क्षेत्र विशेष में पहली बार जाकर अध्ययन किया जा रहा है। ऐसा अध्ययन प्रायः मार्गदर्शी (Pilot) अध्ययन के प्रकार का होता है जो प्राक्कल्पना निर्धारित करने से पूर्व किया जाता है।

इस प्रकार सिद्धांत निर्माण की प्रक्रिया में सामाजिक विज्ञानपरक शोध के मूल्योन्मुखी स्वरूप पर विचार करना होता है। इसमें समस्याओं का चयन, निष्कर्षों के विचार तत्वों का निर्धारण, तथ्यों को पहचानना, प्रमाण का निर्धारण आदि बिंदुओं पर ध्यान केंद्रित किया जाता है।

2.3.3 सामाजिक अनुसंधान में वैज्ञानिक पद्धति

विज्ञान शब्द के संबंध में सामान्यतः अनेक भ्रांतियां प्रचलित हैं। भिन्न–भिन्न अर्थों में विज्ञान शब्द का प्रयोग भिन्न–भिन्न रूपों में किया गया है। विज्ञान का प्रयोग प्राकृतिक विज्ञानों जैसे भौतिक विज्ञान और वैज्ञानिक पद्धति विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान आदि के एक सामूहिक नाम के रूप में किया जाता है जबकि दूसरी ओर समाजशास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान तथा लोक प्रशासन आदि विज्ञानों को विज्ञान नहीं माना जाता। कभी–कभी विज्ञान को इंजीनियरिंग और तकनीकीशास्त्र का पर्यायवाची मान लिया जाता है। स्वचालित यंत्रों का अविष्कार, यानों का निर्माण, पुलों का निर्माण व बांधों की रचना आदि क्रियाओं को विज्ञान समझा जाता है। अंततः विभिन्न अर्थों के साथ–साथ विज्ञान का कार्य मनुष्य के जीवन को सुविधाजनक बनाने के लिए आविष्कार का अनुसंधान करना है।

विज्ञान शब्द अंग्रेजी भाषा के 'साइंस' (Science) शब्द का हिंदी रूपांतर है जो स्वयं लेटिन (Latin) भाषा के 'सीया' (Scia) शब्द से बना है, जिसका आशय है, 'जानना (to know)। वस्तुतः सत्य, प्रमाणित और विश्वसनीय ज्ञान के लिए क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित अध्ययन करने को ही विज्ञान कहते हैं। एक अन्य परिभाषा के अनुसार, "विज्ञान यथार्थ का अध्ययन, अवलोकन एवं प्रयोग करते हुए प्राप्त तथ्यों से आगमन तथा निगमन द्वारा सामान्यीकरण करते हुए ज्ञान की प्राप्ति का एक उपागम है।

विज्ञान और वैज्ञानिक पद्धति परस्पर एक–दूसरे से घनिष्ठतया संबंधित हैं। विज्ञान को वैज्ञानिक पद्धति के बिना नहीं समझ सकते। विज्ञान का अर्थ जानने के बाद अब वैज्ञानिक पद्धति का अध्ययन अपेक्षित है।

वैज्ञानिक पद्धति का अर्थ

विज्ञान की अवधारणात्मक विवेचना तथा विशेषताओं की व्याख्या के उपरांत अब हम यह समझ सकते हैं कि विज्ञान एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा अध्ययन किया जाता है। सामान्य व्यक्तियों द्वारा विज्ञान को प्राकृतिक विज्ञान के विषयों का पर्याय मान लेने के कारण तथा प्राकृतिक विज्ञानों के क्षेत्र में अधिक प्रगति होने के कारण, यह भ्रांति उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि वैज्ञानिक पद्धति का आशय प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धति से है। एक अन्य भ्रांति वैज्ञानिक पद्धति को लेकर यह है कि वैज्ञानिक पद्धति केवल एक ही है। इसका प्रमुख कारण है, वैज्ञानिक पद्धति का एक वचन में प्रयोग होना। इस भ्रांति का प्रभाव वैज्ञानिकों पर पड़ा और उन्होंने इसकी आलोचना भी की है। वैज्ञानिक अनुसंधान की कोई एक निश्चित पद्धति नहीं है। साधारण शब्दों में कहा जा सकता है कि कोई भी वह अध्ययन पद्धति वैज्ञानिक पद्धति है जिसे एक पक्षपात रहित अनुसंधानकर्ता किसी विषय के अध्ययन में प्रस्तुत करता है। यह एक ऐसी पद्धति है जो भावना, दर्शन अथवा तथ्यज्ञान से संबंधित न होकर वस्तुनिष्ठ अवलोकन, परीक्षण, प्रयोग और वर्गीकरण की एक व्यवस्थित कार्यप्रणाली पर आधारित होती है। इस प्रकार वैज्ञानिक पद्धति को भिन्न–भिन्न वैज्ञानिकों ने अलग–अलग रूप से परिभाषित किया है, जिनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएं इस प्रकार हैं :

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (Encyclopaedia Britannica) के अनुसार, "वैज्ञानिक पद्धति एक सामूहिक शब्द है जो उन अनेक प्रक्रियाओं को स्पष्ट करता है जिनकी सहायता से विज्ञान का निर्माण होता है।" व्यापक अर्थों में वैज्ञानिक पद्धति का तात्पर्य अनुसंधान की किसी ऐसी पद्धति से है जिसके द्वारा निष्पक्ष एवं व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

थाउलेस (Thouless) के अनुसार, "वैज्ञानिक पद्धति सामान्य नियमों की खोज के लक्ष्य की प्राप्ति के हेतु प्रविधियों की एक व्यवस्था है जो कि विभिन्न विज्ञानों में कई बातों में भिन्न–भिन्न होते हुए भी एक सामान्य प्रकृति को बनाए रखती है।"

स्प्रोट (Sprott) के अनुसार, "वैज्ञानिक पद्धति में प्रयोगीकरण, प्राक्कल्पना और अध्ययन यंत्रों में विश्वास करना आवश्यक होता है।"

ए. वुल्फ (A. Wolf) के अनुसार, "विस्तृत अर्थों में कोई अनुसंधान विधि जिसके द्वारा विज्ञान का निर्माण एवं विस्तार होता है, वैज्ञानिक पद्धति कहलाती है।"

कार्ल पियर्सन (Karl Pearson) के अनुसार, "जो व्यक्ति किसी भी प्रकार के तथ्यों का वर्गीकरण करता है, जो उनका परस्पर संबंध देखता है तथा उनके क्रमों का वर्णन करता है। वैज्ञानिक विधि प्रयोग करता है।"

हेगडोर्न एवं लेबोबिज (Hagdorn and Labobitz) के अनुसार, "वैज्ञानिक पद्धति सोचने तथा समस्या के समाधान का एक तरीका है। यह आनुभविक संसार के प्रति अभिमुखन है तथा एक ऐसी प्रविधि है जिसका प्रयोग अधिकांशतः वैज्ञानिक सामाजिक घटनाओं के विज्ञान निर्माण के लिए करते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि वैज्ञानिक पद्धति अध्ययन की निष्पक्ष, वस्तुनिष्ठ, कार्य–कारण पर आधारित, व्यवस्थित, क्रमबद्ध, आनुभाविक तथा तार्किक प्रणाली है। जो सामान्यीकरण और पूर्वानुमान करने में सक्षम है।

वैज्ञानिक पद्धति की विशेषताएं

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर वैज्ञानिक पद्धति की प्रमुख विशेषताएं निम्नांकित हैं :

1. **सत्यापनशीलता** (Verifiability): अध्ययन के अंतर्गत प्राप्त हुए तथ्यों को परीक्षण तथा पुनः परीक्षण के योग्य होना चाहिए। वैज्ञानिक प्रविधि में नियमों की बारंबार जांच कर विज्ञान और वैज्ञानिक पद्धति लेने पर और उनके सही उतरने पर ही वे विश्वसनीय बन जाया करते हैं। इस तरह पुनः परीक्षण के द्वारा वैज्ञानिक पद्धति केवल तथ्यों का उद्घाटन ही नहीं करती बल्कि उनकी सार्वभौमिकता को भी प्रमाणित करती है। जेम्स लूथर ने लिखा है कि जिस पद्धति द्वारा पुनः परीक्षा संभव नहीं, वह वैज्ञानिक पद्धति नहीं हो सकती है, वह या तो दार्शनिक अथवा काल्पनिक पद्धति होती है।

2. **निश्चितता** (Definitness): वैज्ञानिक पद्धति के अंतर्गत अस्पृश्यता या अनिश्चितता का अभाव होता है। वैज्ञानिक पद्धति का कार्य सबके लिए समान होता है। ऐसा नहीं है कि एक वैज्ञानिक के लिए कुछ और तथा दूसरे वैज्ञानिक के लिए कुछ हो। वैज्ञानिक किसी भी समय अपनी सुविधानुसार सत्य की खोज कर सकता है। वैज्ञानिक पद्धति अपने अंतर्गत कभी भी अनिश्चितता को स्थान नहीं देती है। उदाहरण के लिए यदि हम यह कहें कि सभी गरीब लुटेरे हैं तो हमारा यह कथन वैज्ञानिक पद्धति के अनुकूल नहीं होगा क्योंकि इस कथन में निश्चितता का अभाव है। इसी तरह यदि हम किसी व्यक्ति को देखकर यह कहें कि अमुक व्यक्ति काफी लंबा था, तो भी हमारा यह कहना वैज्ञानिक पद्धति के अनुकूल नहीं होगा। इसके स्थान पर यदि हम यह कहें कि अमुक व्यक्ति की लंबाई 6' 6" है तो हमारे इस कथन से व्यक्ति की लंबाई का एक निश्चित ज्ञान हमें होगा और इस तरह यह वैज्ञानिक पद्धति के अनुकूल कहा जा सकेगा।

3. **तार्किकता** (Rationality): तार्किकता वैज्ञानिक पद्धति की एक अन्य विशेषता है इसके अंतर्गत अनुसंधानकर्ता न केवल तर्क के आधार पर अध्ययन के प्रयोग में लायी जाने वाली पद्धति के औचित्य को स्पष्ट करता है बल्कि अपने निष्कर्षों को भी तार्किक आधार पर प्रस्तुत करता है। वास्तव में अगर देखा जाए तो तर्क का संबंध तथ्य और विवेक से है। वैज्ञानिक पद्धति आधारभूत रूप से अनुभवसिद्ध अध्ययन को महत्व देती है। लेकिन यदि कोई तथ्य तार्किक आधार पर उचित मालूम होता है तो उन्हें भी ग्रहण करने में संकोच नहीं करती है। संक्षेप में, विज्ञान पुष्ट प्रमाणों पर खड़ा रहता है। तर्कशास्त्र वैज्ञानिक पद्धति का अभिन्न अंग है। तर्क की प्रक्रिया के दो मुख्य भेद हैं–(क) निगमन और (ख) आगमन।

   (क) **निगमन** (Deduction) : 'निगमन' उस तर्क को कहते हैं जिसमें आधार वाक्यों से आवश्यक निष्कर्ष निकाले जाते हैं। यदि आधार वाक्य सत्य हो

टिप्पणी

तो निष्कर्ष भी अवश्य सत्य होगा। उदाहरण के लिए, दो आधार वाक्य लें– (1) क, ख से बड़ा है। (2) ख, ग से बड़ा हैं यदि ये दोनों वाक्य सत्य हों तो यह निष्कर्ष अवश्य सत्य होगा– क, ग से बड़ा है। निगमन का एक और उदाहरण है जिसे न्यायवाक्य (Syleogism) कहा जाता है। सारे मनुष्य मर्त्य हैं। शंकराचार्य एक मनुष्य है। इसलिए शंकराचार्य मर्त्य है।

(ख) **आगमन** (Induction) : 'आगमन' का अर्थ है दृष्टांतों के आधार पर सामान्यीकरण (generalization) अर्थात कुछ दृष्टांतों में पाई गई बात को सबके लिए सत्य मानना। जैसे यदि क्षय के किसी रोगी को एक दवा दी जाए और वह ठीक हो जाए और इसी प्रकार क्षय के बहुत से रोगी उस दवा से ठीक हो जाएं तो यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि वह क्षय रोग की दवा है। हमारा यह निष्कर्ष आगमन द्वारा निकाला हुआ कहा जाएगा।

4. **वस्तुनिष्ठता** (Objectivity): वैज्ञानिक पद्धति की प्रथम शर्त उसका वस्तुनिष्ठ या वैषयिक होना है अर्थात यह पद्धति व्यक्तिनिष्ठ न होकर वस्तुनिष्ठ होती है। ए. डब्ल्यू. ग्रीन ने लिखा है कि वस्तुनिष्ठता का आशय किसी तथ्य अथवा प्रमाण की निष्पक्षतापूर्वक जांच करने की इच्छा एवं योग्यता है। वैज्ञानिक पद्धति में अनुसंधानकर्ता के स्वयं के विचारों, इच्छाओं, आदर्शों, मूल्यों, पूर्वाधारणाओं, पूर्वाग्रहों आदि का कोई स्थान नहीं है। ए. वुल्फ ने लिखा है "सही ज्ञान की प्रथम शर्त ऐसे तथ्यों को प्राप्त करने की दृढ़ इच्छा एवं योग्यता है जो बाह्य स्वरूप, प्रचलित विचारधारा एवं व्यक्तिगत विचारों से प्रभावित न हो। वस्तुनिष्ठता जितनी सरल दिखाई देती है वस्तुतः उतनी सरल नहीं है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने साथ कुछ मनोवृत्तियां, संस्कार, विचार एवं दृष्टिकोण अवश्य रखता है और ऐसी स्थिति में उसका पूर्णरूपेण वस्तुनिष्ठ होना बहुत कठिन होता है, किंतु अनुसंधान के दौरान यह माना जाता है कि किस सीमा तक वह वस्तुनिष्ठता का पालन करेगा।

5. **सामान्यता** (Generality): वैज्ञानिक पद्धति अधिकतर सामान्य घटनाओं के अध्ययन को अधिक महत्व देती है। किसी विशेष घटना को उतना महत्व नहीं दिया जाता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि वैज्ञानिक पद्धति के अंतर्गत सामान्यता की विशेषता को दो अर्थों में देखा जा सकता है। प्रथम तो यह है कि वैज्ञानिक पद्धति विज्ञान की सभी शाखाओं में सामान्य होती है। किसी भी प्रकार का पक्षपात देखने को नहीं मिलता है कि एक शाखा के लिए वैज्ञानिक पद्धति एक तरह की हो और दूसरी शाखा के लिए दूसरी तरह की। इस संबंध में कार्ल पियर्सन ने भी अपने मत को व्यक्त करते हुए कहा है, "वैज्ञानिक पद्धति विज्ञान की सभी शाखाओं में एक जैसी होती है।" दूसरा अर्थ यह है कि वैज्ञानिक पद्धति, विषय के संबंध में एक सामान्य सत्य को ढूंढ़ने की विधि है। इस तरह वैज्ञानिक पद्धति में सामान्यता को समानता के आधार पर महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

6. **भविष्यवाणी** (Prediction): वैज्ञानिक पद्धति में भविष्यवाणी करने या पूर्वानुमेयता की क्षमता होती है। यह विशेषता वैज्ञानिक पद्धति की अन्य विशेषताओं से संबंधित है। इस पद्धति के द्वारा घटना का जो अध्ययन किया जाता है उसमें

कार्य–कारण संबंधों की व्याख्या की जाती है। 'क्या है?', 'कैसे है?', के आधार पर 'क्या होगा?' का पूर्वानुमान या भविष्यवाणी करना संभव हो जाता है। उदाहरण के रूप में समाजशास्त्रीय अध्ययन द्वारा यह मालूम होता है कि महिला शिक्षा से महिलाओं में आर्थिक स्वावलंबन आता है, वे अपने पैरों पर खड़ी हो जाती हैं। इसके आधार पर यह भविष्यवाणी की जा सकती है कि अगर महिलाओं की स्थिति सुधारनी है तो स्त्री–शिक्षा पर बल देना चाहिए; इससे उनकी आर्थिक स्थिति सुधरेगी तथा स्त्री शिक्षा से उनका शोषण तथा उन पर होने वाले अत्याचारों को रोका जा सकता है।

7. **सैद्धांतीकरण** (Theorization): वैज्ञानिक पद्धति की सबसे महत्वपूर्ण और विशिष्ट विशेषता इसके द्वारा सिद्धांतों का निर्माण करना है। वैज्ञानिक पद्धति की सिद्धांतों के निर्माण करने की विशेषता इसके द्वारा किए गए अध्ययन के चरणों में अंतिम चरण होता है। इस पद्धति के द्वारा प्राक्कल्पना का निर्माण किया जाता है। तथ्य एकत्र किए जाते हैं। उनमें परस्पर कार्य–कारण का अध्ययन करके सामान्यीकरण किया जाता है जो सिद्धांत के रूप में अंत में प्रस्तुत किया जाता है। सिद्धांत, तथ्यों का परस्पर संबंध बताता है, जो वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा किए गए अध्ययनों से ही संभव है। वैज्ञानिक पद्धति सिद्धांतों का निर्माण करके विज्ञान में ज्ञान की वृद्धि करती है। वैज्ञानिक पद्धति के अध्ययन के अंतिम चरण में सैद्धांतीकरण किया जाता है।

8. **कार्य–कारण संबंध पर आधारित** (Cause and Effect Relationship): कोई भी घटना पूर्णतया स्वतंत्र नहीं होती है बल्कि उसके घटित होने का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। वैज्ञानिक पद्धति के अंतर्गत घटनाओं की व्याख्या कार्य–कारण संबंध के आधार पर की जाती है।

वैज्ञानिक पद्धति के चरण

वैज्ञानिक पद्धति में अध्ययन क्रमबद्ध व्यवस्थित, तार्किक और निश्चित चरणों के अनुसार होता है। इसे अधिक–से–अधिक क्रमबद्ध और व्यवस्थित करने के लिए अनुसंधानकर्ताओं ने समय–समय पर उसके चरणों को सुनिश्चित और स्पष्ट किया है। इनमें ऑगस्ट कॉम्टे, पी. वी. यंग, लुंडबर्ग, गर्ड एवं हाट आदि हैं जिन्होंने वैज्ञानिक पद्धति के चरणों पर प्रकाश डाला है। इनके विचार निम्नानुसार हैं :

1. ऑगस्ट कॉम्टे के अनुसार वैज्ञानिक पद्धति के निम्नलिखित पांच प्रमुख चरण हैं–

(i) विषय का चयन, (ii) अवलोकन द्वारा तथ्यों का संकलन, (iii) तथ्यों का वर्गीकरण, (iv) तथ्यों की जांच, और (v) नियमों का प्रतिपादन।

लुंडवर्ग का कथन है कि, "व्यापक अर्थों में वैज्ञानिक पद्धति का अर्थ तथ्यों का अवलोकन, वर्गीकरण और व्यवस्था करना है।" इस कथन के आधार पर लुंडबर्ग ने वैज्ञानिक पद्धति के चार प्रमुख चरणों का उल्लेख किया है :

1. कार्यशील प्राक्कल्पना का निर्माण।
2. तथ्यों का अवलोकन तथा लेखन।

3. संकलित तथ्यों का वर्गीकरण और संगठन
4. सामान्यीकरण

पी. वी. यंग के कथनानुसार वैज्ञानिक पद्धति के छः चरण प्रमुख हैं :

1. अध्ययन से संबंधित समस्याओं का निर्धारण।
2. एक कार्यशील प्राक्कल्पना का निर्माण।
3. वैज्ञानिक प्रविधियों के द्वारा समस्या का अवलोकन तथा उसकी जांच–पड़ताल।
4. प्राप्त तथ्यों का व्यवस्थित लेखन।
5. तथ्यों का विभिन्न क्रमों अथवा श्रेणियों में वर्गीकरण।
6. वैज्ञानिक सामान्यीकरण।

वैज्ञानिक पद्धति के उपर्युक्त चरणों को अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए यह आवश्यक है कि उनके विषय में कुछ विस्तारपूर्वक विवेचना की जाए जो कि निम्न प्रकार से है :

1. **कठिनाई एवं समस्या की अनुभूति** (Problem-Obstacle Idea): पर्यावरण में प्रेक्षण करते समय किसी तथ्य को समझने की उत्सुकता होती है। जब मस्तिष्क चकराता है, तब वह समस्या की चेतना अवस्था है। डीवी ने कहा है कि "यदि समस्या की अनुभूति व परेशानी नहीं होती तो गंभीर चिंतन प्रारंभ नहीं होता। अच्छी समस्या की चेतना अनुभव पर तथा सत्यान्वेषण की उत्कृष्ट प्रेरणा और मनोवृत्ति पर निर्भर करती है।" समस्या की चेतना होने पर प्रारंभ में समस्या अस्पष्ट रहती है।
2. **समस्या का स्पष्ट वर्णन** (Explanation of Problem): समस्या के प्रत्येक पहलू पर गहन चिंतन करने से समस्या स्पष्ट होने लगती है। अतः वैज्ञानिक अपने अनुभवों के आधार पर मनन कर समस्या से संबंधित तथ्यों का प्रेक्षण करता है और समस्या को परिभाषित करता है। यह वैज्ञानिक पद्धति के अंतर्गत दूसरी अवस्था है।
3. **प्राक्कल्पना का विकास** (Development of Hypothesis): समस्या पर मनन करते हुए विज्ञानवेत्ता प्राक्कल्पना का निर्माण कर सकता है। उपकल्पनाएं समस्या के संभावित हल हैं अथवा परीक्षण हेतु प्रस्तावित तथ्यकथन हैं उपकल्पनाओं के द्वारा अपेक्षित दो या अधिक तथ्यों के संभावित संबंधों का वर्णन किया जाता है। कतिपय अनुसंधानों में प्राक्कल्पनाओं का निर्माण अत्यावश्यक रहता है जबकि कुछ में आवश्यक नहीं रहता, जैसे सर्वेक्षण अुनसंधानों में, परंतु वास्तव में यदि अनुसंधानकर्ता प्राक्कल्पनाओं का निर्माण कर सर्वेक्षण आदि अनुसंधान करे तो अशुद्धि की संभावनाएं कम हो जाती हैं। अच्छी उपकल्पनाओं का निर्माण अंतर्दृष्टि और अनुभव पर निर्भर करता है। किसी अनुसंधान विशेष में अनेक प्राक्कल्पनाएं हो सकती हैं। सर्वेक्षण अनुसंधानों के लिए बनी हुई प्रश्नावलियों में लगभग प्रत्येक प्रश्न वास्तव में एक प्राक्कल्पना की परीक्षा के लिए होता है।
4. **अवलोकन** (Observation): सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में अनुसंधानकर्ता द्वारा समस्या से संबंधित इकाइयों का अवलोकन करना एक महत्वपूर्ण कार्य है। वैसे

भी साधारणतः प्रत्येक व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में कुछ न कुछ अवलोकन करता ही रहता है, परंतु उन्हें हम व्यवस्थित रूप में देख नहीं पाते हैं। सामाजिक अवलोकन में हमें विशेषकर उन व्यवहारों से संबंधित होना पड़ता है जिन्हें हम देख या सुन सकते हैं। प्रत्येक वैज्ञानिक अध्ययन अवलोकन से प्रारंभ होता है तथा प्राप्त निष्कर्षों की प्रामाणिकता भी एक बड़ी सीमा तक सूक्ष्म अवलोकन पर ही निर्भर होती है।

5. **साम्रगी का संकलन** (Collection of Data) : सामग्री के संकलन में मुख्यतया दो प्रमुख स्रोतों का उल्लेख किया जा सकता है– प्रथम, ऐतिहासिक स्रोत है जिसके अंतर्गत पुराने ग्रंथ, शिलालेख, प्राचीन अवशेष, नर–कंकाल आदि आते हैं। द्वितीय स्रोत क्षेत्रीय स्रोत हैं जिसके अंतर्गत प्रत्यक्ष निरीक्षण, साक्षात्कार, अनुसूची तथा प्रश्नावली, अन्य सूचनादाता आदि आते हैं। आवश्यकतानुसार इन स्रोतों से सूचनाएं तथा तथ्य एकत्रित किए जाते हैं। इसके लिए किन–किन स्रोतों का प्रयोग किया जाएगा यह अध्ययन–विषय की प्रकृति व क्षेत्र पर निर्भर करता है।

6. **वर्गीकरण** (Classification) : जब समस्त सामग्री को एकत्रित कर लिया जाता है उसके बाद ही उसमें से आवश्यकतानुसार उपयुक्त तथ्यों को पृथक करना पड़ता है। वर्गीकरण वह आधार है जिसकी सहायता से विभिन्न घटनाओं अथवा दशाओं के बीच तुलना करना और उनके सह–संबंध को ज्ञात करना संभव हो पाता है। अध्ययनकर्ता द्वारा किए जाने वाले वर्गीकरण की प्रगति उसकी अपनी अंतर्दृष्टि, अनुभव, योग्यता, अध्ययन का उद्देश्य और तथ्यों की यथार्थता पर निर्भर करेगी। पर किसी भी अवस्था में वर्गीकरण का कार्य जितनी कुशलता व स्पष्ट रूप में किया जाएगा, वैज्ञानिक निष्कर्ष तक पहुंचना अनुसंधानकर्ता के लिए उतना ही सरल होगा।

7. **सामान्यीकरण** (Generalization) : सामग्री को छांट लेने तथा उसे क्रमबद्ध और वैज्ञानिक पद्धति से वर्गीकृत कर लेने के पश्चात वैज्ञानिक अनुसंधान का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान आता है अर्थात सामान्यीकरण मालूम करना। यह निष्कर्ष या तो अतीत में दिए गए निष्कर्षों का समर्थन करते हैं अथवा उनका खंडन करते हैं। यह सामान्य निष्कर्ष ही वह महत्वपूर्ण आधार है जिसकी सहायता से सिद्धांतों का निर्माण होता है। यदि कोई अध्ययनकर्ता केवल सामग्री को वर्गीकृत करके दे तो सारा प्रयास बेकार ही माना जाएगा जब तक कि कोई अंतिम परिणाम न पता चल सके। उसे यह भी देखना चाहिए कि जिस आरंभिक कल्पना को लेकर उसने अपने अध्ययन को आगे बढ़ाया था वह अपने उस प्रारंभिक विचार को अध्ययन के आधार पर किस सीमा तक प्रमाणित कर सका है, उसमें कितनी यथार्थता रही है।

2.3.4 वस्तुनिष्ठ मूल्य निष्पक्षता

विषय 'वास्तव में जैसा है' विषय का अध्ययन वैसा ही करना वस्तुनिष्ठ अध्ययन कहलाता है। तटस्थ और पक्षपात रहित निरीक्षण द्वारा तथ्यों का उनके वास्तविक रूप में संकलन और विश्लेषण ही वस्तुनिष्ठता है। वस्तुनिष्ठ अध्ययन विश्लेषणात्मक होता

टिप्पणी

है। वस्तुनिष्ठ अध्ययन वास्तविक तथ्यों के वास्तविक अवलोकन, परीक्षण और विश्लेषण पर आधारित होता है। अपने स्वयं की भावना, विचार, उचित–अनुचित के आदर्श, विश्वास, आशा और आकांक्षाओं के रंग में न रंगकर किसी भी तथ्य या घटना को 'जैसा वह है' उसी रूप में देखना और विवेचना करना वस्तुनिष्ठता अथवा वैषयिकता है। घटना या तथ्य का यह वास्तविक रूप बुरा हो सकता है, कटु हो सकता है, अनुसंधानकर्ता के अपने आदर्शों तथा मूल्यों के विपरीत हो सकता है, फिर भी उस घटना को यदि वह उसके मूल रूप में देखता है और समझता है तो वह वस्तुनिष्ठता को प्राप्त करने में सफल होता है। वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण रखनेवाला अनुसंधानकर्ता केवल सत्य को ही देखता है।

वस्तुनिष्ठता की परिभाषाएं

विभिन्न सामाजिक वैज्ञानिकों ने वस्तुनिष्ठता को भिन्न–भिन्न प्रकार से परिभाषित किया है, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

लॉवेल कार (Lowell Carr) के अनुसार, "सत्य की वस्तुनिष्ठता का अर्थ यह है कि घटनामय संसार के किसी व्यक्ति के विश्वासों, आशाओं अथवा भय से स्वतंत्र एक वास्तविकता जिसको हम अंतर्दृष्टि और कल्पना से नहीं, बल्कि वास्तविक अवलोकन के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।"

ग्रीन (Green) के अनुसार, "वस्तुनिष्ठता प्रमाण की निष्पक्षता से परीक्षण करने की इच्छा एवं योग्यता है।"

फेयरचाइल्ड (Fairchild) के अनुसार, "वस्तुनिष्ठता या वैषयिकता का अर्थ उस योग्यता से है जिसमें एक अनुसंधानकर्ता स्वयं को उन परिस्थितियों से अलग रख सके जिनमें वह सम्मिलित है और द्वेष व उद्वेग के स्थान पर निष्पक्ष प्रमाणों या तर्क के आधार पर तथ्यों को उनकी स्वाभाविक पृष्ठभूमि में देख सके।"

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि वस्तुनिष्ठता वैज्ञानिक अनुसंधान की वह स्थिति है जिसमें संसार की विभिन्न घटनाओं या तथ्यों की वास्तविकता प्रकट होती है और हमारे लिए सत्य का ज्ञान संभव होता है। घटनामय संसार की वास्तविकता सत्य की खोज की कुंजी है और वस्तुनिष्ठता उसी कुंजी से समस्त रहस्यों का रहस्योद्घाटन करने का एक साधन है। इस प्रकार वैषयिकता वैज्ञानिक अनुसंधान की आधारशिला है। अतः इसके विषय में विस्तृत विवेचना की आवश्यकता है।

सामाजिक शोध में वस्तुनिष्ठता का महत्व

सामाजिक अनुसंधान और वस्तुनिष्ठता का संबंध बड़ा गहरा है। वस्तुनिष्ठता के बिना सामाजिक अनुसंधान को वैज्ञानिक रूप नहीं दिया जा सकता। उदाहरण के लिए यदि किसी घटना विशेष का अध्ययन किया जाए, तो वस्तुनिष्ठता के अभाव में विभिन्न व्यक्ति उससे विभिन्न प्रकार के परिणाम निकालेंगे। ऐसी स्थिति में अनुसंधानकर्ता के पक्षपात के कारण वास्तविक तथ्यों पर प्रकाश नहीं पड़ता। अतः किसी एक घटना या समस्या के अध्ययन को वैज्ञानिक रूप देने के लिए उसमें वस्तुनिष्ठता का होना आवश्यक है। यदि सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता है तो विभिन्न शोधकर्ताओं को किसी एक

टिप्पणी

घटना के अध्ययन से एक ही प्रकार के निष्कर्ष प्राप्त होंगे। सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता के महत्व को निम्न तथ्यों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :

1. **उचित रूप से प्रतिनिधित्व करने वाले तथ्यों की प्राप्ति के लिए** (To Get Adequate Representative Facts): अध्ययन इस प्रकार का होना चाहिए जिसमें कि अध्ययन के सभी पक्षों का समुचित स्पष्टीकरण हो। यह तब तक संभव नहीं, जब तक कि अध्ययन में इस प्रकार के तथ्यों का संकलन नहीं किया जाता जो कि एक सामाजिक घटना के विभिन्न पक्षों का उचित प्रतिनिधित्व कर सकें और उस घटना से संबद्ध विभिन्न पक्षों के संबंध में एक संतुलित ज्ञान प्राप्त करवा सकें और यह तभी संभव है जब वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण को अपनाया जाए।
2. **सत्यापन के लिए** (For verification): अध्ययन में वस्तुनिष्ठता है यह इस बात पर निर्भर करता है कि हमारा अध्ययन हमारे अपने विचारों, भावनाओं या कल्पनाओं द्वारा प्रभावित नहीं बल्कि वास्तविक तथ्यों पर आधारित हो। वही सामाजिक अनुसंधान विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरता है जिसका हम कभी भी पुनः परीक्षण अथवा सत्यापन कर सकें। सत्यापन या पुनः परीक्षण का तत्व वैज्ञानिकता की एक आवश्यक शर्त है और इस शर्त की पूर्ति वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण को अपनाए बिना संभव नहीं है। हमारा अध्ययन किस सीमा तक पुनः परीक्षा या सत्यापन के योग्य है, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि किस सीमा तक वस्तुनिष्ठता को प्राप्त कर लिया गया है।
3. **नए अनुसंधानों की संभावनाओं को विकसित करने के लिए** (To Explore Possibilities of New Investigations): वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति के दौरान हम एक घटना से संबंधित अनेक नई समस्याओं को समझते हैं और उनके विषय में अध्ययन करने की प्रवृत्ति हमारे अन्दर पैदा होती है। वास्तविकता यह है कि वस्तुनिष्ठता केवल एक सत्य को ही नहीं ढूंढ़ निकालती, बल्कि अन्य अनेक संभावित सत्यों की ओर भी संकेत करती है जिनके विषय में अनुसंधान करने की इच्छा अन्य अनुसंधानकर्ताओं में पैदा हो सकती है।
4. **सामाजिक विज्ञान को वैज्ञानिक स्थिति प्रदान करने के लिए** (To attribute scientific status to Sociology): सामाजिक विज्ञान को यथार्थ विज्ञान न मानने वाले यह तर्क पेश करते हैं कि सामाजिक विज्ञान में वैषयिक अध्ययन नहीं होता है क्योंकि अनुसंधानकर्ता अपना दृष्टिकोण, सत्यता की खोज में सट्टेबाजी, पक्षपात, विशिष्ट आदर्श को प्रस्थापित करने की अभिलाषा रखता है और ऐसा होने से इस धारणा को पनपने में सहायक हुआ है कि सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करने वाला विज्ञान 'सामाजिक विज्ञान' वैज्ञानिक स्थिति को प्राप्त नहीं कर सकता। समाजशास्त्र को इस आरोप से बचाने के लिए सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति बहुत आवश्यक है। यह प्रमाणित हो चुका है कि सामाजिक घटनाओं का भी वस्तुनिष्ठ अध्ययन संभव है। आज जरूरत इस बात की है कि सामाजिक अनुसंधान में पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण, कल्पना तथा पूर्वधारणा से अपने को विमुक्त रखते हुए सामाजिक घटनाओं की वास्तविकताओं को जानने का लगातार प्रयत्न करें। सामाजिक विज्ञान को वैज्ञानिक स्थिति प्रदान

करने का और कोई विकल्प नहीं। इसीलिए इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वस्तुनिष्ठता जरूरी है।

टिप्पणी

5. **वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग के लिए** (For use of Scientific Method): सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति का अपनाया जाना अध्ययन की यथार्थता के लिए पहली शर्त है। कोई भी अध्ययन कार्य ठीक होगा या गलत यह इस बात पर निर्भर करेगा कि अध्ययनकर्ता वैज्ञानिक पद्धति का ठीक ढंग से प्रयोग कर रहा है या नहीं। परंतु वैज्ञानिक पद्धति का समुचित प्रयोग तब तक नहीं हो सकता जब तक कि उसमें वस्तुनिष्ठता न हो। इसीलिए वैज्ञानिक पद्धति की पहली शर्त वस्तुनिष्ठता है और इसकी प्राप्ति वस्तुनिष्ठ पद्धति द्वारा ही संभव है। इसलिए यदि हमारा उद्देश्य समाजशास्त्र में वैज्ञानिक पद्धति का सफल प्रयोग है तो अपने अध्ययन में वस्तुनिष्ठता लाने का हमें प्रयत्न करना होगा।
6. **सामाजिक घटनाओं के संबंध में वास्तविक ज्ञान की वृद्धि के लिए** (For Advancement of Knowledge About Social Phenomena): वस्तुनिष्ठता वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति की आधारशिला है। इस आधारशिला के बिना हमारे वर्तमान ज्ञान–भंडार की समृद्धि असंभव है। यदि वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण से सामाजिक घटनाओं का अध्ययन किया जाए तो उन घटनाओं के संबंध में हमारे वास्तविक ज्ञान की वृद्धि होती जाएगी। कोई भी समाजशास्त्री यदि अज्ञानता के अंधकार को दूर करना चाहता है तो उसे वैषयिक दृष्टिकोण अपनाना होगा।
7. **निष्पक्ष निष्कर्षों की प्राप्ति के लिए** (To Achieve Unprejudiced Conclusions): सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता का महत्व यह है कि इसके बिना निष्पक्ष निष्कर्षों तक पहुंचना अनुसंधानकर्ता के लिए संभव नहीं होगा। वस्तुनिष्ठता का अर्थ ही है पक्षपात रहित होकर घटनाओं की वास्तविकताओं को ढूंढ़ निकालना। इसीलिए अनुसंधानकर्ता के लिए भरोसेमंद निष्कर्षों तक पहुंचना तब तक संभव नहीं जब तक उसमें वस्तुनिष्ठ अध्ययन करने की क्षमता न हो। वस्तुनिष्ठ अध्ययन के द्वारा ही अध्ययनकर्ता के लिए यह संभव होता है कि वह अपने व्यक्तिगत पक्षपातों, मूल्यों तथा आदर्शों आदि से स्वतंत्र रहते हुए किसी सामाजिक घटना के संबंध में निर्णय योग्य निष्कर्षों को निकाल सके।

वस्तुनिष्ठता प्राप्ति की कठिनाइयां

सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। किंतु इसे प्राप्त करने में अनेक कठिनाइयां हैं। इन कठिनाइयों का उल्लेख निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

1. **भावात्मक प्रभाव** (Emotional Effect): सामाजिक अनुसंधान में, जिन सामाजिक घटनाओं का अध्ययन किया जाता है, वह भावात्मक प्रभाव से परिपूर्ण होती हैं। भौतिक विज्ञानों की भांति सामाजिक विज्ञानों में अनुसंधानकर्ता अपने को घटना के प्रभाव से वंचित नहीं कर सकता। भौतिक विज्ञानों की विषय–वस्तु, भौतिक पदार्थ है। इन पदार्थों का अध्ययन, अनुसंधानकर्ता के हृदय में कोई प्रभाव उत्पन्न नहीं करता। लेकिन सामाजिक अनुसंधान में मनुष्य की संस्कृति, सभ्यता, व्यवहार अथवा प्रवृत्ति का अध्ययन किया जाता है, जिससे शीघ्र ही अनुसंधानकर्ता इनसे

प्रभावित हो जाता है। इसके फलस्वरूप पक्षपातपूर्ण स्थिति पैदा हो जाती है। अनुसंधानकर्ता इस प्रकार अपने निष्कर्ष तटस्थ नहीं पाता।

2. **विषय–वस्तु की जटिलता** (Complexity of Subject Matter): सामाजिक अनुसंधान में वैयक्तिकता प्राप्त करने में द्वितीय कठिनाई अध्ययन की विषय वस्तु के कारण पैदा होती है। सामाजिक जीवन अत्यंत जटिल और उलझा हुआ है। सामाजिक जीवन के अधिकांश तत्व अस्थायी हैं। उनमें सामाजिक परिवर्तन के साथ–साथ अंतर उत्पन्न होता है।

3. **एकरूपता का अभाव** (Lack of Uniformity): सामाजिक समस्याओं के बारे में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इनमें एकरूपता का नितांत अभाव है। एक प्रकार की समस्या का स्वरूप, विभिन्न काल में अलग–अलग होता है। भौतिक विज्ञानों के अंतर्गत समस्या का स्वरूप प्रत्येक काल में समान होता है। लेकिन सामाजिक समस्याओं की प्रकृति बदलती रहती है। उनमें एकरूपता स्थिर नहीं रहती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रों की भौगोलिक परिस्थितियों की भिन्नता एकरूपता को उत्पन्न नहीं होने देती।

4. **नैतिक प्रभाव** (Moral Effects): अनुसंधानकर्ता के नैतिक आदर्शों का प्रभाव भी वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में कठिनाई पैदा करता है। लुंडबर्ग का मत है कि सामाजिक अनुसंधान में अशुद्धता उत्पन्न होने का एक सामान्य कारण अनुसंधानकर्ता का नैतिक पक्षपात है।

   अनुसंधानकर्ता तथ्यों के संकलन और विवेचन करने में नैतिक आदर्शों का भी ध्यान रखता है। इनका प्रभाव मनुष्य के हृदय में इतना दृढ़ होता है कि वह प्रायः इनके विपरीत किसी भी निष्ठता को स्वीकार नहीं करता। विज्ञान तभी तक विशुद्ध है, जब तक कि वह शोधकर्ता के नैतिक प्रभाव से दूर है। लेकिन अनुसंधानकर्ता का नैतिक प्रभाव, परिणाम को प्रभावित करता है तो इससे अशुद्धता पैदा हो जाती है। इसलिए अनुसंधानकर्ता का नैतिक प्रभाव वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में कठिनाई पैदा करता है।

5. **मौलिक तथ्यों पर प्रभाव** (Effects on Fundamental Facts): अनुसंधानकर्ता का लक्ष्य निहित घटनाओं में मौलिक तथ्यों का वर्णन करना है। यह मौलिक तथ्य अपने सजातीय तथ्यों का प्रतिनिधि होता है। अगर ऐसा नहीं होगा तो अनुसंधान सार्वभौमिक सत्य का आधार नहीं बन सकता। यदि वह अपनी ओर से अध्ययन में थोड़ा–सा भी अपना निर्णय जोड़ता है तो तथ्यों की मौलिकता समाप्त हो जाती है। इसलिए तथ्यों को वास्तविक दशाओं में दर्शाने के लिए वस्तुनिष्ठता की अत्यंत आवश्यकता है।

6. **निष्पक्ष निष्कर्ष की प्राप्ति** (For Unprejudiced Conclusion): अनुसंधानकर्ता को अपने अध्ययन के पश्चात ऐसे निष्कर्षों को प्रस्तुतः करना चाहिए जो वास्तविकता तथा प्रमाणिकता पर आधारित हों। जनसाधारण इन निष्कर्षों को तभी स्वीकार कर सकता है जब ये पक्षपात और स्वार्थपरता से रहित होंगे। अतः अनुसंधानकर्ता को पूरी तरह तटस्थ रहना चाहिए।

7. **सामान्य ज्ञान द्वारा उत्पन्न भ्रम** (Misunderstanding caused by General Knowledge): सामाजिक अनुसंधान में प्रायः हम अपने सामान्य ज्ञान के आधार

टिप्पणी

पर किसी घटना या समस्या के संबंध में अपना निर्णय निश्चित करते हैं। जो सिद्धांत हमारे सामान्य ज्ञान की कसौटी पर खरे नहीं उतरते उन्हें हम गलत मान लेते हैं। इसके विपरीत, अनेक गलत सिद्धांत जो हमारे सामान्य ज्ञान से मेल खाते हैं, उन्हें हम सही मान लेते हैं। इस प्रकार भ्रम के फलस्वरूप अनेक गलत सिद्धांतों को सही मान लिया जाता है और अनेक सही सिद्धांतों को गलत मान लिया जाता है।

8. **विषय–वस्तु का गुणात्मक रूप** (Qualitative Nature of Subject Matter): वस्तुनिष्ठता प्राप्ति की कठिनाई वस्तु के गुणात्मक रूप के कारण उत्पन्न होती है। गुणात्मक रूप का तात्पर्य अमूर्त से है, जिसे देख नहीं सकते, केवल अनुभव कर सकते हैं। सामाजिक विश्वास मान्यताओं व धारणाओं आदि का रूप गुणात्मक होता है। अतएव उनके अध्ययन में भौतिक विज्ञानों की भांति निश्चित मापदंडों का प्रयोग करना कठिन है।
9. **अनुसंधानकर्ता का स्वार्थ** (Self-interest of Researcher): पी. वी. यंग का मत है कि सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने की एक प्रमुख कठिनाई का कारण अनुसंधानकर्ता का निजी स्वार्थ भी है। कभी–कभी अनुसंधान के परिणाम में अनुंसंधानकर्ता का निजी स्वार्थ निहित होता है। अतएव वह उन्हीं तथ्यों को खोजता है, जो उसके स्वार्थ की पूर्ति में सहायक सिद्ध हों। ऐसे अवसर पर वह स्वीकृत सिद्धांतों को अस्वीकार कर उन सिद्धांतों को अपनाता है जो कि उसके विचारों के अनुकूल हों।
10. **सामाजिक दर्शन का प्रभाव** (Effect of Scoial Philosophy): भौतिक विज्ञानों में अनसुधानकर्ता का संबंध जड़ और अचेतन वस्तुओं से है। लेकिन सामाजिक अनुसंधान में मानव समाज का अध्ययन किया जाता है। अतः समाज का वर्तमान दर्शन भी अनुसंधानकर्ता को प्रभावित करता है। इस कारण वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में बाधा पैदा होती है। इसके अतिरिक्त अनुसंधानकर्ता स्वयं भी उसी समाज का एक सदस्य होता है जिसे वह अध्ययन के लिए खोलता है। उसके अंदर भी मानव स्वभाव की कमियों का होना स्वाभाविक है। उसके विचार, संस्कार, धारणायें इत्यादि समाज के पर्यावरण द्वारा पहले से निश्चित रहती हैं। वह अपने पूर्व विचार, संस्कार व धारणाओं के अनुकूल, अनुसंधान के परिणामों को टालने के प्रयत्न करता है जिससे अनुसंधानकर्ता की तटस्थता समाप्त हो जाती है और वह अपने अनुसधान में वस्तुनिष्ठता का निर्वाह नहीं कर पाता है।
11. **अनुसंधान की शीघ्रता** (Research Conducted Hurriedly): अनेक अवसरों पर अनुसंधान कार्य बड़ी शीघ्रता से संपन्न किया जाता है। इस शीघ्रता के कारण अनुसंधानकर्ता के अंदर प्रायः किसी भी निष्कर्ष को मान लेने की प्रवृत्ति होती है। इसी कारण सही परिणाम प्राप्त करना कठिन होता है। इसके अतिरिक्त सामाजिक अनुसंधान की विषय–वस्तु इतनी जटिल होती है जिसके लिए दीर्घकालीन अध्ययन और धैर्य आवश्यक होता है। किंतु अनुसंधान कार्य की शीघ्रता के फलस्वरूप पूर्णतया सही निष्कर्ष प्राप्त नहीं होते हैं। केवल आंशिक

रूप से सत्य परिणामों को ही पूर्णरूपेण सत्य मान लिया जाता है। अतः शीघ्र संपन्न किए गए अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता का निर्वाह नहीं होता है।

वस्तुनिष्ठता प्राप्ति के साधन

यह सच है कि सामाजिक घटनाओं का वस्तुनिष्ठ अध्ययन करने के मार्ग में अनेक कठिनाइयां हैं। पर इसका तात्पर्य कदापि यह नहीं है कि सामाजिक घटनाओं के अनुसंधान वस्तुनिष्ठता से रहित होते हैं और उनमें यथार्थ निष्कर्ष की संभावनाएं बिलकुल ही नहीं होती हैं। वास्तविक परिस्थिति इससे कुछ विपरीत ही है। वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में कठिन हो सकती है, पर कभी भी असंभव नहीं। अपने अनुभवों तथा अन्वेषणों के आधार पर समाजशास्त्रियों ने उन अनेक साधनों का पता लगा लिया है जिनके द्वारा सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में भी वस्तुनिष्ठता प्राप्त की जा सकती है। कहा जाता है कि वस्तुनिष्ठ रहने की इच्छा और वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में प्रयत्नशील रहना इस दिशा में महत्वपूर्ण है। तटस्थ रहने की इच्छा का संबंध स्वयं अनुसंधानकर्ता से है और उसकी अभिव्यक्ति इस रूप में होती है कि अनुसंधानकर्ता स्वयं वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति के लिए सचेत रहता है और उसके लिए समस्त व्यक्तिगत राग–द्वेष, विचार, मूल्य, पक्षपात, मिथ्या–झुकाव आदि से हर पग पर बचता है। दूसरी ओर वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने का प्रयत्न इस बात का द्योतक है कि अनुसंधानकर्ता ऐसी विधियों को अपनाता है, ऐसे तथ्यों को संकलित करने का प्रयत्न करता है जिससे कि उसका अध्ययन अधिकाधिक वस्तुनिष्ठ हो सके। इन इच्छाओं तथा प्रयत्नों को ही उन साधनों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है जो कि सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण हैं। ये साधन निम्नलिखित हैं :

1. **प्रयोगसिद्ध विधियां** (Empirical Methods): प्रत्यक्ष प्रयोगसिद्ध अध्ययन–पद्धतियां वे विधियां हैं जिनके द्वारा अनुसंधानकर्ता या अध्ययनकर्ता को स्वयं क्षेत्र में जाकर सूचना संकलित करनी पड़ती है। केवल पुस्तकों के आधार पर, मनगढ़ंत अथवा सुनी–सुनाई बातों पर विश्वास करके जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं वे व्यक्ति प्रधान (Subjective) होते हैं, वैषयिक नहीं। बाह्य साधनों के द्वारा जो सूचना या सामग्री मिलती है, वह हमारे विचारों के विपरीत होते हुए भी सही है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति निरीक्षण परीक्षण करके बाह्य साधनों से वही सामग्री प्राप्त करेगा जिनके निष्कर्ष समान होंगे। व्यक्तिगत चिंतन–मनन कितना ही व्यवस्थित क्यों न हो, उसमें भ्रम तथा भ्रांतियों के समावेश की संभावना हो सकती है किंतु क्षेत्रीय साधनों से एकत्रित सूचना में व्यक्तिगत मान्यताओं का प्रभाव कम हो जाता है। ठोस, निश्चित और गणनात्मक विवरण वैषयिकता प्राप्त करने में पर्याप्त सहायक होता है। सामाजिक अनुसंधान में इन प्रत्यक्ष प्रयोगसिद्ध विधियों का प्रचलन बढ़ रहा है और इसमें अधिकाधिक वैषयिकता लाने का प्रयत्न किया जा रहा है। उदाहरण के लिए 'रहन–सहन का स्तर' (Standard of Living) एक सामान्य शब्द है जिसकी माप का कोई विशेष साधन नहीं है, लेकिन प्रत्यक्ष प्रयोगसिद्ध पद्धतियों के आधार पर जीवनोपयोगी वस्तुओं और गुणों की निश्चित सूची बनाकर उनकी प्राप्ति तथा अभाव का प्रत्यक्ष अध्ययन करके, किसी भी व्यक्ति, परिवार, समूह या वर्ग का निश्चित 'रहन–सहन का स्तर' समझने का वर्णन करने में सुविधा हो गई है और इसमें अध्ययनकर्ता का निर्णय या मत कहीं अधिक बाधक नहीं बनता।

टिप्पणी

मानवशास्त्री भी इन विधियों के प्रयोग से अपने अध्ययनों में वैषयिकता प्राप्त करने जा रहे हैं।

2. **परिभाषाओं और अवधारणाओं का प्रमाणीकरण** (Standardization of Terms and Concepts): समाज–विज्ञान में पारिभाषिक शब्द तथा अवधारणाओं का विशेष अर्थ लगाया जाता है और यह विशेष अर्थ भी विभिन्न विद्वानों ने भिन्न–भिन्न रूप में लगाया है। इस प्रकार स्वयं विद्वानों ने 'समाज' शब्द को मूर्त और अमूर्त रूपों में समझा और प्रयोग किया है। इस प्रकार सामाजिक विज्ञानों में कोई व्यक्ति किसी शब्द का मनमाना अर्थ लगा लेता है और जब एक ही तथ्य को प्रकट करने वाला निश्चित शब्द नहीं होता तो खोज के निष्कर्ष भी समान नहीं होते। इस दृष्टि से वैषयिकता होते हुए भी छिप जाती है। सामाजिक विज्ञानों के अतिरिक्त प्राकृतिक विज्ञानों में प्रत्येक शब्द अपना विशिष्ट अर्थ रखता है जिसे प्रत्येक अनुसंधानकर्ता उसी अर्थ में प्रयोग करता है। सामाजिक–विज्ञानों में प्रयुक्त परिभाषाओं और अवधारणाओं का समान अर्थ न होने के कारण अनुसंधान या अध्ययन में एकरूपता नहीं रहती जो वैषयिकता का प्रधान आधार है। अतः अब प्रयत्न चल रहा है कि प्रत्येक परिभाषा और शब्द निश्चित, प्रमाणित तथा प्रमाणित अर्थों में ही प्रयोग किया जाए ताकि सब लोग उसका समान अर्थ लगायें, तथा सामाजिक तथ्यों और इकाइयों को संख्यात्मक रूप में समझ सकें। ऐसा करने से अध्ययन में पर्याप्त वैषयिकता लाई जा सकती है।

3. **यांत्रिक साधनों का उपयोग** (Use of Mechanical Devices) : अनुसंधान जितना ही अधिक कार्ययंत्रों के आधार पर होगा, उतनी ही अधिक वैषयिकता उसमें उपलब्ध हो सकेगी। यद्यपि सामाजिक तथ्यों के अध्ययन की प्रत्येक प्रक्रिया में यंत्रों का उपयोग संभव नहीं हो पाता है, फिर भी मनोविज्ञान में इस प्रकार के यंत्रों का सफल प्रयोग हो रहा है। समाजशास्त्र में भी तथ्यों के संकलन में 'टेपरिकॉर्डर', फिल्म, मानचित्र, फोटो आदि के द्वारा वैषयिक सामग्री संकलित की जा रही है। विश्लेषण व विवेचन में गणना करने, सारणीयन (Tabulation) करने आदि की मशीनों का उपयोग सफलतापूर्वक होता जा रहा है। कुछ भी हो इन साधनों के अधिक प्रयोग द्वारा वैषयिकता लाने पर हर संभव प्रयत्न किया जा रहा है।

4. **प्रयोगात्मक विधियां** (Experimental Method): अध्ययन में पूर्ण वैषयिकता प्राप्त करने के लिए नियंत्रित परीक्षण (Controlled Experiment) अत्यंत उपयोगी व महत्वपूर्ण उपाय है। सामाजिक–विज्ञानों में यद्यपि विषय–वस्तु को नियंत्रित करके उसका परीक्षण करना सरल नहीं है किंतु इस दिशा में सतत प्रयत्न किए जा रहे हैं। प्रयोगात्मक विधि में दो प्रकार के समूहों को चुन लिया जाता है। दोनों समूह सभी दृष्टियों से समान होते हैं। एक समूह को नियंत्रित कर दिया जाता है अर्थात उसमें कोई परिवर्तन नहीं होने दिया जाता, दूसरे समूह को परीक्षण के लिए स्वतंत्र कर दिया जाता है। यह स्वतंत्रता केवल विशेष कारक का प्रभाव मालूम करने के लिए की जाती है, अर्थात परीक्षात्मक समूह में कोई कारक उत्पन्न करके उसका प्रभाव देखा जाता है। जैसे एलटन मयो ने इस विधि को हावथोर्न (Howthorne) प्रयोग में प्रयुक्त किया था। इस प्रकार प्रयोगात्मक प्रणाली अभिमति व पक्षपात को कम कर देती है किंतु सामाजिक अनुसंधान में

अभी इसका प्रयोग अधिक विकसित नहीं हुआ है। आशा है कि भविष्य में इस दिशा में महत्वपूर्ण उपलब्धियां प्राप्त होंगी।

5. **सामूहिक अनुसंधान का उपयोग** (Use of Group Research): सामूहिक अनुसंधान का तात्पर्य यह है कि किसी भी सामाजिक समस्या की खोज केवल एक व्यक्ति के द्वारा न होकर अधिक व्यक्तियों द्वारा की जानी चाहिए। एक ही प्रकार की पद्धति तथा प्रणालियों के द्वारा एक ही समस्या का अध्ययन जब कई अनुसंधानकर्ता करते हैं या फिर एक ही अनुसंधानकर्ता भिन्न–भिन्न प्रणालियों द्वारा एक ही समस्या का अध्ययन कर रहा होता है तो पक्षपात की संभावना बहुत कम हो जाती है। सामूहिक अनुसंधान या समूह अनुसंधान से प्राप्त प्रत्येक अध्ययनकर्ता के निष्कर्षों की तुलना की जाती है। तुलना करने पर यदि अंतर आता है तो इस अंतर के कारणों का पता लगाया जाता है। इसके अतिरिक्त, यदि एक ही अनुसंधानकर्ता विभिन्न पद्धतियों द्वारा प्राप्त निष्कर्षों में अंतर पाता है तो वह भी अंतर का कारण ज्ञात कर सकता है। सामूहिक अनुसंधान पद्धति वास्तव में कई व्यक्तियों द्वारा एक ही समस्या के अध्ययन के लिए अधिक उपयोग में लायी जाती है। विभिन्न अनुसंधानकर्ताओं के निष्कर्षों में अंतर दूर करने के लिए पुनः अधिक वैषयिक अध्ययन किया जाता है और इस प्रक्रिया में पूर्ण वैषयिकता प्राप्त की जा सकती है। इतना ही नहीं, अब प्रत्येक अनुसंधानकर्ता को यह ध्यान होता है कि अन्य लोग भी उसी समस्या का उसी पद्धति से अध्ययन कर रहे हैं तो स्वाभाविक रूप से वह प्रारंभ से सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता का पालन करता है, सावधानीपूर्वक तटस्थ दृष्टि से निरीक्षण–परीक्षण, विवेचन व विश्लेषण करता है, ताकि तुलनात्मक अन्वेषण में उसके निष्कर्ष ठीक उतरें। इस विधि में भी एक प्रकार से 'सांख्यिकीय नियमितता का नियम (Law of Statistical Regularity) काम कर रहा होता है। सच तो यह है कि यह पद्धति वैषयिकता प्राप्त करने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें अध्ययनकर्ता के दोष स्पष्ट हो जाते हैं और प्रत्येक दोष का निवारण भी हो जाता है। एक ही परीक्षण को जितनी बार दोहराया जाता है उतनी ही उसमें शुद्धता आती है। इस प्रकार सामूहिक अनुसंधान इस युग की मांग है और सामाजिक तथ्यों की जटिल प्रकृति का वैषयिक अध्ययन करने में अत्यधिक सहायक है। सामाजिक–विज्ञानों में इसका प्रयोग दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

6. **यादृच्छिक निदर्शन पद्धति का उपयोग** (Use of Random Sampling Method): वैषयिकता प्राप्ति में एक कठिनाई, "निदर्शन" चुनने के कारण की भी होती है। वर्ग या समूह में से अध्ययन के लिए प्रतिनिधि इकाइयों के चुनाव के समय अध्ययनकर्ता की अभिमति पक्षपात अथवा बाहरी कारकों का प्रभाव काम कर जाता है और सही प्रतिनिधित्व करने वाली इकाइयों या व्यक्तियों के स्थान पर ऐसी इकाइयों या व्यक्तियों को अध्ययन के लिए चुन लिया जाता है जो वास्तव में समूह का प्रतिनिधित्व नहीं करते, फलस्वरूप निष्कर्ष सत्यापन व परीक्षण के योग्य नहीं होते। इस समस्या या कठिनाई को दूर करने के लिए सैंपल चुनने के लिए 'यादृच्छिक निदर्शन पद्धति' का प्रयोग किया जाता है। इस पद्धति के द्वारा प्रत्येक इकाई को प्रतिनिधि के रूप में चुने जाने की संभावना होती है और अनुसंधानकर्ता या अध्ययनकर्ता की इच्छा उसके चुनाव को प्रभावित नहीं कर पाती है। यादृच्छिक

निदर्शन सांख्यिकीय नियमितता के नियम (Law of Statistical Regularity) पर आधारित है जिसके द्वारा कभी भी अनायास चुनाव करने पर हर प्रकार की इकाइयों को चुने जाने की समान संभावना रहती है। अतः दैव निदर्शन के उपयोग से वैषयिकता लाने में पर्याप्त सहायता मिलती जा रही है।

7. **प्रश्नावली और अनुसूची का उपयोग** (Use of Questionnaire and Schedule): सामाजिक घटना का अध्ययन केवल व्यक्तिगत अवलोकन अथवा सामान्य वार्तालाप तक सीमित रखकर कोई भी अनुसंधानकर्ता समान निष्कर्ष प्राप्त नहीं कर सकता है। इस समस्या या कठिनाई को दूर करने में प्रश्नावलियां तथा अनुसूचियां विशेष तौर पर सहायक सिद्ध हुई हैं। अनुसूचियों में प्रमाणित व निश्चित प्रश्न होते हैं, जिनका निश्चित अर्थ होता है। अतः न तो प्रश्नों का अर्थ सूचनादाताओं द्वारा पृथक–पृथक लगाया जा सकता है और न ही अध्ययनकर्ता अपनी इच्छा से कोई कम या अधिक प्रश्न पूछ सकता है। निश्चित प्रश्न के निश्चित उत्तर होने से वैषयिकता के मार्ग में सफलता प्राप्त हो जाती है। किंतु सबसे बड़ी कठिनाई प्रश्नावली या अनुसूची के प्रमाणीकरण की है। प्रत्येक अध्ययनकर्ता अनुसूची व प्रश्नावली में प्रश्नों के निर्माण के समय उनके स्वरूप और भाषा में अंतरंग भावना का समावेश कर सकता है। इसलिए यदि भिन्न–भिन्न प्रकार की अनुसूचियों व प्रश्नावलियों का प्रमाणीकरण कर दिया जाए तो वह समस्या हल हो सकती है। लेकिन कठिनता यह है कि सामाजिक समस्याएं, घटनाएं तथा अध्ययन के उद्देश्य एक समान नहीं होते, अतः एक प्रमाणित प्रश्नावली या अनुसूची तैयार करना बड़ा कठिन कार्य है। इसका उपाय यह हो सकता है कि– प्रमुख समस्याओं को खंडों में विभाजित करके प्रत्येक खंड की पृथक विशेषताएं या अनुसूची तैयार कर दी जाए और जिस खंड से अध्ययन संबंधित हो, उसकी प्रमाणित प्रतिलिपि प्रयोग में लाई जाए। इस प्रमाणित प्रश्नावली या अनुसूची के साथ अध्ययन क्षेत्र की स्थानीय विशेषताओं से संबंधित प्रश्न अध्ययनकर्ता स्वयं जोड़ सकता है। इस प्रकार सामाजिक अनुसंधान में काफी सीमा एक वैषयिकता लायी जा सकती है।

8. **अंतर–अनुशासन अथवा सहकारी अनुसंधान** (Inter Disciplinary or Co-operative Approach): समाज एक जटिल पूर्णता है जिसमें प्रत्येक घटना को मनोवैज्ञानिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा अन्य कारक सम्मिलित रूप से प्रभावित करते हैं इसलिए केवल एक ही सामाजिक विज्ञान में निपुण व्यक्ति प्रत्येक दृष्टिकोण से सामाजिक समस्या का सर्वांगीण अध्ययन नहीं कर सकता है। अतः ऐसी स्थिति में भिन्न–भिन्न सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा एक ही समस्या का अपने–अपने विशिष्ट दृष्टिकोणों से अध्ययन किया जाना चाहिए। इस प्रकार उस समस्या का यथार्थ, वास्तविक व बहुमुखी चित्र पूरे तौर पर सामने आ सकता है। इस सहकारी ढंग से किए गए अध्ययन को ही 'अंतर अनुशासन' अथवा 'सहकारी अनुसंधान' के नाम से जाना जाता है। मूल बात यह है कि सहकारी अनुसंधान में समाजशास्त्री, मानवशास्त्री, अर्थशास्त्री, राजनीतिशास्त्री, भूगोलशास्त्री, भूगर्भशास्त्री, इंजीनियर, प्रशासन आदि सभी विज्ञानों के विशेषज्ञों की सहायता ली जाती है। लीप्ले (Leplay) ने जो एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी अर्थशास्त्री थे इस पद्धति के द्वारा पारिवारिक स्तर का सफल

टिप्पणी

अध्ययन किया। इस अध्ययन का उद्देश्य कारीगरों पर औद्योगीकरण का प्रभाव ज्ञात करना था। उन्होंने अपने अन्वेषण में अर्थशास्त्रियों, राजनीति–विशेषज्ञों आदि के अतिरिक्त इंजीनियरों से भी सहायता प्राप्त की। इस पद्धति की मूल विशेषता यह है कि इसमें विषय का अध्ययन सभी दृष्टिकोणों से किया जाता है। विभिन्न शाखाओं के निष्कर्षों के दोष तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा आसानी से स्पष्ट हो जाते हैं और उनके निवारण का पर्याप्त व उचित अवसर भी मिल जाता है। अंतर–अनुशासन पद्धति के विषय के क्षेत्र में यंग (P.V. Young) लिखते हैं, "सहकारी अनुसंधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह वर्तमान जीवन में जटिलतापूर्वक गुंथे हुए सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं आर्थिक व्यक्तियों के जाल के अध्ययन एवं विश्लेषण को सरल बना देता है।" आज किसी भी घटना के एक कारक पर बल देने की गलती सामाजिक वैज्ञानिक नहीं करते हैं। आज अपराध के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक आदि सभी कारकों की विवेचना की जाती हैं। ऐसा करने से ही हमारे अध्ययन में यथार्थता या वस्तुनिष्ठता पनप पाती है। ऐसा करना हमारे लिए तभी संभव होता है जबकि उस विषय पर विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों का प्रभावपूर्ण उपयोग करने में हम सफल होते हैं।

इस प्रकार विभिन्न विज्ञानों के सहयोग पर आधारित अध्ययन या दृष्टिकोण को ही अंतर वैज्ञानिक या सहयोगी अध्ययन कहते हैं। आज यह स्वीकार किया जाने लगा है कि अनुसंधानकर्ता कार्य के दौरान विभिन्न विज्ञानों के बीच जितना सहयोग होगा अध्ययन के निष्कर्ष उतने ही अधिक वस्तुनिष्ठ होंगे।

2.3.5 परिकल्पना

आरंभिक सामान्य तथा कामचलाऊ अनुशासन जो आगे के अध्ययन कार्य का आधार और वैज्ञानिक के लिए एक सहारा बन जाता है, को कार्य–निर्वाही तथा कामचलाऊ परिकल्पना या उपकल्पना कहते हैं। शोध के बारे में प्रारंभिक ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् शोधकर्ता अपने दिमाग में एक ऐसा सिद्धांत बना लेता है जिसके बारे में वह कल्पना करता है कि यह सिद्धांत शायद उसके अनुसंधान का आधार सिद्ध हो सकता है। ऐसे काल्पनिक निष्कर्ष को वह अंतिम मानकर नहीं चलता। उसकी प्राथामिकता अपने अनुभव तथा वास्तविक तथ्यों द्वारा सिद्ध करने की होती है।

जॉर्ज कैसवेल (George caswell) के अनुसार, "परिकल्पना अध्ययन विषय से संबद्ध अस्थायी तथा काल्पनिक निष्कर्ष है।"

लुंडबर्ग के अनुसार, "परिकल्पना एक सामयिक तथा कामचलाऊ सामान्यीकरण अथवा निष्कर्ष है जिसकी सत्यता की परीक्षा करना शेष रहता है अपने बिल्कुल प्रारंभिक चरणों में परिकल्पना कोई मनगढ़न्त, अनुमान, कल्पनापूर्ण विचार अथवा सहज्ञान, इत्यादि कुछ भी हो सकता है जो क्रिया अथवा अनुसंधान का आधार बन जाता है।"

एमोरी एस. बोगार्डस के अनुसार, "परीक्षित किए जाने वाले विचार को परिकल्पना कहते हैं।"

गुडे तथा हाट के अनुसार, "परिकल्पना एक ऐसी मान्यता है जिसकी सत्यता सिद्ध करने के लिए उसका परीक्षण किया जा सकता है।"

गुडे तथा स्केट्स के अनुसार, "एक परिकल्पना अवलोकित तथ्यों अथवा दिशाओं का विवेचन करने तथा अध्ययन के भावी मार्गदर्शन के लिए निर्मित तथा अस्थायी रूप से ग्रहण की गई बुद्धिमतापूर्ण कल्पना अथवा निष्कर्ष होता है।"

बर्नार्ड फिलिप्स के शब्दों में, "परिकल्पना किसी घटना के विद्यमान संबंधों के विषय में अस्थायी कथन है। परिकल्पनाओं को प्रकृति से पूछे गए प्रश्न कहा जाता है और वे वैज्ञानिक अनुसंधान में प्राथमिक महत्व के यन्त्र होते हैं।"

पी.वी. यंग के अनुसार, "एक कार्यवाहक परिकल्पना एक कार्यवाहक केन्द्रीय विचार है जो उपयोगी अध्ययन का आधार बन जाता है।"

वेबस्टर ने अपनी 'अग्रेजी भाषा के नये अंतर्राष्ट्रीय शब्दकोश में लिखा है, "परिकल्पना एक विचार, दशा या सिद्धांत, होता है जो कि संभवतः बिना किसी विश्वास के मान लिया जाता है जिससे कि उससे तार्किक परिणाम निकाले जा सकें और ज्ञात अथवा निर्धारित किए जाने वाले तथ्यों की सहायता से इस विचार की सत्यता की जांच की जा सके।"

परिकल्पना की सामान्य विशेषताएं

प्रस्तुत की गई परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि परिकल्पना पूर्वविचार, प्राथमिक कल्पना, अमूर्तीकरण, निष्कर्ष अथवा सामान्यीकरण होता है जो सामाजिक तथ्यों की खोज करने तथा उनके विषय में विश्वसनीय बोध प्रदान करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि–

(1) यह मार्गदर्शन के लिए उपायोगी है। इसके बिना अनुसंधानकर्ता विषय से कोसों दूर भटक जाएगा।

(2) यह तथ्यों पर आधारित अस्थायी हल है।

(3) परिकल्पना हेतु तथ्य आवश्यक हैं। अस्पष्टता वैज्ञानिक ज्ञान और प्रकृति के प्रतिकूल है, अतः यदि वह स्पष्ट है तभी वैज्ञानिक व उपयोगी होगी।

(4) विशिष्टता इसका महत्वपूर्ण लक्षण है सामान्य होने पर निष्कर्ष पर पहुंचना संभव नहीं है। परिकल्पना को अध्ययन विषय में किसी विशेष पहलू से संबंधित होना चाहिए। अन्यथा सत्यता की जांच करना मुश्किल हो जाएगा।

(5) उपलब्ध पद्धतियों और साधनों से संबंधित होनी चाहिए, अन्यथा वह उपयोगी सिद्ध नहीं होगी। गुडे तथा हाट के मत में, "जो सिद्धांतशास्त्री यह भी नहीं जानता कि उसकी परिकल्पना की परीक्षा के लिए कौन–कौन सी पद्धतियां उपलब्ध हैं। वह व्यावहारिक प्रश्नों के निर्माण मे असफल रहता है।"

(6) जिसमें मूल्य या आदर्श निर्णय का पुट न हो, वही परिकल्पना वैज्ञानिक तथा सार्थक सिद्ध हो सकती है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि अनुसंधानकर्ता को आदर्श प्रस्तुत करने का प्रयत्न ही नहीं होना चाहिए बल्कि आशय यह है कि ऐसा आदर्श जिसका परीक्षण, अवलोकन किया जा सके और जो परीक्षण करने पर सही उतरते हों।

(7) परिकल्पना प्रायः अतिशयोक्तिपूर्ण भाषा में व्यक्त नहीं होती। उसमें प्रयोग सिद्धता का गुण होना चाहिए।

टिप्पणी

(8) यह समस्या के घनिष्ठ सिद्धांत से संबंधित होनी चाहिए।

(9) परिकल्पना पूर्वग्रहीत सिद्धांतों से संबंधित होनी चाहिए। गुडे तथा हाट के अनुसार, "एक विज्ञान तभी संचयी बन सकता है जब वह उपलब्ध तथ्यों तथा सिद्धांत समूह पर पूर्णतया लागू होता है।"

(10) उपयुक्त परिकल्पना द्वारा इकट्ठे किए जाने वाले तथ्य उपयोगी होते हैं।

उत्कृष्ट परिकल्पना की विशेषताएं

परिकल्पना (Hypothesis) की सामान्य विशेषताओं का वर्णन किया जा चुका है। यहां अच्छी परिकल्पना या परिकल्पनाओं की विशेषताओं का वर्णन अपरिहार्य है। इन विशेषताओं को दृष्टि में रखते हुए, शोधकर्ता अपने अनुसंधान कार्य को सहज, लाभप्रद, उपयोगी एवं वैज्ञानिक बना सकता है—

1. **स्पष्टता** (Clarity)— एक अच्छी परिकल्पना की विशेषता उसकी स्पष्टता है। जिस शब्दावली को प्रयुक्त किया जाता है वह निःसंदेह रूप से स्पष्ट होनी चाहिए, अन्यथा उनकी विभिन्न व्याख्याएं अनुसंधानकर्ताओं द्वारा की जा सकती है। ऐसी स्थिति में किसी निश्चित निर्णय पर पहुंचना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य होगा। कभी ऐसा भी देखने में आया है कि परिकल्पना की अस्पष्टता के कारण शोधकर्ता अपने ज्ञान एवं अनुभव को सही दिशा में प्रयोग करने में असफल रहा है। परिणाम स्वरूप, निराशा और दुख उसके कार्य को अधिक विकट बना देते हैं। अतः यह परमावश्यक है कि इनमें निहित विचारों का स्पष्टीकरण हो ताकि उन्हें सर्वमान्य स्वीकृति भी प्राप्त हो सके।

2. **प्रयोगसिद्धता** (Verifiability)— परिकल्पना का आधार वैज्ञानिक होना चाहिए जिससे कि उसे प्रामाणिक सिद्ध किया जा सके। अतः ज़रूरी है परिकल्पना का निर्माण इस दृष्टि से किया जाए कि यदि उसके संबंध में कोई संदेह व्यक्त करे तो उसकी प्रयोग सिद्धता आसानी से स्थापित हो सके। कभी–कभी ऐसे सामान्य कर्तव्यों का बयान कर दिया जाता है जिनका अनुसंधान विषय से विशेष संबंध नहीं होता, ऐसी स्थिति में वे प्रयोग सिद्ध नहीं हो सकते। अतः परिकल्पना का प्रयोगसिद्ध होना उसकी महत्वपूर्ण विशेषता है।

3. **विशिष्टता** (Specifiecity)— विशिष्टता का लक्षण परिकल्पना का एक बड़ा लक्षण माना गया हैं। सामान्यतः इसे विशिष्ट शब्दों में व्यक्त नही किया जाता है जिसके परिणाम स्वरूप, निष्कर्ष विश्वसनीय नहीं बन पाते। परिकल्पना के विशिष्ट होने से तथ्यों की जांच आसानी से की जा सकती है। एक अच्छे अनुसंधान में परिकल्पना की विशिष्टता पर अत्यधिक बल दिया जाता है।

4. **सरलता** (Simplicity)— पी.वी. यंग का कथन है कि एक अच्छी परिकल्पना सरल होती है। परंतु सरलता का अर्थ प्रकटन नहीं है। सरलता व्याख्या की एक प्रमुख आवश्यकता है, इसमें पैनी दृष्टि की आवश्यकता होती है एक अनुसंधानकर्ता जितनी गहराई से अवलोकन करता है, उसकी समस्या से संबंधित परिकल्पना उतनी ही सरल होती है। जॉर्ज आर. जीजर ने व्यवस्थित सरलता को E"legance" कहा है। सरल परिकल्पनाएं वे नहीं होती हैं जो एक सामान्य व्यक्ति हेतु आवश्यक रूप से स्पष्ट हों। जीजर के अनुसार सरल,

टिप्पणी

परिकल्पनाएं वे होती हैं जो सारांशों का संवर्द्धन नहीं करती हो। वे सिलसिलेवार होती हैं। वे अधिक व्याख्याओं और विलक्षण अर्थो की मांग नहीं करतीं। उनका संबंध सीधे रूप में अपने ही विषय, उससे संबंधित मांगों, आवश्यकताओं एवं साधनों से होता है।

5. **मूल्य या आदर्श अवलोकन एवं परीक्षण योग्य हों** (Values of ideals must be capable of observation and experiment)– एक अच्छी परिकल्पना में जिन आदर्शों को प्रस्तुत किया जाता है वे वैज्ञानिक होने चाहिए जिससे कि परीक्षा करने पर वे कसौटी पर खरे उतरें। परिकल्पना में ऐसे मूल्यों का पुट नहीं होना चाहिए जिनका अवलोकन एवं परीक्षण नहीं किया जा सके। यह बात विशेष रूप में सामाजिक विज्ञानों के अनुसंधानों के साथ लागू होती है।
6. **सैद्धांतिक अनुरूपता** (Theoritical relevence)– एक अच्छी परिकल्पना सिद्धांत के अनुरूप होती है। ऐसी परिकल्पना की ओर अनुसंधानकर्ता को आकृष्ट नहीं होना चाहिए जो केवल आकर्षक एवं दिलचस्प हो। गुडे तथा हाट का इस संबंध में विचार है कि, "जब शोध कार्य किसी पूर्व स्थित सिद्धांत पर व्यवस्थित रूप से टिका होता है तो ज्ञान के क्षेत्र में एक ठोस योगदान की अधिक संभावना रहती है।"

परिकल्पना–निर्माण में कठिनाइयां

उपयोगी परिकल्पना के निर्माण में कुछ मुख्य कठिनाइयां उपस्थित होती हैं जो इस प्रकार हैं–

(1) स्पष्ट वैज्ञानिक ज्ञान का प्रभाव।

(2) सैद्धांतिक ज्ञान को उपयोग में लाने में कठिनाई क्योंकि यह अमूर्त होता है।

(3) अनुसंधान की नई प्रणालियों और पद्धतियों के संबंध में अज्ञानता।

(4) परिकल्पना के आधार में वैज्ञानिकता व तार्किकता की सामान्यतः प्रकृति रहती है क्योंकि सामाजिक विज्ञानों के अनुसंधान विषयों की प्रकृति में लचीलापन होता है।

परिकल्पना के स्रोत एवं प्रकार

(अ) परिकल्पना के स्रोत

परिकल्पना के सामान्यतः दो प्रकार के स्रोत हैं–

(1) **व्यक्तिगत स्रोत** (Individual Source), जिसके अंतर्गत, अनुसंधानकर्ता की स्वयं की विचारधारा, कल्पना, मनोभावना, दृष्टिकोण तथा अंतर्दृष्टि आते हैं।

(2) **बाह्य स्रोत** (External Source), जिसमें दर्शन, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, साहित्य, काल्पनिक विचार आदि आते हैं, जिनका संबंध मनुष्य और उनके विभिन्न पहलुओं से है।

गुडे तथा हाट के अनुसार, परिकल्पना निर्माण के निम्नलिखित प्रमुख स्रोत माने गए हैं–

(1) सामान्य संस्कृति (General Culture)

(2) वैज्ञानिक सिद्धांत (Scientific theory)

(3) समरूपताएं (Analogies)

(4) व्यक्तिगत अनुभव (Personal experience)

टिप्पणी

(1) सामान्य संस्कृति (General Culture)– संस्कृति परिकल्पना–निर्माण के लिए विभिन्न स्रोत प्रदान करती है। संस्कृति, समाज में रहने वाले लोगों के विचार तथा दृष्टिकोण पर बड़ा प्रभाव डालती है। कोई भी इसके प्रभाव से बच नहीं सकता। प्रत्येक देश की संस्कृति भिन्न होती है, अतः उसकी छाप परिकल्पना पर अवश्य पड़ेगी। भारतीय संस्कृति में दार्शनिकता और आदर्शवाद प्रधान है, अतः परिकल्पना पर उसका असर अवश्य पड़ेगा तथा उसी विषय पर परिकल्पना के निर्माण में बड़ी सहायता मिलती है। नैतिक आदर्शों के कारण हमारे यहां संयुक्त परिवारप्रथा पर अधिक ध्यान दिया जाता है जबकि अमेरिकन संस्कृति में भौतिकवाद की प्रधानता है अतः एकाकी परिवार को महत्वपूर्ण माना जाता है।

सांस्कृतिक लक्षणों (Cultural Traits) के अंतर्गत लोक–विश्वास, लोक साहित्य, लोककथाओं, लोकगीत, लोक कहावतों, तथा अन्य मान्यताओं पर जोर दिया जाता है जो परिकल्पना को प्रभावित करते हैं। समय के साथ–साथ संस्कृति में परिवर्तन पाया जाता हैं। बाह्य संस्कृतियां एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। अंग्रजों के यहां शासन से हमारी संस्कृति पर काफी प्रभाव पड़ा है और हम उनकी संस्कृति को कुछ न कुछ अंश में अपनाने की कोशिश करते रहे हैं। जब यह जीवन के अंश बन जाते है तब वे परिकल्पना के निर्माण में प्रभावकारी होते है।

(2) वैज्ञानिक सिद्धांत (Scientific theory)– कई परिकल्पनाओं के स्रोत स्वयं विज्ञान में पाए जाते हैं। विज्ञान में अनेक विषयों से संबंधित सामान्यीकरण प्रचलित होते हैं जिन्हें परिकल्पना का स्रोत माना जा सकता है। इन प्रचलित सिद्धांतों का पुनः निरीक्षण किया जा सकता है, जिससे उनमें यदि कोई दोष हो तो दूर किए जा सके। इससे सामाजिक अध्ययन को नवीन दिशा मिलती है। नई परिकल्पनाओं का जन्म होता है।

(3) समरूपताएं (Analogies)– एल्फ के शब्दों में, "समरूपता परिकल्पनाओं के निर्माण तथा घटना में किसी काम चलाऊ नियम की खोज में अत्यन्त उपयोगी पथ प्रदर्शक है।" कभी–कभी समरूपताएं, परिकल्पना के निर्माण में सहयोग प्रदान करती हैं। ये समरूपताएं मनुष्य और पशु में भी देखी जा सकती हैं। प्लेटो ने अपनी पुस्तक 'रिपब्लिक' में तो ऐसी उपमाओं का बहुत प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार परिस्थिति–विज्ञान के अंतर्गत सामान्य क्षेत्रों तथा परिस्थितियों में निवास करने वाले व्यक्तियों में सामान्य क्रियाओं के रूप देखने को मिलते हैं। पौधों में नर–मादा का यौनव्यवहार स्त्री–पुरूषों के यौनसंबंधों की ओर इंगित करता है।

(4) व्यक्तिगत अनुभव (Personal experience)– अनुसंधानकर्ता का स्वयं का अनुभव परिकल्पना के निर्माण का स्रोत बन जाता है। यह उसका समस्या के प्रति दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। जीवन में घटित होने वाली घटनाओं से मनुष्य को व्यक्तिगत अनुभव होता है। अनुभव अच्छा या बुरा, स्वादिष्ट व कड़वा भी हो सकता है, परंतु उससे कुछ सीखकर वह संबंधित अध्ययन की परिकल्पना के निर्माण में उसका उपयोग करता है। उदाहरणार्थ न्यूटन को पृथ्वी को 'गुरुत्वाकर्षण शक्ति' सिद्धांत तथा डार्विन को 'अस्तित्व के लिए संघर्ष' के सिद्धांत पर पहुंचने में व्यक्तिगत अनुभवों पर परिकल्पनाएं रचनी पड़ी थीं। हम, नैतिकता में गिरावट, छात्रों में बढ़ती हुई अनुशासनहीनता तथा असंतोष, देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, प्रशासन में ईमानदारी का अभाव, कार्य में सुस्ती,

राजनीतिक दलों द्वारा विद्यार्थियों का राजनीतिक उद्देश्यों के लिए यंत्र के रूप में दुरूपयोग, जनता का प्रजातंत्र में विश्वास या अविश्वास आदि में, व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर अनेक परिकल्पनाओं का निर्माण कर सकते हैं।

टिप्पणी

(ब) परिकल्पनाओं के प्रकार

सामान्यतः परिकल्पना के निम्नांकित दो प्रकार माने गए हैं–

(1) **अशुद्ध तथा मौलिक**– यह वर्णनात्मक होती है। इसमें किसी सिद्धांत की स्थापना नहीं होती बल्कि पिछले परिणामों पर बल दिया जाता है।

(2) **विशुद्ध**– यह बहुत महत्वपूर्ण होती है। जटिल तथ्यों को संबंधित परिकल्पनाओं के रूप में देखा जा सकता है।

गुडे तथा हाट के अनुसार, इन्हें निम्न मुख्य श्रेणियों में बांटा जा सकता है–

(क) **अनुभवात्मक समानताओं से संबंधित**– यह हमारे दैनिक जीवन में मौजूद मान्यताओं, विचारों और मनुष्य व्यवहार पर आधारित है। इसमें कई कहावतें, कई किस्से भी शामिल होते हैं जिनका लोगों ने अनुभव किया है।

(ख) **जटिल आदर्श रूप में संबंधित**– इनके अंतर्गत तथ्यों का संकलन किया जाता है तथा बाद में सतर्कतापूर्वक तथ्यों को आदर्श मानकर सामान्यीकरण पर पहुंचा जाता है। फिर इसी को आधार मानकर अन्य तथ्यों की जांच कर उनकी सत्यता सिद्ध की जाती है।

परिकल्पना का महत्व एवं सीमाएं

(अ) परिकल्पना का महत्व

आधुनिक विज्ञानों में परिकल्पना का स्वयं का स्थान है। विज्ञान स्वीकार नहीं करते कि वह ब्रिटिश संविधान के अभिसमय के समान है बल्कि इसकी उपयोगिता से बाध्य होकर इसे न केवल स्वीकार करते हैं बल्कि सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं। विज्ञान चाहे वह प्रकृति विज्ञान हो या सामाजिक, विज्ञान होने का दावा करता है, परिकल्पना के बिना उसका अस्तित्व ही संभव नहीं है। जहोदा तथा कुक के अनुसार, "परिकल्पनाओं का निर्माण तथा प्रासंगिकता वैज्ञानिक अध्ययन का उद्देश्य है।" मार्गदर्शन के लिए परिकल्पना समुद्रों में जहाजों को रास्ता दिखाने वाले 'प्रकाश स्तंभ' के समान है जो अनुसंधानकर्ताओं और वैज्ञानिकों को भटकने से बचाता है। परिकल्पना के महत्व को हम निम्न रूप में दर्शा सकते हैं–

(1) अध्ययन में निश्चितता स्थापित करना (Establishing Definiteness in the study)– परिकल्पना का यह सर्वप्रथम गुण है कि वह अध्ययन को एक निश्चित सीमा में बांध देता है। इससे अध्ययनकर्ता को पता चलता है कि उसे क्या अध्ययन करना है, कितना अध्ययन करना है तथा किन तथ्यों का संकलन करना है और किनको बिल्कुल छोड़ना है। गुडे तथा हाट के शब्दों में "परिकल्पना यह बताती है कि हम किसकी खोज करें।" इससे अनुसंधानकर्ता को व्यर्थ के आंकड़ों, तथ्यों आदि को इकट्ठे करने की आवश्यकता नहीं रहेगी, अतः वह धन और समय दोनों की बचत करता है।

(2) मार्गदर्शन के रूप में (In the form of guidance) –परिकल्पना, अनुसंधानकर्ता का मार्गदर्शन करती है जिससे उसका ध्यान प्रमुख विषय पर ही केंद्रित होता है। यह अध्ययन के कार्य को बहुत सरल बना देती है। जिससे विलंब की संभावना को आसानी

से टाला जा सकता है। सही दिशा दिखाने का कार्य इस दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है कि अनुसंधानकर्ता का आत्मविश्वास बना रहता है कि वह अपने लक्ष्य की ओर सुसंगत रूप में अग्रसर है, अन्यथा उसका साहस व धैर्य टूट जाता है। जिस समय मनोबल गिर जाता है, कोई भी अध्ययनकर्ता कितना ही सतर्क और विद्वान क्यों न हो, उसकी आगे कार्य करने में दिलचस्पी नहीं रहती। अतः पी.वी.यंग ने उचित ही कहा है, "परिकल्पना का प्रयोग एक दृष्टिहीन खोज से रक्षा करता है।"

(3) उद्देश्य की स्पष्टता (Clarity about perpose)– परिकल्पना एक ऐसा मापदंड स्थापित करती है जिससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अध्ययन का क्या उद्देश्य है। कुछ अध्ययन बहुउद्देशीय होते हैं, अतः उन्हें स्पष्ट करना आवश्यक होता है। जब उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है तो अध्ययनकर्ता को सामग्री संकलित करने में कठिनाई नहीं होती। वह कई स्रोतों से आवश्यक और अभीष्ट सूचना प्राप्त कर सकता है। कई बार अनुसंधानकर्ता उद्देश्य की अस्पष्टता के प्रभाव से इतना भटक जाता है कि अंत में निराशा हाथ आती है उसके श्रम का कोई लाभ नहीं होता चाहे उसने कितनी ही निष्ठा, दिलचस्पी, लगन के साथ कार्य किया हो अतः परिकल्पना इन मुख्य दोषों से बचाती है।

(4) अनुसंधान क्षेत्र को सीमित करना (Restricting the Research field)– अनुसंधानकर्ता के लिए यह व्यावहारिक रूप में संभव नहीं है कि विषय के समस्त पक्षों का अध्ययन करे। अध्येय विषय के विभिन्न पहलुओं पर सामग्री इतनी विस्तृत होती है कि वह यथार्थ में अनुसंधान कर ही नहीं सकता। यदि ऐसा कर भी लिया जाता है तो वैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह व्यर्थ है। इस निरर्थकता एवं जटिलता को दूर करने में परिकल्पना हमें सहायता प्रदान करती है। उदाहरणार्थ, यदि हम राजनीति विज्ञान में 'मतदान व्यवहार' का अध्ययन करना चाहें तो इससे संबंधित विषय मनोविज्ञान, समाज शास्त्र एवं अर्थशास्त्र हो सकते हैं। एक व्यक्ति का मत देने के संबंध में व्यवहार जानने की कोशिश करें तो एक पक्ष आर्थिक हो सकता है। जिसमें अपनी स्थिति निर्धन होने के कारण वह किसी भी ऐसे व्यक्ति को वोट दे सकता है जो उसे कुछ पैसा या अन्य लालच देते हैं। दूसरा पक्ष मनोवैज्ञानिक हो सकता है जिससे वह बड़े–बड़े मधुर भाषणों, नारों, वायदों द्वारा प्रभावित होकर वोट देते हैं। इसी प्रकार तीसरा पक्ष जाति या बिरादरी तथा चौथा पक्ष विचारधारा का, पांचवां पक्ष अपने मित्रों व संबंधियों को प्रसन्न करने का हो सकता है। यदि हम इसका राजनीतिक पक्ष ही लें तो स्वभावतः ही क्षेत्र सीमित करना होगा। लुंडवर्ग के शब्दों में परिकल्पना के आधार पर, "हम जानबूझ कर अपनी विचार शक्तियों को स्वीकार करते हैं और अपने अनुसंधान के क्षेत्र को सीमित कर त्रुटियों की संभावना को कम करने का प्रयास करते हैं।"

(5) प्रासंगिक तथ्यों के संकलन में सहायक (Helpful in the collection of relevant facts)– अध्ययनकर्ता के समक्ष विषय का अध्ययन करते समय कई तथ्य आते हैं। केवल विषय से संबंधित तथ्यों का ही संकलन किया जाता है। परिकल्पना द्वारा क्षेत्र, उद्देश्य आदि दिशा पहले ही निर्धारित हो जाते हैं। अतः अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन के लिए केवल इन्हीं तथ्यों को इकट्ठा करेगा जो उसके लिए सहायक हो। इसका अर्थ यह हुआ कि हम मनमाने ढंग से तथ्यों को एकत्र नहीं कर सकते, संबद्ध तथ्यों का ही संकलन कर परिकल्पना की सत्यता या असत्यता की जांच करते हैं। लुंडवर्ग के शब्दों में, "बिना किसी परिकल्पना के, तथ्यों का संकलन और किसी परिकल्पना को आधार मान कर तथ्यों का संकलन– इन दोनों में अंतर केवल यही है कि दूसरी स्थिति में हम

जानबूझ कर अपनी विचार शक्तियों की सीमाओं को स्वीकार करते हैं और अपने अनुसंधान के क्षेत्र को सीमित करके उनकी त्रुटियों की संभावना को कम करने का प्रयत्न करते हैं जिससे कि अधिकांशतः उन विशिष्ट पक्षों पर ही ध्यान केंद्रित किया जा सके जो हमारे पूर्वानुभव के अनुसार हमारे उद्देश्य की पूर्ति के लिए महत्वपूर्ण हैं।"

(6) निष्कर्ष निकालने में सहायक (Helpful in drawing conclusion)– परिकल्पना के निर्माण के बाद हम उससे संबंधित तथ्यों का संकलन करते हैं इन तथ्यों के आधार पर हम सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि परिकल्पना सही है या गलत। यदि सही है तो हम सिद्धांत का निर्माण करते हैं। जो अन्य अनुसंधानों के लिए आधार बन जाते हैं। यदि गलत भी सिद्ध होती है तो हमें वास्तविकता का पता चलता है। उदाहरणार्थ– यह कल्पना कि 'राजनीतिज्ञ विद्यार्थी वर्ग का केवल अपने संकीर्ण हितों की रक्षा के लिए शोषण करते हैं।' यदि यह गलत भी सिद्ध होता है तो हमें वास्तविकता का ज्ञान होता ही है। श्रीमती यंग के अनुसार वैज्ञानिक के लिए एक नकारात्मक परिणाम उतना ही महत्वपूर्ण तथा रोचक है जितना कि सकारात्मक परिणाम। दोनों ही अवस्थाओं में हमें सत्य का ज्ञान होता है। जो परिकल्पना से ही संभव है। पी.वी. यंग के अनुसार परिकल्पना की उपयोगिता अनुसंधानकर्ता के लिए निम्न बातों पर निर्भर करती है–

(1) तीक्ष्ण अवलोकन (Keen Observation)

(2) अनुशासित कल्पना एवं सर्जनात्मक चिंतन (Disciplined imagination and creative thinking)

(3) कुछ निरूपित सैद्धांतिक स्वरूप (Some formulated theoretical frame-work)

अतः अभीष्ट परिणाम एवंम् उद्देश्य प्राप्ति के लिए परिकल्पना केवल काम चलाऊ या उपयोगी ही नहीं होनी चाहिए अपितु अनुसंधानकर्ता में कल्पना, चिन्तन, बुद्धि और विवेक की भी आवश्यकता है।

(ब) परिकल्पना की सीमाएं

(1) अनुसंधानकर्ता परिकल्पना को ही अंतिम निदर्शक के रूप में मानकर तथ्यों को इकट्ठा करता है। यह प्रवृत्ति वैज्ञानिकता के प्रतिकूल है।

(2) प्रारंभिक अवस्था में अनुसंधानकर्ता अपनी अज्ञानता और अनुभवहीनता के कारण ऐसे तथ्यों को इकट्ठा करने लग जाता है जो अंत में निरर्थक तथा हानिप्रद ही सिद्ध होते हैं।

(3) वास्तविक तथ्यों के आधार पर परिकल्पना को न बदल कर, अनुसंधानकर्ता तथ्यों को ही तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत करता है जिससे परिणाम भी विश्वसनीय और सही नहीं हो सकते।

(4) अपनी रूचि के अनुकूल ही उसका अपना विशेष दृष्टिकोण होगा जो उसके अध्ययन को प्रभावित करेगा और फलस्वरूप तटस्थता व वैषयिकता नहीं बनी रहेगी।

(5) अंत में वेस्टावे की चेतावनी को अनुसंधानकर्ताओं को सदैव याद रखना चाहिए कि, ''परिकल्पनाएं वे लोरियां हैं जो असावधान को गाना गाकर सुला देती हैं।''

अपनी प्रगति जांचिए

3. निम्न में से किस सिद्धांत को 'कैटगॅरिकल या टर्म लॉजिक' भी कहा जाता है?
   (क) आगमनात्मक तर्क सिद्धांत (ख) निगमनात्मक तर्क सिद्धांत
   (ग) उपर्युक्त दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं
4. "वैज्ञानिक पद्धति में प्रयोगीकरण, प्राक्कल्पना और अध्ययन यंत्रों में विश्वास करना आवश्यक होता है।"– यह कथन किसका है?
   (क) थाउलेस (ख) ए. वुल्फ
   (ग) स्प्रोट (घ) कार्ल पियर्सन

2.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (क)
3. (ख)
4. (ग)

2.5 सारांश

सामाजिक यथार्थ जैविक यथार्थ या व्यक्तिगत संज्ञानात्मक यथार्थ से अलग है, यह सामाजिक संवाद के माध्यम से एक घटनात्मक स्तर का निर्माण करता है और इस प्रकार यह व्यक्तिगत उद्देश्यों और कार्यों के पार चला जाता है। मानव संवाद से उत्पन्न सामाजिक यथार्थ के बारे में यह माना जा सकता है कि यह एक समुदाय के स्वीकृत सामाजिक सिद्धांतों से मिलकर बना है जिनमें अपेक्षाकृत स्थिर नियम और सामाजिक प्रतिनिधित्व शामिल हैं। कट्टरपंथी रचनावाद सामाजिक यथार्थ को पर्यवेक्षकों (अवलोकनकारियों) के बीच एकरूपता के उत्पाद के रूप में वर्णित करेगा (चाहे वर्तमान पर्यवेक्षक (अवलोकनकारी) स्वयं शामिल हो या नहीं)।

सामाजिक यथार्थ का सामान्य अर्थ है– समाज का यथार्थ अर्थात समाज की वास्तविकता का चित्रण। समाज में जो कुछ भी घटित हो रहा है, उसको सामाजिक यथार्थ के अंतर्गत चित्रित किया जाता है। इसमें व्यक्ति सत्य से अधिक सामाजिक सत्य का उद्‌घाटन महत्व रखता है। यहां व्यष्टि सत्य को समष्टि सत्य के परिप्रेक्ष्य में महत्ता दी जाती है।

प्रत्यक्षवाद की वैज्ञानिक व्याख्या सर्वप्रथम ऑगस्ट कॉम्टे ने की है। कॉम्टे ने अपनी रचनाओं 'Course of Positive Philosophy' (1842) तथा 'The System of Positive Polity' (1851) में इस अवधारणा की व्याख्या की है। इसी कारण कॉम्टे को प्रत्यक्षवाद का प्रवर्तक माना जाता है। कॉम्टे ने मानव इतिहास का अध्ययन करके तथा

टिप्पणी

उसमें औद्योगिक व वैज्ञानिक प्रगति का स्थान निश्चित करके यह दावा किया कि उसने मानव समाज के आधारभूत नियमों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और उसने विश्वास व्यक्त किया कि यदि इन नियमों को सही ढंग से कार्य रूप प्रदान कर दिया जाए तो मानव प्रगति एक वैज्ञानिक तरीके से विकसित होकर अपने पूर्णत्व को प्राप्त हो सकती है। कॉम्टे को यह विश्वास था कि मानव का विकास जब पूर्णता को प्राप्त हो जाएगा, तब प्राचीन मान्यताएं, परम्पराएं एवं मूल्य समाप्त हो जाएंगे और उनका स्थान नवीन परम्पराएं, मान्यताएं व मूल्य ले लेंगे जिससे राज्य का स्वरूप तथा समस्त राजनीतिक एवं सामाजिक रूप–रेखा में बदलाव आ जाएगा।

घटना विज्ञान से संबंधित प्राथमिक सिद्धांत समाजशास्त्रियों के द्वारा बीसवीं शताब्दी में स्थापित किए गए। घटना विज्ञान एक दार्शनिक अध्ययन है जोकि व्यक्ति के परिदृश्य या विषयात्मक परिप्रेक्ष्य में अनुभवों पर आधारित है। हालांकि इस प्रकार की शब्दावली इस विज्ञान की सीमा को संज्ञानात्मक सूचनाओं जो कि मस्तिष्क के दर्शन में उत्पन्न होती हैं तक ही सीमित करने का कार्य करते हैं। इस विषय का कार्यक्षेत्र वृहद स्तर पर मनुष्य की मंशा अथवा धारण किए हुए विचार, भावना, भाषा, गतिविधि इत्यादि से संबंधित हो सकते हैं विशेषकर जब उस विषय क्षेत्र में अध्ययन किया जा रहा होता है। अनेक विचारकों के मध्य इस प्रकार की बहस अवश्य ही चली हुई है कि इस विज्ञान को किस प्रकार से परिभाषित किया जाए तथा दार्शनिक समुदाय में इसको किस ढंग से उपयोग किया जाए।

नृजाति कार्यप्रणाली का अर्थ है वे तरीके जो लोगों द्वारा अपने रोजमर्रा के जीवन की उपलब्धियों हेतु रोजाना इस्तेमाल किए जाते हैं। इसी बात को थोड़ा अलग ढंग से कहा जाए तो, सामाजिक संसार को एक गतिमान व्यावहारिक उपलब्धि के रूप में देखा जाता है। लोगों को तर्कसंगत माना जाता है, और वे अपनी रोजमर्रा की उपलब्धियों के लिए व्यावहारिक तर्क का उपयोग करते हैं। नृजाति कार्यप्रणाली में, इस बात पर जोर दिया जाता है कि लोग क्या करते हैं, जबकि घटना संबंधी समाजशास्त्र में लोगों के विचारों पर ध्यान दिया जाता है।

व्यावहारिकता एक व्यापक दार्शनिक स्थिति है जिसमें से हम मीड द्वारा विकसित सामाजिक उन्मुखीकरण को प्रभावित करने वाले भिन्न पहलुओं की पहचान कर सकते हैं। व्यवहारवादियों के अनुसार, 'बाहर संसार में कुछ भी उपस्थित नहीं है; संसार के प्रति और संसार में हमारी क्रिया के कारण वह सक्रिय रूप निर्मित होता जाता है।' इसके अलावा लोगों का संसार के प्रति ज्ञान उनके अनुभवों और उन चीजों तक सीमित है जो उन्हें प्रासंगिक लगती हैं। अंत में यह कहा जा सकता है कि लोगों को अच्छी तरह समझने के लिए उनकी संसार में भूमिका समझना जरूरी होगा।

व्याख्यात्मक समझ को समाज के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो उन अर्थों की खोज पर केंद्रित है जिसे लोग अपनी सामाजिक दुनिया से जोड़ते हैं। समाजशास्त्र में, व्याख्यात्मक समझ का अध्ययन केंद्रीय महत्व रखता है। इसे 'समझ' के रूप में भी शिथिल रूप से परिभाषित किया जा सकता है, जिसका मूल वेरस्टेन (verstehen – जर्मन शब्द है जिसका अर्थ है 'मानव व्यवहार की सहानुभूतिपूर्ण समझ') में निहित हैं। यह एक दृष्टिकोण है जो सामाजिक व्यवहार और अंतःक्रियाओं का अध्ययन करते समय अर्थ और क्रिया के महत्व को केन्द्रित करता है।

टिप्पणी

समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण तब संभव हुआ जब यह स्पष्ट रूप से समझा और स्वीकार किया जाने लगा कि समाज मनुष्यों की रचना है न कि ईश्वर की। जिस हद तक हम समाजशास्त्र को एक वैज्ञानिक विषय के रूप में देख सकते हैं, विज्ञान का एक मार्गदर्शक सिद्धांत यह है कि हम प्रमाण के सख्त नियमों से वैध ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं जो विश्वसनीय और मान्य हैं। इस अर्थ में, विज्ञान अन्य विषयों के साथ–साथ समाजशास्त्र के विषय को भी अपने में शामिल करता है। प्राकृतिक विज्ञान के नियमों पर आधारित समाजशास्त्र और वैज्ञानिक पद्धति के बीच के संबंधों की जांच करके, हम समझ सकते हैं कि क्या समाजशास्त्र उसी तरह से वैज्ञानिक है जैसे कि प्राकृतिक विज्ञान होता है। यह पता लगाना भी संभव है कि क्या समाजशास्त्र तब भी वैज्ञानिक हो सकता है जब वह प्राकृतिक विज्ञान की पद्धति और विधियों का पालन नहीं करता है। इस उद्देश्य के लिए, हमें समाजशास्त्रियों द्वारा उनके कार्यों में अनुसरण की जाने वाली विभिन्न पद्धतियों की जांच करने की आवश्यकता है और फिर समाजशास्त्र को वैज्ञानिक विषय कहने के दावे की सराहना करनी चाहिए।

तर्क की जिस प्रक्रिया में एकाकी प्रेक्षणों के ज्ञात तथ्यों को जोड़कर अधिक व्यापक कथन निर्मित किया जाता है, आगमनात्मक तर्क कहलाता है। यह 'निगमनात्मक तर्क' से बहुत भिन्न तर्क है। "निगमनात्मक विचारधारा विद्यमान सिद्धांत के आधार पर परिकल्पना के निर्माण से संबंधित है। तर्क की जिस प्रक्रिया में एक या अधिक ज्ञात सामान्य कथनों के आधार पर किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचा जाता है, उसे निगमनात्मक तर्क कहते हैं।"

आगमनात्मक एवं निगमनात्मक दोनों ही विधियों का यदि पृथक रूप से प्रयोग किया जाए तो दोनों की ही सीमाएं हैं। निगमनात्मक विधि पूर्णतः सत्य निष्कर्षों तक पहुंचने में हमारी सहायता करेगी। यद्यपि ये निष्कर्ष पहले से ही ज्ञात एवं विद्यमान निष्कर्षों से बाहर किसी प्रकार की जांच नहीं करेंगे। अकेले आगमनात्मक विधि का प्रयोग किसी समस्या के संपूर्ण एवं संतोषजनक हल को प्राप्त करने में सहायता नहीं करता। किसी एक एकीकरणीय अवधारणा के अभाव में व्यक्तिगत अवलोकनों का यादृच्छ संकलन शायद ही किसी व्यापकीकरण में सहायक सिद्ध हो।

सामाजिक विज्ञानों में सिद्धांत कुछ परंपराओं के साथ–साथ कुछ पद्धतिगत मुद्दों द्वारा विकसित हुए हैं। किसी भी सामाजिक विज्ञान में केवल एक ही प्रतिमान प्रचलित नहीं है। कई तो अभी भी एक पूर्व–प्रतिमान अवस्था में हैं। फिर भी, सामाजिक शोधकर्ताओं ने स्वयं पर प्रतिमानों की सीमाओं को लगाया हुआ है, और 'सामान्य' या 'नियमित' शोध कार्य कर रहे हैं। चूंकि सामाजिक वैज्ञानिक पूरी तरह से प्रचलित या अक्सर प्रतिस्पर्धी सिद्धांतों पर निर्भर नहीं रह सकते या उनका आह्वान नहीं कर सकते हैं, इसलिए उन्हें सिद्धांतों के पुनर्निर्माण का सहारा लेना होता है। ऐसे कई वैकल्पिक तरीके हैं जिनसे एक घटना के बारे में एक सिद्धांत को फिर से पुनर्रचित किया जा सकता है और उनमें से ज्यादातर सही भी होते हैं। फिर, सामाजिक वैज्ञानिकों को विश्लेषण की इकाइयों के विभिन्न स्तरों के साथ संयोजन भी करना पड़ता है। विभिन्न स्तरों पर सामान्यीकरण भी होता ही है।

टिप्पणी

विषय 'वास्तव में जैसा है' विषय का अध्ययन वैसा ही करना वस्तुनिष्ठ अध्ययन कहलाता है। तटस्थ और पक्षपात रहित निरीक्षण द्वारा तथ्यों का उनके वास्तविक रूप में संकलन और विश्लेषण ही वस्तुनिष्ठता है। वस्तुनिष्ठ अध्ययन विश्लेषणात्मक होता है। वस्तुनिष्ठ अध्ययन वास्तविक तथ्यों के वास्तविक अवलोकन, परीक्षण और विश्लेषण पर आधारित होता है। अपने स्वयं की भावना, विचार, उचित–अनुचित के आदर्श, विश्वास, आशा और आकांक्षाओं के रंग में न रंगकर किसी भी तथ्य या घटना को 'जैसा वह है' उसी रूप में देखना और विवेचना करना वस्तुनिष्ठता अथवा वैषयिकता है। घटना या तथ्य का यह वास्तविक रूप बुरा हो सकता है, कटु हो सकता है, अनुसंधानकर्ता के अपने आदर्शों तथा मूल्यों के विपरीत हो सकता है, फिर भी उस घटना को यदि वह उसके मूल रूप में देखता है और समझता है तो वह वस्तुनिष्ठता को प्राप्त करने में सफल होता है। वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण रखनेवाला अनुसंधानकर्ता केवल सत्य को ही देखता है।

वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में कठिन हो सकती है, पर कभी भी असंभव नहीं। अपने अनुभवों तथा अन्वेषणों के आधार पर समाजशास्त्रियों ने उन अनेक साधनों का पता लगा लिया है जिनके द्वारा सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में भी वस्तुनिष्ठता प्राप्त की जा सकती है। कहा जाता है कि वस्तुनिष्ठ रहने की इच्छा और वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में प्रयत्नशील रहना इस दिशा में महत्वपूर्ण है। तटस्थ रहने की इच्छा का संबंध स्वयं अनुसंधानकर्ता से है और उसकी अभिव्यक्ति इस रूप में होती है कि अनुसंधानकर्ता स्वयं वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति के लिए सचेत रहता है और उसके लिए समस्त व्यक्तिगत राग–द्वेष, विचार, मूल्य, पक्षपात, मिथ्या–झुकाव आदि से हर पग पर बचता है। दूसरी और वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने का प्रयत्न इस बात का द्योतक है कि अनुसंधानकर्ता ऐसी विधियों को अपनाता है, ऐसे तथ्यों को संकलित करने का प्रयत्न करता है जिससे कि उसका अध्ययन अधिकाधिक वस्तुनिष्ठ हो सके। इन इच्छाओं तथा प्रयत्नों को ही उन साधनों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है जो कि सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण हैं।

आरंभिक सामान्य तथा कामचलाऊ अनुशासन जो आगे के अध्ययन कार्य का आधार और वैज्ञानिक के लिए एक सहारा बन जाता है, को कार्य–निर्वाही तथा कामचलाऊ परिकल्पना या उपकल्पना कहते हैं। शोध के बारे में प्रारंभिक ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् शोधकर्ता अपने दिमाग में एक ऐसा सिद्धांत बना लेता है जिसके बारे में वह कल्पना करता है कि यह सिद्धांत शायद उसके अनुसंधान का आधार सिद्ध हो सकता है। ऐसे काल्पनिक निष्कर्ष को वह अंतिम मानकर नहीं चलता। उसकी प्राथमिकता अपने अनुभव तथा वास्तविक तथ्यों द्वारा सिद्ध करने की होती है।

2.6 मुख्य शब्दावली

- **यथार्थ** : सच्चाई।
- **नृजाति** : समान सभ्यता एवं संस्कृति वाले एक ही जाति या राष्ट्रीयता के लोग।

- **आगमनात्मक विधि** : तर्क की प्रक्रिया में एकाकी प्रेक्षणों को जोड़कर अधिक व्यापक कथन की निर्मिति।
- **वस्तुनिष्ठता** : विषय से संबंधित।
- **यादृच्छिक** : गैर–संयोजित तरीके के साथ बढ़ता हुआ क्रियाओं का क्रम।

2.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक यथार्थ का सामान्य अर्थ बताइए।
2. अल्फ्रेड शट्ज ने न्यूयार्क के किस संस्थान से अपने कार्य की शुरुआत की?
3. आगमनात्मक एवं निगमनात्मक विधियों में प्रमुख अंतर बताइए।
4. प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावाद के मौलिक सिद्धांत बताइए।
5. अर्थ तथा प्रतीकों की महत्ता बताइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक यथार्थ एवं सामाजिक यथार्थवाद का समीक्षात्मक विवेचन कीजिए।
2. प्रत्यक्षवाद को समझाते हुए संबद्ध विभिन्न दार्शनिकों के विचारों का विश्लेषण कीजिए।
3. घटना विज्ञान को विस्तारपूर्वक समझाइए।
4. नृजाति कार्यप्रणाली की समीक्षा कीजिए।
5. सामाजिक विज्ञान अनुसंधान में जांच के तर्कों को समझाइए।
6. आगमनात्मक एवं निगमनात्मक विधियों की अवधारणा, अंतर, मूल्यांकन, कमजोर व मजबूत आगमन पदों का विस्तारीकरण कीजिए।
7. सामाजिक अनुसंधान में सिद्धांत निर्माण के विभिन्न पक्षों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
8. वस्तुनिष्ठता एवं निष्पक्षता शोध को सही दिशा में ले जाने के प्रमुख कारक हैं। समझाइए।
9. परिकल्पना (उपकल्पना) का विश्लेषण कीजिए।

2.8 सहायक पाठ्य सामग्री

Charles, C. Ragin. 1994. *Constructing Social Research: The Unity and Diversity of Method*. USA: Pine Forge Press.

Barton, Keith. C. 2006. *Research Methods in Social Studies Education.* USA: Information Age Publishing Inc.

Williman, Nicholas. 2006. *Social Research Methods.* London: Sage Publications Ltd.

Kumar, Dr. C. Rajendra. 2008. *Research Methodology.* New Delhi: APH Publishing Corporation.

Bulmer, Martin. 2003. *Sociological Research Methods: An Introduction*. USA: Transaction Publishers.

Scheurich, James J. 2001. *Research Method in The Postmodern.* Philadelphia: RoutledgeFalmer.

Singh, Kultar. 2007. *Quantitative Social Research Methods.* New Delhi: Sage Publications India Private Ltd.

इकाई 3 मात्रात्मक विधियां एवं सर्वेक्षण अनुसंधान

टिप्पणी

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 परिमाणीकरण (मात्रात्मक) और माप की मान्यताएं
3.3 सर्वेक्षण तकनीक
3.3.1 परिचालन
3.3.2 अनुसंधान अभिकल्प
3.3.3 निदर्शन रचना
3.3.4 निदर्शन पद्धति की कमियां
3.3.5 निदर्शन चयन की विधियां
3.3.6 प्रश्नावली निर्माण, अनुसूची और साक्षात्कार
3.3.7 मापन और स्केलिंग
3.3.8 विश्वसनीयता और वैधता
3.3.9 सामाजिक विश्लेषण में कम्प्यूटर का उपयोग
3.4 सामाजिक अनुसंधान में सांख्यिकी
3.4.1 सांख्यिकी के गुण व दोष
3.4.2 केंद्रीय प्रवृत्ति की माप : माध्य, माध्यिका और बहुलक
3.4.3 विचलनशीलता की माप : मानक/चतुर्थक विचलन
3.4.4 सह संबंध–विश्लेषण
3.4.5 प्रतीपगमन विश्लेषण
3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

मात्रात्मक विधियों में सांख्यिकीय विश्लेषण और परिमाणात्मक मापन का प्रयोग होता है। इस अनुसंधान का संबंध प्रत्यक्षवादी ज्ञान मीमांसा से है जिसमें अनुसंधान के आनुभाविक साक्ष्यों और उनके विश्लेषण के लिए विशुद्ध विज्ञान जैसे गणित, सांख्यिकीय आदि का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के शोध में दत्त सामग्री का संग्रहण एवं विश्लेषण संख्यात्मक रूप में किया जाता है। जैसे उत्तरदाताओं के जवाब को मात्रात्मक रूप अर्थात प्रतिशत, संख्या, बारंबारता, मध्यमान इत्यादि के रूप में प्रदर्शित करना। मात्रात्मक विधियों की प्रकृति विषयात्मक होती है। इस प्रकार के शोध के द्वारा सिद्धांतों और प्राकल्पनाओं की जांच की जाती है। इसमें तर्क की निगमन विधि का प्रयोग होता है। मात्रात्मक विधियों का प्रयोग विज्ञान में ज्यादा होता है। वर्तमान समाजिक विज्ञान एवं शोध कार्यों में यह अनुसंधान विधि काफी प्रचलन में है।

प्रस्तुत इकाई में मात्रात्मक विधियों एवं सर्वेक्षण अनुसंधान के अंतर्गत परिमाणीकरण एवं माप की मान्यताओं, सर्वेक्षण में प्रयोग की जाने वाले विभिन्न तकनीकों एवं सामाजिक अनुसंधान में सांख्यिकी के प्रयोग का अध्ययन किया गया है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप—

टिप्पणी

- परिमाणीकरण (मात्रात्मक) और माप की मान्यताओं को समझ पाएंगे;
- सर्वेक्षण में प्रयुक्त विभिन्न तकनीकों की जानकारी ले पाएंगे;
- सामाजिक अनुसंधान में सांख्यिकी के प्रयोग को जान पाएंगे।

3.2 परिमाणीकरण (मात्रात्मक) और माप की मान्यताएं

पिछली कई सदियों से परिमाणीकरण सामाजिक विज्ञानों में बेहद प्रचलित हो गया है। पश्चिम में परिमाणीकरण का प्रयोग 13वीं सदी से भी पहले से किया जा रहा है। लेकिन 17वीं सदी के पहले भाग में यह विचार सामने आया कि यूरोप में सामाजिक विषयों के संख्यात्मक विश्लेषण का इतना प्रभुत्व हो जाएगा। 19वीं सदी में इन झुकावों में और दृढ़ता देखी गई और 20वीं सदी की शुरुआत तक "संख्यात्मक प्रतिमान" ज्यादातर सामाजिक विज्ञानों, जैसेकि अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र और राजनीतिक विज्ञान, में अत्यंत प्रभावशाली हो गया था। पश्चिमी समाज में और विशेष रूप से सामाजिक विज्ञानों में संख्यात्मक उपायों के इस बढ़ते उपयोग के कुछ प्रमुख स्पष्टीकरण हैं। पहला, प्राकृतिक विज्ञानों खासकर, भौतिक विज्ञान के बढ़ते प्रभुत्व और बढ़ती सफलता ने सामाजिक विज्ञानियों को संख्यात्मक उपायों के उपयोग की नकल करने के लिए प्रोत्साहित किया, इस उम्मीद में कि उन्हें बाकी जगह भी समान सफलता और यथार्थता प्राप्त होगी। एक दूसरी व्याख्या में पूंजीवाद के उदय और पश्चिमी समाजों में तर्कसंगत भावना पर जोर दिया गया है, इसका विवरण मैक्स वेबर ने 1905 की अपनी किताब, द प्रोटेस्टेंट एथनिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म में दिया है। वेबर एक अधिक तर्कसंगत, नौकरशाही और गणनात्मक जीवन की ओर कदम बढ़ाने का वर्णन करते हैं, और सामाजिक अस्तित्वों तथा व्यवहारों के बढ़ते झुकाव को इन बदलावों के मद्देनजर, बखूबी व्याख्यात किया गया है। कुछ विद्वान, मुख्य रूप से आधुनिक केंद्रीकृत राज्य के बढ़ावे को परिमाणीकरण के प्रसार का कारण बताते हैं, जिसमें सार्वजनिक अधिकारियों को बढ़ती आबादी और बड़े पैमाने पर सामाजिक संस्थानों का कुशलतापूर्वक प्रबंधन करने की आवश्यकता दिखाई देती है। अंत में, अपनी 1995 में प्रकाशित किताब, 'ट्रस्ट इन नंबर्स : द पर्सूट ऑफ ऑब्जेक्टिविटी इन साइंस एंड पब्लिक लाइफ' में थिओडोर पोर्टर द्वारा एक अन्य दिलचस्प व्याख्या दी गई है। पोर्टर का यह कहना है कि, आधुनिक समाज में परिमाणीकरण की ओर झुकाव प्राकृतिक विज्ञान की सफलता की प्रतिक्रिया नहीं है, क्योंकि यह और अधिक जवाबदेही हेतु, सामाजिक एवं राजनीतिक दबाव शांत करने के लिए कमजोर व्यावसायिक गुटों की एक कोशिश है। दूसरे शब्दों में, पोर्टर के अनुसार, सामाजिक विज्ञानों में परिमाणीकरण का आवेश मुख्य रूप से व्यावसायिकता की दिखावट उत्पन्न करने और सामाजिक एवं सार्वजनिक नीतियों के लिए वैधता प्राप्त करने की इच्छा के कारण हुआ।

परिमाणीकरण का विद्वानों तथा नीति निर्माताओं के लिए खास लाभ है। यह इस विश्वास का समर्थन करता है कि यह निर्णय लेने की प्रक्रिया में यथार्थता तथा सामान्यता बढ़ाता है, और पूर्वाग्रह, पक्षपात और भाई—भतीजावाद कम करता है। इस

टिप्पणी

विचार के अनुसार, सांख्यिकीय विश्लेषण में प्रयोग किए जाने वाले गैर–संदर्भित और मूल्यमुक्त गणितीय चिह्न, निष्पक्षता, स्थिरता और उचित निर्णय लेने में सहायक होते हैं, क्योंकि निर्णय ज्यादा व्यापारिक हो जाते हैं। परिमाणीकरण किफायती भी होता है। बहुत लोगों को ऐसा लगता है कि आज के जमाने में, बढ़ते राज्य उपकरणों से उभरते आंकड़ों और तेजी से बढ़ते ज्ञान–विज्ञान के कारण, जानकारी का ऐसा जरूरत से ज्यादा बहाव उमड़ता है जिसे विस्तृत गुणात्मक विवरण द्वारा कुशलतापूर्वक संभाला नहीं जा सकता। विचार किए जाने वाली जानकारी की मात्रा को कम करने का कोई तरीका खोजे बिना, जटिल निर्णय लेने की कोशिश करना भारी पड़ सकता है। इसलिए परिमाणीकरण, जानकारी को व्यवस्थित एवं रद्द करने के लिए एक आवश्यक यंत्र की तरह काम करता है, जिससे डेटा का बहाव अधिक प्रबंधनीय हो जाता है।

यह इस बात को मान्यता देता है कि लोगों के पास केवल सीमित संज्ञानात्मक कौशल होता है और वे केवल सीमित जानकारी का प्रसंस्करण कर सकते हैं। परिमाणीकरण से समय का बचाव होता है, यह बड़े पैमाने के डेटाबेसों को समझने और उनका विश्लेषण करने में सहायता करता है और बड़े पैमाने पर अनुसंधान, योजना, प्रबंधान और निर्णय लेने की सुविधा प्रदान करता है। इन लाभों को ध्यान में रखते हुए, कई विद्वानों का यह मानना है कि सामाजिक संसार के हर पक्ष को परिमाणित किया जा सकता है, बल्कि किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, मनोवैज्ञानिक एडवर्ड थॉर्नडाइक द्वारा 20वीं सदी की शुरुआत में यह दावा किया गया था कि "किसी भी परिमाणित चीज को मापा जा सकता है।" (कस्टर 1996)

लेकिन बहुत सारे लोग इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं। परिमाणीकरण के आलोचक यह दावा करते हैं कि सामाजिक अनुभवों को मानकीकृत आंकड़ों में बदलने से अलगाव पैदा होता है और बहुत से समूह इन अनुभवों से दूर हो जाते हैं। इससे निर्णयकर्ताओं को जवाबदेही से भी छुटकारा मिल जाता है, क्योंकि आंकड़े और सांख्यिकी व्यक्तिगत उत्तरदायित्व से दूर हो जाते हैं। इस प्रकार, परिमाणीकरण दरअसल, निर्णय लेने का वह तरीका है जिसमें निर्णय लेने की जरूरत नहीं पड़ती, क्योंकि निर्णय तो आंकड़ों द्वारा लिए जाते हैं। इसके विरोधियों के अनुसार, परिमाणीकरण बाजारी अर्थव्यवस्था पर कब्जे को चिह्नित करता है।

परिमाणीकरण की प्रक्रिया में, सादगी और गणनीयता के कारण, महत्वपूर्ण जानकारी खो जाती है। लेकिन पर्यावरण संरक्षण, अंतरंग संबंध, पहचान, अधिकार और धर्म जैसे क्षेत्रों में ये प्रयास अकसर श्रेणी की प्रकृति को भंग कर देते हैं और मूलभूत विशेषताएं लुप्त हो जाती हैं। परिमाणीकरण का प्रभुत्व मौजूदा वस्तुओं और संबंधों को भी मिटा देता है। अंत में, परिमाणीकरण के आलोचक यह दावा करते हैं कि यह अकसर ऐसे क्षेत्रों में विस्तृत हो जाता है जहां ज्यादा सांख्यिकीय समझ नहीं होती। यह उन सामाजिक संस्थाओं का माप करने के मामले में खासतौर पर सच है, जो अकसर लचीली होती हैं और संशोधन तथा परिवर्तन के अधीन होती हैं। उदाहरण के लिए, सामाजिक वैज्ञानिक अकसर वंश और जातीयता जैसी श्रेणियों की आलोचना करते हैं, और यह दावा करते हैं कि ये स्थायी और सच्ची संस्थाएं नहीं, बल्कि ये डगमगाती सामाजिक परिभाषाएं और वर्गीकरण हैं। इस समस्या का उदाहरण जनगणना में देखा जा सकता है, जिसमें कई श्रेणियों का राज्य कर्मियों द्वारा आविष्कार किया

टिप्पणी

जाता है और इन्हें लोगों पर थोप दिया जाता है। चाहे ये व्यक्तिगत पहचानों और आत्म–धारणाओं से मेल खाती हों या नहीं। इसके अतिरिक्त, सामाजिक वास्तविकताओं, जैसेकि वंश, में सांख्यिकीय प्रतिनिधित्व की व्याख्या इन वास्तविकताओं को असल संसार के सामाजिक संदर्भ में स्थापित करने में अस्मर्थ रहती है। यह असफलता, बदले में, गलत धारणाओं और खराब निर्णयों की ओर ले जा सकती है। इन समस्याओं के बावजूद, परिमाणीकरण स्पष्ट रूप से एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे टाला नहीं जा सकता है। यह आज की सामाजिक दुनिया का एक महत्वपूर्ण और व्यवहार्य घटक है, और बहुत कम ऐसे लोग होंगे जो परिमाणीकरण के समय से पहले की दुनिया में वापिस जाना चाहेंगे। फिर भी, परिमाणीकरण की समस्याओं और इसके नुकसानों के बारे में ध्यानपूर्वक सोचा जाना चाहिए। शोधकर्ता तथा नीतिकर्ताओं को उन स्थानों की पहचान करनी चाहिए जहां यह सामाजिक जीवन की वास्तविकता को भंग करता है और सामाजिक श्रेणियों में लागू करते समय पूरा ध्यान रखना चाहिए।

माप

माप का स्तर उस विशेष तरीके को संदर्भित करता है जिससे वैज्ञानिक शोध में एक चर को मापा जाता है, और माप का पैमाना उस विशेष यंत्र को संदर्भित करता है जो एक शोधकर्ता डेटा को एक संगठित तरीके से अलग करने के लिए उपयोग करता है, यह चयनित माप के स्तर पर निर्भर करता है।

माप का स्तर और पैमाना चुनना शोध डिजाइन प्रक्रिया का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं क्योंकि ये डेटा के व्यवस्थित मापन और श्रेणीकरण के लिए आवश्यक हैं, और इस प्रकार उसे विश्लेषित करके उससे निष्कर्ष निकालने के लिए भी इन्हें वैध माना जाता है। विज्ञान के भीतर सामान्य तौर पर, माप के चार स्तरों व पैमानों का प्रयोग किया जाता है– सांकेतिक, क्रमिक, अंतराल और अनुपात। इनका विकास स्टैनली स्मिथ स्टीवन्स नामक मनोवैज्ञानिक द्वारा किया गया था जिन्होंने, 1946 में, सांइस में इनके बारे में एक अनुच्छेद में लिखा था, "ऑन द थियोरी ऑफ स्केल्स ऑफ मेजरमेंट"। मापन का प्रत्येक स्तर और उसका अनुरूप स्तर, मापन की चार विशेषताओं में एक या उससे अधिक विशेषताएं मापने की योग्यता रखता है, जिसमें पहचान, परिमाण, समान अंतराल और शून्य का न्यूनतम मूल्य शामिल है।

माप के इन विभिन्न स्तरों का एक पदानुक्रम है। माप के निम्न स्तर (सांकेतिक, क्रमिक) के साथ, धारणाएं आमतौर पर कम प्रतिबंधक होती हैं और डेटा विश्लेषण कम संवेदनशील होते हैं। पदानुक्रम के प्रत्येक स्तर पर, वर्तमान स्तर में अतिरिक्त गुण होने के अलावा, उसके नीचे वाले स्तर के सभी गुण शामिल होते हैं। सामान्य तौर पर, माप के निम्न स्तर होने की जगह उच्च स्तर (अंतराल और अनुपात) होना वांछनीय होता है। आइए पदानुक्रम में निम्नतम से उच्चतम स्तर तक माप के प्रत्येक स्तर और उसके अनुरूप पैमाने की जांच करें।

सांकेतिक स्तर व पैमाना

सांकेतिक स्तर को अपनी शोध के दौरान, वेरियबल के बीच उसकी श्रेणियां नामित करने के लिए प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार का पैमाना मूल्यों का कोई क्रम प्रदान नहीं करता है। यह बस एक वेरियबल के भीतर प्रत्येक श्रेणी के लिए एक नाम प्रदान

टिप्पणी

करता है ताकि आप उन्हें अपने डेटा के बीच ट्रैक कर सकें। कहने का मतलब यह कि, वह पहचान और केवल पहचान के माप को संतुष्ट करता है।

समाजशास्त्र के भीतर सामान्य उदाहरणों में शामिल हैं लिंग की ट्रैकिंग (लड़का या लड़की), जाति (श्वेत, काला, हिस्पैनिक, एशियाई, अमेरिकी, भारतीय, आदि) और वर्ग (गरीब, श्रमिक वर्ग, मध्यम वर्ग, उच्च वर्ग)। बेशक, कई अन्य वेरियबल हैं जिन्हें सांकेतिक पैमाने पर मापा जा सकता है।

माप का सांकेतिक स्तर श्रेणीगत माप के रूप में भी जाना जाता है और इसकी प्रकृति गुणात्मक मानी जाती है। सांख्यिकीय जांच करते समय और माप का यह स्तर प्रयोग करते समय, हम मोड का प्रयोग करेंगे, या सबसे सामान्य घटने वाले मूल्य का, बतौर एक केंद्रीय झुकाव।

क्रमिक स्तर तथा पैमाना

एक शोधकर्ता क्रमिक पैमानों का तब उपयोग करता है जब वह कोई ऐसी चीज मापना चाहता है जिसे आसानी से गिना नहीं जा सकता, जैसे भावनाएं या राय। ऐसे स्तर के भीतर, एक वेरियबल के भिन्न मूल्यों को क्रमानुसार व्यवस्थित किया जाता है, जिस कारण यह पैमाना उपयोगी तथा जानकारीपूर्ण बन जाता है। यह पहचान और परिमाण के गुणों पर पूरा उतरता है। हालांकि, यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि चूंकि इस प्रकार का पैमाना मात्रात्मक नहीं होता– वेरियबल श्रेणियों के बीच यथार्थ भिन्नताओं की जानकारी मिलना आसान नहीं है।

समाजशास्त्र के भीतर, आमतौर पर सामाजिक मुद्दों जैसेकि जातिवाद या लिंगवाद, पर लोगों के विचारों और उनकी राय को मापने के लिए सामान्य पैमाने का उपयोग किया जाता है या राजनीतिक चुनाव के संदर्भ में उनके लिए कुछ मुद्दे कितने महत्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए, अगर एक शोधकर्ता इस चीज के विस्तार को मापना चाहे कि जनता किस हद तक जातिवाद को एक समस्या मानती है तो वह यह प्रश्न पूछेगा, "आजकल, हमारे समाज में जातिवाद की समस्या कितनी बड़ी है?" और इस प्रकार की प्रतिक्रिया के विकल्प देगा : "यह एक बड़ी समस्या है," "यह कुछ हद तक एक समस्या है," "यह एक छोटी समस्या है," और "जातिवाद कोई समस्या नहीं है"। माप के इस स्तर तथा पैमाने का प्रयोग करते समय, मध्य, केंद्रीय झुकाव दर्शाता है।

अंतराल स्तर और पैमाना

सांकेतिक और क्रमिक पैमानों के विपरीत, एक अंतराल स्तर एक सांख्यिकी है जो चरों (वेरियबलों) की क्रम व्यवस्था की अनुमति देता है और इनके बीच भिन्नताओं की यथार्थ, मात्रात्मक समझ प्रदान करता है (इनके बीच अंतरालों की)। इसका मतलब यह है कि यह पहचान, परिमाण और समान अंतराल की तीन विशेषताओं को संतुष्ट करता है।

उम्र सामान्य वेरियबल है जिसे ट्रैक करने हेतु समाजशास्त्री अंतराल पैमाने का प्रयोग करते हैं जैसेकि 1, 2, 3, 4, आदि। हम गैर–अंतराल, क्रमिक वेरियबल श्रेणियों को अंतराल पैमाने में बदल कर सांख्यिकीय विश्लेषण की सहायता कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, आय को एक रेंज के रूप में मापना आम बात है। जैसे, रुपये 0 – 9,999; रुपये 10,000 – 19,999; रुपये 20,000 – 29,000, आदि। इन रेंजों को ऐसे अंतरालों में बदला जा सकता है जो आय का बढ़ता स्तर प्रतिबिंबित करते हैं, 1 का न्यूनतम श्रेणी चिह्नित करने के लिए प्रयोग करके, 2 का अगला, फिर 3 आदि।

टिप्पणी

अंतराल पैमाने, खास तौर पर उपयोगी होते हैं, क्योंकि ये न केवल बारंबारता (फ्रिक्वेंसी) मापने के काम आते हैं बल्कि हमारे डेटा में वेरियबल श्रेणियों का प्रतिशत भी मापते हैं। इनसे हम मीडियन और मोड के अतिरिक्त, माध्य (मीन) की गणना भी कर सकते हैं। सबसे महत्वपूर्ण है कि, माप के अंतराल स्तर के साथ, हम मानक विचलन की भी गणना कर सकते हैं।

अनुपात स्तर तथा पैमाना

माप का अनुपात पैमाना, लगभग अंतराल पैमाने के समान है, हालांकि, इसमें केवल इतना अंतर है कि इसमें शून्य का पूर्ण मूल्य है, और इसलिए यह एक अकेला ऐसा पैमाना है जो माप की सारी चार विशेषताओं को पूरा करता है।

एक समाजशास्त्री, एक वर्ष में कमाई गई असल आय को मापने के लिए एक अनुपात पैमाने का प्रयोग करेगा। जो भी चीज पूर्ण शून्य से मापने योग्य हो, उसे अनुपात पैमाने पर मापा जा सकता है, उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति के बच्चों की संख्या, एक व्यक्ति ने कितने चुनावों में मतदान किया है, या एक व्यक्ति के कितने मित्र उसकी जाति के नहीं हैं।

जैसाकि अंतराल पैमाने में किया जाता है, इसमें भी हम सारे सांख्यिकीय ऑपरेशन करने के अलावा और भी कार्य कर सकते हैं। दरअसल, इसे यह नाम इसलिए भी दिया गया है क्योंकि माप और पैमाने का अनुपात स्तर प्रयोग करते समय हम डेटा से अनुपात और अंश निकाल सकते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

1. मैक्स वेबर की पुस्तक 'द प्रोटेस्टेंट एथनिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म' कब प्रकाशित हुई?

   (क) 1901 (ख) 1903

   (ग) 1905 (घ) 1907

2. 'द पर्सूट ऑफ आब्जेक्टिविटी इन साइंस एंड पब्लिक लाइफ' पुस्तक के लेखक कौन हैं?

   (क) कॉम्टे (ख) थिओडोर पोर्टर

   (ग) दुर्खीम (घ) कान्ट

3.3 सर्वेक्षण तकनीक

सर्वेक्षण का अंग्रेजी रूपांतर Survey मूल रूप से बाहर (Sor) तथा अमल (Veeir) अर्थ पर आधारित है। Sor का अर्थ Over तथा Veeir का अर्थ जानना होता है। इस प्रकार Survey का सम्मिलित मूल अर्थ 'ऊपर से देखना,' अवलोकन अथवा अन्वेषण होता है। वेब्स्टर्स न्यू कॉलेजियट डिक्शनरी के अनुसार सर्वेक्षण का अर्थ प्रायः सरकारी आलोचनात्मक निरीक्षण होता है, जिसका उद्देश्य एक क्षेत्र की किसी एक स्थिति अथवा उसके प्रचलन के संबंध में यथार्थ सूचना प्रदान करना है। जैसे स्कूलों का सर्वेक्षण अथवा विश्वविद्यालयों का सर्वेक्षण।

टिप्पणी

सर्वेक्षण का उद्देश्य विशेषतः अतीत में सामाजिक तथा शैक्षिक क्षेत्रों से संबंधित विषयों, समस्याओं व स्थितियों के विषय में व्यापक तथा विस्तृत आंकड़े संकलित करना रहा है। ऐसे अध्ययनों का स्वरूप प्रायः संगणात्मक (Relating to Census) अधिक रहता है। इसमें आधुनिक प्रतिचयन पद्धति का उपयोग प्रायः नहीं होता। अतः ऐसे सर्वेक्षणों का स्वरूप अत्यधिक विस्तृत, व्यापक और विशाल होता है। ऐसे ही विशालतम सर्वेक्षणों को प्रायः स्थिति–सर्वेक्षण की संज्ञा दी जाती है। स्पष्टतः ऐसे अध्ययनों को वैज्ञानिक अध्ययन कहना कठिन है क्योंकि ऐसे अध्ययनों का उद्देश्य विभिन्न चरों के पारस्परिक संबंधों के अध्ययन की अपेक्षा अधिकतर यथास्थिति (Status Quo) का अध्ययन करना होता है।

सर्वेक्षण और सर्वेक्षण अनुसंधान

सर्वेक्षण से केवल एक सामाजिक समस्या से संबंधित आंकड़ों के संकलन का ही बोध नहीं होता बल्कि एक पद्धति का बोध होता है। मोर्स के शब्दों में, "सर्वेक्षण विशेष सामाजिक स्थिति, समस्या अथवा समष्टि से संबंधित उद्देश्य हेतु व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक विश्लेषण की एक विधि है।"

इसी प्रकार, हैरिसन के अनुसार, "सामाजिक सर्वेक्षण एक ऐसा सहकारी उपक्रम है, जो कि विशेष भौगोलिक सीमाओं व दशाओं के अंतर्गत प्रचलित तथा संबंधित सामाजिक समस्याओं व स्थितियों के अध्ययन तथा विश्लेषण में वैज्ञानिक पद्धति की प्रयुक्ति करता है।"

वैज्ञानिक युग में अब स्थिति–सर्वेक्षण व अन्य साधारण सर्वेक्षण को अधिक महत्व नहीं दिया जाता। अब सर्वेक्षण के द्वारा अध्ययन में प्रतिचयन प्रक्रिया (Sampling Procedure) को विशेष महत्व दिया जाता है। प्रक्रिया के अंतर्गत अध्ययन के लिए संभाव्यता सिद्धांत (Probability Theory) के आधार पर केवल एक समष्टि के प्रतिदर्श द्वारा ही एक सामाजिक अथवा शैक्षिक क्षेत्र से संबंधित एक समस्या अथवा स्थिति के विषय में ऐसे प्रतिनिधि आंकड़े (Representative Data) संकलित किए जा सकते हैं, जो कि संबंधित समष्टि के स्वरूप को लगभग पूर्ण रूपेण प्रतिबिम्बित (Reflect) करते हैं। ऐसे वैज्ञानिक प्रतिचयन पर आधारित सर्वेक्षण को ही प्रतिदर्श–सर्वेक्षण पर आधारित सर्वेक्षण अनुसंधान (Survey Research) कहते हैं।

करलिंगर के अनुसार, "सर्वेक्षण अनुसंधान सामाजिक वैज्ञानिक अन्वेषण की वह शाखा है, जिसके अंतर्गत व्यापक तथा कम आकार वाली जनसंख्याओं अथवा समष्टियों का अध्ययन उनमें से चयनित प्रतिदर्शों के आधार पर इस आशय से किया जाता है ताकि उनमें व्याप्त सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक चरों के घटनाक्रमों, विवरणों तथा पारस्परिक अंतःसंबंधों का ज्ञान उपलब्ध हो सके।"

सर्वेक्षण तकनीक के विविध रूप

सर्वेक्षण को विषय–सामग्री, उद्देश्यों व विधियों के आधार पर अलग–अलग तरह से वर्गीकरण किया जा सकता है। विषय–सामग्री के आधार पर मोसर ने सामाजिक सर्वेक्षण का अधोलिखित वर्गीकरण किया है :

1. **जनसंख्यात्मक सर्वेक्षण**– इसके अंतर्गत संबंधित जनसंख्या का अध्ययन विभिन्न विशेषताओं के आधार पर किया जाता है; जैसे–जनसंख्या में पुरुषों व

स्त्रियों की संख्या, विवाहितों व अविवाहितों की संख्या, जन्म–मरण के आंकड़े, शिक्षा, आय व आयु के विभिन्न स्तरों पर संख्या तथा अन्य ऐसी ही पारिवारिक समस्याओं के अध्ययन का समावेश रहता है।

2. **सामाजिक पर्यावरण संबंधी सर्वेक्षण**– इस प्रकार के सर्वेक्षण के अंतर्गत विभिन्न सामाजिक व आर्थिक कारकों के जन–समुदाय पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। इसके अंतर्गत विभिन्न वर्गों की आय का उनके रहन–सहन, शिक्षा व स्वास्थ्य के स्तरों पर प्रभावों आदि का आकलन किया जाता है।
3. **सामाजिक क्रियाओं से संबंधी सर्वेक्षण**– इसमें एक जनसंख्या की उन सामाजिक क्रियाओं के अध्ययन पर बल दिया जाता है, जिनका संबंध व्यक्तियों के मनोरंजन की विधियों, व्यावसायिक कार्य के पश्चात आराम के समय को व्यतीत करने की विधियों, खेल–कूद, रेडियो व संगीत में रुचियों, समाचार–पत्रों व पत्रिकाओं के पढ़ने की आदतों आदि का अध्ययन सम्मिलित रहता है।
4. **विचार तथा अभिवृत्ति संबंधी सर्वेक्षण**– इसके अंतर्गत एक संबंधित जनसंख्या का उसकी सामाजिक समस्याओं, विवाद–विषयों व ऐसे ही महत्वपूर्ण विषयों के प्रति विचारों तथा अभिवृत्तियों का अध्ययन करना होता है; जैसे व्यक्तियों के दहेज–प्रथा, छुआछूत उन्मूलन, परिवार नियोजन, चोरबाजारी व मुनाफाखोरी आदि के प्रति क्या विचार हैं।

सर्वेक्षण तकनीक के सामान्य प्रकार

सर्वेक्षण तकनीक के सामान्य प्रकार निम्न हैं–

1. **सामान्य तथा विशिष्ट सर्वेक्षण**– सामान्य सर्वेक्षण का उद्देश्य सामान्य जानकारी प्राप्त करना होता है जबकि विशिष्ट सर्वेक्षण में उद्देश्य निश्चित व स्पष्ट रहता है। इसमें यथासंभव एक परिकल्पना की रचना का भी समावेश रहता है, जिससे सर्वेक्षण को एक विशिष्ट रूप प्रदान होता है।
2. **नियमित तथा यथावसर सर्वेक्षण**– नियमित से अभिप्राय मुख्य सर्वेक्षण से है तथा यथावसर सर्वेक्षण का अर्थ यहां अग्रगामी अध्ययन (Pilot Study) से है। प्रायः मुख्य सर्वेक्षण से पूर्व अग्रिम अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है, जिससे मुख्य सर्वेक्षण में आने वाली कठिनाइयों व अन्य बाधाओं का पूर्व ज्ञान उपलब्ध हो सके। कभी–कभी प्रश्नावली के प्रश्नों की रचना में बोधगम्यता व भाषा–संबंधी तथ्यों की जानकारी के लिए भी अग्रगामी अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है।
3. **अंतिम तथा आवर्तिपूर्ण सर्वेक्षण**– जिन सर्वेक्षणों के आधार पर प्रायः एक बार के अध्ययन से ही अंतिम निर्णय ले लिया जाता है, उन सर्वेक्षणों को अंतिम सर्वेक्षण कहते हैं। इसके विपरीत, कुछ सर्वेक्षण इस प्रकार के होते हैं, जिनके द्वारा समय–समय पर निरंतर सूचना ज्ञात करनी होती है। ऐसे सर्वेक्षणों को आवर्तिपूर्ण सर्वेक्षण कहा जाता है।
4. **संगणना तथा प्रतिदर्श सर्वेक्षण**– संगणना के अंतर्गत एक समाज की समस्त इकाइयों का अध्ययन किया जाता है परंतु प्रतिदर्श सर्वेक्षण के अंतर्गत संपूर्ण समष्टि में से कुछ गिनी–चुनी इकाइयों के आधार पर ही अध्ययन किया

जाता है। सामाजिक अनुसंधानों में संगणना सर्वेक्षण का उपयोग कम होता जा रहा है और प्रतिदर्श सर्वेक्षण के उपयोग में निरंतर वृद्धि होती जा रही है।

टिप्पणी

विशिष्ट उद्देश्यों के आधार पर सर्वेक्षण के प्रकार

1. **मूल्यांकनात्मक सर्वेक्षण** (Evaluative Survey)–इसके अंतर्गत एक समस्या से संबंधित विभिन्न कारकों व पक्षों का एक साथ मूल्यांकन किया जाता है– जैसे पूर्वाग्रहों (Prejudice) की उत्पत्ति के सापेक्षिक कारणों का अध्ययन।
2. **प्रसंगात्मक सर्वेक्षण** (Thematic Survey)–ऐसे सर्वेक्षण का ध्येय एक समस्या से संबंधित एक विशेष पक्ष का अध्ययन होता है– जैसे शिक्षा के विभिन्न स्तरों का पूर्वाग्रहों की उत्पत्ति पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन। आवश्यक वस्तुओं की स्थिति को जानने हेतु बाजार सर्वेक्षण (Market Survey), स्वास्थ्य संबंधी जानकारी के लिए स्वास्थ्य सर्वेक्षण (Health Survey) आदि।
3. **कार्य–विश्लेषण संबंधी सर्वेक्षण** (Job Analysis Survey)–इस प्रकार के सर्वेक्षण का आशय किसी एक विशेष कार्य के विभिन्न अंगों का विश्लेषण इस आशय से किया जाना है कि उस कार्य के संपन्न करने में जिन आवश्यक तत्वों, अनुभवों, कुशलताओं व योग्यताओं की आवश्यकता पड़ती हो, उनके स्वरूप का ठीक–ठीक आकलन किया जा सके। और इस प्रकार प्राप्त ज्ञान के आधार पर उपयुक्त व्यक्ति का उपयुक्त कार्य के लिए चयन व मार्गदर्शन किया जा सके।
4. **सहकारी सर्वेक्षण** (Co-operative Survey)–जब कभी एक समस्या का अध्ययन विभिन्न स्तरों के व्यक्तियों द्वारा सम्मिलित रूप से किया जाता है, तब ऐसे सर्वेक्षण को संयुक्त सर्वेक्षण (Co-operative Survey) कहा जाता है। औद्योगिक क्षेत्र में जब एक समस्या के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन प्रबंधकों, श्रमिकों व मनोवैज्ञानिकों के संयुक्त व सहकारी प्रयास से किया जाता है, तब इस प्रकार के अध्ययन को सहकारी सर्वेक्षण कहते हैं।
5. **व्याख्यात्मक सर्वेक्षण** (Explanatory Survey)–जब एक सर्वेक्षण का उद्देश्य एक घटना से संबंधित विभिन्न अंगो में साहचर्यात्मक (Associative) संबंध अथवा कार्य कारण (Cause and Effect) के संबंधों का पता लगाना होता है, तब ऐसे सर्वेक्षण को व्याख्यात्मक सर्वेक्षण कहते हैं। जैसे बाल–अपराध के व्यवहार में परिवेश संबंधी अनुशासन के प्रभाव व अभाव का अध्ययन, फेफड़े के कैंसर तथा सिगरेट पीने में साहचर्यात्मक संबंध का अध्ययन।
6. **अभिवृत्ति सर्वेक्षण** (Attitude Survey)–ऐसे सर्वेक्षण का ध्येय किसी एक सामाजिक, शैक्षिक व राजनीतिक समस्या के प्रति जन–समुदाय की प्रतिक्रियाओं, भावनाओं, अविृत्तियों व विचारों का अध्ययन करना होता है। जैसे सह–शिक्षा (Co-education) या फिर, प्रेम विवाह के प्रति अभिभावकों, किशोर बालकों व बालिकाओं की भावनाओं को जानना व देश की विदेश नीति के प्रति जन–साधारण की प्रतिक्रियाओं को जानना आदि।
7. **उपनति सर्वेक्षण** (Trend Survey)–इस प्रकार के सर्वेक्षण का उद्देश्य सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक व सामाजिक आदर्शों, प्रतिमानों, विचारधाराओं के प्रति समय–समय पर होने वाले परिवर्तनों, उनकी दिशाओं

टिप्पणी

(Vectors) अथवा उपनतियों (Trends) का अध्ययन करना होता है। स्पष्टतः ऐसे अध्ययन में परिवर्तन की उपनति जानने के हेतु पहले एक आधार–रेखा (Base line) को ठीक–ठीक निश्चित कर लेना अनिवार्य होता है, जिसके संदर्भ में ही उपनति का अध्ययन किया जाता है। उदाहरणार्थ, जब जन–साधारण की भावनाओं का, परंपरागत सामाजिक संस्थाओं के परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है, तब यहां अध्ययन की आधार–रेखा को स्वतंत्रता प्राप्ति का वर्ष 1947 माना जा सकता है। इसके पश्चात 1977 में जन–साधारण की भावनाओं में अनेक कारणों से परिवर्तन आना सहज रूप से तर्कसंगत जान पड़ता है। ऐसे परिवर्तन की दिशा जानना ही उपनति सर्वेक्षण होता है।

विधियों के उपयोग के आधार पर सर्वेक्षणों के प्रकार

करलिंगर ने सर्वेक्षणों का वर्गीकरण सूचना–संकलन की विधियों के आधार पर निम्न प्रकार से किया है–

1. **व्यक्तिगत साक्षात्कार** (Interview) **सर्वेक्षण**– व्यक्तिगत साक्षात्कार सर्वेक्षण सूचना संकलन की प्रधान विधि है परंतु इस विधि के उपयोग के लिए आवश्यक है कि इसके लिए अनुसूची अथवा प्रश्नावली का प्रयोग किया जाए। उसका निर्माण अत्यधिक धैर्य व सावधानी से किया जाना चाहिए, जिससे संबंधित समस्या के विषय में व्यापक तथा यथार्थ संरचना उपलब्ध हो सके। सर्वेक्षण की यह विधि सापेक्षिकतः अधिक खर्चीली है परंतु यह एक ऐसी विधि है, जिसके माध्यम से अत्यधिक विस्तृत तथा गहन जानकारी उपलब्ध होती है। इसके माध्यम से अध्ययनकर्ता को उत्तरदाता के विषय में केवल अधिक ज्ञान ही प्राप्त नहीं होता बल्कि उसके साथ मैत्री–भावना स्थापित करने में भी विशेष सहायता मिलती है। इसमें अध्ययन–संबंधी समस्या के विषय में और भी गहन जानकारी मिलने की संभावना में वृद्धि होती है और अधिक व्यक्तिगत सूचना ज्ञात करने में सुविधा होती है। व्यक्तिगत साक्षात्कार सर्वेक्षण के माध्यम का एक सबसे बड़ा गुण यह है कि इसके माध्यम से अध्ययनकर्ता को सूचनादाता के विश्वासों, भावों, विचारों व अभिवृत्तियों संबंधी ज्ञानात्मक पदों को ठीक–ठीक समझने में विशेष सुविधा रहती है। साथ ही साथ अध्ययनकर्ता को इस विधि से उत्तरदाता की परीक्षा इच्छाओं, आवश्यकताओं व मान्यताओं को जानने में भी सहायता मिलती है। इन कारणों से अध्ययनकर्ता को व्यक्तिगत साक्षात्कार के उपयोग से गहन अध्ययन से महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।
2. **डाक प्रश्नावली सर्वेक्षण** (Mail Questionnaire)–जब सर्वेक्षण इसके माध्यम से किया जाता है, तब इससे अनुसंधानकर्ता को प्रायः अनेक सुविधाएं सुलभ रहती हैं। जैसे इसके द्वारा दूर–दूर के स्थानों से डाक द्वारा सरलतापूर्वक तथा कम खर्च पर ही आवश्यक सूचना प्राप्त हो सकती है। इसमें व्यक्तिगत साक्षात्कार द्वारा सर्वेक्षण से संबंधित अध्ययनकर्ता के वेतन, दैनिक भत्ते, यात्रा भत्ते व अन्य खर्चों का झंझट नहीं रहता है। इस विधि के अंर्तगत अध्ययनकर्ता को केवल डाक खर्च ही करना पड़ता है। परंतु इस विधि का एक बड़ा दोष यह है कि सभी उत्तरदाता डाक से भेजी गई प्रश्नावली को भर कर वापस नहीं करते। लगभग 50 प्रतिशत या 60 प्रतिशत उत्तरदाता ही ऐसा करते हैं और वापस हुई प्रश्नावलियों में भी कुछ प्रश्नावलियां ऐसी होती हैं, जो कि अपूर्ण रहती हैं और जिनका

अनुसंधान कार्य में कोई उपयोग नहीं हो सकता। समस्त उत्तरदाताओं द्वारा प्रश्नावली को भर कर वापस न करने से अनुसंधान में प्रतिदर्श का स्वरूप दोषपूर्ण व पक्षपातपूर्ण हो जाता है। इसका कारण यह है कि प्रश्नावली उन्हीं व्यक्तियों के पास भेजी जाती है, जिनका चयन यादृच्छिक प्रतिचयन (Random Sampling) के आधार पर किया जाता है। परंतु जब इस प्रकार चयन किए गए सभी व्यक्तियों से उत्तर प्राप्त नहीं होते, तब यादृच्छिक प्रतिचयन का स्वरूप दूषित और अभिनव हो जाता है। इस स्थिति में वह अपना समष्टि (Representative) नहीं रहता और ऐसे दोषपूर्ण प्रतिदर्श पर आधारित निष्कर्ष भी प्रायः दोषपूर्ण ही रहते हैं।

डाक प्रश्नावली के इस दोष को दूर करने के लिए यह आवश्यक होता है कि उत्तर न भेजने वाले व्यक्तियों को अनुवर्ती प्रश्नावलियां (Fallow-up Questionnaires) फिर भेजी जाएं। ऐसी स्थिति में असहयोगी उत्तरदाताओं का यादृच्छिक (Random) आधार पर साक्षात्कार करना भी उपयोगी रहता है और उसके द्वारा इस प्रकार प्राप्त सूचना का विश्लेषण किया जाना चाहिए। इसके असहयोगी उत्तरदाताओं (Non-Respondents) की विशेषताओं के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध हो सकती है।

3. **दूरभाष** (Telephone) **सर्वेक्षण**– इस प्रकार के सर्वेक्षण की विशेषता कम व्यय पर तथा तीव्र गति से सूचना प्राप्ति होती है परंतु साथ ही साथ, ऐसे सर्वेक्षण की परिसीमाएं भी स्पष्ट हैं। इसका उपयोग केवल उस विशेष वर्ग के व्यक्तियों तक ही सीमित रहता है, जिनके यहां टेलीफोन होते हैं। अन्य व्यक्तियों पर इसका उपयोग उपयुक्त नहीं रहता। दूसरे, इस प्रकार के सर्वेक्षण में भी असहयोगी–उत्तरदाताओं की संख्या प्रचुर मात्रा में रहती है। जिन व्यक्तियों से उत्तर प्राप्त भी होते हैं, उनके उत्तरों का स्वरूप बहुत ही सतही (Superficial), साधारण (Simple) और औपचारिक (Formal) ही होता है। ऐसे सर्वेक्षण से प्रायः गहन, विस्तृत तथा आवश्यक जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती।
4. **सामयिक** (Panel) **सर्वेक्षण**– इसका उद्देश्य किसी एक समस्या, विवाद–विषय योजना व सामाजिक परिवर्तन आदि के प्रति व्यक्तियों के समय–समय पर बदलते हुए विचारों, भावों तथा अभिवृत्तियों के स्वरूप का अध्ययन करना होता है। इन विषयों के प्रति व्यक्तियों की प्रतिक्रियाएं प्रायः परिवर्तित होती रहती हैं। अतः उन परिवर्तित भावों व विचारों के अध्ययन के लिए सामयिक (Panel) सर्वेक्षण की आवश्यकता होती है।

सर्वेक्षण द्वारा अनुसंधान के चरण

करलिंगर के अनुसार सर्वेक्षण अनुसंधान के लिए पहले एक निश्चित योजना (Flow-plan) तैयार करनी होती है। इस योजना के अंतर्गत अनुसंधान कार्यक्रम की पूर्ण रूपरेखा (Blue-print) की रचना की जाती है। इस रूपरेखा के निम्नांकित मुख्य 6 चरण होते हैं–

1. सर्वेक्षण अनुसंधान समस्या को निश्चित तथा स्पष्ट रूप प्रदान करना–
   (क) समस्या का स्पष्टीकरण।
   (ख) समस्या के उद्देश्यों का निर्माण।

(ग) समस्या के अध्ययन हेतु उपयुक्त उपकरण का चयन– जैसे साक्षात्कार अनुसूची अथवा डाक–प्रश्नावली आदि का चयन।

(घ) अनुसंधान प्रतिमान की रचना।

2. प्रतिचयन योजना–
   (क) समष्टि के स्वरूप को सीमाबद्ध करना।
   (ख) प्रतिचयन की व्याख्या।
   (ग) यादृच्छिक प्रतिदर्श के उपयोग का महत्व।
3. साक्षात्कार अनुसूची व डाक अनुसूची की रचना
4. आंकड़ों का संकलन–
   (क) घटनास्थल पर अध्ययन करना।
   (ख) क्रमबद्ध रूप से क्षेत्र, कार्यकर्ताओं के अध्ययन की जांच करना।
   (ग) असहयोगी उत्तरदाताओं से संपर्क करना।

5 प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण–
   (क) अनुक्रियाओं का संकेतीकरण।
   (ख) अंतर्वस्तु विश्लेषण।
   (ग) अनुक्रियाओं का सारणीयन।

6. प्रतिवेदन प्रस्तुतीकरण।

सर्वेक्षण के उद्देश्य

1. सामाजिक समस्याओं से संबंधित आवश्यक तथा तर्क–संगत आंकड़ों का संकलन।
2. व्यावहारिक समस्याओं के समाधान के लिए उपयोगी तथ्यों की जानकारी।
3. प्रचलित विवाद–विषयों, संस्थाओं व योजनाओं के प्रति जन–साधारण की भावनाओं तथा अभिवृत्तियों का अध्ययन।
4. विभिन्न सामाजिक घटनाओं में साहचर्यात्मक (Associative) व संभावित कार्य–कारण के संबंधों की जांच।
5. सामाजिक तथ्यों की खोज।
6. परिकल्पना की रचना में सहायता।
7. पूर्व–स्थापित समाजिक तथ्यों का पुष्टीकरण।
8. नियोजन तथा नीति–निर्धारण में मार्ग दर्शन।
9. सामाजिक परिवर्तनों की दिशा–सूचना देना।
10. मुख्य अनुसंधान के लिए अग्रगामी अध्ययन (Pilot Study) की सुविधा प्रदान करना।
11. पूर्व–स्थापित योजनाओं तथा नीतियों का मूल्यांकन।
12. सामाजिक व्याधियों से संबंधित लक्षणों की जांच।
13. सामाजिक घटनाओं के पूर्व–कथन करने की सामान्यतः क्षमता प्रदान करना।

सर्वेक्षण के गुण

1. **व्यापक तथा विस्तृत अध्ययन का अवसर**– सर्वेक्षण द्वारा विशेषतः डाक प्रश्नावली के माध्यम से सामाजिक तथा व्यावहारिक समस्याओं से संबंधित व्यापक तथा अत्यधिक विस्तृत क्षेत्रों का भी सुविधापूर्वक अध्ययन किया जाता है।
2. **प्रत्यक्ष तथा निकट संपर्क का अवसर**– सर्वेक्षण द्वारा अध्ययन के अंतर्गत जब अध्ययनकर्ता घटनास्थल पर प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदाता के संपर्क में आता है, तब उसे उसके मनोभावों, विचारों तथा अध्ययन से संबंधित अन्य तत्वों का निकट से अध्ययन करने का अवसर मिलता है।
3. **परिशुद्ध, वस्तुपरक व विश्वसनीय आंकड़ों का संकलन**– आधुनिक सर्वेक्षण पद्धति एक वैज्ञानिक पद्धति है। अतः आधुनिक सामाजिक सर्वेक्षणों में विशेषतः वैज्ञानिक सर्वेक्षण में अध्ययन का आधार प्रायः यादृच्छिक प्रतिचयन (Random Sampling) रहता है, जिससे समष्टि से संबंधित परिशुद्ध, वस्तुपरक व विश्वसनीय आंकड़ों के संकलन में सहायता मिलती है। यादृच्छिक प्रतिचयन उपयोग में प्राप्त आंकड़ों के प्रतिदर्श की मानक त्रुटि (Standard Error) की भी सरलतापूर्वक गणना की जा सकती है और परिशुद्ध सीमाओं के विषय में विश्वस्त आकलन (Estimate) लगाया जा सकता है। इस प्रकार सर्वेक्षण द्वारा अध्ययन सामाजिक जीवन का एक प्रकार से शुद्ध व सजीव चित्रण प्रस्तुत करता है।
4. **अधिक मितव्ययी तथा अधिक सुविधाजनक अध्ययन**– सर्वेक्षण द्वारा अध्ययन प्रयोगशाला आधारित अध्ययनों से अधिक मितव्ययी (Economical) रहते हैं क्योंकि सर्वेक्षण द्वारा अध्ययन में अधिक सूचना सापेक्षिकतः कम खर्च पर तथा कम समय में उपलब्ध होती है।

सर्वेक्षण द्वारा अध्ययन में दोष

1. सर्वेक्षण द्वारा केवल साधारण व व्यावहारिक समस्याओं का अध्ययन ही उपयुक्त रहता है। गंभीर तथा गहन अध्ययन इसकी परिधि के अंतर्गत नहीं आते।
2. सर्वेक्षण द्वारा अध्ययन का क्षेत्र प्रायः व्यापक व विस्तृत होता है। अतः इसके द्वारा किए गए अध्ययन सूक्ष्म व गहन नहीं होते हैं। सामान्य अध्ययनकर्ता को उत्तरदाता जो उत्तर देते हैं, उनका स्वरूप प्रायः ऊपरी व कृत्रिम ही रहता है।
3. सर्वेक्षण अनुसंधान में यादृच्छिक प्रतिचयन (Random Sampling) के उपयोग से अनेक व्यावहारिक कठिनाइयां सामने आती हैं। विस्तृत क्षेत्रों से चयन की गई इकाइयों से संपर्क करना कभी–कभी अत्यधिक असुविधाजनक और कठिन रहता है।
4. साक्षात्कार का प्रक्रम इतना सरल नहीं होता अतः अपरिचित व विभिन्न मनोवृत्तियों वाले व्यक्ति से संपर्क करने व उनको आवश्यक सूचना देने को अभिप्रेरित करने के लिए क्षेत्र अध्ययनकर्ता में विशेष योग्यता व व्यवहार कुशलता की आवश्यकता होती है। अप्रशिक्षित व अपरिपक्व अध्ययनकर्ताओं के लिए सफल साक्षात्कार करने में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयां आती हैं।

टिप्पणी

5. आधुनिक सर्वेक्षण का स्वरूप तकनीकी आधार पर अत्यधिक विषम होता जा रहा है। साधारण अनुसंधानकर्ता को प्रायः ऐसे तकनीकी ज्ञान के अभाव में प्रत्यक्ष में एक कठिन स्थिति का सामना करना पड़ता है।
6. सर्वेक्षण अनुसंधान में विशेषतः टेलीफोन व साक्षात्कार द्वारा आयोजित अध्ययनों में अध्ययनकर्ता के स्वयं के अपने मतों, पूर्वाग्रहों, विचारों व आस्थाओं के कारण अध्ययन में पक्षपात होने की पर्याप्त संभावना रहती है क्योंकि कभी–कभी साक्षात्कार के अंतर्गत वार्तालाप में अध्ययनकर्ता अपनी मनोभावनाओं से उत्तरदाता के भावों व विचारों को भी अप्रत्यक्ष व अचेतन रूप से प्रभावित करता रहता है।

3.3.1 परिचालन

परिचालन (Operationalization) वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा मात्रात्मक अनुसंधान का संचालन करने वाले शोधकर्ता यह निर्धारित करते हैं कि विधिपूर्वक एक अवधारणा को कैसे मापा जाएगा। इसमें उन विशिष्ट अनुसंधान प्रक्रियाओं की पहचान करना शामिल है जिनका उपयोग हम अपनी अवधारणाओं के बारे में आंकड़े (डेटा) एकत्र करने के लिए करेंगे।

अनुसंधान डिजाइन में, विशेष रूप से मनोविज्ञान, सामाजिक विज्ञान, जीवन विज्ञान और भौतिकी में, परिचालन या संचालन एक घटना (जो प्रत्यक्षतः मापन योग्य नहीं है) की माप को परिभाषित करने की एक प्रक्रिया है, हालांकि इसके अस्तित्व का अन्य घटनाओं की सहायता से (अप्रत्यक्षतः) अनुमान लगाया जाता है। इस प्रकार परिचालन एक अस्पष्ट अवधारणा को परिभाषित करता है ताकि इसको स्पष्ट रूप से अलग, मापने योग्य और अनुभवजन्य अवलोकन द्वारा समझा जा सके। व्यापक अर्थों में, यह एक अवधारणा के विस्तार को परिभाषित करता है – यह वर्णन करता है कि क्या उस अवधारणा का उदाहरण है और क्या नहीं है। उदाहरण के लिए, चिकित्सा में, स्वास्थ्य के विचार को बॉडी मास इंडेक्स या तंबाकू धूम्रपान जैसे एक या अधिक संकेतकों द्वारा परिचालन किया जा सकता है। एक अन्य उदाहरण के रूप में, दृश्य प्रसंस्करण में वातावरण में एक निश्चित वस्तु की उपस्थिति का इसके द्वारा परिवर्तित प्रकाश की विशिष्ट विशेषताओं को मापकर अनुमान लगाया जा सकता है। इन उदाहरणों में, इन घटनाओं का सामान्य रूप से निरीक्षण और मापन मुश्किल है क्योंकि वे अमूर्त हैं (जैसा कि स्वास्थ्य के उदाहरण में) या वे अव्यक्त (छिपी हुई) हैं (जैसा कि वस्तु के उदाहरण में)। परिचालन घटनाओं के अस्तित्व के बारे में और उनमें उपस्थित देखे जाने योग्य और मापने योग्य प्रभावों के माध्यम से कुछ तत्वों के विस्तार के बारे में निष्कर्ष निकालने में सहायता करता है।

कभी–कभी एक ही घटना के लिए कई या प्रतिस्पर्धी वैकल्पिक परिचालन उपलब्ध होते हैं। एक के बाद एक परिचालन के साथ विश्लेषण को दोहराना यह निर्धारित कर सकता है कि विभिन्न परिचालन से परिणाम प्रभावित हैं या नहीं। इसे परीक्षण दृढ़ता (checking robustness) कहा जाता है। यदि परिणाम (काफी) अपरिवर्तित हैं, तो परिणामों को जांच किए गए चरों के कुछ वैकल्पिक संचालन के प्रति दृढ़ कहा जाता है।

परिचालन की अवधारणा को पहली बार ब्रिटिश भौतिक विज्ञानी एन.आर. कैम्पबेल ने 'फिजिक्स द एलिमेंट्स' (कैंब्रिज, 1920) में प्रस्तुत किया था। यह अवधारणा

टिप्पणी

मानवता और सामाजिक विज्ञान में भी उपयोग में आ गई है। यह भौतिकी में तो उपयोग में है ही।

परिचालनात्मीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम सटीक रूप से यह समझ लेते हैं कि किसी अवधारणा को कैसे मापा जाएगा। इसमें उन विशिष्ट अनुसंधान प्रक्रियाओं की पहचान करना शामिल है जिनका उपयोग हम अपनी अवधारणाओं के बारे में डेटा एकत्र करने के लिए करेंगे। इस के लिए आवश्यक है कि हमें पता हो कि वह कौन सी शोध पद्धति अपनानी है या अपनी अवधारणाओं के बारे में जानने के लिए कौनसा तरीका सर्वश्रेष्ठ रहेगा। पहले यह जानना समीचीन होगा कि मोटे तौर पर परिचालनात्मीकरण कैसे काम करता है। फिर हम यह समझ सकते हैं कि जब हम डेटा संग्रह के विशिष्ट तरीकों की जांच करते हैं तो यह प्रक्रिया कैसे काम करती है।

संकेतक

परिचालनात्मीकरण उन विशिष्ट संकेतकों की पहचान करके काम करता है जिन्हें उन विचारों का प्रतिनिधित्व करने के लिए लिया जाएगा जिनका हम अध्ययन करना चाहते हैं। उदाहरण के लिए, यदि, हम पौरुष (मर्दानगी) का अध्ययन करना चाहते हैं, तो इस अवधारणा के लिए संकेतकों में समाज में पुरुषों के लिए निर्धारित कुछ सामाजिक भूमिकाएं शामिल हो सकती हैं जैसे कि अर्जक/पालनकर्ता या पितृत्व। इसलिए अर्जक/पालनकर्ता या पिता बनना किसी व्यक्ति के पौरुष (मर्दानगी) का संकेतक माना जा सकता है। कोई व्यक्ति एक या दोनों भूमिकाओं को किस हद तक पूरा करता है इसे संकेत (या संकेतक) के रूप में समझा जा सकता है कि किस सीमा तक उस व्यक्ति में पौरुष (मर्दानगी) की उपस्थिति देखी जाए।

आइए संकेतकों के एक और उदाहरण को देखें। प्रत्येक दिन, गैलप (सर्वेक्षण संस्था) के शोधकर्ता 1,000 अमेरिकियों का चयन करते हैं, और उनके हालचाल के बारे में सवाल पूछते हैं। हालचाल की स्थिति को मापने के लिए, गैलप ने इन लोगों से निम्नलिखित छह व्यापक क्षेत्रों को कवर करने वाले सवालों के जवाब देने के लिए कहा : शारीरिक स्वास्थ्य, भावनात्मक स्वास्थ्य, कार्य वातावरण, जीवन मूल्यांकन, स्वस्थ व्यवहार और आधारभूत आवश्यकताओं तक पहुंच। गैलप इन छह कारकों का उपयोग उस अवधारणा के संकेतक के रूप में करता है जिसमें लोग वास्तव में रुचि रखते हैं।

संकेतकों की पहचान करना ऊपर वर्णित उदाहरणों की तुलना में और भी सरल हो सकता है। लिंग की अवधारणा के संभावित संकेतक क्या हो सकते हैं? हम में से अधिकांश शायद इस बात से सहमत होंगे कि "महिला" और "पुरुष" दोनों लिंग के उचित संकेतक हैं, और लिंग के समाजशास्त्री इस सूची में "अन्य" का एक अतिरिक्त संकेतक जोड़ सकते हैं। इसी प्रकार राजनीतिक दल एक और अपेक्षाकृत आसान अवधारणा है जिसके लिए संकेतक की पहचान करना आसान है। संयुक्त राज्य अमेरिका में, संभावित संकेतकों में डेमोक्रेट और रिपब्लिकन शामिल हैं और, आपके शोध विषय के आधार पर, आप अतिरिक्त संकेतक जैसे कि इंडिपेंडेंट, ग्रीन या लिबर्टेरियन को भी शामिल कर सकते हैं। आयु और जन्मस्थान अवधारणाओं के अतिरिक्त उदाहरण हैं जिनके लिए संकेतकों की पहचान करना अपेक्षाकृत सरल प्रक्रिया है। आपकी रूचि के अनुरूप क्या अवधारणाएं हैं, और इन अवधारणाओं के संभावित संकेतक क्या हैं?

हमने अभी तक अवधारणाओं और उनके संकेतकों के कुछ उदाहरणों पर विचार किया है, लेकिन यह महत्वपूर्ण है कि हम संकेतकों को चुनने की प्रक्रिया को भी विवेकाधीन या संयोगात्मक नहीं बनाते हैं। संकेतकों की पहचान करने में अत्यधिक संयोगात्मक दृष्टिकोण से बचने का एक तरीका यह है कि अपने विषय के पूर्व सैद्धांतिक और अनुभवजन्य कार्य का अध्ययन किया जाए। सिद्धांत आपको प्रासंगिक अवधारणाओं और संभावित संकेतकों की दिशा में इंगित करेंगे; अनुभवजन्य कार्य से आपको कुछ विशिष्ट उदाहरण प्राप्त होंगे कि किसी क्षेत्र/विषय में महत्वपूर्ण अवधारणाओं को अतीत में कैसे मापा गया है और किस प्रकार के संकेतकों का उपयोग किया गया है। शायद अपने पूर्व के शोधकर्ताओं द्वारा प्रयुक्त संकेतकों का उपयोग करना सही बात हो। दूसरी ओर, शायद आप अतीत में उपयोग किए गए उपायों में कुछ संभावित कमजोरियों को नोटिस करते हैं जिन्हें आप अपने पद्धतिगत दृष्टिकोण से दूर करने में सक्षम होंगे। अपने पद्धतिगत दृष्टिकोण का विचार करते हुए, संकेतकों के बारे में निर्णय लेने के दौरान आप अपनी प्रमुख अवधारणाओं को कैसे मापेंगे, इसके बारे में सोचने के लिए एक और बहुत महत्वपूर्ण बात यह है कि आप डेटा संग्रह के लिए कौनसी रणनीति का चुनाव करते हैं। एक सर्वेक्षण का अर्थ अवधारणाओं को मापने का एक तरीका है, जबकि क्षेत्र अनुसंधान का अर्थ है अवधारणाओं को मापने का एक अलग ही तरीका। आपकी डेटा–कलेक्शन रणनीति आपकी अवधारणाओं को संचालित करने के तरीके को आकार देने में एक प्रमुख भूमिका निभाएगी।

अवधारणाओं को पहचानने से लेकर उन्हें अवधारणा के स्तर तक पहुंचाना और फिर उनका परिचालनात्मीकरण करना बढ़ती विशिष्टता का विषय है। आप एक सामान्य रुचि से आरंभ करते हैं, कुछ अवधारणाओं की पहचान करते हैं जो उस रुचि का अध्ययन करने के लिए आवश्यक हैं, उन अवधारणाओं को परिभाषित करने के लिए काम करते हैं, और फिर सटीक रूप से बताते हैं कि आप उन अवधारणाओं को कैसे मापेंगे। जैसे ही आप सामान्य रूचि के विषय से परिचालन की ओर बढ़ते हैं आपका ध्यान और भी केंद्रित हो जाता है। प्रक्रिया कुछ इस तरह दिखती है जैसाकि निम्न चित्र "मापन की प्रक्रिया" में दर्शाया गया है। यहां, शोधकर्ता व्यापक स्तर के फ़ोकस से अधिक संकीर्ण फ़ोकस की ओर जाता है। आंकड़ों में इटैलिक में दिए गए उदाहरण से संकेत मिलता है कि यह प्रक्रिया उस शोधकर्ता को किस प्रकार से नजर आती है जो लड़कों का पुरुषों (भविष्य में) के रूप में समाजीकरण का अध्ययन करने में रुचि रखता है।

General Interest: →	**Key Concept:** →	**Conceptualization:** →	**Operationalization:**
Boys' socialization	*Masculinity*	*Behaviors prescribed for men in society*	*Chores assigned to male children*

चित्र : "मापन की प्रक्रिया"

एक बिंदु जिसका अभी तक उल्लेख नहीं किया गया है, वह यह कि मापन की प्रक्रिया अक्सर उपर्युक्त चित्र– "मापन की प्रक्रिया" के अनुरूप काम करती है, किन्तु यह जरूरी नहीं कि यह हमेशा उसी तरह से काम करे। क्या हो यदि आपकी रुचि यह जानने में हो कि लोग एक ही अवधारणा को अलग तरह से कैसे परिभाषित करते हैं? यदि ऐसा मामला है, तो आप शायद पहले की तरह मापन प्रक्रिया शुरू करते हैं,

जिसमें कुछ सामान्य विचार होते हैं और उस विषय से संबंधित प्रमुख अवधारणाओं की पहचान होती है। आपके पास उन अवधारणाओं की कुछ कार्यशील परिभाषाएं भी हो सकती हैं जिन्हें आप मापना चाहते हैं। और निश्चित रूप से आपको खोज के उन तरीकों के बारे में भी कुछ जानकारी हो सकती है कि आपकी अवधारणा विभिन्न लोगों द्वारा कैसे परिभाषित की जाती है। लेकिन आपको इतनी स्पष्टता नहीं हो सकती कि डेटा संग्रह की शुरुआत से पहले पहचाने जाने वाले संकेतकों का एक स्पष्ट सेट आपके पास हो, क्यूंकि यदि ऐसा है तो फिर तो आपका उद्देश्य ही निरर्थक हो जायेगा यदि आपका उद्देश्य उन संकेतकों की विविधता की खोज करना है जिन पर लोग भरोसा करते हैं।

आइए एक उदाहरण पर विचार करें जब मापन की प्रक्रिया ऊपर चित्र के अनुसार चित्रित नहीं हो सकती है बल्कि यह इससे अलग होती है। एक शोध में बलात्कार विरोधी आंदोलन में सक्रियता की तुलना में स्तन कैंसर आंदोलन में सक्रियता का अध्ययन हुआ था। इस अध्ययन का एक लक्ष्य यह समझना था कि सामाजिक आंदोलन की भागीदारी के संदर्भ में "राजनीति" का क्या अर्थ है। प्रतिभागियों के अवलोकन द्वारा (यह समझने के लिए कि वे राजनीति से कैसे जुड़े हैं) यह समझने में मदद मिली कि इन समूहों और व्यक्तियों के लिए राजनीति का क्या अर्थ है। उनकी टिप्पणियों से पता चला कि राजनीति सत्ता के बारे में प्रतीत होती हैः "जिसके पास सत्ता है, जो सत्ता चाहता है, और सत्ता कैसे कैसे प्रदान की जाती है, कैसे सत्ता हेतु समझौते होते हैं और किस प्रकार यह छीन ली जाती है।" विशिष्ट गतिविधियां, जैसे कि बलात्कार के विरुद्ध जागरूकता बढ़ाने वाली साइकिल राइड, में राजनीतिक रूप से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने जीवित बचे लोगों को यह देखने के लिए सशक्त बनाया कि वे अकेले नहीं थे, और उन्होंने बचे लोगों को सेवाएं प्रदान करने के लिए क्लीनिक (साइकिल राइड के समय जुटाए गए धन के माध्यम से) को सशक्त बनाया।

कई महीनों तक आंदोलन की कार्रवाई में रत प्रतिभागियों का निरीक्षण करने के बाद, हम यह जानने में सक्षम हुए कि सामाजिक आंदोलनों की रोजमर्रा की कार्रवाई और आंदोलन के प्रतिभागियों के जीवन में राजनीति कैसे संचालित होती है।

हालांकि यह अध्ययन की शुरुआत में स्पष्ट नहीं था, परन्तु अवलोकन ने राजनीति को अभियान और चुनौतीपूर्ण शक्ति के रूप में परिभाषित किया। इस मामले में, वास्तव में पूर्व निर्धारित अवलोकनों ने मुख्य पदों की स्पष्ट परिभाषा प्रदान की, और निश्चित रूप से यह पदों के लिए संकेतकों की पहचान करने से पहले हुआ। मापन प्रक्रिया इसलिए उपर्युक्त चित्र ("मापन की प्रक्रिया") की तुलना में अधिक प्रेरक रूप से काम करती है, इसका मतलब है कि यह हो सकता है।

3.3.2 अनुसंधान अभिकल्प

अनुसंधान अभिकल्प या डिजाइन के माध्यम से अध्ययन के उन उद्देश्यों की पूर्ति होती है जिनसे किसी परिकल्पना (हाइपोथीसिस), नमूने, नमूने के चयन एवं उसके आकार, आंकड़ों के स्रोत, आंकड़ों के विश्लेषण, मूल मान्यताएं एवं उसकी सीमाओं का निर्धारण किया जाता है। क्योंकि अनुसंधान डिजाइन के अध्ययन के अनेक प्रचलित प्रारूप बहुत जटिल प्रकार के होते हैं इसी कारण कोई एक विशेष पद्धति सही उद्देश्य की पूर्ति करने में अक्षम होती है तथापि मिश्रित प्रकार की पद्धति का उपयोग कर लिया जाता है।

अनुसंधान अभिकल्प की प्रकृति और वर्गीकरण

अनुसंधानकर्ताओं ने अनुसंधान डिजाइन की बहुत सी तकनीकों का विकास किया है जिनमें जनसंख्या के एक बहुत छोटे नमूने को लेकर इस प्रकार के प्रयास किए जाते हैं कि संपूर्ण जनसंख्या के परिणामों के आधार पर निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। अतः प्रयास किए जाते हैं कि आंकड़ों के संग्रह से पहले पर्याप्त मात्रा में जनसंख्या के नमूने लेकर उनका मूल्यांकन किया जाए। (Brenda, 1995)

व्यवहार में नमूने विवेक के आधार पर लिए जाते हैं। इच्छुक अनुसंधानकर्ता किसी एक निश्चित जनसंख्या के बड़े नमूने का अध्ययन करते हैं तो मापे गए परिणामों तथा जनसंख्या पर इनके अधिक प्रतिनिधित्व की संभावना बढ़ जाती है।

यदि नमूने का आकार छोटे की अपेक्षा बहुत बड़ा लिया गया है तो इसकी संभावना बहुत अधिक बढ़ जाती है जिससे धनात्मक, रचनात्मक अथवा गलत आंकड़े भी एकत्रित हो सकते हैं। हालांकि जितनी बड़ी जनसंख्या का नमूना होगा अनुसंधान कार्य का मूल्य भी उतना ही अधिक बढ़ जाता है। उपागम का समग्र उद्देश्य अध्ययन को सरल रखना तो होता ही है साथ ही साथ सही एवं प्रामाणिक भी होना चाहिए। वैश्वीकरण के कारण समाज एवं समुदायों में नए प्रकार के संबंधों की तरफ ध्यान आकर्षित हो रहा है जो कि लगभग एक दशक पहले सोचे भी नहीं जा सकते थे वास्तव में हम इन परिवर्तनों के बारे में व्यक्तिगत रूप से बहुत कम जानते हैं। (Trask, 2010)

अनुसंधान डिजाइन परिकल्पना

एक अनुसंधान डिजाइन परिकल्पना (हाइपोथीसिस) जो अनुसंधान कार्य के लिए बनाई जाती है निम्नलिखित बिंदुओं पर केंद्रित होती है–

- वैश्वीकरण के सामाजिक आर्थिक परिदृश्य तथा भारतीय परिवार से संबंधित सिद्धांत विचार–विमर्श।
- इस तथ्य का आकलन करना कि क्या वास्तव में वैश्वीकरण पूंजीवादी व्यवस्था सभी प्रकार के संबंध आर्थिक होते हैं?
- वैश्वीकरण के संबंध में महिला सशक्तिकरण की स्थिति का मूल्यांकन करना।
- परिवार के सदस्य की आमदनी का हिस्सा क्या परिवार में एकत्रित होता है?
- परिवार के विघटन तथा पृथकीकरण के कारणों पर विचार–विमर्श करना विशेषकर वैश्विक आर्थिक परिदृश्य में।
- पहनावे, खानपान, संचार के माध्यम तथा मनोरंजन के साधन में होने वाले परिवर्तन का वैश्वीकरण के परिदृश्य में।
- इस संभावना का अध्ययन करना कि व्यक्ति अपने पैतृक गांव अथवा स्थान पर या अपने रिश्तेदारों के यहां किस आवर्ती से अथवा कितने दिनों के पश्चात आते–जाते हैं?
- बच्चों के विद्यालय में जाने तथा उनकी शिक्षा के प्रति मानव में होने वाले परिवर्तन विशेषकर वैश्वीकरण की अवधारणा के आने के पश्चात का अध्ययन करना।

टिप्पणी

मूल मान्यताएं

अनुसंधान अभिकल्प या डिजाइन के लिए कुछ मान्यताएं भी लेनी होती हैं जैसे कि उदाहरण के लिए यदि वैश्वीकरण के नकारात्मक अथवा सकारात्मक प्रभाव का अध्ययन करना हो तो इसे वैश्वीकरण के सामाजिक एवं आर्थिक परिप्रेक्ष्य में समझना होगा। मूल मान्यताओं में कुछ स्थापित सिद्धांतों का भी उपयोग किया जा सकता है जो कि भारतीय परिवारों के संबंध में पहले से ही परीक्षणीय हो। यह एक ऐसा प्रयास हो सकता है जिसमें परिस्थितियों के आधार पर बदलते हुए सामाजिक परिदृश्य के बारे में आंकड़े संग्रहित करने का प्रयास किया जाता है। क्योंकि अनुसंधान कार्य वास्तव में वास्तविक स्थितियों में किए जाने वाले प्रयोग होते हैं इसी कारण से इस प्रकार के तत्वों का परीक्षण किया जाता है जो अभी तक वास्तव में देखे नहीं गए हैं जैसे कि निर्धनता, महिला सशक्तिकरण, पारिवारिक स्थायित्व, विवाह विच्छेद अथवा पारिवारिक हिंसा इत्यादि। इसी कारण से भी अनुसंधान परिकल्पना को, पहले से ही दिए गए प्रश्नों तथा कुछ नए परीक्षणों के माध्यम से तैयार किया जाता है। मान्यताओं को प्रतिभागियों द्वारा दिए गए उत्तरों के माध्यम से जांचा भी जाता है। कुछ मूल मान्यतायें संचालन अभिकल्प के संदर्भ में किसी नमूने प्रकार के अध्ययन के लिए भी स्थापित की जा सकती हैं, उदाहरण के लिए किसी अनुसंधान कार्य में निम्न प्रकार की मान्यताएं ली जा सकती हैं—

- भारतीय परिवारों में महिला सशक्तिकरण वैश्वीकरण के आर्थिक तत्व के कारण हुआ है।
- प्रौद्योगिकीय विकास जैसे कि सूचना प्रौद्योगिकी के कारण पारिवारिक विघटन तथा पारंपरिक मूल्य का पतन हो रहा है।
- वैश्विक के कारण भारतीय परिवारों में महिला शिशु के प्रति माता—पिता का विचार भी प्रभावित हो रहा है।
- औसत वैवाहिक आयु तथा अंतरजातीय विवाह से संबंधित मान्यताओं में मध्यम वर्ग के परिवारों को वैश्वीकरण ने प्रभावित किया है।
- वैश्वीकरण विशेषकर वर्ष 1990 के पश्चात भारतीय परिवारों में मनोरंजन के साधनों में नए प्रकार के परिवर्तनों को अनुभव किया जा रहा है।
- भारतीय पारिवारिक संस्था संयुक्त संरचना में काफी परिवर्तन हो रहा है परंतु निर्णय लेने के मामले में अभी भी पारंपरिक रूप से महिलाओं को सम्मिलित नहीं किया जा रहा है।
- पारंपरिक भारतीय परिवार जो कि सामंती व्यवस्था के आधार पर बहुत मध्यम गति से परिवर्तित हो रहा था, वैश्वीकरण के कारण इस परिवर्तन की दर में तेजी आई है।
- मध्यम वर्ग तथा निम्न मध्यम वर्ग के परिवारों में शिक्षा का स्तर वैश्वीकरण के कारण बहुत अधिक तेजी से बढ़ा है तथा व्यक्तियों में किसी भी नए तथ्य के ऊपर आंख बंद करके भरोसा करने की परंपरा पर कुठाराघात हुआ है।

खोजपूर्ण अनुसंधान डिजाइन

खोजपूर्ण अनुसंधान डिजाइन कार्य में आंकड़ों का संग्रह करना एक महत्वपूर्ण कार्य होता है। विशेष परिस्थितियों में जब खोजपूर्ण डिजाइन किसी नगर की प्रशासनिक संरचना अथवा जनसंख्या के ऊपर आधारित हो तो यह और भी अधिक जटिल एवं महत्वपूर्ण हो जाता है। सामाजिक अनुसंधानों में बड़े–बड़े शहरों एवं व्यक्तियों के विशाल जनसमूहों पर पड़ने वाले विभिन्न सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है इसलिए विशाल जनसंख्या को छोटे–छोटे उप–समूहों में बांटकर सरलतापूर्वक आंकड़े एकत्रित किए जा सकते हैं। भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले राष्ट्र की संपूर्ण जनसंख्या का अध्ययन एक साथ किया जा सकना लगभग असंभव कार्य है। इसी कारण अनुसंधानकर्ता किसी शहर के कुछ वार्ड अथवा स्थानों को लेकर अपना अनुसंधान कार्य करते हैं जैसे भारतवर्ष में उत्तर प्रदेश प्रांत के कानपुर शहर के कुछ गांवों के ऊपर अनुसंधान कार्य किया जाए तो यह गांव इस अनुसंधान कार्य का 'यूनिवर्स' कहलाएंगे।

आंकड़ों का विश्लेषण एवं संप्रेषण

किसी केस स्टडी के आंकड़ों का आकलन प्रस्तुत करना बहुत कठिन माना जाता है क्योंकि इनके लिए उद्देश्य को बहुत स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया गया होता है (Eisenhardt, 1989; Yin, 1991)। किसी विषयवस्तु के बारे में साधारण व्याख्या प्रस्तुत करना एवं व्यवस्थित रूप से इसका विश्लेषण प्रस्तुत करना अनुसंधान कार्य की विषयात्मक शक्ति होती है।

अनुसंधानकर्ता द्वारा संग्रहित किए हुए आंकड़ों का भली–भांति एवं व्यवस्थापित रूप से आकलन एवं इनका संप्रेषण करना महत्वपूर्ण कार्य होता है।

व्याख्यात्मक अनुसंधान अभिकल्प

भारत जैसे विशाल राष्ट्र के समाज का अध्ययन वास्तव में एक जटिल लक्ष्य है। अनेक अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि असंयुक्त क्षेत्रीय अर्थशास्त्रीय मॉडलिंग के लिए विशाल क्षेत्रों में समस्याएं होती हैं। (B. Bhattacharya, Bhanumurthy, Kar, & Sakthivel, 2004)

अनुभव प्राप्त करने के लिए व्याख्यात्मक अनुसंधान डिजाइन आवश्यक है जोकि संबंधित अनुसंधान को परिभाषित करने के साथ–साथ तत्संबंधी परिकल्पना के निर्माण करने में भी सहायक होता है। (Claire Selltiz) ऐसा कोई विषय अथवा वस्तु नहीं है जो कि उत्तरोत्तर प्रेक्षणों में गुण अथवा संख्या के आधार पर पृथक नहीं होता है। (Mueller and Shehuesler, 1961)

वैज्ञानिक अनुसंधान का मूल है कि– (i) यदि किसी का अस्तित्व है तो यह अस्तित्व किसी एक मात्रा में होता है तथा जिसकी कम या अधिक आवृत्ति भी होती है, और (ii) हम उसी का मापन कर सकते हैं जिसका वास्तव में अस्तित्व होता है। (Babbie, 1992)

अनुसंधान कार्य में उपयोग की गई पद्धति में निम्नलिखित अवधारणाओं को सम्मिलित किया जाता है जो कि अध्ययन के आर्थिक एवं सामाजिक पक्ष से संबंधित होती हैं–

टिप्पणी

1. सिद्धांत अवधारणा अथवा विचारों का संग्रह करना,
2. विभिन्न उपागमों का तुलनात्मक अध्ययन,
3. आंकड़ों का संग्रह,
4. संग्रहित आंकड़ों का मूल्यांकन एवं विश्लेषण और
5. परिणाम एवं निष्कर्ष।

इस संदर्भ में उपरोक्त तथ्य, अनुसंधान के सिद्धांतों तथा दृष्टिकोणों का निर्माण करते हैं। यह विचारधारा इस मान्यता पर आधारित है कि सत्य की प्रकृति तथा सत्य की प्रकृति को जानने की विधि समस्यात्मक है क्योंकि सत्य बनाया जाता है अथवा उसका पुनर्निरीक्षण, सामंजस्य पुनर्परिभाषित करने से निर्माण किया जाता है। हालांकि यह वैज्ञानिक समुदाय के परिप्रेक्ष्य से मेल नहीं खाता है जोकि यह प्रयास करता है कि अनुसंधान के परिणामों को सामाजिक तथा मान्यताओं एवं मान्यताओं की व्यवस्था से मेल कराने का प्रयत्न करता है।

गुणात्मक अनुसंधान अभिकल्प

गुणात्मक अनुसंधान डिजाइन कार्य में भी कई अध्ययन सम्मिलित होते हैं जिनमें अनेक प्रकार की प्रयोगात्मक सामग्री, केस स्टडी, व्यक्तिगत अनुभव, जीवनवृत्त, साक्षात्कार, परीक्षण, अध्ययन–सामग्री इत्यादि के माध्यम से एकत्रित की जाती है। परिणामस्वरुप गुणात्मक डिजाइन में अंतर्निहित विधियों के द्वारा प्रयोग करते हुए विषय–सामग्री एकत्रित की जाती है (Denzin and Lincoln, 1983)। इस प्रकार के मापन को बहुत ही सावधानीपूर्वक तथा व्यवस्थित परीक्षण हो एवं एक विशिष्ट प्रक्रम के माध्यम से जो कि वास्तविक जीवन की दशाओं को व्याख्या करने का कार्य करते हैं तथा उसी से संबंधित चरणों के रूप में निर्मित होते हैं। कुछ सूचक इस प्रकार के भी उपयोगी होते हैं जोकि प्रतिभागियों एवं घरेलू स्तुतियों अथवा इससे संबंधित विभिन्न प्रकार की संरचना को इंगित करने का कार्य करते हैं।

प्रयोगात्मक अनुसंधान अभिकल्प

अनुसंधानकर्ता अनुसंधान समस्या के प्रकार का निर्माण कार्य करता है तथा इन मान्यताओं को प्रयोगात्मक आंकड़ों के माध्यम से स्थापित करने का प्रयत्न भी किया जाता है।

आंकड़ों का संग्रह

अनेक अनुसंधानकर्ताओं ने प्रयोगात्मक अनुसंधान पर बल दिया है। प्रयोगात्मक अनुसंधान डिजाइन कार्य में आंकड़ों का संग्रह फील्ड सर्वे के माध्यम से किया जाता है। उदाहरण के लिए उपरोक्त प्रकार की मान्यताओं के लिए कोई अनुसंधानकर्ता प्राथमिक फील्ड अध्ययन सर्वे के माध्यम से आंकड़ों का संग्रह करता है जिसमें साक्षात्कार प्रमुख विधि के तौर पर माना जाता है। साक्षात्कार में प्रतिभागियों से वैश्वीकरण तथा उससे पूर्व के पड़ने वाले प्रभाव के बारे में पूछकर आंकड़ों को एकत्रित किया जाता है तथा इन आंकड़ों के आधार पर मान्यताओं का सत्यापन अथवा इन मान्यताओं का विरोध भी हो सकता है। अधिकांश प्रश्नों में प्रतिभागियों की सामाजिक

एवं आर्थिक स्थिति के संबंध में भी प्रश्न पूछे जाते हैं जिससे कि पहले की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के बारे में पता चल सके।

साक्षात्कार के माध्यम से जो आंकड़े एकत्रित किए जाते हैं उन्हें तुरंत ही नोट्स के रूप में तथा कच्चे आंकड़ों के रूप में संकलित कर लिया जाता है ऐसा उसी स्थिति में किया जाता है जब इंटरव्यू को रिकॉर्ड नहीं किया जा रहा होता।

फील्ड में एकत्रित किए गए इन आंकड़ों का निरंतर इस आधार पर परीक्षण भी किया जाता है कि कहीं वास्तव में तथ्यों के मध्य कोई अंतराल तो नहीं है।

उपकरण तथा तकनीक

अनुसंधान कार्य में उपयोग में लाए गए उपकरण तथा तकनीक भिन्न हो सकती है तथा इनमें व्यक्तिगत इंटरव्यू से लेकर इंटरनेट अनुसंधान तक भी सम्मिलित हो सकता है। प्राथमिक आंकड़े वह वास्तविक आंकड़े होते हैं जो कि विशेष अनुसंधान उद्देश्यों के लिए एकत्रित किए जाते हैं (Das, 1996)। प्राथमिक आंकड़ों के एकत्रीकरण के लिए परीक्षण, फोकस समूह के साक्षात्कार, संरचनात्मक, एवं साक्षात्कार अथवा दोनों का मिश्रित स्वरूप प्रयोग में लाया जाता है। (Lal, 2000)

नमूने लेना

तथ्य को ज्ञात करने के लिए नमूने लेना एक विश्वसनीय तथा व्यवस्थित वैज्ञानिक यंत्र के रूप में माना जाता है। सैंपल अथवा नमूना लेने के माध्यम से आंकड़ों को सहेजना अत्यंत सरल कार्य है। नमूने लेने की इस विधि में किसी निश्चित वस्तु अथवा जनसंख्या के संबंध में सूचना एकत्रित की जाती है जिसके निम्नलिखित तीन तत्व हो सकते हैं–

- नमूने का चयन (Selection of the Sample),
- सूचना को एकत्र करना (Collection of the Information) एवं
- जनसंख्या के संबंध में इंटरफेस बनाना (Making an Interface about the population)।

रैंडम सैंपल अथवा नमूना लेना एक ऐसी विधि है जिसमें किसी एक इकाई के किसी भी अंग को लेने की समान रूप से संभावना विद्यमान रहती है। उदाहरण के लिए पूरे शहर की जनसंख्या का अध्ययन करने के लिए शहर के किसी मुहल्ले अथवा वार्ड को अध्ययन के लिए चयनित किया जा सकता है तथा ऐसी मान्यता बना ली जाती है कि इस मोहल्ले अथवा वार्ड के द्वारा जनसंख्या के अधिकाधिक आकार का प्रतिनिधित्व हो सकता है। इसी प्रकार से यदि किसी परिवार के बारे में आंकड़े और सूचनाएं परिवार के मुखिया से साक्षात्कार कर तथा ऐसी मान्यता स्थापित कर ली जाती है कि जो सूचना एवं आंकड़े परिवार का मुखिया देगा परिवार के बारे में वही सत्य एवं सही जानकारियां हैं। नमूना लेने में यह भी प्रयत्न किया जाता है कि यह यथासंभव छोटे आकार का हो तथा अधिकाधिक जनसंख्या का प्रतिनिधित्व प्रस्तुत करे, उदाहरण के लिए कोई एक अनुसंधानकर्ता निम्नलिखित रूप से प्रतिभागियों के बारे में नमूने का विकल्प प्रयोग करता है–

तालिका : सैंपल अभिकल्प

S.No.	Description	Number
1	Total households contacted	963
2	Total number of rejection	152
3	Total number of non-residents	43
4	Total doubtful households	19
5	Total number of sample households	749

टिप्पणी

इस प्रकार से एक अनुसंधानकर्ता किसी शहर से 749 घरों को अपने अध्ययन के लिए चुनता है जिसका आधार उपर्युक्त रैंडम सैंपलिंग विधि है तथा इस सैंपल विधि में अनुसंधानकर्ता लगभग प्रत्येक समूह से प्रतिभागियों को चयन करता है।

तालिका : वर्गानुसार आनुपातिक नमूना चयन

S.No.	Description of the Social Class	Number
1	Upper class	58
2	Middle class	140
3	Lower class	62
4	Total households	260

उपरोक्त प्रकार के नमूने का चयन यह प्रदर्शित करता है कि अनुसंधानकर्ता ने प्रतिभागियों के प्रत्येक वर्ग को अपने नमूने में सम्मिलित किया है तथा इस कारण से प्रतिभागियों द्वारा दिए गए प्रश्नों के उत्तर पर ऐसी मान्यता स्थापित की जा सकती है कि यह संपूर्ण समुदाय अथवा उस क्षेत्र विशेष का प्रतिनिधित्व प्रस्तुत करने में सक्षम है।

3.3.3 निदर्शन रचना

मिल्ड्रेड पार्टिन के मत में 1900 के पूर्व में निदर्शन के उपयोग के लिखित प्रमाण बहुत कम संख्या में उपलब्ध होते हैं। 1920 के उपरांत ही निदर्शन का प्रयोग आरंभ हुआ माना जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका की जनगणना ब्यूरो ने इसका सर्वप्रथम प्रयोग 1940 में किया है।

ए. एल. बाऊले ने लंदन में विभिन्न समूहों में से कुछ परिवारों का चयन करके उस अध्ययन के आधार पर जो निष्कर्ष प्रस्तुत किए वे बहुत बड़ी मात्रा में उस स्थान की संपूर्ण जनसंख्या की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करते थे। बाद में आगे चलकर चार्ल्स बूथ एक राउन्ट्री ने उसी समुदाय का व्यापक अध्ययन कर जो निष्कर्ष प्रस्तुत किए वे बहुत कुछ बाऊले के निष्कर्षों के समान थे, अतः सामाजिक विज्ञानों में बाऊले द्वारा प्रयुक्त निदर्शन प्रणाली की उपयोगिता इस बात को लेकर स्थापित हो गई कि निदर्शन

के द्वारा न केवल बहुत अधिक धन व समय की बचत की जा सकती है, बल्कि अध्ययन के निष्कर्षों में विश्वसनीयता व उपयोगिता में भी कोई अंतर नहीं पड़ता, अतः निदर्शन पद्धति क्रमशः समस्त विज्ञानों में अत्यन्त लोकप्रिय होती गई।

निदर्शन : अर्थ एवं परिभाषाएं

निदर्शन पद्धति का अर्थ जानने से पूर्व आवश्यक है कि हम निदर्शन का अर्थ जान लें। मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि समग्र में से चुने गए ऐसे "कुछ" को जोकि समग्र का उचित प्रतिनिधित्व करता है, निदर्शन कहते हैं। इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि निदर्शन किसी भी चीज या समूह का संपूर्ण भाग या समस्त इकाइयां नहीं होती हैं अपितु उस समग्र का एक छोटा भाग या केवल कुछ इकाइयां ही होती हैं, पर समग्र का कोई भी अंश इकाई निदर्शन नहीं है जब तक कि ये कुछ इकाइयां समग्र की आधारभूत विशेषताओं का उचित प्रतिनिधित्व न करें। इस अर्थ में समग्र का उचित प्रतिनिधित्व करने वाली कुछ इकाइयों को निदर्शन कहा जाता है।

गुडे एवं हाट ने लिखा है, "एक निदर्शन जैसा कि नाम से स्पष्ट है किसी विशाल संपूर्ण का छोटा प्रतिनिधि है।"

पी.वी. यंग के अनुसार, "एक सांख्यिकीय निदर्शन उस संपूर्ण समूह अथवा योग का एक अति लघुचित्र है जिसमें से कि निदर्शन लिया गया है।"

फ्रैंक याटन के शब्दों में, "निदर्शन शब्द का प्रयोग केवल किसी समग्र चीज की इकाइयों के एक सेट या भाग के लिए किया जाना चाहिए जिसे इस विश्वास के साथ चुना गया है कि वह समग्र का प्रतिनिधित्व करेगा।"

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि निदर्शन पद्धति अनुसंधान की वह पद्धति है जिसमें अनुसंधान विषय के अंतर्गत सम्मिलित संपूर्ण सामग्री या इकाइयों में से अनुसंधानकर्ता सावधानीपूर्वक कुछ ऐसी इकाइयों को चुन लेता है जो कि संपूर्ण की आधारभूत विशेषताओं का उचित प्रतिनिधित्व कर सकें।

वाई.डी. केसकर (Y.D. Keskar) के अनुसार, "निदर्शनात्मक अनुसंधान में हम समग्र समूह के संबंध में निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न करते हैं यद्यपि संकलित तथ्य जिसके आधार पर निष्कर्ष निकाले गए हैं समग्र के केवल एक भाग से संबंधित होता है।"

बोगार्डस (Bogardus) के शब्दों में, "निदर्शन प्रविधि एक पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार इकाइयों के एक समूह में से एक निश्चित प्रतिशत का चुनाव है।"

फेयरचाइल्ड (Fairchild) ने अपनी डिक्शनरी ऑफ सोशियोलॉजी में मिलड्रेड पार्टन के शब्दों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "एक निश्चित संख्या में व्यक्तियों, मामलों या निरीक्षणों को एक समग्र विशेष में से निकालने की प्रक्रिया या पद्धति अथवा अध्ययन के हेतु एक समग्र समूह में से एक भाग को चुनना निदर्शन पद्धति कहलाती है।"

जैसा कि पहले ही लिखा जा चुका है निदर्शन–प्रविधि का केवल वैज्ञानिक अनुसंधान में ही नहीं बल्कि रोज के व्यावहारिक जीवन में भी प्रयोग किया जाता है। टिप्पेट (Tippett) ने ठीक ही लिखा है कि "बड़े समूह में से एक छोटा भाग लेने की विधि सामान्यतया भली प्रकार समझी और विस्तृत रूप में काम में लाई जाती है। गृहस्वामिनी दुकान पर पनीर खरीदने से पहले उसका एक टुकड़ा नमूने के रूप में लेगी और एक

रुई धुनने वाला व्यक्ति केवल रुई के टुकड़े को देखकर ही उस रुई की पूरी गांठ को खरीद लेगा।"

निदर्शन के आधार

निदर्शन पद्धति का अर्थ जान लेने के पश्चात हमारे मन में यह प्रश्न उठता है कि संपूर्ण में से केवल कुछ इकाइयों को चुनकर उसी को संपूर्ण का प्रतिनिधि किस प्रकार मान लिया जाए। इस के पक्ष में हम निम्नलिखित तर्क दे सकते हैं–

1. समष्टि की एकरूपता (Homogeneity of Universe): श्री लुंडबर्ग (Lundberg) ने लिखा है कि यदि तथ्यों में अत्यधिक एकरूपता पाई जाती है अर्थात संपूर्ण तथ्यों की विभिन्न इकाइयों में अंतर बहुत कम है तो संपूर्ण में से कुछ या कोई इकाई समग्र का उचित प्रतिनिधित्व करेगी। इसलिए यदि हमारा अध्ययन विषय इस प्रकार का है कि उसकी विभिन्न इकाइयों को चुनेंगे वे प्रतिनिधित्वपूर्ण होंगी और हमारा निदर्शन यथार्थ होगा। भौतिक चीजों में इस प्रकार की समानता बहुत कुछ उत्पादन विधि में समानता होने के कारण देखने को मिलती है। उदाहरणार्थ, कपड़े का एक छोटा–टुकड़ा एक मिल में उत्पादित उस प्रकार के समस्त कपड़ों का उचित प्रतिनिधित्व कर सकता है अथवा घर में पकी हुई सब्जी की एक प्लेट संपूर्ण सब्जी की उत्तमता या निकृष्टता की परिचायक हो सकती है परंतु सामाजिक घटनाओं का अध्ययन–विषयों में इस प्रकार की समानताओं की आशा नहीं की जा सकती।

स्टीफॉन (Stephan) ने लिखा है कि आधुनिक बड़े समाज में विभिन्न प्रजाति, राष्ट्र, धर्म, आर्थिक स्थिति, पेशा, प्रथा–परंपरा, मनोवृत्तियों तथा रुचियों के लोग इतना अधिक घुले–मिले रहते हैं कि उनमें समानता का दर्शन नहीं होता है। इसके विपरीत जीवन के प्रत्येक पक्ष में विविधताओं का ही बोलबाला होता है और एक–दूसरे को अलग करना कठिन होता है। इस प्रकार के स्पष्ट विभाजनों के प्रभाव से ऐसे निदर्शन का चुनना जटिल हो जाता है जो कि समुदाय में विद्यमान समस्त विविधिताओं का प्रतिनिधित्व कर सकें। अतः निदर्शन के चुनाव में हमें अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए ताकि इन विविधताआं में अंतर्निहित एकरूपता को ढूंढ़ा जा सके और हमारा निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण हो। निदर्शन–प्रविधि इस मान्यता पर आधारित है कि विविधताओं के बीच समानताओं को भी सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में खोजा जा सकता है।

2. प्रतिनिधि चुनाव की संभावना (Possibility of Representative Selection)– निदर्शन–प्रविधि में यह स्वीकार किया जाता है कि संपूर्ण में से कुछ इकाइयों को इस प्रकार चुना जा सकता है कि वे संपूर्ण का प्रतिनिधित्व कर सकें पर इसके लिए कुछ नियमों का पालन आवश्यक है। उदाहरणार्थ, किसी विशाल समूह से केवल एक या दो इकाइयों के चुन लेने से ही उस समूह के बारे में हमारा निष्कर्ष प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं होगा। निदर्शनों की संख्या समूह की विशालता के अनुसार होनी चाहिए। उसी प्रकार यह भी आवश्यक है कि किसी विशेष गुण या गुणसमूह के आधार पर संपूर्ण समूह को कछ निश्चित वर्गों में विभाजित कर लिया जाए और प्रत्येक वर्ग की कुछ इकाइयों को चुन लिया जाए तो इस प्रकार चुनी हुई सभी इकाइयों के लिए समग्र समूह की आधारभूत विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करना संभव होगा।

3. लगभग सही होना (Approximate Accuracy)– कोई भी निदर्शन चाहे वह कितनी ही सावधानी से क्यों न चुना गया हो, संपूर्ण का शतप्रतिशत प्रतिनिधित्व नहीं

कर सकता। इसलिए निदर्शन में परिपूर्ण परिशुद्धता लाने का प्रयत्न करना व्यर्थ है। प्रयत्न यह होना चाहिए कि निदर्शन यथासंभव प्रतिनिधित्वपूर्ण हो। यह यथासंभव प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन वास्तविक स्थिति का लगभग एक चित्र होगा और हमारा निष्कर्ष भी लगभग ठीक होगा। सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में हमें इस लगभग निष्कर्ष से ही संतुष्ट रहना पड़ता है क्योंकि व्यवहारतः शतप्रतिशत सही निष्कर्ष संभव नहीं है।

उदाहरणार्थ, यदि किसी कॉलेज के 200 विद्यार्थियों का अध्ययन निदर्शन–प्रविधि द्वारा किया जाए और पता चले कि 7 प्रतिशत विद्यार्थी क्लास से भाग जाने के आदी हैं, जबकि उस कॉलेज के समस्त विद्यार्थियों की जांच करके यदि यह पता चले कि यह प्रतिशत 6.4 अथवा 7.3 है तो हमारे निष्कर्षों पर कोई बहुत बड़ा प्रभाव नहीं पड़ता है इस प्रकार थोड़े–बहुत अंतर के लिए प्रत्येक समाज–वैज्ञानिक को प्रस्तुत रहते हुए भी निदर्शन–प्रविधि को अपनाना चाहिए।

निदर्शन : अवधारणाएं एवं विशेषताएं

निदर्शन के बारे में विस्तृत अध्ययन से पूर्व यह अधिक उचित होगा कि निदर्शन से संबंधित कुछ प्रमुख अवधारणाओं की विवेचना की जाए जो कि निम्नांकित हैं–

1. इकाई (Unit)
2. समग्र या समष्टि (Universe)
3. निदर्शन इकाई (Sampling Unit)
4. निदर्शन संरचना (Sampling Frame)
5. स्तर (Strata)
6. साधन–सूची (Source List)

1. इकाई (Unit)– एक प्रारंभिक इकाई अथवा केवल एक इकाई तत्त्व अथवा तत्त्वों का एक ऐसा समूह है जिस पर पर्यवेक्षण किए जा सकते हैं अथवा जिससे एक सुपरिभाषित सांख्यिकीय कार्यरीति के अनुसार अपेक्षित सांख्यिकीय सूचना प्राप्त की जा सकती है। इकाइयों के उदाहरण व्यक्ति, परिवार, फर्म, कारखाने इत्यादि हैं। एक सूचना प्रदान करने वाली इकाई वह इकाई है जो वास्तव में आवश्यक सांख्यिकीय सूचना प्रदान करती है अथवा जिससे सूचना सरलतापूर्वक प्राप्त की जा सकती है। सूचना प्रदान करने वाली यह इकाई एक अकेली प्रारंभिक इकाई अथवा अनेक प्रारंभिक इकाइयों का समूह हो सकती है। उदाहरण के लिए, परिवार का मुखिया। एक विश्लेषण की इकाई वह इकाई है जिसका प्रयोग सारणीकरण के स्तर पर किया जाता है। यह ध्यान रहे कि सूचना प्रदान करने वाली इकाई तथा विश्लेषण की इकाई भिन्न–भिन्न हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, सूचना प्रदान करने वाली इकाई के रूप में परिवार का मुखिया हो सकता है तथा विश्लेषण की इकाई के रूप में परिवार अथवा परिवार का कोई व्यक्ति हो सकता है। राजनीतिक समग्र की इकाइयां अवधारणाओं के द्वारा निर्मित होती हैं तथा अमूर्त होती हैं। उन्हें केवल कतिपय चिह्नों, प्रतीकों या संकेतकों द्वारा ही पहचाना जाता है। जैसे, भ्रष्टाचार, राष्ट्रवादी, गांधीवाद, आदि को विशेष संकेतकों अथवा व्यवहार के आधार पर ही जाना जा सकता है। पार्टन (Parten) ने लिखा है कि "सर्वेक्षक यह विचार संबंधी भूल कर बैठते हैं कि मनुष्यों के समग्र का अध्ययन करते समय केवल व्यक्ति (Individual) ही उनके समग्र की इकाई बन सकते हैं। वास्तव में बहुत कम शोध–अध्ययनों में व्यक्ति को अध्ययन की इकाई बनाया जाता है।" राजनीतिक शोध में व्यक्ति के

टिप्पणी

मतदाता, दलीय सदस्यता, राजनेता, अनुयायी आदि पक्ष शोध–समग्र की इकाई बनते हैं। समग्र की अनेक इकाइयां हो सकती हैं जैसे-

- भौगेलिक इकाइयां (Geographical Units): राज्य, जिला, ग्राम, नगर, वार्ड, गली, तहसील आदि।
- राजनीतिक इकाइयां (Political Units): राजनीतिक दल, राज्य, जिला परिषद, पंचायत समिति, पंचायत, दबाव समूह, विधानसभा, संसदीय समितियां, राष्ट्र, राष्ट्रीयता–समूह, राजनीतिक अभिजन, विरोध पक्ष, मतदातावर्ग आदि।
- प्रशासनिक इकाइयां (Administrative Units): विभाग, कर्मचारी सघं, निगम, अधीनस्थ कार्यालय, नौकरशाह, प्रशासनिक निर्णय, प्रशासनिक कार्यविधि, स्वविवेकीय क्षेत्र, भर्ती आयोग, प्रशासनिक अधिकरण, सचिवालय आदि।
- सामाजिक इकाइयां (Social Units): परिवार, जाति, क्लब, चर्च, संस्कृति, धर्म, समाजीकरण आदि।
- आर्थिक इकाइयां (Economic Unit): बजट, कर, आय, राष्ट्रीय, अथवा व्यक्तिगत आय, उत्पादन, विनिमय, बैंक, मंदी, उद्योग आदि।

6. व्यक्ति संबंधी इकाइयां (Individual Unit): संपूर्ण व्यक्ति, पुरुष, स्त्री, बालक, युवा, हिंदू, मुस्लिम, ग्रामीण, शहरी, नागरिक, तस्कर, व्यापारी, मजदूर आदि। निदर्शन की इकाई कोई भी क्यों न हो वह स्पष्ट, सुनिश्चित एवं भ्रमरहित होनी चाहिए।

   वह प्रामाणिक तथा विषय के अनुकूल होनी चाहिए। सबसे बढ़कर वह अवलोकनीय, संपर्क योग्य अथवा उपयोगी होनी चाहिए।

2. समग्र या समष्टि (Universe)–समग्र या समष्टि उस पूरे समूह को जिसके विषय में हम ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं कहा जाता है। एफ.एम. कर्लिजर ने लिखा है, 'समग्र' शब्द का अर्थ व्यक्तियों, घटनाओं अथवा वस्तुओं के सुपरिभाषित वर्ग के सदस्यों से है। जहोदा ने लिखा है कि, "समग्र उन सभी व्यक्तियों का योग है जो विशिष्टता के एक समान स्तर को बताते हैं। "एम.एन.मूर्ति ने 'सैम्पलिंग थ्योरी एण्ड मैथ्ड्स' में कहा है कि, "काल के एक विशिष्ट बिंदु अथवा अवधि पर एक दिए हुए क्षेत्र में एक विशिष्ट प्रकार की सभी इकाइयों के संग्रह को समग्र कहा जाता है।"

'समग्र' शब्द का प्रयोग, समय के विभिन्न बिंदुओं का एक विशिष्ट क्षेत्र में एक इकाई अथवा इकाइयों के समूह से संबंधित पर्यवेक्षणों के संग्रह के लिए भी किया जाता है। इस समग्र तथा उसकी इकाइयों को चुनना वैज्ञानिक शोध की दृष्टि से बहुत महत्व रखता है। शोध–कर्ता जितनी अधिक स्पष्टता से अपने समग्र को समझेगा तथा उसकी इकाइयों को सावधानीपूर्वक चुनेगा, उतनी ही अधिक मात्रा में, उसका शोध सफल तथा दूसरों द्वारा सत्यापन–योग्य माना जाएगा। वस्तुतः शोधक 'संपूर्ण' समूह का अध्ययन न करके उसके किसी 'पक्ष' या 'सारभाग' का अध्ययन करता है। उसे यह बता देना चाहिए कि वह किस पक्ष या सारभाग का अध्ययन नहीं कर रहा और उसके किस पक्ष या सारभाग का अध्ययन कर रहा है। इस स्पष्टीकरण की दृष्टि से समग्र या समष्टि के दो प्रकार होते हैं–

- विशिष्ट, समग्र (Specific Universe); तथा
- सामान्य समग्र (General Universe)

विशेष या कार्यभार समग्र वह विशिष्ट मूर्त तथा स्पष्ट व्यवस्था होती है जिसमें से शोधक अपने सूचनादाताओं का चयन करता है। इस व्यवस्था को सांख्यिकी में समष्टि या समग्र कहा जाता है। शोधकर्ता प्रायः इस समग्र की सीमाओं तक ही सीमित रहकर कार्य करते हैं किंतु उनकी इच्छा यह होती है कि उसके निष्कर्ष उस विशेष व्यवस्था या समूह पर ही लागू न रहकर अन्य सभी समान व्यवस्थाओं एवं समूहों पर लागू हों। उसके सामान्यीकरण उस समूह से संबद्ध होते हुए भी स्थान और समय से आबद्ध न रहें। इन समस्त समूहों या व्यवस्थाओं के अमूर्त समग्र को जिस पर शोधक अपने निष्कर्ष लागू करना चाहता है, 'सामान्य समग्र' कहा जाता है। जैसे, यदि किसी ने राजस्व मंडल, राजस्थान, का अध्ययन किया है तो वह यह चाहता है कि उसके निष्कर्शो को सभी राजस्व मंडलों पर लागू कर दिया जाए। सेल्जनिक तथा गोल्डनर ने भी ऐसा ही किया है। शोधकर्ता अपने शोध–निष्कर्षों को अपने समकालीन विशेष समग्रों पर ही लागू करके संतुष्ट नहीं होता, अपितु यह भी चाहता है कि उन्हें अन्य संस्कृतियों वाले देशों के समग्रों पर भी लागू किया जाए। ये सभी शोधक विभिन्न समग्रों में से अपने समग्र को 'प्रतिनिधित्वपूर्ण' मानकर अध्ययन नहीं करते, किंतु यह चाहते हैं कि उनके समग्र संबंधी निष्कर्ष सभी समग्रों की 'व्याख्या' (Explain) कर सकें। इसे 'एक महत्वाकांक्षी सैद्धांतिक कूद' कहा जा सकता है, जिसके प्रतिनिधित्वपूर्ण होने की कोई व्यवस्था नहीं की जाती। अपने विशिष्ट समग्र से सामान्य समग्र तक उछाल मारने के अनेक कारक होते हैं। (1) विभिन्न समग्रों के मध्य मौलिक एकरूपता मान बैठना (2) उनकी व्यापक सैद्धांतिक अवधारणाएं, भूल जाना। सभी इस भूल को दोहराते हैं।

• **विशिष्ट समग्र का चयन** (Selection of Specific Universe)

निदर्शन शोधक के विशिष्ट समग्र के भीतर होता है। इसलिए विशिष्ट समग्र के विषय में पहले विचार किया जाना चाहिए। व्यवहार में, विशिष्ट समग्र के अध्ययन का आधार बताना अत्यन्त कठिन कार्य माना जाता है। ऐसा करते समय दो बाधाएं सामने आती है। प्रथम, विशिष्टसमग्र शोधक की सैद्धांतिक मान्यताओं को बताता है, तथा द्वितीय, समग्र के स्थायित्व या बने रहने के काम का पता लग जाता है, जो हो सकता है कि सही न हो। विभिन्न शोधकर्ता एक ही अध्ययनविषय से संबंधित समग्र, जैसे–समुदाय के प्रमुख निर्णायकों के विषय में अपने भिन्न–भिन्न परिप्रेक्ष्यों के कारण पृथक निष्कर्ष निकालते हैं। 'बुद्धिजीवियों और 'बेरोजगार' (Unemployed) आदि विषयक सामग्री के बारे में एकमत होना संभव नहीं है। विभिन्न संस्कृतियों वाले देशों में ऐसे विवादास्पद समग्र लेकर शोध करना और भी अधिक कठिन होता है। 'गांव' सभी देशों में एक से नहीं होते। सभी देशों के शहरी औद्योगिक क्षेत्र भी समान नहीं है। जिन कारणों से विशिष्ट समग्रों में भिन्नता आ जाती है। उनमें तार्किक एवं सैद्धांतिक कारण प्रमुख होते हैं। शोधकर्ता की किसी सिद्धांत के प्रति निष्ठा तथा वैसा ही शोध–अभिकल्प होने के कारण समग्र भिन्न हो जाता है। जो शोधकर्ता नए सिद्धांतों या सामान्यीकरणों का विकास करना चाहते हैं, उनके समग्र उन शोधकों से भिन्न हो जाते हैं जो विद्यामन प्रकल्पनाओं तथा सिद्धांतों का परीक्षण या प्रमाणीकरण करना चाहते हैं।

समग्रों के चयन के अनेक आधार होते हैं। उनमें से कुछ प्रमुखतः निम्नांकित हैं–

(क) **नए सिद्धांत या सामान्यीकरण की खोज**– ऐसा करने के लिए शोधक ऐसा समग्र चुनता है जिससे नए तथ्य, सामान्यीकरण आदि ज्ञात हो सकें। वह किसी संघ, दल या समूह का लगातार अध्ययन कर सकता है।

(ख) **विद्यमान प्रकल्पनाओं या सिद्धांतों का परीक्षण**– इसके अंतर्गत शोधकर्ता वर्तमान सामान्यीकरण या सिद्धांत को प्रमाणित करना चाहता है। जैसे, शोधक भारत में गिरते हुए अनुशासन के लिए बढ़ते हुए विद्यार्थी–राजनेता संबंधों को प्रमाणित करने के लिए राजनीति–प्रेरित विद्यार्थी एवं उनसे संबंधित नेताओं के समग्र को ले सकता है।

(ग) **प्रकल्पना या सिद्धांत का अप्रमाणीकरण**– इसमें विद्यमान प्रकल्पना या सिद्धांत को असिद्ध करने के लिए समग्र चुना जाता है। लिप्सेट ने मिशेल के 'अल्पतंत्र की लौह–विधि' (Iron Law of Oligarchy) को असत्यापित करने के लिए एक संघ का अध्ययन किया है।

(घ) **प्रकल्पना या सिद्धांत का पुनरीक्षण**– कुछ शोधक अपने पहले के निष्कर्षो या निर्वचनों का पुनरीक्षण करने के लिए पुष्टिकारक सामग्री लेते हैं। ये स्वयं या दूसरे के अनुसंधान कार्यों का पुनरीक्षण करते हैं, अर्थात दुबारा शोध करके सत्य की परख करते हैं। लेविस ने रैडफील्ड द्वारा किए गए एक गांव के अध्ययन का प्रतिवतन किया था। हॉर्न प्रयोग (Howthorn Experiment) का भी इसी प्रकार पुनरीक्षण किया जा चुका है। ऐसा करके पूर्ववर्ती शोधकर्ताओं के पूर्वाग्रहों का पता लगाया जा सकता है। लेकिन समाज, समुदाय आदि स्थैतिक नहीं होते, अतएव प्रतिवलन अनेक समस्याओं को उत्पन्न कर देता है। राजनीति में तो परिवर्तन बहुत ही तीव्र गति से हो सकते हैं। अतः प्रतिवलन और भी अधिक सीमित हो जाती है।

(ङ) **सामान्य प्रकार (General Type) की खोज**– ऐसे समग्र को शोधकर्ता इसलिए चुनता है कि वह असामान्य या विपथगामी नहीं है। ऐसे समग्र का चयन करने से पूर्व शोधक को विस्तृत अध्ययन करना पड़ता है।

(च) **प्रयोगात्मक अभिकल्प में प्रयोग**– ऐसा प्रयोग कृत्रिम या प्राकृतिक हो सकता है। इसमें शोधकर्ता यह आशा करता है कि उस समग्र में प्रयोग करना संभव हो सकेगा।

(छ) **सामाजिक कारक**– इस शीर्षक के अंतर्गत समग्र को चयन करने में सामाजिक कारकों को शामिल किया जाता है, जैसे आधार–सामग्री की सुविधाजनक प्राप्ति, समय, धन तथा मानव शक्ति की सीमा, सुगमता तथा व्यवाहारिक लाभ। व्यवाहारिक लाभ में शोध कराने वालों का आदेश, प्रसन्नता, उपाधि की प्राप्ति आदि बातें विचाराधीन रहती हैं। कभी–कभी आकस्मिक घटना या दैवयोग भी कारण बन जाता है। जेम्स वेस्ट की प्लेनविल गांव के पास मोटरकार खराब हो गई और उसे वहां कुछ दिन ठहरना पड़ा। उसने शोध के लिए उसी गांव को समग्र बना लिया।

(ज) **अन्य कारण**– सामाजिक, आर्थिक, नैतिक एवं राजनीतिक दबाव भी विशेष समग्र को चुनने के लिए विवश करते हैं। समाज की विभिन्नताएं और परिवर्तनशीलता के साथ–साथ शोध–दल का संगठन भी विशेष निदर्शन के चयन का आधार बन जाता है।

समग्रों के चयन के उपर्युक्त आधारों के अध्ययन से पता चलता है कि उसके चयन के अनेक विज्ञानेतर कारण होते हैं। इन आधारों का समग्रों, निदर्शनों, प्रविधियों आदि सभी पर प्रभाव पड़ता है।

3. निदर्शन इकाई (Sampling Unit)–ऐसी प्रारंभिक इकाइयां अथवा इन इकाइयों के समूह जो स्पष्ट रूप से पारिभाषित, पहचाने जाने योग्य एवं पर्यवेक्षणीय होने के अतिरिक्त निदर्शन की दृष्टि से सुविधाजनक होते हैं, निदर्शन इकाइयां कहलाती है। उदाहरणार्थ, एक पारिवारिक बजट के अध्ययन में प्रायः परिवार को अत्यधिक सुविधाजनक मानते हुए निदर्शन इकाई के रूप में स्वीकार किया जाता है।

4. निदर्शन संरचना (Sampling Frame)–समग्र की सभी निदर्शन इकाइयों का एक ऐसा ढांचा आवश्यक होता है जो उनकी समुचित परिचयात्मक विशेषताओं को प्रदान कर सके। इस प्रकार के ढांचे को निदर्शन ढांचा कहा जाता है।

निदर्शन ढांचों को दो प्रमुख समूहों में विभाजित किया जा सकता है–

(क) निदर्शन इकाइयों की सूची, तथा

(ख) क्षेत्रीय इकाइयों की सीमाओं का निदर्शन करने वाले मानचित्र।

सूची–ढांचे के अंतर्गत इकाइयों के पहचाने जाने के लिए उपयुक्त सूचना सहित निदर्शन इकाइयों की एक सूची पायी जाती है। प्रायः इस ढांचे के अंतर्गत निदर्शन इकाइयों से संबंधित अतिरिक्त सूचना भी पाई जाती है। क्षेत्रीय अथवा मानचित्रीय ढांचे के अंतर्गत निदर्शन इकाइयों अथवा इनके समूहों की जो प्रायः क्षेत्रीय इकाइयों के रूप में पाई जाती है, भौगोलिक सीमाएं प्रदर्शित की गई होती हैं, जिन्हें स्पष्ट रूप से पहचाना जा सकता है।

5. स्तर (Strata)–किसी समग्र या समष्टि के कई भाग किए जा सकते हैं। प्रत्येक भाग को स्तर कहते हैं। स्तर विभिन्न आधारों पर बन सकते हैं। जैसे किसी स्कूल के विद्यार्थियों को स्तरों में बांटने का आधार हो सकता है पास होना। पास होने वाले विद्यार्थियों का एक स्तर होगा और फेल होने वाले विद्यार्थियों का दूसरा। इसी प्रकार किसी ग्राम की समष्टि (जनसंख्या) को विभिन्न आधारों पर स्तरों में बांटा जा सकता है, लिंग के आधार पर पुरुषों और स्त्रियों के स्तर, धर्म के आधार पर हिंदुओं, मुसलमानों, ईसाइयों आदि के स्तर, शिक्षा के आधार पर निरक्षर, माध्यमिक शिक्षा प्राप्त और उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के स्तर आदि।

6. साधन–सूची (Source-List)–इकाइयों के संबंध में साधन–सूची (Source-List) को उपलब्ध किया जाता है। इसकी सहायता से समग्र की इकाइयों को जाना जाता है। जैसे, टेलीफोन वाले व्यक्तियों में राजनीतिक जागरुकता का अध्ययन करने के लिए टेलीफोन डाइरेक्टरी साधन–सूची मानी जाएगी। मतदाताओं को अध्ययन करने के लिए निर्वाचन सूची साधन–सूची बन जाएगी। साथ ही, अनेक समस्याओं का अध्ययन करने के लिए कोई भी साधन–सूची उपलब्ध नहीं होती, या अधूरी उपलब्ध होती है। ऐसी अवस्था में स्वयं शोधकर्ता को साधन–सूची तैयार करनी पड़ती है। कभी–कभी उसे तैयार करना भी बड़ा कठिन होता है। जैसे; राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के राजनीति में भाग लेने वाले सदस्यों की सूची को तैयार करना कठिन कार्य है। इसी तरह राजनीतिक दलों को चन्दा देने वाले पूंजीपतियों के नाम जानना अत्यन्त कठिन होगा। कुछ भी हो, वैज्ञानिक शोध के लिए वह आवश्यक है साधन–सूची में समस्त इकाइयां शामिल कर ली जाएं। कोई भी इकाई न छूटे। राजनीतिक शोध में, हो सकता है कि छूटी हुई इकाइयां बहुत अधिक महत्वपूर्ण होती हैं। साधन–सूची अद्यतन तथा ताजी होनी चाहिए। विद्यार्थियों की दो वर्ष पुरानी सूची वर्तमान विद्यार्थी–संघों का अध्ययन करने के

लिए उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती। सूची में सूचनाएं पूरी होनी चाहिए ताकि आवश्यकता पड़ने पर उनके आधार पर वर्गीकरण किया जा सके तथा निदर्शन में विभिन्न विशेषताओं वाले वर्गों को शामिल किया जा सके। साधन–सूची में कोई भी नाम एक से अधिक बार नहीं आना चाहिए। साधन–सूची अध्ययन–विषय की या समग्र अथवा निदर्शन की इकाइयों के अनुकूल होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि हमें व्यापारिक संस्थाओं के नाम चाहिए तो टेलीफोन डाइरेक्टरी अथवा निर्वाचन सूची को साधन–सूची नहीं बनाया जा सकता। साधन–सूची उपलब्ध होने योग्य हो तो शोध का कार्य सुगम हो जाता है। काई बार सूची होते हुए भी शोधक को मिल नहीं सकती, जैसे, आयकर विभाग के पास आयकरदाताओं की सूची अथवा पुलिस के पास संदेहात्मक चरित्र के लोगों की या गुण्डों की सूची। किसी निदर्शन को तैयार करने से पूर्व साधन–सूची आवश्यक रूप से बनानी पड़ती है।

निदर्शन की आवश्यक विशेषताएं

निदर्शन जितना पक्षपात रहित होगा, अध्ययन विषय से संबंधित निष्कर्ष उतने ही महत्वपूर्ण होंगे। इस संबंध में पी.वी. यंग ने लिखा है कि "निदर्शन का आकार ही उसके प्रतिनिधि होने की गारण्टी नहीं होता है, समुचित रूप से चुना गया अपेक्षाकृत छोटे आकार का निदर्शन दोषपूर्ण रूप से चुने गए बड़े आकार के निदर्शन से अधिक विश्वसनीय होता है।" निदर्शन का उत्तम होना अध्ययन की सफलता के लिए आवश्यक है। निदर्शन की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. निदर्शन को समग्र का प्रतिनिधि होना चाहिए (A Sample should be Representative)– निदर्शन के लिए समग्र का प्रतिनिधि होना उसका सर्वप्रथम आवश्यक लक्षण है। निदर्शन का चुनाव विभिन्न ढंग से किया जा सकता है फिर भी हर अवस्था में प्रधान उद्देश्य प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन का चुनाव करना है। प्रतिनिधि निदर्शन दो प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है : (i) समग्र की इकाइयों में एकरूपता लाकर, (ii) निदर्शन के चुनाव की उपयुक्त प्रणाली अपनाकर। लुंडबर्ग ने लिखा है कि कोई निदर्शन प्रतिनिधि तभी हो सकता है जबकि अध्ययन से संबंधित इकाइयों में एकरूपता हो तथा निदर्शन की प्रणाली तटस्थ रूप से उपयोग में लाई गई हो।

2. पर्याप्त आकार का होना चाहिए (Adequate Size of Sample): समुचित प्रणाली द्वारा चुने गए निदर्शन की थोड़ी मात्रा भी बड़ी मात्रा के निदर्शनों की अपेक्षा अधिक सही एवं विश्वसनीय परिणाम प्रदान कर सकती है। इस संबंध में पी.वी. यंग ने अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहा है कि, "निदर्शन को आकार की कोई आवश्यक सीमा नहीं है, सापेक्षिक रूप से उचित प्रकार से चुने गए छोटे निदर्शन अनुपयुक्त तरीके से चुने गए बड़े निदर्शन की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय होते हैं।" फिर भी निदर्शन का एक समुचित मात्रा में होना आवश्यक है।

3. सभी प्रकार के पक्षपात से स्वतंत्र होना चाहिए (Free from all Prejudices): निदर्शन के लिए यह आवश्यक है कि किसी भी इकाई का चुनाव व्यक्तिगत इच्छा के आधार पर न किया जाए। अक्सर ऐसा देखा गया है कि निदर्शन का चुनाव करते समय हम समग्र से कुछ उल्लेखनीय व आकर्षक इकाइयों को जो कि हमारे आदर्श के अनुरूप हैं चुन लेते हैं। इस प्रकार चुने गए निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं हो सकते क्योंकि अपने पक्षपात के कारण हो सकता है कि हम कुछ महत्वपूर्ण इकाइयों को न चुनें और कुछ

महत्वहीन इकाइयों को केवल इसलिए चुन लें कि वे हमारी पसंद के अनुकूल हैं। दोनों ही स्थितियों में हमारा निदर्शन वास्तविक स्थिति के साथ हमारा परिचय करवाने में सफल नहीं हो सकता। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि निदर्शन सभी प्रकार के पक्षपात से स्वतंत्र हो। कभी–कभी ऐसा देखा गया है कि अध्ययनकर्ता जानबूझ कर पक्षपात को महत्व देता है। उदाहरण के लिए यदि भेजी गई प्रश्नावली भर कर वापस नहीं आई या आई भी हैं तो सभी प्रश्नों के उत्तर नहीं दिए गए हैं। ऐसी स्थिति में अध्ययनकर्ता अपनी इच्छानुसार उन कमियों को पूरा करने की कोशिश करता है।

4. अध्ययन विषय के अनुरूप (Conformity with Subject of Study): निदर्शन का अध्ययन विषय के अनुरूप होना अत्यंत आवश्यक है। इस अनुकूलता के आधार पर ही निदर्शन की विश्वसनीयता की माप की जा सकती है। उदाहरणार्थ यदि अध्ययन का उद्देश्य एक विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों में अनुपस्थित रहने की आदत के कारणों जानना है तो हमें अपने निदर्शन में उन्हीं विद्यार्थियों को शामिल करना होगा जो कि परीक्षा से अनुपस्थित रहने के आदी हैं।

5. सामान्य ज्ञान एवं तर्क का उपयोग (Use of Common Knowleadge and Logically Sound): सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में अनुसंधानकर्ता निदर्शन आदि के नियमों का प्रयोग करता है लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं हे कि उसे सामान्य ज्ञान एवं तर्क का आश्रय लेना छोड़ देना चाहिए। बिना सामान्य ज्ञान एवं तर्क के कोई भी अनुसंधानकर्ता अपने क्षेत्र में सफल नहीं हो सकता है इसीलिए निदर्शनों को सही रूप देने के लिए सामान्य ज्ञान एवं तर्क का भी आश्रय लेना अधिक उपुयक्त होगा। निदर्शन की प्रविधियां चाहे कितनी भी विकसित क्यों न हों, लेकिन तर्क एवं सामान्य ज्ञान का उपयोग किए बिना अनुसंधानकर्ता एक अच्छा निदर्शन प्राप्त नहीं कर सकता है।

6. व्यावहारिक अनुभवों पर आधारित (Based on Practical Experience): निदर्शन केवल तर्क पर ही आधारित नहीं होता बल्कि इसमें अनुसंधानकर्ता के व्यवहारिक अनुभवों का समावेश होना आवश्यक है। अधिकतर ऐसा अनुभव किया गया है कि निदर्शन के चयन में कुछ ऐसी समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं जिनका समाधान अनुभवों की मदद से ही किया जाता है। यह अनुभव अध्ययन–विषय की प्रकृति के संबंध में एक अंतदृष्टि को पनपाने में सहायक होता है और यह अंतदृष्टि प्रतिनिधिपूर्ण निदर्शनों के चुनावों में अत्यन्त मदद करती है। कोई भी व्यक्ति एक विषय पर तब तक अध्ययन नहीं कर सकता है जब तक कि उस विषय से संबंधित उसे कुछ व्यावहारिक ज्ञान न हो। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि निदर्शन में व्यवहारिक ज्ञान का होना आवश्यक है।

निदर्शन–प्रविधि के लाभ

निदर्शन–प्रविधि की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है क्योंकि आधुनिक विशाल व जटिल समुदायों के अध्ययन में जनगणना–पद्धति (Census Method) अत्यन्त असुविधाजनक है और उसमें धन तथा समय दोनों ही बहुत लगते हैं। इसके विपरीत निदर्शन–प्रविधि के निम्नलिखित लाभ हैं–

1. समय की बचत (Saving of Time): निदर्शन–प्रविधि का तात्पर्य ही यह है कि हम संपूर्ण जनसंख्या की सभी इकाइयों का अध्ययन न करके उनमें से केवल कुछ प्रतिनिधित्वपूर्ण इकाइयों का ही अध्ययन करते हैं। अतः स्वाभाविक रूप से अध्ययन में कम समय लगता है। समय की बचत तो प्रत्येक अनुसंधान का ही एक गुण बन जाता

टिप्पणी

है, पर कुछ सामाजिक सर्वेक्षण विशेषकर इस प्रकार के होते हैं जिनमें समय का कारक विशेष महत्व का होता है। उदाहरणार्थ, निर्वाचन के पहले किसी प्रतियोगी की जीत अथवा हार का पूर्वानुमान करने के लिए यदि कोई अध्ययन किया जा रहा है तो यह आवश्यक है कि अध्ययन का कार्य निर्वाचन आरंभ होने से पहले समाप्त हो जाए। यदि ऐसा न हुआ तो उसकी कोई उपयोगिता ही नहीं रह जाएगी। ऐसे अध्ययनों में निदर्शन–प्रविधि अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होती है।

2. धन की बचत (Saving of Money): समय की बचत का परिणाम धन की बचत भी होता है। जब हमें कम संख्या में इकाइयों का अध्ययन करना पड़ता है तो स्टेशनरी, फाइल आदि खरीदने, कार्यकर्ताओं के वेतन, यात्राव्यय आदि पर कम खर्चा करना पड़ता है। व्यक्तिगत आधार पर आयोजित अनेक अनुसंधान कार्यों को धन के अभाव के कारण बीच में ही रोक देना पड़ता है। निदर्शन–प्रणाली में यह जोखिम न्यूनतम होता है। कम से कम खर्च करके अधिक से अधिक विश्वसनीय तथ्यों को एकत्रित करना केवल निदर्शन–प्रविधि के द्वारा ही संभव है।

3. अधिक गहन अध्ययन की संभावना (Possibility of more Intense Study): जनगणना पद्धति में अनुसंधानकर्ता का ध्यान असंख्य इकाइयों में बिखर जाता है और इसीलिए उनका गहन अध्ययन संभव नहीं होता, केवल मोटी मोटी बातों का पता लगाना ही संभव होता है। इसके विपरीत निदर्शन–प्रविधि में इकाइयों की संख्या पर्याप्त कम होती है। इसलिए अधिक समय तक तथा अधिक सूक्ष्म रूप से उनका अध्ययन तथा विवेचन किया जा सकता है। आधुनिक सामाजिक घटनाएं अधिक जटिल होती हैं अतः उन्हें समझने के लिए उनका सूक्ष्म अध्ययन ही एकमात्र तरीका होता है। निदर्शन प्रविधि इसी आवश्यकता की पूर्ति करती है। क्योंकि इकाइयों की संख्या कम होने के कारण गहन अध्ययन संभव होता है।

4. निष्कर्षों की परिशुद्धता (Accuracy of Results): निदर्शन प्रविधि के अंतर्गत अनुसंधानकर्ता का ध्यान कुछ निश्चित इकाइयों पर केंद्रित होने के कारण वह उनके संबंध में गहन अध्ययन करके अधिक यथार्थ निष्कर्षों को निकाल सकता है। यदि निदर्शनों का चुनाव ठीक से किया गया तो उसके आधार पर होने वाल अध्ययनों के निष्कर्ष जनगणना पद्धति की सहायता से किए गए अध्ययनों के निष्कर्षों से कहीं अधिक यथार्थ होते हैं। अमरीका की फारचून पत्रिका ने एक बार प्रेसीडेण्ट के चुनाव में विभिन्न प्रत्याशियों के जीतने की संभावना ज्ञात करने के लिए निदर्शन–प्रविधि की सहायता से सर्वेक्षण करके जो निष्कर्ष निकाला था उसकी यथार्थता आज भी लोगों को आश्चर्य में डालती है।

5. प्रशासनिक सुविधा (Administrative Convenience): निदर्शन–प्रविधि से अनुसंधान–कार्य को संगठित करने में भी पर्याप्त सुविधा होती है। यह सुविधा दो कारणों से हमें प्राप्त होती है– एक तो यह है कि निदर्शन–प्रविधि के अंतर्गत इकाइयों की संख्या कम होती है और इसीलिए हमें कम संख्या में कार्यकर्ताओं को नियुक्त करना पड़ता है और इनकी संख्या कम होने से इनको काम में लगाने और इनके ऊपर निगरानी रखने में काफी आसानी होती है। दूसरी बात यह है कि निदर्शन–प्रविधि में हमें अल्प–संख्यक लोगों से सूचना एकत्रित करनी पड़ती है और इसलिए सूचना एकत्रित करने से संबंधित परेशानी का संपूर्ण भार (Total Burden) कम हो जाता है। सूचनादाताओं की अपनी सुविधा के अनुसार उनकी सूचना एकत्रित करना कठिन काम है, पर सौ सूचनादाताओं

से सूचना एकत्रित करने में परेशानी की जो मात्रा होगी वह निःसंदेह ही निदर्शन–प्रविधि के अंतर्गत केवल दस सूचनादाताओं से कहीं अधिक होगी।

6. अन्य लाभ (Other Advantages): कभी–कभी सामाजिक अनुसंधान में जनगणना पद्धति का प्रयोग इसलिए भी नहीं हो पाता कि अध्ययन का क्षेत्र बहुत विस्तृत है और भौगोलिक दृष्टि से लोग इतने अधिक बिखरे हुए हैं कि प्रत्येक व्यक्ति से संपर्क स्थापित नहीं किया जा सकता; ऐसी दशा में केवल निदर्शन प्रविधि ही एक मात्र उपाय रह जाता है। कभी–कभी ऐसा होता है कि जिनके बारे में हमें अध्ययन करना है उनमें से सबका पता हमें मालूम नहीं हो पाता है जैसे किसी वस्तु के उपभोक्ताओं के नाम व पते। ऐसी स्थिति में निदर्शन–प्रविधि के द्वारा ही अध्ययन किया जा सकता है।

3.3.4 निदर्शन पद्धति की कमियां

निदर्शन सामाजिक शोध का एक महत्वपूर्ण घटक है। शोध के निष्कर्ष काफी सीमा तथा निदर्शन पर ही निर्भर करता है। निदर्शन के आधार पर निकाले गए निष्कर्ष सही, शुद्ध और विश्वसनीय हो इसके लिए आवश्यक है कि निदर्शन से संबंधित कमियों पर विचार कर लिया जाए जो निम्नलिखित हैं–

1. **समग्र का पूरी तरह से स्पष्ट न होना**– कई बार हमें ज्ञात नहीं होता कि समग्र की इकाइयों में किस सीमा पर सजातीयता अथवा विजातीयता पाई जाती है। परिणामस्वरूप हमें निदर्शन के आकार के बारे में सही जानकारी नहीं हो पाती है।
2. **निदर्शन की कौन–सी विधि प्रयोग में लाई जाए**– जहां समग्र की इकाइयां स्पष्ट हो, वहां दैव निदर्शन का प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिए समग्र की इकाइयों को किसी न किसी आधार पर क्रमानुसार करना होता है। ऐसा प्रायः संभव नहीं हो पाता।
3. **समग्र का प्रतिनिधित्व करना**– यदि निदर्शन समग्र का प्रतिनिधित्व नहीं करता तो परिणाम आशा के विपरित व पक्षपातपूर्ण हो सकते हैं। अतः प्रतिदर्शों के समग्र का प्रतिनिधित्व करना अति आवश्यक है।
4. **निदर्शन की विश्वसनीयता का निर्धारण करने में कठिनता**– यदि समग्र से संबंधित विभिन्न वर्गों अथवा इकाइयों में एकरूपता का अभाव होता है तो निदर्शन द्वारा प्राप्त तथ्यों की विश्वसनीयता भी संदेहपूर्ण बन जाती है। इसके अलावा साधारणतया शोधकर्ता के पास ऐसे कोई निश्चित उपकरण नहीं होते जिनकी सहायता से निदर्शन से प्राप्त तथ्यों की प्रामाणिकता की जांच की जा सके।
5. **विशेष ज्ञान की आवश्यकता**– सामाजिक घटनाओं में निदर्शन का चुनाव कठिन होता है। इस कारण इस पद्धति का प्रयोग सभी शोधकर्ता नहीं कर पाते तथा सभी सामाजिक परिस्थितियों के परिपेक्ष्य में नहीं किया जा सकता है। अतः निदर्शन पद्धति के प्रयोग के लिए शोधकर्ता में विषय का संपूर्ण एवं विशेष ज्ञान, सूझबूझ, अनुभव तथा अंतर्दृष्टि, निदर्शन के सिद्धांतों, उसकी कमियों तथा सीमाओं का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए। इसके अभाव में शोधकर्ता को अशुद्ध और अविश्वसनीय परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

3.3.5 निदर्शन चयन की विधियां

समग्र से निदर्शन का चुनाव करने की कई पद्धतियां हैं जिन्हें हम निदर्शन के प्रकार कहते हैं। ये पद्धतियां या प्रकार, अध्ययन के उद्देश्य की आवश्यकता, आंकड़ों की प्रकृति, अध्ययन के उद्देश्य आदि पर निर्भर करती हैं तथा अध्ययनकर्ता इन पद्धतियों में से किसी का भी चयन करते समय इन्हीं बातों को ध्यान में रखता है। निदर्शन के चुनाव की प्रमुख विधियां निम्नलिखित हैं-

1. यादृच्छिक निदर्शन (Random Sampling)
2. स्तरीकृत निदर्शन (Stratified Sampling)
3. उद्देश्यपूर्ण अथवा सविचार निदर्शन (Purposive Sampling)
4. बहुस्तरीय निदर्शन (Multi Stage Sampling)
5. गुच्छ निदर्शन (Cluster Sampling)
6. अभ्यंश निदर्शन (Quota Sampling)
7. व्यवस्थित निदर्शन (Systematic Sampling)
8. आकस्मिक निदर्शन (Accidental Sampling)

निदर्शन की प्रमुख विधियों का विस्तृत विवरण नीचे दिया जा रहा है–

1. यादृच्छिक निदर्शन (Random Sampling)–यादृच्छिक निदर्शन एवं संभावना निदर्शन को एक पर्यावाची के रूप में प्रयोग किया जाता है। निदर्शन समग्र के एक अंश (अथवा निदर्शन) को निकालने का एक ऐसा ढंग है जो जनसंख्या अथवा समग्र के प्रत्येक सदस्य को चुनाव को ज्ञात संभाविता प्रदान करता है। यहां पर 'यादृच्छिक' शब्द चुनाव के एक विशिष्ट ढंग का विशेषण है, निदर्शन का नहीं। यदि निदर्शन इस प्रकार किया जाए कि समग्र के सभी तत्त्वों या इकाइयों के निदर्शन में चुने जाने की संभावित समान हो तो उसे हम यादृच्छिक निदर्शन कहते हैं। जैसे यदि हम किसी गोल बर्तन में कांच के 100 कंचे रखें और फिर उनमें से कोई एक कंचा निकालें तो प्रत्येक कंचे के चयन को संभाविता 1/100 होगी। इस प्रकार चुने हुए निदर्शन में न केवल इकाइयों के चयन की संभाविताएं समान होती हैं बल्कि इनमें संयोगों के चयन की संभाविता भी बराबर होती है जैसे यदि यह मान लें कि समग्र में पांच व्यक्ति हैं अ, ब, स, द और ड, इनमें में अनुसंधानकर्ता दो का चयन करना चाहता है। दो का संयोग इस प्रकार का हो सकता है :

1-अ,ब, 2-अ,स, 3-अ,द, 4-अ,ड, 5-ख,स, 6-ख,ग, 7-ख,ड, 8-स,द, 9-स,ड, एवं 10-द,ड। यादृच्छिक निदर्शन के लिए आवश्यक है कि इन सभी संयोगों को चयन का बराबर–बराबर अवसर दिया जाए।

यादृच्छिक निदर्शन को भी अनेक विद्वानों ने परिभाषित किया है। यह अधिक उपयुक्त होगा कि हम यादृच्छिक निदर्शन की कुछ परिभाषाओं को देखें : गुड्डे एवं हाट ने लिखा है कि "यादृच्छिक निदर्शन में समग्र की प्रत्येक इकाई के चयन की समान संभावना रहती है।"

हार्पर ने लिखा है कि "एक यादृच्छिक निदर्शन वह निदर्शन है जिसके चयन यादृच्छिक में समग्र की प्रत्येक इकाई को सम्मिलित होने का समान अवसर प्राप्त हुआ हो।"

मिल्टन एंड पार्टन के अनुसार यादृच्छिक निदर्शन के प्रयोग में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए :

(क) समग्र की इकाइयां स्पष्ट होनी चाहिए एवं उनकी सूची तैयार की जानी चाहिए,
(ख) इकाइयों का आकार लगभग समान हो,
(ग) प्रत्येक इकाई एक–दूसरे से स्वतंत्र हो,
(घ) प्रत्येक इकाई को निदर्शन में चुनाव का समान अवसर दिया जाना चाहिए,
(ङ) निदर्शन चयन की विधि स्वतंत्र होनी चाहिए,
(च) अध्ययनकर्ता की प्रत्येक इकाई तक पहुंच सुलभ होनी चाहिए,
(छ) चुनी हुई इकाई को न तो छोड़ा जाना चाहिए और न ही उसका विकल्प प्रयुक्त करना चाहिए।

यादृच्छिक निदर्शन के अनेक प्रकार हो सकते हैं एवं उनके चुनने की प्रमुख प्रविधियां (Techniques) भी अनेक हैं उनमें से कुछ प्रमुख हैं :

(क) लॉटरी विधि (Lottery Method)]
(ख) कार्ड प्रणाली (Card Method)]
(ग) रेण्डम अंक या टिप्पेट प्रणाली (Random Number Method)]
(घ) नियमित अंकन प्रणाली (Regular Interval Method)]
(ङ) अनियमित अंकन प्रणाली (Irregular Interval Method)]
(च) ग्रिड प्रणाली (Grid Method)।

(क) लॉटरी विधि (Lottery Method): यादृच्छिक निदर्शन के चुनाव की यह विधि बहुत ही सरल है। कई अवसरों पर इसका प्रचलन जनसाधारण में भी देखने को मिलता है। इस विधि के अंतर्गत अनुसंधानकर्ता समग्र की प्रत्येक इकाई के लिए एक एक कागज की पर्ची तैयार करता है। उस पर उस इकाई का नाम या संकेत लिख दिया जाता है। इस प्रकार बनाई गई पर्चियों के आधार पर कागज की गोलियां बना ली जाती हैं और उन्हें एक साथ ठीक से मिला दिया जाता है। ऐसा करने के बाद अनुसंधानकर्ता जिस संख्या में निदर्शन का चुनाव करना चाहता है उतनी गोलियां निकाल लेता है और उन पर जिन इकाइयों के नाम या संकेत होते हैं उन्हें निदर्शन मान लिया जाता है। इस विधि का उपयोग करने के लिए एक सावधानी यह रखनी पड़ती है कि सभी गोलियों का आकार बराबर हो।

मान लीजिए हमें 5,000 छात्रों की समष्टि में से 100 का यादृच्छिक निदर्शन लेना है। हम समष्टि के प्रत्येक सदस्य का नाम कागज की एक पर्ची पर लिख लेंगे। ये पर्चियां एक जैसी होनी चाहिए। फिर इन्हें मोड़ कर इनमें से गोलियां जैसी बना लेंगे और एक गोल बर्तन में अच्छी तरह मिला देंगे। फिर इनमें से एक निकाल कर बाकी को अच्छी तरह मिला देंगे। इस प्रकार एक–एक करके हम 100 पर्चियां निकाल लेंगे और इन पर लिखे नामों से हमारा निदर्शन बन जाएगा।

(ख) कार्ड प्रणाली (Card Method): यह प्रणाली लॉटरी प्रणाली से मिलती जुलती होती है। लॉटरी प्रणाली में कागज की पर्चियों के उपयोग के कारण उसका एक प्रमुख दोष यह है कि ये पर्चियां एक–दूसरे से चिपक सकती हैं। अतः कार्ड प्रणाली में

पर्चियों की जगह कार्ड (Card) का उपयोग किया जाता है। सबसे पहले एक से आकार, रंग या बनावट के कार्डों या टिकटों पर जनसंख्या समग्र की समस्त इकाइयों के नाम अथवा संख्या या कोई अन्य चिह्न अंकित कर दिया जाता है। सबको एकत्रित कर गोल तथा बड़े ड्रम में भर कर पचास बार घुमाया जाता है। प्रत्येक बार पचास बार घुमा कर एक कार्ड या टिकट निकाल लिया जाता है। जितनी इकाइयों का चुनाव करना होता है, उतनी बार पचास बार घुमाकर कार्ड निकाले जाते हैं। निकाले गए कार्डों वाली इकाइयों का शोधकर्ता द्वारा अध्ययन किया जाता है। (क) में शोध–कर्ता स्वयं या अन्य कोई आंख बन्द करके तथा (ख) में कोई भी आंख खुली रखकर इकाइयों का चयन करता है। दोनों के मध्य इतना ही अंतर है।

(ग) रेण्डम अंक या टिप्पेट प्रणाली (Random Number Tippet Method): सरल यादृच्छिक निदर्शन के चयन की एक अन्य विधि को रेण्डम प्रणाली या टिप्पेट प्रणाली के नाम से जाना जाता है। इस प्रणाली को प्रो. टिप्पेट (Prof. Tippet) ने (1927) में गणितीय अंकों के आधार पर तैयार किया था। टिप्पेट की तरह ही फिशर एवं वेल्स (1936), केण्डल एवं स्मिथ (1939), रेण्ड कारपोरेशन (1955) राव–मित्रा, एवं मथाई (1966) ने भी निदर्शन सारणियां बनायी हैं लेकिन वर्तनाम समय में टिप्पेट सारणी का प्रयोग अधिक किया जाता है। टिप्पेट ने चार अंकों वाली 1040 संख्याओं की एक सूची बनायी। उन संख्याओं को यादृच्छिक निदर्शन का प्रयोग करने के लिए सुनिश्चित कर दिया गया। यह संख्या बिना किसी क्रम के कई पृष्ठों पर लिखी हुई है। शोधकर्ता आवश्यकतानुसार, जितनी इकाइयों का अध्ययन करना है उतनी इकाइयों को किसी भी पृष्ठ से लगातार लेता जाता है। उदाहरण के लिए, यदि 100 मजदूरों के समग्र से 10 मजदूरों की इकाइयों का अध्ययन करना है, तो उन 100 इकाइयों को क्रम से जमा कर टिप्पेट के क्रम से लेंगे। टिप्पेट प्रणाली में संख्याओं के चुनाव के दो प्रमुख तरीके हैं:

(i) प्रत्यक्ष चुनाव की विधि (Direct Selection Method)

(ii) अवशेष चयन की विधि (Remainder Selection Method)

(i) **प्रत्यक्ष चुनाव की विधि** : इस विधि के अंतर्गत हम किसी विशिष्ट प्रकार के तथा क्रमबद्ध संख्याओं की सारणी से संख्याओं को चुनते हैं और उन संख्याओं को स्वीकार करते हैं जो निदर्शन के आकार से अधिक नहीं होती। उदाहरण के लिए यदि हम 400 इकाइयों के समग्र से चुनाव करना चाहते हैं और हमने यह निश्चित कर रखा है कि हम संख्याओं के स्तंभों के आरंभ और अंत में दी गई संख्याओं का ऊर्ध्वरूप से तीन–तीन के समूहों में चुनाव करेंगे क्योंकि 400 में तीन अंक पाए जाते हैं। प्रायोगिक रूप से संपूर्ण स्थिति को निम्नांकित सारिणी की सहायता से प्रदर्शित किया जा सकता है।

संख्याएं (Numbers)

42827	29280	70203	51213	78569
41519	73184	84612	26689	30877
38273	52677	33891	23027	33891
48225	48663	85998	02427	85998
56506	22635	27941	58903	56560

टिप्पणी

इस सारणी से उपरिलिखित क्रम में हम 443, 793, 275, 47, 783, 321, 522, 397, 733, 979 को प्राप्त करते हैं किंतु हम उन्हीं संख्याओं को निदर्शन के लिए स्वीकार करते हैं जो 400 से अधिक नहीं होती और इस दृष्टि से 275, 47, 321 तथा 397 को हम निदर्शन में सम्मिलित करते हैं और शेष सभी को छोड़ देते हैं। स्पष्ट है कि यहां पर हम आरंभिक रूप से चुनी गई 10 संख्याओं में केवल 4 का उपयोग करने में समर्थ हुए हैं अर्थात हमारे समय, प्रयास एवं धन का पर्याप्त व्यय बेकार में ही हुआ है। इस बर्बादी पर काबू पान के लिए ही अवशेष वाले ढंग को प्रयोग में लाया जाता है।

(iii) **अवशेष चयन की विधि** : मान लीजिए कि उस समग्र में 150 इकाइयां हैं जिससे हम अपने निदर्शन का चुनाव करना चाहते हैं। ऐसी स्थिति हमें निम्न कार्य रीति का पालन करना पड़ेगा।

1. यदृच्छया हम संख्याओं को सारिणी के किसी भी स्तंभ अथवा पंक्तियों से आरंभ करें, हमें तीन अंकों वाले समूहों के रूप में संख्याओं का चुनाव करना होगा।
2. हमें यह ज्ञात करना पड़ेगा कि तीन अंकों वाली संख्याओं में 150 (समग्र में इकाइयों की संख्या) का अधिकतम गुणन क्या है? यहां स्पष्ट है कि 150 का अधिकतम गुणन 900 से कम है।
3. तीन–तीन के समूहों के रूप में चुनी गई विभिन्न संख्याओं में से हमें केवल उन्हीं को स्वीकार करना होगा जो 900 से कम हों।
4. स्वीकार की गई 150 से अधिक संख्याओं को 150 से विभाजित कर इनके अवशेष को ज्ञात करना होगा तथा इसे ही अंतिम रूप से निदर्शन में स्वीकार करना होगा।

उदाहरण के लिए, यदि उपयुक्त सारणी के आधार पर 443, 793, 275, 47, 783, 321, 522, 397, 733 तथा 979 को प्राप्त करते हैं तो हमें 979 को इसलिए छोड़ देना होगा क्योंकि यह 900 से अधिक है तथा 47 को अंतिम चुनाव के लिए स्वीकार कर लेना होगा। अन्य सभी अर्थात 443, 793, 275, 783, 321, 522, 397 तथा 733 को 150 से विभाजित कर अवशेष ज्ञात करने होंगे जो क्रमशः 143, 193, 125, 183, 21, 72, 97 तथा 133 होंगे। ये संख्याएं अंतिम रूप से निदर्शन में सम्मिलित की जाएंगी। यह ध्यान रखने योग्य बात है कि जहां भी संख्याओं का प्रयोग किया जाए वहां स्रोत का नाम, पृष्ठ संख्या, स्तंभ, संख्या, पंक्ति संख्या और आरंभिक संख्या का अवश्य उल्लेख किया जाए।

(घ) नियमित अंकन प्रणाली (Regular Interval Method): नियमित अंकन प्रणाली सरल यादृच्छिक निदर्शन की एक महत्वपूर्ण विधि मानी जाए या नहीं इस संबंध में दो विपरीत धारणाएं हैं किंतु इस विवाद की चर्चा करने के पहले यह स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि नियमित अकन प्रणाली क्या है? इस पद्धति के द्वारा अनुसंधानकर्ता जब निदर्शन का चुनाव करता है तब सबसे पहले वह वर्गान्तर की गणना करता है। इसके लिए निम्न सूत्र को काम में लिया जाता है –

$$\text{वर्गांतर} = \frac{\text{निदर्शन का आकार}}{\text{समग्र का अकार}}$$

टिप्पणी

इस प्रकार वर्गान्तर की गणना करने के पश्चात आरंभिक बिंदु का चुनाव किया जाता है और उसके लिए अनुसंधानकर्ता पहली संख्या तथा वर्गान्तर के बीच की किसी एक संख्या का चुनाव लॉटरी या रेण्डम अंक विधि से करता है। इस आरंभिक संख्या का चयन करने के बाद वह उसमें वर्गान्तर जोड़ता है। जो संख्या प्राप्त होती है उसमें पुनः वर्गान्तर जोड़ा जाता है और इसी प्रक्रिया को समग्र की अंतिम संख्या तक जारी रखता जाता है। इस प्रकार जो विभिन्न संख्यायें प्राप्त होती है उन पर समग्र की सूची में जिन इकाइयों के नाम होते हैं उन्हें निदर्शन में सम्मिलित कर लिया जाता है। एक उदाहरण से इस विधि को स्पष्ट किया जाता सकता है। यदि हमें 10,000 के समग्र में से 500 व्यक्तियों का चयन इस विधि से करना है तो हम सर्वप्रथम इन 10,000 व्यक्तियों की सूची तैयार करेंगे। इसके बाद वर्गान्तर की गणना करेंगे जो कि इस उदाहरण के संदर्भ में 20 हैं इस वर्गान्तर की गणना के बाद पहली संख्या व 20 के बीच किसी एक संख्या का चुनाव लॉटरी द्वारा करेगे। उदाहरण के लिए हम यह मान लेते हैं कि वह संख्या 4 है। इस संख्या (4) को आरंभिक बिंदु कहा जाएगा। इसमे वर्गान्तर जोड़ने पर 24 की संख्या बनती है और इस प्रकार 4, 24, 44, 64, 84.... की संख्या हमें प्राप्त होती है। समग्र की सूची में इन अंकों पर जिन व्यक्तियों के नाम होंगे उन्हें निदर्शन में सम्मिलित कर लिया जाएगा।

(ङ) अनियमित अंकन प्रणाली (Irregular Interval Method): इसमें भी समग्र या जनसंख्या को समस्त इकाइयों की एक सूची बनायी जाती है। उस सूची में प्रथम और अंतिम अंक को छोड़कर शेष इकाइयों की क्रमसंख्या पर शोधकर्ता निशान लगाता चलता है। ये निशान उतनी ही इकाइयों पर लगाए जाते हैं, इस कारण इसमें पक्षपात का समावेश हो जाता है।

(च) ग्रिड प्रणाली (Grid Method): यह क्षेत्र या भौगोलिक आधार पर निदर्शन निर्माण की प्रणाली है। इसमें किसी विशाल भौगोलिक क्षेत्र का जहां से निदर्शन लेना है, नक्शा या मानचित्र लिया जाता है। उस मानचित्र पर सेल्यूलायड की पारदर्शक ग्रिड प्लेट रख दी जाती है। इस प्लेट में वर्गाकार चौकोर खाने कटे हुए तथा उन पर नम्बर लिखे हुए होते हैं। यह पहले ही निश्चित कर लिया जाता है कि किस आधार पर किन–किन अंकों वाली इकाइयों को अध्ययन का विषय बनाया गया है। इन अंकों का निर्णय आकस्मिक ढंग से किया जाता है। मानचित्र के जिन हिस्सों पर निर्धारित नंबरों के वर्गाकार खाने आते हैं, उनको चिह्नित कर अध्ययन के लिए चुन लिया जाता है। इसे क्षेत्र निदर्शन भी कहते हैं किंतु वह थोड़ा–सा भिन्न प्रकृति का होता है।

• यादृच्छिक निदर्शन के लाभ (Advantages of Random Sampling)

इसके निम्नलिखित लाभ हैं :

1. यादृच्छिक निदर्शन का प्रयोग किए जाने की स्थिति मे समग्र की विशेषताओं अथवा इसके आवंटन का पूर्व ज्ञान आवश्यक नहीं है।
2. अनुसंधानकर्ता अपने परिणामों की यथार्थता का मूल्यांकन सरलतापूर्वक कर सकता है क्योंकि निदर्शन त्रुटियां संयोग के नियमों का पालन करती हैं।

3. यादृच्छिक निदर्शन की इकाइयां एक समग्र की परिवर्तनशीलता को अधिक अच्छे ढंग से स्पष्ट कर सकती हैं अपेक्षाकृत उस स्थिति को जिसमें समान संख्या में इकाइयो का चुनाव स्वेच्छापूर्वक किया गया हो।
4. जैसे–जैसे यादृच्छिक निदर्शन का आकार बढ़ाया जाता है वैसे–वैसे निदर्शन की प्रतिनिधित्वपूर्णता भी बढ़ती जाती है, तथा उस सीमा का निर्धारण संभाविता के नियमों के आधार पर किया जा सकता है जिस सीमा तक इसके ऊपर समग्र के प्रतिनिधि के रूप में विश्वास कर सकते हैं।

- **इससे कुछ प्रमुख हानियां निम्नलिखित हैं :**

1. पहले से ही समग्र के सूचीबद्ध रूप में उपलब्ध होने की आवश्यकता के कारण यादृच्छिक निदर्शन का प्रयोग करने के मार्ग में आने वाली कठिनाई।
2. निदर्शन के चुनाव के पूर्व प्रत्येक इकाई के लिए संख्याओं के निर्धारण कार्य में होने वाले समय, प्रयासों एवं धन का अतिरिक्त व्यय।
3. असंतोषजनक अथवा भ्रामक निदर्शन प्राप्त होने की संभावना। स्टीफन ने ठीक ही लिखा है–"यादृच्छिक निदर्शन में असंतोषपूर्ण चुनाव के शिकार को यह आश्वासन दिलाने में कि लंबी अवधि के दौरान चुनाव का यादृच्छिक तरीका एक दिशा में उतनी ही त्रुटियां प्रदान करेगा जितनी कि दूसरी दिशा में, बहुत कम सहायता एवं सुविधा प्रदान करता है।"
4. समान सांख्यिकीय विश्वसनीयता की प्राप्ति के लिए आवश्यक निदर्शन का आकार प्रायः स्तरीयकृत निदर्शन की तुलना में, यादृच्छिक निदर्शन में अधिक होता है।
5. क्षेत्र अध्ययनों के अंतर्गत चुनी गई इकाइयों के विस्तृत क्षेत्र में फैले होने के कारण समय, प्रयास एवं धन का व्यय अधिक होता है।

2. स्तरीकृत निदर्शन (Stratified Sampling)–स्तरीकृत यादृच्छिक निदर्शन वस्तुतः यादृच्छिक निदर्शन पद्धति का ही विकसित रूप है। स्तरीकृत निदर्शन के अंतर्गत सरल यादृच्छिक निदर्शन पद्धति के द्वारा ही निदर्शन का चयन किया जाता है। अनेक बार सामाजिक अनुसंधान का उद्देश्य विभिन्न वर्गों के बीच तुलनात्मक अध्ययन करना होता है अथवा ऐसी स्थिति में जबकि अध्ययनकर्ता अध्ययन से पूर्व यह तय कर लेता है कि निदर्शन में समग्र में पाए जाने वाले समस्त वर्गों का उचित प्रतिनिधित्व हो तब स्तरीकृत निदर्शन का उपयोग किया जाता है। ये दोनों ही उद्देश्य सरल यादृच्छिक निदर्शन के द्वारा ही पूरे किए जा सकते हैं, और किए जाते भी हैं किंतु उसके प्रतिनिधि होने का पता तभी लग जाता है जब विभिन्न वर्गों में से कोई एक वर्ग अपेक्षाकृत बहुत छोटा हो तो सरल यादृच्छिक निदर्शन के द्वारा लिए गए निदर्शन में उस वर्ग का उतना प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता कि उसका दूसरे वर्गों से तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके। ऐसी स्थिति मे भी स्तरीकृत यादृच्छिक निदर्शन एक उपयोगी पद्धति सिद्ध होती है। स्तरीकृत निदर्शन में हम सबसे पहले समग्र को विभिन्न स्तरों में बांट लेते हैं और फिर प्रत्येक स्तर में से स्वतंत्र निदर्शन ले लेते हैं। यह महत्वपूर्ण है कि परिभाषा इस प्रकार दी जाए कि प्रत्येक तत्त्व (सदस्य) एक, ओर केवल एक ही स्तर में आये फिर प्रत्येक स्तर में से यादृच्छिक निदर्शन लिया जाए। स्वीकृत निदर्शन का यह सबसे सरल और सबसे अधिक

प्रयुक्त होने वाला ढंग है। यह हो सकता है कि सब स्तरों में से एक ही अनुपात में निदेर्शन का अनुपात बराबर नहीं है।

स्तरीकृत निदर्शन को निम्नलिखित सारणी की सहायता के सोदाहरण समझाया जा सकता है।

एक विश्वविद्यालय के विभिन्न संकायों के स्तरीकृत निदर्शन

	स्तर संख्या तथा नाम			
विवरण	कला संकाय	विधि संकाय	वाणिज्य विज्ञान	विज्ञान
	1	2	3	4
प्रत्येक स्तर में इकाइयों की संख्या	8000	6000	4000	2000
विभिन्न संकायों में इकाइयों का का अनुपात निदर्शन के विभिन्न स्तरों में उन विद्यार्थियों का	.4	.3	.2	.1
अनुपात जो प्रश्न का सकारात्मक उत्तर देते है प्रत्येक स्तर के	.35	.3	.15	.2
निदर्शन अनुपात की अनुमानित मानक त्रुटि	.02	.02	.03	.03

इस प्रकार स्तरीकृत निदर्शन के दो बड़े प्रकार किए जा सकते हैं :

(क) समानुपतिक स्तरीकृत निदर्शन (Proportionate Stratified Sampling): समानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन में प्रत्येक निदर्शन की इकाइयां उसी अनुपात में ली जाती है जिस अनुपात में वे समग्र के अंतर्गत होती हैं, यदि विभिन्न स्तरों में भिन्न–भिन्न संख्या में इकाइयां पाई जाती हैं जो प्रत्येक स्तर के लिए समानुपातिकता बनाए रखना ज़रूरी है प्रत्येक स्तर में से इकाइयों को एक स्थिर अनुपात में चुनते हैं एवं समानुपातिक निदर्शन अनुसंधानकर्ता को इस विषय मे निश्चित होने की सामर्थ्य प्रदान करता है कि वह प्रत्येक स्तर से सही अनुपात में इकाइयों का चुनाव कर रहा है।

समानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन के विषय में निम्न तथ्य उल्लेखनीय हैं :

1. समानुपातिक निदर्शन सूक्ष्मता की सीमा को बढ़ा देता है क्योंकि प्रत्येक स्तर के निदर्शन के अंतर्गत समानुपातिक प्रतिनिधित्व होता है।
2. इसका प्रयोग करने पर गैर समानुपातिक निदर्शन की तुलना में प्रायः अधिक बचत होती है।
3. इसका प्रयोग अपेक्षतया सरल है और इसलिए प्रायः प्रयोग में लाया जाना संभव होता है।
4. इकाइयों के चुनाव की तुलना में गुच्छों का निदर्शन की इकाइयों के रूप में चुनाव अधिक लाभदायक होता है।

5. स्तरीकरण के लिए उपयुक्त चरों के निर्धारण एवं चनाव पर अधिक समय को व्यय नहीं किया जाता।
6. स्तरों की संख्या जितनी ही अधिक होती है, त्रुटि की संभावना उतनी ही कम होती है।

उदाहरण के लिए यदि, हम यह मान लें कि किसी समग्र में कुल एक हजार व्यक्ति हैं। इसमें से 600 हिंदू, 300 मुसलमान और 100 ईसाई हैं। अब यदि हमें 100 व्यक्तियों का निदर्शन चुनना है तो उसमें यादृच्छिक निदर्शन से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि इसमें 60 हिंदू, 30 मुसलमान एवं 10 ईसाइयों का चयन होगा। अतः यदि हम यह चाहते हैं कि विभिन्न धर्मों के लोग अपने ठीक अनुपात में निदर्शन में आयें तो हमें प्रत्येक स्तर का दसवां भाग (1/10) ले लेना चाहिए, दूसरे शब्दों में हमें हिंदुओं में से 6 मुसलमानों में से 3 एवं ईसाइयों में से 1 का प्रतिचयन कर लेना चाहिए। इसे ही समानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन कहा जाता है। कभी–कभी यह ठीक समझ में नहीं आता कि स्तरीकरण किस आधार पर करना चाहिए। जैसे सरकारी कर्मचारियों के स्तर कई आधारों पर बनाए जा सकते हैं–पद, वरीयता, आयु, धर्म आदि। इसमें वही आधार लिया जा सकता है जो कि समष्टि सूची में स्पष्ट हो। जैसे यदि हमें लोगों की जाति मालूम न हो तो हम इस आधार पर स्तरीकरण नहीं कर सकते। स्तरीकरण का आधार यथासंभव अध्ययन के विषय से संबंधित होता है। यदि हमें ऐसा प्रतीत हो कि कर्मचारियों का मनोबल उनके वर्ग (या पद) से संबंधित है तब हम इस आधार पर स्तरीकरण करते हैं। यदि हम यह सोचते हैं कि मनोबल आयु के संबंधित है (जैसे यदि बड़ी आयु के लोगों का मनोबल छोटी आयु के लोगों की अपेक्षा कम या अधिक होने की संभावना है) तो हम आयु के आधार पर स्तरीकरण करेंगे। ऐसे में हम यह कर सकते हैं कि कर्मचारियों को दो स्तरो में बांट लें–20 वर्ष से 40 वर्ष की आयु वाले और 40 से 60 वर्ष की आयु वाले और फिर उनके अनुपात के अनुसार निदर्शन ले लें।

(ख) असमानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन (Disproportionate Sampling): कभी–कभी असमानुपातिक परिकल्पना या उपकल्पना या प्राकल्पना स्तरीकृत निदर्शन का चयन करना पड़ता है। जहोदा के अनुसार असमानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन के कई कारण हो सकते हैं। कई परिस्थितियों में जिन स्तरों में कम संख्या होती है, उनसे अधिक इकाइयों का चुनाव किया जाता है जिससे विभिन्न स्तरों में तुलना संभव हो सके। कभी–कभी एक स्तर मे किसी विशेषता के आधार पर अधिक विभिन्नताएं पाई जाती हैं और दूसरे स्तर में अधिक समानता होती है। ऐसी स्थिति में पहले स्तर में से अधिक इकाइयों की आवश्यकता होगी और दूसरे स्तर में तुलनात्मक रूप में कई इकाइयों का चयन करना पड़ेगा। यदि अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि स्त्रियों की तुलना में पुरुषों के विचारों और मनोवृत्तियों में अधिक विभिन्नता है तो निदर्शन में पुरुषों की संख्या अधिक होनी चाहिए जिससे कि इन विभिन्नताओं का अध्ययन किया जा सके। इसके अन्य कारण भी हो सकते हैं। कभी–कभी एक स्तर में से अधिक इकाइयों का चुनाव किया जाता है। क्योंकि उस स्तर को उपभागों में विभाजित करना होता है और इस हेतु विभिन्न उपभागों की तुलना करनी होगी क्योंकि इकाइयों की संख्या सीमित होगी। जहोदा के अनुसार विभिन्न स्तरों में से इकाइयों का चुनाव अध्ययन के उद्देश्य के अनुवाद करना चाहिए। इस प्रकार असमानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन अंतर्गत प्रायः प्रत्येक स्तर समान संख्या में इकाइयों को चुना जाता है तथा इस बात की चिंता नहीं

टिप्पणी

की जाती कि विभिन्न स्तर समग्र का किस सीमा तक प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। प्रत्येक स्तर से चुनी गई इकाइयों की संख्या योजना में पूर्व–निश्चित इकाइयों की संख्या के समान रखी जाती है।

इस प्रकार के निदर्शन को कभी कभी नियंत्रित निदर्शन भी कहा जाता है। इसके प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं :

(क) निदर्शन के आकार की दृष्टि से सभी समान रूप से विश्वसनीय होते हैं। प्रत्येक स्तर में समान संख्या में इकाइयों का चुनाव किए जाने के कारण विभिन्न स्तरों की तुलना संभव हो जाती है।

(ख) निदर्शन के इस प्रकार से बचत बहुत अधिक होती है क्योंकि इसके उत्तरदाता एक दूसरे से भौगोलिक सामीप्य की स्थिति में होते हैं। असमानुपातिक निदर्शन उस स्थिति में काम में लिया जाता है जबकि उपसमग्रों का निर्माण करने पर अनुसंधानकर्ता को यह लगे कि किसी एक उपसमग्र का आकार दूसरे उपसमग्रों की तुलना में बहुत छोटा है। इस स्थिति में यदि समानुपातिक निदर्शन का चुनाव किया जाएगा तो उस छोटे उपसमग्र में से जो निदर्शन आयेगा वह नगण्य होगा तथा तुलना के लिए सही आधार प्रस्तुत नहीं कर पाएगा। ऐसी स्थिति में अनुसंधानकर्ता उस छोटे उपसमग्र में से अपेक्षाकृत अधिक अनुपात में इकाइयो का चयन करता है और बड़े उपसमग्र का अनुपात थोड़ा–सा कम कर देता है। इस कारण इसे असमानुपातिक की संख्या दी जाती है। ऐसा करना वस्तुतः विशेष परिस्थितियों में आवश्यक हो जाता है, क्योंकि इसके बिना सही रूप से तुलना नहीं की जा सकती।

इस संपूर्ण प्रक्रिया को एक उदाहरण के रूप में निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है। किसी एक सामाजिक अनुसंन्धान में अनुसंधानकर्ता को विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों का अध्ययन करना है जिनकी कुल संख्या 10,000 है। अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन में मुख्य रूप में प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी तथा तृतीय श्रेणी प्राप्त विद्यार्थियो की परस्पर तुलना करना चाहता है। ऐसा करने के लिए वह निदर्शन के चयन में स्तरीकृत पद्धति को काम में लेना चाहता है। इसके लिए करना यह होगा कि वह सबसे पहले उन 10,000 में से प्रत्येक विद्यार्थी की श्रेणी ज्ञात करे और इस एक समग्र को तीन समग्रों में विभाजित करे। यदि प्रथम श्रेणी में 200 विद्यार्थी हैं, द्वितीय श्रेणी में 5,000 विद्यार्थी हैं तथा तृतीय श्रेणी में 4,800 विद्यार्थी हैं और अनुसंधानकर्ता को कुल मिलाकर 500 विद्यार्थियों का निदर्शन लेना है तो वह समानुपातिक निदर्शन के अनुसार प्रथम श्रेणी के दस, द्वितीय श्रेणी के 250 तथा तृतीय श्रेणी के 240 विद्यार्थियों का चयन करेगा। ऐसा करने में मुख्य कठिनाई यह है कि जहां द्वितीय व तृतीय श्रेणी में विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक है वहां प्रथम श्रेणी के विद्यार्थियों की संख्या निदर्शन के दृष्टिकोण से बहुत ही कम है। ऐसी स्थिति में कोई अर्थपूर्ण तुलना नहीं की जा सकती। ऐसी स्थिति में अनुसंधानकर्ता के लिए उपयुक्त यह होगा कि वह असमानुपातिक निदर्शन के नियम को काम में ले अर्थात वह प्रथम श्रेणी के विद्यार्थियों का, प्राप्त अनुपात के अधिक संख्या में चयन करे और द्वितीय व तृतीय श्रेणी के विद्यार्थियों के चयन की संख्या को क्रमशः कम कर ले। इस प्रकार स्तरीकृत निदर्शन ही सामाजिक अनुसंधान में निदर्शन के चयन की अत्यन्त उपयुक्त पद्धति है लेकिन समान्यतः समग्र को स्तरों में स्तरीकृत करने के लिए चरों का चुनाव करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखा जाता है :

टिप्पणी

1. उपलब्ध सूचना की प्रकृतिः यह आवश्यक है कि स्तरों के विषय में सूचना उपयुक्त, उचित, पूर्ण एवं संपूर्ण जनसंख्या पर लागू होने योग्य तथा अनुसंधानकर्ता को सरलतापूर्वक प्राप्त होने योग्य होनी चाहिए। अनेक चरों के साथ, नियंत्रक के रूप में प्रयोग में नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि चरों की संख्या जितनी अधिक होती है स्तरीकरण में उतनी ही कठिनाई हाती है।
2. चरों का अनुसंधान के उद्देश्यों की प्राप्ति से संबंध।
3. संपूर्ण निदर्शन में स्तरों का आकारः सभी स्तरों का आकार इतना बड़ा होना चाहिए कि क्षेत्र में जाकर इसे तथा इसकी निर्माणकारी इकाइयों का पता सरलतापूर्वक लगाया जा सके।
4. स्तरों की आन्तरिक समताः समग्र की प्रत्येक निदर्शन इकाई को, निर्मित किए गए स्तरों में से एक और केवल एक में ही निदर्शन के चुनाव के पूर्व रखा जाता है ताकि सभी स्तरों में पाई जाने वाली इकाइयों का योग समग्र की इकाइयों के समान हो। एक विशिष्ट स्तर में निर्धारित की गई इकाइयो में से ही इस स्तरविशेष के लिए एक निदर्शन का चुनाव किया जाता है तथा प्रत्येक निदर्शन के आगणनों को अलग–अलग निकाला जाता है। प्रत्येक स्तर के लिए अलग–अलग निकाले गए इन आगणनों को सामूहिक रूप से एकत्रित करते हुए संपूर्ण समग्र के लिए आगणनों को निकाला जाता है।

- **स्तरीकृत निदर्शन के प्रमुख लाभ** (Advantages and Disadvantages of Stratified Sampling)

स्तरीकृत निदर्शन के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं :

1. समग्र को पहले स्तरीकृत करने के बाद ही उनके प्रत्येक स्तर से स्तरीकृत निदर्श निकाला जाता है इसलिए समग्र के किसी भी महत्वपूर्ण समूह के, पूर्णरूपेण बाहर रह जाने की संभावना कम हो जाती है।
2. अधिक समरूपता वाले समग्र से केवल कुछ इकाइयों को ही निदर्श में सम्मिलित करने पर अधिक सूक्ष्म परिणामों की प्राप्ति की जा सकती है, जिसके परिणामस्वरूप आंकड़ों के संग्रह एवं संसाधन पर लगने वाली लागत कम हो जाती है।
3. यदि स्तरों का निर्माण करने तथा प्रत्येक स्तर के निदर्श का निर्धारण करने के पश्चात साक्षात्कारकर्ताओं से इकाइयों को चुनने को कहा जाए तो वे अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण इकाइयों को चुन सकते हैं, अपेक्षाकृत उस स्थिति के जिसमें उनसे पूर्णरूपेण अपना निर्णय लेते हुए इकाइयों के चुनाव करने को कहा जाए। इसका कारण यह है कि जब साक्षात्कारकर्ता के चुनाव की सीमा कुछ ऐसे समूहों तक सीमित हो जाती है जिनमें विशमता कम होती है तो उनके द्वारा किया चुनाव स्वतः अधिक प्रतिनिधित्वूपर्ण होता है।
4. ऐसे निदर्श जो स्वतः चुने गए होते हैं जैसे कि डाक प्रश्नावली से प्राप्त होने वाले प्रतिदान, वे कम पूर्वग्रहपूर्ण होते हैं किंतु स्तरीकरण का आश्रय लेते हुए निदर्श का चुनाव करने पर पूर्वग्रह कम होता है। इस संबंध में स्टीफन के विचार उल्लेखनीय है : "इस बात का प्रावधान करने पर कि निदर्शन का एक निश्चित अनुपात प्रत्येक भौगोलिक क्षेत्र अथवा आय समूह से होगा, स्तरीकरण स्वतः, निदर्शन द्वारा खोये गए व्यक्तियों को उसी स्तर के व्यक्तियों द्वारा पुनर्स्थापित

टिप्पणी

कर देता है और इस प्रकार आंशिक रूप से वह पूर्वग्रह कम हो जाता है जो उस समय उत्पन्न हो सकता है जबकि व्यक्तियों को पुनर्स्थापन संभव न हो। न्यून प्रतिपादन की दर वाले स्तरों में व्यक्तियों को डाक द्वारा भेजी गई प्रश्नावली की संख्या को न्यूनदरों की क्षतिपूर्ति करने के लिए बढ़ाया जा सकता है ताकि प्रत्येक स्तर से प्राप्त किए गए प्रयोग प्रतिदानों की संख्या स्तर के आकार के समानुपाती हो सके। स्तरीकरण की व्यवस्था के अंतर्गत एक ऐसे वर्गीकरण का समावेश संभव हो सकता है जो अधिक क्षति के दरों वाले व्यक्तियों को कम क्षति की दरों वाले व्यक्तियों से प्रभावपूर्ण ढंग से अलग कर सकता है, जिसमें क्षति के कारण पूर्वागह के एक बड़े हिस्से को नियंत्रित किया जा सकता है।"

5. यादृच्छिक निदर्शनों की तुलना में स्तरीकृत निदर्श भौगोलिक दृष्टिकोण से अधिक सीमित क्षेत्र में केंद्रित किए जा सकते हैं और इसके परिणामस्वरूप समग्र, प्रयास एवं धन के व्यय में पर्याप्त बचत संभव हो सकती है।

क्राक्सटन तथा काउडेनेनेन ने इस प्रणाली को, अन्य प्रणालियों की तुलना मे अधिक उपयुक्त बताया है। विभिन्न वर्गों का विभाजन यदि सतर्कता से किया गया है तो थोड़ी इकाइयों का चयन करने पर भी संपूर्ण समूह का प्रतिनिधित्व हो जाता है। जबकि यादृच्छिक निदर्शन में प्रतिनिधित्व का गुण तभी आ सकेगा जब इकाइयों की संख्या पर्याप्त हो। क्षेत्रीय दृष्टि से वर्गीकरण करने पर इकाइयों से संपर्क आसानी से स्थापित किया जा सकता है। इससे धन व समय की भी बचत होती है।

स्तरीकृत निदर्शन की प्रमुख हानियां निम्नलिखित हैं :

1. स्तरीकरण के लिए महत्वपूर्ण चरों का प्रयोग किए जाने के लिए यह आवश्यक है कि निदर्शन का कार्य आरंभ करने के पूर्व ही अनुसंधानकर्ता को अपने समग्र से संबंधित विभिन्न चरो एवं इनके सापेक्षिक महत्व की पर्याप्त जानकारी हो।
2. यदि स्तरीकरण के दौरान, विभिन्न स्तरों के लिए निदर्शों का निर्धारित किया गया आकार समानुपातिक नहीं होता है तो भारण की समस्या हमारे सामने आती है जिसके अंतर्गत हम विभिन्न स्तरों से प्राप्त किए गए परिणामों को इन स्तरों से निदर्श में सम्मिलित की गई इकाइयों की संख्या के अनुसार भार निर्धारित करते हैं। भारण के लिए समग्र के प्रत्येक स्तर में सापेक्ष बारम्बारता का ज्ञान आवश्यक होता है। भारण के दौरान कुछ विशेष प्रकार की समस्याएं हमारे सामने आती है। जैसे कि पहले भार प्रदान किए बिना विभिन्न स्तरों से आंकड़ों का एकत्रित किया जाना तथा इन आंकड़ों के आधार पर आगणनों का निकाला जाना, भारित तथा गैर–भारित आंकडों को अलग–अलग रखा जाना, आवश्यकतानुसार भारों में अतिरिक्त सूचना के समावेश परिवर्तन किया जाना, जबकि हम इनमें अथवा दो खानों में दी गई सूचना को एक साथ प्रदर्शित करना।
3. विशेष विवरणों की दृष्टि से उपयुक्त इकाइयों का पता लगाने में क्षेत्रीय कार्य के दौरान पर्याप्त कठिनाई का अनुभव करना पड़ता है। जब तक इकाइयों का चुनाव यादृच्छिक रूप से अथवा प्रत्येक इकाई की सूची रखने वाले संपूर्ण समग्र से न किया जाए तब तक निदर्श में सम्मिलित की गई इकाइयों का पता लगाने में पर्याप्त समय लगता है जिसके परिणामस्वरूप अनुसंधान कार्य पर लगने वाली लागत भी बढ़ जाती है।

टिप्पणी

4. प्रत्येक स्तर से सरल यादृच्छिक निदर्शन की आवश्यकता के कारण प्रायोगिक कठिनाइयां बढ़ जाती है।
5. यदि समानुपातों की गणना करनी हो तो वे स्तरीकृत निदर्शन की सहायता से प्राप्त होते हैं।
6. प्रत्येक स्तर से आगणन किए जाने के परिणामस्वरूप क्रमबद्ध त्रुटि की संभावना बढ़ जाती है।
7. अध्ययन किए जाने वाले सभी चरों के संबंध में उपयुक्त परिणाम नहीं प्राप्त किए जा सकते।

3. उद्देश्यपूर्ण अथवा सविचार निदर्शन (Purposive Sampling)—जब अनुसंधानकर्ता किसी विशेष उद्देश्य को सामने रखकर जान—बूझकर समग्र में कुछ इकाइयों का चुनाव करता है तो उसे उद्देश्यपूर्ण या सविचार निदर्शन करते हैं। इस प्रकार के निदर्शन के चुनाव का मुख्य आधार यही है कि इसमें अनुसंधानकर्ता समग्र (Universe) की इकाइयों के लक्षणों से पूर्वपरिचित होकर विस्तारपूर्वक निदर्शनों का चुनाव करता है। चुनाव का आधार अध्ययन का उद्देश्य होता है और उद्देश्यों को सामने रखते हुए उसी के अनुरूप अनुसंधानकर्ता संपूर्ण क्षेत्र से सर्वाधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण इकाइयों का चुनाव करता है। इस प्रकार अध्ययन के उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर हुए उद्देश्य की पूर्ति के उपयुक्त निदर्शनों का विचारपूर्वक चुनाव करने के कारण ही इसे उद्देश्यपूर्ण अथवा सविचार निदर्शन कहते हैं।

श्री एडोल्फ जेन्सन (Adolph Jenson) ने लिखा है, "सविचार निदर्शन से अर्थ है इकाइयों के समूहों की एक संख्या को इस प्रकार चुनना कि चुने हुए समूह मिलकर उन विशेषताओं के संबंध में यथासंभव वही औसत अथवा अनुपात प्रदान करें जो कि समग्र में हैं और जिनकी सांख्यिकीय जानकारी पहले से ही है।"

- **सविचार निदर्शन के लक्षण** (Characteristics of Purposive Sampling)
  1. अनुसंधानकर्ता समग्र (Universe) की समस्त इकाइयों की विशेषता से परिचित हो ताकि उसे पहले से ही यह ज्ञान हो कि किन इकाईयों के क्या गुण हैं और उसी आधार पर किन इकाइयों को चुनने से अध्ययन के उद्देश्यों की प्राप्ति सरल हो सकेगी।
  2. सविचार निदर्शन में निदर्शनों का चुनाव किसी विशिष्ट उद्देश्य को सामने रखकर ही किया जाता है। बहुधा सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस प्रकार के निदर्शन का लक्ष्य होता है।
  3. इस प्रणाली में, अनुसंधानकर्ता द्वारा अपनी इच्छानुकूल निदर्शनों का चुनाव किया जाता है, इसलिए पक्षपात की संभावना भी अधिक होती है।
- **उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के गुण** (Merits of Purposive Sampling): उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के निम्नलिखित गुण हैं—

(क) उक्त विधि कम खर्चीली है क्योंकि इसमें निदर्शन का आकार बहुत बड़ा नहीं होता है। यदि निदर्शनों का चुनाव पक्षपात रहित होकर किया जाए तो अपेक्षाकृत छोटा निदर्शन भी प्रतिनिधित्वपूर्ण हो सकता है।

टिप्पणी

(ख) यह प्रणाली उन अनुसंधानों मे अत्यन्त उपयोगी होती है जिनमें समग्र की कुछ इकाइयां विशेष रूप से महत्वपूर्ण होती हैं और इसीलिए उनका चुना जाना आवश्यक होता है। इस आवश्यकता की पूर्ति यादृच्छिक निदर्शन से नहीं हो सकती। उदाहरणार्थ, यदि रुहेलखंड डिविजन की शिक्षा संस्थाओं का अध्ययन करना है तो बरेली कॉलेज को निदर्शन में सम्मिलित करना आवश्यक है। पर यदि हम यादृच्छिक निदर्शन–प्रणाली को अपना रहे हैं तो निदर्शन के चुनाव में बरेली कॉलेज का नाम आ भी सकता है और छुट भी सकता है। ऐसी दशा में उद्देश्यपूर्ण निदर्शन प्रणाली ही उपयोगी सिद्ध होती है।

• उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के दोष (Demerits of Purposive Sampling)

उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के गुणों की अपेक्षा दोषों की ओर ही विद्वानों ने हमारा ध्यान अधिक आकर्षित किया है। श्री पार्टन (Parten) ने लिखा है, "एक वर्ग के रूप में सांख्यिकीशास्त्रियों को उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के पक्ष में कुछ भी कहना नहीं है।"

प्रो. नेमैन (Neyman) ने इसको 'निरर्थक' बताया है। प्रो. सेंडेकोर (Sendecor) ने इसके निम्नलिखित तीन दोषों का उल्लेख किया है :

(अ) उद्देश्यपूर्ण निदर्शन में यह आवश्यक है कि अनुसंधानकर्ता को पहले से ही समग्र (Universe) का पूर्ण ज्ञान हो ताकि वह समझ सके कि किन इकाइयों को चुनने से अध्ययन के उद्देश्यों की पूर्ति संभव होगी, पर दिक्कत यह है कि पहले से ही इस प्रकार का पूर्ण ज्ञान संभव नहीं होता।

(ब) इसमें अनुसंधानकर्ता किसी भी इकाई को निदर्शन के रूप में चुनने के लिए स्वतंत्र होता है और इस संबंध में उस पर कोई नियंत्रण न होने के कारण पक्षपात तथा पूर्वग्रह (Bias) के प्रवेश की पूर्ण संभावना है।

(स) निदर्शन संबंधी अशुद्धता का अनुमान जिन मान्यताओं पर किया जाता है उनमें से एक भी उद्देश्यपूर्ण निदर्शन में नहीं पाई जाती।

4. बहुस्तरीय निदर्शन (Multistage Sampling)–किसी भी अनुसंधान में जब अनुसंधानकर्ता अध्ययन के लिए सरल यादृच्छिक निदर्शन या स्तरीकृत यादृच्छिक निदर्शन विधि का उपयोग करता है तब उसके सामने निम्नलिखित कठिनाइयां मुख्य तौर पर आती हैं :

(क) सर्वप्रथम यह आवश्यक होता है कि उसके पास समग्र की पूरी सूची पहले से ही मौजूद हो। स्तरीकृत यादृच्छिक निदर्शन मे तो यह भी जरूरी होता है कि जिस लक्षण के आधार पर हम समग्र का विभाजन कर रहे हैं समग्र की सभी इकाइयों के बारे में उस लक्षण से संबंधित जानकारी पहले से ही हमारे पास हो अन्यथा उनका विभाजन समूहों में वर्गीकरण नहीं किया जा सकेगा। सामाजिक अनुसन्धान में कभी–कभी ऐसे भी अवसर आते हैं जब जिन इकाइयों के बारे में हम अध्ययन करना चाहते हैं उनसे संबंधित समग्र की पूरी सूची उपलब्ध नहीं होती। ऐसी स्थिति में यदि हम पहले समग्र की सूची का निर्माण न करें और उसके लिए संगणना का कार्य, जो कि अपने आप में बहुत अधिक समय लेने वाला होता है, न करें तब इन दोनों में से किसी भी पद्धति का उपयोग नहीं किया जा सकता। सूची निर्माण का कार्य तब और अधिक कठिन हो जाता है जब हमारा अध्ययनक्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत हो। इसे एक सरल उदाहरण से स्पष्ट

किया जा सकता है। यदि अनुसन्धानकर्ता घर में काम करने वाली नौकरानियों के बारे में कोई अध्ययन करना चाहे और उसके लिए सरल यादृच्छिक निदर्शन या स्तरीकृत यादृच्छिक निदर्शन लेना चाहे तो उसके लिए यह जरूरी होगा कि ऐसी नौकरानियों की एक सूची उसके पास हो। ऐसी सूची सामान्यतया उपलब्ध नहीं होती। ऐसे में अनुसंधानकर्ता के सामने एक ही विकल्प रहेगा कि प्रत्येक घर में जाकर यह पता लगाए कि उनके यहां कौन नौकरानी काम करती है और इस प्रकार नौकरानियों के समग्र की पूरी सूची तैयार करे। निश्चित रूप से यह कार्य अधिक समय लेगा जो कि अनुसन्धानकर्ता के पास नहीं होता है।

(ख) जब कभी अनुसन्धानकर्ता सरल यादृच्छिक निदर्शन या स्तरीकृत यादृच्छिक निदर्शन का उपयोग करता है तो उसके सम्मुख एक कठिनाई यह आती है कि यदि अध्ययन क्षेत्र अधिक बड़ा हो तो चुनी गई इकाइयों की भौतिक दूरी अधिक होती है ऐसी स्थिति में किसी एक इकाई के न मिलने पर या उससे कार्य पूरा करने के बाद दूसरी इकाई से संपर्क स्थापित करने के लिए या तो अनुसन्धानकर्ता के पास यातायात के द्रुतगामी साधन सुलभ हों अथवा उसे काफी समय इधर से उधर जाने में व्यय करना पड़ेगा। ऐसी सुविधा प्रायः सामान्य अनुसंधानकर्ता के पास नहीं होती है। इसी कारण वह ऐसा प्रयास करता है कि अध्ययन के लिए चुनी गई इकाइयों को एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र तक सीमित रखा जाए। इन दोनों ही स्थितियों में बहुस्तरीय निदर्शन एक उपयुक्त विकल्प है।

बहुस्तरीय निदर्शन में अनुसन्धानकर्ता सबसे पहले अध्ययन क्षेत्र को भौगोलिक आधार पर छोटे–छोटे क्षेत्रों में विभाजित करता है। ये क्षेत्र कितने होंगे तथा इनका आधार क्या होगा, यह अध्ययन क्षेत्र के विस्तार और स्वरूप पर निर्भर करता है। यदि अनुसन्धानकर्ता को उदयपुर क्षेत्र में इस प्रकार के निदर्शन का चयन करना है तो वह उदयपुर शहर को नगरपालिका के उनतालीस बार्डों में विभाजित कर सकता है। इसी प्रकार विभाजन का कोई दूसरा आधार भी लिया जा सकता है। अध्ययनक्षेत्र को छोटे–छोटे भौगोलिक क्षेत्रों में विभाजित करने के बाद अनुसन्धानकर्ता उनमें से कुछ वार्डों का चयन रैण्डम विधि जैसे लॉटरी या दूसरी विधि के द्वारा करता है, जैसे यदि उसने अध्ययन क्षेत्र को 39 भागों में विभाजित किया है तो वह पहले 1 से 39 तक लॉटरी डाल देगा उसमें से 3–4 या जिस भी संख्या में वह चाहे क्षेत्रों का चयन अपने अध्ययन के लिए कर लेगा। उदाहरण के तौर पर लॉटरी निकालने पर 2, 7, 26 या 37 कार्ड निकले। उस स्थिति में अनुसन्धानकर्ता निदर्शन का चुनाव पूरे शहर की इकाइयों में से नहीं करेगा वरन उसे उन्हीं क्षेत्रों तक सीमित रखेगा। उन क्षेत्रों का चयन करने के बाद अनुसन्धानकर्ता इन क्षेत्रों की इकाइयों की सूची प्राप्त करेगा। यदि उपलब्ध नहीं है तो वह संगणना के द्वारा अध्ययन से संबंधित इकाइयों की सूची का निर्माण करेगा। इस प्रकार तैयार की गई सूची में यदि इकाइयों की कुल संख्या इतनी हो कि उन सभी का उपलब्ध साधनों के द्वारा अध्ययन हो सकता हो तब वह उन सभी इकाइयों के तथ्यों का संकलन करेगा। इसके विपरीत यदि उसे ऐसा लगे कि इकाइयों की संख्या बहुत अधिक है तो इस प्रकार बनाई गई सूची में से वह सरल यादृच्छिक निदर्शन के द्वारा इकाइयों का चयन करेगा। चूंकि इस पूरी प्रक्रिया में अनुसन्धानकर्ता एक से अधिक स्तरों

पर निदर्शन पद्धति का उपयोग करता है तो इस कारण उसे बहुस्तरीय निदर्शन कहा जाता है।

5. गुच्छ निदर्शन (Cluster Sampling)—यदि हम किसी समष्टि की बहुत से समूहों में बांट लें और फिर इनमें से केवल कुछ समूहों का निदर्श लेकर उनके तत्वों का अध्ययन करें तो इसे गुच्छ निदर्शन कहते हैं। जैसे यदि किसी राज्य में 200 चुनाव क्षेत्र हों और हम इनमें से 10 का निदर्श ले लें और इसके मतदाताओं का अध्ययन करें तो यह गुच्छ निदर्शन होगा। इस प्रकार से सारे राज्य में नहीं घूमना पड़ेगा। अपने निदर्श में आए चुनाव क्षेत्रों के आधार पर हम सारे राज्य के विषय में आकलन कर सकेंगे। सामाजिक सर्वेक्षणों में इस प्रणाली का उपयोग मुख्यतया आधार सामग्री संग्रह के लिए, यात्रा के व्यय को बचाने के उद्देश्य से होता है। गुच्छों के निर्माण के विषय में निम्न तथ्य उल्लेखनीय हैं :

(क) इकाइयों के एक संग्रह को गुच्छ के नाम से सम्बोधित किया जाए अथवा नहीं इस बात का निर्धारण विशिष्ट परिस्थितियों पर निर्भर करता है। कहीं गुच्छ एक जनपद (जिला) के रूप में हो सकता है तथा कहीं यह एक मकान के रूप में हो सकता है।

(ख) गुच्छ आवश्यक रूप से प्राकृतिक संकलन नहीं होते। उदाहरण के लिए क्षेत्र निदर्शन के दौरान मानचित्र पर जाली रखते हुए कृत्रिम गुच्छों का निर्माण किया जाता है किंतु प्रायः गुच्छ निदर्शन के दौरान समग्र के प्राकृतिक समूहों में प्रयोग किया जाता है।

(ग) किसी एक ही निदर्शन प्रचना के अंतर्गत गुच्छों के अनेक प्रकारों का प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए राज्य के अंतर्गत जिलों, जिलों के अंतर्गत तहसीलों, तहसीलों के अंतर्गत ब्लाकों, ब्लाकों के अंतर्गत गांवों तथा गांवों के अंतर्गत परिवारों का प्रयोग गुच्छों के रूप में किया जा सकता है।

(घ) गुच्छ जितने बड़े होंगे, निदर्शन की लागत उतनी ही कम होगी। गुच्छ निदर्शन में यदि हम केवल एक बार निदर्शन करें तो उसे एक पद निदर्शन कहते हैं और यदि एक से अधिक बार करें तो उसे बहु–पद निदर्शन कहते हैं। जैसे यदि हमें किसी राज्य के मतदाताओं का अध्ययन करना हो और हम 10 चुनाव क्षेत्रों का यादृच्छिक निदर्शन लेकर इन 10 चुनाव क्षेत्रों के सभी मतदाताओं का अध्ययन करें तो यह एक पद निदर्शन होगा क्योंकि हमने केवल एक ही बार निदर्शन लिया है। किंतु यदि हम (1) चुनाव–क्षेत्रों का यादृच्छिक निदर्श ले लें, और फिर निदर्श में आए चुनाव–क्षेत्र में से, (2) गांवों का यादृच्छिक निदर्श ले लें, और फिर निदर्श में आए प्रत्येक गांव में से (3) मतदाताओं का यादृच्छिक निदर्श ले लें तो यह त्रि–पद निदर्शन होगा। यहां हमने तीन बार निदर्शन लिया है। प्रत्येक बार प्राकृतिक निदर्शन होना चाहिए फिर चाहे वह यादृच्छिक हो या व्यवस्थित। गुच्छ निदर्शन में यह प्रयत्न किया जाता है कि गुच्छे यथासंभव छोटे हों जिससे आने–जाने में व्यय कम हो। साथ ही यह भी प्रयत्न रहता है कि प्रत्येक गुच्छे के अन्दर अधिक से अधिक विषमता हो। जैसे विधानसभा चुनावक्षेत्र, लोकसभा वाले क्षेत्रों से छोटे होंगे। मतदाताओं के साथ साक्षात्कार के लिए शोधकर्ता को अधिक यात्रा न करनी पड़े, इस दृष्टिकोण से विधानसभा चुनावक्षेत्र अधिक

टिप्पणी

उपयुक्त होंगे। दूसरी आवश्यक बात यह है कि प्रत्येक गुच्छे के अन्दर अधिक से अधिक विषमता हो। यहां प्रत्येक चुनावक्षेत्र गांवों का गुच्छा है। यदि विधानसभा के चुनावक्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के गांव न आते हों तो लोकसभा के चुनावक्षेत्रों का निदर्शन लेना अधिक उपयुक्त होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि निदर्शन के इन अवसरों में किस सीमा तक वैषम्य हो सकता है। यथासंभव दोनों उद्देश्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है। जैसे यदि हमें लगे कि विधानसभा के चुनावक्षेत्रों में सभी प्रकार के गांव आ जाते हैं तो इनका प्रतिदर्श ले लेना ठीक होगा क्योंकि ये छोटे भी हैं और विषम भी। गुच्छ प्रतिचयन यादृच्छिक निदर्शन से बहुधा सस्ता पड़ता है। उदाहरणार्थ, यदि हम सारे भारत में 2,000 मतदाताओं का निदर्श लेना चाहें और यादृच्छिक निदर्श लें, तो संभव है, अकेले मध्यप्रदेश में 150 मतदाताओं से साक्षात्कार के लिए हमें सारे राज्य में घूमना पड़े। इसके विपरीत गुच्छ निदर्शन में हो सकता है कि हमें केवल इसके पांच जिलों में जाना पड़े। यदि बहु–पद निदर्शन लिया जाए तो सभी जिलों में भी नहीं घूमना पड़ेगा, कुछ गांवों में जाने से ही काम चल जाएगा।

- **गुच्छ निदर्शन के प्रमुख लाभ**

1. विस्तृत भौगोलिक क्षेत्र में फैले हुए समग्र का अध्ययन गुच्छ निदर्शन की सहायता से अधिक बचतपूर्ण ढंग से किया जा सकता है।
2. जहां समग्र के उप समूहों के विषय से आगणन प्राप्त करना हो। उदाहरण के लिए गुच्छ निदर्शन का प्रयोग करते हुए अध्ययन करने पर प्रत्येक मकान में रहने वाले व्यक्तियों की औसत संख्या भी ज्ञात हो जाती है।
3. कुछ परिस्थितियों में गुच्छों का प्रयोग बार–बार किया जा सकता है जैसे कि पैनल अध्ययनों के अंतर्गत जिसमें हम एक निश्चित अवधि में समग्र में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करना चाहते हैं।
4. निदर्शन ढांचे के उपलब्ध न होने पर स्वयं सूची बनाने की आवश्यकता का अनुभव होता है और हमारी इस आवश्यकता की पूर्ति गुच्छनिदर्शन द्वारा संभव बनाई जाती है।
5. गुच्छ निदर्शन की कुशलता को बढ़ाने के लिए निम्न प्रकार के उपायों को अपनाया जा सकता है :

   (i) गुच्छों का स्तरीकरण,

   (ii) गुच्छों के आकार का कम किया जाना,

   (iii) उप–निदर्शन।

6. अभ्यंश निदर्शन (Quota Sampling)–अभ्यंश निदर्शन या कोटा निदर्शन में यह प्रयास किया जाता है कि विभिन्न तत्व जिस अनुपात में समग्र में पाए जाते हैं उसी अनुपात में निदर्शन में भी आ जाए, किंतु इकाइयों का चयन आकस्मिक ही होता है। दूसरे शब्दों में, अभ्यंश निदर्शन यादृच्छिक निदर्शन का ही सुधारा हुआ रूप है। इसमें समग्र के मुख्य स्तरों का ध्यान रखा जाता है एवं यह प्रयास किया जाता है कि प्रत्येक स्तर का प्रतिनिधित्व निदर्शन में होगा यदि प्रत्येक स्तर का सदस्य अपने सही अनुपात में निदर्शन में न भी आ सके तो कम से कम यह होना चाहिए कि प्रत्येक स्तर के विषय

में अनुमान लगाया जा सके। इस पद्धति को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी अधिक उपयुक्त नहीं माना जाता एवं इसके अंतर्गत भी उत्तरदाताओं का चुनाव अनुसन्धानकर्ता स्वेच्छा से ही करता है। अभ्यंश निदर्शन का उपयोग करते समय अनुसंधानकर्ता यह ध्यान में रखता है कि अध्ययन के दृष्टिकोण से किन–किन लक्षणों के आधार पर विभिन्न वर्गों में से इकाइयों का चुनाव करना अधि ाक उपयुक्त होगा। ऐसा करने के उपरांत यह निश्चित कर दिया जाता है कि प्रत्येक वर्ग में से कितने उत्तरदाताओं से आंकड़ों को एकत्रित करना है इस संख्या को ही अभ्यंश या कोटा कहा जाता है। प्रत्येक वर्ग में से चयन की जाने वाली इकाइयों की संख्या तय करने के उपरांत अनुसंधानकर्ता इस बारे में पूर्णतः स्वतंत्र होता है कि, 'वह इन वर्गों में किन इकाइयों का चयन अपने अध्ययन में करे।

अपनी सुविधा के अनुसार या आकस्मिक विधि से इकाइयों को लेते हुए वह तथ्यों का संकलन करता है। यदि यह मान लें कि हमें किसी विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की राजनीतिक जानकारी का अध्ययन करना है और हमारे पास पुरुष विद्यार्थियों की जानकारी स्त्री विद्यार्थियों से अधिक है। यदि दोनों अपने सही अनुपात में निदर्शन में आये तभी निदर्शन के माध्य से समग्र के माध्य का सही अनुमान लग सकेगा। इसके विपरीत यदि पुरुष अपने अनुपात से अधिक आ गए तो निदर्शन का माध्य घट जाएगा। इसलिए हम यह प्रयत्न करते हैं कि निदर्श में उनका अनुपात लगभग वही हो जो समग्र में है। अब यदि हमें ज्ञात है कि कुछ विद्यार्थियों में पुरुषों की संख्या स्त्रियों से दुगुनी है तो हम साक्षात्कार लेने वाले को यह निर्देश देते हैं कि उसे 90 विद्यार्थियों के साथ साक्षात्कार करना होता था। किंतु अभ्यंश निदर्शन में उसे कोई सूची नहीं दी जाती। उसे जो भी विद्यार्थी मिलते जाते हैं उनसे वह साक्षात्कार करता जाता है, और प्रयत्न करता है कि उनकी संख्या निर्देश के अनुसार काफी हो जाए और उनमें पुरुषों और स्त्रियों का निर्दिष्ट अनुपात हो जाए। इस प्रकार इतने विद्यार्थी हमें मिल जाते हैं कि हम पुरुषों और स्त्रियों की अलग–अलग जानकारी का अनुमान लगा सकें, और साथ ही दोनों को मिलाकर कुल विद्यार्थियों की जानकारी का भी।

अभ्यंश निदर्शन के पक्ष में कई तर्क दिए जाते हैं। एक तो यह कि इसमें खर्च कम आता है क्योंकि पहले से चुने हुए उत्तरदाताओं को नहीं ढूंढना पड़ता। दूसरे इसके प्रबन्धन में आसानी होती है। प्राकृतिक निदर्शन की कठिनाइयां नहीं उठानी पड़ती। साक्षात्कार के लिए बार–बार प्रयत्न नहीं करना पड़ता। तीसरे इसे शीघ्रतापूर्वक किया जा सकता है। इंग्लैंड में रेडियों के कार्यक्रमों के विषय में लोगों के मत जानने के लिए इसे प्रयुक्त किया गया है। इस प्रकार के सर्वेक्षण में प्रतिदिन 3,000 से अधिक लोगों से पिछले दिन के कार्यक्रमों के विषय में पूछा जाता है। यदि दूसरे ही दिन न पूछा जाए तो यह संभावना रहती है कि लोग इनके विषय में भूल जाएं। अभ्यंश निदर्शन से ही इतनी जल्दी इतने लोगों का निदर्शन और साक्षात्कार हो सकता है। चौथे, नियत मात्रात्मक निदर्शन के लिए समग्र सूची की आवश्यकता नहीं होती।

इन लाभों के होते हुए भी अभ्यंश निदर्शन यादृच्छिक निदर्शन का एक सुधरा हुआ रूप ही है। यह पाया गया है कि साक्षात्कार लेने वाले अपने मित्रों से अधिक साक्षात्कार करते हैं। मित्र बहुत–सी बातों (जैसे विचार, रुचि, आदि) में एक जैसे होते हैं और हो सकता है उनमें और दूसरे लोगों में काफी भेद हो। निदर्शन में अपने सही अनुपात से अधिक होने से उससे लगाए गए अनुमान पर काफी प्रभाव पड़ सकता है। इसी प्रकार

साक्षात्कर्ता बहुधा यह प्रयत्न करता है कि मेले, तमाशे, आदि में जाकर बहुत–से लोगों से आसानी से साक्षात्कार कर लें। किंतु यहां भी यह संभावना रहती है कि मेले–तमाशे में जाने वाले लोग न जाने वाले लोगों से काफी भिन्न हों। यदि साक्षात्कार घरों पर लिया जाता है तो वह भवन और लोगों के कपड़ों आदि से प्रभावित होकर कुछ को चुनाव में अधिमान दे सकता है। बहुधा पाया गया है कि नियत मात्रात्मक निदर्शन में अमीर, उच्चवर्गीय लोग अपने अनुपात से अधिक आ सकते हैं। इन सब कठिनाइयों का निराकरण प्राकृतिक निदर्शन द्वारा ही हो सकता है। किंतु यदि शोधकर्ता को इन खतरों का ध्यान रहे तो अभ्यंश निदर्शन में भी वह इनके निराकरण के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील हो सकता है।

7. व्यवस्थित निदर्शन (Systematic Sampling)–निदर्शन का एक और सरल ढंग है व्यवस्थित निदर्शन। इसमें यादृच्छिक संख्याओं का उपयोग करने के स्थान पर समष्टि सूची में से नियमित अंतराल के बाद सदस्यों को चुन लेते हैं। जैसे यदि 1,500 की समष्टि में से हमें 100 का निदर्श लेना हो तो हम समष्टि की सूची में से प्रत्येक पन्द्रहवें सदस्य को चुन लेते हैं। 1,500 को 100 से भाग देकर यह 15 का अंतराल हमें मिल जाता है। यह आवश्यक है कि पहले तत्व का चयन यादृच्छिक हो। पहली संख्या चुनने के लिए हम लॉटरी की पद्धति या यादृच्छिक संख्याओं की तालिका का उपयोग कर सकते हैं। मान लें हमें पहली यादृच्छिक संख्या 10 मिलती है। तब हमारे निदर्श में आने वाली संख्याएं होंगी 10, 25, 40, 55, 70, 85 आदि। सूची के अंत तक जाने पर हमें 100 संख्याएं मिल जाएंगी। इन संख्याओं वाले सदस्य हमारे व्यवस्थित निदर्शन में माने जाएंगे। व्यवस्थित निदर्शन का उपयोग सामाजिक शोध में बहुधा होता है। यदि समष्टि की सूची अत्यन्त लंबी हो या हमें बड़ा निदर्श लेना हो तो व्यवस्थित निदर्शन से अधिक सरल होता है। उदाहरणार्थ, मान लें हमें किसी चुनाव क्षेत्र के 50,000 मतदाताओं में से 1,000 का निदर्श परिकल्पना या उपकल्पना या प्राक्कल्पना लेना है। यादृच्छिक संख्याओं द्वारा निदर्शन के लिए हमें पहले सारे मतदाताओं के आगे 1, 2, 3 आदि 50,000 तक संख्याएं लिखनी होंगी, फिर उनमें से निदर्श में आई संख्याओं वाले सदस्यों को ढूंढ–ढूंढ कर निदर्शन हो सकेगा। इसके स्थान पर व्यवस्थित निदर्शन में हम एक यादृच्छिक प्रारंभ (जैसे ऊपर उदाहरण में दसवां व्यक्ति) से लेकर प्रत्येक पचासवें व्यक्ति को अपने निदर्श में रखते जाएंगे।

8. आकस्मिक निदर्शन (Accidental Sampling)–आकस्मिक निदर्शन, निदर्शन का वह प्रकार है जो पूर्णरूप से मनमाने ढंग से किया जाता है अर्थात यह पद्धति पूर्णतः अवैज्ञानिक है। यहां अनुसंधानकर्ता अपनी इच्छानुसार निदर्शन सूची से आवश्यक संख्या में इकाइयों का चुनाव करता है। निदर्शन की इस प्ररचना में समय, धन एवं प्रयासों के व्यय में बचत तो अवश्य होती है किंतु इसमें पूर्वग्रह अधिक तथा सूक्ष्मता कम पाई जाती है। जहोदा ने इसकी चर्चा करते हुए लिखा है कि यह एक ऐसी पद्धति है जिसमें तथ्यों का संकलन करने से पूर्व अनुसंधानकर्ता इकाइयों का चयन नहीं करता है बल्कि वह तथ्यों के संकलन के क्षेत्र के साथ अध्ययन क्षेत्र में पहुंच जाता है। अध्ययन क्षेत्र में अध्ययन विषय से संबंधित जो भी इकाई उसे मिले वह उससे तथ्यों को प्राप्त करने का प्रयास कर लेता है। अन्यथा वह इस इकाई को छोड़कर दूसरी इकाई से तथ्यों का संकलन, करता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि आकस्मिक रूप से जो भी उत्तरदाता मिले और तथ्य प्रस्तुत करने को तैयार हो वह उसे अध्ययन का अंग बना लेता है तथा

शेष को छोड़ता जाता है। इस प्रक्रिया को तब तक जारी रखता है जब तक कि एक पूर्ण निश्चित संख्या में उत्तरदाताओं से तथ्य प्राप्त नहीं हो जाते। चूंकि इस पद्धति में उत्तरदाता का चयन पूर्ण रूप से अनुसंधानकर्ता पर निर्भर करता है और इसमें भी वह केवल तथ्य प्रस्तुत करने को तैयार इकाइयों को ही सम्मिलित करता है अतः यह पद्धति विश्वसनीय, प्रतिनिधि व वैज्ञानिक नहीं मानी जा सकती है। इसका अभिप्राय यह है कि जिन अध्ययनों के आधार पर साधारणीकरण, उपकल्पना का परीक्षण या वैज्ञानिक सिद्धांतों का विकास या निर्माण करना हो उनमें वह पद्धति काम में ली जा सकती है।

3.3.6 प्रश्नावली निर्माण, अनुसूची और साक्षात्कार

इन तीनों अनुसंधान प्रविधियों को क्रमशः इस प्रकार समझा जा सकता है–

(अ) प्रश्नावली

सामाजिक अनुसंधान प्रक्रिया में अनुसंधानकर्ता द्वारा तथ्य या आंकड़े संकलित करने की प्रविधियों में एक महत्वपूर्ण प्रविधि प्रश्नावली है। प्रश्नावली अनेक प्रश्नों से युक्त एक ऐसी सूची होती है, जिसमें अध्ययन विषय से संबंधित विभिन्न पक्षों के बारे में पहले से तैयार किए गए प्रश्नों का समावेश होता है। उत्तरदाताओं से प्रश्नावलियां भरवाकर आवश्यक जानकारी संकलित की जाती है। यह प्रश्नावली अनुसंधानकर्ता उत्तरदाता के पास या तो स्वयं लेकर जाता है अथवा डाक से प्रेषित की जाती है और डाक द्वारा या स्वयं संकलित भी की जाती है।

प्रश्नावली का अर्थ एवं परिभाषा

प्रश्नावली विभिन्न प्रश्नों की एक व्यवस्थित सूची है जिसका संबंध किसी विषय से संबंधित व्यक्तियों से डाक द्वारा सूचनाएं प्राप्त करके समंकों को एकत्र कर उनसे निष्कर्ष निकालना है। साधारण शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अध्ययन विषय से संबंधित लोगों से सूचना प्राप्त करने हेतु बनाए गए प्रश्नों की व्यवस्थित सूची को प्रश्नावली कहते हैं। जिस प्रश्नावली को डाक द्वारा प्रेषित किया जाता है। अतः इसे डाक द्वारा प्रेषित प्रश्नावली भी कहा जाता है।

विभिन्न विद्वानों ने प्रश्नावली की निम्न प्रकार से परिभाषाएं दी हैं–

गुडे एवं हाट के अनुसार– ''सामान्यतः प्रश्नावली शब्द प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने की उस प्रणाली को कहते हैं, जिससे स्वयं उत्तरदाता द्वारा भरे जाने वाले पत्रक का प्रयोग किया जाता है।''

पी.वी. यंग के अनुसार–''प्रश्नावली को एक ऐसे प्रपत्र की परिभाषा दी जाती है जिसको उत्तरदाताओं के पास प्रायः डाक द्वारा प्रेषित किया जाता है। जिसमें उत्तरदाताओं द्वारा अपना स्वयं मूल्यांकन प्रस्तुत किया जाता है।''

बोगार्डस के अनुसार–''प्रश्नावली विभिन्न व्यक्तियों के उत्तर देने के लिए दी गई प्रश्नों की एक तालिका या सूची है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रश्नावली किसी सामाजिक घटना के अध्ययन के प्रयोग में लाई जाने वाली प्रश्नों की एक सूची है, जिसमें सूचनादाता को जो प्रश्नावली प्राप्त हुई है स्वयं ही उस प्रश्नावली को भरकर सूचनाएं प्रेषित करता है।

प्रश्नावली के उद्देश्य

प्रश्नावली का प्रयोग मुख्य रूप से निम्न उद्देश्यों के लिए किया जाता है–

1. तथ्यात्मक सूचनाओं के संकलन के लिए।
2. विषय से संबंधित उन व्यक्तियों से सूचना संकलन करने के लिए जो बहुत दूर हो, जहां पर अनुसंधानकर्ता के लिए जाना कठिन हो।
3. यह बड़े प्रश्नों के उत्तर और विभिन्न लोगों से सुझाव प्राप्त करने में भी सहायक होती है।

प्रश्नावली के प्रकार

सामाजिक घटनाओं के अध्ययन के लिए प्रश्नावली का उपयोग प्रश्नों के समूह के रूप में किया जाता है। सामाजिक घटनाओं में जटिलता व विविधता होती है। प्रश्नावली का निर्माण भी इन समस्याओं से संबंधित हो इसके लिए विभिन्न तरह की प्रश्नावली का निर्माण करना होता है। प्रश्नावली की संरचना के आधार पर प्रश्नों की प्रकृति या तथ्यों की प्रकृति के आधार पर भिन्न–भिन्न प्रकारों में वर्गीकरण किया जाता है।

1. **संरचित प्रश्नावली**–सामाजिक सर्वेक्षण अथवा शोध में प्रयोग की जाने वाली उस प्रश्नावली को संरचित प्रश्नावली कहते हैं, जिसकी रचना वास्तविक अध्ययन आरंभ होने से पहले ही कर ली जाती है। इसके बाद में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता है। पी.वी. यंग के मतानुसार, ''संरचित प्रश्नावली उस प्रश्नावली को कहा जाता है जिसकी संरचना शोध शुरू करने से पहले कर ली जाती है तथा जिनमें निश्चित, स्पष्ट अथवा पूर्व निर्धारित प्रश्नों के अतिरिक्त ऐसे अतिरिक्त प्रश्न भी सम्मलित रहते हैं, जो अपर्याप्त उत्तरों का स्पष्टीकरण करने पर अधिक विस्तृत उत्तर प्राप्त करने के लिए आवश्यक समझे जाते हैं। ऐसी प्रश्नावली का उपयोग एक विस्तृत अध्ययन क्षेत्र में फैले हुए व्यक्तियों से प्राथमिक तथ्यों का संकलन करने तथा संकलित तथ्यों का पुनर्परीक्षण करने के लिए किया जाता है।''

   साधारणतया किसी समूह की सामाजिक–आर्थिक विशेषताओं का अध्ययन करने अथवा प्रशासनिक स्तर पर परिवर्तन हेतु व्यक्तियों के सुझाव जानने के लिए ऐसी प्रश्नावली का उपयोग किया जाता है।

2. **असंरचित प्रश्नावली**– असंरचित प्रश्नावली उस प्रश्नावली को कहते हैं जिसकी रचना वास्तविक अध्ययन आरंभ होने से पहले नहीं की जाती है। इनमें केवल उन विषयों का वर्णन होता है, जिनके विषय में उत्तरदाताओं से सूचना अर्जित करनी होती है। संरचित प्रश्नावली के विषय में कैंट का कहना है कि "असरंचित प्रश्नावली वह होती है जिसमें कुछ निश्चित विषय क्षेत्रों का समावेश होने के साथ उन लोगों की संख्या भी निर्धारित होती है जिनसे साक्षात्कार करना हो लेकिन इस प्रणाली में प्रश्नों के स्वरूप और उनके क्रम का निर्धारण करने में शोधकर्ताओं को काफी स्वतंत्रता प्राप्त होती है।" पी.वी. यंग के अनुसार–"असंरचित प्रश्नावली का विषय क्षेत्र अवश्य निश्चित होता है, जिसके अंतर्गत ही साक्षात्कार की आवश्यकतानुसार अध्ययनकर्ता या शोधकर्ता स्वतंत्रतापूर्वक प्रश्नों की जांच कर सकता है।"

3. **बंद प्रश्नावली**– इसके अंतर्गत प्रश्नावली में हर प्रश्न के साथ–साथ संभावित सही जवाब भी दिए जाते हैं तथा उत्तरदाता को इन्हीं उत्तरों में से सही उत्तर देना होता है। उत्तरदाता अपनी इच्छा से प्रश्नों के उत्तर नहीं दे सकता है। इसलिए इसे सीमित या प्रतिबंधित प्रश्नावली भी कहा जाता है। अन्य शब्दों में यह कह सकते हैं कि बंद प्रश्नावली वह प्रश्नावली है जिसके उत्तरदाता पहले से तय उत्तरों में से ही किसी एक उत्तर के साथ अपना मत प्रकट करता है। ऐसी प्रश्नावली का प्रमुख लाभ यह है कि इससे प्राप्त सूचनाओं का सरलता से सारणीयन करके उनका वर्गीकरण किया जा सकता है। इस प्रकार की प्रश्नावली के कुछ नमुना प्रश्न नीचे दिए गए हैं–

प्रश्न	**निर्दिष्ट उत्तर**	
1. क्या आप बेरोजगार हैं:	(अ) हां	(ब) नहीं
2. आप किस आय वर्ग के अंतर्गत आते हैं?		
(अ) रु. 2000 से कम	(ब) रु. 2000 से रु. 5000 तक	
(स) रु. 5000 से रु. 1000 तक	(द) रु. 10000 से अधिक	
3. आपकी वैवाहिक स्थिति क्या है?	(अ) अविवाहित	(ब) विवाहित
	(स) विधवा	(इ) विधुर

सिन पाओ यंग ने लिखा है–"बंद प्रश्नावली से ज्यादातर पूछे गए प्रश्नों के प्रकणतः उत्तर दिए जाते हैं।"

बंद प्रश्नावली के गुण

- इस प्रकार की प्रश्नावली के आधार पर कम से कम समय एवं धन में अधिक से अधिक लोगों से तथ्य संचित किए जा सकते हैं।
- इसमें उत्तर देना उत्तरदाता के लिए आसान होता है।
- इससे संचित तथ्यों का स्पष्टीकरण एवं वर्गीकरण आसान हो जाता है।
- इससे उत्तरदाता के व्यक्तित्व का प्रत्येक प्रकार का गुण जो विषय से जुड़ा होता है अपने सही रूप में प्रकट हो जाता है।
- इससे गुणात्मक तथ्यों की जानकारी अर्जित की जा सकती है।
- यह ज्यादा उद्देश्य परक होती है।
- इसमें विषय से संबंधित लगभग सभी जानकारी प्राप्त हो जाती है।

बंद प्रश्नावली के दोष

- इस प्रकार की प्रश्नावली के आधार पर उत्तरदाताओं के सही विचारों को नहीं जाना जा सकता, क्योंकि उत्तरदाता संभावित जवाबों के अलावा अन्य जवाब देने के लिए स्वतंत्र नहीं रहता है।
- यह निर्माण में बहुत कठिन होता है।
- इसमें उत्तरदाता अपने उत्तर का औचित्य भी नहीं समझ पाता है।

4. **खुली प्रश्नावली**– इस प्रश्नावली में प्रश्न लिखे होते हैं तथा उत्तर के लिए स्थान खाली रहता है। यह प्रश्नावली विचारों के खुले प्रदर्शन का सशक्त रूप है। इसमें उत्तरदाता जो भी उत्तर देता है वे संक्षिप्त न होकर विस्तृत और

विवरणात्मक होते हैं। इस प्रकार की प्रश्नावली के कुछ नमूने प्रश्न नीचे दिए जा रहे हैं–

(क) आपकी राय में भारत में बढ़ते भ्रष्टाचार के मुख्य कारण कौन–कौन से हैं?

....

....

(ख) भारत को भ्रष्टाचार मुक्त करने के लिए आप कौन–कौन से सुझाव देते हैं?

....

....

खुली प्रश्नावली के लाभ

- यह बनाने में आसान है।
- यह उत्तरदाताओं से विषय संबंधी अधिक तथ्यात्मक जानकारी हासिल करने में सहायक हैं।
- उत्तरदाता अपने उत्तरों का कारण सहित विस्तारपूर्वक उत्तर दे सकता है।

खुली प्रश्नावली के दोष

- इसमें तथ्यों के उत्तर देने में अधिक ध्यान लगाना पड़ता है जिससे अनेक प्रश्नों के उत्तर नहीं प्राप्त हो पाते हैं।
- इसमें तथ्यों का सारणीकरण और वर्गीकरण करने में मुश्किल होता है।
- इसमें समय की खपत होती है, क्योंकि उत्तरदाता अपने उत्तरों को देने में पूर्णतया स्वतंत्र होता है।
- इसमें कभी–कभी तथ्यात्मक उत्तर नहीं मिल पाते। उत्तरदाता प्रायः विषय से संबंधित सही उत्तर नहीं दे पाता है।
- यह ज्यादा उद्देश्यपरक नहीं हो पाता है।

5. **मिश्रित प्रश्नावली**:–उपरोक्त प्रश्नावली के प्रकारों के गुणदोषों को ध्यान में रखते हुए अन्य प्रकार की प्रश्नावली तैयार की जा सकती है। इसमें से एक मिश्रित प्रश्नावली है। जिसमें कई प्रकार के प्रश्न समाविष्ट होते हैं। इसमें बंद व खुले दोनों तरह के सवालों का समावेश रखते हैं। इसमें विषय से संबंधित सूचना को अर्जित करने के लिए जिस तरह के सवालों की उपयोगिता होती है उससे संबंधित प्रश्नों का इसमें समावेश किया जा सकता है। अतः विषय का व्यापक एवं गहन अध्ययन करने के लिए इस प्रश्नावली में समस्त प्रकार के प्रश्नों को शामिल किया जाता है और सूचनाएं संकलित की जाती हैं। इस प्रश्नावली में सीमित एवं असीमित, बंद व खुली प्रश्नों का समावेश यथोचित किया जाता है।

   इस प्रश्नावली का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि उत्तरदाताओं के आजाद विचारों को जानने में सहायता मिलती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक प्रकार की प्रश्नावली के कुछ गुण व दोष भी हैं। अतः यह शोधकर्ता पर निर्भर करता है कि विषय से संबंधित जिस प्रकार की सूचना

टिप्पणी

उसे चाहिए वह उसी अनुरूप प्रश्नावली तैयार करे, जिससे वांछित जानकारी प्राप्त की जा सके और उपलब्ध जानकारी का सारणीकरण व वर्गीकरण आसानी से किया जा सके।

प्रश्नावली का नमूना

निम्न प्रश्नावली एक शॉपिंग माल की लोकप्रियता से संबंधित है। आप अपने उत्तरों की दिए गए विकल्पों पर (√) सही का निशान लगाकर या खाली स्थानों को भरकर प्रकट करिए–

शॉपिंग माल उपभोक्ता संबंधी प्रश्नावली

1. नाम : ....
2. पिता का नाम : ....
3. पता : ....
   ....
   फोन नं. ....
4. आयु : ....
5. शैक्षिक योग्यता : ☐ अनपढ़ ☐ हाईस्कूल
   ☐ इंटर ☐ स्नातक
6. आजीविका : ☐ सरकारी नौकरी
   ☐ प्राइवेट नौकरी
   ☐ व्यापार ☐ अन्य
7. लिंग : ☐ पुरुष ☐ स्त्री
8. वैवाहिक स्थिति : ☐ विवाहित ☐ अविवाहित
   ☐ विधुर या विधवा
   ☐ तलाक शुदा
9. परिवार के सदस्यों की संख्या : ☐ पुरुष ☐ स्त्री
   ☐ बच्चे
10. मासिक आय : ☐ 5000 रु. प्रति माह से कम
    ☐ 5000 रु. से 10000 रु. तक
    ☐ 10000 रु. से 20000 रु. तक
    ☐ 20000 रु. से अधिक
11. आप एक माह में कितनी बार शॉपिंग मॉल जाते हैं?
    ☐ माह में यदाकदा ☐ माह में 5 से 10 बार तक
    ☐ माह में 10 से 15 बार तक ☐ 15 से अधिक बार
12. आप शॉपिंग मॉल क्यों जाते हैं?
    ....
    ....
    ....

13. आप शॉपिंग मॉल में किन कारणों से माल खरीदना पसंद करते हैं?

    ....

    ....

टिप्पणी

14. क्या आप दैनिक उपभोग की अधिकांश वस्तुएं शॉपिंग मॉल से खरीदते हैं?

    ☐ हां ☐ नहीं

15. शॉपिंग मॉल के विक्रेताओं का व्यवहार कैसा है?

    विनम्र ☐ रुखापन ☐

    कुशल ☐ अकुशल ☐

    सहयोगी ☐ असहयोगी ☐

16. क्या आप शॉपिंग मॉल में किसी प्रकार की कठिनाई महसूस करते हैं?

    यदि हां तो किस प्रकार की कठिनाइयां हैं? बताइए।

    ....

    ....

17. शोपिंग माल में वस्तुओं की गुणवत्ता से क्या आप संतुष्ट हैं?

    ☐ हां ☐ नहीं

18. शॉपिंग मॉल के संबंध में आपके सुझावः

    ....

    ....

    ....

    ....

स्थानः

दिनांकः **उत्तरदाता के हस्ताक्षर**

आपको पुनः यह विश्वास दिलाते हुए कि आपके द्वारा दी गई सूचनाएं नितांत गोपनीय रखी जाएंगी।

सर्वेक्षणकर्ता के हस्ताक्षर

प्रश्नावली की विशेषताएं

सामाजिक अनुसंधान में एक श्रेष्ठ प्रश्नावली के निर्माण का अपना महत्व है, क्योंकि प्रश्नावली की विशेषताओं के आधार पर ही अनुसंधानकर्ता की सफलता और असफलता निर्भर करती है। अतः एक अच्छी प्रश्नावली तैयार करते समय उसमें निम्न बातों का समावेश किया जाना चाहिए–

1. प्रश्नावली आकार में छोटी व उद्देश्यपरक हो।
2. प्रश्न सीधे, सरल, एकार्थी और शीघ्र ही समझ में आने वाले होने चाहिए।
3. प्रश्नावली में प्रश्न इस प्रकार के हों कि वांछित सूचनाएं प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त की जा सकें।

टिप्पणी

4. प्रश्नों की प्रकृति ऐसी हो कि उत्तरदाता को उत्तर देने में किसी प्रकार की आपत्ति न हो।
5. जहां तक संभव हो प्रश्नों को सूचनादाता के रुचिपरक बनाया जाएं।
6. प्रश्नों में कोई मुश्किल शब्द नहीं होना चाहिए अन्यथा उत्तरदाता की समझ में न आने से वह उत्तर देने में असमर्थ हो सकता है।
7. प्रश्नों में विषय की व्याख्या की गई हो।

प्रश्नावली के निर्माण के सिद्धांत

प्रश्नावली प्राथमिक तथ्यों को प्राप्त करने का एक उत्तम साधन है, इसलिए यह आवश्यक है कि प्रश्नावली का निर्माण इस तरह किया जाए कि वे उपयोगी सिद्ध हों। प्रश्नावली का निर्माण जितना अधिक व्यवस्थित एवं सावधानीपूर्वक किया जाता है, अनुसंधान के लिए सामग्री का संकलन करना उतना ही उपयोगी हो जाता है। एक प्रश्नावली के निर्माण में निम्न सिद्धांतों का समावेश किया जाना चाहिए–

1. **विषय का पूर्ण विश्लेषण**–सबसे पहले विषय के बारे में अनुसंधानकर्ता को पूर्ण अनुभव होना चाहिए। इसका उपयोग प्रश्नावली के निर्माण में करना चाहिए ताकि विषय से संबंधित सभी प्रश्नों को सम्मिलित किया जा सके। अतः समस्त पक्षों का उचित विश्लेषण करने के पश्चात ही प्रश्नावली तैयार की जानी चाहिए।
2. **प्रश्नों की उपयोगिता**–प्रश्नों को प्रश्नावली में स्थान तभी देने चाहिए जब अध्ययन के संबंध में उनकी उपयोगिता हो। अनुपयुक्त प्रश्नों का समावेश होने से समय, धन एवं श्रम का दुरुपयोग होता है।
3. **प्रश्नों की प्रकृति एवं भाषा**– प्रश्नों की प्रकृति और उनकी भाषा प्रश्नावली के आवश्यक अंग हैं। अतः प्रश्नावली में प्रश्नों की प्रकृति और भाषा से संबंधित निम्न विशेषताएं होनी चाहिए–
   - प्रश्नावली का आकार बड़ा नहीं होना चाहिए।
   - प्रश्नावली के प्रश्न उत्तरदाता के रुचिपरक हों।
   - प्रश्नावली के प्रश्न अत्यंत सरल और स्वभाविक प्रकृति के हों।
   - प्रश्नावली के प्रश्न स्पष्ट तथा विषय से संबंधित हों।
   - प्रश्नावली के प्रश्न ऐसे हों कि उत्तरदाता सही उत्तर दे सके।
   - प्रश्नावली के प्रश्न एक क्रम में होने चाहिए।
   - प्रश्नावली के प्रश्न इस प्रकार के हों जिनका अध्ययन के बाद संख्यात्मक विवेचन करना संभव हो।
   - प्रश्नावली के प्रश्नों में प्रयुक्त टैक्निकल शब्दों का अर्थ स्पष्ट कर देना चाहिए।
   - व्यक्तिगत जीवन, भावनाओं, रहस्यात्मक जीवन से संबंधित तथा व्यंग्यात्मक प्रश्न नहीं होने चाहिए।
   - प्रश्न इस प्रकार के भी न हों जिनसे किसी प्रकार की उपकल्पना की गुंजाइश हो।

4. **प्रश्नावली का भौतिक स्वरूप**– इसमें निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है–
    - प्रश्नावली का आकार सीमित होना चाहिए।
    - प्रश्नावली में उत्तरदाता की प्रारंभिक सूचनाएं स्पष्ट होनी चाहिए।
    - प्रश्नावली में प्रश्नों की संख्या अधिक होने पर उन्हें विभिन्न खंडों में बांट देना चाहिए।
    - प्रश्नावली की लिपि स्पष्ट व आकर्षक होनी चाहिए।
5. **प्रश्नावली की पूर्व परीक्षा से संबंधित सावधानियां**–प्रश्नावली की पूर्व परीक्षा से तात्पर्य यह है कि प्रश्नावली को तैयार करने के पहले स्वयं उसे भरें। इसे भरने में जो कठिनाइयां और असुविधाएं आती हैं उनका निराकरण कर लें उसके बाद ही उससे संबंधित व्यक्ति के पास भेजा जाना चाहिए। प्रश्नावली के अग्रलिखित लाभ हैं–
    - इससे अनावश्यक और असंबंधित उत्तरों से बचा जा सकता है।
    - इससे प्रश्नावली की व्यवस्था में कमी का पता चलने पर उसे व्यवस्थित किया जा सकता है।

प्रश्नावली की विश्वसनीयता की जांच

प्रश्नावली से प्राप्त सूचनाएं दोनों ही प्रकार की हो सकती हैं– विश्वसनीय और अविश्वसनीय। प्रश्नावली से प्राप्त सूचनाओं की विश्वसनीयता की जांच करने के निम्न तरीके हैं–

1. **प्रश्नावली को पुनः भेजना**– प्रश्नावली की विश्वसनीयता को जांचने के लिए एक ही प्रश्नावली उन्हीं सूचनादाताओं के पास कुछ समय के पश्चात भेजी जानी चाहिए और प्राप्त उत्तरों का मिलान पुराने उत्तरों से किया जाना चाहिए। यदि दोनों उत्तर समान हों तो प्रश्नावली विश्वसनीय होती है।
2. **समान अध्ययन**– प्रश्नावली की विश्वसनीयता को जांचने का दूसरा आसान उपाय है कि प्रश्नावली दूसरे समान वर्ग के पास भेजी जाए तथा इस प्रश्नावली के उत्तर को पूर्व प्रश्नावली के उत्तरों से मिलान किया जाए। यदि इन दोनों प्रश्नावलियों के उत्तरों में समानता पाई जाए तो यह मानना चाहिए कि प्रश्नावली विश्वसनीय है।
3. **अन्य अनुसंधान विधियों का प्रयोग**– प्रश्नावली की विश्वसनीयता की जांच करने के लिए दूसरी अनुसंधान विधियों का प्रयोग भी किया जा सकता है। इनमें प्रत्यक्ष साक्षात्कार, अवलोकन एवं अनुसूची इत्यादि विधियां हैं। अगर इन विधियों द्वारा भी यही जवाब मिलता है जो प्रश्नावलियों से प्राप्त हुआ है तो प्रश्नावली को प्रमाणित एवं विश्वसनीय माना जाता है।
4. **पूर्व ज्ञान**–पूर्व ज्ञान के आधार पर भी प्रश्नावली की विश्वसनीयता की जांच की जाती है। समस्या के बारे में शोधकर्ता को जो पूर्व ज्ञान है इसी आधार पर प्रश्नावली के उत्तरों का मिलान किया जा सकता है। यदि प्रश्नावली के द्वारा इसके विपरीत उत्तर मिलते हैं तो प्रश्नावली को विश्वसनीय नहीं माना जा सकता।

प्रश्नावली के लाभ

प्रश्नावली के द्वारा प्राथमिक तथ्यों को संचित किया जाता है। इसके द्वारा सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में बहुत फायदा होता है। इसके निम्नलिखित गुणों के कारण तथ्यों को आसानी से संकलित किया जा सकता है।

1. इसके द्वारा अध्ययन में न्यूनतम खर्च आता है।
2. इसके माध्यम से व्यापक भौगोलिक क्षेत्र में विस्तारित विशाल जनसंख्या का अध्ययन सफलतापूर्वक हो जाता है।
3. इस तकनीक से कम समय तथा कम श्रम में तथ्य संकलित हो जाते हैं।
4. इस प्रणाली से सूचना की पुनरावृत्ति संभव नहीं हो पाती है। इसके द्वारा वस्तुनिष्ठ सूचना अर्जित करने की ज्यादा संभावना रहती है।
5. इस तकनीक से विश्वसनीय, पक्षपातरहित तथा प्रमाणित सूचनाओं को अर्जित किया जा सकता है। यह विधि स्वयं प्रशासित होती है।
6. इस विधि से तुलनात्मक अध्ययन आसानी से किया जा सकता है।
7. इसके द्वारा किया गया सांख्यिकीय विश्लेषण अंतिम होता है।
8. यह पद्धति सूचनादाताओं में जागरुकता का विकास करती है।
9. प्रश्नावली द्वारा सूचनाओं का वर्गीकरण एवं सारणीयन आसानी से किया जा सकता है।

प्रश्नावली की सीमाएं

प्रश्नावली के अनेक लाभ और गुण होते हुए भी इसमें अनेक दोष या सीमाएं पाई जाती हैं। ये सीमाएं निम्न हैं–

1. इसकी सहायता से केवल शिक्षित समूह से ही सूचना अर्जित की जा सकती है।
2. इसके द्वारा अपूर्ण सूचनाओं की प्राप्ति की संभावना बनी रहती है, क्योंकि प्रश्नावली को भरने में उत्तरदाता रुचि नहीं दिखाता है।
3. सूचनादाता के सहयोग के बिना अधिकतर प्रश्नावलियां लौटकर घर नहीं आती हैं।
4. प्रश्नावली से प्राप्त सूचनाएं अधिकतर संकुचित और सीमित होती हैं।
5. प्रश्नावली से प्राप्त सूचनाओं में उत्तरदाता की भावात्मक प्रेरणा का अभाव रहता है।
6. इसके द्वारा वास्तविक सूचनाओं को अर्जित करना कठिन होता है।
7. इसमें सार्वभौमिक सवालों का अभाव पाया जाता है।
8. यह प्रविधि सूक्ष्मतम अध्ययन के लिए अनुपयोगी है।
9. इसमें अस्पष्ट व स्वतंत्र लेख के कारण प्रश्नावली दोषपूर्ण हो जाती है।
10. इसके माध्यम से सिर्फ सहायक सूचनाएं ही प्राप्त की जा सकती हैं।

प्रश्नावली पद्धति में अनेक दोष होने के बावजूद भी इसके द्वारा विस्तृत क्षेत्र में सीमित साधन होने के बाद भी सरलतापर्वूक अध्ययन किया जा सकता है। निष्कर्षतः

यह कहा जा सकता है कि प्रश्नावली पद्धति न तो पूरी तरह दोषपूर्ण है और न पूर्णरूपेण दोषमुक्त, बल्कि सामाजिक अनुसंधान की अन्य प्रविधियों की अपेक्षा प्रश्नावली ज्यादा उपयोगी और स्पष्ट है।

(ब) अनुसूची प्रविधि

सामाजिक अनुसंधान में अध्ययन के लिए प्राप्त सामग्री का संकलन करने के लिए अनेक विधियों और यंत्रों का उपयोग किया जाता है। अनुसूची इन्हीं विधियों और यंत्रों में से एक है। वास्तव में, अनुसूची अनेक प्रश्नों की एक ऐसी लिखित सूची होती है, जिसे लेकर अनुसंधानकर्ता उत्तरदाता के पास जाता है और अध्ययन विषय से संबंधित विभिन्न प्रश्नों को पूछकर उनके उत्तरों का आलेखन करता है। इसका तात्पर्य यह है कि अनूसूची सफल साक्षात्कार का एक सरल माध्यम है। वास्तविकता तो यह है कि प्राथमिक सामग्री का संकलन करने के लिए अनुसूची एक ऐसी प्रविधि है जिसमें अवलोकन, साक्षात्कार तथा प्रश्नावली की विशेषताओं का समन्वय होता है। अनुसूची में अध्ययन विषय से संबंधित प्रश्न और सारणियां बनी रहती हैं। अनुसंधानकर्ता साक्षात्कार करते समय इन्हीं प्रश्नों और सारणियों को प्राप्त सूचनाओं के आधार पर भरता है और इनके आधार पर अपनी उपकल्पना की परीक्षा करता है।

अनुसूची का अर्थ एवं परिभाषाएं

सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में अनुसूची प्रश्नों की एक लिखित सूची है जो अनुसंधानकर्ता द्वारा अध्ययन विषय को ध्यान में रखकर की जाती है। अनुसूची अंग्रेजी के शिडयूल (Schedule) का हिंदी रूपांतर है, जिसका अर्थ होता है सूची या पत्रावली आदि। अनुसूची को अनेक विद्वानों ने निम्न प्रकार परिभाषित किया है–

पी.वी. यंग के अनुसार, ''अनुसूची शोधकर्ता द्वारा औपचारिक अनुसंधानों में प्रयोग किया जाने वाला एक ऐसा यंत्र है, जिसका मुख्य उद्देश्य बहुस्तरीय गुणात्मक तथ्य संकलन करने में मदद प्रदान करना है।''

लुंडबर्ग ने अनुसूची को परिभाषित करते हुए लिखा है, ''अनुसूची साक्षात्कार के दौरान भरा जाने वाला कार्य है। अर्थात अनुसूची प्रश्नों की वह सूची है जिसका उपयोग साक्षात्कार के वक्त सामाजिक समस्याओं के अध्ययन हेतु किया जाता है। शोधकर्ता स्वयं अनुसूची को भरता है।''

गुडे और हाट के अनुसार, ''अनुसूची साधारण प्रश्नों के एक समूह का नाम है, जो एक शोधकर्ता द्वारा उत्तरदाता से साक्षात्कार के समय पूछे जाते हैं और भरे जाते हैं।''

एम.एच. गोपाल ने अनुसूची को परिभाषित करते हुए लिखा है–''अनुसूची उन विभिन्न पदों की एक विस्तृत वर्गीकृत, नियोजित तथा क्रमबद्ध सूची होती है जिसके विषय में सूचनाएं एकत्रित करने की आवश्यकता पड़ती है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कह सकते हैं कि अनुसूची एक प्रकार की सामग्री संयम हेतु बनाई गई प्रश्नों की सूची है जिसका उत्तर स्वतः शोधकर्ता को अपने क्षेत्र में सूचनादाताओं के आमने सामने के संपर्क द्वारा प्राप्त होता है। इस तरह अनुसूची का महत्व सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में अत्यधिक उपयोगी होता है।

टिप्पणी

अनुसूची के उद्देश्य

अनुसूची के उद्देश्यों को निम्नांकित रूप में समझा जा सकता है–

1. **प्रामाणिक अध्ययन**–विषय से संबंधित प्रमाणित उत्तर प्राप्त करने के लिए शोधकर्ता को स्वयं व्यक्तिगत रूप सें उत्तरदाताओं से संबंध स्थापित करने होते हैं। शोधकर्ता उत्तरदाताओं से वही उत्तर प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, जो उसकी दृष्टि में उपयोगी एवं सार्थक है। इससे उत्तरदाताओं को विभिन्न अर्थ लगाने का अवसर नहीं प्राप्त होता और अध्ययन में प्रामाणिकता आती है।
2. **अनुपयोगी संकलन से बचाव**– अनुसूची का मुख्य उद्देश्य अध्ययन विषय से संबंधित प्रश्नों का क्रमबद्ध उत्तर प्राप्त करना होता है। अनुसूची के द्वारा शोधकर्ता अपनी स्मरण शक्ति के भरोसे नहीं रहता क्योंकि उसके पास प्रश्न लिखित व क्रमबद्ध होते हैं। अतः इसमें केवल संबंधित तथ्यों को ही संकलित किया जाता है।
3. **संख्यात्मक आंकड़ों के संकलन में उपयोगी**– अनुसूची प्रविधि द्वारा अध्ययन विषय से संबंधित संख्यात्मक सूचनाओं एवं आंकड़ों का संकलन किया जाता है। विचारात्मक सूचनाओं, गुणात्मक सूचनाओं या भावनात्मक जानकारी के लिए यह प्रविधि उपयुक्त नहीं है।

अनुसूची के प्रकार

विभिन्न विद्वानों ने अनुसूची के विभिन्न प्रकारों को स्पष्ट किया है, जैसे जॉर्ज लुंडबर्ग के अनुसार अनुसूची के तीन प्रकार हो सकते हैं–

1. वस्तुनिष्ठ तथ्यों को लिपिबद्ध करने वाली अनुसूचियां।
2. अभिवृत्तियों तथा मतों का निर्धारण और उनका माप करने वाली अनुसूचियां।
3. सामाजिक संगठनों तथा संस्थाओं की स्थिति और कार्यों को जानने से संबंधित अनुसूचियां।

पी.वी. यंग के अनुसार अनुसूची को पांच प्रकारों में विभाजित कर सकते हैं–

1. अवलोकन अनुसूची
2. मूल्यांकन अनुसूची
3. प्रलेख अनुसूची
4. संस्था सर्वेक्षण अनुसूची
5. साक्षात्कार अनुसूची

उपर्युक्त प्रकारों तथा अन्य विद्वानों द्वारा परिभाषित अन्य प्रकारों के आधार पर अनुसूची के निम्नांकित पांच प्रमुख प्रकारों को स्पष्ट किया जा सकता है।

1. **अवलोकन अनुसूची**– इस प्रकार की अनुसूची में साक्षात्कार के लिए किन्हीं निश्चित प्रश्नों का समावेश नहीं होता है। इस अनुसूची का उद्देश्य विभिन्न शीर्षकों अथवा अध्ययन विषयों से संबंधित उन पक्षों को स्पष्ट करना होता है, जिनके आधार पर शोधकर्ता घटनाओं का स्वयं अवलोकन करके प्रमुख तथ्यों को संकलित कर सके। इस आधार पर अवलोकन अनुसूची को अवलोकन प्रदर्शित

भी कहा जाता है। इस प्रकार की अनुसूची के दो लाभ हैं– प्रथम, इसमें अंकित बातें शोधकर्ता को विभिन्न तथ्यों का अध्ययन करने के लिए मार्ग निर्देशन दे सकती हैं। दूसरा, इसकी सहायता से शोधकर्ता अध्ययन विषय से दूर नहीं हट पाता। तात्पर्य है कि यह अनुसूची स्वयं अध्ययनकर्ता अथवा अवलोकनकर्ता पर नियंत्रण स्थापित करती है।

2. **मूल्यांकन अनुसूची**–इस प्रकार की अनुसूची का प्रयोग सूचनादाताओं की मनोवृत्तियों, अभिरुचियों, राय अथवा पसंद, नापसंद का मूल्यांकन करने के लिए किया जाता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न सामाजिक घटनाओं तथा समस्याओं का मूल्यांकन करने अथवा उनकी तुलनात्मक स्थिति का निर्धारण करने में भी ऐसी अनुसूचियां अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होती हैं।
3. **प्रलेख अनुसूची**–इस प्रकार की अनुसूची का प्रयोग उत्तरदाताओं की सहायता से द्वितीयक सामग्री के स्रोतों को जानने के लिए एक सरल माध्यम के रूप में किया जाता है। पी.वी. यंग के अनुसार – ''प्रलेख अनुसूचियों का उपयोग ऐसी सामग्री का आलेखन करने के लिए किया जाता है जिन्हें विभिन्न प्रकारों के प्रलेखों, व्यक्तिगत जीवन इतिहासों, तथा अन्य प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है।''
4. **संस्था सर्वेक्षण अनुसूची**–पी.वी. यंग के अनुसार, इन अनुसूचियों की रचना किसी संस्था के समक्ष उत्पन्न होने वाली अथवा उसमें विद्यमान समस्याओं की जानकारी करने के लिए की जाती है। कोई संस्था अपनी प्रकृति से जितनी अधिक जटिल होती है, उसके द्वारा रचित ऐसी अनुसूची का आकार भी अपेक्षाकृत बड़ा हो जाता है। वर्तमान समय में सरकारी समितियों, पंचायतों की कार्य पद्धति, शिक्षा संस्थाओं, अर्द्ध सरकारी संस्थाओं, सहकारी समितियों तथा पुलिस प्रशासन जैसे विषयों का अध्ययन करने में ऐसी अनुसूची का उयोग करना अधिक उपयोगी समझा जाता है।
5. **साक्षात्कार अनुसूची**–इस प्रकार की अनुसूची किसी विशेष विषय पर कुछ व्यक्तियों का साक्षात्कार करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। इसके अंतर्गत अध्ययन विषय के विभिन्न पक्षों से संबंधित प्रश्नों का इस प्रकार समावेश किया जाता है, जिससे अध्ययनकर्ता किसी व्यक्ति का व्यवस्थित रूप में साक्षात्कार करके सूचनाओं का संकलन कर सके। ऐसी अनुसूची के द्वारा उत्तरदाता द्वारा दिए गए वणर्नात्मक उत्तरों को भी संक्षेप में आलेखन करके उनका सरलतापूर्वक वर्गीकरण और सारणीकरण किया जा सकता है। साक्षात्कार अनुसूची में प्रश्नों का संयोजन जितना व्यविस्थत होता है उनसे उतनी ही उपयोगी सूचनाएं प्राप्त करना संभव हो जाता है।

एक सामान्य अनुसूची का नमूना

अनुसूची (मजदूर वर्ग)

1. उत्तरदाता का नाम :
2. उत्तरदाता का लिंग : (अ) पुरुष (ब) महिला
3. उत्तरदाता की आयु (वर्ष में) : (अ) 18–30 (ब) 30–40 (स) 40–50
4. उत्तरदाता की शिक्षा : (अ) अशिक्षित (ब) प्राथमिक

(स) माध्यमिक (द) स्नातक
(य) स्नातकोत्तर

5. उत्तरदाता की जाति : (अ) सामान्य
(ब) अनुसूचित जनजाति
(स) पिछड़ा वर्ग (द) अनुसूचित जाति

टिप्पणी

6. उत्तरदाता का व्यवसाय : (अ) व्यापार (ब) नौकरी
(स) मजदूरी (द) घरेलू कार्य

7. उत्तरदाता की आय (₹ में) : (अ) 1500 से 3000
(ब) 3000 से 8000
(स) 8000 से 20000
(द) 20000 से 50000

8. आप नगरपालिका के विषय में जानते हैंः (अ) हां (ब) नहीं

9. आप मतदान करते है : (अ) हां (ब) नहीं

10. आपने पूर्व में कितनी बार मतदान किया है :
(अ) एक बार (ब) दो बार (स) अनेक बार

11. आप मतदान किस आधार पर करते हैं :
(अ) स्वयं की पहल पर
(ब) परिवार के कहने पर

12. उम्मीदवार का चयन किस आधार पर करते हैं :
(अ) चुनावों में किए गए वादों के आधार पर
(ब) व्यक्ति के आधार पर
(स) कार्यों के आधार पर

13. आपके शहर में सड़कों की विद्युत व्यवस्था, नगर की सफाई व्यवस्था, कर व्यवस्था, जन्म–मृत्यु का पंजीकरण किस संस्था के द्वारा किया जाता है :
(अ) नहीं जानते हैं (ब) जानते हैं (स) संस्था का नाम

14. आप अपने परिवार के सदस्यों का जन्म–मृत्यु पंजीकरण करते हैं :
(अ) हां (ब) नहीं

15. आपके विचार में सड़कों की विद्युत व्यवस्था के बारे में नगरपालिका की भूमिकाः
(अ) असंतोषजनक (ब) संतोषजनक (स) उत्तम

16. आपके विचार में नगर की सफाई के संबंध में नगरपालिका की भूमिका :
(अ) असंतोषजनक (ब) संतोषजनक (स) उत्तम

17. आपके विचार में वार्डों की सफाई के संबंध में नगरपालिका की भूमिका :
(अ) असंतोषजनक (ब) संतोषजनक
(स) उत्तम (द) अति उत्तम

18. मक्खी, मच्छर, रोगों तथा महामारियों की रोकथाम के लिए नगरपालिका क्या कार्य करती है :

    (अ) दवाई का छिड़काव (ब) दवाइयों का वितरण

    (स) प्रचार के माध्यम से (द) जनता में जागरूकता

19. आपके वार्ड का नंबर क्या है?
20. आप अपने प्रतिनिधि से मिले हैं :

    (अ) एक बार (ब) दो बार (स) अनेक बार

21. आप अपनी शिकायत या मांग को व्यक्त करते हैं :

    (अ) शिकायत पत्र लिखकर (ब) सामूहिक रूप से

    (स) नगरपालिका जाकर (द) दंगे प्रदर्शनों के द्वारा

22. आप नगरपालिका के कार्यो से संतुष्ट हैं :

    (अ) हां (ब) नहीं

23. नगरपालिका के कार्यो के संबंध में आपके क्या सुझाव है?

अनुसूची के गुण एवं लाभ

सामाजिक अनुसंधान अथवा सर्वेक्षण के क्षेत्र में सामग्री संग्रहण के लिए अनुसूची एक महत्वपूर्ण प्रविधि प्रमाणित हुई है। यह सामग्री संग्रहण की प्रत्यक्ष विधि है। सामाजिक घटनाओं एवं समस्याओं के संबंध में प्राथमिक सूचना इकट्ठा करने के लिए इसकी प्रकृति अधिक स्वतंत्र एवं स्वयं में पूर्ण है। अनुसूची के गुणों अथवा इसके महत्व को संक्षेप में निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है–

1. **निजी और प्रत्यक्ष संपर्क**–अनुसूची प्रविधि का पहला गुण एवं लाभ यह है कि इसमें उत्तरदाता एवं अध्ययनकर्ता के मध्य निजी एवं प्रत्यक्ष संपर्क होता है, जिससे वह विषय से संबंधित महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त कर लेता है। यदि अध्ययनकर्ता का व्यक्तिगत संपर्क न हो तो सूचनादाता स्वयं भी सूचना भेजने में आलस करता है उसकी अभिरुचि सूचना देने में नहीं रहती है। अनुसूची प्रविधि में, अध्ययनकर्ता को सामने देखकर उत्तरदाता में भी उत्साह की भावना तीव्र होती है। इसके अलावा यदि उत्तरदाता के मन में अध्ययन विषय के प्रति किसी तरह का भय, भ्रम या संकोच होता है तो अध्ययनकर्ता उसे दूर कर देता है एवं दोनों के बीच एक आत्मीयता पैदा हो जाती है तथा विषय संबंधी मूल भूत सूचनाएं प्राप्त हो जाती है।
2. **ठोस सूचनाएं प्राप्त करना**– अनुसूची प्रणाली का दूसरा महत्वपूर्ण गुण है कि इसके द्वारा प्राप्त सूचनाएं ठोस होती हैं शोधकर्ता की उपस्थिति से उत्तरदाता के मन में यह रहता है कि वह कहीं गलत सूचना न दे दे। क्योंकि शोधकर्ता के स्वयं उपस्थित रहने के कारण उसके द्वारा दिए गए उत्तर की सत्यापनशीलता सिद्ध हो सकती है। इसके साथ ही शोधकर्ता अवलोकन द्वारा भी वास्तविक ज्ञान प्राप्त करता है इसमें तथ्यों को पुष्टि की जा सकती है।
3. **अस्पष्ट प्रश्नों की व्याख्या संभव**–कभी कभी सरल और स्पष्ट भाषा में लिखे गए प्रश्न भी उत्तरदाता ठीक ढंग से नहीं समझ पाते। इस कारण प्रश्नावली द्वारा

प्राप्त उत्तर अकसर अपूर्ण ही रहते हैं। लेकिन अनुसूचि के प्रयोग में अध्ययनकर्ता उत्तरदाता के प्रत्यक्ष संपर्क में रहता है अतः वह उत्तरदाता की सभी जिज्ञासाओं और शंकाओं का समाधान करके अधिक सही सूचनाएं प्राप्त कर लेता है।

4. **अधिकतम सूचनाओं की प्राप्ति**– अनुसूची से प्राप्त ठोस सूचनाओं के अतिरिक्त, शोधकर्ता अनुसूची को भरकर सूचनाएं प्राप्त करता है। शोधकर्ता के समक्ष अनुसूची स्पष्ट रूप से होने के कारण उसका उद्देश्य अधिकतम सूचना प्राप्त करना होता है।

5. **अवलोकन की सुविधा**– अनुसूची प्रविधि का एक अन्य महत्वपूर्ण गुण यह भी है कि इसमें गहन निरीक्षण की सुविधा होती है। भिन्न–भिन्न इकाइयों का अलग–अलग अध्ययन करने से अवलोकन की प्रामाणिकता एवं गहनता में वृद्धि होती है क्योंकि अध्ययनकर्ता स्वयं भी घटनाओं का अवलोकन करता है। अतः कम समय में अधिक तथ्यों का संकलन विश्वसनीय तरीके से हो जाता है। इसके अतिरिक्त साक्षात्कार अनुसूची तथा अवलोकन अनुसूची का साथ–साथ उपयोग करके भी कम समय में अधिक तथ्यों का संग्रह किया जा सकता है।

6. **तथ्यों के आलेखन में एकरूपता**–अनुसूची एक ऐसी प्रविधि है जिसके द्वारा प्राप्त तथ्यों को कहीं अधिक स्पष्ट और क्रमबद्ध रूप से आलेखित किया जा सकता है। अनुसूची के उपयोग में प्राप्त उत्तरों को साधारणतया उसी समय लिख लिया जाता है। इसका लाभ यह होता है कि अध्ययनकर्ता को न तो अपनी स्मरण शक्ति पर अधिक निर्भर रहना पड़ता है और न ही सूचनाओं के भूल जाने की संभावना रहती है। इसके साथ ही उत्तरों को लिखने में अध्ययनकर्ता चिह्नित शब्दों का भी उपयोग कर सकता है। इससे कम समय में ही ज्यादा कार्य हो जाता है एवं तथ्य संकलन की प्रणाली संक्षिप्त हो जाती है।

7. **सारणीयन में सहायक**–अनुसूची निर्माण में प्रयुक्त प्रश्नों को क्रमबद्ध तथा श्रेणियों में विभाजित करने से सारणीयन का कार्य आसान हो जाता है। इससे उत्तरों का प्रयोग सांख्यकीय सूत्रों के अंतर्गत किया जा सकता है।

8. **अभिनति की संभावना नहीं**–अनुसूची के प्रश्न स्पष्ट एवं पूर्व निर्धारित होते हैं। अतः उन्हीं प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने होते हैं, जिनका संबंध शोध से है। साक्षात्कार में उत्तरदाता उत्तर देते हुए कभी–कभी इतना भावविभोर हो जाता है कि यह अपने विषय से हटकर अपने दृष्टिकोण को ही प्रस्तुत करने में संलग्न रहता है, इसकी गुंजाईश इसमें नहीं रहती। अनुसंधानकर्ता स्वयं भी लगभग निष्पक्ष सा ही रहता है, क्योंकि उसको भी केवले उत्तर ही प्राप्त करने होते हैं, जो अनुसूचियों में होते हैं। इस प्रकार उत्तरदाता तथा अध्ययनकर्ता की तरफ से अभिनति की संभावना नहीं के बराबर रहती है।

9. **अध्ययन में लोच का गुण** – अनुसूची में रखे गए प्रश्न अध्ययन विषय से संबंधित होने के साथ ही पूर्व निर्धारित होते हैं, लेकिन उनमें नमनियता एवं लोच का गुण पाया जाता है। अगर अध्ययनकर्ता अध्ययन क्षेत्र में यह महसूस करता है कि कुछ प्रश्नों में किसी प्रकार के सुधार की आवश्यकता है अथवा अनुसूची में से कुछ प्रश्नों को निकालना या नये प्रश्नों को जोड़ना उपयोगी हो सकता है तो उसे अध्ययन के दौरान ही ऐसा करने का अवसर मिल जाता है। अतः

टिप्पणी

अनुसूची की सहायता से अनेक बार ऐसे तथ्य भी प्राप्त हो जाते हैं, जिनकी अध्ययन से पूर्व कल्पना नहीं की गई थी। इसलिए इसके माध्यम से उत्तम सूचनाओं का एकत्रण होता है। अतः अध्ययन में नमनीयता अनुसूची का एक गुण कहा जा सकता है।

10. **प्रतिचयन संबंधी दोषों का ज्ञान**–सामाजिक सर्वेक्षण और अनुसंधान में प्रतिचयन का महत्व बहुत अधिक है। साधारणतया प्रत्येक विषय या समस्या से संबंधित व्यक्तियों की संख्या इतनी अधिक होती है कि सभी से सूचनाएं प्राप्त करना कठिन होता है सामान्य रूप से संपूर्ण समग्र में से कुछ प्रतिनिधि व्यक्तियों का चयन करके अध्ययन करना आवश्यक होता है। अनुसूची प्रविधि द्वारा यह ज्ञात किया जा सकता है कि प्राप्त निदर्शन अथवा प्रतिचयन सही और उपयुक्त है अथवा नहीं। यदि प्रतिचयन के अंतर्गत कुछ महत्वपूर्ण व्यक्ति छूट जाते हैं तो अनुसूची के प्रयोग से ऐसे व्यक्तियों से भी सूचना प्राप्त की जा सकती है। डाक द्वारा प्रेषित प्रश्नावली में अध्ययनकर्ता को इस प्रकार की कोई सुविधा प्राप्त नहीं हो पाती है।

11. **तथ्यों के छूटने की संभावना नहीं**– इस प्रविधि में विषय से संबंधित महत्वपूर्ण तथ्यों के छूटने की आशंका नहीं रहती है। इसका कारण यह है कि अनुसूची में पहले से ही वे प्रश्न क्रमिक रूप में लिखे रहते हैं जिनका उत्तर प्राप्त करना होता है। अतः किसी भी तथ्य के छूटने की संभावना नहीं रहती। इसे इस प्रविधि की एक उपयोगिता या गुण कहा जा सकता है।

12. **लेखबद्ध सामग्री**– इसमें लेखबद्ध सामग्री विद्यमान रहती है। तात्पर्य यह है कि इस प्रविधि के द्वारा जो तथ्य या सूचनाएं संकलित की जाती है। वह सब लिखित रूप में सुरक्षित रहती है और किसी भी अवस्था में कल्पना शक्ति अथवा स्मरण शक्ति पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है, साथ ही अनुसूची पूर्व से निर्मित होने के कारण कोई भी अनिवार्य सूचना छूट जाने का भी डर नहीं रहता है। अतः लेखबद्ध सामग्री अनुसूची प्रणाली का एक गुण है।

13. **सभी वर्गों के लिए उपयोगी**– यह समस्त वर्गों (शिक्षित, अशिक्षित, संभ्रांत अथवा सामान्य) से सूचना संकलित करने के लिए एक उपयोगी प्रणाली है। अनुसूची के द्वारा अनुसंधानकर्ता स्वयं क्षेत्र में जाकर सूचना इकट्‌ठा करता है। अनुसूची स्वयं अनुसंधानकर्ता के द्वारा भरी जाती है इसलिए उत्तरदाता का शिक्षित होना जरूरी नहीं होता है। प्रश्नों में यदि कोई शब्द अस्पष्ट अथवा विशेष अर्थ वाला होता है तो उसका तुरंत स्पष्टीकरण देकर अधिक यथार्थ सूचनाएं प्राप्त करना संभव हो जाता है। अतः यदि अध्ययन क्षेत्र छोटा होता है तो अनुसूची प्रविधि का उपयोग करना अधिक फायदेमंद हो जाता है।

उपरोक्त विवरण से पता चलता है कि अनुसूची प्रविधि के अनेक गुण एवं लाभ हैं। जहां इससे एक ओर ठोस तथ्यों को संकलित किया जा सकता है वहीं दूसरी ओर यह अलग–अलग अवलोकन कर्ताओं के अवलोकन को प्रमाणित करने का भी काम करती है।

अतः अनुसूची हमारे मागदर्शन एवं वेषयिक सूचना प्राप्त करने का एक उत्तम साधन है। इसके आधार पर अनुसंधान के क्षेत्र निश्चित किए जा सकते हैं। पी.वी. यंग के शब्दों

टिप्पणी

में, ''अनुसूची को अनुसंधानकर्ता एक पथप्रदर्शक, जांच के क्षेत्र को निश्चित करने का एक साधन स्मरण शक्ति का संयंत्र, लेखबद्ध करने का तरीका बनाता है।" वास्तविकता यह है कि अनुसूची द्वारा अध्ययनकर्ता अपने सुरुचिपूर्ण व्यक्तित्व, मनोरंजक, वार्तालाप तथा अपनत्वपूर्ण व्यवहार की सहायता से अध्ययन विषय से संबंधित अनेक ऐसे तथ्य ज्ञात कर सकता है जो किसी भी दूसरी विधि से ज्ञात कर सकना बहुत कठिन है।

अनुसूची के दोष अथवा सीमाएं

एक ओर अनुसूची प्रविधि की अनेक विशेषताएं या गुण हैं, वहीं दूसरी ओर इसकी कुछ सीमाएं या दोष भी हैं, जिनके कारण सभी प्रकार के अध्ययनों में इसका प्रयोग नहीं होता है। अनुसूची प्रविधि की सीमाएं अथवा दोष निम्नलिखित हैं–

- अनुसूची में ऐसे सामान्य प्रश्नों का निर्माण नहीं किया जा सकता, जिनको प्रत्येक व्यक्ति समझकर उत्तर दे सके।
- अनुसूची का प्रयोग छोटे क्षेत्रों में किया जा सकता है। विस्तृत क्षेत्र में इसलिए इसका प्रयोग अनुपयोगी रहता है कि उसमें कई व्यावहारिक कठिनाइयां आ जाती हैं, जैसे उत्तरदाता बिखरे हुए हों।
- अनुसूची प्रविधि द्वारा संचित तथ्य तभी एकत्रित किए जा सकते हैं जबकि उत्तरदाताओं से सीधा संपर्क स्थापित हो सके। आज के युग में व्यस्त जिंदगी के बीच मनुष्य के पास समय की कमी रहती है। अतः वह साक्षात्कार देने में टाल मटोल करता रहता है। अतः एक प्रकार से संपर्क की समस्या उत्पन्न हो जाती है।
- कभी कभी अनुसंधानकर्ता के सुझावों की तरफ उत्तरदाता का अधिक झुकाव हो जाने के कारण प्रमुख सूचना प्राप्त नहीं हो पाती है।
- इसके परिणाम ज्ञात निदर्शन पर आधारित नहीं होते।
- अनुसूची द्वारा प्राप्त सूचनाओं को एकत्र करने में काफी धन व समय खर्च होता है।
- विभिन्न संस्कृति, विभिन्न समुदाय, विभिन्न जीवन स्तर एवं शिक्षा के कारण सभी प्रश्नों को एक समान लागू करना संभव नहीं है।
- अनुसंधानकर्ता द्वारा उत्तरदाता प्रेरित करने से अभिनति की संभावना रहती है।
- अनुसंधानकर्ता चाहे कितना भी कुशल और मृदुभाषी क्यों न हो लेकिन कुछ अध्ययन विषयों की प्रकृति इस प्रकार की होती है कि उनसे संबंधित जटिल और भावनात्मक तथ्यों का संग्रह करते समय अनेक बार उत्तरदाता अध्ययन को अपने व्यक्तिगत जीवन, व्यवसाय, संगठन अथवा क्षेत्र के विरुद्ध समझने लगता है।
- इस प्रविधि में यह पता लगाना भी एक जटिल कार्य होता है कि उत्तरदाता अध्ययन के तहत आए समूह का प्रतिनिधित्व करता भी है या नहीं। अतः प्रतिनिधित्वपूर्ण समूह में संदेह इस प्रणाली की एक सीमा अथवा दोष कही जा सकती है।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि अनुसूची प्रविधि में कई कमियां हैं, साथ ही इसकी कुछ सीमाएं भी हैं लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि यह प्रविधि अनुपयोगी अथवा

टिप्पणी

अव्यावहारिक है। कुछ दोषों और सीमाओं के होते हुए भी सर्वेक्षण में प्रमाणित तथा सामाजिक शोध, विश्वसनीय तथ्यों के संचय में इसकी उपादेयता अद्वितीय है। आज कई सरकारी और गैर–सरकारी स्तर पर किए जाने वाले अध्ययनों में इसका प्रयोग ज्यादा से ज्यादा किया जाने लगा है। इसकी सफलता उपयुक्त अनुसंधानकर्ता एवं रचना की कुशलता पर बहुत सीमा तक निर्भर करती है।

(स) साक्षात्कार प्रविधि

सामाजिक अनुसंधान में प्राथमिक तथ्यों का संकलन करने के लिए जिस पद्धति का प्रयोग सर्वाधिक रूप में किया जाता है वह साक्षात्कार ही है। साक्षात्कार शब्द अंग्रेज़ी भाषा के 'Interview' का हिंदी रूपांतरण है। इंटरव्यू शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है– Inter अथवा भीतर तथा View अर्थात देखना, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है अंतःदर्शन या आंतरिक रूप से देखना। साक्षात्कार सामाजिक अनुसंधान में तथ्यों के संग्रहण की एक मौखिक पद्धति है अर्थात साक्षात्कार वह पद्धति है जिसमें बातचीत के माध्यम से सामग्री का संग्रहण किया जाता है। हमारे दैनिक जीवन में साक्षात्कार शब्द का प्रचलन इतना अधिक बढ़ चुका है कि किसी भी पद के लिए नौकरी प्राप्त करने, संस्थाओं में प्रवेश पाने अथवा किसी विशेष अधिकारी अथवा नेता से मिलने के लिए हमें साक्षात्कार की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। सामाजिक अनुसंधान के संदर्भ में साक्षात्कार का अभिप्राय अनुसंधानकर्ता द्वारा सूचनादाता से नियोजित ढंग से कुछ तथ्यों अथवा घटनाओं की आंतरिक विशेषताओं को ज्ञात करना है। विभिन्न विद्वानों ने साक्षात्कार को भिन्न–भिन्न रूप से परिभाषित किया है।

● परिभाषाएं

गुडे और हाट के अनुसार, ''साक्षात्कार मौलिक रूप से सामाजिक अंतःक्रिया की एक प्रक्रिया है।'' अर्थात् साक्षात्कार की अभिक्रिया केवल शोधकर्ता एवं उत्तरदाता के एक दूसरे के संबंध से नहीं हैं बल्कि इन दोनों पक्षों के बीच एक अर्थपूर्ण, उद्देश्यपूर्ण अंतःक्रिया से है।''

पी.वी. यंग के अनुसार, ''साक्षात्कार एक ऐसी व्यवस्थित विधि है जिसके द्वारा एक व्यक्ति (शोधकर्ता) दूसरे व्यक्ति के आंतरिक जीवन में अधिक या कम कल्पनात्मक रूप से प्रवेश करता है जो उसके लिए सामान्यतया तुलनात्मक रूप से अपिरिचित होता है।"

एम.एन. बसु के अनुसार, "एक साक्षात्कार को कुछ विषयों को लेकर व्यक्तियों के आमने–सामने का मिलन कहा जा सकता है।"

सी.ए. मोजर ने साक्षात्कार की परिभाषा इस प्रकार दी है–"एक सर्वेक्षण साक्षात्कार, शोधकर्ता तथा उत्तरदाता के मध्य एक वार्तालाप है, जिसका उद्देश्य उत्तरदाता से निश्चित सूचना प्राप्त करना होता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि साक्षात्कार का उद्देश्य किसी विशेष समस्या या जानकारी के संदर्भ में ज्ञान प्राप्त होता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि साक्षात्कार सामाजिक अनुसंधान की वह पद्धति है जिसके द्वारा अनुसंधानकर्ता वार्तालाप के द्वारा सूचनादाता के विचारों और भावनाओं में प्रवेश करके तथ्यों का संकलन करता है। साक्षात्कार के अर्थ को अधिक स्पष्टता से परिभाषित करते हुए लुथर फ्राई ने लिखा है– ''साक्षात्कार आंकड़ों अथवा तथ्यों के संकलन की एक विधा है यह

टिप्पणी

किसी निश्चित उद्देश्य हेतु वार्तालाप के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। इसमें दो या अधिक व्यक्ति परस्पर एक दूसरे में प्रोत्साहन पाते हुए उत्तर–प्रत्युत्तर करते हैं।" उक्त से स्पष्ट है कि साक्षात्कार व्यक्तिगत संपर्क के द्वारा सूचना एकत्रित करने एवं उन्हें लिखने की एक ऐसी क्रमबद्ध प्रविधि है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी महत्वपूर्ण लक्ष्य की समझ रखकर परस्पर संवाद, बातचीत या उत्तर प्रत्युत्तर देते हैं।

साक्षात्कार की विशेषताएं

साक्षात्कार की उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर प्रमुखतया निम्न विशेषताएं निर्धारित की जा सकती हैं–

1. साक्षात्कार सामाजिक सर्वेक्षण एवं अनुसंधान की एक पद्धति है।
2. यह प्राथमिक तथ्यों के संकलन की एक महत्वपूर्ण प्रविधि है।
3. साक्षात्कार का उद्देश्य सामाजिक जीवन और सामाजिक घटनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करना है।
4. साक्षात्कार दो या दो से अधिक व्यक्तियों का किसी सुनिश्चित उद्देश्य के लिए आपस में मिलना है।
5. इसमें शोधकर्ता और सूचनादाता के बीच आमने सामने के संबंध प्रत्यक्ष रूप से स्थापित होते हैं।
6. साक्षात्कार एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत अनेक मनोवैज्ञानिक विधियों के द्वारा उत्तरदाता जीवन की आंतरिक जटिलताओं की जांच करने का प्रयत्न किया जाता है।
7. साक्षात्कार का एक विशेष उद्देश्य होता है।

साक्षात्कार के उद्देश्य

सामाजिक अनुसंधान में साक्षात्कार की प्रविधि अनुसंधानकर्ता को यह अवसर प्रदान करती है कि वह शोध से संबंधित व्यक्ति के संपर्क में आकर अतीत की घटनाओं, उसकी निजी भावनाओं अथवा प्रतिक्रियाओं को समझकर सामाजिक घटनाओं में पायी जाने वाली नियमितता की खोज कर सके। सामाजिक अनुसंधान में साक्षात्कार निम्न उद्देश्यों से किए जाते हैं–

1. **प्राथमिक सामग्री का संकलन**– साक्षात्कार का एक प्रमुख उद्देश्य किसी अध्ययन से संबंधित प्राथमिक सामग्री का संकलन करना होता है। इस प्रविधि के द्वारा कुछ व्यक्तियों से प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित करके शोध के विभिन्न पक्षों से संबंधित आंतरिक और व्यक्तिगत सूचनाएं एकत्रित की जा सके। जिनमें से अनेक प्राथमिक तथ्यों का संबंध व्यक्ति के निजी जीवन अथवा गोपनीय पक्षों से होता है उसके बारे में केवल साक्षात्कार द्वारा ही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।
2. **व्यक्तिगत सूचनाएं**– साक्षात्कार पद्धति में सूचनादाता और अनुसंधानकर्ता के बीच आमने–सामने के प्रत्यक्ष और व्यक्तिगत संबंध स्थापित किए जाते हैं, जिससे एक दूसरे के विचारों और भावनाओं में प्रवेश करने का प्रयास किया जाता है इस प्रकार इससे सरलता और सुगमता के साथ व्यक्तिगत सूचनाएं संकलित की जा सकती हैं।

3. **नई परिकल्पनाओं का निर्माण**— साक्षात्कार के द्वारा सामाजिक जीवन, सामाजिक घटनाओं और सामाजिक समस्याओं के बारे में विविध प्रकार की जानकारी प्राप्त होती है, जिनके आधार पर नई परिकल्पनाओं का निर्माण किया जा सकता है।
4. **घटनाओं का अवलोकन**— साक्षात्कार पद्धति में अनुसंधानकर्ता संपर्क स्थापित करने के लिए क्षेत्र में जाता है तथा उत्तरदाता से अनेक प्रश्न करने के साथ ही उसके वातावरण, जीवन स्तर, क्रिया—कलापों, सदस्यों के पारस्परिक संबंधों तथा अभिरुचियों का स्वयं भी अवलोकन करने का अवसर प्राप्त कर लेता है। इस दृष्टिकोण से साक्षात्कार एक दोहरी प्रविधि है, जिसके अंतर्गत विषय से संबंधित ज्ञान प्राप्त करने के साथ ही शोधकर्ता घटनाओं का अवलोकन भी करता है।
5. **गुणात्मक तथ्यों की जानकारी**— पद्धति का उद्देश्य अध्ययन किए जाने वाले के सामाजिक मूल्यों, आदर्श, नियमों, व्यवहार, प्रतिमानों, रुचियों तथा विश्वासों, भावनाओं मनोवृत्तियों, उद्वेगों, विचारों, अच्छाइयों, अमूर्त तथा अदृश्य गुणों आदि से संबंधित गुणात्मक तथ्यों की जानकारी प्राप्त करना है।
6. **समस्याओं के विभिन्न पहलुओं की जानकारी**— साक्षात्कार प्रविधि में अनुसंधानकर्ता विषय से संबंधित अनेक व्यक्तियों से संपर्क स्थापित करता है और विषय पर खुलकर चर्चा परिचर्चा करता है। इससे उस सामाजिक समस्या के विभिन्न पहलुओं को जानकारी प्राप्त होती है।
7. **तथ्यों का सत्यापन**— साक्षात्कार का उद्देश्य केवल प्राथमिक आंकड़ों या नये तथ्यों का ज्ञान प्राप्त करना ही नहीं है बल्कि अतीत में प्राप्त किए गए या दिए गए निष्कर्षों या विचारों का सत्यापन करना भी है। इसके लिए विषय विशेषज्ञों से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त सूचनाओं से निष्कर्षों का सत्यापन करने का प्रयास किया जाता है।

साक्षात्कार के प्रकार

सामाजिक अनुसंधान में साक्षात्कार प्रविधि ज्ञान प्राप्त करने की एक महत्वपूर्ण तकनीक है। इसके प्रमुख प्रकारों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. **व्यक्तिगत साक्षात्कार**— जब शोधकर्ता का एक समय में एक ही व्यक्ति से साक्षात्कार होता है तो इसे व्यक्तिगत साक्षात्कार कहा जाता है। इस साक्षात्कार में शोधकर्ता उत्तरदाता से प्रश्न पूछता है और सूचनादाता (अनुसंधानकर्ता) इन प्रश्नों का उत्तर देता है। ऐसे साक्षात्कार के अनेक गुण हैं—
   - इसके द्वारा अधिक यथार्थ और आंतरिक सूचनाएं प्राप्त की जा सकती।
   - इसके द्वारा अधिक संवेदनशील प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किए जा सकते हैं।
   - समस्त प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करना संभव होता है।

   इस संबंध में बोगार्डस ने लिखा है कि ''व्यक्तिगत साक्षात्कार द्वारा लोगों की मनोवृत्तियों तथा उनमें होने वाली परिवर्तन को सर्वोत्तम रूप में समझा जा सकता है।''
2. **सामूहिक साक्षात्कार**— यह वह प्रविधि है जिसमें अनुसंधानकर्ता एक समय में एक से अधिक व्यक्तियों के साथ संपर्क या साक्षात्कार कर सकता है। इस

प्रविधि में चूंकि उत्तरदाता समूह में होते हैं इसलिए इसे सामूहिक साक्षात्कार कहा जाता है। इसमें शोधकर्ता प्रत्येक उत्तरदाता से व्यक्तिगत रूप में उत्तर प्राप्त नहीं कर सकता है। अधिक उत्तरदाताओं के एक समूह का एक ही साथ अध्ययन कर सकता है। इस तरह के साक्षात्कार को सामूहिक परिचर्चा भी कहते हैं। वर्तमान समय में इस प्रकार के साक्षात्कार अत्यधिक लोकप्रिय होते जा रहे हैं। सामूहिक साक्षात्कार के निम्न लाभ हैं–

- इसके माध्यम से विश्वसनीय सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं।
- तुलनात्मक दृष्टि से समय और व्यय की बचत होती है।
- यह अधिक वैयक्तिक अध्ययन का साधन है।
- इसके माध्यम से व्यापक क्षेत्र में एवं बड़ी संख्या में उत्तरदाताओं से सूचनाएं संकलित की जा सकती है।

3. **औपचारिक साक्षात्कार**– औपचारिकता के आधार पर साक्षात्कार को औपचारिक साक्षात्कार कहते हैं। इसे नियंत्रित या संकलित साक्षात्कार भी कहा जाता है। इस प्रकार के साक्षात्कार में अनुसंधानकर्ता केवल वे ही प्रश्न पूछता है जो पहले से तैयार विषय सूची में उल्लेखित रहता है। इसमें अनुसंधानकर्ता अनूसूची से नियंत्रित रहता है। उसको अनूसूची के प्रश्नों, भाषा आदि के परिवर्तन में किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं रहती है। इस साक्षात्कार का प्रमुख उद्देश्य अध्ययन में एकरूपता बनाए रखना होता है। इस प्रकार के साक्षात्कार में सभी उत्तरदाताओं से एक ही प्रकार से प्रश्न किए जाते हैं।

4. **अनौपचारिक साक्षात्कार**– इस साक्षात्कार को अनियंत्रित अथवा असंरचित साक्षात्कार भी कहा जाता है इसमें बिना किसी अनुसूची की सहायता से शोधकर्ता कुछ मुख्य प्रश्नों को पूछता है एवं उत्तरदाता स्वतंत्रतापूर्वक उन सवालों का जवाब देता है। शोधकर्ता अपनी इच्छा के अनुसार प्रश्नों को बढ़ाने घटाने अथवा आवश्यकतानुसार परिवर्तन करने के लिए स्वतंत्र रहता है। इससे लाभ यह होता है कि शोधकर्ता के समक्ष अनेक ऐसे महत्वपूर्ण तथ्य स्पष्ट हो जाते हैं जिनकी पहले से कोई कल्पना नहीं की गई होती है। इस तरह के साक्षात्कार का प्रयोग विशेषकर मनोवैज्ञानिक अध्ययनों के लिए किया जाता है।

5. **अनुसंधान साक्षात्कार**– इस प्रकार के साक्षात्कार घटनाओं में व्याप्त कार्य कारण संबंधों की खोज के उद्देश्य से आयोजत किए जाते हैं। इस प्रकार के साक्षात्कार का उद्देश्य नवीन ज्ञान की खोज करना होता है। इसमें कुछ प्रमुख व्यक्तियों अथवा समूहों की मनोवृत्तियों, सामाजिक मूल्यों तथा परिवर्तनशील विचारों का अध्ययन किया जाता है।

6. **पुनरावृत्ति साक्षात्कार**–जैसा कि नाम से स्पष्ट है कि यह साक्षात्कार बार–बार किया जाता है। एक ही उत्तरदाता से बार–बार साक्षात्कार करके सूचनाएं इकट्‌ठा करना पुनरावृत्ति साक्षात्कार कहलाता है। सामाजिक परिवर्तन से संबंधित घटनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए बार–बार साक्षात्कार किया जाता है एवं निष्कर्ष निकाला जाता है। इससे पूर्व में प्राप्त सूचनाओं का पुनः परीक्षण एवं सत्यापन हो सकता है।

टिप्पणी

7. **केंद्रित साक्षात्कार**– केंद्रित साक्षात्कार उसे कहते हैं जिसके अंत में अनुसंधानकर्ता को किसी पूर्व निर्धारित विषय पर केंद्रित रहकर ही विभिन्न प्रकार के प्रश्न करने होते हैं। ऐसे साक्षात्कार में उत्तरदाता को अपने विचारों को एक विशेष ढंग से व्यक्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। इस तरह का साक्षात्कार वही अनुसंधानकर्ता कर सकता है जो विषय से पूर्व में परिचित है। इसमें किसी घटना विशेष अथवा पक्ष विशेष पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। इस प्रकार के साक्षात्कार का उपयोग करने वालों में मर्टन एवं उनके सहयोगी तथा पेट्रीशिया कैंडाल आदि का नाम महत्वपूर्ण है। इन्होंने इसका प्रयोग जन–समुदाय तथा व्यक्तियों पर फिल्मों, पत्रिकाओं अथवा रेडियो का सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रभाव मापने हेतु 1946 में किया था। इस साक्षात्कार की प्रमुख विशेषताएं हैं–
   - साक्षात्कार के लिए उस विषय का चुनाव किया जाता है, जिस पर पहले से ही कुछ कार्य हो गया हो।
   - इसका प्रयोग इन लोगों पर होता है जो एक विशेष निर्धारित विषय से संबंध रखते हैं।
   - इस प्रकार का साक्षात्कार विषयगत अनुभवों पर आधारित होता है।
   - यह साक्षात्कार पर प्रदर्शिका के आधार पर संचालित किया जाता है।
   - इसे निर्देशित साक्षात्कार भी कहते हैं।
8. **अनिर्देशित साक्षात्कार**– इस तरह के साक्षात्कार में अनुसंधानकर्ता उत्तरदाता के समक्ष कोई कठिन समस्या अथवा प्रश्न रखता है। इसमें अनुसंधानकर्ता का कार्य उत्तरदाता को दिए गए विषय पर बोलने के लिए प्रोत्साहित करना होता है। उत्तरदाता दिए गए विषय पर अपने लंबे कथनों में जिन विचारों को व्यक्त करता है, अनुसंधानकर्ता उन्हीं में से उपयोगी और उपयुक्त सूचनाओं और तथ्यों को संकलित करता है, इस प्रकार के साक्षात्कार की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं–
   - यह अनियंत्रित साक्षात्कार से मिलता जुलता है।
   - इसमें उत्तरदाता पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं रहता है और वह पूर्ण स्वतंत्र रहता है।
   - इसमें उन समस्याओं का अध्ययन किया जाता है जो तुलनात्मक रूप से नई और उलझी हुई होती हैं।
9. **आकस्मिक साक्षात्कार**– इस प्रकार के साक्षात्कार में अनुसंधानकर्ता को ऐसे व्यक्तियों के विषय में कोई पूर्व जानकारी नहीं होती जिनका साक्षात्कार किया जाना है। अनुसंधानकर्ता किसी भी समय किसी भी जगह पर एकएक साक्षात्कार कर तथ्यों का संकलन कर लेता है। किसी विशेष जनमत की जानकारी के लिए इस प्रकार के साक्षात्कार का प्रयोग किया जा सकता है।
10. **उपचारात्मक और निदान संबंधी साक्षात्कार**–उपचारात्मक साक्षात्कार में संबंधित व्यक्तियों से ऐसे सुझाव प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है जिनकी सहायता से समाज में व्याप्त जीवंत समस्याओं का उपचार व निदान किया जा सके। साधारणतया व्यक्तिगत तथा सामाजिक समस्याओं के बारे में व्यक्तियों के

विचार जानना तथा किन्हीं मनोवैज्ञानिक व्याधियों का उपचार व निदान इस प्रकार के साक्षात्कार का मुख्य उद्देश्य होता है।

साक्षात्कार पद्धति के विविध चरण

सुव्यवस्थित प्रकार से साक्षात्कार का संचालन स्वयं एक कला है। साक्षात्कार की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि अनुसंधानकर्ता ने अपने आपको भली भांति तैयार किया हो तथा उसने अपने प्रमुख उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए तथ्यों का कुशलतापूर्वक संकलन किया हो क्योंकि इस प्रविधि में शोधकर्ता को प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करके चुनाव किए गए उत्तरदाताओं से अध्ययन के विषय के संबंध में तथ्यों का संकलन करना होता है। साक्षात्कार प्रविधि किस तरह संचालित की जाए एवं इसका उपयोग किस तरह किया जाए इस पर विभिन्न विद्धानों एवं समाजशास्त्रियों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं।

गुडे और हाट ने लिखा है कि ''मौलिक रूप में साक्षात्कार सामाजिक अंतःक्रिया की एक प्रक्रिया है इसे भली प्रकार संपन्न करना एक कला है, जिसमें अत्यधिक सावधानी तथा पूर्ण परीक्षण भी आवश्यकता पड़ती है। अतएव उसे विधिवत योजना बनाकर संगठित किया जाना चाहिए।'' गुडे और हाट के इस कथन से स्पष्ट होता है कि साक्षात्कार की सफलता तभी संभव है जबकि इसे विभिन्न चरणों के माध्यम से इस प्रकार व्यवस्थित किया जाए जिससे शोधकर्ता अपने उद्देश्य को प्राप्त कर सके। साक्षात्कार के विभिन्न चरणों का अर्थ है– साक्षात्कार की तैयारी से लेकर उसकी समाप्ति तक जो कार्य संपादित किया जाता है उसके प्रमुख चरण कौन से हैं? सामाजिक अनुसंधान में साक्षात्कार के कौन–कौन–से चरण होने चाहिए, इस विषय में जान मैज का विचार है कि साक्षात्कार की प्रक्रिया साधारणतया तीन चरणों अथवा स्तरों में से होकर गुजरती है, जिनमें से प्रत्येक चरण एक स्पष्ट उद्देश्य की ओर संकेत करता है। पी.वी. यंग ने अपनी पुस्तक 'Scientific Social Survey and Research' में साक्षात्कार की प्रणाली के निम्न 6 चरण बताए हैं–

1. साक्षात्कार में जटिल बिंदु
2. सम्मानित श्रोता की खोज
3. सहानुभूतिपूर्ण वातावरण
4. साक्षात्कार की प्रक्रिया की तरफ प्रयास
5. आरंभिक विचार
6. साक्षात्कार की समाप्ति

साधारणतया साक्षात्कार के चरणों का निर्धारण अध्ययन विषय की प्रकृति के अनुसार होना चाहिए। मुख्य रूप से साक्षात्कार की प्रक्रिया के निम्नलिखित चरण होते हैं–

1. **साक्षात्कार की तैयारी**– साक्षात्कार की सफलता के लिए सर्वप्रथम आवश्यक है कि अनुसंधानकर्ता साक्षात्कार से पूर्व योजना का स्पष्ट रूप से निर्धारण कर लें। साक्षात्कार से पूर्व शोधकर्ता को अध्ययन विषय का पूर्णरूप से ज्ञान होना आवश्यक है; जैसे अध्ययन का उद्देश्य क्या है। उसे किन–किन पहलुओं से गुजरना पड़ सकता है एवं उत्तरदाताओं से किस तरह के तथ्य संकलित करने हैं। साथ ही उत्तरदाताओं का चुनाव, साक्षात्कार की जगह एवं समय भी पहले से ही तय कर लेना चाहिए।

   साक्षात्कार की तैयारी में निम्न बातें अति आवश्यक हैं–

   • **विषय का ज्ञान**– अनुसंधानकर्ता को साक्षात्कार करने से पहले विषयवस्तु के विभिन्न पहलुओं के संबंध में पूर्ण जानकारी एकत्रित कर लेनी चाहिए।

• **निर्देशिका का निर्माण**– साक्षात्कार की तैयारी में दूसरा चरण साक्षात्कार निर्देशिका का निर्माण करना है। यह एक लिखित प्रलेख होता है। इसमें साक्षात्कार करने की संक्षिप्त रूप में प्रणाली, समस्या के कई पक्ष एवं अन्य जरूरी निर्देश दिए रहते हैं। साक्षात्कार निर्देशिका का निर्माण निम्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है–

(क) इसके निर्माण से अनुसंधानकर्ता समस्या के सभी पहलुओं का अध्ययन करने में समर्थ रहता है।

(ख) इसके द्वारा उत्तरदाताओं को साक्षात्कार से संबंधित तथ्यों को सरलता से समझाया जा सकता है।

(ग) इससे अनुसंधानकर्ता को अपनी स्मरण शक्ति पर दबाव नहीं डालना पड़ता है।

(घ) साक्षात्कार निर्देशिका की सहायता से हम जो भी सामग्री संग्रहित करते हैं वह यथार्थ और ठोस रहती है।

(ङ) साक्षात्कार निर्देशिका अध्ययन समस्या में योजनाबद्ध तरीके से तथ्यों का संकलन करने में सहायता करती है।

2. **व्यक्तियों (उत्तरदाताओं) का चुनाव**–साक्षात्कार की तैयारी में तीसरा महत्वपूर्ण कदम उत्तरदाताओं का चयन करना है। उत्तरदाताओं का चुनाव निर्देशन की सहायता से किया जा सकता है। उत्तरदाताओं का चयन किन आधारों पर करना उचित होता है। इस संबंध में एम.एच. गोपाल ने उत्तरदाताओं की तीन विशेषताएं बताई हैं–
   - **प्रभावशाली**– व्यक्तित्व का स्वामी हो।
   - **विशेषज्ञ**– संबंधित विषयों की जानकारी रखता हो।
   - **सामान्य जनसमूह**– अपने समूह में पर्याप्त अंतःक्रिया करता हो।

   साक्षात्कार की सफलता व उचित अध्ययन सामग्री का संकलन सही उत्तरदाताओं के चुनाव पर निर्भर करता है।

3. **उत्तरदाताओं के संबंध में जानकारी**–साक्षात्कार की तैयारी में अगला चरण उत्तरदाताओं के संबंध में जानकारी अर्जित करना होता है। उत्तरदाताओं के सामने दो बातें स्पष्ट होनी चाहिए– साक्षात्कार की योजना क्या है और साक्षात्कार क्यों किया जा रहा है। इसके अलावा उत्तरदाताओं की प्रवृत्ति, उनके नियम आदि बातों का पता लगाना भी जरूरी होता है तथा अनुसंधानकर्ता को उत्तरदाताओं से पूर्व परिचय कर लेना भी आवश्यक होता है। इससे उत्तरदाता अध्ययन के औचित्य को समझकर प्रभावकारी व सत्य जानकारी देते हैं।

4. **समय और स्थान निश्चित करना**–साक्षात्कार में समय और स्थान का चयन करना अत्यंत महत्वपूर्ण है उत्तरदाताओं की राय से ही समय और स्थान का निर्धारण किया जाना चाहिए। इसके लिए उत्तरदाताओं से पत्र, टेलीफोन अथवा व्यक्तिगत रूप से संबंध स्थापित किया जा सकता है।

साक्षात्कार प्रक्रिया (संचालन)

साक्षात्कार की पूर्व तैयारी के पश्चात साक्षात्कार का संचालन किया जाता है। वास्तव में, साक्षात्कार की सफलता उसकी संचालन प्रक्रिया पर ही सबसे अधिक निर्भर करती

है। वास्तव में, साक्षात्कार में अनुसंधानकर्ता और उत्तरदाता सामाजिक अंतःक्रियात्मक संबंध स्थापित होता है। इस दृष्टिकोण में शोधकर्ता को साक्षात्कार संबंधित सभी दशाओं को जानना आवश्यक होता है जिनकी सहायता से साक्षात्कार का संचालन सफलतापूर्वक किया जा सके।

1. **उत्तरदाताओं से संपर्क स्थापित करना**— साक्षात्कार की प्रक्रिया का पहला चरण— शोधकर्ता का उत्तरदाताओं से संपर्क स्थापित करना है। परिचय पत्र, संबंधित व्यक्ति या उत्तरदाताओं के मित्रों के माध्यम से संपर्क स्थापित किया जा सकता है। श्रीमति यंग के अनुसार, "प्रथम संपर्क में उत्तरदाताओं के सांस्कृतिक प्रतिमानों के अनुरूप उसके प्रति मैत्रीपूर्ण अभिवादन करने के पश्चात शोधकर्ता को अपनी इस भेंट का उद्देश्य स्पष्ट करना चाहिए।"
2. **उद्देश्य को स्पष्ट करना**— उत्तरदाताओं से संपर्क स्थापित हो जाने के पश्चात अनुसंधानकर्ता को साक्षात्कारदाताओं (उत्तरदाताओं) के सामने अपने शोध के उद्देश्य को स्पष्ट रूप से परिभाषित करना चाहिए। साक्षात्कार के लक्ष्य को बहुत सरल स्पष्ट एवं मधुर भाषा में साक्षात्कार के सामने स्पष्ट कर देना चाहिए। इस प्रकार के प्रयोजनों का स्पष्टीकरण करके अगले चरण की तैयारी की जाती है।
3. **सहयोग की अपील**— साक्षात्कार के उद्देश्य को स्पष्ट करने के पश्चात अनुसंधानकर्ता द्वारा संबंधित व्यक्ति से साक्षात्कार में सहयोग और सहायता देने की एक नम्र अपील करनी चाहिए। उत्तरदाता को यह विश्वास दिलाना भी आवश्यक है कि उसके सहयोग के बिना अध्ययन कार्य सफल नहीं हो सकता।
4. **साक्षात्कार का प्रारंभ**— साक्षात्कार के संचालन में साक्षात्कार का प्रारंभ करते समय अपना उद्देश्य स्पष्ट करना चाहिए और सहयोग की अपील करने के पश्चात ही साक्षात्कार प्रारंभ करना चाहिए। साक्षात्कार के आरंभिक स्तर पर उत्तरदाता का नाम, आयु, व्यवसाय शिक्षा, परिवार के लोगों की संख्या आदि से संबंधित परिचयात्मक प्रश्न किए जाने चाहिए। इसके पश्चात अध्ययन विषय से संबंधित सामान्य और सरल प्रकृति के प्रश्न करने चाहिए। इस समय शोधकर्ता को बहुत निष्पक्ष, सतर्क, गंभीर एवं बुद्धिमानीपूर्वक व्यवहार करना चाहिए। उत्तरदाता को पूरा पूरा बोलने की अनुमति दी जानी चाहिए। प्रश्न पूछते समय शोधकर्ता को निम्न बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए—
   (क) सिर्फ ऐसे ही प्रश्न पूछे जाएं जिनका शोध (अनुसंधान) से सीधा संबंध हो।
   (ख) आदेशात्मक प्रश्न नहीं पूछे जाने चाहिए।
   (ग) दोहरी प्रकृति के प्रश्न न पूछे जाएं।
   (घ) उपदेश देने वाले प्रश्नों से भी बचा जाए।
   (ङ) अनुसंधानकर्ता को प्रश्न पूछते समय किसी भी परिस्थिति में क्रोधित नहीं होना चाहिए।
   (च) प्रश्नों की प्रकृति समय के अनुकूल हो।
   (छ) किसी प्रश्न के उत्तर के लिए दबाव न डाला जाए।

5. **उत्तर के लिए प्रोत्साहन**– सफल साक्षात्कार के लिए यह भी आवश्यक है कि बीच–बीच में उत्तरदाता को इस प्रकार प्रोत्साहन मिलता रहे कि वह उत्तर देने में थकान अनुभव न करें। इसके लिए अनुसंधानकर्ता को उत्तरदाता की प्रशंसा तथा सावधानीपूर्वक प्रोत्साहित करना चाहिए।
6. **पुनः स्मरण या निमंत्रण**– साक्षात्कार की प्रणाली में कभी–कभी उत्तरदाता वर्णनात्मक सवालों का जवाब देते हुए भावनाओं में खो जाता है तथा मूल विषय से हट जाता है। ऐसी दशा में अनुसंधानकर्ता को सावधानीपूर्वक विशेष रूप से परिस्थिति पर नियंत्रण करके उत्तरदाता की बात सुनते हुए बीच में स्वयं इस प्रकार की बात करनी चाहिए जो उत्तरदाता को मूल प्रश्न की याद दिला दें। साक्षात्कार में स्वयं पर नियंत्रण रखकर तथा उत्तरदाता को साक्षात्कार के मूल उद्देश्य से संबंधित विषय वस्तु पर लाना चाहिए।
7. **सूचनाओं का आलेखन**– साक्षात्कार की प्रक्रिया के मध्य सूचनाएं अति संक्षिप्त रूप में लिखी जाती है जिससे इसमें कम समय लगे। इसके लिए जरूरी है कि अनुसंधानकर्ता को संकेत लिपि पर संक्षिप्त यंत्रों को इकट्ठा करना चाहिए।
8. **साक्षात्कार की समाप्ति**– सभी आवश्यक सूचनाएं प्राप्त होने के बाद साक्षात्कार समाप्त करना चाहिए। इस स्तर पर अनुसंधानकर्ता को अनेक सावधानियां रखना आवश्यक होता है–
   - यदि अध्ययन विषय से जुड़े सवालों का जवाब देने के बाद भी उत्तरदाता कुछ और करना चाहता है तो उसे भी ध्यानपूर्वक सुना जाना चाहिए।
   - यदि उत्तरदाता विभिन्न उत्तर देते हुए थकान का अनुभव कर रहा हो तो साक्षात्कार बीच में रोक देना चाहिए।
   - साक्षात्कार तब बंद करना चाहिए जब उत्तरदाता आनंद या थकान का अनुभव कर रहा हो, ऐसी स्थितियों में वह साक्षात्कार के दौरान बताए गए गुप्त बातों के प्रति भयभीत नहीं होगा।
   - अंत में उत्तरदाता को उसके सहयोग के लिए धन्यवाद देते हुए तथा सामान्य शिष्टाचार और मैत्रीपूर्ण संबंधों के साथ साक्षात्कार समाप्त कर देना चाहिए।
9. **प्रतिवेदन**– साक्षात्कार की समाप्ति के बाद प्राप्त तथ्यों का प्रतिलेखन किया जाता है। प्रतिवेदन करते समय अपनी समय शक्ति का पूर्व उपयोग करना चाहिए। इसके लिए शोधकर्ता को अपने संक्षिप्त नोटों की सहायता लेनी चाहिए। प्रतिवेदन की भाषा स्पष्ट एवं सरल हो जिससे निष्कर्ष भी पक्षपातरहित एवं क्रमबद्ध अर्जित होंगे।

उपर्युक्त वर्णनों से स्पष्ट होता है कि साक्षात्कार की प्रणाली में कई चरण होते हैं। हर चरण में अत्यधिक सतर्कता बरतनी होती है ताकि विश्वसनीय एवं प्रामाणिक सूचनाएं प्राप्त की जा सकें और शोध भी पूरा किया जा सके।

टिप्पणी

साक्षात्कार के लाभ

सामाजिक सर्वेक्षण एवं अनुसंधान के लिए प्राथमिक सामग्री के संकलन हेतु साक्षात्कार किसी भी दूसरी प्रविधि की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण है। सामाजिक शोध के क्षेत्र में इस प्रणाली के महत्व की विवेचना करते हुए गुडे एवं हाट ने बताया है कि गुणात्मक साक्षात्कार की आवश्यकता के पुनर्मूल्यांकन के कारण समकालीन परीक्षण में साक्षात्कार की विशिष्टता पहले से भी ज्यादा हो गई है।

अतः गुणात्मक व्याख्या के लिए साक्षात्कार पद्धति एक महत्वपूर्ण पद्धति है। इसके द्वारा अनेक गुणात्मक तथ्यों तथा व्यक्तियों के विचारों, भावों एवं मनोवृत्तियों को भली भांति जाना जा सकता है।

1. **मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उपयोगी**– अध्ययन विषय से संबंधित व्यक्ति के अपने विचार, भावनाएं एवं धारणाएं होती हैं, इनका अध्ययन सिर्फ साक्षात्कार पद्धति के आधार पर ही किया जा सकता है। अतः यह साक्षात्कार पद्धति ही मनोवैज्ञानिक उपदेशिका है।
2. **अमूर्त घटनाओं का अध्ययन**–साक्षात्कार पद्धति से सामाजिक घटनाएं जो मूर्त नहीं होती अर्थात जिन्हें देखा नहीं जा सकता, का अध्ययन आसानी से किया जा सकता है।
3. **मध्यकालीन घटनाओं का अध्ययन**–सामाजिक परिवर्तनशीलता के कारण सभी सामाजिक घटनाएं जो कि समाज की पुनर्रचना में महत्वपूर्ण होती है इतिहास बन जाती है, उन घटनाओं का अध्ययन साक्षात्कार पद्धति से कर सकते हैं।
4. **सभी स्तरों के व्यक्तियों का अध्ययन**–साक्षात्कार में शिक्षित, अशिक्षित ग्रामीण, नागरिक, सभी स्तरों के लोगों से विचार विमर्श किया जा सकता है एवं उनसे सूचनाएं संग्रहित की जा सकती हैं। यह भी इस प्रणाली का विशेष गुण है कि यह अशिक्षित व्यक्तियों पर भी लागू की जा सकती है।
5. **संपूर्ण प्रतिमान के लिए उपयोगी**–साक्षात्कार विधि की सहायता से जहां एक ओर अध्ययन के लिए उपयुक्त निदर्शन अथवा प्रतिमान प्राप्त किया जा सकता है तो दूसरी ओर इसके द्वारा प्रतिचयन के अंतर्गत आने वाले सभी व्यक्तियों से सूचनाएं प्राप्त करना संभव होता है।
6. **पारस्परिक प्रेरणा**–इस प्रविधि के माध्यम से तथ्य संग्रहित करने के लिए उत्तरदाता एवं अनुसंधानकर्ता आमने सामने विषय से संबंधित विचारों का आदान प्रदान करते हैं एवं दोनों ही परस्पर प्रेरित एवं उत्साहित होते हैं। इस प्रेरणा के कारण उत्तरदाता सही सूचनाएं देता है एवं नये–नये तथ्यों के संबंध में जानकारी मिलती है।
7. **विश्वसनीयता**–इस पद्धति के माध्यम से विश्वसनीय आंकड़े अथवा सूचनाएं अर्जित होने की संभावना बन जाती है। इसका कारण यह है कि अनुसंधानकर्ता साक्षात्कार की प्रक्रिया के दौरान गलत प्रतीत होने वाले उत्तरों से अपने प्रश्न का स्पष्टीकरण करके न केवल ठीक करने का प्रयास करता है बल्कि उत्तरदाता पर

टिप्पणी

भी इस प्रकार नियंत्रण रखता है जिससे वह अधिक से अधिक सही उत्तर दे सके।

8. **सत्यापन की क्षमता**—साक्षात्कार तुलनात्मक रूप से एक लोचपूर्ण प्रविधि है जिसके द्वारा प्राप्त सूचनाओं में वैयक्तिक पक्षपात की संभावना को कम किया जा सकता है। साक्षात्कार में घटनाओं का वृहद स्तर पर स्पष्टीकरण होता है। पारस्परिक विचारों के आदान–प्रदान के द्वारा समस्याओं और घटनाओं के स्पष्टीकरण में मदद मिलती है।
9. **अध्ययन में समन्वय**—साक्षात्कार में अनुसंधानकर्ता, उत्तरदाताओं और परिस्थितियों को देखते हुए अध्ययन की योजना में समन्वय स्थापित कर सकता है। उत्तरदाताओं द्वारा दी गई सूचनाओं के आधार पर अध्ययन विषय में किसी पक्ष में परिवर्तन करना अथवा किसी नये पक्ष का समावेश करना भी साक्षात्कार द्वारा ही संभव हो पाता है।
10. **अवलोकन का समावेश**—साक्षात्कार प्रविधि में अनुसंधानकर्ता को अवलोकन का अवसर भी प्राप्त होता है, जिससे वह साक्षात्कार के साथ–साथ कई घटनाओं का अवलोकन करते हुए बीच में ही नये पदों को सम्मिलित भी कर सकता है। साक्षात्कार के अंतर्गत जिन विषयों से संबंधित प्रश्न पूछना उचित अथवा संभव नहीं होता, सामान्य अवलोकन के द्वारा उससे संबंधित जानकारी भी प्राप्त की जा सकती है।
11. **विविध सूचनाओं की प्राप्ति**— साक्षात्कार प्रविधि के द्वारा विभिन्न प्रकार के उत्तरदाताओं से अध्ययन विषय के विभिन्न क्षेत्रों की सूचनाएं प्राप्त की जा सकती है। एक ही उत्तरदाता से भी विभिन्न प्रकार की सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं।

साक्षात्कार के उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त इस प्रविधि का एक लाभ यह भी है कि इसके द्वारा शोधकर्ता को स्वयं अपनी अवधारणाओं को संशोधित करने का भी अवसर मिल जाता है। साक्षात्कार से प्राप्त सूचनाएं अधिक आत्मिक और स्वाभाविक होती हैं।

साक्षात्कार प्रणाली की सीमाएं

साक्षात्कार प्रविधि में उपरोक्त गुणों अथवा महत्वों के साथ–साथ इसकी कुछ सीमाएं भी हैं, जिनके कारण कभी–कभी इसके द्वारा विश्वसनीय और यथार्थ तथ्यों को संकलित करना बहुत कठिन प्रतीत होता है। इन दोषों अथवा सीमाओं का ध्यान रखे बिना साक्षात्कार प्रविधि का कुशलतापूर्वक उपयोग नहीं किया जा सकता है। साक्षात्कार की प्रविधि की निम्नलिखित सीमाएं हैं–

1. **दोषपूर्ण स्मरण शक्ति**—यह इस प्रविधि की बहुत बड़ी सीमा है क्योंकि यह अनुसंधानकर्ता की स्मरण शक्ति पर निर्भर करता है। वास्तव में स्मृति स्वयं में एक दोषपूर्ण आधार है तथा इस पर आधारित तथ्यों से संपूर्ण अध्ययन के दोषपूर्ण हो जाने की संभावना रहती है।
2. **अपूर्ण तथ्यों का संकलन**—साक्षात्कार प्रविधि में अनुसंधानकर्ता को उत्तरदाताओं की इच्छा पर निर्भर रहना होता है। उत्तरदाता कभी–कभी एक ही पक्ष को विस्तार से स्पष्ट कर पाता है। अतः अधिकांश साक्षात्कारों से प्राप्त सूचनाएं अकसर एक पक्षीय अथवा अपूर्ण होती हैं।

3. **बड़े अध्ययन में अनुपयुक्त**—साक्षात्कार प्रविधि का उपयोग अध्ययन विषय के एक छोटे क्षेत्र के लिए किया जा सकता है। अध्ययन का क्षेत्र यदि बड़ा है तो साक्षात्कार के लिए चुने गए सभी व्यक्तियों से व्यक्तिगत रूप से मिलकर सूचनाएं एकत्रित कर सकना बहुत कठिन हो जाता है।
4. **उपलब्ध समय की कमी**— साक्षात्कार पद्धति में सभी सूचनादाताओं से अनुसंधानकर्ता को व्यक्तिगत संपर्क स्थापित करना पड़ता है। ऐसा करने में अधिक समय लगता है। साधारणतया उत्तरदाता भी अपने खाली समय का उपयोग किसी अन्य कार्य अथवा मनोरंजन के लिए करना चाहते हैं। इसके फलस्वरूप शोधकर्ता को साक्षात्कार के लिए समय देना उनके लिए कठिन होता है।
5. **कुशल साक्षात्कार की समस्या**—साक्षात्कार की सफलता इसके कुशल संचालन पर निर्भर करती है। अतः अनुसंधानकर्ता को साक्षात्कार करने के लिए बहुत व्यवहार कुशल, योग्य और अनुभवी होना आवश्यक है। साधारणतया यह एक कठिन कार्य है इस पर ध्यान दिए बिना साक्षात्कार की संपूर्ण प्रक्रिया दोषपूर्ण हो जाती है।
6. **उत्तरदाताओं का असहयोगपूर्ण व्यवहार**—साधारणतया अनुसंधानकर्ता के प्रति उत्तरदाताओं का व्यवहार अधिक सहयोगपूर्ण नहीं होता। इससे विभिन्न सूचनाएं प्राप्त करने के लिए अनुसंधानकर्ताओं को उत्तरदाताओं की प्रशंसा अथवा चापलूसी तक करनी पड़ती है, जिससे साक्षात्कार प्रक्रिया उत्साह के साथ नहीं हो पाती। उत्तरदाताओं के दोषों को स्पष्ट करते हुए पी.वी. यंग ने लिखा है कि ''समझदार होने के बाद भी उत्तरदाताओं में अक्सर घटनाओं के दोषपूर्ण बोध, दोषपूर्ण स्मृति, अंर्तदृष्टि का अभाव तथा अपनी—बात को स्पष्ट रूप से कह सकने की अयोग्यता होती है।'' जिसके कारण साक्षात्कार दोषपूर्ण हो जाता है।
7. **अशुद्ध प्रतिवेदन**— अनेक स्थितियों में उत्तरदाता साक्षात्कार के दौरान गलत सूचना भी देता है जिससे अनुसंधानकर्ता द्वारा तैयार प्रतिवेदन अशुद्ध हो जाता है तथा अध्ययन अपने निश्चित उद्देश्य तक नहीं पहुंच पाता है।

साक्षात्कार एक उपयोगी प्रविधि है लेकिन इसे व्यवहार में लाना अत्यधिक कठिन और सूझ—बूझ का कार्य है। इस संबंध में पी.वी. यंग ने लिखा है कि ''साक्षात्कार के अंतर्गत साक्षात्कारकर्ता (शोधकर्ता) की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है तथा उसकी कुशलता, अनुभव, बौद्धिक, स्तर एवं परिस्थितियों से अनुकूलन कर सकने की क्षमता के द्वारा साक्षात्कार प्रविधि के दोषों का निवारण किया जा सकता है। सामाजिक अनुसंधान में साक्षात्कार प्रविधि में कई दोषों अथवा सीमाओं के बावजूद इनका उपयोग बराबर बढ़ता जा रहा है। यह एक उपयोगी प्रविधि के रूप में प्रचलित हो रही है तथा इसके भविष्य में उत्तरोत्तर विकास की पूर्ण संभावनाएं हैं।

3.3.7 मापन और स्केलिंग

मापन का साधारण अर्थ मापना या नापना। यह किसी वस्तु या गुण के आकलन का वह माध्यम है, जो उसे परिणाम रूप में व्यक्त करता है। यूं तो मापन जैसे निरपेक्ष शब्द की व्याख्या करना एक कठिन कार्य है, फिर भी सुविधा की दृष्टि से यह अभिप्राय लगाया जाता है कि यह आंकड़ों का अंकों के रूप में तथा किसी भी वस्तु का शुद्ध एवं वस्तुनिष्ठ तरीके से वर्णन करता है।

मापन से हमारा अभिप्राय किसी भी अवलोकन को परिमाणात्मक रूप से व्यक्त करने से है। दूसरे शब्दों में, किसी भौतिक पदार्थ के गुण अथवा विशेषताओं के परिणाम को अंकात्मक रूप देने की क्रिया को मापन क्रिया कहते हैं। इस क्रिया में किसी वस्तु के गुणों को उचित इकाई में प्रकट किया जाता है। किसी व्यक्ति में क्या गुण हैं? इसकी जानकारी मापन देता है, उदाहरणार्थ–सुनंदा अंग्रेजी कितने प्रभावशाली एवं सुंदर ढंग से बोलती है अथवा अभिनव का भूगोल का ज्ञान इतना कम क्यों है? अथवा, शिप्रा की बुद्धि–लब्धि (Intelligence Quotient– IQ) क्या है? आदि मानसिक योग्यताओं की जानकारी मापन के क्षेत्र के अंतर्गत आती है। लेकिन, मानसिक गुणों का मापन प्रत्यक्ष रूप से करना अत्यंत कठिन कार्य है। मापन का क्षेत्र इस दृष्टि से अत्यंत सीमित है। मापन में अंक प्रदान किए जाते हैं। परीक्षक, विद्यार्थियों की उत्तर पुस्तिकाओं को देखकर उनकी योग्यता का मापन करते हैं तथा अपना निर्णय अंकों के रूप में देते हैं। परंतु, इस मापन के आधार पर निश्चित धारणा नहीं बनाई जा सकती। आशु, कक्षा में अनेक विषय पढ़ता है। गणित में वह सबसे अधिक अंक प्राप्त करता है परंतु इससे हम यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते कि वह कक्षा का सबसे अच्छा छात्र है। इस प्रकार, कुछ विशेष शैक्षिक परिस्थितियों में मापन का प्रत्यय स्पष्ट नहीं हो पाता। उदाहरणार्थ, उमा के गृह विज्ञान में 65 प्रतिशत अंक हैं, वहीं दूसरी ओर यह भी संकेत मिल रहा है कि उसकी उपलब्धि अत्यंत संतोषजनक है, जो कि मापन के अतिरिक्त मूल्याकंन की श्रेणी में भी आता है। अतः कहीं–कहीं मापन एवं मूल्यांकन में अंतर स्पष्ट करना मुश्किल हो जाता है।

प्रत्येक मापन क्रिया दो पदों में की जाती है। सर्वप्रथम, मापनकर्ता यह निश्चय करता है कि उसे किस गुण अथवा योग्यता का मापन करना है। दूसरा, वह उपयुक्त मापन उपकरण का चयन करता है। भौतिक मापन में हमारा आधार बिंदु, शून्य होता है तथा इसका मान प्रत्येक स्थान एवं समय पर होता है, जबकि मानसिक या शैक्षिक मापन इतना वस्तुनिष्ठ, सुनिश्चित एवं सही नहीं होता। इसका आधार पूर्व–निर्धारित मानक होते हैं, जो आत्मनिष्ठ होने के साथ–साथ विशिष्टता से भी परे होते हैं। उदाहरण के लिए, किसी कमरे की लंबाई एक फीते की सहायता से आसानी से नापी जा सकती है लेकिन किसी कक्षा का निष्पादन उतनी आसानी से नहीं मापा जा सकता। परंतु मापनकर्ता का संबंध मापन क्रिया की सुविधा से उतना नहीं है, जितना कि उसकी शुद्धि से है। आधुनिक युग का प्रत्येक वैज्ञानिक, मापन क्रिया में अधिक से अधिक शुद्धि लाने का प्रयास करता है, चाहे उसका संबंध किसी भी विज्ञान से हो।

मापन के अंतर्गत विभिन्न निरीक्षणों, वस्तुओं एवं घटनाओं का अंकात्मक रूप में वर्णन किया जाता है तथा इसके अंक प्रदान करने के लिए मापन के विभिन्न स्तरों के अनुकूल विशिष्ट प्रकार के नियमों एवं सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जाता है।

मापन की विशेषताएं

मापन की विशेषताएं निम्न हैं—

1. मापन में कोई निरपेक्ष शून्य बिंदु नहीं होता। यह किसी कल्पित मानक के सापेक्ष होता है।
2. मापन की इकाइयां निश्चित नहीं होतीं। प्रत्येक व्यक्ति के लिए इनका मान समान नहीं होता।
3. शिक्षा में मापन अनंतता की स्थिति बनाए रखता है। हम कभी भी इस बात का दावा नहीं कर सकते कि हमने छात्र की संपूर्ण उपलब्धि का मापन कर लिया है अथवा, उसकी बुद्धि का सही अंदाजा लगा लिया है।
4. मापन अप्रत्यक्ष है अर्थात सीधा मापन न होकर किसी उपयुक्त माध्यम के आधार पर होता है। हम उपलब्धि का मापन व्यक्ति के किसी अन्य प्रकार के कार्य अथवा व्यवहार को देखकर करते हैं, ठीक वैसे ही, जैसे बिजली की पहचान पंखे के चलने से होती है।
5. मापन किसी वस्तु का अत्यंत शुद्धता के साथ आंशिक वर्णन करता है।
6. मापन के द्वारा हम अधिक आसानी से परिणामों को दूसरों तक संचालित कर सकते हैं, क्योंकि इसमें आत्मनिष्ठता का कोई स्थान नहीं होता।
7. मापन, व्यक्ति के मूल्यांकन में सहायक होता है।
8. मापन का प्रयोग आत्मनिष्ठ मूल्यांकन की अपेक्षा अधिक मितव्ययी है।

मापन की सीमाएं

उपरोक्त विशेषताओं के अतिरिक्त मापन की कुछ सीमाएं भी हैं, जो निम्न हैं—

1. मापन की सबसे बड़ी सीमा यह है कि जिस वस्तु का मापन हमें करना होता है, उसी के स्वरूप का निर्णय हम ठीक प्रकार से नहीं कर पाते। यही कारण है कि शैक्षिक मापन का स्तर, भौतिक मापन की अपेक्षा निम्न स्तर का माना जाता है।
2. मापन का क्षेत्र अत्यंत संकुचित एवं सीमित होता है।
3. मापन दो ऐसे शील–गुणों के मध्य विभेद स्पष्ट नहीं कर पाता, जो लगभग एक जैसे होते हैं, जैसे–शैक्षणिक अभिरुचि तथा सामान्य बुद्धि, चरित्र एवं व्यक्तित्व, निष्पादन एवं अभियोग्यता आदि। परिणामस्वरूप, शैक्षणिक मापन निम्न स्तर का रहता है।
4. मापन का रूप व्यवस्थित होता है, अतएव इसकी प्रक्रिया भी जटिल होती है।
5. मापन के अंतर्गत हम जिन शील–गुणों का मापन करते हैं, वे अमूर्त एवं सूक्ष्म होते हैं। यही नहीं, उनका आशय भी विभिन्न वर्गों के लिए भिन्न होता है, उदाहरणार्थ–व्यक्तित्व शब्द का अर्थ शिक्षक, मनोचिकित्सक, मार्ग–निर्देशक,

टिप्पणी

लोक सेवा आयोग के सदस्य अपने–अपने दृष्टिकोणों से अलग–अलग लगाते हैं। फलतः मापन उतना ठीक नहीं होता जितना कि भौतिक मापन होता है।

6. मापन के द्वारा हमें किसी व्यक्ति या प्रक्रिया के बारे में मात्र सूचनाएं मिलती हैं, यह कोई निर्णय प्रदान नहीं करता।
7. मापन के अंतर्गत मापी जाने वाली विशेषताओं का अभौतिक, अस्थिर तथा परिवर्तनशील होना, मापन की प्रमुख सीमा है। अधिकांश शील–गुण व्यक्ति के व्यवहार से संबंधित होते हैं। उदाहरणार्थ, व्यक्तित्व क्या है? यह वह तरीका है, जिसमें व्यक्ति अपने आचरण का प्रदर्शन करता है। बुद्धि क्या है? हम उस व्यक्ति को बुद्धिमान कहते हैं, जिसका व्यवहार जटिल एवं नवीन परिस्थितियों में भी संतोषजनक पाया जाता है। इस प्रकार शैक्षिक मापन में मापी जाने वाली सभी विशेषताएं व्यवहारात्मक ही होती हैं। व्यक्ति का आचरण चूंकि प्रतिक्षण बदलता रहता है इसलिए व्यवहारात्मक विशेषताएं स्थिर न होने के कारण कठिनाई से ही मापी जाती हैं।
8. शैक्षिक विशेषताओं की विमाएं ज्ञात न होने से मापन उतना शुद्ध नहीं हो पाता, जितना कि भौतिक मापन होता है। बुद्धि अथवा व्यक्तित्व की विमाएं क्या हैं? निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

इन्हीं सब कारणों से शैक्षिक मापन उतना शुद्ध नहीं होता है। फिर भी, इन सीमाओं के होते हुए मापन–क्रिया का व्यावहारिक जीवन में महत्वपूर्ण ढंग से प्रयोग किया जा रहा है तथा आज का युग मापन के युग से जाना जाता है।

मापन के स्तर (स्केलिंग)

निर्दिष्ट नियमों के अनुसार वस्तुओं को मापने और संख्याओं को निर्दिष्ट करने की प्रक्रिया स्केलिंग कहलाती है। अन्य शब्दों में, मापी गई वस्तुओं को सातत्य पर खोजने की प्रक्रिया, संख्याओं का एक सतत क्रम जो वस्तुओं को दिया जाता है, स्केलिंग कहलाती है।

हम स्केलिंग को किसी चीज के आकार को बदलने के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, एक खिलौना कार एक आदमकद कार का एक स्केल मॉडल है। इसके अलावा, लघु ट्रेनें आदमकद ट्रेनों के स्केल मॉडल हैं।

पैमाने को ड्राइंग में लंबाई के रूप में दिखाया जाता है, फिर एक कोलन (":"), फिर वास्तविक चीज पर मिलान लंबाई। उदाहरण– किसी ड्राइंग में यदि "1:10" का पैमान है, तो "1" के आकार से खींची गई किसी भी चीज का आकार वास्तविक दुनियामें "10" होगा, इसका अर्थ हुआ कि ड्राइंग में यदि माप 150 मिमी का है तो असली माप 1500 मिमी होगा।

शैक्षिक मापन का आधार, आंकड़े होते हैं। मापन चाहे किसी भी प्रकार का हो– भौतिक, सामाजिक, आर्थिक अथवा मनोवैज्ञानिक, हमें संबंधित आंकड़े उपलब्ध कराने ही पड़ते हैं। सुविधा की दृष्टि से उपलब्ध आंकड़ों को हम चार स्तरों के अंतर्गत रखते हैं। ये चारों स्तर एक निश्चित क्रम में रखे जाते हैं। जो स्तर जितना निम्न होता है, उसका मापन तो उतना ही सरल होता है लेकिन उसके द्वारा किए गए मापन में हमारे निष्कर्षों की शुद्धता उतनी ही संदेहास्पद होगी। इसके विपरीत स्तर जितना उच्च होता है,

उसका मापन उतना ही अधिक जटिल होता है लेकिन उसके द्वारा प्राप्त निष्कर्ष अधिक परिशुद्ध होंगे। इस प्रकार, मापन की परिशुद्धता उसके स्तर पर निर्भर करती है। बहुधा, मापन प्रक्रिया के अंतर्गत व्यक्तियों, वस्तुओं, घटनाओं, निरीक्षणों अथवा विशेषताओं को अंकात्मक रूप (Quantitative Form) प्रदान किया जाता है। फलतः प्रत्येक मापन का एक ही उद्देश्य होता है तथा उसके नियम, सिद्धांत, विशेषताएं, सीमाएं एवं सांख्यिकीय विधियां, दूसरे स्तर से पूर्णतया भिन्न होते हैं।

मापन के मुख्य रूप से निम्न चार स्तर होते हैं–

1. शब्दिक स्तर (Nominal Scale) ,
2. क्रमिक स्तर (Ordinal Scale) ,
3. अंतराल स्तर (Interval Scale) तथा
4. अनुपात स्तर (Ratio Scale)।

शाब्दिक अथवा नामित स्तर (Nominal Scale)

यह मापन का सबसे निम्न स्तर होता है। कुछ लोग इसे वर्गीकरण स्तर (Classification Level) के नाम से भी पुकारते हैं। इस मापन में मापित वस्तुओं अथवा घटनाओं को उनके किन्हीं निश्चित गुणों के आधार पर अलग–अलग समूहों में रख दिया जाता है तथा उस समूह की पहचान के लिए उसे कोई अमुक नाम (Name), संख्या (Number) या चिह्न (Code) दे दिया जाता है। इस समूह की यह विशेषता होती है कि उस समूह में सम्मिलित सभी तत्व (Elements) अथवा व्यक्ति आपस में तो समान होंगे, लेकिन किसी दूसरे समूह की तुलना में बिल्कुल भिन्न होंगे। समूह की इस विशेषता को हम आंतरिक समजातीयता (Internal Homogeneity) कहते हैं। उदाहरण के तौर पर, पाकिस्तान और भारत की हॉकी टीम की पहचान के लिए उन्हें अलग–अलग रंग की ड्रैस प्रदान की जाएगी तथा उन पर P तथा I संकेत लिख दिया जाएगा। इसी प्रकार, स्त्रियों तथा पुरुषों, गोरे एवं कालों, शहरी एवं देहाती लोगों में अंतर स्पष्ट करने के लिए उन्हें अलग–अलग वर्गों में रखा जाएगा। इसी प्रकार, डाक वितरण के लिए पिन कोड देना, किसी बड़े महानगर को जोन्स में विभक्त करना, जैसे–नई दिल्ली–110001, 110009, 65,81 आदि, रेलवे डिविजन को संकेत चिह्न प्रदान करना, बैंकों को संकेत चिह्न देना जैसे, बैंक ऑफ इंडिया–3, द न्यू बैंक ऑफ इंडिया–7, कैनरा बैंक–4, सिंडिकेट बैंक–5 आदि, विभिन्न प्रकार के फलों को कोड देना, क्रिकेट खिलाड़ियों को नंबर प्रदान करना आदि। विभिन्न प्रकार के वर्गीकरणों में मापन के इस स्तर का प्रयोग किया जाता है। शोध की दृष्टि से यह स्तर महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि इसमें गणना या गिनती करने के अलावा किसी प्रकार की सांख्यिकीय प्रविधि का प्रयोग नहीं किया जाता है।

क्रमिक स्तर (Oridinal Scale)

पैमाने के क्रम में क्रमिक स्तर नीचे से ऊपर की ओर द्वितीय क्रमांक पर आता है। इस पैमाने में वस्तुओं, व्यक्तियों, घटनाओं, विशेषताओं अथवा प्रतिक्रियाओं को किसी गुण के आधार पर एक क्रम (Hierarchical Order) में आरोही (Ascending) अथवा अवरोही (Descending) क्रम में व्यवस्थित कर लिया जाता है। इसके पश्चात उसे श्रेणी (Rank) प्रदान की जाती है। अंकों के आधार पर विद्यार्थियों को प्रथम, द्वितीय, तृतीय क्रमांक प्रदान करना, योग्यता एवं अनुभव के आधार पर नौकरी में प्राथमिकता प्रदान करना,

टिप्पणी

खिलाड़ियों के श्रेष्ठ प्रदर्शन के आधार पर उन्हें ट्रॉफी प्रदान करना, सुंदरता के आधार पर मिस इंडिया या मिस एशिया का चयन करना, सर्वश्रेष्ठ उद्योगपति का चयन करना, कॉलेज में प्रोक्टोरियल बोर्ड के गठन के लिए प्राध्यापकों का चयन करके उनकी प्रशासनिक सफलता को क्रम प्रदान करना, रुचि एवं स्वाद के आधार पर फलों की रुचि को क्रम देना आदि कुछ इस पैमाने के उदाहरण हैं। इस मापन में क्रम प्रदान करने के लिए हम प्रायः निम्न दो विधियों का प्रयोग करते हैं–1. पंक्ति क्रम विधि तथा 2. युग्म तुलना विधि। प्रथम विधि अत्यंत सरल है। इसमें मात्र वस्तुओं को उनके कोटि क्रम के अनुसार क्रमबद्ध कर लिया जाता है, जैसे–भारतीय क्रिकेट टीम में खिलाड़ियों का क्रम उनके श्रेष्ठ प्रदर्शन के आधार पर इस प्रकार से किया जाता है– गावस्कर, कपिल देव, रवि शास्त्री, मोहिन्दर अमरनाथ, वेंगसरकर, श्रीकांत, अजहरुद्दीन, शिवारामकृष्णन, गोपाल शर्मा व मनिंदर सिंह। दूसरी विधि में समूह के समस्त सदस्यों की तुलना जोड़ों में की जाती है। समूह में जोड़ों की संख्या निर्धारित करने के लिए अग्रलिखित सूत्र प्रयोग में लाया जाता है–

$$nc_2 = n \times \frac{n-1}{2}$$

जहां, nc_2 = कुल जोड़ों की संख्या

तथा n = समूह में कुल सदस्यों की संख्या

यद्यपि, इस पैमाने का प्रयोग, शाब्दिक पैमाने की तुलना में बहुत अधिक वैध एवं विश्वसनीय नहीं माना जाता। इस पैमाने में सांख्यिकीय प्रविधियों, जैसे–मध्यांक, शतांशीय मान सह–संबंध, गुणक (r) के प्रयोग की संभावना रहते हुए भी यह पैमाना दो व्यक्तियों के मध्य अंतर तो बताता है लेकिन इससे यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि उन व्यक्तियों के मध्य वास्तविक अंतर कितना है। यही इस पैमाने की प्रमुख सीमा है।

अंतराल स्तर (Interval Scale)

यह मापन का तृतीय स्तर है। इसमें उपरोक्त दोनों स्तरों की कमियों को दूर करने का प्रयास किया गया है। इस पैमाने के अंतर्गत हम किन्हीं दो वर्गों, व्यक्तियों अथवा वस्तुओं के मध्य अंतर को अंकों के माध्यम से प्रदर्शित करते हैं। प्रत्येक अंतर की दूरी समान होती है। यद्यपि इस पैमाने में कोई परिशुद्ध बिंदु नहीं होता, जिसके आधार पर यह ज्ञात किया जा सके कि कोई भी अंक इस आधार पर शून्य से कितनी दूर है। फिर भी सम दूरी पर व्यवस्थित अंकों को ही हम इस पैमाने की स्थिर इकाई मानते हैं। वास्तविक शून्य बिंदु का न होना ही इस पैमाना का प्रमुख दोष है, जिसके कारण इस पैमाने के द्वारा किया गया मापन सापेक्ष होता है न कि निरपेक्ष। अर्थात यदि कोई छात्र किसी उपलब्धि परीक्षण में शून्य अंक प्राप्त करता है तो इससे हमें यह निष्कर्ष कदापि नहीं निकालना चाहिए कि उस छात्र को उस विषय का ज्ञान बिल्कुल नहीं है। थर्मामीटर, घंटा, मिनट, सप्ताह, महीना, वर्ष आदि इस पैमाने के उदाहरण हैं। थर्मामीटर से मनुष्य का तापक्रम देखने पर 98.4 सामान्य माना जाता है लेकिन यदि किन्हीं कारणों से एक व्यक्ति का तापक्रम देखने पर 97 आता है, तो जहां एक ओर यह दर्शाता है कि उस अमुक व्यक्ति को बुखार नहीं है, वहीं हमें यह अंदाजा नहीं लगाना चाहिए कि उस व्यक्ति के शरीर में गर्मी है ही नहीं। थर्मामीटर इस पैमाने का

सबसे उपयुक्त उदाहरण है। थर्मामीटर 980 से 1080 तक अंकित होता है। इसमें 980 से 990 के मध्य जितना अंतर होता है, उतना ही अंतर 1070 से 1080 के मध्य होता है। इस पैमाने के अंतर्गत अनेक प्रकार की सांख्यिकीय गणनाओं, जैसे–माध्य, शतांशीय मान तथा मानक विचलन आदि के प्रयोग की संभावना रहती है।

टिप्पणी

अनुपात स्तर (Ratio Scale)

यह मापन का सर्वोच्च स्तर है। इस मापन में उपरोक्त सभी पैमानों की विशेषताएं विद्यमान हैं। वास्तविक शून्य बिंदु का विद्यमान होना, इस स्तर की प्रमुख विशेषता है। यह शून्य बिंदु कोई कल्पित बिंदु नहीं होता बल्कि, इसका अर्थ किसी शील–गुण अथवा विशेषता की शून्य मात्रा से होता है। भौतिक मापन में हमेशा निरपेक्ष शून्य बिंदु पाया जाता है, जैसे–मीटर, किलोमीटर, ग्राम, लीटर, मिलीमीटर आदि। लंबाई, भार या दूरी मापने के लिए हम शून्य बिंदु से ही प्रारंभ करते हैं। अनुपात पैमाने में वास्तविक शून्य बिंदु को ही पैमाने का प्रारंभिक बिंदु माना जाता है। इसी कारण, हम दो स्थानों के बीच दूरी का अनुपात पता लगा लेते हैं तथा निश्चित तौर से कह सकते हैं कि अमुक स्थान की तुलना में दूसरा स्थान कितना अधिक दूर है। इसी प्रकार, यदि किसी गुण के आधार पर आशा, शांति तथा विभा को 10,20 तथा 40 अंक प्रदान किए जाते हैं तो इस पैमाने के अनुसार हम कहेंगे कि जो गुण आशा में जिस मात्रा में विद्यमान हैं, शांति में उससे दोगुनी मात्रा में हैं तथा विभा में चार गुना अधिक मात्रा में हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इस पैमाने की प्रत्येक इकाई की दी गयी संख्या, मापित शील–गुण की विभिन्न मात्राओं के मध्य अनुपात को स्पष्ट करती है। इस पैमाने में गणित की सभी मूलभूत प्रक्रियाओं के प्रयोग की प्रबल संभावना रहती है।

3.3.8 विश्वसनीयता और वैधता

सामाजिक विज्ञान शोध का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। मनुष्य के व्यवहार का परिमाण– अर्थात, मनुष्य के व्यवहार के अवलोकन हेतु माप यंत्रों का प्रयोग। मनुष्य के व्यवहार का माप, व्यापक रूप से स्वीकृत सकारात्मक दृष्टिकोण या अनुभवजन्य विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण का एक हिस्सा है, वास्तविकता को समझने के लिए। क्योंकि ज्यादातर व्यवहारात्मक शोध इसी प्रतिमान के अंदर होता है, माप के उपकरणों का विश्वसनीय और वैध होना आवश्यक है।

(अ) विश्वसनीयता

विश्वसनीयता वह सीमा है जहां तक माप को दोहराया जा सकता है– जब अलग लोग, अलग समय पर, अलग परिस्थितियों में माप करते हैं। मान लो एक चीज का माप करने के लिए वैकल्पिक उपकरणों का प्रयोग करके। पूरी तरह से, विश्वसनीयता को माप की निरंतरता या माप की स्थिरता कहा जा सकता है, भिन्न परिस्थितियों में जिनमें मूल रूप से सामान्य निष्कर्ष निकाले जाने हैं (ननल्ली 1978)। व्यवहारिक शोध जांचों से प्राप्त डेटा, अनियमित मापन त्रुटियों द्वारा प्रभावित होता है। मापन त्रुटियां या तो व्यवस्थित त्रुटि या अनियमित त्रुटि के रूप में आती हैं। बाथरूम की वजन लेने वाली मशीन एक अच्छा उदाहरण है (रोसेंथल और रॉसनो, 1991)। यदि आप लगातार रूप से अपने बाथरूम की मशीन पर अपना वजन मापते हैं, और वह हमेशा 10 पाउंड अधिक वजन बताता है। लेकिन यदि आपकी मशीन बिल्कुल ठीक है और अपना वजन लेते

टिप्पणी

समय खुद को गलत मापते हैं तो यह अनियमित त्रुटि होगी। इसके परिणामस्वरूप, अपने असल वजन की तुलना में कई बार, आप अपना वजन ज्यादा मापेंगे और कई बार कम मापेंगे। हालांकि, एक व्यक्ति का बार–बार माप लेने पर ये अनियमित त्रुटियां औसतन रद्द हो जाती हैं। दूसरी ओर, व्यवस्थित त्रुटियां रद्द नहीं होतीं। ये अध्ययन किए जाने वाले सभी विषयों के औसत (मीन) स्कोर के प्रति योगदान देती हैं, जिससे औसत (मीन) मूल्य या तो बहुत बढ़ जाता है या बहुत कम हो जाता है। इस प्रकार, यदि एक व्यक्ति बार–बार खुद का एक ही बाथरूम की वजन मापने वाली मशीन पर वजन लेता जाए, उसका हर बार एक समान वजन नहीं आएगा, लेकिन यह मानते हुए कि छोटे अंतर अनियमित होते हैं और रद्द हो जाते हैं, हम अपने वजन का औसतन मूल्यों से अनुमान लगा लेंगे। हालांकि, अगर वजन पैमाना हर बार 10 पाउंड ज्यादा वजन दिखाएगा तो औसतन वजन निकालने से व्यवस्थित त्रुटि रद्द नहीं होगी, लेकिन व्यक्ति के कुल औसतन वजन में से 10 पाउंड घटाकर इसकी आपूर्ति की जा सकती है। व्यवस्थित त्रुटियां वैधता की एक मुख्य चिंता हैं। ऐसे कई तरीके हैं जिनसे अनियमित त्रुटियां परीक्षणों में माप को प्रभावित कर सकती हैं। उदाहरण के लिए, यदि एक परीक्षण में केवल थोड़ी चीजें सम्मिलित हैं, विद्यार्थियों का उस परीक्षण में अच्छा प्रदर्शन कुछ हद तक, सही उत्तर जानने की उनकी किस्मत पर भी निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त, यदि एक विद्यार्थी बीमारी की हालत में परीक्षा देता है तो हो सकता है कि उसका प्रदर्शन उतना अच्छा न हो जितना कि और दिन हो सकता था। अंत में, जब एक विद्यार्थी अपनी परीक्षा में प्रश्नों के उत्तरों का अनुमान लगाता है तो उसकी यह अनुमान लगाने की प्रक्रिया व्यापक परीक्षण निष्कर्षों में अनियमितता या अविश्वसनीयता का तत्व डाल देती है (ननल्ली, 1978)। कुल मिलाकर, अन्य प्रकार के परीक्षणों में विविधताओं के जरिए, कई प्रकार के त्रुटियों के स्रोत प्रस्तावित किए जा सकते हैं, स्थितिजन्य कारकों द्वारा जो अध्ययन के तहत विषयों के व्यवहार को प्रभावित करते हैं, विभिन्न परीक्षकों द्वारा उपयोग किए गए दृष्टिकोणों द्वारा, और प्रभाव के अन्य कारकों द्वारा।

इसलिए, शोधकर्ता (या विज्ञान, सामान्य रूप से) माप उपकरणों की विश्वसनीयता द्वारा सीमित है और/या जिस विश्वसनीयता से वह उसका उपयोग करता है। नौसिखिए शोधकर्ता के लिए यह धारणा भ्रमित करने वाली हो सकती है कि एक विश्वसनीय तरीका अवैध हो सकता है। बॉलन (1990) ने इस बात पर स्पष्टता प्रदान की है कि विश्वसनीयता तरीके का वह हिस्सा है जो शुद्ध अनियमित त्रुटि से मुक्त है और यह कि विश्वसनीयता की व्याख्या में कहीं भी यह नहीं लिखा है कि एक तरीके का वैध होना अनिवार्य है। हो सकता है कि एक विश्वसनीय उपाय वैध न हो। ऊपर वर्णित बाथरूम पैमाने का उदाहरण इस बात को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। इस प्रकार, विश्वसनीयता आवश्यक तो है, लेकिन वैधता के लिए यह अकेली पर्याप्त स्थिति नहीं है (ननल्ली, 1978)।

विश्वसनीयता का अनुमान

क्योंकि विश्वसनीयता समय के साथ माप की स्थिरता या विभिन्न स्थितियों में माप की स्थिरता है, विश्वसनीयता का अनुमान लगाने की सबसे सामान्य तकनीक है संगठन के एक उपाय के साथ, सहसंबंध गुणांक, जिसे अकसर विश्वसनीयता गुणांक कहा जाता है (रॉसनो तथा रोसेंथल, 1991)।

विश्वसनीयता गुणांक दो या अधिक वेरियबलों (यहां परीक्षण, चीजें या रेटर के बीच ऐसा सहसंबंध है जो एक ही चीज का माप करता है। व्यवहारिक शोध में परीक्षण की विश्वसनीयता का अनुमान लगाने की विशिष्ट विधियां हैं : परीक्षण – पुनः परीक्षण विश्वसनीयता, वैकल्पिक रूप, विभाजन–हिस्से, अंतर–रेटर विश्वसनीयता और आंतरिक स्थिरता।

परीक्षण– पुनः परीक्षण विश्वसनीयता

परीक्षण– पुनः परीक्षण विश्वसनीयता, एक माप सत्र से दूसरे तक अस्थायी स्थिरता को संदर्भित करता है। प्रक्रिया में शामिल है उत्तरदाताओं के समूह पर एक परीक्षण करना और फिर बाद में, किसी दूसरे समय पर उन्हीं उत्तरदाताओं पर फिर वही परीक्षण करना। अलग–अलग समय पर दिए गए समान परीक्षणों पर अंकों के बीच का संबंध परीक्षण – पुनः परीक्षण विश्वसनीयता को परिभाषित करता है। इसके आकर्षण के अलावा, परीक्षण – पुनः परीक्षण विश्वसनीयता तकनीक में अनेक कमियां हैं (रोसेंथल और रॉसनो, 1991)। उदाहरण के लिए, पहले और दूसरे परीक्षण के बीच बहुत कम अंतराल होने की सूरत में, उत्तरदाताओं को पहला परीक्षण अच्छी तरह याद हो सकता है और दूसरे परीक्षण में उनके जवाब स्मृति द्वारा प्रभावित हो सकते हैं। वैकल्पिक रूप से, दो परीक्षणों के बीच बहुत लंबे अंतराल के कारण, परिपक्वता हो सकती है। परिपक्वता का मतलब है विषय कारकों या उत्तरदाताओं में परिवर्तन (स्वतंत्र वेरियबल से संबंधित के अलावा) जो समय के चलते होता है और पहले माप की तुलना में बाद के माप में अंतर लाता है (टी तथा टी़1)। दोनों परीक्षणों के बीच के समय में, उतरदाताओं के सामने ऐसी चीजें आ सकती हैं जिनसे उनकी राय, भावनाओं या रवैये में परिवर्तन हो।

वैकल्पिक रूप

विश्वसनीयता का अनुमान लगाने की वैकल्पिक रूप तकनीक, परीक्षण – पुनः परीक्षण तरीके की तरह ही है, इसमें केवल इतना फर्क है कि अलग प्रकार के व्यवहारों (एक ही प्रकार के व्यवहार की जगह) का अलग अलग समय पर संग्रह किया जाता है (बोल्लेन)। वैकल्पिक रूपों के बीच कम संबंध, बड़ी माप त्रुटि का संकेतक हो सकता है, क्योंकि दो अलग पैमानों का प्रयोग किया गया था। उदाहरण के लिए, सामान्य वर्तनी के लिए परीक्षण करते समय, हो सकता है कि दोनों स्वतंत्र रूप से बने परीक्षणों में से एक सामान्य वर्तनी का परीक्षण करने की जगह अधिक विषय–विशिष्ट वर्तनी, जैसेकि व्यापार वर्तनी, का परीक्षण करे। इस प्रकार की माप त्रुटि को फिर परीक्षण के दौरान परीक्षित चीजों के सांपल पर मढ़ दिया जाता है। परीक्षण–पुनः प्रीक्षण तरीके की अनेक कमियां, वैकल्पिक रूप तकनीक के लिए सच्ची हैं।

विभाजन–हिस्सा दृष्टिकोण

विश्वसनीयता के परीक्षण का एक अन्य तरीका है विभाजन–हिस्सा दृष्टिकोण, जो यह मानता है कि व्यवहार को मापने के लिए बहुत सी चीजें उपलब्ध हैं। आधी वस्तुओं को एक नया माप बनाने के लिए संयोजित किया जाता है और दूसरे आधे को दूसरे नए उपाय के रूप में संयोजित किया जाता है। परिणाम निकलता है, दो परीक्षण और एक ही व्यवहार के परीक्षण के दो नए तरीके। परीक्षण–पुनः परीक्षण और वैकल्पिक रूप

तरीकों के विपरीत, विभाजन–हिस्सा दृष्टिकोण आमतौर पर उसी समय अवधि में माप करता है। पूरे परीक्षण के लिए विश्वसनीयता गुणांक प्राप्त करने हेतु, दो हिस्सों के परीक्षणों के बीच सहसंबंध को सही किया जाना चाहिए (ननल्ली, 1978; बॉलन, 1989)।

बहुत से ऐसे पक्ष हैं जो परीक्षण–पुनः परीक्षण और वैकल्पिक रूपों के तरीकों की तुलना में विभाजन–हिस्से को अधिक वांछनीय बनाते हैं। पहला, ऊपर चर्चित स्मृति का प्रभाव इस दृष्टिकोण के साथ काम नहीं करता है। इसके अलावा, एक व्यावहारिक लाभ यह है कि विभाजन–हिस्सा आमतौर पर समय के आंकड़ों की तुलना में सस्ता होता है और अधिक आसानी से प्राप्त होता है (बॉलन, 1989)। विभाजन–हिस्सा विधि का एक नुकसान यह है कि परीक्षण समानांतर तरीके होने चाहिए– यानी, वस्तुओं के विभाजन के अनुसार, दोनों हिस्सों के बीच सहसंबंध में थोड़ा अंतर हो सकता है। ननल्ली (1978) द्वारा यह सुझाव दिया गया है कि वैकल्पिक रूपों की गैर–उपलब्ध होने पर, छोटी अवधि में व्यवहार की परिवर्तनशीलता को मापते समय, विभाजन–हिस्सा विधि अपनाना एक अच्छा विकल्प है। उदाहरण के लिए, सम वस्तुओं को पहले एक परीक्षण के रूप में दिया जा सकता है और, दूसरे अवसर पर, वैकल्पिक रूप के रूप में विषम वस्तुएं दी जा सकती हैं। सम और विषम वस्तु परीक्षण स्कोर के बीच सही सहसंबंध गुणांक उस अवधि के दौरान व्यवहार की सापेक्ष स्थिरता का संकेत देगा।

अंतर–रेटर विश्वसनीयता

व्यवहार को मापने के लिए रेटर या निर्णय के उपयोग के दौरान उनके निर्णयों की विश्वसनीयता या निर्णय की संयुक्त आंतरिक स्थिरता का आकलन किया जाता है।

आंतरिक स्थिरता

आंतरिक स्थिरता, परीक्षण घटकों की विश्वसनीयता से संबंधित है। आंतरिक स्थिरता साधन के भीतर स्थिरता को मापती है और यह प्रश्न उठाती है कि वस्तुओं का एक सेट, परीक्षण के भीतर, किसी विशेष व्यवहार या विशेषता को कितनी अच्छी तरह मापता है। एक परीक्षण के आंतरिक रूप से सुसंगत होने के लिए, विश्वसनीयता के अनुमान एक परीक्षण के भीतर सभी एकल वस्तुओं के बीच औसत अंतर संबंध पर आधारित होते हैं। व्यवहार विज्ञान में आंतरिक स्थिरता के लिए परीक्षण की सबसे लोकप्रिय विधि है गुणांक अल्फा। गुणांक अल्फा को क्रोनबैच (1951) द्वारा लोकप्रिय किया गया था, जिन्होंने इसकी सामान्य उपयोगिता को मान्यता दी। परिणामस्वरूप, यह अकसर क्रोनबाक के अल्फा के रूप में जाना जाता है। वस्तुओं की संख्या के एक निश्चित बिंदु तक बढ़ने से आंतरिक स्थिरता के गुणांक में वृद्धि होती है। उदाहरण के लिए, 5–वस्तु का परीक्षण सही स्कोर के साथ .40 को सहसंबद्ध कर सकता है, और एक 12–वस्तु का परीक्षण सही स्कोर के साथ .80 को सहसंबद्ध कर सकता है। नतीजतन, व्यक्तिगत वस्तु के लिए सही स्कोर के साथ केवल एक छोटा सहसंबंध होना अपेक्षित होगा। इस प्रकार, गुणांक अल्फा के बहुत कम साबित होने के दो ही कारण हो सकते हैं, या तो परीक्षण की बहुत कम अवधि और या वस्तुओं में समानता की भारी कमी। गुणांक अल्फा एकात्मक परीक्षण में वस्तु–विशिष्ट विचरण की विश्वसनीयता का अनुमान लगाने के लिए लाभदायक है (कॉर्टिना, 1993)। यानी, एक कारक या निर्माण का अस्तित्व निर्धारित होने के बाद यह उपयोगी होता है (कोर्टिना, 1993)। आगे इस खंड के निष्कर्ष में, खोजकों द्वारा विश्वसनीयता के बारे में अकसर पूछे गए प्रश्नों पर चर्चा की गई है।

टिप्पणी

ऐसे अनेक कारक हैं जो मापों को हू–ब–हू दोहराए जाने या नकल किए जाने से रोकते हैं। ये कारक परीक्षण की प्रकृति और परीक्षण के उपयोग के तरीके पर निर्भर करते हैं (ननल्ली, 1978)। माप की उन त्रुटियों के बीच अंतर करना महत्वपूर्ण है जो एक परीक्षण के दौरान प्रदर्शन में भिन्नता का कारण बनती हैं, और यंत्र की त्रुटियां जो केवल भिन्न प्रकार के परीक्षणों के प्रदर्शन में भिन्नता के दौरान नजर आती हैं।

एक परीक्षण के भीतर त्रुटि का एक प्रमुख स्रोत वस्तुओं का नमूना हो सकता है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की सही उत्तर देने की समान संभावना होती है, परीक्षण में जितनी ज्यादा वस्तुएं होंगी, पूरे परीक्षण में त्रुटि की मात्रा उतनी ही कम होगी। हालांकि, वस्तु के सांपल के कारण त्रुटि, औसतन सहसंबंध द्वारा पूरी तरह अनुमानित है, इस प्रकार गुणांक अल्फा विश्वसनीयता का सही माप होगा। परीक्षणों पर त्रुटियों के स्रोतों के अन्य उदाहरण हैं : एक परीक्षण पर अनुमान लगाना, गलत तरीके से उत्तरों को चिह्नित करना (लिपिकीय त्रुटियां), अनजाने में एक प्रश्न को छोड़ देना, और परीक्षण के निर्देशों को गलत समझना। लंबे उत्तरों वाले परीक्षणों में, जैसेकि निबंध परीक्षण, अक्सर व्यक्तिगत श्रेणी–निर्धारक द्वारा मानकों में उतार–चढ़ाव के कारण और विभिन्न श्रेणी–निर्धारकों के मानकों में अंतर के कारण माप की त्रुटियां होती हैं। उदाहरण के लिए, एक निबंध परीक्षण में शिक्षक पहले प्रश्न संख्या 1 को अंक प्रदान कर सकता है, उसके बाद प्रश्न संख्या 2 को आदि। यदि ये अंक एक दूसरे से स्वतंत्र हैं तो प्रश्नों के बीच औसतन सहसंबंध को विश्वसनीयता का एक सटीक अनुमान प्राप्त करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। दूसरी ओर, यदि आधे प्रश्न एक व्यक्ति द्वारा अंकित किए जाते हैं और बाकी के दूसरे व्यक्ति द्वारा स्वतंत्र रूप से अंकित किए जाते हैं तो दो आधे परीक्षणों के बीच सहसंबंध विश्वसनीयता का अनुमान प्रदान करेगा। इस प्रकार, किसी भी परीक्षण के लिए, एक ज्ञान–क्षेत्र से वस्तुओं को सांपल करने की प्रक्रिया में परिस्थिति कारकों के सांपल शामिल होते हैं।

वस्तुओं को स्पष्टतः लिखकर, परीक्षण के निर्देशों को आसानी से समझने लायक बनाकर और रेटरों को अंक प्रदान करने के नियमों को सम्पूर्णतः स्पष्ट करके उन्हें प्रभावी प्रशिक्षण प्रदान करके विश्वसनीयता को सुधारा जा सकता है (ननल्ली, 1978)। परीक्षणों को और अधिक विश्वसनीय बनाने के लिए मुख्य विधि है उन्हें लंबा करना, इस प्रकार और वस्तुएं जोडकर। साइकोमेट्रिक्स में विश्वसनीयता और अन्य कारणों से, ऐसा कहा जाता है कि, बाकी सभी चीजें बराबर होने की सूरत में, एक लंबा परीक्षण अच्छा होता है (ननल्ली से, पे. 243)। हालांकि, बाकी कारकों के बीच, परीक्षण जितना लंबा होगा उतना ही बोर करने और थकाने वाला होगा, इससे यथार्थ प्रतिक्रिया की निरंतरता में कमी हो सकती है (रोसेंथल तथा रॉसनो, 1991)।

विश्वसनीयता का एक संतोषजनक स्तर इस बात पर निर्भर करता है कि एक तरीके का उपयोग किस प्रकार किया जा रहा है। यह मानक ननल्ली (1978) में से लिया गया है, जिनका यह कहना है कि एक शोध के शुरुआती स्तर पर एक निर्माण के पूर्वसूचक परीक्षण या परिकल्पित तरीकों की .70 या उससे अधिक की विश्वसनीयता बहुत होगी। इस स्तर पर, ननल्ली (1978) का मानना है कि विश्वस्नीयताओं को .80 से अधिक ले जाना समय और पैसे, दोनों, की बर्बादी है, क्योंकि उस स्तर पर सहसंबंध माप त्रुटि के कारण बहुत कम तनूकृत होते हैं। उदाहरण के लिए, .90 की उच्च विश्वसनीयता प्राप्त करने के लिए, मानकीकरण और संभवतः वस्तुओं में वृद्धि के

अतिरिक्त प्रयासों की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर, प्रयुक्त सेटिंग्स में जहां विशिष्ट परीक्षण स्कोर के संबंध में महत्वपूर्ण निर्णय किए जाते हैं, ननल्ली (1978) द्वारा यह सुझाव दिया गया है कि कम से कम .90 की विश्वसनीयता वांछनीय है, क्योंकि एक व्यक्ति द्वारा एक परीक्षण में पाए गए यथार्थ अंकों पर बहुत कुछ निर्भर करता है। 70 से कम बुद्धि वाले बच्चे, जिन्हें विशेष कक्षाओं में रखा जाता है, एक अच्छा उदाहरण हैं। इस मामले में, इस बात का बहुत फर्क पड़ता है कि बच्चे के एक विशेष परीक्षण में 65 बुद्धि अंक हैं या 75। आगे की चर्चा शोध में वैधता पर केंद्रित है।

(ब) वैधता

वैधता, शोध के घटकों की सार्थकता से संबंधित है। व्यवहारों को मापते समय खोजकों का ध्यान इस बात पर केंद्रित होता है कि क्या उसी चीज को माप रहे हैं जिसे वो मापना चाहते थे। क्या आइक्यू (बुद्धि) परीक्षण बुद्धिमता को मापता है? क्या जीआरई वास्तव में ग्रैजुएट अध्ययन प्रोग्राम की सफलतापूर्वक सम्पूर्णता की भविष्यवाणी करता है? ये वैधता के सवाल हैं और भले ही इनका पूरी निश्चितता से उत्तर नहीं दिया जा सकता, लेकिन फिर भी शोधकर्ता अपने तरीकों की वैधता के लिए दृढ़ समर्थन विकसित कर सकते हैं (बॉलन, 1989)।

वैधता के प्रकार

वैधता के चार प्रकार हैं– सांख्यिकीय निष्कर्ष वैधता, आंतरिक वैधता, निर्माण वैधता और बाहरी वैधता। इनका विवरण इस प्रकार है–

1. सांख्यिकीय निष्कर्ष वैधता

क्या दो चरों (वैरियेबलों) के बीच एक संबंध होता है? सांख्यिकीय निष्कर्ष वैधता, परीक्षण के अधीन संबंध से संबंधित है। सांख्यिकीय निष्कर्ष वैधता इस बात को संदर्भित है कि क्या दिए गए एक विशिष्ट अल्फा स्तर और और पाई गई विभिन्नता पर सहविभिन्नता का अनुमान लगाना ठीक है (कुक एवं कैंपबेल, 1979)। सांख्यिकीय निष्कर्ष की वैधता के लिए कुछ प्रमुख खतरे हैं जैसे निम्न सांख्यिकीय शक्ति, मान्यताओं का उल्लंघन, उपायों की विश्वसनीयता, उपचार की विश्वसनीयता, प्रयोगात्मक सेटिंग में यादृच्छिक अप्रासंगिकता और उत्तरदाताओं की यादृच्छिक विविधता।

2. आंतरिक वैधता

संबंध के अस्तित्व को मानते हुए, क्या यह संबंध एक आम संबंध है? क्या मेरी जांच में कोई उलझाने वाले कारक नहीं हैं? आंतरिक वैधता, स्वयं शोध की वैधता से बात करती है। उदाहरण के लिए, एक कंपनी का प्रबंधक नेतृत्व संतुष्टि पर कर्मचारियों का परीक्षण करता है।

केवल 50% कर्मचारियों ने सर्वेक्षण का जवाब दिया और सभी को अपना बॉस पसंद है। क्या प्रबंधक के पास कर्मचारियों का प्रतिनिधि नमूना है या पूर्वाग्रह नमूना है? एक और उदाहरण है क्रिसमस से पहले एक नौकरी संतुष्टि सर्वेक्षण इकट्ठा करना, सबको अच्छा बोनस मिलने के बाद।

परिणामों से पता चला कि सभी कर्मचारी खुश थे। फिर से, क्या परिणाम वास्तव में कंपनी में नौकरी की संतुष्टि का संकेत देते हैं या क्या परिणाम पूर्वाग्रह दिखाते हैं? एक शोध डिजाइन की आंतरिक वैधता को कई खतरे होते हैं। इन खतरों में से कुछ

हैं : इतिहास, परिपक्वता, परीक्षण, इंस्ट्रूमेंटेशन, चयन, मृत्यु, उपचार का प्रसार और प्रतिपूरक समकारीकरण, प्रतिद्वंद्विता और नैतिक पतन।

3. निर्माण वैधता

यदि कोई संबंध करणीय है, तो संबंध में शामिल विशेष कारण और प्रभाव व्यवहार या निर्माण क्या हैं? निर्माण वैधता इस बात को संदर्भित है कि हमने कितनी कुशलतापूर्वक एक अवधारणा, विचार या व्यवहार का अनुवाद या रूपांतरण किया– यानी कि एक निर्माण– एक कार्यकारी और संचालित वास्तविकता में, परिचालन (त्रोचिम, 2006)।

4. बाहरी वैधता

यदि निर्माण X और निर्माण Y के बीच एक आम संबंध है, तो लोगों, परिस्थितियों और स्थानों के बीच यह संबंध कितना सामान्य है? एक जांच या संबंध की बाहरी वैधता का मतलब है अन्य लोगों, परिस्थितियों या समयों का सामान्यीकरण। अच्छी तरह से समझाई गई लक्ष्य आबादी के सामान्यीकरण को पूरी आबादी के सामान्यीकरण से स्पष्टतरू अलग करना चाहिए। प्रत्येक बाहरी वैधता के लिए वास्तव में प्रासंगिक है : पहला इस बात के निर्धारण के लिए महत्वपूर्ण है कि क्या ऐसा कोई शोध लक्ष्य पूरा हुआ है जो विशिष्ट आबादी से संबंधित हो, और दूसरा यह निर्धारित करने के लिए महत्वपूर्ण है कि कौनसी विशेष आबादियां व्यवहार से प्रभावित हुई हैं ताकि इस बात का आकलन किया जा सके कि सामान्यीकरण कितनी दूर तक जा सकता है (कुक एवं कैंपबेल, 1979)। उदाहरण के लिए, यदि शैक्षिक व्यवहार और बच्चों के सामाजिक वर्ग के बीच परस्पर संबंध होता है, तो हम इस नतीजे पर नहीं पहुंच सकते कि सभी सामाजिक वर्गों में समान परिणाम होगा। इस प्रकार, कुक और कैंपबेल (1979) स्थापित (मेरा जोर) आबादियों का सामान्यीकरण पसंद करते हैं, इस सिलसिले में बाहरी वैधता को होने वाले खतरे, सांख्यिकीय परस्पर क्रिया प्रभावों से संबंधित हैं। इसका यह मतलब है कि चयन और व्यवहार की परस्पर क्रिया व्यक्तियों की उन श्रेणियों से संदर्भित है जिनके लिए कारण–प्रभाव संबंध सामान्यीकृत किया जा सकता है। सेटिंग और व्यवहार की परस्पर क्रिया इस बात को संदर्भित है कि क्या एक सेटिंग में प्राप्त किया गया आम संबंध दूसरी सेटिंग में सामान्यीकृत किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, क्या एक निर्माण प्लांट में अवलोकित आम संबंध को एक सार्वजनिक संस्था, एक नौकरशाही या एक फौजी कैंप में दोहराया जा सकता है? इस प्रश्न का उत्तर अलग सेटिंग्स को संबोधित करके, प्रत्येक के बीच आम संबंध के लिए विश्लेषण करके खोजा जा सकता है।

3.3.9 सामाजिक विश्लेषण में कम्प्यूटर का उपयोग

वर्तमान विश्व का कोई भी क्षेत्र हो; कम्प्यूटर के प्रयोग से अछूता नहीं है। शोध सरीखे मामलों में तो कम्प्यूटर की उपादेयता निर्विवाद और असंदिग्ध है। जाहिर है कम्प्यूटर की महत्ता इंटरनेट के कारण है। इंटरनेट के बिना कम्प्यूटर का टाइपिंग के अलावा कोई उपयोग नहीं है। इंटरनेट ने पूरी दुनिया को एक गांव में तब्दील कर दिया है। कम्प्यूटर और इंटरनेट दो नहीं, एक–दूसरे के पर्याय के रूप में आज हमारे सामने हैं। सामाजिक अनुसंधान ही नहीं, सभी अनुसंधानों के लिए इंटरनेट और वर्ल्ड वाइड वेब काफी महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में उभर कर आए हैं। अलग–अलग प्रकार की रुचियों की वेब साइटों पर सामान्य अध्ययन और अनुसंधान से संबंधित किसी भी प्रकार के विषय

और क्षेत्र की सूचनाएं हम आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। यहां तक कि इंटरनेट पर यहां कुछ ऐसी विशिष्ट वेब साइट्स भी हैं जो रुचि विशेष के विशिष्ट क्षेत्र में विशेष शोध साहित्य अपने प्रमुख प्रदत्त भंडार के साथ प्रस्तुत करती हैं। यहां अब आपको यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि यह प्रदत्त भंडार क्या है और इसमें क्या होता है?

एक प्रदत्त भंडार (डाटाबेस) उन लेखों की सूचनाओं और सामग्री का एक संकलन है, जो प्रकाशित किए गए हैं या ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित व्यक्तियों या समूहों द्वारा या विभिन्न संस्थाओं द्वारा जिनकी रचना की गई है या फिर कान्फ्रेंस में जिन्हें प्रस्तुत किया गया है। इसमें किसी एक लेख के बारे में सूचनाएं, जैसे– लेखक का नाम, शीर्षक, पृष्ठों की संख्या, इसे कहां प्रस्तुत किया गया था, कहां छापा गया है आदि तथा एक शोध सार या लेख की विषयवस्तु का सारांश शामिल होता है। अपने प्रचलित रूप में प्रदत्त भंडार उन्हीं मूल सूचनाओं (कम्प्यूटर एप्लीकेशन के प्रयोग से) को प्रदान करते हैं जो व्यावहारिक विज्ञानों के विभिन्न विषयों पर विभिन्न शोध सार के सजिल्द संस्करणों में आपको उपलब्ध हो सकती हैं।

सामाजिक शोध से संदर्भित प्रमुख प्रदत्त भंडार एवं खोज–प्रक्रिया

1. **ERIC:** इसमें 1966 से लेकर अब तक 600 से अधिक जर्नलों में पाए गए लोगों के अध्ययन–सार मिलते हैं। इसमें अप्रकाशित अभिलेख जैसे– माइक्रोफिल्म पर मिलने वाले परंपरागत पत्र भी होते हैं।
2. **सामाजिक अध्ययन–सार** : 1800 से भी अधिक जर्नलों में प्रकाशित लेखों के संदर्भ में यहां सामाजिक अध्ययन–सार और सामाजिक नियोजन/नीति एवं विकास पर अध्ययन–सार प्राप्त होते हैं। इसमें लघु शोध प्रबंधों के भी अध्ययन–सार होते हैं।
3. **Psye INFO:** 1947 से प्रकाशित विश्व के जर्नलों में लिखे हुए लेखों के अध्ययन–सार सहित इसमें मनोवैज्ञानिक अध्ययन–सार पाए जाते हैं। जर्नलों के अलावा इसमें पुस्तकों के भी अध्ययन–सार मिलते हैं।
4. **Psye Lit:** यह मुद्रित इन्डेक्स का कम्प्यूटरीकृत संस्करण है। इसके प्रदत्त भंडार में Psye INFO के प्रदत्त भंडार संग्रहीत और 1990 से अमेरिका से अधिकृत दुनिया भर के मनोवैज्ञानिक और संबंधित विषयों के साहित्य के सारांश होते हैं। सूचना का यह स्रोत लगभग 50 देशों के 27 भाषाओं में लिखे हुए 1300 जर्नलों को स्थान देता है।

कम्प्यूटर तकनीकी की सहायता से इस स्रोत से काफी उपयोगी सामाजिक अनुसंधान सामग्री अनुसंधानकर्ताओं को प्राप्त हो सकती है।

संबंधित सामग्री की खोज–प्रक्रिया

प्रश्न उठता है कि एक अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन से संबंधित सूचना प्रदान करने वाले उन स्रोतों (प्राथमिक एवं द्वितीयक) तक कैसे पहुंचे जिनका उल्लेख और विवरण इसके आरंभ में दिया गया है। इस संबंध में उसके शोध प्रयासों को मोटे तौर पर दो भागों– पुस्तकालय शोध तथा ऑन लाइन शोध में बांटा जा सकता है। यह दोनों साधन पुस्तकालय तथा कम्प्यूटर आधारित ऑन लाइन सेवाओं के अपने–अपने लाभ और

टिप्पणी

सीमाएं हैं। एक शोध विद्यार्थी को दोनों साधनों का उपयोग करना आना चाहिए क्योंकि किसी एक पर निर्भरता दूसरे के फायदों से वंचित कर सकती है।

(क) पुस्तकालय खोज

पुस्तकालय विभिन्न विषयों और क्षेत्रों से संबंधित सूचनाओं और ज्ञान के भंडारगृह हैं। इसीलिए व्यावहारिक विज्ञानों में अनुसंधान अध्ययन से संबंधित सार्थक और उपयोगी साहित्य के प्राथमिक एवं गौण स्रोतों के रूप में जो कुछ वर्णन एवं चर्चा की गई है, वह सब एक अच्छी तरह से सुसज्जित और व्यवस्थित पुस्तकालय में ठीक तरह से संगठित रूप में उपलब्ध हो जाता है। माना कि वहां यह सब कुछ है परंतु पुस्तकालय तो स्वयं आपको वह सब कुछ नहीं दे सकता है जिसकी आपको आवश्यकता है। इसका फायदा उठाने के लिए आपको ठीक प्रकार से समुचित प्रयास करने होंगे। आपको इस बात की पूरी जानकारी होनी चाहिए कि अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए इसका प्रयोग कैसे किया जाए। आइए देखते हैं कि इस संबंध में क्या करना चाहिए–

- सर्वप्रथम यह सोचना चाहिए कि अपने शोध अध्ययन के विषय और प्रकरण से संबंधित किस प्रकार की सूचनाएं आपको चाहिए। इन सूचनाओं की एक सूची बना लेनी चाहिए।
- यदि आपको सभी पुस्तकों, संदर्भ ग्रंथों, जर्नलों, अध्ययन–सारों, अनुक्रमणिकाएं, विश्व–शब्दकोश, डायरेक्टरी आदि के रूप में (संभावित और यथार्थ सूचना देने वाले) प्राथमिक एवं गौण स्रोतों की जानकारी है तो पुस्तकालय में उन्हें तलाश करने के लिए एक सूची बना लें।
- वैसे तो आपके लिए यह काफी आसान और स्वाभाविक है कि आप अपनी संस्था के पुस्तकालय से (उसकी स्थिति, वहां कार्यरत कर्मचारी, उसमें उपलब्ध सुविधाएं एवं सूचना सामग्री, वहां से पुस्तकों तथा अन्य सामग्री के लेन–देन की विधि एवं तरीके आदि) अच्छी तरह परिचित हैं फिर भी दूसरी संस्थाओं, विश्वविद्यालयों, अन्य संगठनों जैसे– एन.सी.ई.आर.टी., एन.यू.आई.पी.ए., दूसरे देशों के दूतावास आदि के पुस्तकालयों से आवश्यक सेवा प्राप्त करने हेतु किस प्रकार की आवश्यक बातों का ध्यान रखना होता है। आपको उनकी पूर्ण जानकारी होनी चाहिए।
- सामान्यतः पुस्तकालयों में पुस्तकों की व्यवस्था हेतु दो प्रणाली या तरीके अपनाए जाते हैं– कार्ड कैटलॉग प्रणाली और कम्प्यूटर शोध प्रणाली जिनकी सहायता से अनुक्रमणिका, अध्ययन–सार, शब्दकोश, डायरेक्टरी, हैंडबुक्स और वार्षिकी, माइक्रोफिल्म तथा मोनोग्राफ्स आदि के रूप में उपलब्ध स्रोतों से सूचना सामग्री को खोजा जा सकता है। अपने अध्ययन से संबंधित साहित्य की शोध के लिए इस प्रकार की सभी सामग्री और साधनों की उपलब्धि और उस तक पहुंच हेतु आपको जो कुछ चाहिए उससे परिचित होना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, यदि एक पुस्तकालय अपनी पुस्तकों को अलमारियों के खानों में रखने और उनके व्यवस्थीकरण हेतु डीवी की दशमलव प्रणाली (Dewey's Decimal System) का उपयोग कर रहा है तो आपको पुस्तकों के

इस तरह रखे जाने संबंधी सही ज्ञान होना चाहिए ताकि आप आवश्यकतानुसार इच्छित पुस्तकों तक पहुंच सकें।

(ख) ऑन लाइन खोज

कम्प्यूटर तकनीक के उपयोग ने आज के अनुसंधानकर्ताओं के सामने संबंधित सामग्री की शोध हेतु एक बिल्कुल ही नयी और सुविधाजनक विधि प्रस्तुत की है। पुस्तकालय अध्यक्ष अपने पुस्तकालय में कम्प्यूटर तकनीकी की सेवाओं का लाभ उठाकर पुस्तकालय सामग्री को अच्छी तरह व्यवस्थित एवं संगठित कर पुस्तकालय में स्थान देने में सफल होता है। फिर उसके उपयोगकर्ता के रूप में शोध विद्यार्थी कम्प्यूटर माउस को क्लिक करने मात्र से ही अपनी शोध की हुई पुस्तकालय सामग्री को आसानी से ढूंढ़ लेते हैं। पुस्तकालय में इस प्रकार के उपयोग के अलावा कम्प्यूटर तकनीकी के उपयोगों की ऑन लाइन उपलब्धि में भी पूरी मदद मिलती है। शोधकर्ताओं को अपने अध्ययन से संबंधित साहित्य, इंटरनेट के वेब पृष्ठों पर प्रायः निम्न दो रूपों में मिलता है–

(1) व्यक्तिगत वेब साइट पर, जिसे किसी एक विशेष ज्ञान क्षेत्र या विषय में रुचि रखने वाले व्यक्ति विशेष द्वारा प्रबंधित किया गया हो।

(2) व्यावहारिक विज्ञान अध्ययनों के विशिष्ट क्षेत्रों, विषयों तथा प्रकरणों से संबंधित बहुमूल्य जानकारी और प्रदत्तों को प्रदान करने वाले ऑन लाइन प्रदत्त भंडार, जैसे– ERIC, Psyc INFO, Psyc Lit etc. से युक्त विशिष्ट वेबसाइट्स।

अब प्रश्न उठता है कि इंटरनेट के वेब पृष्ठों पर व्यक्तिगत या विशिष्ट वेब साइटों पर उपलब्ध सामग्री से हम अपने अध्ययन से संबंधित सामग्री किस प्रकार प्राप्त करें? दोनों मामलों में शोध की प्रक्रिया और प्रतिफल अलग–अलग होते हैं। इस विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए Gravetter & Forzano (2003: 44) ने लिखा है– "एक प्रदत्त भंडार, जैसे Psyc INFO को उपयोग में लाकर साहित्य की शोध करने की प्रक्रिया वेब पर शोध करने की अपेक्षा काफी अलग होती है। यहां सभी संदर्भ प्रतिष्ठित, विश्वसनीय प्रकाशनों से चयनित होते हैं और उनमें से अधिकांश को जाने–माने विद्वानों तथा मनोवैज्ञानिकों द्वारा संपादित एवं पुनर्वीक्षित किया जाता है जिससे कि यह सुनिश्चित हो सके कि ये अपने आप में वैधानिक तथा सही–सही योगदान हैं। इस प्रकार की व्यावसायिक छानबीन वर्ल्ड वाइड वेब में नहीं होती है।" उदाहरणस्वरूप अगर आप Psyc INFO में एक कुंजी शब्द Amnesia की प्रविष्टि करते हैं तो आपको एक प्रतिष्ठित विश्वसनीय संदर्भों का समूह प्राप्त होगा परंतु आप इसी कुंजी शब्द का उपयोग www शोध में करते हैं तो आपकी पहुंच किसी भी साइट पर हो सकती है परंतु इनमें सूचना की गुणवत्ता और वैधता के बारे में सुनिश्चित गारंटी नहीं होती है।

खोज प्रक्रिया की प्रगति

अपने शोध अध्ययन के क्षेत्र या प्रकरण से संबंधित सार्थक सामग्री की शोध करने के मामले में यदि आप नवागंतुक हैं तब यहां दो परिस्थितियां आपके सामने आएंगी–

1. अगर आपके पास अपने अनुसंधान प्रकरण का केवल एक सामान्य–सा व्यापक विचार है तो इस मामले में पहले तो आपका प्रयोजन यही होना चाहिए कि आप अपने इस सामान्यीकृत व्यापक और विषद् विचार को सीमित करके एक विशिष्ट

अनुसंधान प्रकरण के रूप में परिवर्तित करें और फिर दूसरे चरण में अपने इस विशिष्ट अनुसंधान प्रकरण से संबंधित सार्थक सूचनाएं एकत्रित करने का कार्य करें। ऐसे मामलों में जैसा कि ग्रेवेटर और फोर्जेनो ने सलाह दी है आपको अपनी शुरुआत अभी हाल ही में प्रकाशित हुई किसी द्वितीयक (गौण) स्रोत (जैसे– आपके प्रकरण की विषयवस्तु से संबंधित कोई पाठ्य पुस्तक) के अध्ययन से करनी चाहिए। पाठ्य पुस्तक के अध्याय शीर्षकों तथा उपशीर्षकों का उपयोग करते हुए यह कोशिश करनी चाहिए कि आपका अनुसंधान एक अधिक संकुचित एवं परिभाषित क्षेत्र में सीमित हो जाए। इस प्रकार से इस सलाह की अनुपालना करते हुए सबसे पहले पुस्तकालय सुविधाओं का उपयोग कर हाल ही में प्रकाशित पुस्तक को प्राप्त करना चाहिए और फिर जब प्रकरण विशेष पर आप आ जाएं तब इससे संबंधित विस्तृत एवं गठन शोध करने हेतु कम्प्यूटर की वेब सेवाओं की सहायता लेनी चाहिए।

2. यदि आप अपने अनुसंधान प्रकरण या अनुसंधान प्रश्न पर पहले ही विचार कर चुके हैं तो आप अपने अनुसंधान प्रकरण से संबंधित अध्ययन सामग्री और अनुसंधान लेखों के रूप में उपलब्ध सभी प्राथमिक स्रोतों तक पहुंचने के लिए अपना ध्यान केंद्रित करें। इस प्रयोजन के लिए–
   (क) आपको अनुसंधान जर्नलों, अध्ययन–सारों, अनुक्रमणिकाओं, एनसाइक्लोपीडिया, डायरेक्टरीज, शब्दकोशों, हेंडबुक्स तथा वार्षिक पुस्तिका आदि तक पहुंचने के लिए अपने पुस्तकालय के संदर्भ विभाग में जाना चाहिए।
   (ख) अपने अध्ययन की योजना बनाने और क्रियान्वयन करने में उपयोगी सभी प्रकार की संबंधित सामग्री को प्राप्त करने के लिए वेब पृष्ठों (व्यक्तिगत एवं विशिष्ट वेब साइट्स पर) की शोध करने के लिए इंटरनेट का उपयोग करना चाहिए।

सामाजिक शोध हेतु कम्प्यूटर उपयोग–प्रविधि

प्रदत्त भंडार से युक्त वेब पृष्ठों के स्वरूप में इंटरनेट पर संबंधित शोध सामग्री की शोध करने के लिए निम्न प्रविधियों से आगे बढ़ना चाहिए–

- वेब पृष्ठ पर दी गई सामग्री को ढूंढ़ने के लिए आप चाहें तो लेखक के नाम का उपयोग कर सकते हैं या फिर लेख के शीर्षक का, या फिर दोनों में से आप को जो भी ज्ञात हो। लेकिन यदि आपको उनमें से किसी के बारे में कुछ भी पता नहीं है तो सबसे अच्छा तरीका है कि आप किसी कुंजी शब्द, पद या विवरणकर्ता से प्रारंभ कर सकते हैं। फिर भी हमेशा ही यह लाभकारी होगा कि अपने प्रकरण से संबंधित अध्ययन सामग्री या संबंधित और सार्थक लेख खोजने के लिए सही कुंजी शब्द, विवरणकर्ता या पद का प्रयोग किया जाए। उदाहरण के लिए यदि कोई लेख ढूंढना चाहेंगे तो आपको तब तक परेशानी होगी जब तक कि इसके लिए आप 'Retention Interval' स्वीकृत पद का प्रयोग नहीं करेंगे।
- अपने अध्ययन से संबंधित शोध सामग्री को सार्थक लेख प्राप्त करने के लिए सामान्यतः अधिकांश प्रदत्त भंडार कई पदों, विवरणकर्ता या कुंजी शब्दों को मिलाकर प्रयोग करने की स्वीकृति दे देते हैं। कई विवरणकर्ताओं के उपयोग से लेखों को खोजने संबंधी विस्तार कम हो जाता है और इससे खोजने के कार्य

टिप्पणी

को अच्छी तरह से प्रबंधित करने एवं लाभकारी बनाने में मदद मिलती है। माना कि आपको एक स्वास्थ्य शिक्षा के प्रकरण में रुचि है, जैसे– 'विद्यार्थियों के विद्यालय संबंधी तनाव को कम करने में परामर्श का योगदान'। इस प्रकरण के संबंध में इंटरनेट पर शोध करना चाहते हैं और उपलब्ध तीन सार्थक विवरणकर्ताओं (क) तनाव, (ख) परामर्श तथा (ग) स्वास्थ्य– इनमें से एक विवरणकर्ता का उपयोग शुरू में करते हैं तो आपको इस प्रकरण से संबंधित सामग्री के शीर्षकों के रूप में एक लंबी सूची और ढेर सारी सामग्री मिलेगी। अब दूसरी बार अगर आप दो विवरणकर्ताओं जैसे तनाव और परामर्श को मिलाकर शोध करते हैं तो अपकी शोध के परिणाम कुछ छोटे और लक्ष्य केंद्रित होंगे। तीसरे दौर में यदि आप तीनों विवरणकर्ताओं को एक साथ प्रयोग करेंगे तो आपके परिणाम काफी छोटे हो जाएंगे और इनसे आपको अपने प्रकरण से संबंधित अधिक उपयुक्त लेख प्राप्त हो सकेंगे।

- टकमैन के अनुसार इंटरनेट पर की गई एक अच्छी शोध में तीन मुख प्रकार के अभिलेखों का समावेश होना चाहिए– (क) प्रकाशित लेख, (ख) अप्रकाशित लेख, और (ग) शोध प्रबंध (लघु शोध प्रबंध तथा पीएच.डी. शोध प्रबंध)। इसके लिए शुरुआत में एक लाभप्रद शोध ERIC, मनोवैज्ञानिक अध्ययन–सार, सामाजिक अध्ययन–सार तथा ऐसी ही अन्य स्रोतों की सहायता से ली जानी चाहिए। इसके बाद लघु शोध प्रबंध तथा पीएच.डी. के शोध प्रबंधों की शोध करनी चाहिए। जैसे ही आप DATRIX पर संपर्क करेंगे और कुंजी शब्दों के एक समूह का उपयोग करेंगे तो सार्थक डिजर्टेशन तथा थीसिस के शीर्षकों की एक सूची प्राप्त हो जाएगी।
- सामाजिक विज्ञान सरीखे व्यावहारिक विज्ञानों में उपलब्ध प्रदत्त भंडार, जैसे ERIC, Psyc INFO, Psyc LIT और Sociological Abstracts आदि का, अपने अध्ययन से संबंधित सार्थक सामग्री की शोध करने के लिए उपयोग करना काफी लाभदायक होता है। इनमें से किसी एक का प्रयोग करने के लिए मूल प्रक्रिया की शुरुआत निम्न क्रम से होती है– (क) कुंजी शब्दों, शोध करने के पदों या विवरणकर्ताओं की सूची की पहचान करना, (ख) उनको enter करना और (ग) अब कम्प्यूटर को उन पदों या विवरणकर्ताओं से संबंधित मामलों पर प्रकाश डालने वाले प्रकाशनों को ढूंढने देना चाहिए। प्रदत्त भंडार का उपयोग करने में आपके लिए अब अगला कार्य अपने अनुसंधान प्रयोजन के लिए वास्तव में जो भी आवश्यकता है उसका उपयुक्त चयन करना और निरर्थक चीजों को हटाना चाहिए। ग्रेवेटर ने Psyc INFO का इस संबंध में उपयोग करने के लिए, कुछ सुझाव दिए हैं जो निम्नांकित हैं–
    - ❑ छंटनी करने के लिए आपका पहला कार्य है लेख के शीर्षक का प्रयोग करें। आप या तो Psyc INFO में या फिर लेख के शुरू में ही शीर्षक प्राप्त कर सकते हैं। इस शीर्षक के आधार पर ही आप लेखों का 90 प्रतिशत जो प्रत्यक्ष रूप से आपके लिए सार्थक नहीं है उसे आप हटा सकते हैं।
    - ❑ अपनी द्वितीय छंटनी के साधन के रूप में लेख के सार का प्रयोग करें। यदि आपको शीर्षक रुचिकर लगे तो यह निश्चित करने के लिए कि क्या

टिप्पणी

लेख वास्तव में सार्थक है, अध्ययन–सार को पढ़ें। बहुत से लेख जो देखने में रुचिकर (शीर्षक से) से लगते हैं इस स्तर पर बाहर फेंक दिए जाते हैं। आप अध्ययन–सार को या तो Psyc INFO पर या फिर लेख के स्वयं के प्रारंभ में ही प्राप्त कर सकते हैं।

- यदि लेख के शीर्षक और सार को देखने के बाद में भी आपको यह रुचिकर लगता है तो लेख को प्राप्त करने के लिए उचित जर्नल को देखें और यदि आपके पुस्तकालय में यह जर्नल नहीं है तो दूसरे पुस्तकालय से अंतर्पुस्तकालय लोन के द्वारा उसे प्राप्त करने की प्रार्थना करें, जैसे ही आपको लेख प्राप्त हो जाए, सबसे पहले उसे अच्छी तरह से पढ़ें और उसके परिचयात्मक गद्यांशों तथा चर्चा वाले भाग को विशेष रूप से देखकर, मंथन करें।

अनुसंधान सामग्री की खोज हेतु इंटरनेट उपयोग प्रविधि को हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं–

ऑनलाइन प्रदत्त भंडार में कुंजी शब्दों और लेखकों के नाम का प्रयोग करें जब तक आप नई सामग्री या विषयवस्तु प्राप्त नहीं करते हैं तब तक शोध जारी जारी रखें।

↑

अब आपके पास में अभी हाल के कुछ सार्थक लेख बच जाएंगे। अब इन लेखों के संदर्भों का उपयोग नए कुंजी शब्दों तथा लेखकों के नामों के चयन के लिए कीजिए।

↑

जो बातें निरर्थक हैं उन्हें छोड़ दें, इनमें से बहुतों को शीर्षक देखकर ही छोड़ा जा सकता है और शेष बचे हुए बहुतों को शोध सार पढ़ करके छोड़ा जा सकता है। अब बाकी बचे हुए लेखों के परिचयात्मक तथा वर्णनात्मक भागों का मंथन करके उनकी सार्थकता का निर्धारण किया जा सकता है।

↑

प्राथमिक स्रोत संबंधी जर्नलों के लेखों तक पहुंचने के लिए किसी ऑन लाइन प्रदत्त भंडार (जैसे Psyc INFO) के उपयोग हेतु कुंजी शब्दों तथा लेखकों के नाम का उपयोग कीजिए।

↑

अपने प्रकरण संबंधी केंद्रबिंदु को संकुचित करने के लिए हाल ही में प्रकाशित द्वितीयक स्रोतों जैसे पाठ्य पुस्तकों का उपयोग करते हुए कुंजी शब्द (Keywords) तथा लेखकों के नामों की सूची प्राप्त कीजिए।

↑

किसी प्रकारण क्षेत्र या व्यवहार के संदर्भ में सामान्य विचार, जैसे– विकासात्मक मनोविज्ञान या एनोरेक्सिया (Anorexia) को लेकर प्रारंभ कीजिए।

टिप्पणी

- यदि यह फिर भी आपको सार्थक दिखाई देता है तो लेख को सावधानीपूर्वक पढ़ें और उसकी एक प्रतिलिपि अपने लिए तैयार कर लें। जब आप एक शोध लेख पढ़ते हैं तो यह बात दिमाग में रखें कि लेख के लिए यह प्रचलन है कि उसे उच्च स्तर के, भिन्न–भिन्न विभागों में जैसे– प्रस्तावना, विधि, परिणाम, चर्चा और संदर्भ में व्यवस्थित किया जाना चाहिए।
- आपने उस लेख से जो संदर्भ प्राप्त किए हैं उनका अपने अनुसंधान में उपयोग करें। यहां आपको अपनी अनुसंधान समस्या से सीधे संबंधित पुराने लेख मिल सकते हैं। आप इन लेखों में कुछ नए पद प्राप्त कर सकते हैं जिनका आप Psyc INFO में कुंजी शब्दों के रूप में प्रयोग कर सकेंगे। संदर्भों में जिन लेखकों की सूची मिलेगी वह भी आपके लिए उपयोगी होगी। आप इन लेखकों का नाम Psyc INFO में enter कर सकते हैं, इससे हाल ही में इनके द्वारा प्रकाशित अनुसंधान प्रतिवेदनों को आप प्राप्त कर सकेंगे।

अपनी प्रगति जांचिए

3. 'फिजिक्स : द एलिमेंट्स' पुस्तक के लेखक एन.आर. कैम्पबेल किस देश से हैं?

   (क) ब्रिटेन (ख) फ्रांस

   (ग) जर्मनी (घ) स्वीडन

4. आर्थिक एवं सामाजिक अनुसंधान कार्य में प्रयुक्त पद्धतियों में निम्न में से किस अवधारणा को सम्मिलित किया जाता है?

   (क) सिद्धांत अवधारणा अथवा विचारों का संग्रह करना

   (ख) विभिन्न उपागमों का तुलनात्मक अध्ययन

   (ग) आंकड़ों का संग्रह, मूल्यांकन, विश्लेषण, परिणाम एवं निष्कर्ष

   (घ) उपर्युक्त सभी

3.4 सामाजिक अनुसंधान में सांख्यिकी

सामाजिक अनुसंधान में सांख्यिकी एक अति विस्तृत विषय है, जिसका उपयोग अनेकानेक क्षेत्रों में किया जाता है। सामान्य अर्थ में कोई कह सकता है कि सांख्यिकी आंकड़ों के संग्रह, विश्लेषण, व्याख्या और सूचना के निष्कर्ष निकालने का प्रणाली विज्ञान है। दूसरे शब्दों में, सांख्यिकी वह प्रणाली विज्ञान है, जिसका विकास वैज्ञानिकों और गणितज्ञों ने आंकड़ों की व्याख्या और उनका निष्कर्ष निकालने के लिए किया है। आंकड़ों के संग्रह, प्रक्रिया, व्याख्या और प्रस्तुति का संचालन करने वाले प्रत्येक विषय का संबंध सांख्यिकी के क्षेत्र से होता है, और इन सभी गतिविधियों से पहले आने वाले प्रत्येक विषय की विस्तृत योजना भी इसी से संबद्ध होती है।

टिप्पणी

परिभाषा

"सांख्यिकी में आंकड़ों के संग्रह और विश्लेषण की विधियों का एक समूह होता है।" (अग्रेस्ती एवं फिनले, 1997)

सांख्यिकी महज अंकों के सारणीकरण और इन सारणीबद्ध अंकों की चित्रात्मक प्रस्तुति से कहीं ऊपर है। सांख्यिकी संख्यात्मक और सुस्पष्ट आंकड़ों से सूचना ग्रहण करने का विज्ञान है। सांख्यिकीय विधियों का उपयोग निम्नलिखित प्रश्नों के अर्थों का पता लगाने के लिए किया जा सकता है :

- किस प्रकार के और कितने आंकड़ों का संग्रह किया जाना चाहिए?
- आंकड़ों का संयोजन और संक्षेपण हमें किस प्रकार करना चाहिए?
- आंकड़ों का विश्लेषण करने के साथ–साथ हम उनके निष्कर्ष कैसे तैयार कर सकते हैं?
- हम इन निष्कर्षों की क्षमता का मूल्यांकन और उनकी अनिश्चितता की जांच कैसे कर सकते हैं?

अर्थात, सांख्यिकी निम्नलिखित विषयों की विधियां प्रदान करता है–

1. अभिकल्पन : शोध अध्ययन की योजना बनाना और संपादन करना।
2. वर्णन–विवरण : आंकड़ों का संक्षेपण एवं अन्वेषण करना।
3. अनुमान : आकलन करना और आंकड़ों से प्राप्त विषयों का व्यापक अनुमान लगाना।

सांख्यिकी के प्रकार

सांख्यिकी के दो मुख्य प्रकार होते हैं।

आंकड़ों के संक्षेपण व वर्णन के लिए सांख्यिकी की शाखा, जिसे वर्णनात्मक सांख्यिकी कहा जाता है और आंकड़ों की एक जनसंख्या के प्रति अनुमान लगाने की सांख्यिकी की नमूना आंकड़ों के उपयोग से संबद्ध शाखा जिसे अनुमानिक सांख्यिकी कहा जाता है।

वर्णनात्मक सांख्यिकी में सूचना के संयोजन और संक्षेपण की विधियां होती हैं (वीस, 1999)। अनुमानिक सांख्यिकी में जनसंख्या के किसी नमूने से प्राप्त सूचना पर आधारित जनसंख्या के प्रति निष्कर्षों की विश्वसनीयता के आहरण और मापन की विधियां आती हैं। (वीस, 1999) वर्णनात्मक सांख्यिकी में ग्राफों, लेखाचित्रों और तालिकाओं का निर्माण व विभिन्न वर्णनात्मक विवरणों की गणना आती है।

वर्णनात्मक और अनुमानिक सांख्यिकी परस्पर संबद्ध होती हैं। अन्वेषणाधीन विषय के यथासंभव सांगोपांग विश्लेषण के लिए अनुमानिक सांख्यिकी की विधियों का उपयोग करने से पहले किसी प्रतिदर्श (नमूना) से प्राप्त जानकारी के संयोजन और संक्षेपण के लिए वर्णनात्मक सांख्यिकी का उपयोग करना प्रायः हर अवसर पर आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त, किसी प्रतिदर्श (नमूना) के आरंभिक वर्णनात्मक विश्लेषण से उन विशेषताओं का पता चलता है, जो बाद में उपयोग के लिए सटीक अनुमानिक विधि का विकल्प प्रस्तुत करती हैं। कभी–कभी समस्त जनसंख्या से आंकड़ों का संग्रह संभव होता है। इस स्थिति में उस जनसंख्या और प्रतिदर्श (नमूना) पर

टिप्पणी

शोध–अध्ययन करना संभव हो पाता है। अध्ययन तभी अनुमानिक मापक जैसे औसत, घटबढ़ के मापक, और शतमापक (पर्सेंटाइल) होता है जब प्रतिदर्श (नमूना) से प्राप्त जानकारी पर आधारित समूह का कोई अनुमान लगाया जाता है। वस्तुतः, इस पाठ्यक्रम के अधिकांश भाग में वर्णनात्मक सांख्यिकी पर विचार किया जाता है। अनुमानिक सांख्यिकी में बिंदु आकलन (बिंदु अनुमान/बिंदु प्राक्कलन/प्वाइंट एस्टिमेशन), अंतराल प्राक्कलन (इंटर्वल एस्टिमेशन) और परिकल्पना जांच (हाइपोथीसिस टेस्टिंग) आते हैं जो सभी प्रायिकता सिद्धांत पर आधारित हैं।

आंकड़ों का विश्लेषण करते समय, जैसे 100 छात्रों को प्राप्त श्रेणियां, आपके विश्लेषण में सांख्यिकी के वर्णनात्मक और अनुमानिक दोनों रूपों का उपयोग संभव है। विशेष रूप से, लोगों के समूहों पर होने वाले अधिकांश शोध में, अपने परिणामों का विश्लेषण और निष्कर्ष निर्धारण के लिए आप सांख्यिकी के वर्णनात्मक व अनुमानिक दोनों रूपों का उपयोग कर सकते हैं। तो, सांख्यिकी के वर्णनात्मक और अनुमानिक रूप क्या हैं? और उनमें अंतर क्या है?

(अ) वर्णनात्मक सांख्यिकी

वर्णनात्मक सांख्यिकी आंकड़ों के उस विश्लेषण के लिए प्रयुक्त एक पद है, जिससे एक सार्थक ढंग से आंकड़ों का वर्णन, प्रस्तुति अथवा संक्षेपण में सहायता मिलती है, उदाहरणस्वरूप आंकड़ों से प्रतिमान उत्पन्न हो सकते हैं। किंतु, वर्णनात्मक सांख्यिकी उन आंकड़ों के परे कोई निष्कर्ष निकालने की अनुमति नहीं देता, जिनका हमने विश्लेषण किया हो, न ही यह हमारी किसी परिकल्पना से संबद्ध किसी निष्कर्ष का निर्धारण करने की छूट देती है। वर्णनात्मक सांख्यिकी अति महत्वपूर्ण है क्योंकि यदि हम केवल कच्चे आंकड़े प्रस्तुत करें, तो यह समझ पाना कठिन होगा कि आंकड़े क्या बता रहे हैं, विशेष रूप से जब वे भारी संख्या में हों।

इसलिए, विवरणात्मक सांख्यिकी की सहायता से हम अपेक्षाकृत एक अधिक सार्थक ढंग से आंकड़े प्रस्तुत कर सकते हैं, जिसमें आंकड़ों की एक संक्षिप्त व्याख्या की छूट होती है। उदाहरण के लिए, यदि हमारे पास 100 छात्रों के पाठ्यक्रम के परिणाम हों, तो हमारी इच्छा उन छात्रों के समग्र कार्य को जानने की हो सकती है। हम श्रेणियों का वितरण या प्रसारण भी जानना चाहेंगे। वर्णनात्मक सांख्यिकी में हमारे लिए यह गुंजाइश होती है।

हमने देखा है कि वर्णनात्मक सांख्यिकी (व्यावहारिक सांख्यिकी) हमारे आंकड़ों के उपस्थित समूह (वर्ग) की सूचना मुहैया कराती है। उदाहरण के लिए, 100 छात्रों की परीक्षा श्रेणियों के मध्यक और मानक (प्रमाप) विचलन (मीन एंड स्टैंडर्ड डेविएशन) की गणना कर सकते हैं और इससे 100 छात्रों के इस समूह (वर्ग) की बहुमूल्य सूचना एवं जानकारी मिल सकती है। इस प्रकार के किसी भी समूह, जिसमें आपकी रुचि के सभी आंकड़े हों, को जनसंख्या कहते हैं। कोई जनसंख्या, जिसमें आपकी रुचि के आंकड़े हों, छोटी या बड़ी हो सकती है। उदाहरण के लिए, यदि आपकी रुचि केवल 100 छात्रों की परीक्षा श्रेणी में होती, तो 100 छात्र आपकी जनसंख्या के प्रतीक होते। वर्णनात्मक सांख्यिकी (व्यावहारिक सांख्यिकी) का प्रयोग जनसंख्याओं के लिए किया जाता है, और जनसंख्याओं के गुणों, जैसे मध्यक अथवा मानक (प्रमाप) विचलन, को प्राचल या मापदंड कहा जाता है क्योंकि वे समस्त जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं (अर्थात आपकी रुचि का प्रत्येक व्यक्ति)।

(ब) अनुमानिक सांख्यिकी

संख्यिकी की अनुमानिक (इन्फेरेंशियल) तकनीक वे तकनीक हैं, जो उन जनसमुदायों (पॉप्युलेशंस) का सामान्यीकरण करने का हमें अवसर देती हैं। प्रतिदर्श (नमूना) देती हैं। इसलिए, यह आवश्यक है कि प्रतिदर्श जनसमुदाय का सही–सही प्रतिनिधित्व करता हो। इसे प्राप्त करने की प्रक्रिया को प्रतिचयन (सैंप्लिंग) कहते हैं। आंतरिक सांख्यिकी इस तथ्य से सामने आती है कि प्रतिचयन में स्वभावतः प्रतिचयन की त्रुटि होती है और इस प्रकार प्रतिदर्श (नमूना) से जनसमुदाय (पॉप्युलेशन) का सटीक प्रतिनिधित्व करने की आशा नहीं की जा सकती।

अनुमानिक सांख्यिकी की विधियां (मेथड्स) इस प्रकार हैं – मापदंड (मापदंडों/प्राचलों/पैरामीटर्स) का आकलन और सांख्यिकीय परिकल्पना की जांच।

ये विधियां आंकड़ा विन्यास (डेटा सेट) के विभिन्न पक्षों का वर्णन करती हैं। वर्णनात्मक सांख्यिकीय विधियों का स्रोत आरंभिक सभ्यताओं, जैसे बेबिलोनिया, मिस्र और चीन की सभ्यताएं, द्वारा संचित सूचियों (इन्वेंटरीज) में मिलता है। उदाहरण के लिए, बाइबल के ओल्ड टेस्टामेंट में इजराइल के लोगों के संख्यांकन अथवा गणना के कुशलतापूर्वक चयन हेतु समूहों के पंजीकरण का संकेत है, और रोम के लोग जिन क्षेत्रों को जीतते थे, उनके लोगों, माल–असबाबों और संपत्ति की गिनती रखते थे। इसी प्रकार, ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध की डोम्सडे बुक में इंग्लैंड की भूमि और संपत्ति की गणना है। मध्य युगों में भी सरकारों और धार्मिक संस्थाओं के विकास तथा उनके जन्मों, मृत्युओं और विवाहों के अभिलेखन की प्रथा थी। ये आदिकालीन विधियां मुख्यतः सूचियां और गिनतियां थीं, जो कर–निर्धारण एवं सेना में अनिवार्य भर्ती के लिए रखी जाती थीं। हालांकि इतिहास में कई संस्कृतियों में सांख्यिकीय विधियों का उल्लेख मिलता है, किंतु माना जाता है कि सांख्यिकी के आधुनिक सिद्धांतों का विकास सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यूरोप में हुआ। संभाव्यता के सिद्धांतों (थियोरीज ऑफ प्रोबैबलिटी) के ऐतिहासिक स्रोत द्यूत कर्म (गेम्स ऑफ चांस/जुआ) में मिलते हैं। सत्रहवीं शताब्दी तक आते–आते, द्यूत क्रीड़ा में अभिरुचि और गणित की विधियों का मेल हुआ और इसके परिणामस्वरूप संभाव्यता के आरंभिक नियमों का विकास हुआ। बारहवीं शताब्दी के आरंभ में संभाव्यता के सिद्धांतों से अनुमानिक सांख्यिकी का जन्म हुआ। सांख्यिकीविदों, जैसे पीयर्सन, फिशर, नेमैन, वाल्ड और तुकी, ने अनुमानिक सांख्यिकी के विकास में जिन विधियों का प्रतिपादन किया, उनका आज अनेकानेक क्षेत्रों में व्यापक स्तर पर उपयोग किया जाता है।

3.4.1 सांख्यिकी के गुण व दोष

आजकल के शिक्षक जो इक्कीसवीं सदी की सूचना प्रौद्योगिकी के प्रभाव से अभिभूत हैं इसके लिए केवल शिक्षण में ही निपुण होना पर्याप्त नहीं है, उसे शिक्षा में मापन तथा मूल्यांकन की विधियों में भी सिद्धहस्त होना अतिआवश्यक है। सांख्यिकी के महत्व को अधोलिखित रूप में समझा जा सकता है-

1. **छात्रों के प्राप्तांकों अधिक अर्थपूर्ण बनाना**- अध्यापक अपने विद्यालय की दो कक्षाओं की उपलब्धियों की तुलना वार्षिक परीक्षा के आधार पर करना चाहता है। ऐसा वह छात्रों के प्राप्तांकों की तुलना द्वारा कर सका है। किंतु प्रत्येक छात्र के प्राप्तांक का पृथक-पृथक तुलना करना बहुत कठिन है। सांख्यिकी की सहायता से

वह इस प्रकार की तुलना अत्यंत शीघ्रतापूर्वक कर सकता है। इतना ही नहीं छात्र समूहों की भिन्नता या सजातीयता का पता भी वह सांख्यिकी के माध्यम से लगा सकता है।

इस तरह छात्रों के प्राप्तांकों की व्यवस्था सरल बन जाती है और शिक्षण की दृष्टि से महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

2. **अभिनव परीक्षणों तथा अनुसंधानों को समझने के लिए-** आज शिक्षा के क्षेत्र में जितने भी परीक्षण या खोजें हो रही हैं उनमें अधिकांश ऐसी हैं जिन्हें सांख्यिकी के ज्ञान के अभाव में नहीं समझा जा सकता। किसी भी व्यवसाय की महत्ता उसके अंतर्गत होने वाले नूतन शोधों तथा परीक्षणों पर निर्भर होती है।

   यह अपेक्षित है कि उस व्यवसाय के कार्यकर्ताओं को सांख्यिकी की जानकारी हो ताकि इस प्रकार के शोधों तथा परीक्षणों को निश्चि गति मिल सके। अनुसंधानों के अंतर्गत प्रदत्तों को संकलित कर लेना मात्र उद्देश्य नहीं होता अपितु उन प्रदत्तों से सामान्यीकरण एवं निष्कर्ष प्राप्त किये जाते हैं। अनुसंधानकर्ता को सांख्यिकी के प्रयोग से बहुत लाभ होता है।

   शिक्षा मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र से जुड़े विषयों में किए गए अनुसंधानों के रिपोर्ट को देखने से यह ज्ञात होता है कि आजकल के अनुसंधानों को, सांख्यिकी जाने बिना समझना कठिन है। प्रत्येक व्यवसाय का अपना साहित्य होता है। शिक्षा-व्यवसाय का साहित्य अमोल रत्नों से भरा पड़ा है। इधर मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र ने भी इस ओर बड़ा योगदान दिया है।

3. **वैज्ञानिक प्रशिक्षण की प्राप्ति हेतु-** सांख्यिकी का ज्ञान अध्यापक को एक प्रकार का वैज्ञानिक-प्रशिक्षण प्रदान कर सकता है। वह अपने शिक्षण तथा परीक्षण को अधिक वस्तुनिष्ठ बना सकता है। उसे सांख्यिकी के ज्ञान द्वारा एक विशेष तरह का अनुशासन एवं दिशा बोध प्राप्त होता है।

   जिस बात को एक सामान्य व्यक्ति अत्यंत आत्मगत ढंग से कहता है, सांख्यिकी का ज्ञान रखनेवाला व्यक्ति उसी को पर्याप्त वस्तुनिष्ठ एवं बोधगम्य बना सकता है। अभिप्राय यह है कि सांख्यिकी का प्रयोग शैक्षिक परिस्थितियों के वर्णन को अधिकाधिक वस्तुनिष्ठ, शुद्ध तथा सरल बना देता है।

सांख्यिकी के दोष

सांख्यिकी की कुछ सीमाएं भी हैं, जिनके कारण कभी-कभी गलत एवं भ्रामक निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। सांख्यिकी की प्रमुख सीमाएं निम्नलिखित हैं-

1. **समस्या के संख्यात्मक स्वरूप तक सीमित-** सांख्यिकी के अंतर्गत उन्हीं समस्याओं का अध्ययन किया जाता है जिनका संख्यात्मक वर्णन संभव होता है, जैसे- आयु, लंबाई, उत्पादन, मजदूरी आदि। परंतु कुछ ऐसे तथ्य हैं जिनका गुणात्मक अध्ययन ही संभव हो सकता है, जैसे- सुंदरता, बुद्धिमत्ता, ईमानदारी आदि। ऐसे तथ्यों का अध्ययन परोक्ष रूप से तो किया जा सकता है परंतु प्रत्यक्ष रूप से नहीं।

2. **केवल समूहों का अध्ययन-** सांख्यिकी के निष्कर्ष समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं। यहां व्यक्तिगत विशेषताओं पर प्रकाश नहीं डाला जाता है। प्रो. नीसवैंगर के अनुसार, "सांख्यिकी के निष्कर्ष समूह के सामूहिक व्यवहार का अनुमान करने में

सहायक होते हैं, उस समूह की व्यक्तिगत इकाइयों का नहीं।" उदाहरण के लिए, 'किसी कारखाने के कर्मचारियों की औसत मजदूरी 800 रुपये प्रति माह है।' परंतु कुछ कर्मचारी ऐसे भी हो सकते हैं जिनकी आयु बहुत ही कम हो।

3. **नियमों का औसत रूप में सत्य होना**- कोई भी व्यवस्था जो बड़े या जटिल वर्ग को एक दृष्टि में मस्तिष्क के समझने योग्य बनाती है, वह अधिकांश छोटी-छोटी अनियमितताओं को दूर करने में समर्थ नहीं हो सकी है। सांख्यिकी के नियम पूर्ण रूप से सतय नहीं होते हैं। ये केवल अनुमान तथा संभावनाओं को बताते हैं और सन्निकट प्रवृत्तियों के सूचक होते हैं। यदि यह कहा जाये कि भारत में व्यक्तियों की आयु 35 वर्ष है तो यह कथन औसत रूप से ही सत्य है, सामान्य रूप से नहीं। सांख्यिकी व्यापक रूप से औसतों से संबंधित होती है और ये औसतें ऐसे अंकों से बनते हैं जिनमें एक-दूसरे से महत्वपूर्ण भेद होता है। औसत में ये अनियमितताएं छिप जाती हैं।

4. **आंकड़ों में एकरूपता और सजातीया होना आवश्यक**- सांख्यिकीय निष्कर्ष केवल सजातीय एवं एकरूप समंकों से ही निकाले जाते हैं। आपस में तुलना करने के लिए भी यह आवश्यक है कि जो समंक एक ही गुण को प्रकट करते हैं, उनमें प्रारंभ से अंत तक उच्च कोटि की स्थिरता आवश्यक है, तभी परिणाम ठीक होंगे। उदाहरार्थ- वृक्ष की ऊंचाई और मनुष्यों की ऊंचाई की तुलना नहीं की जानी चाहिए।

5. **प्रयोगकर्ता हेतु सांख्यिकीय रीतियों का पूर्ण ज्ञान आवश्यक**- सांख्यिकी की रीतियों का उचित प्रयोग करने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति वैज्ञानिक पद्धति से बनायी गयी सांख्यिकीय रीतियों तथा अन्य नियमों को अच्छी प्रकार से समझता हो। बाउले के अनुसार, "समंक केवल एक आवश्यक किंतु अपूर्ण औजार प्रदान करते हैं जो उन व्यक्तियों के हाथों में खतरनाक है जो उसकी प्रयोग विधि और कमियों से परिचित नहीं हैं।"

6. **सांख्यिकीय रीति किसी समस्या के अध्ययन की रीति**- क्राक्स्टन तथा काउडेन के अनुसार, "यही नहीं मान लेना चाहिए कि सांख्यिकीय रीति ही अनुसंधान कार्य में प्रय्रोग की जाने वाली एक मात्र रीति है, न ही इस रीति को प्रत्येक समस्या का सर्वोत्तम हल समझना चाहिए।" मिल्स का कहना है, "सांख्यिकीय रीतियों का प्रयोग साधन के रूप में बुद्धिमानी से करना चाहिए तथा सांख्यिकी विश्लेषण से निकलने वाले निष्कर्षों के विवेचन में अत्यंत सावधानी से काम लेना चाहिए।"

   सांख्यिकीय रीति से प्राप्त निष्कर्षों की सत्यता का परीक्षण अन्य रीतियों से प्राप्त निष्कर्षों से कर लेना आवश्यक है। सांख्यिकीय एक साधन मात्र है, समाधान नहीं।

7. **निष्कर्ष संदेह से परे नहीं**- यदि सांख्यिकीय समंकों का अध्ययन बिना संदर्भ के किया जाये तो उनसे प्राप्त निष्कर्ष असत्य व भ्रामक सिद्ध हो सकते हैं। बिना संदर्भ व परिस्थितियों को समझते हुए जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं, वे यद्यपि सत्य जान पड़ते हैं परंतु वास्तविक रूप से वे निष्कर्ष सत्य नहीं होते हैं। अतएव सांख्यिकीय परिणामों का निर्वचन करते समय उन्हें उनके उचित संदर्भ में रखना चाहिए। डॉ. बाउले ने भी कहा है, "जो समंकों का उपयोग करता है, उसे

टिप्पणी

अनुसंधान के निष्कर्षों को प्रभावित मानकर संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए परंतु उस विधि के समस्त अंगों का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।"

सांख्यिकी की सीमाओं को हटाया जाना संभव नहीं है। सांख्यिकी की सीमाओं को ध्यान में न रखकर सांख्यिकीय समंकों के आधार पर निष्कर्ष निकालना अनुचित है। अनुसंधान कार्य के दौरान सांख्यिकी की सीमाओं की उपेक्षा करने के कारण सांख्यिकी (या समंकों) के प्रति अविश्वास पैदान होना स्वाभाविक है।

3.4.2 केंद्रीय प्रवृत्ति की माप : माध्य, माध्यिका और बहुलक

चूंकि मानव मस्तिष्क जटिल समंकों को पूर्णतया समझने और उनकी तुलना करने में सर्वथा समर्थ नहीं है इसलिए यह जरूरी हो जाता कि विविध तथ्यों, जिनकी तुलना की जानी है, उन्हें सारांश रूप में एक ही अंक द्वारा व्यक्त किया जा सके। वास्तव में ऐसे मूल्य या अंक ही केंद्रीय प्रवृत्ति के माप या सांख्यिकीय माध्य कहलाते हैं।

माध्यों द्वारा जटिल और अव्यवस्थित समंकों की मुख्य विशेषताओं का एक सरल, स्पष्ट एवं संक्षिप्त चित्र प्रस्तुत किया जाता है। इससे उन समंकों को समझना व याद रखना बहुत सुगम हो जाता है। उदाहरणार्थ, 100 करोड़ भारतवासियों की अलग–अलग आयु को याद रखना असंभव है, लेकिन औसत आय सुगमता से याद रखी जा सकती है। अतः माध्य, समंकों का विहंगम दृश्य (bird's eye view) प्रस्तुत करते हैं। मोरोने ने ठीक ही कहा है, ''माध्य का उद्देश्य, व्यक्तिगत मूल्यों के समूह का सरल और संक्षिप्त रूप से प्रतिनिधित्व करना है, जिससे मस्तिष्क समूह की इकाइयों के सामान्य आकार को शीघ्रता से ग्रहण कर सके।''

केंद्रीय प्रवृत्ति की विशेषताएं

केंद्रीय प्रवृत्ति के मापों या माध्यों की कई विशेषताएं होती हैं, जो इस प्रकार हैं–

1. **तुलना में सहायक होना** (To facilitate comparison)– माध्य, समंकों की समस्त राशि को संक्षिप्त व सरल करके तुलना योग्य बनाते हैं। समंकों की तुलना से बहुत महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, विभिन्न देशों की औसत आय की तुलना से ज्ञात किया जा सकता है कि कौन–सा देश सबसे अधिक समृद्धशाली है तथा कौन–सा सबसे कम।
2. **उपयुक्त नीतियों के निर्धारण में सहायक होना** (To help in the formulation of suitable policies)– माध्य, उपयुक्त नीतियों के निर्धारण में बहुत अधिक सहायक होते हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी कॉलेज में बी.कॉम. के प्रथम वर्ष की चार कक्षाओं 'क', 'ख', 'ग' एवं 'घ' के विद्यार्थियों के किसी विषय (subject) में औसत नंबर इस प्रकार हैं– 60,58,40 एवं 55 तो इससे यह निष्कर्ष निकलेगा कि कक्षा 'ग' के विद्यार्थी इस विषय में बहुत कमजोर हैं और उनकी इस कमी को दूर करने के लिए विशेष प्रबंध करना आवश्यक है।
3. **सांख्यिकीय विश्लेषण का आधार** (Basis of statistical analysis)– सांख्यिकीय विश्लेषण की अनेक क्रियाएं माध्यों पर आधारित हैं।
4. **न्यादर्शों की विभिन्नता का कम से कम प्रभाव**– यदि एक ही समग्र से उचित रीति द्वारा विभिन्न नमूना लेकर माध्य निकाले जाएं तो उन माध्यों में बहुत अधिक अंतर नहीं आता है।

5. **बीजगणितीय विवेचन संभव**– एक अच्छे माध्य का बीजगणितीय विवेचन संभव है, जैसे–यदि दो कारखानों के मजदूरों की संख्या तथा औसत आय से संबंधित समंक दिए गए हों तो दोनों कारखानों के मजदूरों की आय का सामूहिक माध्य निकालना संभव है।

अंकगणितीय माध्य तो केंद्रीय स्थान–निर्धारण का सर्वाधिक प्रयोग किया जाने वाला मापक है, मोड व माध्यिका कुछ प्रकारों के आंकड़ों हेतु एवं कुछ स्थितियों में सबसे उपयुक्त मापक होते हैं। वैसे केंद्रीय प्रवृत्ति के हर मापक में निम्न शर्तें पूर्ण होनी ही चाहिए–

1. यह गणना करने एवं समझने में सरल हो।
2. इसे दृढ़ता से परिभाषित किया गया हो। इसकी एक ही व्याख्या हो ताकि शोधकर्ता के व्यक्तिगत पूर्वाग्रह अथवा पक्षपात से इसकी उपयोगिता अप्रभावित रहे।
3. यह आंकड़ों का प्रतिनिधि हो। यदि प्रतिदर्श से इसकी गणना की जाए तो प्रतिदर्श इतना यादृच्छिक होना चाहिए कि जिससे वह समष्टि का प्रतिनिधित्व सटीकता से करे।
4. इसमें प्रतिदर्शन स्थिरता हो। यह प्रतिदर्शन के उतार–चढ़ावों से प्रभावित न हो अर्थात यदि हम यादृच्छिक स्तर पर महाविद्यालयी शिक्षार्थियों के 10 भिन्न–भिन्न समूहों को लेते हैं एवं प्रत्येक समूह के औसत की गणना करते हैं तो हमें इनमें से प्रत्येक समूह से लगभग समान मान पाने की अपेक्षा रहेगी।
5. यह चरम मानों से बहुत प्रभावित न हो। यदि आंकड़ों में कुछ बहुत छोटी या बहुत बड़ी बातें/वस्तुएं प्रस्तुत हों तो वे औसत के मान को किसी एक ओर सरका कर अनुचित रूप से प्रभावित कर देंगी। अतः औसत समूची शृंखला का वास्तविक प्रारूप नहीं होगा। इसी कारण चुना गया औसत ऐसा होना चाहिए कि जिससे उन चरम मानों द्वारा अनुचित प्रभाव न पड़े।

माध्य, माध्यिका और बहुलक की परिगणना एवं प्रयोग

(अ) माध्य (Mean)

माध्य का सांख्यिकी विज्ञान में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। सांख्यिकीय विश्लेषण की अन्य बहुत–सी रीतियां माध्यों पर आधारित हैं। यही कारण है कि डॉ. बाउले ने सांख्यिकीय को 'माध्यों का विज्ञान' कहा है। माध्यों की सहायता से समंक श्रेणी के सभी मूल्यों का सार प्रकट किया जाता है। सांख्यिकी की व्यक्तिगत इकाइयों का अलग–अलग कोई महत्व नहीं होता। माध्यों द्वारा सभी इकाइयों में सामूहिक रूप से पाये जाने वाले मुख्य लक्ष्य स्पष्ट हो जाते हैं तथा उनकी तुलना भी सरल हो जाती है।

माध्य कई प्रकार के होते हैं जिन्हें निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

टिप्पणी

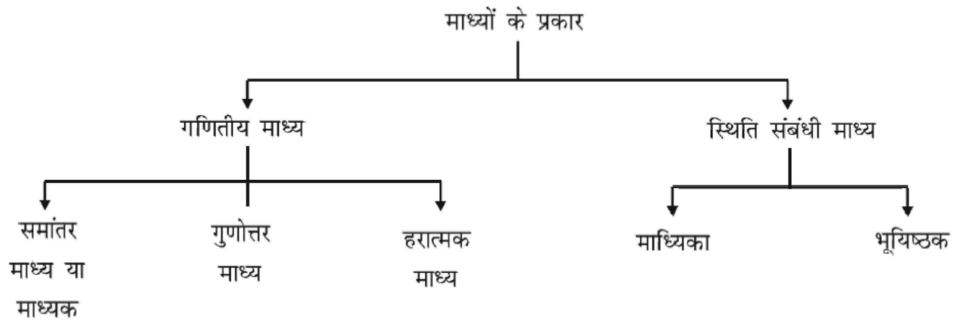

माध्य, पूरे समूह का प्रतिनिधित्व करता है। ऐसे माध्य में निम्न गुण होने चाहिए ताकि समंकों का ठीक रूप से प्रतिनिधित्व हो सके–

(1) **समझने में सरल** (Easy to understand)– सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग समंकों को संक्षिप्त तथा सरल बनाने के लिए किया जाता है। अतः माध्य ऐसा होना चाहिए, जो सुगमता से समझा जा सके, अन्यथा इसका प्रयोग बहुत ही सीमित होगा।

(2) **गणना (निर्धारण) में सुगम** (Easy to compute)– माध्य की गणन–क्रिया सरल होनी चाहिए ताकि इसका प्रयोग व्यापक रूप से हो सके। यद्यपि माध्य का निर्धारण यथासंभव सरल होना चाहिए तथापि विशेष परिस्थितियों में परिणामों की शुद्धता के लिए अधिक कठिन माध्यों का प्रयोग भी किया जा सकता है।

(3) **श्रेणी के सभी मूल्यों पर आधारित** (Based on all the items of the series)– माध्य श्रेणी के सभी मूल्यों पर आधारित होना चाहिए ताकि एक या अधिक मूल्यों में परिवर्तन होने से माध्य में भी परिवर्तन हो सके। यदि माध्य श्रेणी के सभी मूल्यों पर आधारित नहीं है तो वह पूरे समूह का ठीक प्रकार से प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता।

(4) **न्यूनतम तथा अधिकतम मूल्यों पर अनुचित प्रभाव से बचाव** (Should not be unduly affected by extreme items)– यद्यपि माध्य सभी मूल्यों पर आधारित होना चाहिए तथापि किसी विशेष मूल्य का माध्य पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए अन्यथा माध्य, समंकों का सही प्रतिरूप व्यक्त नहीं करेगा।

(5) **स्पष्ट व स्थिर** (Rigidly defined)– माध्य की परिभाषा स्पष्ट शब्दों में व्यक्त होनी चाहिए ताकि जो भी व्यक्ति दिए हुए समंकों से माध्य निकाले, वह एक ही निष्कर्ष पर पहुंचे। इसलिए यह आवश्यक है कि माध्य, गणितीय सूत्र के रूप में दिया जाए। यदि माध्य के परिगणन में व्यक्तिगत प्रवृत्तियों का प्रभाव पड़ा तो फल भ्रामक तथा अशुद्ध होंगे।

समांतर माध्य– समांतर माध्य अथवा माध्यक, सबसे अधिक प्रचलित माध्य है। इसका प्रयोग सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति द्वारा दैनिक जीवन में किया जाता है। समांतर माध्य वह मूल्य है, जो किसी श्रेणी के सभी पदों के मूल्यों के योग में, उन पदों की संख्या से भाग देने पर प्राप्त होता है। माध्य या माध्यक निकालने की दो रीतियां हैं–प्रत्यक्ष रीति तथा लघु रीति। आगे हम इन दोनों रीतियों का तीनों प्रकार की श्रेणियों में अलग–अलग अध्ययन करेंगे।

व्यक्तिगत श्रेणी में माध्य का परिगणन

प्रत्यक्ष विधि

(i) सर्वप्रथम श्रेणी के सभी मूल्यों का योग किया जाता है।

(ii) फिर इस योग को पदों की संख्या से भाग दे दिया जाता है। यह स्मरण रहे कि इस विधि का प्रयोग तभी करना चाहिए, जब चर मूल्यों की संख्या कम हो तथा वे दशमलव में न हों।

सूत्र : $\bar{x} = \frac{x_1 + x_2 + x_3 + ...x_n}{N} = \frac{\sum X}{N}$

$\bar{x}$ = समांतर माध्य

Σx = पद–मूल्यों का जोड़

N = पदों की संख्या

उदाहरण– नीचे 12 परिवारों की मासिक आय का विवरण दिया गया है। समांतर माध्य की गणना कीजिए–

No.	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
आय	280	180	96	98	104	75	80	94	100	75	600	200

हल– समांतर माध्य का परिगणन **प्रत्यक्ष रीति** द्वारा

परिवारों की संख्या	परिवारों की आय
1	280
2	180
3	96
4	98
5	104
6	75
7	80
8	94
9	100
10	75
11	600
12	200
N=12	**Σx = 1982**

$\Sigma x = 1982, N = 12$

$$\bar{x} = \frac{\sum x}{N} \text{ or } \frac{1982}{12} = 165.167 \therefore \overline{X} = 165.17$$

लघु विधि

इसकी प्रक्रिया निम्न है–

1. सर्वप्रथम दिए हुए मूल्यों में से किसी एक मूल्य को कल्पित माध्य मान लिया जाता है। वैसे कल्पित माध्य श्रेणी से बाहर का भी कोई मूल्य माना जा सकता है, किंतु सुविधा की दृष्टि से कल्पित माध्य, सदैव श्रेणी के मूल्यों में से ही कोई एक होना चाहिए तथा वह न सबसे छोटा और न सबसे बड़ा, बल्कि मध्य–मूल्य का होना चाहिए।

टिप्पणी

2. श्रेणी के प्रत्येक व्यक्तिगत मूल्य (x) में से कल्पित–माध्य (A) को घटाकर, विचलन प्राप्त किए जाते हैं, अर्थात $dx=x–A$ ।
3. विचलनों का योग प्राप्त कर लिया जाता है– Σdx या $\Sigma(X–A)$
4. अंत में निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$\bar{x} = A + \frac{\sum dx}{N}$$

$\bar{x}$ = समांतर माध्य

A = कल्पित माध्य

Σdx = विचलनों का योग

N = पदों की कुल संख्या।

उदाहरण– निम्न समंकों का समांतर माध्य ज्ञान कीजिए–

क्रमांक	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
पद–मूल्य	96	180	98	75	270	80	102	100	94	75	200	610

हल– समांतर माध्य का परिगणन लघु विधि द्वारा

क्रमांक	कल्पित विचलन माध्य 200 से	
1	(96-200)	-104
2	(180-200)	-20
3	(98-200)	-102
4	(75-200)	-125
5	(270-200)	+70
6	(80-200)	-120
7	(102-200)	-98
8	(100-200)	-100
9	(94-200)	-106
10	(75-200)	-125
11	(200-200)	0
12	(610-200)	+410
N=12	$\sum dx = -900 + 480 = -420$	

$$\bar{x} = A + \frac{\sum dx}{N}$$

$$= 200 + \frac{-420}{12}$$

$$= 200 - 35 = 165$$

खंडित श्रेणी में समांतर माध्य की गणना

1. प्रत्यक्ष विधि

(i) सर्वप्रथम प्रत्येक मूल्य (x) का आवृत्ति (f) से गुणा किया जाता है अर्थात ($x \times f$)

(ii) फिर इन गुणज के योग (Σfx) को कुल इकाइयों की संख्या से भाग दे दिया जाता है (आवृत्ति श्रेणी में आवृत्तियों का जोड़ ही कुल इकाइयों की संख्या होती है, चूंकि $N = \Sigma f$)

(iii) प्रत्यक्ष रीति के अनुसार, सूत्र इस प्रकार है–

$$\bar{x} = \frac{\sum fx}{N} \text{ or } \bar{x} = \frac{\sum fx}{\sum f} (\therefore N = \sum f)$$

टिप्पणी

2. लघु विधि

(i) सर्वप्रथम दिए हुए मूल्यों में किसी एक को कल्पित माध्य मान लिया जाता है।

(ii) फिर प्रत्येक पद में से कल्पित माध्य घटाकर विचलन प्राप्त कर लिए जाते हैं अर्थात $dx = (x - A)$

(iii) प्रत्येक विचलन *(dx)* को उसकी आवृत्ति *(f)* से गुणा करके, उन गुणज का जोड़ *(Σfdx)* निकाल लिया जाता है।

(iv) अंत में, निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$\bar{x} = A + \frac{\sum fdx}{N} \text{ or } \bar{x} = A + \frac{\sum fdx}{\sum f}$$

यहां A = कल्पित माध्य, Σfdx = विचलनों व आवृत्तियों का जोड़

N = आवृत्तियों का कुल जोड़

उदाहरण– निम्नलिखित खंडित श्रेणी में (i) 15 को शून्य (अर्थात कल्पित माध्य) मानकर समांतर माध्य निकालें तथा (ii) प्रत्यक्ष रीति द्वारा परिणाम की जांच कीजिए।

आकार	आवृत्ति	लघु विधि		प्रत्यक्ष विधि
		A = 15 से विचलन	गुणनफल	
(*X*)	(*f*)	(*dx*)	(*fdx*)	(*fx*)
20	1	+5	+5	20
19	2	+4	+8	38
18	4	+3	+12	72
17	8	+2	+16	136
16	11	+1	+11	176
15	10	0	0	150
14	7	-1	-7	98
13	4	-2	-8	52
12	2	-3	-6	24
11	1	-4	-4	11

हल

लघु विधि

$$\bar{x} = A + \frac{\sum fdx}{N}$$

$$= 15 + 0.54 = 15.4$$

प्रत्यक्ष विधि

$$Mean \text{ or } \bar{x} = \frac{\sum fx}{N} = \frac{777}{50} = 15.54$$

टिप्पणी

अखंडित श्रेणी में माध्य का परिकलन

अखंडित श्रेणी में समांतर माध्य ठीक उसी प्रकार निर्धारित किया जाता है, जिस प्रकार 4 खंडित श्रेणी में। सूत्र भी दोनों में एक समान है। परंतु अंतर केवल इतना है कि अखंडित श्रेणी में पहले वर्गों के मध्य मूल्य निकाले जाते हैं जिन्हें *'X'* कहते हैं। इस प्रकार मध्य मूल्य लेने पर अखंडित श्रेणी, खंडित श्रेणी का रूप ले लेती है।

प्रत्यक्ष विधि

(i) सर्वप्रथम, वर्गों के मध्य–मूल्य ज्ञात किए जाते हैं।

(ii) फिर, मध्य–मूल्यों को उनकी आवृत्तियों से गुणा करके गुणनफलों का जोड़ (Σfx) प्राप्त कर लिया जाता है।

(iii) अंत में निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$\bar{x} = A + \frac{\sum fdx}{N}$$

उदाहरण– निम्न सारणी से समांतर माध्य ज्ञात कीजिए–

वर्ग :	0-10	10-20	20-30	30-40	40-50	50-60
आवृत्ति :	12	18	27	20	17	6

हल– समांतर माध्य का परिकलन

आकार	मध्यमान	आवृत्ति	आवृत्ति A = 25 से विचलन	लघु विधि गुणनफल	प्रत्यक्ष विधि
(x)	$(M\text{-}V.)$	(f)	(dx)	(fdx)	(fx)
0-10	5	12	-20	-240	60
10-20	15	18	-10	-180	270
20-30	25	27	0	0	675
30-40	35	20	+10	+200	700
40-50	45	17	+20	+340	765
50-60	55	6	+30	+180	330
Total		N=100		$\Sigma fdx = 300$	$\Sigma fx = 2800$

प्रत्यक्ष विधि

$$\bar{x} = A + \frac{\sum fdx}{N}$$

$$= 25 + \frac{300}{100} = 25 + 3$$

$$\therefore \bar{x} = 25 + 3 = 28$$

लघु विधि

$$\bar{x} = \frac{\sum fx}{N}$$

$$= \frac{2800}{100}$$

$$\therefore \bar{x} = 28$$

टिप्पणी

यदि वर्ग विस्तार समान है तो लघु विधि श्रेष्ठ है और यदि वर्गों का विस्तार असमान है तो फिर प्रत्यक्ष रीति उपयुक्त होगी।

उदाहरण— एक फर्म के 30 कर्मचारियों का मासिक वेतन (रु. में) निम्न प्रकार से है—

139	123	99	133	132	100	80	148	108
116	77	123	148	114	95	144	134	142
62	106	69	126	104	103	140	118	88
85	63	129						

निम्न वेतन वर्ग के कर्मचारियों को फर्म ने क्रमशः 10, 15, 25, 30 और 35 रु. का अधिलाभांश प्रदान किया। 60 रु. से अधिक किंतु 75 रु. से अधिक नहीं, 75 रु. से अधिक किंतु 90 से अधिक नहीं और इसी प्रकार 136–150 तक प्रति कर्मचारी औसत अधिलाभांश ज्ञात कीजिए।

हल— प्रश्न में दिए हुए वेतन–वर्गों में सर्वप्रथम कर्मचारियों को वर्गीकृत करके आवृत्तियां निकाली जाएंगी। तत्पश्चात प्रत्यक्ष विधि द्वारा कुल तथा औसत बोनस ज्ञात कर लिया जाएगा।

कुल व औसत बोनस का परिकलन

वर्ग	टेलीबार विधि द्वारा आवृत्ति का प्रदर्शन		कर्मचारियों की संख्या	बोनस	कुल बोनस
			f	(x)	(xf)
60–75	|||	3	3	10	30
76–90	||||	4	4	15	60
91–105	~~||||~~	5	5	20	100
106–120	~~||||~~	5	5	25	125
121–135	~~||||~~ ||	7	7	30	210
136–150	~~||||~~ |	6	6	35	210
Total		**N = 30**	**$\Sigma f = 30$**		**$\Sigma fx = 735$**

$$\text{Average Bonus} = \frac{Total\ Bonus}{No.of\ Employees} = \frac{735}{30} = 24.5$$

माध्य संबंधी कुछ महत्वपूर्ण तथ्य

(1) **पद विचलन विधि**— लघु रीति को और भी सरल बनाने के लिए पद–विचलन रीति का प्रयोग किया जा सकता है। बशर्ते कि श्रेणी में वर्ग–विस्तार समान हो। लघु रीति और इस रीति में अंतर सिर्फ इतना है कि लघु रीति में जो विचलन किए जाते हैं, उन्हें इस रीति में किसी समापवर्त्तक से भाग देकर संक्षिप्त बना लिया जाता है। इन्हें ही पद विचलन ($d'x$) कहते हैं। सामान्यतः वर्ग–विस्तार को ही समापवर्त्तक माना जाता है फिर पद–विचलनों को उनकी आवृत्तियों से गुणा करके ($\Sigma fd'x$) ज्ञात कर लेते हैं। अंत में, समायोजन की दृष्टि $\Sigma fd'x$ में

टिप्पणी

समापवर्त्तक (i) से गुणा कर दी जाती है। इस विधि में निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$\bar{x} = A + \frac{\sum fd'x}{N} \times i$$

$\Sigma fd'x$ = पद–विचलनों तथा आवृत्तियों के गुणज का जोड़

i = समापवर्त्तक वर्ग–विस्तार

(2) **संचयी आवृत्ति वितरण**– कभी–कभी वर्गांतरों के संचयी वितरण को सामान्य वितरण में बदल लेना चाहिए।

उदाहरण– निम्न सारणी से समांतर माध्य ज्ञात कीजिए–

प्राप्तांक :	10	20	30	40	50	60	70	80
संचयी आवृत्ति :	25	40	60	75	95	125	190	240

हल– सर्वप्रथम संचयी आवृत्ति वितरण को सामान्य आवृत्ति वितरण में बदला जाएगा।

प्राप्तांक x	मध्य बिन्दु M.P.	आवृत्ति f	पद–विचलन $d'x = \frac{x-45}{10}$	गुणनफल $fd'x$
0-10	5	25	-4	-100
10-20	15	15	-3	-45
20-30	25	20	-2	-40
30-40	35	15	-1	-15
40-50	45	20	0	0
50-60	55	30	+1	+30
60-70	65	65	+2	+130
70-80	75	50	+3	+150
		N=240		Σfdx = 110

$$\bar{x} = A + \frac{\sum fd'x}{N} \times i = 45 + \frac{110}{240} \times 10$$

$$= 45 + 4.58$$

$$= 49.58$$

(3) **खुले सिरे वाले वर्गांतर**– जब वर्गांतर खुले सिरे वाले दिए हुए हों तो सिद्धांत रूप में ऐसे प्रश्नों या वितरणों में समांतर माध्य का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए बल्कि उनके स्थान पर बहुलक या माध्यक का प्रयोग करना चाहिए। परंतु यदि उक्त प्रश्न का समांतर माध्य निकालने के लिए कहा गया है तब ऐसी दशा में निम्न दो स्थितियों को ध्यान में रखना होगा–

(क) **वर्गों का वर्ग–विस्तार समान हो**– ऐसी स्थिति में पहले वर्ग की 'ऊपरी सीमा' में और अंतिम वर्ग की 'निचली सीमा' में, उनके इष्टतम वर्गों के वर्ग–विस्तार को क्रमशः घटाकर तथा जोड़कर अज्ञात सीमाओं का निर्धारण कर लेना चाहिए।

(ख) **जब वर्गों का वर्ग विस्तार असमान हो**–नीचे दिए गए उदाहरण में वर्ग विस्तार असमान है– दूसरे वर्ग का विस्तार 20 है, तीसरे का 30 और चौथे

टिप्पणी

का 40 है अर्थात वर्ग–विस्तार क्रमशः 10 में बढ़ रहा है, अतः ऐसी स्थिति में प्रथम वर्ग की निचली सीमा शून्य (10–10) होगी और अंतिम वर्ग की ऊपरी सीमा 150 (100 + 50) होगी अर्थात प्रथम वर्ग 0–10 तथा अंतिम वर्ग 100–150 होगा।

अंक	10–10	10–30	30–60	60–100	100 से अधिक
विद्यार्थियों की संख्या	5	9	16	7	30

(4) **समावेशी वर्गांतर**– जब वर्गांतर समावेशी आधार पर दिए गए हों तो समांतर माध्य निकालने के लिए उन्हें अपवर्जी बनाने की कोई आवश्यकता नहीं होती क्योंकि मध्य–मूल्य वही रहते हैं, भले ही वर्गों का समायोजन किया जाए या न किया जाए।

(5) **असमान वर्गांतर**– जब वर्गांतर असमान हों तो उन्हें समान बनाने के लिए आवृत्तियों के समायोजन की कोई आवश्यकता नहीं होती है बल्कि ऐसे प्रश्न को उनके मूल रूप में ही हल कर देना चाहिए।

उदाहरण– निम्न समंकों का माध्यक ज्ञात कीजिए।

आयु (वर्षों में)	18–21	22–25	26–35	36–45	46–55
व्यक्तियों की सं.	8	32	54	36	20

हल– समांतर माध्य का परिकलन

आयु	मध्य बिन्दु	आवृत्ति	$dx = x - 30.5$	fdx
18–21	19.5	8	−11	−88
22–25	23.5	32	−7	−224
26–35	30.5	54	0	0
36–45	40.5	36	+10	+360
46–55	50.5	20	+20	+400
		$f = 150$		$\Sigma fdx = 448$

$$\overline{x} = A + \frac{\sum fdx}{N} = \frac{448}{150}$$

$$= 30.5 + 2.99 = 33.49$$

अतः माध्यक आयु 33.49 वर्ष।

(6) **ग्राम–चार्लियर** (Gram-Charlier) **विधि द्वारा शुद्धता की जांच**– लघु विधि या पद–विचलन विधि द्वारा समांतर माध्य निकालते समय गणना क्रिया की जांच करने के लिए 'ग्राम–चार्लियर' विधि का प्रयोग किया जाता है।

विधि

(i) सर्वप्रथम प्रत्येक विचलन या पद विचलन में 1 जोड़कर $(dx + 1)$ अथवा $(d'x + 1)$ ज्ञात कर लिया जाता है।

टिप्पणी

(ii) $(dx + 1)$ या $(d'x + 1)$ में उनकी आवृत्तियों को गुणा करके गुणनफलों का योग $\Sigma[f(dx + 1)]$ या $\Sigma[f(dx' + 1)]$ ज्ञात कर लिया जाता है।

(iii) तत्पश्चात निम्न समीकरणों को प्रयोग किया जाता है–

$\Sigma fdx = \Sigma[f(dx +1)] - \Sigma f \rightarrow$ लघु विधि प्रयोग करने पर

$\Sigma fd'x = \Sigma[f(d'x +1)] - \Sigma f \rightarrow$ पद–विचलन विधि प्रयोग करने पर

(iv) यदि उपर्युक्त समीकरण के दोनों पक्ष बराबर हैं तो समझ लेना चाहिए कि गणन–क्रिया शुद्ध है, अन्यथा नहीं।

(7) **अज्ञात मूल्य या आवृत्ति का निर्धारण**– समांतर माध्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यदि किसी श्रेणी के इन तीनों मानों $\overline{x}$ N और $\Sigma\, \overline{x}$ में से कोई दो मान ज्ञात हों तो तीसरा मान निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जा सकता है–

$$\overline{x} - \frac{\sum x}{N} \text{or} \frac{\sum fx}{x}$$

(8) **अशुद्ध मूल्यों को शुद्ध बनाना**– कभी–कभी समांतर माध्य निकालते समय भूल से सही पदों के स्थान पर गलत पद लिख लिए जाते हैं, जिससे समांतर माध्य भी गलत हो जाता है। ऐसी स्थिति में सही समांतर माध्य निकालने के लिए अशुद्ध Σx में से अशुद्ध मूल्य घटाकर उसमें शुद्ध मूल्य जोड़ दिया जाता है फिर, शुद्ध Σx को पदों की संख्या *(N)* से भाग देने पर सही समांतर माध्य प्राप्त हो जाता है।

समांतर माध्य के गुण

1. **स्थिरता**– इस माध्य पर प्रतिचयन के उच्चावचनों का न्यूनतम प्रभाव पड़ता है, जैसे–यदि किसी एक ही समग्र में से सदैव आधार पर कई बार प्रतिदर्श लिए जाएं तो प्रतिदर्श–माध्यों में अधिक अंतर नहीं होगा। यह गुण अन्य किसी माध्य में नहीं पाया जाता है।
2. **सरलता**– समांतर माध्य एक सामान्य बुद्धि वाले व्यक्ति के लिए गणना करने व समझने की दृष्टि से अत्यंत सरल है।
3. **निश्चितता**– समांतर माध्य में निश्चितता का गुण होता है और यह बहुलक व माध्यिका की भांति अंतरगणन व अनुमान पर आधारित नहीं होता।
4. **सही प्रतिनिधित्व**– बहुलक तथा माध्यिका के विपरीत समांतर माध्य श्रेणी के सभी पदों पर आधारित होता है, जिसके कारण यह श्रेणी का सही प्रतिनिधित्व करता है।
5. **बीजगणितीय विवेचन**– समांतर माध्य के अपने कुछ बीजगणितीय गुण हैं, जिस कारण इस माध्य का अन्य सांख्यिकीय रीतियों में व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है।

समांतर माध्य में एक आदर्श–माध्य के सभी गुण पाए जाते हैं। फलतः यह सर्वाधिक लोकप्रिय माध्य है।

समांतर माध्य के दोष– एक आदर्श माध्य होने के बावजूद समांतर माध्य निम्न दोषों से ग्रसित है–

1. **अप्रतिनिधित्व**– समांतर माध्य किसी श्रेणी का एक ऐसा मूल्य हो सकता है, जो उस श्रेणी में न होकर कोई बाहर का मूल्य हो।
2. **चरम मूल्यों का प्रभाव**– इस माध्य का सबसे बड़ा दोष चरम मूल्यों का प्रभाव है। अत्यधिक बड़े या छोटे मूल्यों को यह अधिक महत्व देता है। उदाहरणार्थ, चार कर्मचारियों के वेतन क्रमशः 1000, 250, 210, 180 रु. का समांतर माध्य 410 हुआ। स्पष्ट है कि एक अकेले पद–मूल्य (1000) ने औसत को काफी हद तक बढ़ा दिया है।
3. **अवास्तविक माध्य**– समांतर माध्य, कभी–कभी पूर्णांक में न होकर दशमलव या भिन्न के रूप में आता है जोकि इसे अवास्तविक बना देता है, जैसे–चार माताओं द्वारा क्रमशः 3,2,1 व 4 बच्चों को जन्म दिया गया, जिसका प्रति माता औसत 2.5 आया। निःसंदेह यह एक हास्यप्रद निष्कर्ष है।
4. **अनुपयुक्तता**– समांतर माध्य का एक अन्य दोष यह है कि इसके अनुपात, दर, प्रतिशत आदि की गणना करना संभव नहीं हो पाता है।
5. **भ्रमात्मक निष्कर्ष**– समांतर माध्य कभी–कभी भ्रमात्मक निष्कर्ष भी देता है। उदाहरणार्थ, जूट उद्योग की दो फर्मों का पिछले तीन वर्षों में लाभ इस प्रकार रहा है–

   A : 5000 रु. + 7000 रु. + 9000 रु. = औसत 7000 रु.

   B : 12000 रु. + 6000 रु. + 3000 रु. = औसत 7000 रु.

   इनके समान स्तर का प्रतीक है। परंतु वास्तविक यह है कि A फर्म उन्नति की ओर अग्रसर है, जबकि B फर्म दिवालियेपन की ओर बढ़ रही है।
6. **गणना संबंधी जटिलता**– स्थिति संबंधी माध्यों, जैसे–भूयिष्ठक व माध्यिका की अपेक्षा समांतर माध्य की गणना क्रिया अधिक जटिल है। प्रथम, यह निरीक्षण द्वारा नहीं निकाला जा सकता। दूसरा, यदि श्रेणी का कोई एक मूल्य भी अज्ञात है तो समांतर माध्य नहीं निकल पाएगा क्योंकि यह श्रेणी के सभी पदों पर आधारित होता है, तीसरा गुणात्मक समंकों के लिए समांतर माध्य का प्रयोग नहीं किया जा सकता। चौथा, माध्यिका व भूयिष्ठक की भांति इस माध्य का निर्धारण बिंदु–रेखीय रीति द्वारा भी नहीं किया जा सकता।

भारित समांतर माध्य

सरल समांतर माध्य, श्रेणी के सभी मूल्यों को समान महत्व देता है, जबकि वास्तविकता यह है कि श्रेणी के विभिन्न मूल्यों का अपना अलग–अलग महत्व होता है। कुछ मूल्य अधिक महत्वपूर्ण होते हैं तो कुछ कम। जैसे, एक उपभोक्ता अपना व्यय सभी वस्तुओं पर समान रूप से नहीं करता बल्कि उनके सापेक्षिक महत्व के अनुपात में करता है। इसी प्रकार, एक कारखाने में कर्मचारियों की विभिन्न वेतन वर्गों में संख्या समान न होकर अलग–अलग होती है। अतः ऐसी श्रेणियों में समांतर माध्य निकालते समय इकाइयों के सापेक्षिक महत्व को ध्यान में रखना अत्यावश्यक होता है। इस दृष्टि से निकाले गए माध्य को ही 'भारित समांतर माध्य' कहते हैं।

वास्तविक तथा अनुमानित भार– वास्तविक भार वे होते हैं, जो स्पष्टतः दिए गए हों, जबकि अनुमानित भार स्वयं के मूल्यों के सापेक्षिक महत्व को देखते हुए मानने पड़ते हैं। भारित समांतर माध्य की गणना विधि की निम्न दो विधियां हैं–

1. प्रत्यक्ष रीति (Direct Method) - (i) सबसे पहले पद–मूल्यों (X) और भारों (W) को गुणा किया जाता है और इन गुणनफलों का योग (ΣXW) कर लिया जाता है। (ii) फिर, निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$\overline{X}W - \frac{\sum WX}{\sum W}$$

$\overline{X}W$ = भारित समांतर माध्य

ΣXW = मूल्यों व भारों के गुणज का योग

ΣW = भारों का योग

2. लघु रीति (Short-Cut Method) - (i) पहले दिए हुए मूल्यों में से किसी एक को कल्पित माध्य *(AW)* मान लिया जाता है और उससे विभिन्न मूल्यों के विचलन *(dx)* लिए जाते हैं। (ii) निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$\overline{X}W = AW + \frac{\sum Wdx}{\sum W}$$

AW =कल्पित भारित माध्य

ΣAdx = विचलनों व भारों के गुणज का योग

उदाहरण– किसी कारखाने के कर्मचारियों की संख्या तथा मासिक वेतन नीचे दिया गया है। प्रत्यक्ष तथा लघु–रीति द्वारा वेतन का भारित समांतर माध्य ज्ञात कीजिए–

	मासिक वेतन (रू0)	व्यक्तियों की संख्या
मैनेजर	1000	1
कार्यालय स्टॉफ	200	8
कुशल श्रम	250	20
अकुशल श्रम	140	11

हल–

भारित समांतर माध्य की गणना

कर्मचारी–वर्ग	वेतन (रू.)	कर्मचारियों की संख्या	प्रत्यक्ष रीति	लघु–रीति	
(Group)	(X)	(W)	($X \times W$)	$dx = x - 250$	(Wdx)
मैनेजर	1000	1	1000	+750	+750
कार्यालय स्टॉफ	200	8	1600	-50	– 400
कुशल श्रम	250	20	5000	0	0
अकुशल श्रम	140	11	1540	-110	–1210
		$\Sigma W = 40$	$\Sigma WX = 9140$		$\Sigma Wdx = -860$

$$\overline{X}W = \frac{\sum WX}{\sum W} = \frac{9140}{40}$$

$$\overline{X}W = A + \frac{\sum XW}{\sum W} = 250 + \frac{-860}{40}$$

$\therefore \overline{X}W = 228.5$ $\qquad$ $\therefore \overline{X}W = 228.5$

सरल व भारित माध्य की तुलना— सरल समांतर माध्य, भारित माध्य के बराबर हो सकता है, उससे अधिक भी हो सकता है और कम भी। (i) बराबर ($\overline{X} = \overline{X}W$) – श्रेणी के प्रत्येक मूल्य को समान भार देने की दशा में सरल व भारित समांतर माध्य बराबर होते हैं। (ii) अधिक ($\overline{X} > \overline{X}W$)— जब श्रेणी के छोटे मूल्यों को अधिक भार और बड़े मूल्यों को कम भार दिया जाता है, जब सरल समांतर माध्य, भारित माध्य से अधिक होता है। (iii) कम ($\overline{X} < \overline{X}W$)— जब श्रेणी के छोटे मूल्यों को कम भार तथा बड़े मूल्यों को अधिक भार दिया जाता है, जब सरल समांतर माध्य, भारित माध्य से कम होता है।

भारित समांतर माध्य का प्रयोग कब किया जाए? निम्न दशाओं में भारित—माध्य अधिक उपयुक्त होता है—(i) जब समंक—माला की विभिन्न इकाइयों का अलग—अलग सापेक्षिक महत्व हो, (ii) जब समंक—माला अनेक उपवर्गों में बंटी हुई हो और उनकी आवृत्तियों में परस्पर काफी अंतर हो, (iii) जब कई समूहों का सामूहिक माध्य ज्ञात करना हो, तथा (iv) जब अनुपातों, प्रतिशतों तथा दरों का माध्य निकालना हो।

सामान्य तथा प्रमापित दरों का सिद्धांत

स्मरण रहे, दो नगरों की स्वास्थ्य स्थित या मृत्यु दरों, जन्म दरों तथा विवाह दरों, बेरोजगारी दरों, परीक्षाफल प्रतिशतों आदि की तुलना करते समय (भारित समांतर माध्य पर आधारित) ''सामान्य एवं प्रमापित दरों के सिद्धांत'' का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के तौर पर यदि दो नगरों की औसत मृत्यु—दरों की तुलना करनी है तो उसके लिए निम्न दो प्रकार की औसत मृत्यु—दरों का मूल्यांकन किया जाता है—

1. **सामान्य मृत्यु—दर** (Crude or General Death Rate) – सामान्य मृत्यु दर के गणन की दो रीतियां हैं— (अ) प्रत्यक्ष रीति, तथा (ब) लघु रीति।

(अ) प्रत्यक्ष रीति (i) सबसे पहले निम्न सूत्र द्वारा प्रत्येक आयु—वर्ग की विशिष्ट मृत्यु—दर निकाल ली जाती है—

$$\text{आयु विशिष्ट मृत्यु दर \%} = \frac{\text{विशिष्ट आयु—वर्ग में मृत्यु—संख्या}}{\text{विशिष्ट आयु—वर्ग की जनसंख्या}} \times 1000$$

(ii) इसके बाद प्रत्येक आयु—वर्ग की प्रति हजार मृत्यु—दर (X) की, उसकी तत्संबंधी जनसंख्या (W) से गुणा की जाती है और गुणज का जोड़ (ΣWX) ज्ञात कर लिया जाता है।

(iii) प्राप्त गुणज के जोड़ (ΣWX) को नगर विशेष की कुल जनसंख्या (ΣW) से भाग देने पर नगर की 'सामान्य मृत्यु दर' ज्ञात हो जाती है।

(ब) लघु रीति— यह रीति सरल है क्योंकि इस रीति में प्रत्येक आयु—वर्ग की (अलग—अलग) प्रति—हजार मृत्यु—दर निकालने की आवश्यकता नहीं होती। केवल निम्न सूत्र का प्रयोग करके सामान्य मृत्यु दर निकाल ली जाती है—

$$\text{सामान्य मृत्यु दर} = \frac{\text{कुल मृत्यु—संख्या}}{\text{कुल जनसंख्या}} \times 1000$$

(2) प्रमापित मृत्यु–दर (Standardized Death Rate) – जैसा कि हम जानते हैं भारित माध्यों की तुलना का महत्वपूर्ण नियम यह है कि दोनों माध्यों में भार एक समान होने चाहिए। इस दृष्टि से दो नगरों की सामान्य मृत्यु–दर तुलना योग्य नहीं होती क्योंकि दोनों की गणना करते समय अलग–अलग जनसंख्याओं को दोनों माध्यों के लिए भार मान लेना चाहिए। इसकी विधि यह है कि स्थानीय नगर की आयु–वर्गानुसार प्रति हजार मृत्यु–दरों को, प्रमाप नगर की आयु–वर्गानुसार जनसंख्या से गुणा करके गुणज का जोड़ प्राप्त कर लिया जाता है। फिर, इस योग को प्रमाप नगर की कुल जनसंख्या से भाग देने पर जो भारित माध्य–दर प्राप्त होती है, वह ''स्थानीय नगर की प्रमापित या संशोधित मृत्यु–दर'' कहलाती है। अंत में स्थानीय नगर की SDR और प्रमाप नगर की GDR की आपस में तुलना की जाती है। जिस नगर की औसत मृत्यु–दर कम होती है, वही नगर अधिक स्वस्थ माना जाता है।

प्रमाप नगर का निर्धारण

यदि प्रश्न में दिए समंकों से यह बात स्पष्ट न हो कि प्रमाप नगर कौन–सा है तो ध्यान रहे, पहले नगर को ही प्रमाप नगर मान लिया जाता है।

उदाहरण– निम्नलिखित तालिका से अशोधित तथा प्रमापित मृत्यु दरें मालूम कीजिए और बताइए कौन–सा नगर अधिक स्वस्थ है।

आयु वर्ग (वर्ष)	प्रमाप नगर (A)		स्थानीय नगर (B)	
	जनसंख्या	मृतकों की संख्या	जनसंख्या	मृतकों की संख्या
5 से कम	5,000	150	7,500	135
5–25	25,000	500	20,000	500
25–55	15,000	225	20,000	400
55 से अधिक	5,000	300	2,500	125
योग	**50,000**	**1,175**	**50,000**	**1,160**

हल–

औसत मृत्यु–दरों की गणना

आयु वर्ग (वर्ष)	नगर A (प्रमापित)			नगर B स्थानीय		
	जनसंख्या	मृत्यु	मृत्यु–दर %	जनसंख्या	मृत्यु	मृत्यु–दर %
	W_1		X_1	W_2		X_2
0–5	5,000	150	30	7,500	135	18
5–25	25,000	500	20	20,000	500	25
25–55	15,000	225	15	20,000	400	20
55 से अधिक	5,000	300	60	2,500	125	50
योग	**50,000**	**1175**		**50,000**	**1160**	

A नगर की सामान्य मृत्यु–दर (GDR या CDR)

$$= \frac{(30\times 5000)+(20\times 25000)+(15\times 15000)+(60\times 5000)}{50,000}$$

$$= \frac{11,75,000}{50,000} = 23.5\%$$

लघु रीति द्वारा GDR की गणना

$$\text{A नगर की GDR} = \frac{\text{कुल मृत्यु–संख्या}}{\text{कुल जनसंख्या}} \times 1000$$

$$= \frac{1175}{50,000} \times 1000 = 23.5\%$$

B नगर की सामान्य मृत्यु–दर (GDR या CDR)

$$= \frac{\text{कुल मृत्यु–संख्या}}{\text{कुल जनसंख्या}} \times 1000$$

$$= \frac{1160}{50,000} \times 1000 = 23.2\%$$

सामान्य मृत्यु–दरों के आधार पर दोनों नगरों की तुलना करना उपयुक्त नहीं है क्योंकि दोनों नगरों में भार (वर्गानुसार जनसंख्या) अलग–अलग हैं। उचित तुलना के लिए भारों का समान होना जरूरी है। अतः B नगर की प्रमापित मृत्यु–दर ज्ञात की जाएगी, जिसमें नगर A की जनसंख्या को भार माना जाएगा।

नगर B की प्रमापित मृत्यु दर (SDR)

$$= \frac{(18 \times 5000) + (25 \times 25000) + (20 \times 15000) + (50 \times 5000)}{50,000}$$

$$= \frac{12,65,000}{50,000} = 25.3\%$$

नगर A की GDR=23.5%, नगर B की SDR= 25.3%

अतः दोनों नगरों की तुलना से यह स्पष्ट है कि नगर A अधिक स्वस्थ है क्योंकि उसकी औसत मृत्यु–दर कम है।

(ब) माध्यिका (Median)

किसी समंक श्रेणी को आरोही (Ascending – बढ़ते हुए) या अवरोही (Descending–घटते हुए) क्रम में व्यवस्थित करने पर उस श्रेणी के मध्य में जो मूल्य आता है, उसे माध्यिका कहते हैं। अर्थात माध्यिका स्थिति का माध्य (Average of Position) है। कौनर के शब्दों में ''माध्यिका, समंक श्रेणी का वह चर–मूल्य है, जो समूह को दो बराबर भागों में इस प्रकार बांटता है कि एक भाग में सारे मूल्य माध्यिका से अधिक और दूसरे भाग में उससे कम हों।''

उदाहरण के लिए, यदि पांच व्यक्तियों की आय 5,000, 5,200, 5,500, 5,600, 5,800 है तो माध्यिका 5,500 होगा अर्थात दो व्यक्ति ऐसे हैं, जिनकी आय 5,500 रुपये से कम है और दो व्यक्ति ऐसे हैं, जिनकी आय 5,500 रुपये से अधिक। इस प्रकार माध्यिका, श्रेणी के बिल्कुल बीच में स्थित होता है और यह मूल्य श्रेणी को दो बराबर भागों में बांट देता है। माध्यिका से पहले तथा बाद की आवृत्तियां सदा समान रहती

टिप्पणी

हैं। यदि श्रेणी के मदों की संख्या सम या युग्म हैं तो उसमें कोई भी मूल्य बीच में नहीं होगा। ऐसी स्थिति में माध्यिका निकालने के लिए बीच के दो मूल्यों का औसत निकाल लेते हैं। उदाहरणार्थ, यदि 6 व्यक्तियों की आय 5,000, 5,200, 5,500, 5,700, 5,800 तथा 6,500 रुपये है तो माध्यिका 5,500 और 5,700 के बीच अर्थात 5,600 होगा।

माध्यिका का निर्धारण–व्यक्तिगत श्रेणी में

व्यक्ति मूल्यों में माध्यिका ज्ञात करने के लिए निम्न क्रियाएं की जाती हैं :

1. सर्वप्रथम, दिए हुए मूल्यों को आरोही या अवरोही क्रम में व्यवस्थित (arrange) किया जाता है। दोनों क्रमों के अनुसार केंद्र बिंदु एक ही होता है। मूल्यों की क्रम संख्याएं (Serial numbers) भी साथ–साथ लिख देनी चाहिए।
2. मूल्यों में क्रमबद्ध करने के पश्चात निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$M = Size\ of\ \frac{N+1}{2} th\ item$$

जहां M = माध्यिका (Median) N = मदों के संख्या

उदाहरण– 7 कर्मचारियों को दिया हुआ वेतन इस प्रकार हैं –

क्रम संख्या	वेतन आरोही क्रम में व्यवस्थित	क्रम संख्या	वेतन आरोही क्रम में व्यवस्थित
1	5,000	5	6,800
2	5,500	6	6,900
3	6,400	7	7,000
4	6,600		

हल–

$$M = Size\ of\ \frac{N+1}{2} th\ item = \frac{7+1}{2} = 4th\ item$$

चौथे मद का मूल्य = 6,600

अर्थात माध्यिका का मूल्य = 6,600 रु.

विच्छिन्न श्रेणी में माध्यिका का निर्धारण

विच्छिन्न आवृत्ति वितरण में माध्यिका ज्ञात करने की विधि निम्नलिखित है–

1. सर्वप्रथम, दिए गए मूल्यों को आरोही या अवरोही क्रम में व्यवस्थित किया जाता है।
2. संचयी आवृत्तियां (Cumulative Frequencies) निकालकर श्रेणी को संचयी आवृत्ति माला में बदल लिया जाता है।
3. निम्न सूत्र द्वारा माध्यिका की क्रम संख्या ज्ञात कर ली जाती है।

$$M = Size\ of\ \frac{N+1}{2} th\ item$$ जहां N = आवृत्तियों का योग

4. माध्यिका की क्रम–संख्या का मूल्य, संचयी आवृत्ति की सहायता से ज्ञात कर लिया जाता है। जिस संचयी आवृत्ति में यह क्रम–संख्या प्रथम बार सम्मिलित होती है, उसका मूल्य ही माध्यिका होता है।

उदाहरण– निम्न समंकों से माध्यिका ज्ञात कीजिए–

आयु	20	21	22	23	24	25	26	27	28
कर्मचारियों की संख्या	8	10	11	16	20	25	15	9	6

हल– माध्यिका का परिगणन

आयु	आवृत्ति	संचयी आवृत्तियां
20	8	8
21	10	18
22	11	29
23	16	45
24	20	65
25	25	90
26	15	105
27	9	114
28	6	120

$$M = \text{मद}\,\frac{N+1}{2}\,\text{का आकार} = \frac{120+1}{2} = 60.5\ \text{मद}$$

60.5 मद का आकार = 24 अर्थात माध्यिका आयु = 24 वर्ष।

माध्यिका का निर्धारण–अविच्छिन्न श्रेणी में

अविच्छिन्न श्रेणी में माध्यिका ज्ञात करने की प्रणाली निम्नलिखित है–

1. सर्वप्रथम, संचयी आवृत्तियां ज्ञात की जाती हैं।
2. निम्न सूत्र द्वारा केंद्रीय मद ज्ञात किया जाता है।

$$M = Size\ of\ \frac{N}{2} th\ item$$

अविच्छिन्न श्रेणी में माध्यिका $\frac{N}{2} th\ item$ का ही मूल्य होता है $\frac{N+1}{2} th\ item$ का नहीं। यद्यपि कुछ लेखकों ने अविच्छिन्न श्रेणी में $\frac{N+1}{2}$ का प्रयोग किया है लेकिन ऐसा करना ठीक प्रतीत नहीं होता क्योंकि अविच्छिन्न श्रेणी $\frac{N}{2}$ आवृत्ति वक्र के क्षेत्रफल को ठीक दो भागों में विभाजित करता है। $\frac{N+1}{2}$ नहीं।

टिप्पणी

3. जिस संचयी आवृत्ति में माध्यिका की संख्या सबसे पहली बार आती है, उससे संबंधित वर्ग को ले लिया जाता है, जिससे माध्यिका का ठीक मूल्य निकाला जाता है। इसकी निम्न व उच्च सीमाओं के अंतर्गत ही कहीं माध्यिका होगी।
4. माध्यिका वर्ग से माध्यिका का मूल्य निर्धारित करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$M = L + \frac{N/2 - c.f.}{f} \times i$$

जहां,

$L =$ माध्यिका–वर्ग की निम्न सीमा (Lower limit of median class),

$c.f =$ माध्यिका–वर्ग के पूर्व वाले वर्ग की संचयी आवृत्ति (Cumulative Frequency of the class preceding the median class),

$f =$ माध्यिका–वर्ग की आवृत्ति (Frequency of the median class),

$i =$ माध्यिका–वर्ग का वर्गांतर (Class interval of the median class),

विशेष– अविच्छिन्न श्रेणी में माध्यिका–मूल्य ज्ञात करते समय यह कल्पना की जाती है कि प्रत्येक वर्ग की इकाइयों का उसके पूरे वर्गांतर में समान रूप से वितरण हुआ है।

उदाहरण– निम्न समंकों से माध्यिका तथा भूयिष्ठक ज्ञात कीजिए–

अनुपस्थित दिनों की संख्या	विद्यार्थियों की संख्या
5 से कम	29
10 से कम	224
15 से कम	465
20 से कम	582
25 से कम	634
30 से कम	644
35 से कम	650
40 से कम	653
45 से कम	655

हल– माध्यिका का परिगणन

अनुपस्थित दिनों की संख्या	विद्यार्थियों की संख्या (f)	(c.f.)
0–5	29	29
5–10	195	224
10–15	241	465
15–20	117	582
20–25	52	634
25–30	10	644
30–35	6	650
35–40	3	653
40–45	2	655

$$M = Size\ of\ \frac{N}{2} th\ item = \frac{655}{2} = 327.5 th\ item$$

अर्थात माध्यिका–वर्ग 10–15 है।

टिप्पणी

$$M = 10 + \frac{327.5 - 224}{241} \times 5 = 10 + 2.15 = 12.15$$

माध्यिका के गुण व दोष

गुण

1. गुणात्मक तथ्यों (qualitative facts) जैसे–ईमानदारी, बुद्धिमत्ता, क्षमता आदि का माध्य ज्ञात करने के लिए माध्यिका सर्वोत्तम मानी जाती है।
2. माध्यिका को समझना और ज्ञात करना बहुत सरल है।
3. माध्यिका पर चरम मूल्यों या सीमांत मदों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
4. खुले–सिरे वाली सारणी में माध्यिका मूल्य सुगमता से ज्ञात किया जा सकता है। ऐसी सारणी में माध्यिका निकालने के लिए प्रथम वर्ग की निम्नतम सीमा तथा अंतिम वर्ग की उच्चतम सीमा निश्चित करना आवश्यक नहीं, जबकि माध्यिका निकालते समय ये सीमाएं निश्चित करनी पड़ती हैं।
5. रेखा–चित्र खींचकर माध्यिका मूल्य निर्धारित किया जा सकता है, जबकि माध्यिका में ऐसा संभव नहीं है।
6. माध्यिका एक स्पष्ट और निश्चित माध्य है, भूयिष्ठक की भांति अनिश्चित नहीं है।

दोष

1. माध्यिका में बीजगणित के गुणों का अभाव है, इसलिए उच्चतर गणितीय क्रियाओं में इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ, माध्यिका मूल्य और मदों की संख्या को गुणा करने से सभी मदों के मूल्यों का जोड़ ज्ञात नहीं किया जा सकता।
2. माध्यिका–मूल्य निर्धारित करने से पूर्व मदों को आरोही या अवरोही क्रम में अनुविन्यासित करना पड़ता है, जिसमें काफी समय लगता है।
3. अविच्छिन्न श्रेणी में माध्यिका ज्ञात करते समय मान्यता की जाती है कि प्रत्येक वर्ग में आवृत्तियां समान रूप से वितरित हैं लेकिन यह मान्यता सदैव सत्य नहीं होती।
4. माध्यिका–मूल्य निकालते समय श्रेणी के सभी मदों को समान महत्व दिया जाता है।

(स) बहुलक (Mode)

Mode शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द *Modust* से हुई है, जिसका अर्थ है–फैशन या रिवाज। सांख्यिकीय में बहुलक उस मान को कहते हैं, जो समंक माला में सबसे अधिक बार आता है अर्थात जिसकी आवृत्ति श्रेणी में सबसे अधिक हो। कुछ विद्वानों में बहुलक की परिभाषाएं निम्न प्रकार दी हैं–

टिप्पणी

जिजेक के मतानुसार, ''बहुलक वह मूल्य है, जो समूह में सबसे अधिक बार आता है और जिसके चारों ओर सबसे अधिक घनत्व वाले पदों का जमाव रहता है।''

क्रॉक्सटन एवं काउडेन के अनुसार, ''एक बंटन का बहुलक वह मूल्य है, जिसके निकट श्रेणी की इकाइयां अधिक–से–अधिक केंद्रित होती हैं। उसे श्रेणी का सर्वाधिक प्रतिरूपी या विशिष्ट मूल्य माना जा सकता है।''

उदाहरणार्थ, यदि यह कहा जाए कि किसी दुकान में बिकने वाले जूते का औसत साइज 7 है अथवा एक भारतीय की औसत ऊंचाई 160 सेंटीमीटर है अथवा रेडीमेड वस्त्रों की दुकान से बिकी कमीज के कॉलर का औसत साइज 35 सेमी. है तो इन सभी घटनाओं का तात्पर्य, ''अधिकतम इकाइयों के मूल्यों की संख्या'' से है अर्थात बहुलक से है।

बहुलक का निर्धारण

व्यक्तिगत श्रेणी में बहुलक निर्धारण– सिद्धांत रूप में एक व्यक्तिगत श्रेणी में बहुलक का निर्धारण तब तक नहीं किया जा सकता, जब तक कि उसे खंडित या अखंडित श्रेणी में न बदल लिया जाए। अतः एक व्यक्तिगत श्रेणी में बहुलक ज्ञात करने की निम्न तीन रीतियां हैं–

1. व्यक्तिगत श्रेणी को खंडित श्रेणी (Discrete sceries) में बदल कर, या
2. सतत या अखंडित श्रेणी (Continuous series) में बदल कर, अथवा
3. समांतर माध्य (Arithmetic Mean) तथा माध्यिका (Median) की सहायता से बहुलक का अनुमान लगाकर।

1. व्यक्तिगत श्रेणी को खंडित श्रेणी में बदलना– जब व्यक्तिगत श्रेणी में अनेक मूल्य दो या दो से अधिक बार पाए जाते हों तब उसे खंडित श्रेणी में बदल लेना चाहिए। फिर, निरीक्षण द्वारा अधिकतम आवृत्ति वाले मूल्य को बहुलक घोषित कर दिया जाता है।

टिप्पणी– व्यवहार में व्यक्तिगत श्रेणी में बहुलक का निर्धारण, निरीक्षण द्वारा भी कर लिया जाता हैं बशर्ते कि पदों की संख्या काफी कम हो और बहुलक पूर्णतया सुस्पष्ट हो। उदाहरण नीचे देखिए–

उदाहरण– निम्न श्रेणी का बहुलक ज्ञात कीजिए–

20 22 24 25 22 18 19 22 23 21 22

हल– निरीक्षण द्वारा स्पष्ट है कि 22 पद सबसे अधिक (3) बार आया है। अतः 22, बहुलक पद होगा। फिर, इसे खंडित श्रेणी में बदलने पर भी परिणाम यही रहेगा।

Size (x):	18	19	20	21	22	23	24	25	
Frequency (f)	1	1	1	1	4	1	1	1	$\Sigma f = 11$

अतः बहुलक (Mode) या Z =22

2. सतत या अखंडित श्रेणी में बदलना– जब किसी श्रेणी का कोई भी व्यक्तिगत मूल्य एक से अधिक बार पाया जाता है, तब व्यक्तिगत श्रेणी को खंडित श्रेणी में बदलने की प्रक्रिया बेकार सिद्ध होती है क्योंकि सभी मूल्यों की आवृत्ति समान रहने पर बहुलक का निर्धारण करना असंभव होता है। ऐसी स्थिति में व्यक्तिगत मूल्यों को अखंडित श्रेणी

में बदलकर अधिकतम आवृत्ति वाला वर्गांतर (बहुलक वर्गांतर) ज्ञात कर लेना चाहिए। फिर इस बहुलक वर्ग में से सूत्र द्वारा बहुलक–मूल्य ज्ञात किया जा सकता है। इसकी विधि आगे स्पष्ट की गई है।

3. समांतर माध्य तथा माध्यिका की सहायता से बहुलक निर्धारण– यदि किसी Ǫ fDr xr Jskhesl ekaj ek/; ($\overline{X}$), माध्यिका (M) तथा बहुलक (Z) तीनों ही ज्ञात करने हो तो इन तीनों के पारस्परिक संबंध पर आधारित निम्न सूत्र द्वारा ही बहुलक मूल्य का अनुमान लगाया जाना चाहिए–

$$\left(\overline{X}-Z\right)-3\left(\overline{X}-M\right) \text{ या}$$

$$Z = 3M - 2\overline{X}$$

विशेष– इस सूत्र का प्रयोग केवल असाधारण स्थिति में अथवा परीक्षक द्वारा पूछने पर ही किया जाना चाहिए। उदाहरण नीचे देखिए।

उदाहरण– निम्न समंकों से माध्य ($\overline{X}$), माध्यिका (M) तथा बहुलक (Z) = ($3M-2\overline{X}$) ज्ञात कीजिए।

18.3 20.6 19.3 22.4 20.2 18.8 19.7 20.0

हल– माना इस श्रेणी का माध्य = 19.91 और माध्यिका = 19.85 ज्ञात किया गया है। अतः अब बहुलक का मान अग्रलिखित होगा–

$$Z = 3M - 2\overline{X} = (3\times 19.85)-(2\times 19.91) = 59.55 - 39.82 = 19.73$$

खंडित श्रेणी में बहुलक का निर्धारण (Mode in Discrete Series)

खंडित श्रेणी में बहुलक निर्धारण की दो रीतियां हैं– अ. निरीक्षण रीति तथा ब. समूहन रीति।

(अ) निरीक्षण रीति– बहुलक निर्धारण की निरीक्षण रीति का प्रयोग केवल तभी करना चाहिए जब आवृत्ति–बंटन निम्न शर्तें पूरी करता हो–

1. श्रेणी की आवृत्तियां नियमित हों अर्थात आवृत्तियां पहले बढ़ें फिर अधिकतम हों और उसके बाद गिरती हुई हों।
   (ii) श्रेणी में अधिकतम आवृत्ति, केवल एक–ही हो और वह लगभग केंद्र में हो।
   (iii) अधिकतम आवृत्ति से पहले और बाद की आवृत्तियों के योग में अधिक अंतर न हो।

उदाहरण– निम्नलिखित श्रेणी से बहुलक आय ज्ञात कीजिए–

Daily Incomes Rs. (x)	10	15	20	25	30	35	40
No. of Persons (f)	20	32	40	65	48	28	16

हल– उपरोक्त श्रेणी में आवृत्तियां नियमित हैं। अतः निरीक्षण द्वारा बहुलक ज्ञात किया जाएगा। अधिकतम आवृत्ति 65 है, जिसका मूल्य 25 रु. है। अतः बहुलक आय या $Z = 25$ रु.

विशेष टिप्पणी– ध्यान रहे, यह आवश्यक नहीं कि सभी स्थितियों में अधिकतम आवृत्ति, संकेंद्रण या घनत्व को दर्शाती हो। इसलिए आवृत्ति–संकेंद्रण के सटीक बिंदु की जानकारी (खंडित या अखंडित दोनों श्रेणियों में) समूहन रीति द्वारा कर लेनी चाहिए। दूसरी बात, चूंकि बहुलक अपने अड़ोस–पड़ोस की आवृत्तियों से बेहद प्रभावित होता है इसलिए अधिकतम संकेंद्रण के वास्तविक बिंदु की जानकारी प्राप्त करना अत्यावश्यक है।

(ब) समूहन रीति– समूहन रीति का प्रयोग उस समय किया जाता है, जब समंकमाला की आवृत्तियां अनियमित हों, क्योंकि ऐसी स्थिति में अधिकतम आवृत्ति का पता नहीं लग पाता। आवृत्तियां निम्न दशाओं में अनियमित मानी जाती हैं–

(i) जब अधिकतम आवृत्ति या अधिकतम आवृत्ति संकेंद्रण, दो या दो से अधिक स्थानों पर हो।

(ii) जब अधिकतम आवृत्ति केंद्र में न होकर श्रेणी के एकदम शुरू में या फिर अंत में हो।

(iii) जब आवृत्तियां अनियमित रूप से कभी बढ़ती और कभी घटती हुई हों।

(iv) अधिकतम आवृत्ति के अगल–बगल की आवृत्तियां बहुत कम हों परंतु किसी अन्य स्थान पर आवृत्तियों का जमाव अत्यधिक हो। अनियमित आवृत्तियों का एक उदाहरण नीचे दिया गया है–

उदाहरण– नीचे दिए समंकों से कॉलर का बहुलक–माप निर्धारित कीजिए–

कॉलर माप सेमी (x)	30	31	32	33	34	35	36	37
व्यक्तियों की संख्या (F)	2	9	3	4	8	7	8	5

हल– यद्यपि निरीक्षण से यही लगता है कि 31 पद बहुलक होगा क्योंकि इसकी आवृत्ति (9) अधिकतम है। परंतु यह निष्कर्ष गलत है क्योंकि आवृत्तियों का वितरण अनियमित हैं। पहली बात तो यह है कि आवृत्ति के बढ़ने–घटने का क्रम बेतरतीब है। दूसरा, अधिकतम आवृत्ति केंद्र में नहीं है और उसकी अगल–बगल की आवृत्तियां भी बहुत छोटी हैं। तीसरा, आवृत्तियों का जमाव श्रेणी के अंतिम भाग में अधिक है। अतः यहां बहुलक का निर्धारण समूहन रीति द्वारा किया जाएगा।

समूहन रीति द्वारा बहुलक–निर्धारण

Collar Size X	आवृत्ति Frequency (i)	(ii)	(iii)	(iv)	(v)	(vi)	अधिकतम आवृत्तियों की संख्या No. of Max Frequency	
30	2	11		14				0
31	9		12		16		|	1
32	3	7				15		0
33	4		12	**19**			|	1
34	8	15			**23**		|||	3
35	7		**15**			**20**	|||| (crossed)	5
36	8	**13**					|||	3
37	5						|	1

समूहन की प्रक्रिया – समूहन क्रिया के लिए एक सारणी बनाई जाती है, जिसमें चर–मूल्यों के अलावा आवृत्तियों के प्रयोग के लिए 6 कॉलम होते हैं। यहां उल्लेखनीय यह है कि समूहन–क्रिया करते समय केवल आवृत्तियों का प्रयोग किया जाता है, पद–मूल्यों का नहीं। क्रिया विधि इस प्रकार है–

टिप्पणी

पहले खाने में, प्रश्न में दी हुई आवृत्तियां लिखी जाती हैं।

दूसरे खाने में, शुरू से दो–दो आवृत्तियों को जोड़कर उनके योग लिखे जाते हैं, जैसे– 2+9=11, 3+4=7 और

चौथे खाने में, बिना कोई आवृत्ति छोड़े अर्थात शुरू से ही, तीन–तीन आवृत्तियों के योग लिखे जाते हैं, जैसे–2+9+3=14 तथा 4+8+7=19, आदि............

पांचवे खाने में, पहली आवृत्ति छोड़कर तीन–तीन आवृत्तियों के योग लिखे जाते हैं, जैसे–9+3+4=16, 8+7+8=23 तथा

छठे खाने में, शुरू की दो आवृत्तियां छोड़कर, तीन–तीन आवृत्तियों के योग लिखे जाते हैं, जैसे–3+4+8=15, 7+8+5=20, आदि........।

विशेष 1. इस क्रिया के बाद प्रत्येक कॉलम की अधिकतम आवृत्ति या आवृत्ति समूह को चिह्नित या रेखांकित कर दिया जाता है। ऐसा करने से विश्लेषण सारणी बनाने में काफी सुविधा हो जाती है।

2. समूहन में न आ सकने वाली आवृत्ति को छोड़ दिया जाता है। जैसे ऊपर दिए उदाहरण के कॉलम 3. में आवृत्ति 5 को और कॉलम 4. में आवृत्ति 8 व 5 को छोड़ दिया गया है।

विशेष– सिद्धांत रूप में यदि आवश्यक हो तो आवृत्तियों को 4–4 तथा 5–5 के समूह में भी जोड़ा जा सकता है। परंतु आमतौर पर 3–3 तक के समूहन से ही बहुलक का निर्धारण हो जाता है। अतः और अधिक समूहन करने के बजाए घनत्व–परीक्षण का प्रयोग कर लेना चाहिए।

विश्लेषण सारणी– विश्लेषण सारणी की तुलना हम वोटों की गिनती करने की प्रक्रिया से कर सकते हैं। जिस प्रकार चुनाव में मतदान के बाद वोटों की गिनती की जाती है, ठीक उसी प्रकार आवृत्तियों का समूहन करने के बाद विश्लेषण सारणी बनाकर हम पता लगाते हैं कि वास्तव में कौन–सा पद मूल्य, बहुलक होने का दावेदार है अर्थात अधिक लोकप्रिय है।

विश्लेषण–सारणी

कॉलम संख्या	पद–मूल्य							
	30	**31**	**32**	**33**	**34**	**35**	**36**	**37**
(i)		✓						
(ii)					✓	✓		
(iii)						✓	✓	
(iv)				✓	✓	✓		
(v)					✓	✓	✓	
(vi)						✓	✓	✓
Total	0	1	0	1	3	5	3	1

टिप्पणी

विश्लेषण प्रक्रिया– विश्लेषण सारणी में सबसे पहले, समूहन सारणी के विभिन्न कॉलमों की संख्या क्रमानुसार लिख दी जाती है। इन कॉलम–संख्याओं को आप मतपत्र समझ लीजिए। विश्लेषण सारणी के क्षैतिज भाग में पद–मूल्य लिख दिए जाते हैं। इन्हें आप ''प्रत्याशी'' या ''उम्मीदवार'' समझ लीजिए। अब समूहन तालिका का पहला कॉलम देखिए। इसमें अधिकतम आवृत्ति 9 है। विश्लेषण सारणी में कॉलम (i) के सामने और 31 के नीचे एक टेलीबार या (√) का निशान लगाकर दिखाया गया है। स्पष्ट है कि पहला वोट 31 पद मूल्य (उम्मीदवार) को मिला है। अब दूसरा कॉलम लीजिए। इसमें अधिकतम आवृत्ति–समूह 15 है, जो 8 व 7 का योग है। यह बताता है कि 34 और 35 दोनों बहुलक हैं। अतः इसके कॉलम (ii) के सामने 34 और 35 दोनों के नीचे (√) लगाकर दिखाया गया है। यही क्रिया अन्य कॉलमों के लिए भी की जाएगी।

अंत में जिस पद–मूल्य के सामने अधिकतम चिह्न होते हैं अर्थात जिसको सबसे अधिक वोट मिलते हैं, उस मूल्य को ही बहुलक घोषित कर दिया जाता है। विश्लेषण सारणी से स्पष्ट है कि बहुलक मूल्य 31 नहीं, बल्कि 35 है। इसका कारण यह है कि 31 की तुलना में 35 मूल्य के आस–पास आवृत्तियों का जमाव अधिक है।

अतः बहुलक आकार (Modal Size) = 35 सेमी.

अखंडित या सतत श्रेणी में बहुलक का निर्धारण– अखंडित श्रेणी में बहुलक ज्ञात करने के लिए सबसे पहले बहुलक–वर्ग का पता लगाया जाता है। इसकी दो रीतियां हैं। यदि आवृत्तियां नियमित हैं तो निरीक्षण द्वारा और यदि आवृत्तियां अनियमित हैं तो फिर समूहन रीति द्वारा बहुलक वर्ग का निर्धारण कर लिया जाता है। इसके बाद बहुलक के मूल्य की निम्न सूत्र की सहायता से आंतरिक गणना कर ली जाती है (जो बहुलक वर्ग की सीमाओं के अंदर ही आना चाहिए)–

$$Z = l_1 + \frac{f_1 - f_o}{2f_1 - f_o - f_2} \times i$$

या

$$Z = l_1 + \frac{f_1 - f_o}{2f_1 - f_o - f_2} \times l_2 - l_1$$

$Z =$ बहुलक मूल्य (Value of the mode)

$l_1 =$ बहुलक–वर्ग की निचली सीमा (Lower limit of the modal class)

$f_1 =$ बहुलक–वर्ग की आवृत्ति (Frequency of the modal class)

$f_o =$ बहुलक–वर्ग से तुरंत पहले वाले वर्ग अर्थात उससे लघुतर वर्ग की आवृत्ति (Frequency of the pre-modal class, i.e., the class just lower than the modal class)

$f_2 =$ बहुलक–वर्ग के तुरंत बाद वाले अर्थात उससे उच्चतर वर्ग की आवृत्ति (Frequency of the post-modal or succeeding class, i.e. the class just higher than the modal class)

$i =$ बहुलक वर्ग का विस्तार (Magnitude of the modal class or l_2-l_1)

टिप्पणी

सूत्र का आधार

यह सूत्र ऊपर बताई जा चुकी इस मान्यता पर आधारित है कि बहुलक अपने निकटवर्ती वर्गों की आवृत्तियों से प्रभावित होता है। अतः यदि पिछले वर्ग की आवृत्ति, अगले वर्ग की आवृत्ति से बड़ी है तो बहुलक का मूल्य (Z) बहुलक–वर्ग की निचली सीमा (l_1) के अधिक निकट होगा। इसके विपरीत, यदि अगले वर्ग की आवृत्ति पिछले वर्ग की आवृत्ति से बड़ी है तो फिर बहुलक ऊपरी सीमा (l_2) के निकट होगा।

सूत्र का दूसरा रूप– आवृत्तियों के अंतर के रूप में यह सूत्र इस प्रकार भी लिखा जाता है–

निचली (अधर) सीमा में जोड़कर

$$Z = l_1 + \frac{\Delta_1}{\Delta_1 + \Delta_2} \times i$$

ऊपरी (अपर) सीमा में घटाकर

$$Z = l_1 + \frac{\Delta_2}{\Delta_1 + \Delta_2} \times i$$

यहां $\Delta_1 = f_1 - f_o$ तथा $\Delta_2 = f_1 - f_2$

l_1 तथा l_2= बहुलक–वर्ग की क्रमशः निचली तथा ऊपरी सीमा

पहला सूत्र सबसे सरल है। सदैव पहले सूत्र का ही प्रयोग करना चाहिए।

उदाहरण– निम्न सारणी से बहुलक ज्ञात कीजिए–

Class Interval	0-5	5-10	10-15	15-20	20-25	25-30	30-35	35-40	40-45
Frequency	20	24	32	28	20	16	34	10	8

हल– आवृत्तियां अनियमित होने के कारण बहुलक वर्ग का निर्धारण, समूहन रीति द्वारा किया जाएगा–

समूहन रीति द्वारा बहुलक–वर्ग का निर्धारण

वर्ग (Class)	आवृत्ति (Frequency)						अधिकतम आवृत्ति वाले वर्ग (Classes with Highest Frequencies)	
	आवृत्ति	दो–दो जोड़ (2–2)		तीन–तीन जोड़ (3–3)				
	(i)	(ii)	(iii)	(iv)	(v)	(vi)	Analysis Table	
0-15	20	44		**76**			I	1
5-10	24		**56**		**84**	**80**	II	3
10-15	32	**60**					~~IIII~~	5
15-20	28		48	64			III	3
20-25	20	36					I	1
25-30	16		50		70	60		0
30-35	34	44		52				1
35-40	10		18					0
40-45	8							0

उपर्युक्त सारणी से पता चलता है कि 10–15 बहुलक–वर्ग है अर्थात बहुलक इन दो सीमाओं के बीच स्थित है। अतः आंतरिक गणना की क्रिया के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाएगा–

$$M_o \text{ or } Z = l_1 + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times i \qquad [l_1 = 10, f_o = 24, f_1 = 32, f_2 = 28, i = 5]$$

सूत्र में मूल्य निर्धारित करने पर

$$z = 10 + \frac{32 - 24}{2 \times 32 - 24 - 28} \times 5 = 10 + \frac{8 \times 5}{64 - 52} = 10 + 3.33 = 13.33$$

टिप्पणी

दूसरे सूत्र का प्रयोग करने पर –

$$Z = l_1 + \frac{\Delta_1}{\Delta_1 + \Delta_2} \times i \qquad\qquad Z = l_1 + \frac{\Delta_2}{\Delta_1 + \Delta_2} \times i$$

$l_1 = 10, \Delta_1 = f_1 - f_o = 32 - 24 = 8, i = 5 \qquad \Delta_2 = f_1 - f_2 = 32 - 28 = 4, i = 5$

$$z = 10 + \frac{8}{8+4} \times 5 = 10 + 3.33 \qquad\qquad Z = 15 - \frac{4}{8+4} \times 5 = 15 - 1.67$$

$$\therefore z = 13.33 \qquad\qquad \therefore z = 13.33$$

बहुलक संबंधी कुछ महत्वपूर्ण तथ्य

1. **वैकल्पिक सूत्र का प्रयोग**– जब कभी बहुलक–वर्ग की आवृत्ति (f_1) की तुलना में, उससे पहले वाले तथा बाद वाले अर्थात दोनों वर्गों की आवृत्तियां (f_o and f_2) बड़ी हों या दोनों में से कोई एक भी बड़ी हो तो सामान्य सूत्र के स्थान पर नीचे दिए वैकल्पिक सूत्र का प्रयोग करना चाहिए, अन्यथा उत्तर बहुलक वर्ग के बाहर आएगा, जो कि गलत है–

$$Z = l_1 + \frac{f_2}{f_0 + f_2} \times i$$

2. **घनत्व परीक्षण**– कभी–कभी समूहन के बाद भी यह देखने में आता है कि दो या दो से अधिक वर्गों की आवृत्तियां, समान–रूप से अधिकतम बार पायी जाती हैं। ऐसी स्थिति में उनमें से बहुलक वर्ग का निर्णय लेने के लिए उन वर्गों की ओर उनके निकटवर्ती (पिछले व अगले) वर्गों की आवृत्तियां जोड़कर उन जोड़ों की तुलना की जाती है। जिस वर्ग–समूह का जोड़ अधिक होता है, वही बहुलक वर्ग मान लिया जाता है। हां, यदि उनका जोड़ भी बराबर आ जाए तो फिर उसे द्वि–बहुलक श्रेणी घोषित कर देना चाहिए अर्थात उस श्रेणी का बहुलक मूल्य अनिश्चित तथा अनिर्धारित है।
3. **समावेशी वर्गांतर**– यदि वर्गांतर समावेशी आधार पर दिए गए हैं तो सूत्र वही रहता है परंतु बहुलक ज्ञात करने से पहले अर्थात आंतरिक गणना करते समय उन्हें अपवर्जी श्रेणी में बदल लेना चाहिए। ऐसा न करने पर उत्तर गलत माना जाएगा।
4. **संचयी आवृत्ति श्रेणी या बंटन में बहुलक**– यदि श्रेणी संचयी आवृत्ति बंटन के आधार पर दी हुई है तो बहुलक निकालने के लिए पहले उसे सामान्य आवृत्ति बंटन में बदल लेना चाहिए।
5. **श्रेणी या वर्गांतरों का अवरोही क्रम**– यदि श्रेणी आरोही के स्थान पर अवरोही क्रम में दी गयी है अर्थात ऊपर से नीचे की ओर घटती हुई है तो ऐसी स्थिति में हमारे पास निम्न दो विकल्प हैं–

   (क) **सामान्य सूत्र का प्रयोग**– सामान्य सूत्र का प्रयोग करने की स्थिति में f_o का मान बहुलक वर्ग से निचले वर्ग की आवृत्ति f_2 बहुल वर्ग से उच्चतर वर्ग की आवृत्ति मानी जाएगी।

(ख) **संशोधित सूत्र का प्रयोग**– ऐसी स्थिति में सामान्य सूत्र में थोड़ा परिवर्तन करना पड़ता है अर्थात (l_1+) के स्थान पर (l_2-) का प्रयोग किया जाता है। परंतु ध्यान रहे f_0= पिछले–वर्ग की आवृत्ति और f_2= अगले वर्ग की आवृत्ति मानी जाएगी। सूत्र व उदाहरण नीचे देखिए–

आरोही वर्गांतर	अवरोही वर्गांतर
$Z = l_1 + \frac{f_1 - f_o}{2f_1 - f_o - f_2} \times i$	$Z = l_2 + \frac{f_1 - f_o}{2f_1 - f_o - f_2} \times i$

6. **जब माध्य–मूल्य दिए हों**– कभी–कभी प्रश्न में वर्गांतरों के स्थान पर उनके माध्य–मूल्य दिए होते हैं। चूंकि अखंडित श्रेणी में बहुलक तथा माध्यिका निकालने के लिए वर्गांतरों के लिए वर्गांतरों की दोनों सीमाओं (l_1 तथा l_2) की जानकारी होना आवश्यक है, अतः ऐसी स्थिति में प्रश्न हल करने से पूर्व सूत्र द्वारा वर्गांतरों की ऊपरी तथा निचली सीमाएं ज्ञात कर लेनी चाहिए।
7. **असमान वर्गांतर वाली श्रेणी**– यदि श्रेणी में वर्ग–विस्तार असमान है तो प्रश्न हल करने से पूर्व उसे समान कर लेना चाहिए क्योंकि बहुलक का सूत्र समान–वर्गांतर की मान्यता पर आधारित है।

   महत्वपूर्ण टिप्पणी– यदि प्रश्न में बहुलक–वर्ग और उसके निकटवर्ती दोनों वर्गों (अर्थात बहुलक हेतु आवश्यक तीन वर्गों) का वर्ग विस्तार समान है तो शेष असमान–वर्गों की चिंता किए बिना बहुलक ज्ञात कर लेना चाहिए।
8. **अज्ञात आवृत्तियों का निर्धारण**– यदि किसी सतत आवृत्ति श्रेणी का बहुलक तथा कुल आवृत्तियों का योग ज्ञात हो तो कुछ अज्ञात आवृत्तियों का निर्धारण सूत्र की सहायता से किया जा सकता है।

बहुलक के गुण

1. **श्रेणी के सभी मूल्यों की जानकारी आवश्यक नहीं**– बहुलक के लिए श्रेणी के सभी पद–मूल्यों की जानकारी भी आवश्यक नहीं है। एक नियमित आवृत्ति–श्रेणी में बहुलक वर्ग और उसके निकटवर्ती वर्गों की आवृत्तियों के आधार पर ही बहुलक ज्ञात किया जा सकता है।
2. **सर्वोत्तम प्रतिनिधित्व**– चूंकि बहुलक श्रेणी का वह मूल्य होता है, जिसकी पुनरावृत्ति सबसे अधिक बार होती है, अतः इस आधार पर बहुलक श्रेणी का सर्वोत्तम प्रतिनिधित्व करने वाला माध्य माना जाता है। फिर, बहुलक का मूल्य, श्रेणी में दिए हुए पद–मूल्यों में से ही कोई एक होता है, जबकि अन्य माध्यों पर यह बात लागू नहीं होती।
3. **बिंदुरेखीय रीति द्वारा निर्धारण**– बिंदुरेखीय रीति द्वारा भी बहुलक का निर्धारण आसानी से किया जा सकता है।
4. **चरम मूल्यों से प्रभावित न होना**– बहुलक पर श्रेणी के चरम मूल्यों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि अधिकतम आवृत्ति संकेंद्रण प्रायः श्रेणी के मध्य में होता है न कि चरम सीमाओं के आस–पास।

5. **लोकप्रियता**– बहुल एक ऐसा माध्य है, जिसका दैनिक जीवन में काफी प्रयोग किया जाता है, जैसे–जूते, सिले–सिलाए कपड़े आदि। औसत आकार से हमारा अभिप्राय बहुलक के आकार से होता है।
6. **आगणन में सरलता तथा बुद्धिगम्य**– बहुलक का सबसे बड़ा गुण इसकी सरलता है। यह माध्य अधिकतर निरीक्षण से ही ज्ञात हो जाता है फिर, इसका निर्धारण करने में गणितीय परिकलन की भी आवश्यकता नहीं होती।

बहुलक के दोष

1. **अवास्तविक तथा अप्रतिनिधिक**– बहुलक का एक अन्य दोष, इसके द्वारा श्रेणी का सही प्रतिनिधित्व न कर पाना है। उदाहरण के तौर पर यदि 200 व्यक्तियों में से 10 लोगों की आय 100 रुपये है और शेष 190 लोगों की आय 100 रुपये से कम है तो बहुलक आय 100 रुपये होगी। परंतु यह बहुलक आय पूरे समूह का प्रतिनिधित्व नहीं करती क्योंकि 200 व्यक्तियों में से यह केवल 10 व्यक्तियों की आय है, जबकि उनसे 19 गुणा (190) व्यक्तियों की आय 100 रुपये से कम है। अतः स्पष्ट है कि कुछ परिस्थितियों में बहुलक से भ्रमात्मक निष्कर्ष प्राप्त होते हैं।
2. **अस्पष्ट अनिश्चित तथा अनिर्धारित**– बहुलक का सबसे बड़ा दोष दूसरी अस्पष्टता एवं अनिश्चितता है। जब श्रेणी के सभी पदों की आवृत्तियां समान हों, तब बहुलक का निर्धारण नहीं किया जा सकता। कभी–कभी एक श्रेणी में दो या दो से अधिक बहुलक भी हो सकते हैं जो कि हास्यप्रद जान पड़ता है।
3. **बीजगणितीय विवेचन का संभव न होना**– चूंकि बहुलक श्रेणी के सभी पदों पर आधारित नहीं होता इसलिए इस माध्य का बीजगणित विवेचन संभव नहीं है। वास्तव में, इस दोष के कारण ही बहुलक का अन्य सांख्यिकीय रीतियों तथा सूत्रों में बहुत कम प्रयोग हो पाता है।
4. **जटिलता**– जब निरीक्षण द्वारा बहुलक का पता नहीं चल पाता तो फिर उसके लिए समूहन व आंतरिक गणना की प्रक्रिया काफी जटिल सिद्ध होती है।
5. **चरम मूल्यों की उपेक्षा**– यह माध्य चरम मूल्यों को कोई महत्व नहीं देता जो कि गणितीय दृष्टि से उचित नहीं है।

बहुलक के एक आदर्श माध्य के आवश्यक गुणों में से कोई भी गुण नहीं है। ऊपर बताए गए अधिकांश गुण ही इसके प्रमुख अवगुण हैं। सच तो यह है कि बहुलक, माध्य–परिवार का सबसे बिगड़ा हुआ सदस्य है परंतु इसके बावजूद एक अत्यधिक विषम बंटन या गैर–प्रसामान्य बंटन की स्थिति में यह केंद्रीय प्रवृत्ति का सर्वाधिक अर्थपूर्ण माप है, जो अधिकतम संकेंद्रण के बिंदु को सर्वोत्तम रूप में इंगित करता है।

3.4.3 विचलनशीलता की माप : मानक/चतुर्थक विचलन

विचलनशीलता की माप द्वारा एक ऐसा मान ज्ञात किया जाता है, जो समंकमाला का प्रतिनिधित्व करता है। इस मान का बहुत महत्व है लेकिन यह समंकमाला की सब विशेषताओं को स्पष्ट करने में असमर्थ है। माध्य द्वारा यह पता नहीं लग पाता कि श्रेणी

टिप्पणी

के विभिन्न व्यक्तिगत मानों का इससे औसत अंतर क्या है? और श्रेणी की रचना तथा स्वरूप क्या है?

समंक श्रेणी के बारे में यथेष्ठ ज्ञान प्राप्त करने के लिए, न केवल उसका माध्य जानना आवश्यक है बल्कि विभिन्न व्यक्तिगत मानों का उस माध्य से औसत अंतर और श्रेणी रचना तथा स्वरूप, आदि के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करना भी परमावश्यक है, अर्थात यह जानना आवश्यक है कि श्रेणी का प्रत्येक मद, माध्यम से कितनी दूरी पर या कितना बड़ा या छोटा है। विचलन की दूरी, फैलाव, बिखराव या विस्तार को विचलनशीलता कहते हैं।

विचलनशीलता की मापों का अर्थ है— विचलनशीलता के मापन की विधियां। विचलनशीलता के मापों की सहायता से एक समूह की सजातीय और विषमजातीयता का मापन किया जाता है। एक समूह में विचलनशीलता, जितनी अधिक होती है, समूह में विषमजातीयता उतनी ही अधिक पाई जाती है तथा समूह में सजातीयता उतनी ही अधिक मात्रा में होती है।

विभिन्न मानसिक गुणों की दृष्टि से यदि एक छात्रों का समूह सजातीय है तो ऐसे समूह को शिक्षित और प्रशिक्षित करना अधिक सरल होता है। दूसरी ओर विषमाजतीय समूह के बालकों को शिक्षा देना कठिन होता है। क्योंकि रुचि, आयु तथा अन्य मानसिक योग्यताओं की दृष्टि से उनमें पर्याप्त अंतर होता है।

विक्षेपण के मापक

विक्षेपण के मापन अर्थात विक्षेपण को उस सांख्यिकी के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसमें केंद्रीय प्रवृत्ति के मापक के चारों ओर वस्तुओं के छितराव/बिखराव के विस्तार को दर्शाता है।

विक्षेपण के मापक को 'निरपेक्ष रूप' में अथवा 'सापेक्ष रूप' में प्रदर्शित किया जा सकता है। इसे तब निरपेक्ष रूप में कहा जाता है, जब यह वह वास्तविक परिमाण बताता है, जिसके द्वारा वस्तु का मान केंद्रीय प्रवृत्ति के मापक से औसत विचलित होता है। निरपेक्ष मापकों को ठोस इकाइयों में प्रदर्शित किया जाता है, मुख्यतः उन इकाइयों में, जिनमें आंकड़ों को प्रदर्शित किया जा चुका है, जैसे— रुपयों, सेंटीमीटर्स, किलोमीटर्स इत्यादि में; इनका प्रयोग आवृत्ति वितरण का विवेचन करने में भी किया जाता है।

विक्षेपण के सापेक्ष मापक की गणना, गुणवत्ता द्वारा इस संदर्भ में निरपेक्ष मापकों को भाग देते हुए की जाती है, जिसमें निरपेक्ष विचलन की गणना कर ली गयी है। यह अपने आप में शुद्ध संख्या है एवं इसे प्रायः प्रतिशत रूप में प्रदर्शित किया जाता है। दो अथवा अधिक वितरणों के मध्य तुलनाएं करने के लिए सापेक्ष मापकों का प्रयोग किया जाता है।

विक्षेपण के मापक में वे समस्त अभिलक्षण होने चाहिए, जिन्हें केंद्रीय प्रवृत्ति के मापक के लिए आवश्यक माना जाता है, जैसे—

(1) यह सभी अवलोकनों पर आधारित हो।

(2) इसे सहजता से समझा जा सके।

(3) इसकी गणना स्पष्टतया सरलता से की जाए।

(4) इस पर प्रतिदर्शन के उतार–चढ़ावों का जितना हो सके, कम प्रभाव पड़े।

(5) इसे बीजगणितीय उपचार में प्रयोग किया जा सके।

विचलनशीलता के मापों का प्रकार

शिक्षा के क्षेत्र में प्रायः निम्नलिखित विचलनशीलता के मापों का उपयोग किया जाता है– (1) परास, (2) मध्यमान विचलन, (3) चतुर्थक विचलन, (4) मानक विचलन, एवं (5) विचलन गुणांक।

परास

एक अंक वितरण की विचलनशीलता का माप परास है। परास का अर्थ उस मान से है, जो एक अंक वितरण के उच्चतम प्राप्तांक को न्यूनतम प्राप्तांक से घटाने पर प्राप्त होता है। इसका सूत्र निम्न है– परास = उच्चतम प्राप्तांक – न्यूनतम प्राप्तांक

प्रकीर्णन का सबसे सरल मापक वितरण की परास है। किसी शृंखला की परास उस शृंखला के उच्चतम व न्यूनतम मानों के मध्य का अंतर है। यदि एक परीक्षा में 248 शिक्षार्थियों द्वारा प्राप्त अंकों को आरोही क्रम में विन्यस्त किया जाये तो परास उच्चतम व न्यूनतम अंकों के मध्य के अंतर के समतुल्य होगी।

आवृत्ति वितरण में परास को वितरण के निम्नतम छोर के वर्ग की निम्नतम सीमा एवं वितरण के ऊपरी छोर के वर्ग की उच्चतम सीमा के मध्य अंतर के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

निम्न तालिका में प्रदर्शित चार कार्यशालाओं में श्रमिकों के साप्ताहिक अर्जन (कमायी) के आंकड़ों का विचार करें–

चार कार्यशालाओं में श्रमिकों के साप्ताहिक अर्जन के आंकड़े

साप्ताहिक अर्जन ₹	*श्रमिकों की संख्या*			
	कार्यशाला A	*कार्यशाला B*	*कार्यशाला C*	*कार्यशाला D*
15–16	...	...	2	...
17–18	...	2	4	...
19–20	...	4	4	4
21–22	10	10	10	14
23–24	22	14	16	16
25–26	20	18	14	16
27–28	14	16	12	12
29–30	14	10	6	12
31–32	...	6	6	4
33–34	...	...	2	2
35–36	...	...	...	...
37–38	...	...	4	...
कुल योग	80	80	80	80
माध्य	25.5	25.5	25.5	25.5

कार्यशाला	*परास*
A	9
B	15
C	23
D	15

तालिका में दर्शाये इन आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि परास अधिक होने से समूह में मानों का भिन्न अधिक है।

परास, निरपेक्ष प्रकीर्णन का मापक है एवं इसका प्रयोग यथावत् भिन्न–भिन्न इकाइयों में व्यक्त दो वितरणों की भिन्नताओं की तुलना करने के लिए उपयोगी नहीं हो सकता। प्रकीर्णन की मापित राशि (जैसे कि पाउंड्स में) की तुलना इन्चेज़ में मापित प्रकीर्णन से नहीं की जा सकती। इस प्रकार आपेक्षिक प्रकीर्णन के मापन की आवश्यकता अनुभव की गयी।

निरपेक्ष मापक को आपेक्षिक मापक में परिणत किया जा सकता है, यदि इसे हम प्रयोजन के लिए किसी अन्य मान को मानक के रूप में मानते हुए इस मानक से भाग दें तो। हम वितरण के माध्य अथवा किसी अन्य स्थैतिक औसत का प्रयोग मानक के रूप में कर सकते हैं।

उपरोक्त तालिका के लिए आपेक्षिक प्रकीर्णन होगा–

कार्यशाला $A = \frac{9}{25.5}$ कार्यशाला $C = \frac{23}{25.5}$

कार्यशाला $B = \frac{15}{25.5}$ कार्यशाला $D = \frac{15}{25.5}$

निरपेक्ष भिन्न को आपेक्षिक में बदलने की एक वैकल्पिक विधि के रूप में चरम सीमा के कुलयोग का प्रयोग मानक के रूप में किया जायेगा। यह चरम सीमा के आइटम्स के कुल योग से चरम सीमा के आइटम्स के अंतर को भाग देने के समतुल्य होगा। इस प्रकार,

$$\text{Relative Dispersion} = \frac{\text{Difference of extreme items, i.e, Range}}{\text{Sum of extreme items}}$$

श्रृंखला के आपेक्षिक प्रकीर्णन को प्रकीर्णन–गुणांक अथवा प्रकीर्णन का अनुपात कहा जाता है। पूर्व में हमारे द्वारा श्रमिकों के साप्ताहिक अर्जन के उदाहरण में गुणांक निम्नानुसार होंगे–

कार्यशाला $A = \frac{9}{21+30} = \frac{9}{51}$ कार्यशाला $B = \frac{15}{17+32} = \frac{15}{49}$

कार्यशाला $C = \frac{23}{15+38} = \frac{23}{53}$ कार्यशाला $D = \frac{15}{19+34} = \frac{15}{53}$

परास के लाभ व परिसीमन

लाभ

प्रकीर्णन के उत्तम मापक में जितने अभिलक्षण होने चाहिए, उनमें से दो ही अभिलक्षण परास में होते हैं–

(अ) इसे समझना सरल है; तथा

(आ) इसकी संगणना सरल है।

टिप्पणी

परिसीमन

परास से उत्तम मापक के अन्य परीक्षणों की तुष्टि नहीं की जा सकती तथा इसी कारण बहुधा इसे प्रकीर्णन का सरल मापक कह दिया जाता है।

परास में भिन्नता की अवधारणा के रूप में निम्नांकित परिसीमन निहित होते हैं–

(क) चूंकि यह समग्र वितरण में दो चरम प्रकरणों पर आधारित है, अतः परास तब अत्यधिक परिवर्तित हो सकती है। यदि एक भी चरम प्रकरण घट गया तो किसी अन्य प्रकरण की निकासी से कोई प्रभाव नहीं पड़ने वाला।

(ख) इससे केंद्रीय प्रवृत्ति के मापक के सापेक्ष श्रृंखला में मानों के वितरण के विषय में कुछ पता नहीं चलता।

(ग) यदि वितरण में ओपन–एंड क्लोसेज़ हों तो इसकी संगणना नहीं की जा सकती।

(घ) इसमें संपूर्ण आंकड़ों को ध्यान में नहीं रखा जाता। इसे निम्नानुसार दर्शाया जा सकता है। निम्न तालिका में प्रदत्त आंकड़े देखिए–

समान संख्या के किंतु भिन्न भिन्नता वाले प्रकरणों का वितरण

वर्ग	शिक्षार्थियों की संख्या		
	अनुभाग *A*	अनुभाग *B*	अनुभाग *C*
0–10	...	...	...
10–20	1	...	...
20–30	12	12	19
30–40	17	20	18
40–50	29	35	16
50–60	18	25	18
60–70	16	10	18
70–80	6	8	21
80–90	11	...	...
90–100	...	...	...
महायोग	110	110	110
परास	80	60	60

इस तालिका की रचना करते हुए समान संख्या के किंतु भिन्न, भिन्नता वाले तीन वितरणों को प्रदर्शित किया गया है। अनुभाग *A* से दो सीमांत शिक्षार्थियों को हटा देने से इसकी परास *B* अथवा **C** के समतुल्य हो जायेगी।

A की अधिक परास 110 शिक्षार्थियों के समूचे समूह का विवरण नहीं है वरन् मात्र दो सीमांत शिक्षार्थियों का विवरण है। अनुभागों *B* व *C* में परास समान है। अनुभाग B में शिक्षार्थी समूह केंद्रीय प्रवृत्ति की ओर अधिक थे, जबकि अनुभाग *C* में ऐसी स्थिति नहीं थी। इस प्रकार, परास में *B* की अधिक समांगता अथवा *C* के अधिक

प्रकीर्णन का पता नहीं चलता। इस प्रभाव के कारण प्रकीर्णन के मापक के रूप में इसका प्रयोग यदा–कदा किया जाता है।

परास के विशिष्ट उपयोग

प्रकीर्णन के मापक के रूप में परास के बहुसंख्य परिसीमनों के बावजूद यह निम्नांकित परिस्थितियों में सर्वाधिक उपयोगी रहती है–

(अ) उन परिस्थितियों में, जहां छोरों में ऐसी कोई दुविधा हो, जहां तैयारी की जानी हो। उन परिस्थितियों में वितरण के विषय में कुछ और जानने से अधिक महत्वपूर्ण यह जानना हो सकता है कि सर्वाधिक छोर–प्रकरण कौन–कौन–से आने वाले हैं। उदाहरण हेतु कोई यात्री उस अंचल के न्यूनतम व अधिकतम तापक्रम को जानना चाहेगा, जहां वह जाने की योजना बना रहा है। तूफान के पानी की निकासी हेतु विनिर्माण–कार्य करने के लिए 24 घंटों के दौरान अधिकतम वर्षा को जानने की इच्छा अभियंता को होगी।

(आ) प्रतिभूतियों की कीमतों के अध्ययन में परास का विशेष महत्व होता है। बुलियन अथवा शेयर्स की कीमतों में उच्चावचन (उतार–चढ़ाव) दर्शाने के लिए परास का प्रयोग लगातार किया जाता है कि किस समयावधि में अधिकतम–न्यूनतम कीमतें कितनी रहीं। यह जानकारी प्रचालकों (ऑपरेटर्स) के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों के लिए भी उपयोगी हैं क्योंकि इससे बुलियन मार्केट की स्थिरता व निवेश के परिवेश का पता होता है।

(इ) सांख्यिकीय गुणवत्ता नियंत्रण में परास का प्रयोग भिन्न के मापक के रूप में किया जाता है। उदाहरणार्थ हम उस परास को निर्धारित करते हैं, जिस पर यादृच्छिक कारणों से गुणवत्ता में भिन्नताएं आ सकती हैं, जो कि नियंत्रण–सीमाओं के स्थिरीकरण का आधार है।

परास के गुण

1. एक अंक–वितरण के सभी प्राप्तांकों का प्रभाव, मध्यमान विचलन की गणना पर पड़ता है। अतः उस अंक वितरण का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है।
2. मध्यमान विचलन की प्रकृति को आसानी से समझा जा सकता है।
3. इस पर चरम मदों का प्रभाव कम पड़ा है।

चतुर्थक विचलन (Quartile Deviation)

किसी भी श्रेणी के तृतीय व प्रथम चतुर्थकों के आधे को चतुर्थक विचलन कहते हैं। चतुर्थक विचलन का दूसरा नाम 'अर्द्ध मध्यांक–चतुर्थक प्रसार' भी है।

चतुर्थक विचलन के गुण

1. इसका समझना व निर्धारण करना सरल है।
2. विचलन के इस माप पर चरम मूल्यों का बहुत कम प्रभाव पड़ता है।
3. जहां श्रेणी के मध्य भाग का ही अध्ययन करना है, वहां इस माप का प्रयोग होता है।

टिप्पणी

चतुर्थक विचलन के दोष

1. चतुर्थक विचलन, श्रेणी के सभी मूल्यों पर आधारित नहीं होता।
2. इसका बीजगणितीय विवेचन संभव नहीं है।
3. निर्देशन– परिवर्तन का इस पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।
4. इससे समंकमाला की रचना का ठीक से पता नहीं चलता है।

इसका प्रयोग कब करना चाहिए?

1. जब अंक–वितरण पूर्ण हों।
2. जब प्रामाणिक विचलन की गणना न की जा सके।
3. जब प्रतिदर्श छोटा हो।
4. जब मध्यांक की गणना की गई हो।
5. जब अंक वितरण सामान्य तथा पूर्ण हो।

अव्यवस्थिति अंक सामग्री से चतुर्थक विचलन की गणना

अव्यवस्थित अंक सामग्री से Q की गणना का सूत्र निम्न है–

$$Q = \frac{Q_3 - Q_1}{2}$$

जबकि

$$Q_1 = \left(\frac{N+1}{4}\right) \text{पद}$$

$$Q_3 = \left\{\frac{3(N+1)}{4}\right\} \text{पद}$$

गणना विधि–

(1) दी हुई अव्यवस्थित सामग्री से पहले Q_1 फिर Q_3 की गणना कीजिए अंत में सूत्र में Q_3 और Q_1 के मान रखकर Q का मान ज्ञात कर लीजिए।

(2) Q_1 और Q_3 की गणना में केवल N का मान ज्ञात होना आवश्यक है।

(3) Q_1 और Q_3 ज्ञात करने से पहले दिये हुए प्राप्तांकों को क्रम में व्यवस्थित कर लीजिए।

उदाहरण– प्राप्तांक 12, 13, 11, 14, 13, 18, 17, 16, 15

हल– क्रम में व्यवस्थित प्राप्तांकः– 11, 12, 13, 13, 14, 15, 16, 17, 18

$N = 9$

Q_1 की गणना :

$$Q_1 = \left(\frac{N+1}{4}\right) \text{पद}$$

$$= \left(\frac{9+1}{4}\right) \text{पद}$$

टिप्पणी

$$=\left(\frac{10}{4}\right) \text{ पद}$$

$= 2.5$ पद

$= 12.5$

Q_3 की गणना :

$$Q=\left\{\frac{3(N+1)}{4}\right\} \text{ पद}$$

$$=\left\{\frac{3(9+1)}{4}\right\} \text{ पद}$$

$$=\left(\frac{30}{4}\right) \text{ पद}$$

$= 7.5$ पद

$= 16.5$

Q की गणना :

$$Q=\frac{Q_3-Q_1}{2}$$

$$=\frac{16.5-12.5}{2}$$

$$=\frac{4}{2}=2$$

व्यवस्थित अंक सामग्री से Q की गणना

व्यवस्थित अंक सामग्री से Q की गणना निम्न सूत्र द्वारा की जाती है–

$$Q=\frac{Q_3-Q_1}{2}$$

जबकि Q = चतुर्थक विचलन

Q_3 = तृतीय चतुर्थक अथवा वह चतुर्थक, जिसके नीचे 75ः आवृत्तियां होती है।

Q_1 = प्रथम चतुर्थक (अर्थात जिसके नीचे 25ः आवृत्तियां हो)

Q_3 की गणना करने का सूत्र–

$$Q_3 = L+\left(\frac{3N/4-F}{f}\right)\times C.I$$

Q_1 की गणना करने का सूत्र–

$$Q_1 = L + \left(\frac{N/4 - F}{f}\right) \times C.I.$$

टिप्पणी

यहां

L = उस वर्गांतर की निम्नतम शुद्ध सीमा, जिसके नीचे Q_1 पड़ता है या Q_3 पड़ता है।

F = उस वर्गांतर की नीचे की संचित आवृत्ति, जिसमें Q_1 या Q_3 है।

f = उस वर्गांतर की आवृत्ति, जिसमें Q_1 या Q_3 है।

$C.I.$ = वर्गांतर का आकार।

गणना विधि

(1) दिए हुए अंक वितरण को आरोही क्रम में लिखिए, फिर दी हुई आवृत्तियों को संचित आवृत्तियों में परिवर्तित कीजिए।

(2) सर्वप्रथम Q_1 की गणना कीजिए। इसके बाद Q_3 की।

(3) Q_3 तथा Q_1 का मान प्राप्त कर लेने के बाद Q की गणना, दिये हुए सूत्र की सहायता से कीजिए।

उदाहरण– निम्नलिखित व्यवस्थित अंक सामग्री से Q की गणना कीजिए।

C.I.	f	F
120-124	2	46
115-119	4	44
110-114	6	40
105-109	8	34
100-104	9	26
95-99	7	17
90-94	5	10
85-89	3	5
80-84	2	2
	N=46	

हल–

Q_1 की गणना–

$$Q = L + \left(\frac{N/4 - F}{f}\right) \times C.I.$$

यहां, $L = 94.5,\ N/4 = \frac{46}{4} = 11.5, F = 10, f = 7$

सूत्र में, इन मूल्यों को रखने पर

$$Q_1 = 94.5 + \left(\frac{115 - 10}{7}\right) \times 7$$

$$= 94.5 + \frac{1.5 \times 7}{7}$$

$$= 94.5 + 1.5 = 96$$

Q_3 की गणना $= Q_3 = L + \left(\frac{3N/4 - F}{f}\right) \times C.I.$

टिप्पणी

प्रश्न में $L = 109.5$, $3N/4 = 34.5$, $F = 34$, $F = 6$ $C.I. = 5$

सूत्र में मूल्यों को रखने पर,

$$Q_3 = 109.5 + \left\{\frac{34.5 - 34}{6}\right\} \times 5$$

$$= 109.5 + \frac{.5 \times 5}{6}$$

$$=109.5+.416$$

$$=109.08$$

Q की गणना–

$$Q = \frac{Q_3 - Q_1}{2}$$

$$= \frac{109.08 - 96}{2} \quad = \frac{13.08}{2} \quad = 6.54$$

चतुर्थक विचलन गुणक– चतुर्थक विचलन, विचलनशीलता की निरपेक्ष माप है। इसका सापेक्ष माप, चतुर्थक विचलन गुणक कहलाता है। इसे ज्ञात करने के लिए चतुर्थक विचलन के निरपेक्ष माप को दोनों Q_1 तथा Q_3 के माध्य से भाग दे दिया जाता है। सूत्र के रूप में–

$$Q.D = \frac{\frac{Q_3 - Q_1}{2}}{\frac{Q_3 - Q_1}{2}}$$

$$Q.D = \frac{Q_3 - Q_1}{Q_3 + Q_1}$$

मध्यमान विचलन

एक शृंखला के किसी माध्य (समांतर माध्य, माध्यिका या बहुलक) से निकाले गए विचलनों के जोड़े के समांतर माध्य को माध्य विचलन कहा जाता है।

मध्यमान विचलन या माध्य विचलन के दोष

1. चिह्नों का परित्याग कर देने से यह माप गणितीय दृष्टिकोण से अशुद्ध एवं अवैज्ञानिक हो जाती है।
2. इसका बीजगणितीय विवेचन संभव नहीं है।
3. माध्य विचलन अधिक विश्वसनीय नहीं है क्योंकि भूयिष्ठक के अनिश्चित होने के कारण उससे निकालना ही अनुपयुक्त है, जबकि माध्यिका चरम सीमाओं से अधिक प्रभावित हो सकती है।

अव्यवस्थित अंक–सामग्री से मध्यमान विचलन की गणना

1. सर्वप्रथम दी हुई अव्यवस्थित अंक–साम्रगी का मध्यमान (M) ज्ञात कीजिए।
2. इसके बाद प्राप्तांकों का मध्यमान से विचलन ज्ञात कीजिए।
3. मध्यमान से सभी विचलन ज्ञात कर लेने के बाद $\Sigma(d)$ का मान ज्ञात कीजिए।
4. निम्न सूत्र में सभी मान रखकर मध्यमान विचलन ज्ञात कीजिए–

$$AD = \frac{\sum|d|}{N}$$

d	=	मध्यमान से प्राप्तांकों का विचलन
$\|d\|$	=	d के दोनों ओर खिंची रेखाओं का तात्पर्य है कि विचलन का योगफल निकालते समय धन तथा ऋण चिन्हों का महत्व नहीं दिया जाता है।
N	=	प्राप्तांकों की संख्या
$\Sigma\|d\|$	=	मध्यमान से प्राप्तांकों का विचलन

उदाहरण– निम्न अव्यवस्थित अंक सामग्री का मध्यमान विचलन ज्ञात कीजिए–

28, 28, 30, 35, 34, 33, 32, 36

हल– दिए गए प्राप्तांकों को एक पंक्ति में लिखकर मध्यमान निकालिए, फिर मध्यमान से विचलन निम्न प्रकार ज्ञात कीजिए–

X(Score)	*X–M* = |*d*|
28	28–32=4
28	28–32=4
30	30–32=2
35	35–32=3
34	34–32=2
33	33–32=1
32	32–32=0
36	36–32=4
	$\Sigma\|d\| = 20$

यहां + तथा – चिह्नों को विलचन ज्ञात करते समय महत्व नहीं दिखाया है।

मध्यमान की गणना : $M = \frac{\Sigma X}{N} = \frac{256}{8} = 32$

मध्यमान विचलन की गणना : $N = 8, \sum|d| = 20$

इन मूल्यों को सूत्र में रखने पर,

$$AD = \frac{\sum|d|}{N} = \frac{20}{8} = 2.5$$

उदाहरण– कक्षा के परीक्षण में 11 शिक्षार्थियों द्वारा प्राप्त अंकों के निम्नांकित आंकड़ों से माध्य विचलन की गणना करिएः–

14, 15, 23, 20, 10, 30, 19, 18, 16, 25, 12.

हल– माध्यिका = The size of the $\frac{11+1}{2}$ th item

= size of 6th item 18

टिप्पणी

Serial No.	Marks	$\|X - Median\|$ $\|d\|$
1	10	8
2	12	6
3	14	4
4	15	3
5	16	2
6	18	0
7	19	1
8	20	2
9	23	5
10	25	7
11	30	12
		$\sum \|d\| = 50$

माध्यिका से माध्य विचलन $= \frac{\sum |d|}{N}$

$$= \frac{50}{11} = 4.5 \text{ अंक।}$$

समूहबद्ध आंकड़ों के लिए निम्न द्वारा माध्य विचलन को देखना सरल हैः–

माध्य विचलन (M.D.) $= \frac{\sum f\,|d|}{\sum f}$ ...(4)

व्यवस्थित अंक सामग्री से मध्यमान विचलन की गणना

1. सर्वप्रथम व्यवस्थित अंक सामग्री से मध्यमान ज्ञात किया जाता है।
2. मध्यबिंदु का मध्यमान से विचलन ज्ञात किया जाता है।
3. मध्यमान से मध्यबिंदुओं का विचलन ज्ञात करने के पश्चात् इन विचलनों को संबंधित वर्गांतरों की आवृत्तियों से गुणा कीजिए, अर्थात (fd)।
5. अंत में Σfd का मान ज्ञात करके सूत्र में मूल्य को रखकर मध्यमान विचलन (AD) ज्ञात कर लेते हैं।

सूत्र–

$$AD = \frac{\Sigma |fd'|}{N}$$

यहां

d' = मध्यबिंदु के मध्यमान से विचलन

$\Sigma|d|$ = मध्यमान से मध्य बिंदुओं के विचलनों का योग जब संबंधित आवृत्तियों से गुणा किया गया है तथा + और – चिह्नों का ध्यान न रखा गया हो।

N = आवृत्तियों का कुल योग।

F = आवृत्तियां।

टिप्पणी

उदाहरण– निम्नलिखित व्यवस्थित अंक सामग्री से मध्यमान विचलन (*AD*) ज्ञात कीजिए।

C.I.	f	X Mid-Point	fX	|d'| (X–M)	|fd'|
60-64	1	62	62	19.13	19.13
55-59	2	57	104	14.13	28.26
50-54	3	52	156	9.13	27.39
45-49	4	47	188	4.13	16.52
40-44	6	32	252	.87	5.22
35-39	3	37	111	5.87	17.61
30-34	2	32	64	10.87	21.74
25-29	1	27	27	15.87	15.87
20-24	1	22	22	20.87	20.87
	$N = 23$		$\Sigma fX = 986$		$\Sigma\|fd'\| = 172.61$

हल–

सर्वप्रथम मध्यमान ज्ञात कीजिए–

$$M = \frac{\sum fX}{N} = \frac{986}{23} = 42.869 = 42.87$$

मध्यमान विचलन की गणना

$$\sum |fd'| = 172.61, N = 23$$

इन मूल्यों को सूत्र में रखने पर,

$$AD = \frac{\sum |fd'|}{N} = \frac{172.61}{23} = 7.50$$

यह अंक सामग्री छोटी विधि द्वारा ज्ञात की गयी है। मध्यमान विचलन के लिए लघु विधि या कल्पित मान का प्रयोग भी किया जाता है।

उदाहरण– निम्नलिखित तालिका से संक्षिप्त विधि द्वारा मध्यमान विचलन ज्ञात कीजिए–

C.I.	f	d	fd	X Mid-Point	|d'| (X–M)	|fd'|
60-64	1	–4	+4	62	20	20
55-59	3	–3	+9	57	15	45
50-54	3	–2	+6	52	10	30
45-49	4	–1	+4	47	5	20
40-44	7	0	0	42	0	0
35-39	3	–1	–3	37	5	15
30-34	3	–2	–6	32	10	30
25-29	2	–3	–6	27	15	30
20-24	2	–4	–8	22	20	40
	$N = 28$		$\Sigma fd = 0$			$\Sigma\|fd'\| = 230$

हल–

मध्यमान की गणना–

$$M = A + \left(\frac{\sum fd}{N}\right) \times C.I.$$

$$= 42 + \frac{0}{28} \times 5 = 42$$

मध्यमान विचलन की गणना–

$$AD = \frac{\sum |fd'|}{N} = \frac{230}{28} = 8.21$$

जहां समूहबद्ध पृथक् (डिस्क्रीट) आंकड़ों के लिए $|d| = |X - \text{median}|$ एवं समूहबद्ध सतत आंकड़ों के लिए $|d| = M - \text{median}|$ समूह विशेष के मध्य–मान के रूप में M है। इस सूत्र के प्रयोग को निम्न उदाहरणों द्वारा दर्शाया जा रहा है–

उदाहरण– निम्न आंकड़ों से माध्य विचलन की गणना करें–

वस्तु का आकार	6	7	8	9	10	11	12
आवृत्ति	3	6	9	13	8	5	4

हल–

Size	*Frequency f*	*Cumulative Frequency*	*Deviations from Median (9) $\|d\|$*	$f\|d\|$
6	3	3	3	9
7	6	9	2	12
8	9	18	1	9
9	13	31	0	0
10	8	39	1	8
11	5	44	2	10
12	4	48	3	12
	48			60

माध्यिका= $\frac{48+1}{2}$ का आकार = 24.5th वस्तु, जो कि 9 है।

इसीलिए विचलनों की गणना 9 अर्थात $|d| = |X - 9|$ से की जाती है।

माध्य विचलन= $\frac{\sum f|d|}{\sum f} = \frac{60}{48} = 1.25$

उदाहरण– निम्न आंकड़े से माध्य विचलन की गणना करें–

X	0–10	10–20	20–30	30–40	40–50	50–60	60–70	70–80
f	18	16	15	12	10	5	2	2

हल

यह सतत चर वाला एक आवृत्ति वितरण है। इस प्रकार विचलनों की गणना मध्यमानों से की जाती है।

टिप्पणी

X	Mid-value	f	Less than $c.f.$	Deviation from median $\|d\|$	$f\|d\|$
0–10	5	18	18	19	342
10–20	15	16	34	9	144
20–30	25	15	49	1	15
30–40	35	12	61	11	132
40–50	45	10	71	21	210
50–60	55	5	76	31	155
60–70	65	2	78	41	82
70–80	75	2	80	51	102
		80			1182

$$\text{Median} = \text{The size of } \frac{80}{2} \text{ th item}$$

$$= 20 + \frac{6}{15} \times 10 = 24$$

and then, Mean Deviation $= \frac{\Sigma f|d|}{\Sigma f} = \frac{1182}{80} = 14.775.$

मानक विचलन

किसी श्रेणी के समांतर माध्य के निकाले गए उसके विभिन्न मद–मूल्यों के विचलनों के वर्गों का माध्य वर्गमूल, उस श्रेणी का मानक विचलन या प्रामाणिक विचलन कहलाता है। इसे द्वितीय घात का विचलन या मूल मध्यक वर्ग विचलन भी कहते हैं।

प्रामाणिक विचलन के गुण

(1) अंक वितरण के प्रत्येक अंक से प्रामाणिक विचलन प्रभावित होता है।

(2) प्रामाणिक विचलन, सामान्य संभावना वक्र का मुख्य आधार है।

(3) विचलनशीलता का यह सर्वशुद्ध और विश्वसनीय माप है।

(4) अंक–वितरण के मध्यमान की विश्वसनीयता का अध्ययन प्रामाणिक विचलन के आधार पर किया जाता है।

प्रामाणिक विचलन का उपयोग कब करना चाहिए?

1. जब सर्वाधिक शुद्ध और विश्वसनीय विचलन माप की आवश्यकता हो।
2. जब केंद्रीय मापकों में मध्यमान की गणना की गई हो।
3. जब दो अंक–वितरणों का तुलनात्मक अध्ययन करना हो।
4. जब सह–संबंध गुणांक तथा मध्यमानों के अंतर की सार्थकता की जांच करनी होती है, तब S.D. (प्रामाणिक विचलन) की गणना आवश्यक होती है।

5. प्रामाणिक विचलन की गणना की आवश्यकता तब भी पड़ती है, जब मूल प्राप्तांकों को प्रामाणिक प्राप्तांकों में बदलना होता है।
6. विचलन गुणांकों और प्रामाणिक त्रुटि के अध्ययन में इसकी आवश्यकता होती है।
7. जब सीमांत प्राप्तांकों को महत्व देना होता है, तब भी S.D. की गणना की जाती है।

अव्यवस्थित अंक–सामग्री का प्रामाणिक विचलन

अव्यवस्थित अंक सामग्री से प्रामाणिक विचलन की गणना के सूत्र निम्नलिखित हैं। इन सभी सूत्रों से S.D. का समान मान प्राप्त होता है–

प्रथम सूत्र – $S.D.=\sqrt{\frac{\sum d^2}{N}}$

जबकि, d = प्राप्तांकों का मध्यमान से विचलन

Σd^2 = मध्यमान से लिए गए विचलनों के वर्गों का योग

N = प्राप्तांकों की संख्या

द्वितीय सूत्र– $S.D.=\sqrt{\frac{\sum d^2}{N}-C^2}$

तृतीय सूत्र– $S.D.=\sqrt{\frac{\sum d^2}{N}-(M)^2}$

यहां M = मध्यमान, C = मध्यमान– कल्पित मध्यमान

गणना विधि

1. सर्वप्रथम दी हुई अंक सामग्री क्रमबद्ध कीजिए फिर सभी अंकों का ΣX और N का मूल ज्ञात करके मध्यमान की गणना कीजिए।
2. प्राप्तांकों का मध्यमान से विचलन, $(X–M)$ करके d प्राप्त कर लिया जाता है। यहां + और – चिह्नों को लगाने की आवश्यकता नहीं है।
3. प्रत्येक विचलन का वर्ग करके d^2 प्राप्त करते हैं।
4. अंतिम चरण में Σd^2 और N का मान SD मान में रखते हैं और गणना करके SD का मान प्राप्त कर लिया जाता है।

उदाहरण– नीचे दी हुई अव्यवस्थित अंक–सामग्री से प्रामाणिक विचलन की गणना कीजिए।

5, 7, 8, 8, 9, 10, 11, 12

हल– सर्वप्रथम मध्यमान निकालिए–

$$M=\frac{\sum X}{N}=\frac{72}{8}=9$$

टिप्पणी

प्राप्तांक	X–M=d	d^2
5	5–9=4	16
7	7–9= –2	4
8	8–9= –1	1
9	9–9= –0	0
10	10–9=1	1
10	10–9=1	1
11	11–9=2	4
12	12–9=3	9
		$\Sigma d^2 = 36$

अतः $\Sigma d^2 = 36, \quad N=8$

इन मूल्यों को सूत्र में रखने पर,

$$S.D. = \sqrt{\frac{\sum d^2}{N}} = \sqrt{\frac{36}{8}}$$

$$= \sqrt{4.5}$$

$$= 2.12$$

उदाहरण– निम्न प्राप्तांकों का प्रामाणिक विचलन, द्वितीय सूत्र द्वारा ज्ञात कीजिए–

7, 8, 8, 10, 11, 13, 14, 15

हल– सर्वप्रथम मध्यमान की गणना कीजिए।

$$M = \frac{\sum x}{N} = \frac{86}{8} = 10.75$$

कल्पित माध्य = 11

C = मध्यमान– कल्पित माध्य

= 10.75 – 11.0 = –0.25

प्राप्तांक	X–Am=d	d^2
7	7–11=–4	16
8	8–11=–3	9
8	8–11=–3	9
10	10–11=–1	1
11	11–11=0	0
13	13–11=2	4
14	14–11=3	9
15	15–11=4	16
N=8		$\Sigma X = 64$

$$\Sigma d^2 = 64, \quad C^2 = (-0.25)^2, N=8$$

इन मूल्यों को सूत्र में रखने पर,

टिप्पणी

$$S.D. = \sqrt{\frac{64}{8} - (-0.25)^2}$$

$$= \sqrt{8 - 0.06} = \sqrt{7.94} = 2.817$$

व्यवस्थित अंक सामग्री से प्रामाणिक विचलन

व्यवस्थित अंक–सामग्री के S.D. की गणना के निम्न तीन सूत्र प्रचलित हैं–

$$S.D. = i\sqrt{\frac{\sum fd^2}{N} - \left(\frac{\sum fd}{N}\right)^2}$$ प्रथम सूत्र

$$S.D. = i/N\sqrt{N(\sum fd^2) - (\sum fd)^2}$$ द्वितीय सूत्र

जबकि, *S.D.* = प्रामाणिक विचलन

i = वर्गांतर का आकार

Σfd = आवृत्तियों एवं विचलनों का योग

Σfd^2 = विचलनों के वर्ग एवं आवृत्तियों के गुणनफल का योग

N = प्राप्तांकों की संख्या

दीर्घ विधि द्वारा *S.D.* की गणना का सूत्र,

$$S.D. = \frac{\sum fd^2}{N}$$

जबकि d = मध्य बिंदुओं का मध्यमान से विचलन

Σfd^2 = विचलनों के वर्ग एवं आवृत्तियों के गुणनफल का योग

N = प्राप्तांकों की संख्या

संक्षिप्त विधि द्वारा *S.D.* की गणना

गणना विधि

(1) इस विधि द्वारा *S.D.* की गणना करते समय कुछ गणनाएं वैसे ही करनी पड़ती है; जैसे मध्यमान में करनी पड़ती है।

(2) सर्वप्रथम जिस वर्गांतर की आवृत्ति सर्वाधिक होती है या जो वर्गांतर मध्य में होता है, उसमें कल्पित माध्य (AM) मानकर शून्य लगा देते हैं तथा d और fd की गणना करते हैं। अंत में fd^2 की गणना की जाती है।

(3) x.kukd sr h j spj.k ea Σfd, Σfd^2 तथा N और *C.I.* के मान प्राप्त कर लेते हैं।

(4) गणना के अंतिम चरण में S.D. के सूत्र में सभी मानों को रखकर प्रामाणिक विचलन ज्ञात कर लिया जाता है।

उदाहरण– निम्नलिखित व्यवस्थित अंक–सामग्री से संक्षिप्त विधि द्वारा S.D. की गणना कीजिए।

टिप्पणी

C.I.	f	d	fd	fd^2
26-27	1	+4	+4	16
24-25	2	+3	+6	18
22-23	3	+2	+6	12
20-21	5	+1	+5	5
18-19	8	0	0 (21)	0
16-17	4	–1	–4	4
14-15	3	–2	–6	12
12-13	2	–3	–6	18
10-11	1	–4	–4 (20)	16
	N=29		$\Sigma fd = 1$	$\Sigma fd^2 = 101$

हल– यहां $\Sigma fd = 1$, $Sfd^2 = 101$, $N = 29$ तथा $i = 2$

सूत्र में मूल्यों को रखने पर,

(1) **प्रथम सूत्र**– $i\sqrt{\frac{\sum fd^2}{N} - \left(\frac{\sum fd}{N}\right)^2}$

$$= i\sqrt{\frac{101}{29} - \left(\frac{1}{29}\right)^2}$$

$$= 2\sqrt{3.482 - 0.001}$$

$$2 \times 1.865 = 3.73$$

(2) **द्वितीय सूत्र**–

$$S.D. = \frac{i}{N}\sqrt{N(\sum fd^2) - \left(\sum fd\right)^2}$$

$$= \frac{2}{29}\sqrt{29 \times 101 - (1)^2} = \frac{2}{29}\sqrt{2928}$$

$$\frac{2}{29} \times 54.11$$

$$= 3.73$$

उदाहरण– दीर्घ विधि द्वारा प्रामाणिक विचलन की गणना कीजिए।

C.I.	f	X (Midpoint)	fX	X–M (d)	fd	fd^2
34-36	1	35	35	11.89	11.89	23.78
31-33	2	32	64	8.89	17.78	26.67
28-30	3	29	87	5.89	17.67	23.56
25-27	5	26	130	2.89	14.45	17.34
22-24	6	23	138	0.11	00.66	00.77
19-21	4	20	80	3.11	12.44	15.55
16-18	3	17	51	6.11	18.33	24.44
13-15	2	14	28	9.11	18.22	27.33
10-12	1	11	11	12.11	12.11	24.22
	N=27		ΣfX=624			Σfd^2=183.66

हल– मध्यमान की गणना,

$$M = \frac{\sum fX}{N} = \frac{624}{27} = 23.11$$

दीर्घ विधि से S.D. की गणना–

$$S.D. = \sqrt{\frac{\sum fd^2}{N}}$$

$$= \sqrt{6.802} = 2.608$$

विचलन गुणांक

विचलन गुणांक, प्रामाणिक विचलन और संबंधित मध्यमान का अनुपात है। बहुधा इस अनुपात को 100 से गुणा कर दिया जाता है।

विचलन गुणांक का प्रयोग

जब दो या दो से अधिक अंक वितरणों के *N*, *M*, और S.D. तो ज्ञात हों साथ–साथ *M* और S.D. की मान इकाइयां भिन्न–भिन्न हों (जैसे एक वितरण की मापन इकाई सेंटीमीटर में हो तथा दूसरे वितरण की इकाई ग्राम में हो) और इन अंक वितरणों का तुलनात्मक अध्ययन करना हो तो इस अवस्था में विचलन गुणांक की गणना करके इस गुणांक के आधार पर दोनों समूहों की तुलना की जा सकती है।

इसकी गणना का सूत्र निम्नलिखित है–

$$C.V. = \frac{\sigma \times 100}{M}$$

यहां σ = प्रामाणिक विचलन, M = मध्यमान

उदाहरण– एक कक्षा के विद्यार्थियों के शिक्षाशास्त्र में औसत अंक 70 तथा S.D. 8.4 है तथा इसी कक्षा के विद्यार्थियों का इतिहास में औसत प्राप्तांक 54 है तथा S.D. 6.8 है। C.V. की गणना करके परिणामों की विवेचना कीजिए।

हल– शिक्षाशास्त्र के C.V. की गणना।

$$C.V. = \frac{\sigma}{M} \times 100 = \frac{8.4}{70} \times 100 \;\; = 12$$

अतः इतिहास के प्राप्तांकों में विचलनशीलता, मनोविज्ञान के प्राप्तांकों की अपेक्षा अधिक है।

केंद्रीय प्रवृत्ति और फैलाव के माप

स्व–अध्ययन सामग्री फैलाव के माप पर समस्याओं के हल

उदाहरण– निम्नलिखित श्रृंखला (अकेली श्रृंखला) में परास और उसके गुणांक का पता लगाएं–

96, 180, 98, 75, 270, 80, 102, 100, 94.

हल– यहां, L = आइटम का सबसे बड़ा मूल्य = 270

और S = आइटम का सबसे छोटा मूल्य = 75

इसलिए, परास (R) = (L–S) = (270–75) = 195

और परास का गुणांक = $\frac{(L-S)}{(L+S)} = \frac{(270-75)}{(270+75)} = \frac{195}{345} = 0.56$

टिप्पणी

उदाहरण– निम्नलिखित (अलग) श्रृंखला में परास और उसके गुणांक का पता लगाएं–

मासिक औसत (in ₹)	100	150	200	250	300	500
मजदूरों की संख्या	30	20	15	10	4	1

हल– यहां, L = आइटम का सबसे बड़ा मूल्य = 500

और S = आइटम का सबसे छोटा मूल्य = 100

इसलिए, परास (R) = (L–S) = (500–100) = 400

और परास का गुणांक = $\frac{(L-S)}{(L+S)} = \frac{(500-100)}{(500+100)}$ = 0.66

उदाहरण– निम्नलिखित (लगातार) श्रृंखला में परास और उसके गुणांक का पता लगाएं–

आकार	10–20	20–30	30–40	40–50	50–60
आवृत्ति	8	15	20	5	3

हल– यहां, L = आइटम का सबसे बड़ा मूल्य = 60

और S = आइटम का सबसे छोटा मूल्य = 10

इसलिए, परास (R) = (L–S) = (60– 10) = 50

और परास का गुणांक = $\frac{(L-S)}{(L+S)} = \frac{(60-10)}{(60+10)}$ = 0.714

उदाहरण– निम्न डाटा से चतुर्थक विचलन (या अर्द्ध–अंतःचतुर्थक परास) और उसके गुणांक का पता लगाएं–

आकार	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
आवृत्ति	3	2	5	7	9	5	8	10	2	1

हल–

आकार	*आवृत्ति*	*संचित आवृत्ति*
1	3	3
2	2	5
3	5	10
4	7	17
5	9	26
6	5	31
7	8	39
8	10	49
9	2	51
10	1	52
		$N = \Sigma f = 52$

अब, निचला चतुर्थक

$Q_1 = \left(\frac{N+1}{4}\right)$, वें आइटम का आकार

टिप्पणी

$= \left(\frac{52+1}{4}\right)$, वें आइटम का आकार या $13\frac{1}{4}$, वां आइटम

$= 13$वां आइटम $+ \frac{1}{4}$, (13वें और 14वें आइटम के बीच अंतर)

$= 4+\frac{1}{4}(4-4)$, क्योंकि $T_{13} = T_{14} = 4$

और ऊपरी चतुर्थक,

$Q_3 = \frac{3(N+1)}{4}$, वें आइटम का आकार

$= \frac{3}{4}$ (52 + 1) वें आइटम का आकार या $39\frac{3}{4}$ वां आइटम

$= 39$वां आइटम $+ \frac{3}{4}$, (39वें और 40वें आइटम के बीच अंतर)

$= \left[7 + \frac{3}{4}(8-7)\right] = 7.75$

इसलिए, अपेक्षित चतुर्थक विचलन = ½ $(Q_3 - Q_1)$ = ½ (7.75 – 4)

= 1.725

और चतुर्थक विचलन का गुणांक,

$= \left(\frac{Q_3 - Q_1}{Q_3 + Q_1}\right) = \left(\frac{7.75-4}{7.75+4}\right) = 0.32$

उदाहरण– निम्न लगातार श्रृंखला से चतुर्थक विचलन और उसके गुणांक का पता लगाएं–

वजन (पौंड)	*व्यक्तियों की संख्या*	*वजन (पौंड)*	*व्यक्तियों की संख्या*
70–80	12	110–120	50
80–90	18	120–130	45
90–100	35	130–140	20
100–110	42	140–150	8

हल– यहां, हमारे पास है

वजन (पौंड)	*आवृत्ति (व्यक्तियों की संख्या)*	*संचित आवृत्ति (C.F)*
70–80	12	12
80– 90	18	30
90–100	35	65
100–110	42	107
110–120	50	157
120–130	45	202
130–140	20	222
140–150	8	230
कुल	$N = \Sigma f = 230$	

टिप्पणी

यहां $\frac{N}{4} = \frac{1}{4}(230) = 57.5$

$\therefore$ Q_1 = 57.5वें or 58वें आइटम जो 90.100 समूह में निहित हैं।

$$\therefore \quad Q_1 = \left\{L + \left(\frac{\frac{N}{4} - c.f}{f}\right) \times i\right\} = \left\{90 + \left(\frac{\frac{230}{4} - 30}{35}\right) \times 10\right\} = 97.85$$

इसी तरह,

$$\frac{3}{4}N = \frac{3}{4}(230) = 172.5$$

$\therefore$ Q_3 = 172.5वें or 173वें आइटम, जो 120.30 समूह में निहित हैं।

$$\therefore \quad Q_3 = \left\{L + \left(\frac{\frac{3N}{4} - c.f}{f}\right) \times i\right\} = \left\{120 + \left(\frac{\frac{3}{4}(230) - 157}{45}\right) \times 10\right\} = 123.22$$

इसलिए, चतुर्थक विचलन $Q = ½ (Q_3 - Q_1)$

= ½ (123.22 – 97.85) = 12.685

और, चतुर्थक विचलन का गुणांक,

$$= \left(\frac{Q_3 - Q_1}{Q_3 + Q_1}\right) = \left(\frac{123.22 - 97.85}{123.22 + 97.85}\right) = 0.114$$

उदाहरण– निम्न डेटा निकटतम ग्राम (द्रव्यमान की एक मीट्रिक इकाई) से 20 अंडों के एक नमूने का घन (ग्राम में) देता है–

46, 51, 48, 62, 54, 51, 58, 60, 71, 75, 47, 73, 62, 65, 53, 57, 65, 72, 49, 51

इस नमूने के घन के समांतर माध्य से माध्य विचलन की गणना करें।

हल– यहां, N = आइटम की संख्या = 20

समांतर माध्य,

$$\bar{X} = \frac{\Sigma X}{N} = \frac{(46 + 51 + 48 + ... + 49 + 51)}{20}$$

$$= \frac{1170}{20} = 58.5 \text{ ग्राम} = M$$

तालिकाबद्ध रूप में लिखकर, हमारे पास हैं–

X	$X - M$	$\lvert X - M \rvert$
46	– 12.5	12.5
51	– 7.5	7.5
48	– 10.5	10.5
62	+ 3.5	3.5
54	– 4.5	4.5
51	– 7.5	7.5

टिप्पणी

58	– 0.5	0.5
60	+ 1.5	1.5
71	+ 12.5	12.5
75	+ 16.5	16.5
47	– 11.5	11.5
73	+ 14.5	14.5
62	+ 3.5	3.5
65	+ 6.5	6.5
53	– 5.5	5.5
57	– 1.5	1.5
65	+ 6.5	6.5
72	+ 13.5	13.5
49	– 9.5	9.5
51	– 7.5	7.5
कुल		$\Sigma\|X - M\| = 157.0$

$$\text{अपेक्षित माध्य विचलन} = \frac{\Sigma|\ X - M|}{N}$$

$$= \frac{157.0}{20} \text{ ग्राम} = 7.85 \text{ ग्राम}$$

उदाहरण– पांच मजदूरों की मासिक आय (₹ के हजार में) को 30, 40, 45, 50, 55 के रूप में दिया जाता है। मीडियन से विचलन का पता लगाएं।

हल– N = आइटम की संख्या = 5

आय, पहले से आरोही क्रम में मौजूद थी।

$$\text{मीडियन} = \left(\frac{N+1}{2}\right) \text{ वें आइटम का आकार}$$

$$= \text{तीसरे आइटम का आकार} = ₹\ 45 = M$$

तालिकाबद्ध रूप में लिखकर, हमारे पास है–

X	$(X - M) = (X - 45)$	$\|X - M\|$
30	– 15	15
40	– 5	5
45	0	0
50	+ 5	5
55	+ 10	10
कुल		$\Sigma\|X - M\| = 35$

$$\therefore \text{ अपेक्षित माध्य विचलन} = \frac{\Sigma|X - M|}{N} = \frac{35}{5} = 7$$

उदाहरण– छात्रों के एक विशिष्ट समूह की गर्दन परिधि का विवरण देते हुए निम्न डेटा के लिए माध्य से माध्य विचलन की गणना करें।

मध्य–मूल्य	30	31.5	33	34.5	36	37.5	39	40.5
छात्रों की संख्या	4	19	30	63	66	29	18	1

टिप्पणी

हल– तालिकाबद्ध रूप में लिखकर, हमारे पास है–

मध्य–मूल्य (X)	छात्रों की संख्या (f)	d = (X – A) = (X – 36)	fd = f(X – A)
30	4	– 6.0	– 24.0
31.5	19	– 4.5	– 85.5
33	30	– 3.0	– 90.0
34.5	63	– 1.5	– 94.5
36	66	0	0.0
37.5	29	+ 1.5	43.5
39	18	+ 3.0	54.0
40.5	1	+ 4.5	4.5
कुल	$\Sigma f = N = 230$		$\Sigma fd = -192$

(*A* = 36 मानते हुए)

$$\text{समांतर माध्य} = \left\{A + \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)\right\}$$

$$= \left\{36 + \left(\frac{-192}{230}\right)\right\} = 35 \text{ सेमी} = M \text{ (कहिए)}$$

अब, माध्य विचलन के लिए गणना निम्न तालिका में दिखाई जा रही है–

x	f	|X – M| = |X – 35|	f.|X – M|
30	4	5	20
31.5	19	3.5	66.5
33	30	2	60
34.5	63	0.5	31.5
36	66	1	66
37.5	29	2.5	72.5
39	18	4	72
40.5	1	5.5	5.5
	N = 230 (= Σf)		394 (= Σf|x – M|)

$$\therefore \text{ अपेक्षित माध्य विचलन} = \frac{\Sigma f|\ X - M|}{N} = \frac{394}{230} = 1.77$$

उदाहरण– निम्नलिखित शृंखला की माध्यिका से माध्य विचलन की गणना करें–

आकार	4	6	8	10	12	14	16
आवृत्ति	2	4	5	3	2	1	4

हल– $N = \Sigma f = 21$

$$\text{माध्य, } M = \left(\frac{N+1}{2}\right) \text{ वें आइटम का आकार} = 8$$

टिप्पणी

आकार (X)	आवृत्ति (f)	संचित आवृत्ति	$\|X-M\|$ $= \|X-8\|$	$f.\|X-M\|$
4	2	2	4	8
6	4	6	2	8
8	5	11	0	0
10	3	14	2	6
12	2	16	4	8
14	1	17	6	6
16	4	21	8	32
	$N = \Sigma f = 21$			$\Sigma f\|X-M\| = 68$

$\therefore$ अपेक्षित माध्य विचलन $= \dfrac{\Sigma f\,|X-M|}{N}$

$$= \frac{68}{21} = 3.24$$

उदाहरण– निम्नलिखित तालिका के लिए माध्य से माध्य विचलन की गणना करें–

अंक	0–10	10–20	20–30	30–40	40–50
छात्रों की संख्या	5	8	15	16	6

हल– मान लीजिए $A = 25$ (माना गया माध्य)

श्रेणी	आवृत्ति (f)	मध्य–मान (X)	$d = \left(\frac{X-A}{i}\right)$ $\left(\frac{X-25}{10}\right)$	fd	$\|X-M\|$ $=\|X-27\|$	$f.\|X-M\|$
0–10	5	5	– 2	– 10	22	110
10–20	8	15	– 1	– 8	12	96
20–30	15	25	0	0	2	30
30–40	16	35	1	16	8	128
40–50	6	45	2	12	18	108
	$N = \Sigma f = 50$			$\Sigma fd = 10$		$\Sigma f\|X-M\| = 472$

समांतर माध्य $M = \left\{A + \left\{\dfrac{\Sigma fd}{N}\right\} \times i\right\}$

$$= \left\{25 + \left\{\frac{10}{50}\right\} \times 10\right\}$$

$\therefore$ अपेक्षित माध्य विचलन $= \dfrac{\Sigma f\,|X-M|}{N}$

$$= \frac{472}{50} = 9.44$$

और, माध्य विचलन का गुणांक

$$= \frac{\text{माध्य विचलन}}{\text{माध्यिका}}$$

$$= \frac{9.44}{27} = 0.35$$

टिप्पणी

उदाहरण– निम्नलिखित तालिका के माध्य से माध्य विचलन का पता लगाएं–

से नीचे उम्र	10	20	30	40	50	60	70	80
व्यक्तियों की संख्या	15	30	53	75	100	110	115	125

हल– दिए गए आंकड़ों को तालिकाबद्ध रूप में लिखें, हमारे पास है–

श्रेणी	0–10	10–20	20–30	30–40	40–50	50–60	60–70	70–80
संचित आवृत्ति	15	30	53	75	100	110	115	125
आवृत्ति	15	15 (30–15)	23 (53–30)	22 (75–53)	25 (100–75)	10 (110–100)	5 (115–110)	10 (125–115)

गणना निम्न तालिका में दिखाई जा रही है–

श्रेणी	आवृत्ति (f)	माध्य–मूल्य (X)	$d = \left(\frac{X-A}{i}\right) = \left(\frac{X-45}{10}\right)$	fd	$\|X–M\|$ $=\|X–35.16\|$	$f\|X–M\|$
0–10	15	5	– 4	– 60	+ 30.16	452.40
10–20	15	15	– 3	– 45	+ 20.16	302.40
20–30	23	25	– 2	– 46	+ 10.16	233.68
30–40	22	35	– 1	– 22	+ 0.16	3.52
40–50	25	45	0	0	+ 9.84	246.00
50–60	10	55	+ 1	+ 10	+ 19.84	190.84
60–70	5	65	+ 2	+ 10	+ 29.84	149.20
70–80	10	75	+ 3	+ 30	+ 39.84	398.40
कुल	$N = \Sigma f = 125$			$\Sigma fd =$ $= -123$		$\Sigma f\|X–M\|=$ $= 1976.44$

मान लीजिए, माना गया समांतर माध्य $A = 45$

समांतर (असली) माध्य,

$$M = \left\{A + \left(\frac{\Sigma fd}{n}\right) \times i\right\}$$

$$= \left\{45 + \left(\frac{-123}{125}\right) \times 10\right\} = 35.16$$

$\therefore$ अपेक्षित माध्य विचलन $= \frac{\Sigma f.|X - M|}{N} = \frac{1976.44}{125} = 15.8$

उदाहरण– चार छात्रों A, B, C, D द्वारा प्राप्त 5, 7, 9, 11 अंकों से मानक विचलन और उसके गुणांक की गणना करें।

हल–

छात्र का नाम	अंक (X)	$(X - \bar{X})$ $= (X - 8)$	$(X - \bar{X})^2$ $= (X - 8)^2$
A	5	– 3	9
B	7	– 1	1
C	9	+ 1	1
D	11	+ 3	9
$N = 4$	$\Sigma X = 32$		$\Sigma(X - \bar{X})^2 = 20$

टिप्पणी

समांतर माध्य, $\bar{X} = \frac{\Sigma X}{N} = \frac{32}{4} = 8$

मानक विचलन, $\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma\left(X-\bar{X}\right)^2}{N}} = \sqrt{\frac{20}{4}} = \sqrt{5} = 2.23$

और, मानक विचलन का गुणांक,

$$= \left(\frac{\sigma}{\bar{X}}\right) = \frac{2.23}{8} = 0.28$$

उदाहरण– निम्नलिखित शृंखला के लिए मानक विचलन की गणना करें–

X	0	10	20	30	40	50	60	70	80
f	150	140	100	80	80	70	30	14	0

हल– यहां, हमारे पास हैं–

X	f	fX	$\left(X-\bar{X}\right)$ = (X – 23)	$\left(X-\bar{X}\right)^2$ = $(X-23)^2$	$f\left(X-\bar{X}\right)^2$ $f(X-23)^2$
0	150	0	– 23	529	79350
10	140	1400	– 13	169	23660
20	100	2000	– 3	9	900
30	80	2400	7	49	3920
40	80	3200	17	289	23120
50	70	3500	27	729	51030
60	30	1800	37	1369	41070
70	14	980	47	2209	30926
80	0	0	57	3249	0
	$N = \Sigma f$ = 664	ΣfX = 15,280			$\Sigma f\left(X-\bar{X}\right)^2$ = 253976

यहां, $\bar{X} = \frac{\Sigma fX}{N}$

$$= \left(\frac{15280}{664}\right) \approx 23$$

$$\therefore \sigma = \sqrt{\frac{\Sigma f\left(X-\bar{X}\right)^2}{N}}$$

$$= \sqrt{\frac{253976}{664}} = 19.557$$

उदाहरण– निम्नलिखित के मानक विचलन की गणना करें–

श्रेणी	5–10	10–15	15–20	20–25	25–30	30–35	35–40	40–45
आवृत्ति	6	5	15	10	5	4	3	2

टिप्पणी

हल– यहां हमारे पास हैं–

श्रेणी	मध्य–मान	आवृत्ति (X)	$(X-\bar{X})$ (f)	$(X-\bar{X})^2$	$f(X-\bar{X})^2$
5–10	7.5	6	– 13.7	187.69	1126.14
10–15	12.5	5	– 8.7	75.69	378.45
15–20	17.5	15	– 3.7	13.69	205.35
20–25	22.5	10	1.3	1.69	16.90
25–30	27.5	5	6.3	39.69	198.45
30–35	32.5	4	11.3	127.69	510.76
35–40	37.5	3	16.3	265.69	797.07
40–45	42.5	2	21.3	453.69	907.38
कुल		$N = \Sigma f = 50$			$\Sigma f(X-\bar{X})^2 = 4140.50$

यहां, $\bar{X} = \frac{\Sigma fX}{N} = \left\{\frac{7.5(6) + 12.5(5) + ... + 42.5(2)}{50}\right\}$

$$\bar{X} = \frac{1060}{50} = 21.2$$

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma f(X-\bar{X})^2}{N}} = \sqrt{\frac{4140.50}{50}} = 9.1$$

मानक विचलन का गुणांक $= \frac{\sigma}{\bar{X}} = \frac{9.1}{21.2} = 0.429$

उदाहरण– निम्न तालिका से शार्ट–कट विधि द्वारा मानक विचलन और उसके गुणांक की गणना करें–

श्रेणी	20 – 25	25 – 30	30 – 35	35 – 40	40 – 45	45 – 50
आवृत्ति	18	44	102	160	57	91

हल– मान लीजिए, माना गया माध्य $A = 32.5$

मध्य–मान (X)	आवृत्ति (f)	(X –A) = d	d^2	fd	fd^2
22.5	18	– 10	100	– 180	1800
27.5	44	– 5	25	– 220	1100
32.5	102	0	0	0	0
37.5	160	5	25	800	4000
42.5	57	10	100	570	5700
47.5	91	15	225	285	4275
कुल	N = 472			$\Sigma fd = 1255$	$\Sigma fd^2 = 16875$

∴ मानक विचलन, $\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)^2}$

$$= \sqrt{\frac{16875}{472} - \left(\frac{1255}{472}\right)^2} = \sqrt{35.75 - 7.06} = \sqrt{28.69} = 5.356$$

और, समांतर माध्य,

$$\bar{X} = \left\{A + \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)\right\} = \left\{32.5 + \left(\frac{1255}{472}\right)\right\} = 35.15$$

मानक विचलन का गुणांक $= \left(\frac{\sigma}{\bar{X}}\right) = \frac{5.356}{35.15} = 0.152$

टिप्पणी

उदाहरण– चरण विचलन विधि द्वारा निम्न तालिका से मानक विचलन और उसके गुणांक की गणना करें–

श्रेणी	20–30	30–40	40–50	50–60	60–70	70–80	80–90
आवृत्ति	3	61	132	153	140	51	2

हल– मान लीजिए माना गया माध्य, $A = 55$, तो हमें मिलता है–

मध्य–मान (X)	आवृत्ति (f)	(X – A) = (X – 55)	$d = \left(\frac{X-A}{i}\right)$ = (X – 55)/10	fd	fd^2
25	3	– 30	– 3	– 9	27
35	61	– 20	– 2	– 122	244
45	132	– 10	– 1	– 132	132
55	153	0	0	0	0
65	140	10	1	140	140
75	51	20	2	102	204
85	2	30	3	6	18
कुल	$N = \Sigma f = 542$			$\Sigma fd = -15$	$\Sigma fd^2 = 765$

$\therefore$ मानक विचलन, $\sigma = i \times \sqrt{\left\{\frac{\Sigma fd^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)^2\right\}}$

$$= 10 \times \sqrt{\left\{\frac{765}{542} - \left(\frac{-15}{542}\right)^2\right\}} = 11.84$$

और, समांतर माध्य,

$$\bar{X} = \left\{A + \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right) \times i\right\}$$

$$= \left\{55 + \left(\frac{-15}{542}\right) \times 10\right\} = 54.72$$

मानक विचलन का गुणांक $= \frac{\sigma}{\bar{X}} = \frac{11.84}{54.72} = 0.216$

उदाहरण– अग्रलिखित परिणाम 10 मैचों में दो खिलाड़ियों A और B द्वारा बनाए गए रन के आधार पर प्राप्त किया गया। अधिक सुसंगत खिलाड़ी कौन है?

	खिलाड़ी *A*	खिलाड़ी *B*
औसत रन	44.30	62.70
मानक विचलन	4.21	9.83

टिप्पणी

हल– खिलाड़ी A के लिए–

भिन्नता का गुणांक $(C.V_A) = \left(\frac{\sigma}{\bar{X}}\right)\times 100 = \left(\frac{4.21}{44.30}\right)\times 100 = 9.503$

खिलाड़ी B के लिए–

भिन्नता का गुणांक $(C.V_B) = \left(\frac{\sigma}{\bar{X}}\right)\times 100 = \left(\frac{9.83}{62.70}\right)\times 100 = 15.678$

जैसे कि $C–V_A < C–V_B$, खिलाड़ी A खिलाड़ी B से ज्यादा सुसंगत है।

उदाहरण– 150 छात्रों का माध्य वजन, 60 किलो है। लड़कों का माध्य वजन 10 किलो के एक मानक विचलन के साथ 70 किलो है। लड़कियों के लिए, माध्य वजन 55 किलो है और मानक विचलन 15 किलो है। लड़कों की संख्या और संयुक्त मानक विचलन का पता लगाएं।

हल– (i) $\bar{X}_{12} = \left(\frac{N_1\bar{X}_1 + N_2\bar{X}_2}{N_1+N_2}\right)$

दिया हुआ है $\bar{X}_{12} = 60, \bar{X}_1 = 70, \bar{X}_2 = 55, N_1 + N_2 = 150$

हमें लड़कों की संख्या का पता लगाना है।

मान लीजिए, $N_1 =$ लड़कों की संख्या

$N_2 =$ लड़कियों की संख्या $= (150 - N_1)$

प्रतिस्थापन पर, हमारे पास है–

$$60 = \left\{\frac{N_1(70)+(150-N_1)55}{150}\right\}$$

स्थानांतरित करके, $N_1 = 100 \Rightarrow N_2 = 50$

(ii) संयुक्त मानक विचलन–

$$\sigma_{12} = \sqrt{\frac{N_1\sigma_1^2 + N_2\sigma_2^2 + N_1d_1^2 + N_2d_2^2}{N_1+N_2}}$$

$N_1 = 50, \sigma_1 = 10,$

$N_2 = 100, \sigma_2 = 15$

$d_1 = |\bar{X}_1 - \bar{X}_{12}| = |70-60| = 10$

$d_2 = |\bar{X}_2 - \bar{X}_{12}| = |55-60| = 5$

$$\therefore \sigma_{12} = \sqrt{\frac{50(10)^2 + 100(15)^2 + 50(10)^2 + 100(5)^2}{50+100}}$$

$\sigma_{12} = 15.28$

उदाहरण– निम्न तालिका से लुप्त जानकारी खोजें–

	समूह I	*समूह II*	*समूह III*	*संयुक्त*
संख्या	50	?	90	200
मानक विचलन	6	7	?	7.746
माध्य	113	?	115	116

हल–

मान लीजिए N_1, N_2, N_3 क्रमशः 1, 2 और 3 समूहों में टिप्पणियों की संख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं।

$$(N_1 + N_2 + N_3) = 200$$

$$\Rightarrow \quad (50 + N_2 + 90) = 200$$

$$\Rightarrow \quad N_2 = 60$$

संयुक्त माध्य–

$$\bar{X}_{123} = \left(\frac{N_1\bar{X}_1 + N_2\bar{X}_2 + N_3\bar{X}_3}{N_1 + N_2 + N_3}\right)$$

$$\Rightarrow \quad 116 = \left\{\frac{50(113) + 60\bar{X}_2 + 90(115)}{50 + 60 + 90}\right\}$$

$$\Rightarrow \quad \bar{X}_2 = 120 \text{ (On transposing)}$$

संयुक्त मानक विचलन–

$$\sigma_{123} = \sqrt{\frac{N_1\sigma_1^2 + N_2\sigma_2^2 + N_3\sigma_3^2 + N_1d_1^2 + N_2d_2^2 + N_3d_3^2}{N_1 + N_2 + N_3}}$$

$$\sigma_{123} = 7.746, \qquad d_1 = \left|\bar{X}_1 - \bar{X}_{123}\right| = |113 - 116| = 3$$

$$\sigma_1 = 6 \quad d_2 = \left|\bar{X}_2 - \bar{X}_{123}\right| = |120 - 116| = 4$$

$$\sigma_2 = 7 \quad d_3 = \left|\bar{X}_3 - \bar{X}_{123}\right| = |115 - 116| = 1$$

$$\sigma_3 = ?$$

इस प्रकार, $\sigma_{123} = \sqrt{\dfrac{50(6)^2 + 60(7)^2 + 90\sigma_3^2 + 50(3)^2 + 60(4)^2 + 90(1)^2}{50 + 60 + 90}}$

$$= 7.746$$

$\Rightarrow \quad \sigma_3 = 8$ (स्थानांतरित करने पर)

भिन्नता का गुणांक

मानक विचलन के वर्ग, अर्थात σ^2 को विचरण कहा जाता है और मानक विचलन से अधिक बार निर्दिष्ट किया जाता है।

स्पष्ट है, मानक विचलन σ या उसका वर्ग, विचरण, दो श्रृंखलाओं की तुलना में बहुत उपयोगी नहीं हो सकता, जहां या तो इकाइयां अलग हैं या माध्य मूल्य अलग हैं। इस प्रकार, एक परीक्षा में 5 का σ, जहां माध्य स्कोर 30 है का, जहां एक

परीक्षा में माध्य स्कोर 90 है, से पूरी तरह से अलग अर्थ है। स्पष्ट है, दूसरी परीक्षा में परिवर्तनशीलता बहुत कम है। इस समस्या को सुलझाने करने के लिए, हम विभिन्नता के गुणांक, V को परिभाषित और उपयोग करते हैं। जहां,

$$V = \frac{\sigma}{\bar{x}} \times 100$$

यह प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है।

उदाहरण– निम्नलिखित पारी की एक श्रृंखला में दो बल्लेबाजों A और B के स्कोर हैं–

A	12	115	6	73	7	19	119	36	84	29
B	47	12	76	42	4	51	37	48	13	0

कौन बेहतर रन लेने वाला है? कौन अधिक निरंतर है?

हल– दो बल्लेबाजों, A और B में से जो बेहतर रन लेने वाला है, तय करने के लिए, हमें उनकी बल्लेबाजी औसत का पता लगाना चाहिए। जिसका औसत उच्च होगा, एक बेहतर बल्लेबाज के रूप में माना जाएगा।

बल्लेबाजी में निरंतरता का निर्धारण करने के लिए, हमें विभिन्नता के गुणांक का निर्धारण करना चाहिए। यह गुणांक जितना कम होगा, खिलाड़ी उतना अधिक सुसंगत होगा।

A			*B*		
स्कोर *X*	*X*	X^2	स्कोर *X*	*X*	X^2
12	–38	1,444	47	14	196
115	+65	4,225	12	–21	441
6	–44	1,936	76	43	1,849
73	+23	529	42	9	81
7	–43	1,849	4	– 29	841
19	–31	961	51	18	324
119	+69	4,761	37	4	16
36	–14	196	48	15	225
84	+34	1,156	13	–20	400
29	–21	441	0	–33	1,089
$\Sigma X = 500$		17,498	$\Sigma X = 330$		5,462

बल्लेबाज A:

$$\bar{X} = \frac{500}{10} = 50$$

$$\sigma = \sqrt{\frac{17,498}{10}} = 41.83$$

$$V = \frac{41.83 \times 100}{50}$$

$= 83.66$ प्रतिशत

बल्लेबाज B:

$$\bar{X} = \frac{330}{10} = 33$$

$$\sigma = \sqrt{\frac{5,462}{10}} = 23.37$$

$$V = \frac{23.37}{33} \times 100$$

$= 70.82$ प्रतिशत

A बेहतर बल्लेबाज है क्योंकि *B* के 33 की तुलना में उसका औसत 50 है, लेकिन *B* अधिक सुसंगत है क्योंकि *A* के 83.66 की तुलना में उसके मामले में भिन्नता 70. 8 है।

टिप्पणी

उदाहरण– निम्न तालिका साल 1914 और 1918 में एक कॉलेज में दाखिल किए गए छात्रों की उम्र का वितरण देती है। पता लगाएं कि दोनों समूहों में से उम्र में अधिक परिवर्तनशील कौन–सा है।

उम्र	*छात्रों की संख्या*	
	1914	*1918*
15	–	1
16	1	6
17	3	34
18	8	22
19	12	35
20	14	20
21	13	7
22	5	19
23	2	3
24	3	–
25	1	–
26	–	–
27	1	–

हल–

आयु	*माना गया मान–21* *1914*				*माना गया माध्य–19* *1918*			
	f	*x'*	*fx'*	*fx'²*	*f*	*x'*	*fx*	*fx'²*
15	0	–6	0	0	1	–4	–4	16
16	1	–5	–5	25	6	–3	–18	54
17	3	–4	–12	48	34	–2	–68	136
18	8	–3	–24	72	22	–1	–22	22
19	12	–2	–24	48			–112	
20	14	–1	–14	14				
			–79		35	0	0	0
21	13	0	0	0	20	1	20	20
22	5	1	5	5	7	2	14	28
23	2	2	4	8	19	3	57	171
24	3	3	9	27	3	4	12	48
25	1	4	4	16	147		+103	495
26	0	5	0	0			–9	
27	1	6	6	36				
	63		+28	299				
			–51					

टिप्पणी

1914 समूह :

$$\sigma = \sqrt{\frac{\sum fx'^2}{N} - \left[\frac{\sum (fx')}{N}\right]^2}$$

$$= \sqrt{\frac{299}{63} - \left(\frac{-51}{63}\right)^2}$$

$$= \sqrt{4.746 - 0.64} = \sqrt{4.106}$$

$$= 2.02.$$

$$\bar{x} = 21 + \left(\frac{-51}{63}\right) = 21 - 0.80 = 20.2$$

$$V = \frac{2.02}{20.2} \times 100$$

$$= 0.1 \times 100 = 10$$

1918 समूह :

$$\sigma = \sqrt{\frac{495}{147} - \left(\frac{-9}{147}\right)^2} = \sqrt{3.3673 - 0.0037}$$

$$= \sqrt{3.3636} = 1.834$$

$$\bar{x} = 19 + \left(\frac{-9}{147}\right)$$

$$= 19 - 0.06 = 18.94$$

$$V = \frac{1.834}{18.94} \times 100$$

$$= 9.68$$

1914 समूह की भिन्नता का गुणांक 10 और 1918 समूह का 9.68 है। इसका मतलब है कि केवल मात्र लेकिन 1914 समूह अधिक परिवर्तनशील है।

मोमेंट

शब्द 'मोमेंट', यांत्रिकी से लिया गया है, जहां 'एक बल का मोमेंट, एक धुरी लीवर को मोड़ने के लिए एक बल की प्रवृत्ति या क्षमता का वर्णन करता है। बल F_1 का एक F_1x_1 काउंटर दक्षिणावर्त मोमेंट है और बल F_2 का एक F_2x_2 दक्षिणावर्त मोमेंट है।

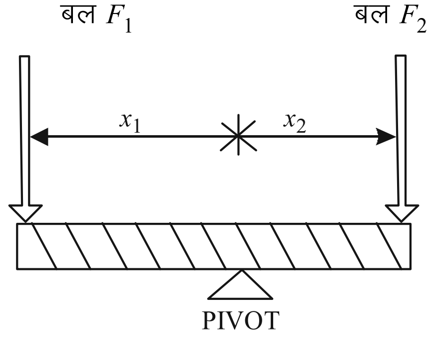

टिप्पणी

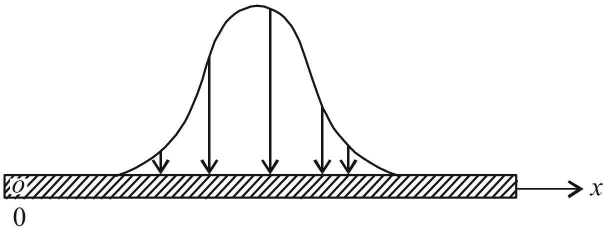

एक आवृत्ति वितरण के लिए हम कल्पना करते हैं कि मूल 0 से दूरी x पर, x के साथ जुड़े आवृत्ति (f) के बराबर बल काम करता है और इस तरह 0 के पास मोमेंट $f(x)$ के बराबर है। पूरे वितरण का योगदान लेते हुए, फिर मोमेंट $\Sigma f(x)$ है। फिर यह लीवर पर उत्पादित मोमेंट है, अगर पूरा वितरण एक मूल में धुरी लीवर पर बैठा हुआ था। शामिल वस्तुओं की संख्या को सही करने के लिए (हालांकि, हम वितरण के केवल 'आकार' को निर्दिष्ट में रुचि रखते हैं), हम Σf यानी आइटम की कुल संख्या से विभाजित करते हैं। फिर मूल के पास 'पहला' मोमेंट ν_1', (दन एक प्राइम) है।

$$\nu_1' = \frac{\Sigma f(x)}{\Sigma f}$$

यांत्रिकी में जैसे की तरह, हम x की उच्च पॉवर द्वारा f गुणा करने द्वारा उच्च क्रम के मोमेंट को भी परिभाषित कर सकते हैं। इस प्रकार–

$$\nu_2' = \frac{\Sigma fx^2}{\Sigma f} \qquad \nu_3' = \frac{\Sigma fx^3}{\Sigma f}$$ और आगे भी ऐसे ही।

सामान्य में, $\nu_r' = \dfrac{\Sigma fx^r}{\Sigma f}$

मूल के पास मोमेंट लेने की बजाय, हम उन्हें किसी भी अन्य बिंदु x_o, (उस बिंदु पर लीवर बार की धुरी के बराबर) पर ले सकते हैं। फिर,

$$\nu_r = \frac{\Sigma f(x - x_0)^r}{\Sigma f}$$

इस प्रकार, ν_r', $x_o = 0$ के साथ ν_r का एक विशेष मामला है। $x_o = \bar{x}$, के साथ मोमेंट की शृंखला यानी, माध्य पर मोमेंट का विशेष महत्व है और μ (म्यू) से चिह्नित किया जाता है।

$$\mu_r = \frac{\Sigma f(x - \bar{x})^r}{\Sigma f}$$

माध्य पर मोमेंट

माध्य $\bar{x}$ पर एक आवृत्ति वितरण के मोमेंट का विशेष महत्व है। इसे इस प्रकार विस्तार से समझाया गया है–

शून्यवां मोमेंट μ_0, निम्नानुसार व्यक्त किया गया है–

$$\mu_0 = \frac{\Sigma f(x - \bar{x})^0}{\Sigma f}$$

लेकिन जैसे कि शून्य पॉवर वाली कोई भी संख्या एक होती है, यह स्पष्ट है कि,

$$\mu_0 = \frac{\Sigma f}{\Sigma f} = 1$$

यह सभी वितरणों के लिए है।

टिप्पणी

इसी प्रकार, $\mu_1 = \frac{\Sigma f(x-\bar{x})}{\Sigma f}$

हालांकि, माध्य $\bar{x}$, की परिभाषा से, विचलन का बीजीय योग, यानी, μ_1, $= 0$ है, इसलिए वितरण के लिए $\Sigma f(x - \bar{x}) = 0$ है।

अगला $\mu_2 = \Sigma f(x - \bar{x})^2/\Sigma f$ परिभाषा द्वारा वितरण का विचरण है। इस प्रकार,

$$\mu_0 = 1$$
$$\mu_1 = 0$$
$$\mu_2 = \sigma^2$$

यह सभी वितरणों के लिए है।

अभी तक एक और बिंदु है, जिसका मोमेंट के बारे में अनुमान निकाला जा सकता है। समांतर माध्य के गुणों पर चर्चा करते हुए हमने पहले से ही देखा है कि माध्य के नीचे के विचलन का योग, माध्य के ऊपर के विचलन के योग के बराबर होता है। इससे पता चलता है कि नकारात्मक और सकारात्मक विचलन रद्द हो जाते हैं। यह सब वितरण में ऐसा होगा, चाहे सममित या विषम, जब विचलन को पहली पॉवर पर उठाया जाता है।

जब विचलन को किसी भी सम पॉवर के लिए उठाया जाता है, तो उनके सभी चिह्न सकारात्मक हो जाएंगे और अब रद्द नहीं होंगे।

जब विचलन को किसी भी विषम पॉवर (1 को छोड़कर) के लिए उठाया जाता है और नकारात्मक विचलन का योग, सकारात्मक विचलन के योग के बराबर होता है, वितरण सममित है। इस प्रकार केवल सममित वितरण में,

$\mu_3 = 0$ $\mu_5 = 0$ $\mu_7 = 0$, आदि

इस कारण से हम इन मोमेंट को विषमता के मापों के रूप में उपयोग कर सकते हैं।

उदाहरण– निम्न डाटा से माध्य पर पहले चार मोमेंट खोजें–

कक्षा–अंतराल	0–10	10–20	20–30	30–40
आवृत्ति	1	3	4	2

हल–

आकार	x	f	$x' = \frac{x-25}{10}$	fx'	fx'^2	fx'^3	fx'^4
0–10	5	1	–2	–2	4	–8	+16
10–20	15	3	–1	–3	3	–3	+3
20–30	25	4	0	0	0	0	0
30–40	35	2	1	2	2	2	+2
		10		–3	9	–9	21

एकपक्षीय माध्य पर मोमेंट

$$\nu_1 = \frac{-3 \times 10}{10} = -3 \qquad \nu_2 = \frac{9}{10} \times 10^2 = 90$$

$$\nu_3 = \frac{-9}{10} \times 10^3 = -900 \qquad \nu_4 = \frac{21}{10} \times 10^4 = 21000$$

3.4.4 सह संबंध–विश्लेषण

भौतिक विज्ञान में भविष्य कथन की क्षमता अन्य विषयों की अपेक्षा अधिक होती है। भौतिक विज्ञान ऐसे ठोस सिद्धांतों एवं वैज्ञानिक नियंत्रणों पर आधारित है, जिसके आधार पर विशिष्ट परिस्थितियों के अंतर्गत, किसी एक घटना के संबंध विश्वास के साथ पूर्णतः सत्य भविष्य–कथन किया जा सकता है। अन्य विषयों में भी भविष्य कथन विश्वसनीय ढंग से किया जा सकता है। परंतु उनमें विश्वास की मात्रा उतनी अधिक नहीं होती। भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में कार्य–करण (Cause and Effect) के संबंध को सामान्यतः सरलतापूर्वक नियंत्रित किया जा सकता है। परंतु मनोविज्ञान व शिक्षा के क्षेत्र में कार्य–करण के संबंधों को समझना अपेक्षाकृत कठिन होता है, क्योंकि मानव–व्यवहार एक जटिल प्रक्रिया है तथा उसको प्रभावित करने वाले कारकों का ठीक–ठीक पता लगाना एक कठिन समस्या है। लेकिन इन समस्याओं के होते हुए भी मनोवैज्ञानिकों ने अपने सिद्धांतों के निर्माण में वैज्ञानिक पद्धति को ही अपने अध्ययन का मूल आधार बनाया तथा कार्य–करण के संबंध को समझने के लिए सह–संबंध विधियों (Correlation Techniques) का सहारा लिया है। वास्तव में, आज के वैज्ञानिक युग में मनोवैज्ञानिक चरों (Variables) की व्याख्याओं में भी वैसी ही वैज्ञानिक विचारधारा की कठोरता, शुद्धता व वस्तुनिष्ठता सक्रिय दिखायी पड़ती है, जैसी भौतिक विज्ञान में दिखलायी पड़ती है और इसके लिए मनोवैज्ञानिक भी सह–संबंध विधियों को सक्रिय रूप में उपयोग में ला रहे हैं।

जब दो या दो से अधिक चरों (Variables) तथा घटनाओं में साहचर्यात्मक संबंध (Associative Relationship) पाया जाता है, तो ऐसे पारस्परिक संबंध को सह–संबंध कहते हैं।

अन्य शब्दों में–सह–संबंध से दो चरों में पाये जाने वाले संयुक्त–संबंध (Joint-relation) का पता लगाया जाता है।

फरग्यूसन (Ferguson) के शब्दों में–''सह–संबंध का उद्देश्य दो चरों में पायी जाने वाली संबंध की मात्रा का पता लगाना होता है।''

सह–संबंध की दिशायें (Directions of Correlation)

दो घटनाओं या चरों के मध्य में सह–संबंध प्रायः दो दिशाओं–समान दिशा में अथवा विपरीत दिशा में हो सकता है

समान एवं विपरीत दिशा (Equal and Opposite Direction)

जब दो चरों की पारस्परिक अंतः क्रिया में, एक चर की मात्रा जैसे–जैसे बढ़ती है परिणामस्वरूप दूसरे चर की मात्रा में भी तद्नुसार वृद्धि होती है तब सह–संबंध समान दिशा में होता है। इसके विपरीत, जब दो चरों की पारस्परिक अंतःक्रिया में एक चर की मात्रा बढ़ती है और दूसरे चर की मात्रा घटती है अर्थात् दूसरे चर पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, तब सह–संबंध विपरीत दिशा में होता है।

इन चरों (Variables) में ऋणात्मक (Negative) सह–संबंध पाया जाता है।

सह–संबंध के प्रकार

टिप्पणी

प्रायः सह–संबंध चार प्रकार का होता है।

1. धनात्मक सह–संबंध (Positive Correlation)

जब दो चरों (Variables) में एक चर की मात्रा बढ़ने पर दूसरे चर की मात्रा में भी वृद्धि होती है। अथवा एक चर की मात्रा में कमी होने पर दूसरे चर की मात्रा में भी कमी आती है तो दोनों चरों की ऐसी अनुरूपता को धनात्मक सह–संबंध कहते हैं। जब दो चर एक ही दिशा में परिवर्तित होते हैं तो उनमें धनात्मक सह–संबंध पाया जाता है। अन्य शब्दों में जब दोनों चर साथ–साथ एक ही दिशा मे घटते अथवा बढ़ते हैं तो उनमें धनात्मक सह–संबंध मध्यम एवं निम्न प्रकार का हो सकता है। धनात्मक सह–संबंध तीन प्रकार के होते हैं–

(i) पूर्णतः धनात्मक सह–संबंध (Perfect Positive Correlation) : जब दो चरों की मात्राएं समान दिशा में समान अनुपात में घटती–बढ़ती हैं तो उनमें पूर्णतः धनात्मक सह–संबंध पाया जाता है। इस प्रकार का सह–संबंध एक सरल रेखा का रूप लिये हुए होता है और यह रेखा नीचे से ऊपर उठती हुई होती है। इस चित्र में OP रेखा पूर्णतः धनात्मक सह–संबंध को स्पष्ट करती है।

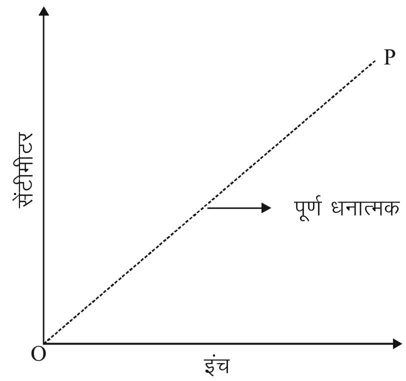

(ii) उच्च श्रेणी का धनात्मक सह–संबंध (High Positive Correlation) : कभी–कभी धनात्मक सह–संबंध पूर्ण न होकर उच्च श्रेणी का भी हो सकता है। ऐसी स्थिति में सह–संबंध एक पतली रेखा न होकर कुछ मोटी रेखा के रूप में दिखाई देता है।

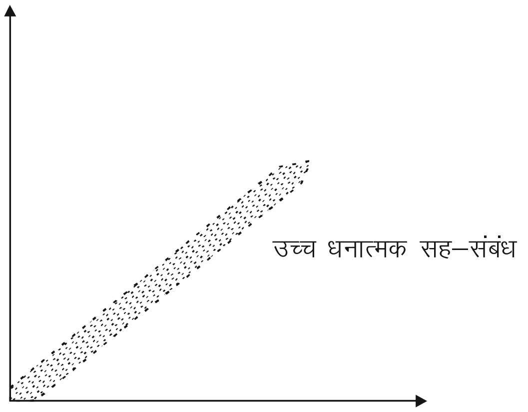

चित्र में उच्च धनात्मक सह–संबंध को दर्शाया गया है इस स्थिति में दोनों चर एक दिशा में बढ़ते अथवा घटते हैं लेकिन एक अनुपात में नहीं।

(iii) मध्यम अथवा निम्न सह–संबंध (Medium or Low Correlation) : जब दोनों चरों के मध्यमानों का वितरण पर्याप्त मात्रा में मध्य रेखा के इधर–उधर फैला रहता है तब दोनों चरों में सह–संबंध मध्यम अथवा निम्न हो सकता है। ऐसे सह–संबंध को सामान्य सह–संबंध भी कहा जा सकता है यह स्थिति निम्न चित्र में स्पष्ट है–

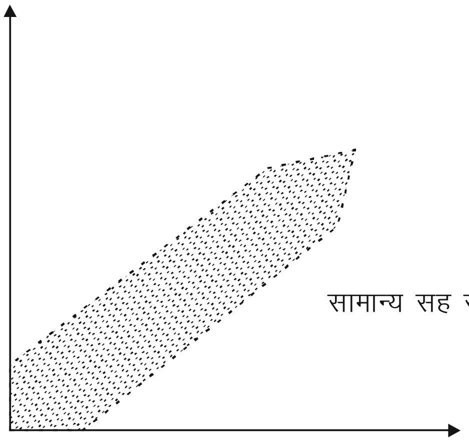

2. ऋणात्मक सह–संबंध (Negative Correlation)

जब दो चरों (Variables) को मात्रा में एक चर की मात्रा घटने पर दूसरे चर की मात्रा बढ़ती है अथवा एक चर की मात्रा बढ़ने पर दूसरे चर की मात्रा घटती है तो ऐसी स्थिति में उनमें ऋणात्मक सह–संबंध पाया जाता है। अन्य शब्दों में ऋणात्मक सह–संबंध की स्थिति में दोनों चर विपरीत दिशा में चलते हैं। चरों की बहिर्मुखता तथा अन्तर्मुखता ऋणात्मक सह–संबंधों का एक अच्छा उदाहरण है। ऋणात्मक सह–संबंध भी धनात्मक सह–संबंध की धनात्मक सह–संबंध की भांति पूर्ण, उच्च श्रेणी का अथवा सामान्य (मध्यम/उच्च) हो सकता है।

(i) पूर्ण ऋणात्मक सह–संबंध (Perfect Negative Correlation) : जब दो चरों की मात्राएं समान अनुपात में विपरीत दिशा में घटती अथवा बढ़ती है तो उनमें पूर्णतः ऋणात्मक सह–संबंध पाया जाता है। इस प्रकार का सह–संबंध एक सरल रेखा के रूप में होता है जो ऊपर से नीचे गिरती हुई होती है जैसा निम्न चित्र में स्पष्ट है–

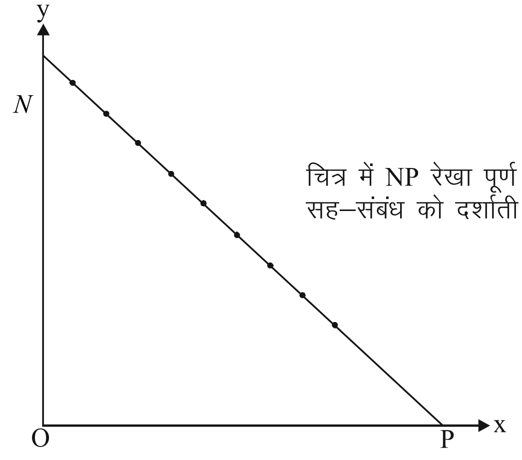

(ii) उच्च ऋणात्मक सह–संबंध (High Negative Correlation) : धनात्मक सह–संबंध की भांति ऋणात्मक सह–संबंध भी कभी–कभी पूर्ण न होकर उच्च श्रेणी का भी हो सकता है। दोनों श्रेणियों में उच्च ऋणात्मक सह–संबंध को निम्न रेखा चित्र के मध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है।

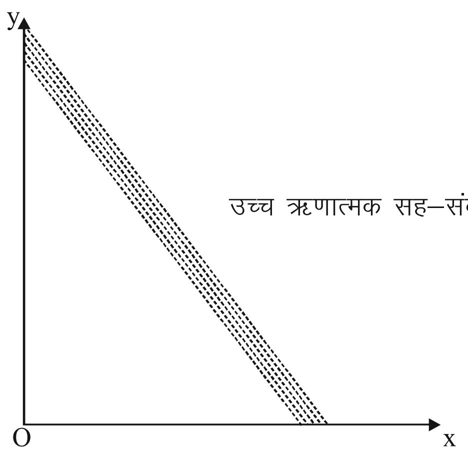

(iii) मध्यम/निम्न (सामान्य) ऋणात्मक सह–संबंध (Moderate Negative Correlation) : जब दोनों चरों के मध्यमानों का वितरण मध्य रेखा के दोनों ओर फैला रहता है तो सामान्य ऋणात्मक सह–संबंध होता है। जैसा निम्न चित्र में स्पष्ट है ऐसी स्थिति में सह–संबंध रेखा पतली न होकर काफी मोटी होती है।

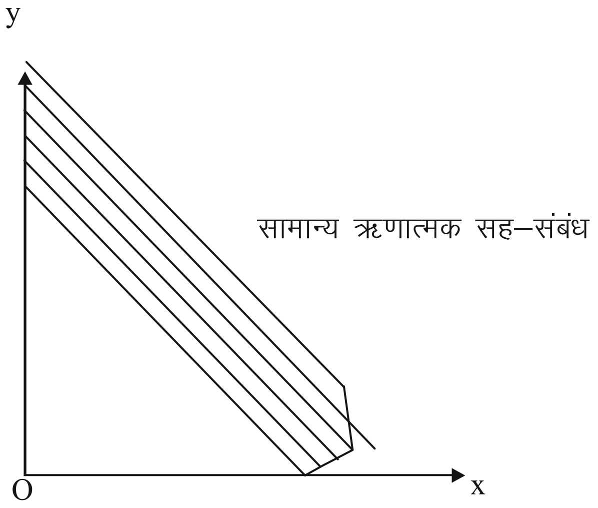

3. शून्य सह–संबंध (Zero Correlation)

जब दो चरों में से कोई भी चर एक दूसरे को प्रभावित नहीं करता है, तब ऐसी स्थिति में दोनों चरों में सहचर्यात्मक संबंध (Associative Relationship) भी शून्य होता है, और उनमें सह–संबंध की मात्रा भी शून्य होती है। जैसे एक बालक के भार (Weight) तथा उसकी बुद्धिलब्धि (IQ) में कोई भी चर एक दूसरे पर प्रभाव नहीं डालता है अतः इन दोनों चरों में शून्य सह–संबंध की मात्रा शून्य है ऐसे सह–संबंध को निम्नांकित चित्र के माध्यम से भी स्पष्ट किया जा सकता है।

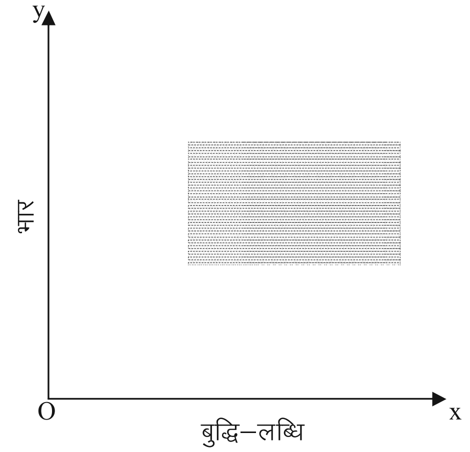

इस आकृति में बुद्धिलब्धि को x अक्ष पर तथा भार को y अक्ष पर दर्शाया गया है। चित्र को देखने से पता चलता है कि बुद्धि व भार के मान मध्य रेखा के चारों ओर बिखरे हुए हैं। इनमें न तो ऋणात्मक और न ही धनात्मक सह–संबंध है।

4. वक्र–रेखीय सह–संबंध (Curvilinear Correlation)

सह–संबंध के उपरोक्त तीन मुख्य प्रकारों के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार का भी सह–संबंध पाया जाता है, जिसे वक्र–रेखीय सह–संबंध कहते हैं सह–संबंध की ऐसी स्थिति में दोनों चरों में सह–संबंध एक विशेष सीमा तक धनात्मक होता है और आगे चलकर जब दो चरों में सह–संबंध पहले धनात्मक तथा फिर ऋणात्मक होता है तब सह–संबंध रेखा केवल सीधी (Linear) न होकर आगे जाकर कुछ वक्र (Curve) वाली होती है जैसा निम्न चित्र में स्पष्ट है।

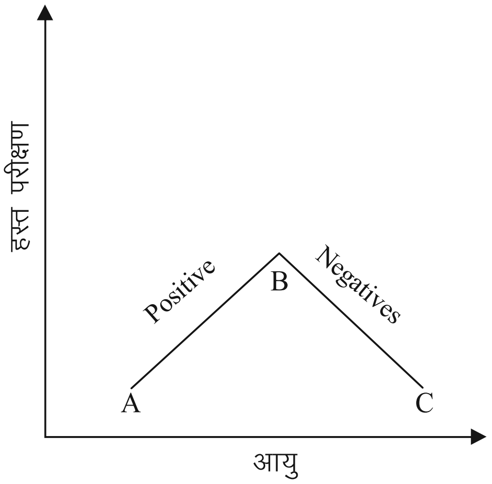

ऊपर चित्र में स्पष्ट है कि जैसे–जैसे आयु बढ़ती है, बालक के हस्त परीक्षण (High Grip Test) में प्राप्तांक भी बढ़ते चले जाते हैं परंतु एक विशेष अवस्था के बाद इसी परीक्षण में प्राप्तांक घटने लगते हैं चित्र में बिन्दु A से B तक धनात्मक सह–संबंध है और B से C तक ऋणात्मक सह–संबंध है प्रारंभ जैसे–जैसे आयु बढ़ती है व्यक्ति की हस्त परीक्षण शक्ति भी बढ़ती है अर्थात् एक उम्र के बाद शारीरिक तथा आयु में ऋणात्मक सह–संबंध दृष्टिगोचर होने लगता है। इस प्रकार सह–संबंध पहले एक दिशा की ओर अग्रसर होता है और उसके पश्चात् दूसरी दिशा में। इस प्रकार के दो

चरों में पाये जाने वाले सहचर्यात्मक संबंध को वक्र–रेखीय (Curvilinear) सह–संबंध कहते हैं।

निरर्थक सह–संबंध (Nonsensical Correlation)

कभी–कभी साधारण अध्यनकर्ता अपने अध्ययन में दो पूर्णतः असह–संबंधित चरों में भी सह–संबंध की स्थिति स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं ऐसा तब ही होता है जब अध्ययनकर्ता को दोनों चरों में पारस्परिक कार्य–कारण के संबंध का ठीक ज्ञान नहीं होता है। जैसे अध्ययनकर्ता अपने आंकड़ों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास करता है कि देश में जैसे–जैसे सड़कों की संख्या बढ़ रही है वैसे–वैसे बीमारों की संख्या भी बढ़ रही है। यह प्रयास निरर्थक है क्योंकि इन आंकड़ों का परस्पर कोई संबंध नहीं है।

सह–संबंध गुणांक

सह–संबंध से केवल यही ज्ञात होता है कि दोनों चरों Variables में पारस्परिक संबंध किस प्रकार का है–धनात्मक, ऋणात्मक या शून्य। इसके अतिरिक्त हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि सह–संबंध थोड़ा है, सामान्य है अथवा अधिक है परंतु इसके द्वारा दोनों चरों में सह–संबंध की मात्रा का परिशुद्ध (Precise) वस्तुनिष्ठ (Objective) तथा स्पष्ट ज्ञान उपलब्ध नहीं होता है। इस दोष को दूर करने के लिए सह–संबंध को सह–संबंध गुणांक के रूप में व्यक्त किया जाता है। सह–संबंध गुणांक एक प्रकार का ऐसा सूचकांक Index है जिससे दो चरों में एक का ज्ञान होने पर दूसरे चर के भविष्य में भविष्य कथन किया जा सकता है।

सह–संबंध गुणांक दो चरों में पाये जाने वाला ऐसा अनुपात है जिससे यह पता लगता है कि एक चर में होने वाले परिवर्तन दूसरे चर में होने वाले परिवर्तनों पर कितनी मात्रा में आधारित है, अथवा किस मात्रा में उनका अनुसरण करते हैं।

सह–संबंध गुणांक का विस्तार (Magnitudinal Co-efficient Correlation)

सामान्यतः सह–संबंध गुणांक का मान +1.00 से –1.00 तक आता है। अर्थात् इसके सभी मान +1.00 से –1.00 तक की सीमाओं के अंतर्गत ही रहते हैं जब सह–संबंध गुणांक का मान (+) में आता है तब वह धनात्मक सह–संबंध का प्रतीक होता है और जब इसका मान (–) में आता है तब ऋणात्मक सह–संबंध कहलाता है। इन दोनों दशाओं के विपरीत जब सह–संबंध गुणांक का मान शून्य (Zero) होता है तब सह–संबंध शून्य कहलाता है। सह–संबंध के विस्तार को निम्न प्रकार से भी समझाया जा सकता है।

उदाहरण : एक परीक्षा में 10 छात्रों ने अर्थशास्त्र एवं वाणिज्य में निम्न अंक प्राप्त किए।

क्रम संख्या	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
अर्थशास्त्र	30	25	23	29	24	28	31	22	32	26
वाणिज्य	32	27	25	34	26	36	38	24	39	28

टिप्पणी

हल :

क्रम संख्या *x*	अर्थशास्त्र *x*	वाणिज्य *y*	Rank *x*	Rank *y*	कोटि अंतर *D*	कोटि अंतरों के वर्ग का योग $\sum D^2$
1	30	32	3	5	–2	4
2	25	27	7	7	0	0
3	23	25	9	9	0	0
4	29	34	4	4	0	0
5	24	26	8	8	0	0
6	28	36	5	3	2	4
7	31	38	2	2	0	0
8	22	24	10	10	0	0
9	32	39	1	1	0	0
10	26	28	6	6	0	0
योग						8
				N = 10 $\sum D^2 = 8$		

$$P = 1 - \frac{6\sum D^2}{N(N^2-1)}$$

$$P = 1 - \frac{6(8)}{10(10^2-1)} \quad P = 1 - \frac{48}{10(99)} = P = 1 - \frac{48}{990}$$

$$P = 1 - 0.048 = 0.952 \qquad \text{or} \qquad 0.95$$

विवेचन–दोनों विषयों में अत्याधिक उच्च श्रेणी का धनात्मक सह–संबंध है।

सह–संबंध गुणांक का विस्तार

धनात्मक सह–संबंध

- + 1.00 पूर्ण धनात्मक सह–संबंध
- + 1.00 – + 0.99 → उच्च श्रेणी का सह–संबंध
- + 0.99 – + 0.70 → सामान्य सह–संबंध
- + 0.70 – + 0.40 → निम्न परन्तु निश्चित सह–संबंध
- + 0.40 – + 0.20 → सूक्ष्म एवं नगण्य सह–संबंध

ऋणात्मक सह–संबंध

- – 0.20 सूक्ष्म एवं नागण्य सह–संबंध
- – 0.40 निम्न परन्तु निश्चित सह–संबंध
- – 0.70 सामान्य सह–संबंध
- – 0.99 उच्च श्रेणी का ऋणात्मक सह–संबंध
- + 1.00 पूर्ण ऋणात्मक सह–संबंध

सह–संबंध गुणांक की विशेषताएं (Properties of Co-efficient of Correlation)

सह–संबंध गुणांक की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. **प्रसार** (Range) : सह–संबंध गुणांक का मान –1.00 से लेकर +1.00 के बीच होता है। सह–संबंध गुणांक (τ) का मान कभी भी –1 से कम अथवा सैद्धान्तिक प्रसार –1 से +1 तक है।

2. **इकाइयों का प्रभाव नहीं** (No Effect of Units) : सह–संबंध गुणांक एक शुद्ध अंक है इसकी कोई इकाई नहीं होती है। यदि प्राप्तांकों की इकाइयों को बदल दिया जाए तो सह–संबंध गुणांक के मान में कोई अंतर नहीं आता है यही कारण है कि लंबाई को चाहे इंचों में नापे अथवा सेमी में, किसी दूसरे चर के साथ लंबाई का सह–संबंध गुणांक का मान अपरिवर्तित रहता है।
3. **प्राप्तांकों में स्थिरांक जोड़ने, घटाने, गुणा या भाग करने का प्रभाव नहीं** (No Effect of Addition, Subtraction, Multiplication or Division of Constant) : किसी एक अथवा दोनों चरों के प्राप्तांकों में किसी स्थिरांक (Constant) को जोड़ने, घटाने, गुणा करने अथवा भाग देने पर सह–संबंध गुणांक अप्रभावित रहता है। सह–संबंध गुणांक (τ) की यह विशेषता गणना कार्य में अत्यंत उपयोगी है। इस विशेषता के कारण ही बड़े प्राप्तांकों से सह–संबंध गुणांक ज्ञात करते समय सभी प्राप्तांकों से किसी स्थिरांक को घटाने का सुझाव दिया जाता है। दोनों चरों से अलग–अलग स्थिरांक घटाये जा सकते हैं।
4. **सह–संबंध कारणता नहीं** (Correlation is not a Causation) : सह–संबंध कभी भी कार्य–करण संबंध का द्योतक नहीं होता है। कभी–कभी ऐसा भ्रमवश समझ लिया जाता है। यदि x तथा y के बीच सह–संबंध है तो तीन संभावनाएं हो सकती हैं–
   (i) x का कारण y है।
   (ii) y का कारण x है।
   (iii) x व y दोनों का कारण कोई तीसरा चर z है।

केवल सह–संबंध गुणांक के आधार पर इन तीनों में से किसी एक को स्वीकार कर लेना अथवा अन्यों को अस्वीकार करना उचित नहीं होता है।

सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने की विधियां

सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने की मुख्य विधियां निम्नलिखित हैं–

1. स्पीयर मैन की कोटि अंतर/क्रमान्तर विधि
2. पीयरसन गुणन–आघूर्ण विधि (पीयरसन प्रोडक्ट मोमेण्ट विधि)

स्पीयर मैन की कोटि अंतर विधि (Spearman's Rank Difference Method) : चार्ल्स स्पीयरमैन ने व्यक्तिगत समंकमालाओं में सह–संबंध ज्ञात करने की एक सरल रीति का प्रतिपादन किया है। इस रीति को कोटि–अंतर या क्रमान्तर–रीति भी कहते हैं। यह रीति उन परिस्थितियों के लिए अधिक उपयुक्त मानी जाती है जहां तथ्यों को केवल कोटि क्रम (Rank-Order) के अनुसार ही रखा जा सकता है उदाहरण के लिए जैसे सुंदरता का अंकात्मक माप संभव नहीं लेकिन फिर भी विभिन्न इकाइयों की सुंदरता को देखकर अर्थात् गुण की अधिकता के आधार पर उन्हें पहला, दूसरा, तीसरा इत्यादि क्रम प्रदान किया जा सकता है। इस विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक का सांकेतिक चिह्न (Symbol) = P होता है।

इस विधि में सर्वप्रथम X तथा Y श्रेणी के पद–मूल्यों को अलग–अलग कोटि क्रम प्रदान किए जाते हैं। इसमें सबसे बड़ी संख्या को 1 (एक) उससे छोटी को 2 (दो) फिर तीन इस प्रकार क्रम निश्चित किया जाता है। तत्पश्चात् X श्रेणी के क्रमों में से Y श्रेणी के क्रमों को घटाकर क्रमान्तरों के अंतर (D = Rank X–Rank Y) की गणना की जाती है। ध्यान रखने की बात है कि $\sum D$ क्रमान्तरों के अंतर का योग सदैव (0) शून्य होता है। फिर क्रमान्तरों का वर्ग निकालकर उनका योग किया जाता है अर्थात् $\sum D^2$ ज्ञात किया जाता है और अंत में निम्न सूत्र का प्रयोग करके सह–संबंध ज्ञात किया जाता है।

$$P = 1 - \frac{6\sum D^2}{N(N^2-1)} \quad or \quad P = 1 - \frac{6\sum D^2}{N^3 - N}$$

उदाहरण : दो परीक्षणों में छात्रों के प्राप्तांक निम्न प्रकार हैं। कोटि–अंतर विधि द्वारा दोनों परीक्षणों में सह–संबंध ज्ञात कीजिए।

क्रम संख्या	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
परीक्षण I	15	12	13	18	16	20	19	17	14	21
परीक्षण II	25	30	28	22	24	20	21	23	27	19

	परीक्षण I	**परीक्षण II**	**Rank I**	**Rank II**	**कोटि अंतर D**	**कोटि अंतरों के वर्गों का योग $\sum D^2$**
1	15	25	7	4	3	9
2	12	30	10	1	9	81
3	13	28	9	2	7	49
4	18	22	4	7	–3	9
5	16	24	6	5	1	1
6	20	20	2	9	–7	49
7	19	21	3	8	–5	25
8	17	23	5	6	–1	1
9	14	27	8	3	5	25
10	21	19	1	10	–9	81
					–25 + 25 =0	330

$$P = 1 - \frac{6\sum D^2}{N(N^2-1)}$$

$$P = 1 - \frac{6(330)}{10(10^2-1)}$$

$$P = 1 - \frac{1980}{10(99)}$$

$$P = 1 - \frac{1980}{990}$$

$$P = 1 - 2$$

$$P = -1$$

टिप्पणी

पीयरसन गुणनफल–आघूर्ण सह–संबंध गुणांक (Product-Moment Correlation Coefficient)

गुणनफल–आघूर्ण सह–संबंध विधि का प्रतिपादन कार्ल पीयरसन के द्वारा 1896 में फ्रांसिस गाल्टन के द्वारा विकसित विचारों के आधार पर किया गया था पीयरसन के नाम पर इस विधि को पीयरसनियन विधि तथा इस विधि से प्राप्त गुणांक को पीयरसन सह–संबंध गुणांक कहा जाता है। इस विधि के अंतर्गत दोनों चरों पर विभिन्न व्यक्तियों के प्राप्तांकों के सापेक्ष Z प्राप्तांकों की गुणाओं का आघूर्ण अर्थात् गुणनफल–आघूर्ण (Moment of Product) ज्ञात किया जाता है। यह गुणनफल आघूर्ण ही दोनों चरों के बीच सह–संबंध की मात्रा को बताता है जिसे अंग्रेजी के अक्षर r (आर) से प्रदर्शित किया जाता है।

$$r = \frac{\sum Zx\ Zy}{N}$$

आघूर्ण वास्तव में विज्ञान/गणित से लिया गया शब्द है, किन्हीं अंकों का आघूर्ण उन अंकों के माध्यम से उनकी दूरियों का मध्यमान होता है। आघूर्ण की $\sum(X-M)/N$ या $\sum(X-M)/N\sum X/N$ से लिखा जा सकता है। द्विचर आघूर्ण में दो चरों के प्राप्तांकों के उनके मध्यमानों से लिये गये विचलनों की गुणा करते हैं इसलिए इसे गुणनफल आघूर्ण भी कहते हैं। यह आघूर्ण दो चरों के साथ–साथ परिवर्तित हो रहे विचलन को भी व्यक्त करता है इसलिए इसे सह–संबंध प्रसरण भी कहते हैं। गुणनफल–आघूर्ण सह–संबंध गुणांक दोनों चरों के गुणनफल–आघूर्ण का दोनों चरों के मानक विचलनों के गुणनफल के साथ अनुपात है अतः

$$r = \frac{\sum_{xy}/N}{\delta_x \cdot \delta_y}$$

गुणनफल–आघूर्ण सह–संबंध गुणांक के इस सूत्र को निम्नवत् ढंग से भी लिखा जा सकता है–

$$\frac{\sum \frac{x}{\delta x} \cdot \frac{y}{\delta y}}{N} \quad \text{क्योंकि} \quad \frac{x}{\delta_x} = Z_x \ \frac{y}{\delta_y} = zy \quad \text{अतः} \ r = \frac{\sum z_x \cdot z_y}{N}$$

यह सह–संबंध ज्ञात करने का मूल एवं परिभाषिक सूत्र है किन्तु इस सूत्र से सह–संबंध गुणांक की गणना करना जटिल होता है। क्योंकि सभी प्राप्तांकों को z में बदलना पड़ता है तथा मानक विचलन एवं मध्यमान के दशमलव संख्या में होने पर घटाने व भाग की गणना जटिल व श्रम साध्य हो जाती है। इसलिये इस सूत्र को सरल रूप में बदलने की आवश्यकता हुई। गुणनफल–आघूर्ण सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने के लिए इस सूत्र को निम्न प्रकार से सरल रूप में बदला जा सकता है।

$$r = \frac{\sum xy}{N \cdot \delta x \cdot \delta y}$$

$$r = \frac{\sum xy}{\sqrt{\sum x^2 \sum y^2}} = \frac{\sum(X-\overline{X})\,(4-\overline{4})}{\sqrt{\sum(X-\overline{X})^2\ \sum(Y-\overline{Y})^2}}$$

$$r = \sum xy - \frac{(\sum x)(\sum y)}{\sqrt{\sum x^2 - \frac{(\sum x^2)}{N}}\sqrt{\sum y^2 - \frac{(\sum y)^2}{N}}}$$

टिप्पणी

or

$$r = \frac{N \cdot \sum xy - (\sum x)(\sum y)}{\sqrt{N \cdot \sum x^2 - (\sum x)^2}\sqrt{N \cdot \sum y^2 - (\sum y)^2}}$$

यह रीति सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है क्योंकि इस रीति द्वारा सह–संबंध गुणांक का निश्चित रूप से तथा अंकात्मक रूप से अध्ययन किया जा सकता है। यह रीति गणितीय दृष्टि से उपयुक्त है क्योंकि यह प्रमाप विचलन व समान्तर माध्य पर आधारित है।

गुणांक निकालने की विधि (Method of Calculation of Coefficient)

इस रीति के अंतर्गत सर्वप्रथम दोनों श्रेणियों का समान्तर माध्य निकाला जाता है। 2. तत्पश्चात् दोनों श्रेणियों के समान्तर माध्य से विचलन ज्ञात किया जाता है पहली श्रेणी के विचलनो को 'dx' तथा दूसरी श्रेणी के विचलनों को 'dy' कहते हैं। 3. दोनों श्रेणियों के विचलनों का वर्ग d_x^2 तथा d_y^2 ज्ञात करके उनका योग किया जाता है। 4. दोनों विचलनो को परस्पर गुणा करके ($dxdu$) योग ज्ञात किया जाता है। और अन्त में निम्न सूत्र द्वारा सह–संबंध गुणांक ज्ञात किया जाता है।

$$r = \frac{\sum dx\,dy}{N \cdot \delta \cdot \delta y} \quad \text{या} \quad r = \frac{\sum dx\,dy}{\sqrt{\sum d_x^2}\sqrt{\sum d_y^2}} \quad \text{जहां} \quad \begin{matrix} dx = (X - \overline{X}) \\ dy = (Y - \overline{Y}) \end{matrix} \quad \text{है।}$$

उपरोक्त सूत्र x तथा y के सह–विचरण (Co-Variance) पर आधारित है। अर्थात् $\sum xy / N$ इसलिए इसे सह–विचरण रीति भी कहा जाता है।

उदाहरण : निम्न समंकों की सहायता से कार्ल पीयरसन सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए।

यहां

$$\sum(X - \overline{X})(Y - \overline{Y}) = 150 \; N = 9 \quad \delta \times 5.8 \quad \delta y = 3.2 \quad \sum(X - \overline{X})(Y - \overline{Y}) = \sum dxdy$$

हल :

$$r = \frac{\sum dxdy}{N \cdot \delta x \cdot \delta y} = \frac{150}{(9)(5.8)(3.2)} = \frac{150}{167.04} = +0.898$$

उदाहरण :

X =	17	18	19	19	20	20	21	21	22	23
Y =	12	16	14	11	15	19	22	16	15	20

टिप्पणी

हल :

X श्रेणी			y श्रेणी			
x	$(X-\overline{X})$ Dx	$(X-\overline{X})^2$ d_x^2	y	$dy^{y-\overline{y}}$	$d_y^{2^{y-\overline{y}}}$	$dxdy$
17	–3	9	12	–4	16	12
18	–2	4	16	0	0	0
19	–1	1	14	–2	4	2
19	–1	1	11	–5	25	5
20	0	0	15	–1	1	0
20	0	0	1.9	+3	9	0
21	+1	1	22	+6	36	6
21	+1	1	16	0	0	0
22	+2	4	15	–1	1	–2
23	+3	9	20	+4	16	12
200	0	30	160	0	108	+35

$$\overline{X} = \frac{\sum y}{N} \qquad \overline{Y} = \frac{\sum y}{N}$$

$$\overline{X} = \frac{200}{10} \qquad \overline{Y} = \frac{160}{10}$$

$$X = 20 \qquad \overline{Y} = 16$$

$$\delta x = \sqrt{\frac{\sum d_x^2}{N}} \qquad \delta y \sqrt{\frac{\sum d_y^2}{N}}$$

$$\delta x = \sqrt{\frac{30}{10}} \qquad \delta y = \sqrt{\frac{108}{10}}$$

$$\delta x = \sqrt{3} \qquad \delta y = \sqrt{10.8}$$

$$\delta x = 1.73 \qquad \delta y - 3.28$$

$$r = \frac{\sum dxdy}{N(\delta x)\,(\delta y)}$$

$$= \frac{35}{10(1.73)\,(3.28)} = +0.615$$

$$r = \frac{\sum dxdy}{\sqrt{\sum d_x^2}\sqrt{\sum d_y^2}}$$

$$= \frac{35}{\sqrt{30 \times 108}}$$

$$= \frac{35}{\sqrt{3240}}$$

$$= \frac{35}{56.9}$$

$$= +0.615$$

टिप्पणी

इस विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने के लिए $r = \frac{\sum dxdy}{N \cdot \delta x \cdot \delta y}$ सूत्र की अपेक्षा $r = \frac{\sum dxdy}{\sqrt{\sum d_x^2}\sqrt{\sum d_y^2}}$ का प्रयोग करना चाहिए क्योंकि इस सूत्र में δx तथा δy अलग–अलग निकालने की आवश्यकता नहीं होती है। यह सूत्र ऊपर बताये गये मूल सूत्र का ही सरल रूप है। इस सूत्र का प्रयोग करने में सापेक्षिकतः परिकलन (Calculation) कम करना पड़ता है, समय भी कम लगता है लेकिन $r =$ की शुद्धता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

परन्तु उपर्युक्त उदाहरण में एक विशेष बात देखने में आयी है कि दोनों चरों के मध्यमान (Means) पूरी संख्या (Round Figures) में ही आये हैं। यदि दोनों चरों के मध्यमान (Mean) पर दशमलव में आते हैं तो उन्हें मूल पदों से घटाने पर संबंधित विचलन (dx) तथा (dy) भी दशमलव में होंगे तथा उनके गुणनफल का मान भी अधिकतर दशमलव में होगा तो ऐसी स्थिति में गणना करना कठिन हो जाता है और हल करने में त्रुटियां भी आ सकती हैं। इस प्रकार की त्रुटियों की आशंका को दूर करने के लिए सह–संबंध गुणांक के लिए एक दूसरे सूत्र का प्रयोग किया जाता है जो कि कल्पित मध्यमान पर आधारित होता है।

कल्पित मध्यमान विधि (Assumed Mean Method)

इस सूत्र में दोनों चरों के अथवा एक चर के कल्पित मध्यमान को मान लिया जाता है जो वास्तविक मध्यमान के आगे वाली या पहले वाली पूरी संख्या को कल्पित कर लिया जाता है यह कल्पित मध्यमान को पूरी संख्या बनाने के लिए वास्तविक मध्यमान से घटाया या जोड़ा जाता है उसे शुद्धता का मान कहते हैं। यह शुद्धता M–Assumed Mean की होती है। यदि शुद्धता की आवश्यकता दोनों चरों में पड़ती है तो दोनों ही चरों में कल्पित मध्यमान का स्वतंत्र रूप से प्रयोग किया जा सकता है। कल्पित मध्यमान द्वारा सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने के लिए इस सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

सूत्र

$$\frac{\frac{\sum dxdy}{N} - (\overline{X} - A)(\overline{Y} - A)}{\left[\frac{\sum d_x^2}{N} - (\overline{X} - A)^2\right]\left[\frac{\sum d_y^2}{N} - (\overline{Y} - A)^2\right]}$$

उदाहरण : दो विषयों में 10 विद्यार्थियों ने निम्न अंक प्राप्त किये हैं इनके आधार पर दोनों विषयों में सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए–

विद्यार्थी क्रम संख्या	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
गणित	25	32	18	24	29	33	28	19	23	25
विज्ञान	27	34	21	27	23	35	31	23	18	16

टिप्पणी

हल :

	गणित x श्रेणी			विज्ञान y श्रेणी			
क्रम संख्या	x	A = 26 (X–A) dx	d_x^2	y	$\frac{A=26}{(y-A)}dy$	d_y^2	$dxdy$
1	25	–1	1	27	+1	1	–1
2	32	+6	36	34	+8	64	48
3	18	–8	64	21	–5	25	40
4	24	–2	4	27	+1	1	–2
5	29	+3	9	23	–3	9	–9
6	33	+7	49	35	+9	81	63
7	28	+2	4	31	+5	25	10
8	19	–7	49	23	–3	9	21
9	23	–3	9	18	–8	64	24
10	25	–1	1	16	–10	100	10
योग	256		226	255		379	204

$\sum x = 256$ $\qquad$ $\sum y = 255$

$X = \frac{\sum x}{N}$ $\qquad$ $Y = \frac{\sum y}{N}$

$\overline{X}\frac{256}{10}$ $\qquad$ $\overline{Y} = \frac{255}{10}$

$\overline{X} = 25.6$ $\qquad$ $\overline{Y} = 25.5$

$\overline{X} - A$ $\qquad$ $\overline{Y} - A$

$25.6 - 26 = (-.4)$ $\qquad$ $25.5 - 26 = (-.5)$

$(\overline{X} - A)^2$ $\qquad$ $(\overline{Y} - A)^2$

$(25.6 - 26)^2$ $\qquad$ $(25.5 - 26)^2$

$(-.4)^2$ $\qquad$ $(-.5)^2$

$= .16$ $\qquad$ $.25$

$$r = \frac{\frac{\sum dxdy}{N} - (\overline{X} - A)\,(\overline{Y} - A)}{\left[\sqrt{\frac{\sum d_x^2}{N} - (\overline{X} - A)^2}\right]\left[\frac{\sum d_y^2}{N} - (\overline{Y} - A)^2\right]}$$

$$\frac{\frac{204}{10} - (-.4)\,(-.5)}{\left[\frac{226}{10} - (-0.4)\right]\left[\frac{379}{10} - (-0.5)\right]}$$

$$\frac{20:4 - (+0.2)}{\sqrt{[22.6 - 0:16]}[37.9 - 0.25]}$$

$$\frac{20.2}{\sqrt{(22.44)}\,37.65}$$

$$\frac{20.2}{\sqrt{844.9}} = \frac{20.2}{29.07} = 0.69$$ उच्च धनात्मक सह–संबंध

टिप्पणी

लघु प्राप्तांक विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक ज्ञात करना
(Correlation by Reduced Score Method)

कभी–कभी मनोवैज्ञानिक प्रयोगों में दोनों चरों के आंकड़े काफी बड़े–बड़े होते हैं तथा प्रयासों अथवा निरीक्षणों की संख्या भी काफी बड़ी होती है इस प्रकार की संख्याओं से गणना करना अत्यधिक कठिन हो जाता है, संख्याओं के बड़े तथा विषम होने के कारण सावधानी रखते हुए भी भूल होने की आशंका बनी रहती है। ऐसी स्थिति से निपटने के लिए लघु प्राप्तांक विधि (Reduced Score Method) का प्रयोग अधिक उपयोगी रहता है। इस विधि की प्रमुख विशेषता यही है कि इसमें बड़े आंकड़ों को घटाकर सरलतापूर्वक कम कर दिया जाता है इससे गणना का भार कम हो जाता है और परिणाम में भी शुद्धता की कमी नहीं होती है। उदाहरण के लिए नीचे सह–संबंध गुणांक को इसी विधि से निकाला गया है।

उदाहरण : एक कम्प्यूटर प्रोग्राम को सीखने में 20 विद्यार्थियों की बुद्धिलब्धि (I.Q) तथा सीखने के समय के मध्यमानों को निम्न तालिका में दिया गया है। इन दिए गये आंकड़ों के आधार पर सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए।

विद्यार्थियों की क्रम संख्या	बुद्धिलब्धि	सीखने का समय
1	92	110
2	108	86
3	96	112
4	85	120
5	110	82
6	108	85
7	96	112
8	113	90
9	98	81
10	88	118
11	94	112
12	106	82
13	115	80
14	94	110
15	118	100
16	120	80
17	99	102
18	100	90
19	98	100
20	106	86

टिप्पणी

हल :

	x श्रेणी			*y* श्रेणी			
	X	***dx***	d_x^2	***x***	***dy***	d_y^2	***Dxdy***
1	92	−8	64	110	10	100	−80
2	108	8	64	86	−14	196	−112
3	96	−4	16	112	12	144	−48
4	85	−15	225	120	20	400	−300
5	110	10	100	82	−18	324	−180
6	108	8	64	85	−15	225	−120
7	96	−4	16	112	12	144	−48
8	113	13	169	90	10	100	−130
9	98	−2	4	81	−19	361	+38
10	88	−12	144	118	18	324	−216
11	94	−6	36	112	12	144	−72
12	106	6	36	82	−18	324	−108
13	115	15	225	80	−20	400	−300
14	94	−6	36	110	10	100	−60
15	118	18	324	100	0	0	00
16	120	20	400	80	−20	400	−400
17	99	−1	1	102	+2	4	−2
18	100	0	0	90	−10	100	00
19	98	−2	4	100	0	0	00
20	106	6	36	86	−14	196	−84
योग		−6 +104 +44	1964		−158 +96 −62	3986	−2260 +38 −2222

$\sum dx = +44 \qquad \sum dy = -62$

$\sum d_x^2 = 1964 \qquad \sum d_y^2 = 3986$

$\sum dxdy - 2222$

$$\frac{\sum dxdy - \frac{(\sum dx)(\sum dy)}{N}}{\sqrt{\left[\sum d^2x - \frac{(\sum dx)^2}{N}\right]\left[\sum d^2y - \frac{(\sum dy)^2}{N}\right]}}$$

$$\frac{-2222 - \frac{(+44)\,(-62)}{20}}{\sqrt{\left[1964 - \frac{(44)^2}{20}\right]\left[3986 - \frac{(62)^2}{20}\right]}}$$

$$\frac{-2222 - (-136.4)}{\sqrt{[1964 - 96.8][3986 - 192.2]}}$$

$$\frac{-2222 + 136.4}{\sqrt{[1867.2][3793.8]}}$$

$\frac{-2085.6}{7083783.36}$

$\frac{-2085.6}{2661.537} = 0.784$

टिप्पणी

उपरोक्त दोनों चरों (x तथा y) के निरीक्षण से पता चलता है कि इनके मध्यमानों का विस्तार 80 से लेकर 120 तक फैला हुआ है लघु प्राप्तांक विधि के अंतर्गत प्रत्येक चर में से एक स्थिर संख्या (Constant Number) घटानी होती है, वह संख्या ऐसी होनी चाहिए जिसके घटाने से प्राप्तांक का मान काफी कम से कम हो सके। इस उदाहरण के आधार पर यदि हम स्थिर संख्या 100 चुनते हैं तो शेष प्राप्तांक लघु संख्या ± 20 रहती है। यह संख्या सुविधाजनक है दोनों चरों के लिए स्थिर संख्या 100 चुनने से हमारा गणना कार्य काफी सरल हो जाता है यह स्थिर संख्या कुछ भी हो सकती है, तथा दोनों चरों के लिए स्थिर संख्या अलग–अलग हो सकती है और प्रायः अलग ही होती है स्थिर संख्या का चयन करते समय माननीय कसौटी यह है कि संख्या ऐसी होनी चाहिए कि प्राप्तांकों को घटाने से प्राप्त शेष संख्या कम से कम रहे। जिससे गणना (Calculation) का कार्य सरल से सरल हो सके।

मूल प्राप्तांकों से सह–संबंध गुणांक निकालने की विधि (Method of Coefficient of Correlation from Raw Scores)

इस विधि से सह–संबंध गुणांक ज्ञात करना अधिक सरल होता है। इस विधि में विचलन नहीं लिये जाते बल्कि मूल्यों का सीधे ही प्रयोग किया जाता है। इसमें गणित कार्य कम करना पड़ता है। इस विधि से सह–संबंध गुणांक निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है–

$$r = \frac{N\sum xy - (\sum x)\,(\sum y)}{\sqrt{\left[N \times \sum x^2 - (\sum x)^2\right]\left[N \times \sum y^2 - (\sum y)^2\right]}}$$

उदाहरण : निम्न सारणी से मूल प्राप्तांकों का प्रयोग करते हुए सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए।

X–	3	4	6	7	10	11	14	16	18	20
Y–	1	3	5	4	8	7	9	10	13	12

हल :

x	x^2	y	$y2$	X^4
3	9	1	1	3
4	16	3	9	12
6	36	5	25	30
7	49	4	16	28
10	100	8	64	80
11	121	7	49	77
14	196	9	81	126
16	256	10	100	160
18	324	13	169	234
20	400	12	144	240

टिप्पणी

$$\frac{N \times \sum xy - (\sum x)(\sum y)}{\sqrt{\left[N \times \sum x^2 - (\sum x)^2\right]\left[N \times \sum y^2 - (\sum y)^2\right]}}$$

$$\frac{10 \times 990 - (109)(72)}{\sqrt{10(1507) - (109)^2}\sqrt{10(658) - (72)^2}}$$

$$\frac{9900 - 7848}{\sqrt{15070 - 11881}\sqrt{6580 - 5184}}$$

$$\frac{2052}{\sqrt{3189 \times 1396}} = \frac{2052}{\sqrt{4451844}} = \frac{2052}{2109.93} = +0.97$$

गेन्स विधि (Gains Method)

यह विधि कोटि अंतर विधि Rank Difference Method का ही सरल रूप है इसके अंतर्गत दोनों चरों की कोटियों में केवल धनात्मक अंतरों की ही गणना की जाती है जबकि ऋणात्मक संख्या में आने वाले पदमूल्यों को छोड़ दिया जाता है। इस विधि द्वारा प्राप्त सह–संबंध गुणांक का सांकेतिक चिह्न (Symbol) R होता है इस विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$R = 1 - \frac{6\sum G}{(N^2 - 1)}$$

यहां R = गेन्स विधि द्वारा प्राप्त सह–संबंध गुणांक है।

∑G = धनात्मक अंतरों का योग यहां G Gain को संक्षिप्त रूप में व्यक्त करता है।

N = निरीक्षणों की संख्या है।

उदाहरण : निम्न सारणी में दिये गये मध्यमानों का गेन्स विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए।

विद्यार्थी	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
x	38	35	30	32	26	46	50	42	36	20
y	40	30	35	25	30	45	55	40	40	10

हल :

क्रम संख्या	x	y	R^1	R^2	G $R^1 - R^2$	G $R^2 - R^1$
1	38	40	4	4	0	0
2	35	30	6	7.5	–	1.5
3	30	35	8	6	2	–
4	32	25	7	9	–	2
5	26	30	9	7.5	1.5	–
6	46	45	2	2	0	0
7	50	55	1	1	0	0
8	42	40	3	4	–	1
9	36	40	5	4	1	–
10	20	10	10	10	0	0
योग					$\sum G = 45$	$\sum G = 4.5$

टिप्पणी

Note: $\sum G$ के दोनों स्तंभों का योग समान (Equal) होना चाहिए।

$$R = 1-\frac{6\sum G}{N^2-1}$$

$$= 1-\frac{6(4.5)}{10^2-1}$$

$$= 1-\frac{27}{100-1}$$

$$= 1-\frac{27}{99}$$

$$= 1-.2727$$

$= 0.727$ or $+0.73$ धनात्मक सह–संबंध है।

सह–संबंध गुणांक को ज्ञात करने की प्रमुख विधियों का वर्णन ऊपर किया गया है। इनमें प्रथम क्रमांतर विधि Rank Difference Method तथा दूसरी आघूर्ण गुणनफल विधि (Product Moment Method)। क्रमांतर विधि का प्रयोग केवल उसी स्थिति में अधिक उपयुक्त रहता है जब दोनों चरों के आंकड़े केवल कोटियों के आधार पर व्यक्त किए जाते हैं और संख्या (N) अथवा प्रेक्षित आवृत्तियां कम रहती हैं इसीलिए कोटि–अंतर विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक (P) की गणना अप्राचल विधियों (Non-Parametric Method) में की जाती है। इसके विपरीत, प्रोडक्ट मोमेण्ट विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक (r) की गणना प्राचल विधियों (Parametric Method) में की जाती है क्योंकि इस विधि के अंतर्गत प्राप्त आंकड़ों में प्रसामान्य वितरण (Normal Distribution) की उपधारणा (Assumption) रहती है।

इन दोनों प्रकार के आंकड़ों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी आंकड़े रहते हैं जिनमें एक चर (Variable) के आंकड़े निरंतर श्रेणी में तथा दूसरे चर के आंकड़ों का स्वरूप द्विभाजी रहता है। अथवा उनका स्वरूप किसी अन्य मापदण्ड के आधार पर दो भागों मे विभाजित रहता है, तथा दोनों चरों के आंकड़ों (Data) के विषय में प्रसामान्य वितरण (Normal Distribution) की उपधारणा भी रहती है। दोनों चरों मे से किसी एक चर के विषय में प्रसामान्य वितरण की धारणा अवश्य रहती है परन्तु दूसरे चर के आंकड़ों को प्रसामान्य वितरण के आधार पर विभाजित करना कठिन होता है, क्योंकि ऐसे आंकड़ों का स्वरूप वास्तव में द्वि–भाजी रहता है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे आंकड़े भी रहते हैं जिनमें दोनों चरों का विभाजन द्वि–भाजी रहता है, और उनके आधार पर 2×2 की सारणी द्वारा सह–संबंध गुणांक ज्ञात करना होता है। इन विभिन्न प्रकार के आंकड़ों के आधार पर सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने की अलग–अलग विधियां होती है, तथा ऐसे सह–संबंधों को ज्ञात करने की विभिन्न विधियां एवं सूत्र भी अलग–अलग हैं जिनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं–

1. द्वि–पंक्तिक सह–संबंध (Biserial Correlation)
2. बिन्दु द्वि–'पंक्तिक सह–संबंध (Paint Biserial Correlation)
3. फाई–गुणांक (Phi-Co-efficient)
4. चतुष्कोटिक सह–संबंध (Tetracboric Correlation)

टिप्पणी

5. आंशिक सह–संबंध (Partial-Correlation)
6. बहुचरीय सह–संबंध (Multiple Correlation)

द्वि–भाजी आंकड़े (Dichotomases Data)

सांख्यिकी में ऐसे आंकड़े आते हैं, जिनका स्वरूप खण्डित तथा द्वि–भाजी रहता है। द्वि–भाजी आंकड़ों से प्रायः ऐसे आंकड़ों का बोध होता है जिनकी व्याख्या तथा गणना व्यावहारिक रूप से केवल दो ही श्रेणियों में की जा सकती है। जैसा स्त्री–पुरुष, जीवित–मृत विवाहित–अविवाहित ऐसा द्वि–भाजन अरेखीय होता है। परन्तु कुछ द्वि–भाजी आंकड़े ऐसे भी होते हैं जिनका स्वरूपरेखीय होता है तथा जिनका द्वि–भाजन किसी एक सूक्ष्म बिन्दु पर आधारित रहता है। जैसे सफल–असफल, आशावादी–निराशावादी, शुद्ध–अशुद्ध धार्मिक–अधार्मिक आदि। यहां द्वि–भाजन का आधार कोई एक मापदण्ड लिया जा सकता है। आंकड़ों के द्वि–भाजन का आधार मध्यमान (Mean) भी हो सकता है, इस स्थिति में श्रेणी का विभाजन मध्यमान के ऊपर तथा मध्यमान के नीचे किया जा सकता है। इस प्रकार द्वि–भाजन का आधार मध्यांक (Mediun) भी हो सकता है इस स्थिति में श्रेणी का भाजन मध्यांक के ऊपर तथा मध्यांक के नीचे किया जा सकता है। यहां आंकड़ों के वितरण के संबंध में कल्पना प्रसामान्य होने तथा निरंतर वितरण की होनी चाहिए।

द्वि–भाजी आंकड़ों के आधार पर प्रोडक्ट मोमेण्ट विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक की गणना नहीं की जाती है क्योंकि प्रोडक्ट मोमेण्ट विधि के लिए आंकड़ों में रेखीय सम्बन्ध होना चाहिए यदि ऐसा नहीं होता तो सह–संबंध गुणांक का मान कम रहता है।

द्वि–पंक्तिक सह–संबंधी (Biserial Correlation)

जब दो चरों के आंकड़ों में निम्न विशेषताएं पायी जाती हैं तब द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की गणना करना अधिक उपयुक्त होती है–

1. जब दोनों चरों का वितरण निरंतर (Continuous) हो, अथवा किसी कारणवश एक चर का वितरण निरंतर श्रेणी (Continuous Series) में न होकर द्वि–भाजी (Dichotomous) हो लेकिन यह द्वि–भाजन वास्तविक द्वि–भाजन (Real Dichotomy) नहीं होना चाहिए।
2. जब प्रेक्षित संख्या (Observed Number) बड़ी हो।
3. जब द्वि–भाजी चर में बहुत कम श्रेणियां (Categories) हों।
4. जब द्वि–भाजी आंकड़ों का वितरण अधिकतर अपने मध्यांक (Median) के निकट हो।
5. दोनों चरों के वितरणों के विषय में प्रसामान्य वितरण (Normal Distribution) की उपधारणा (Assumption) का होना आवश्यक है। यदि आंकड़े काफी विषम (Skewed) है तो उनके विषय में प्रसामान्य वितरण की कल्पना करना प्रसामान्य वितरण की ही होनी चाहिए।
6. जब प्रतिदर्श के दोष के कारण, परीक्षण के प्रमापीकृत न होने के कारण अथवा प्रयोग में लाये गये यंत्र के दोष के कारण आंकड़े विषम हों, लेकिन ये आंकड़े प्रतिदर्श के कारण विषम हो सकते हैं लेकिन आंकड़ों के विषय में हमारी कल्पना प्रसामान्य वितरण की ही होनी चाहिए।

7. प्राप्त आंकड़ों का वितरण रेखीय (Linear) होना आवश्यक है।
8. जब द्वि–भाजी आंकड़े किसी कारण अपूर्ण हो और यह सन्देह बना रहे कि वे अपने मध्यमान से प्रायः समान दूरी पर नहीं है।
9. दोनों चरों के आंकड़ों के वितरण अपने–अपने मध्यमानों के दोनों और समान रूप से विचलित रहने चाहिए, आंकड़ों में इस प्रकार के विचलन की स्थिति को समविचलिता (Homascedasticity) कहा जाता है। द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की गणना के लिए आंकड़ों में ऐसी स्थिति होना प्रत्याशित है।

द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की गणना

द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक का प्रतीकात्मक चिह्न (Symbol) r_b होता है। इसकी गणना में प्रायः चार स्तम्भों (Four-Coloumns) का प्रयोग होता है। प्रथम स्तम्भ के प्रथम श्रेणी के व्यक्तियों की आवृत्तियां, तीसरे स्तंभ में y चर के द्वितीय श्रेणी के व्यक्तियों की आवृत्तियां तथा चौथे स्तम्भ में समस्त व्यक्तियों की आवृत्तियां होती हैं। द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक को ज्ञात करने का सूत्र

$$r_b = \frac{m_p - m_q}{\delta_t} \times \frac{pq}{y}$$

r_b = द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक

r_b = प्रथम श्रेणी के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का मध्यमान

Note: अधिक संख्या वाले विद्यार्थियों की गणना

m_p = प्रथम में तथा कम संख्या वाले विद्यार्थियों की गणना द्वितीय श्रेणी अर्थात् m_q में की जाती है।

p = समानुपात (Proportion) प्रथम श्रेणी वाले समूह में

q = समानुपात (Proportion) द्वितीय श्रेणी वाले समूह

y = प्रसामान्य वितरण के कन्टिनुअम के उस बिन्दु पर कोटि का मान जहां p तथा q के समानुपात एक दूसरे से अलग होते हैं।

δ_t निरंतर वितरण continuous Distribution वाले अथवा x चर के समस्त आंकड़ों का मानक विचलन

उदाहरण : बुद्धिलब्धि तथा समायोजन (Adjustment) को स्तर में सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने के लिए 64 विद्यार्थियों का एक प्रतिदर्श चुना गया है। और समायोजन अनुसूची के आधार पर समस्त समूह को दो श्रेणियों में A तथा B में विभाजित किया गया है। श्रेणी में समायोजित विद्यार्थियों को तथा B श्रेणी में असमायोजित विद्यार्थियों को द्वि–भाजित किया गया है तथा बुद्धिलब्धि के आंकड़ों के सामने समायोजित व असमायोजित विद्यार्थियों की आवृत्तियां (F) दी गयी है। इन आंकड़ों के आधार पर दोनों चरों के मध्य द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए।

टिप्पणी

बुद्धिलब्धि प्राप्तांक	A श्रेणी की आवृत्तियां	B श्रेणी की आवृत्तियां
125—129	9	1
120—124	8	1
115—119	7	2
110—114	5	2
105—109	4	3
100—104	3	3
95—99	2	2
90—94	1	4
85—89	1	6
N =	40	24

हल :

	Y– Variable									
x Variable	A श्रेणी			B श्रेणी			A + B			
C–I	f	d	fd	f	d	fd	f	d	fd	Fd²
125–129	9	+4	36	1	+4	4	10	+4	40	160
120–124	8	+3	24	1	+3	3	9	+3	27	81
115–119	7	+2	14	2	+2	4	9	+2	18	36
110–114	5	+1	5	2	+1	2	7	+1	7	7
105–109	4	0	–	3	0	—	7	—	—	—
100–104	3	–1	–3	3	–1	–3	6	–1	–6	6
95–99	2	–2	–4	2	–2	–4	4	–2	–8	16
90–94	1	–3	–3	4	–3	–12	5	–3	–15	45
85–89	1	–4	–4	6	–4	–24	7	–4	–28	112
	40		64	24		–30	64		+35	463

NP = 40 Nq = 24 N = 64 $\sum fd^2 = 463$

$\sum fd^2 = +79 - 14 = 64 \quad \sum fd - 43 + 13 = -30 \quad \sum fd = +92 - 57 = +35$

$$M = AM + \frac{\sum fd}{N} \times i$$

$$Mp = 107 + \frac{65 \times 5}{40} = 107 + 8.125 = 115.125$$

$$Mq = 107 + \frac{-30 \times 5}{64} = 107 - 6.25 = 100.75$$

$$Mt = \frac{35 \times 5}{64} = 107 + 2.734 = 109.734$$

$$\delta t = \sqrt{\frac{\sum fd^2}{N} - \left(\frac{\sum fd}{N}\right)^2} \times i$$

$$= \sqrt{\frac{463}{64} - \left(\frac{35}{64}\right)^2} \times 5$$

$$= \sqrt{7.234 - .299 \times 5}$$

टिप्पणी

$= \sqrt{6.935 \times 5}$

$= 2.633 \times 5$

$= 13.165$

$p = n_p/N = 40/64 = 0.625$

$q = n_q/N = 24/64 = 0.375$

y = .3792 (यह मान आगे परिशिष्ट में दी गयी सारणी में .625 के मान पर देखिए)

$$r_b = \frac{m_p - m_q}{\delta_t} \times \frac{p_q}{y}$$

$$= \frac{115.125 - 100.75}{13.165} \times \frac{0.625 \times 0.375}{.3792}$$

$$= \frac{14.375}{13.165} \times \frac{0.234375}{0.3792}$$

$= 1.092 \times 0.6181 = 0.675$

द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक का वैकल्पिक सूत्र–

$$r_b = \frac{m_p - m_t}{\delta_t} \times \frac{p}{y}$$

$$r_b = \frac{115.125 - 109.734}{13.165} \times \frac{0.625}{0.3792}$$

$$= \frac{5.391}{13.165} \times 1.648$$

$= 0.4094 \times 1.648 = 0.67469$

or 0.675

द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_b) ज्ञात करने के चरण (Steps for Calculation of Biserial Co-efficient Correlation)

1. प्रथम श्रेणी (x) का मध्यमान ज्ञात करना (115.125)
2. द्वितीय श्रेणी (y) का मध्यमान ज्ञात करना (100.75)
3. x–चर की आवृत्ति वितरण का मानक विचलन ज्ञात करना (13.165)
4. p तथा q का का मान ज्ञात करना।

$$p = \frac{p \text{ की संख्या}}{\text{समस्त संख्या}} = 40/64 = .625$$

$$q = \frac{q \text{ की संख्या}}{\text{समस्त संख्या}} = 24/64 = 0.375$$

5. y का मान ज्ञात करना।

टिप्पणी

6. m_t यदि वैकल्पिक सूत्र का प्रयोग करना हो तो समस्त संख्या के मध्यमान m_t की गणना की जाती है। (109.734)

7. समस्त मानों को ज्ञात करके सूत्र में रखकर r_b का मान ज्ञात किया जाता है।

y के मान का चित्र द्वारा स्पष्टीकरण–

y के मान को चित्र द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है।

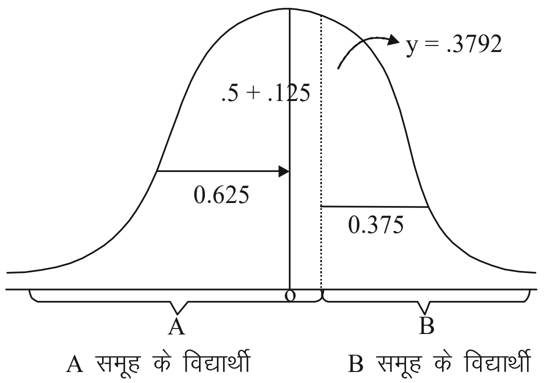

p चर में अंकों विचलन अपने मध्यमान के दोनों ओर लगभग समान रूप से विस्तृत रहना चाहिए। अन्य शब्दों में p तथा q के मान 0.5 के ही निकट रहने चाहिए तथा दोनों में अधिक अंतर नहीं रहना चाहिए।

कभी–कभी द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_b) की मात्रा विशेष परिस्थितियों में ± 1 से अधिक भी हो सकती है ऐसा तब ही संभव है जब चरों के अंकों का वितरण द्वि–बहुलांकी (Bimodal) होता है द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_b) का मान प्रायः प्रोडक्ट मोमेण्ट विधि द्वारा ज्ञात सह–संबंध गुणांक (r) से अधिक होता है। दोनों प्रकार के सह–संबंध गुणांक में r_b की अपेक्षा (r) का मान अधिक विश्वसनीय होता है।

r_b की मान त्रुटि भी (r) की अपेक्षा होती है क्योंकि मानक त्रुटि की मात्रा p तथा q के मानों के अंतर में वृद्धि होने के साथ–साथ बढ़ जाती है। यहां एक तथ्य और उल्लेखनीय है कि r_b प्रयोग प्रतीपगमन समीकरण (Regression Equation) में नहीं किया जा सकता क्योंकि y चर के अंकों का वितरण द्वि–भाजी रहता है।

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध (Point Biserial Correlation)

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक का प्रतीकात्मक चिह्न (*rpbi*) होता है। जब एक चर (Variable) का वितरण निरंतर (Continuous) तथा प्रसामान्य (Normal) रहता है और दूसरे चर का वितरण वास्तविक रूप से खण्डित (Discrete) व द्वि–भाजी (Dichotomous) रहता है अथवा दूसरे चर को वितरण के संबंध में प्रसामान्य (Normal) होने की कल्पना नहीं रहती है तो उस स्थिति में द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_b) की अपेक्षा बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_{pbi}) की गणना करना अधिक उपयुक्त होता है। अर्थात् जब कभी एक चर के आंकड़ों के संबंध में खण्डित व वास्तविक रूप से द्वि–भाजी (Dichotomous) होने का सन्देह होता है तो उस स्थिति में (r_{pbi}) की गणना की जानी चाहिए, तथा जब कभी एक चर के वितरण प्रसामान्य नहीं है इस बात का सन्देह होने लगे तो भी बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की गणना ही उपयुक्त रहती है। स्मरण रहे कि जब आंकड़ों का वास्तविक द्वि–भाजन रहता है

टिप्पणी

तब उनमें प्रसामान्य वितरण का प्रश्न ही नहीं उठता। वास्तविक द्वि–भाजन के उदाहरण हैं–जीवित–मृत पुरुष–स्त्री, विवाहित–अविवाहित आदि। लेकिन व्यावहारिक जीवन में कभी–कभी एक चर के आंकड़ों का द्वि–भाजन किसी एक मापदण्ड के आधार पर किया जाता है और ऐसे द्वि–भाजन को ही एक प्रकार से वास्तविक द्वि–भाजन मान लिया जाता है जैसे सफल–असफल समायोजित–असमायोजित आदि। यहां दो श्रेणियों के मध्य अंतर एक सूक्ष्म बिन्दु के आधार पर ही किया जाता है और बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की गणना में कभी–कभी ऐसे कृत्रिम द्वि–भाजन को भी वास्तविक द्वि–भाजन मान लिया जाता है। भले ही आंकड़ों का वितरण निरंतर भी हो और सामान्य भी हो।

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणाक की गणना (Calculation of Point Biserial Co-efficient of Correlation)

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_{pbi}) की गणना में द्वि–भाजी आंकड़ों को दो श्रेणियों में अलग–अलग तथा शून्य (0) के भारित अंक प्रदान किये जाते हैं। अधिक संख्या वाली श्रेणी के व्यक्तियों के अंक 1 तथा कम संख्या वाली श्रेणी के व्यक्तियों को शून्य (0) अंक प्रदान किया जाता है।

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने का सूत्र

$$r_{pbi} = \frac{m_p - m_q}{\delta_t}\sqrt{pq}$$

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_{pbi}) की गणना बहुत कुछ (r_b) के ही सूत्र व गणना के समान है। बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की गणना को निम्न उदाहरण की सहायता से स्पष्ट किया गया है।

उदाहरण : एक अध्ययन में बुद्धिलब्धि तथा यांत्रिक अभियोग्यता में सह–संबंध ज्ञात करने के लिए 10 विद्यार्थियों का संयोगिक आधार पर (On Random Basis) चयन किया गया पहले उनका मानकीकृत बुद्धि परीक्षण किया गया तथा उनके प्राप्तांक ज्ञात किए गये तत्पश्चात् उन्हें एक मानकीकृत यांत्रिक अभियोग्यता परीक्षण दिया गया इस परीक्षण में सफल होने वाले विद्यार्थियों को भारित अंक 1 तथा असफल विद्यार्थियों को 0 अंक प्रदान किया गया। दोनों परीक्षणों में परीक्षत विद्यार्थियों के संबंधित अंक निम्न सारणी में दिये गये दोनों चरों में विद्यार्थियों को दिये गये अंकों के आधार पर बिन्दु–द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_{pbi}) ज्ञात कीजिए।

विद्यार्थी	बुद्धिलब्धि x-Variable	यांत्रिक अभियोग्यता के परिणाम y-Variable		x^2	y^2	xy
		सफल	असफल			
1	120	1		14400	1	120
2	95		0	9025	0	00
3	118	1		13924	1	118
4	115		0	13225	0	00
5	124	1		15376	1	124
6	98		0	9604	0	00
7	116	1		13456	1	116
8	114		0	12996	0	00
9	112	1		12544	1	112
10	118	1		13924	1	118
	1130	Np = 6	Nq = 4	1,28,747	6	708

टिप्पणी

$\sum x = 1130, \quad \sum p = 6, \quad \sum q = 4, \quad Np = 6, \quad Nq = 4, \quad N = 10$

$\sum x^2 = 128474 \quad \sum 4^2 = 6 \quad \sum x4 = 708$

$m_p = 120 + 118 + 124 + 116 + 112 + 118 + 708/6 = 118$

$m_q = 95 + 115 + 98 + 114 + = 422/4 = 105.5$

$m_t = 120 + 95 + 118 + 115 + 124 + 98 + 116 + 114 + 112 + 118 = 1130/10 = 113$

$$\delta_t = \sqrt{\frac{\sum x^2}{N} - \left(\frac{\sum x}{N}\right)^2}$$

$$= \sqrt{\frac{128474}{10} - \left(\frac{1130}{10}\right)^2}$$

$$= \sqrt{12847.4 - (113)^2}$$

$$= \sqrt{12847.4 - 12769}$$

$$= \sqrt{78.4} \quad = \quad 8.854$$

$$= \delta_t = 8.854$$

$$p = \sum P/N = 6/10 = 0.6$$

$$q = \sum q/N = 4/10 = 0.4$$

$$r_{pbi} = \frac{m_p - m_q}{\delta_t}\sqrt{pq}$$

$$= \frac{118 - 105.7}{8.854}\sqrt{0.6(0.4)}$$

$$= \frac{12.5}{8.854} \times \sqrt{0.24}$$

$$= 1.412 \times 0.48989$$

$$= 0.69$$

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की गणना के लिए वैकल्पिक सूत्र
(Alternative Formula for Calculating Point Biserial Co-efficient of Correlation)

उदाहरण : $r_{pbi} = \dfrac{m_p - m_t}{\delta_t}\sqrt{\dfrac{p}{q}}$

उदाहरण 10 की सूचनाओं के आधार पर वैकल्पिक सूत्र के माध्यम से की गणना

$$= \frac{118 - 113}{8.854}\sqrt{\frac{0.6}{0.4}}$$

$$\frac{5}{8.854}\sqrt{1.5}$$

$$0.5647 \times 1.225 = 0.69$$

टिप्पणी

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक एक प्राचल (Parametric) विधि है इसी कारण इसका संबंध प्रोडक्ट मोमेण्ट विधि द्वारा प्राप्त सह–संबंध गुणांक से है। वास्तविकता तो यह है कि बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक प्रोडक्ट मोमेण्ट सह–संबंध गुणांक जैसा ही है तथा गणना करने पर दोनों का मान एक ही आता है। इस बात को हम उदाहरण के मानों को मूल आंकड़ों से प्रोडक्ट मोमेण्ट द्वारा सह–संबंध गुणांक के सूत्र में रखकर सिद्ध भी कर सकते हैं।

मूल आंकड़ों से प्रोडक्ट मोमेण्ट सह–संबंध गुणांक का सूत्र है–

$$\frac{N\sum x4-(\sum x)(\sum 4)}{\sqrt{\left[N(\sum x^2)-(\sum x)^2\right]\left[N(\sum y^2)-(\sum y^2)\right]}}$$

उदारण : उदाहरण 10 में दिये गये मानों को सूत्र में रखने पर

$$\frac{10(708)-(1130)\ (6)}{\sqrt{[10(128474)-1130\times 1130][10(6)-6\times 6]}}$$

$$\frac{7080-6780}{\sqrt{[1284740-1276900][60-36]}}$$

$$\frac{300}{\sqrt{(7840)\ 24}}$$

$$\frac{300}{\sqrt{188160}}=\frac{300}{433.774}$$

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक का मूल्यांकन
(Evaluation of Point Biserial Co-efficient of Correlation)

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_{pbi}) का मान प्रत्यक्ष रूप से m_q के अंतर पर आधारित होता है। यदि अंतर सार्थक रूप से अधिक होता है तो सह–संबंध गुणांक का मान भी उच्च तथा सार्थक होता है। बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक r_{pbi} के मान के संबंध में सार्थकता की जांच के लिए t परीक्षण का प्रयोग किया जा सकता है।

प्रस्तुत उदाहरण में r_{pbi} का मान 0.69 है यदि हमारी परिकल्पना बुद्धिलब्धि वाले विद्यार्थियों तथा यांत्रिक अभियोग्यता में सह–संबंध शून्य है। तो ऐसी स्थिति में बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की सार्थकता की जांच (Significance of Point Biserial Correlation) प्रोडक्ट मोमेण्ट (r) के आधार पर की जा सकती है। क्योंकि r_{pbi} तथा r एक समान ही है। r_{pbi} की सार्थकता की जांच संबंधित सारणी में N-2 स्वतंत्रता के अंशों पर की जा सकती है।

प्रस्तुत उदाहरण में N = 10 तथा d.f. = 10–2 = 8 है। अतः 8 d.f. पर संबंधित सारणी देखने से पता लगता है कि 0.69 का r_{pbi} का मान .05 के विश्वास स्तर पर

टिप्पणी

सार्थक है। क्योंकि इस स्तर पर सार्थकता का क्रान्तिक मान 0.632 से अधिक है। किन्तु यह मान 0.01 के विश्वास स्तर पर सार्थक नहीं है क्योंकि इस स्तर पर सार्थकता का मान 0.765 है और r_{pbi} का मान सार्थकता मान से कम है।

द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक तथा बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक का तुलनात्मक मूल्यांकन (Comparative Evaluation of Biserial Correlation and Point Biserial Correlation)

1. तुलनात्मक दृष्टि से बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_{pbi}) द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_b) से अधिक उपयुक्त एवं अधिक विश्वसनीय होता है क्योंकि r_{pbi} गुणांक द्वि–भाजी आंकड़ों में प्रसामान्य वितरण की कोई कल्पना नहीं करता।
2. r_{pbi} का मान ± 1 की सीमाओं के अंतर्गत रहता है। यदि एक ही उदाहरण में r_b तथा r_{pbi} के सूत्रों का प्रयोग करके गणना की जाती है तो r_{pbi} का मान से सदैव कम होगा। इसके विपरीत r_b का मान कभी–कभी ± 1 की सीमाओं से अधिक हो सकता है।
3. द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक r_b की तुलना किसी अन्य विधि द्वारा प्राप्त सह–संबंध गुणांक से करना कठिन होता है इसके विपरीत बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_{pbi}) एक प्रकार से प्रोडक्ट मोमेण्ट (r) ही है।
4. पद विश्लेषण Item Analysis में दोनों प्रकार के सह–संबंधों r_b तथा r_{pbi} का प्रयोग किया जाता है परन्तु r_{pbi} का उपयोग अधिक उपयुक्त रहता है, क्योंकि इसमें द्वि–भाजी आंकड़ों के प्रति प्रसामान्य वितरण होने की कल्पना का कोई प्रतिबन्ध नहीं होता है।

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की मात्रा की अधिक सीमा
(Maximum Limit of Point Biserial Co-efficient Correlation)

जब दो चरों में से एक चर Variable निरंतर श्रेणी में रहता है और दूसरा चर द्वि–भाजी। उस स्थिति में कभी–कभी उनमें पूर्ण सह–संबंध (Perfect Correlation) भी हो सकता है परंतु फिर भी r_{pbi} का मान प्रायः ± 1 से कम ही होता है।

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_{pbi}) का अधिकतम मान कभी भी न तो ± 1 रहता है और न ही इसका न्यूनतम मान कभी भी -1 तक आता है। अर्थात् r_{pbi} का मान ± 1 के बीच ही रहता है।

अभी तक सह–संबंध ज्ञात करने के जिन आंकड़ों का प्रयोग किया है उनमें एक चर निरंतर तथा दूसरा द्वि–भाजी रहा था लेकिन मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में ऐसी भी स्थितियां आती हैं जब दोनों ही चरों के आंकड़ें द्वि–भाजी हो। तो ऐसी स्थिति में सह–संबंध गुणांक की गणना के लिए निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जाता है–

1. फाई गुणांक (Phi-Co-efficient)
2. चतुष्कोष्टिक सह–संबंध (Tetrachoric Correlation)

फाई गुणांक (Phi-Co-efficient)

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में दोनों चरों के आंकड़ों का स्वरूप द्वि–भाजी रहता है। यदि ये आंकड़े वास्तव में द्वि–भाजी होते हैं तो उनका विभाजन प्रसामान्य वितरण के स्वरूप का अनुसरण नहीं करता है। अतः जब दोनों चरों के आंकड़े खण्डित (Discrete) तथा द्वि–भाजी (Dichatomous) होते हैं और उनका वितरण प्रसामान्य नहीं होता है तो सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने के लिए फाई गुणांक की गणना अधिक उपयुक्त रहती है। या इस प्रकार कहें कि आंकड़ों का किसी एक विशेष आधार पर द्वि–भाजन होता है तो उस स्थिति में फाई गुणांक की गणना की जा सकती है।

सैद्धान्तिक तौर पर जब आंकड़ों को केवल दो ही खण्डित श्रेणियों में विभाजित किया जाता है जैसे विवाहित–अविवाहित, जीवित–मृत व स्त्री–पुरुष आदि। तो आंकड़ों का वितरण प्रसामान्य नहीं हो सकता तथा सैद्धान्तिक रूप से ऐसे ही आंकड़ों के आधार पर जो 2×2 तालिका बनती है और ऐसे आंकड़ों से फाई–गुणांक की गणना उपयुक्त रहती है। परन्तु व्यवहारिक रूप में जब कभी निरंतर चरों को किसी एक विशेष आधार पर द्वि–भाजी बनाया जा सकता है है जैसे तीव्र बुद्धि–मन्दबुद्धि सफल–असफल, समायोजित–असमायोजित आदि अथवा जब आंकड़ों को मध्यांक के आधार पर मध्यांक के ऊपर तथा मध्यांक के नीचे दो भागों में विभाजि किया जा सकता है उस स्थिति में 2×2 की तालिका के आधार पर फाई गुणांक ज्ञात किया जा सकता है।

फाई गुणांक को ज्ञात करने का सूत्र (Formula of Phi-Co-efficient)

फाई गुणांक का प्रतीकात्मक चिह्न ϕ होता है।

$$\phi = \frac{BC - AD}{\sqrt{(A+B)\,(C+D)\,(A+C)\,(B+D)}}$$

A, B, C तथा D दी गयी चतुष्पदी तालिका की चारों कोष्ठिकाओं (Cells) की आवृत्तियां हैं। B एवं C कोष्ठिकाओं की आवृत्तियां समान चिह्नों की आवृत्तियों के व्यक्त करती है। अर्थात् कोष्ठिका B में (++) (yes हां–yes हां) (सफल Pass–सफल Pass) आदि की आवृत्तियां रहती हैं तथा कोष्ठिका C में (– –) (No नहीं–No नहीं) (Fail–Fail) (असफल–असफल) आदि की आवृत्तियां। इसके विपरीत A व D कोष्ठिकाओं में असमान आवृत्तियों को प्रदर्शित करती है। कोष्ठिका N में आवृत्तियों का स्वरूप (– +) (नहीं–हां) असफल–सफल आदि जबकि कोष्ठिका D में (+ –) (हां–नहीं) सफल–असफल की आवृत्तियां रहती हैं। फाई गुणांक Phi co-efficient की गणना के लिए अंश (Numerator) में समान चिह्न वाली आवृत्तियों (++) तथा (– –) वाली आवृत्तियों के गुणनफल में से असमान चिह्न वाली आवृत्तियों (+ +) तथा (– –) वाली आवृत्तियों के गुणनफल में से असमान चिह्न वाली आवृत्तियों (– +) तथा (+ –) के गुणनफल को घटाकर लिखा जाता है, तथा हर (Denominator) में सीमान्त वाले (Marginal) योगों (Total) का वर्गमूल (Square root) रहता है। फाई गुणांक का स्पष्टीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

टिप्पणी

X चर
++

Y चर (− −)			
	No-Yes नहीं–हां A	Yes-Yes हां–हां B	P A+B
	No-No नहीं–नहीं C	Yes-No हां–नहीं D	q C+D
	P' A+C	q' B+D	A+B+C+D N

उदाहरण : एक परीक्षण के दो पक्षों X तथा Y में 45 परीक्षार्थियों के परीक्षाफल के प्राप्त आंकड़ों के आधार पर निम्न तालिका द्वारा फाई गुणांक ज्ञात कीजिए

X चर

Y चर		असफल	सफल	योग
	असफल	A 11	B 16	A + B 27
	सफल	C 14	D 4	C+D 18
	योग	A+C 25	B+D 20	A+B+C+D =N 45

हल :

$$\phi = \frac{BC - AD}{\sqrt{(A+C)(B+D)(A+B)(C+D)}}$$

$$\phi = \frac{(16 \times 14) - (11 \times 4)}{\sqrt{(25)(20)(27)(18)}}$$

$$= \frac{224 - 44}{\sqrt{243000}}$$

$$= \frac{180}{482.95} = 0.3651 \text{ or } 0.37$$

उदाहरण : एक अभिरुचि अनुसूची में 100 परीक्षार्थियों के दो प्रश्नों (X तथा Y) के अन्तर हां तथा नहीं (yes or No) में नीचे तालिका में दिये गये है। दी गयी आवृत्तियों के आधार पर दोनों प्रश्नों में सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए।

X चर

No	Yes	Total
A 27	B 20	A + B 47 P
C 24	D 29	C+D 53 q
A+C 51 P'	B+D 49 q'	A+B+C+D 100

टिप्पणी

$$\phi = \frac{(BC)-(AD)}{\sqrt{(A+C)(B+D)(A+B)(C+D)}}$$

$$= \frac{(20)(24)-(27)(29)}{\sqrt{(51)(49)(47)(53)}}$$

$$= \frac{480-783}{\sqrt{6225009}}$$

$$= \frac{-303}{\sqrt{2494-996}} \text{ or } \frac{-303}{2495} = 0.12$$

फाई गुणांक की गणना दी गयी आवृत्तियों के समानुपातों (Proportions) के आधार पर भी की जा सकती है। आवृत्तियों के समानुपातों के आधार पर फाई गुणांक ϕ का सूत्र इस प्रकार होता है–

$$\phi = \frac{bc-ad}{\sqrt{Pq\,P'q'}}$$

उदाहरण : उपर्युक्त उदाहरण 14 के मानों को इस सूत्र में रखकर भी सह–संबंध गुणांक ज्ञात किया जा सकता है–

$$bc = \frac{20}{100} \times \frac{24}{100} = .0480$$

$$ad = \frac{27}{100} \times \frac{29}{100} = .0783$$

$$P = \frac{51}{100} = 0.51 \qquad q = \frac{49}{100} = 0.49$$

$$P' = \frac{47}{100} = 0.47 \qquad q' = \frac{53}{100} = 0.53$$

$$= \frac{0.0480-0.0783}{\sqrt{(0.51)(0.49)(0.47)(0.53)}}$$

$$= \frac{-.0303}{.06225009} = \frac{-0.0303}{0.2495}$$

$$= -\,0.12$$

यदि फाई गुणांक की गणना के लिए 2×2 तालिका के एक सीमान्त की दोनों कोष्ठिकाओं (Cells) के योग समान हो तब फाई गुणांक की गणना के लिए निम्न सरल सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

$$\phi = \frac{B - A}{\sqrt{Pq}}$$

टिप्पणी

उदाहरण : 50 विद्यार्थियों को दिये गये परीक्षण के दो पदों x तथा y में सफल तथा असफल विद्यार्थियों की आवृत्तियों नीचे तालिका में दी गयी है। प्राप्त परिणामों के आधार पर दोनों पदों x व y में सह–संबंध गुणांक कीजिए।

X चर

Y चर			
सफल	A 12	B 18	A + B 30 P
असफल	C 13	D 7	C+D 20 q
	A+C 25 P′	B+D 25 q′	A+B+C+D 100

इस तालिका में (A+C) तथा (B+D) के मान समान होने पर फाई गुणांक ϕ ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है।

$$\phi = \frac{B - A}{\sqrt{Pq}}$$

$$\phi = \frac{18 - 12}{\sqrt{30 \times 20}} = \frac{6}{\sqrt{600}}$$

$$= \frac{6}{24.495} = .245$$

फाई गुणांक ϕ के मान की जांच सबसे पहले प्रयुक्त किये गये फाई गुणांक के सूत्र द्वारा भी का जा सकती है। दोनों सूत्रों में ϕ का मान समान ही होगा।

उदाहरण :

$$\phi = \frac{BC - AD}{\sqrt{(A+C)(B+D)(A+B)(C+D)}}$$

$$= \frac{(18)(13) - (12)(7)}{\sqrt{(25)(25)(30)(20)}}$$

$$= \frac{234 - 84}{\sqrt{375000}}$$

$$= \frac{150}{612.37} = .229 \text{ or } 0.245$$

फाई गुणांक ϕ तथा प्रोडक्ट मोमेण्ट सह–संबंध (σ) में संबंध–

टिप्पणी

फाई गुणांक ϕ एक प्रकार से प्रोडक्ट मोमेण्ट सह–संबंध गुणांक ही है। प्रथम उदाहरण को लिया गया है। दी गयी तालिका में केवल यह संशोधन किया गया है कि सफल होने वाले परीक्षार्थियों को 1 (one) तथा असफल होने वाले परीक्षार्थियों को 0 (zero) अंक प्रदान किये गये है। इस प्रकार अंक प्रदान करने के पश्चात 2×2 तालिका के अंकों में प्रोडक्ट मोमेण्ट विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक σxy की तालिका निम्नवत् होगी–

Product Moment from a fold table प्रोडक्ट मोमेण्ट 4×4 तालिका द्वारा

उदाहरण :

X चर

Y चर	0	1	f	y′	fy′	fy′²	x′y′
1	11	16	27	1	27	27	16
0	14	4	18	0	0	0	
	25	20	48				

$x' = 1$

$fx' = 20$

$fx'^2 = 20$

$$\delta x = \sqrt{\frac{\sum fx'^2}{N} - \left(\frac{\sum fx'}{N}\right)^2}$$

$$\delta y = \sqrt{\frac{\sum fy'}{N} - \left(\frac{\sum fy}{N}\right)^2}$$

$$= \sqrt{\frac{20}{45} - \left(\frac{20}{45}\right)^2}$$

$$= \sqrt{\frac{40}{45} - \left(\frac{20}{45}\right)^2}$$

$$= \sqrt{.4444 - .1975}$$

$$\sqrt{0.2469}$$

$$\delta x = .4969$$

$$\delta y = \sqrt{\frac{27}{45} - \left(\frac{27}{45}\right)^2}$$

$$= \sqrt{.60 - (.6)^2}$$

$$= \sqrt{0.24}$$

$$.4899$$

$$r_{xy} = \frac{\frac{x'y'}{N} - C_x\, C_y}{(\delta x)(\delta y)}$$

$$r_{xy} = \frac{\frac{16}{45} - \frac{27}{45} \times \frac{20}{45}}{(.4969)(.4899)}$$

$$= \frac{.3556 - (0.6)\,(.44)}{0.2434}$$

टिप्पणी

$$= \frac{.3556 - .2667}{.2434}$$

$$= \frac{.0889}{.2434}$$

$$= 365 \quad or \quad 0.37$$

फाई गुणांक ϕ तथा फाई वर्ग $(x)^2$ में संबंध

(Relationship between Phi Co-efficient and Chi Square $(x)^2$

फाई गुणांक तथा फाई–वर्ग में प्रत्यक्ष निकट संबंध है। 2×2 तालिका में x^2 फाई वर्ग ज्ञात करने का सूत्र

$$x^2 = \frac{N(AD - BC)^2}{(A+B)(C+D)(A+C)(B+D)}$$

तथा

$$\phi = \frac{(AD) - (BC)}{\sqrt{(A+B)(C+D)(A+C)(B+D)}}$$

अतः गणना करने पर

$$x^2 = N\phi^2$$

$$\phi = \sqrt{\frac{x^2}{N}}$$

उदाहरण : दोनों के संबंध को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

A 24	B 12	A+B 36
C 32	D 32	C+D 64
A+C 56	B+D 44	A+B+ C+C 100N

$$x^2 = \frac{N(AD - BC)^2}{(A+B)(B+D)(C+D)(A+C)} \qquad x^2 = \frac{100\,(24)\,32 - (12)\,(32)}{(56)\,(44)\,(36)\,(64)}$$

$$x^2 = \frac{100\,(768 - 384)}{5677056} \qquad \frac{100\,(768 - 384)^2}{5677056}$$

$$\frac{14745600}{5677056} \qquad = 2.59 \;\; or \;\; 2.6$$

$$\phi = \frac{(AD) - (BC)}{\sqrt{(A+C)(B+D)(A+B)(C+D)}}$$

$$\phi = \frac{(24)\,(32) - (12)\,(32)}{\sqrt{(56)\,(44)\,(36)\,(64)}} = \frac{768 - 384}{\sqrt{5677056}} = \frac{384}{2382.66}$$

टिप्पणी

$$= 0.16$$

$$x^2 = N\phi^2$$

$$x^2 = 100\ (.16)^2$$

$$= 100\ (0.256)$$

$$= 2.56$$

$$= 2.6$$

$$\phi = \frac{\sqrt{x^2}}{N}$$

$$\phi = \sqrt{\frac{2.6}{100}} = \sqrt{.026}$$

$$= .16$$

फाई गुणांक ϕ का मूल्यांकन (Evalution of Phi Co-efficient)

द्वि–भाजी आंकड़ों के लिए फाई गुणांक एक प्रकार का प्रोडक्ट मोमेण्ट सह–संबंध गुणांक ही है लेकिन प्रोडक्ट मोमेण्ट सह–संबंध गुणांक (r_{xy}) तथा फाई गुणांक (ϕ) का विवेचना समरूप नहीं होता है क्योंकि फाई गुणांक के लिए आंकड़ों का स्वरूप प्रसामान्य वितरण पर आधारित नहीं होता है जबकि प्रोडक्ट मोमेण्ट सह–संबंध गुणांक के लिए अंकों के वितरण में प्रसामान्य वितरण की कल्पना जरूरी होती है। माना ϕ का मान 0.45 है तथा r_{xy} का मान भी +.45 तब भी इन समान मानों की विवेचना समान नहीं होती है।

फाई वर्ग गुणांक की अपनी सीमायें होती हैं। व्यावहारिक रूप से इसका मान +1 तथा –1 नहीं आता है। फाई गुणांक (ϕ) केवल उसी विशेष स्थिति में +1 के मान तक पहुंच सकता है जब 2×2 की तालिका में B = C है तथा A व D का मान अलग–अलग शून्य (0) होता है। जैसे निम्न तालिका से स्पष्ट है।

0	20	20
20	0	20
20	20	140

$\phi = +1$

इसी प्रकार फाई गुणांक के –1 मान के लिये B तथा C के अलग–अलग शून्य होने चाहिए।

50	0	50
0	50	50
50	50	100

$\phi = -1$

इन विशेष परिस्थितियों के अतिरिक्त अन्य परिस्थितियां भी फाई गुणांक के मान के सीमित रहने के कारण एक चर के ज्ञान के आधार पर, दूसरे चर के विषय में शुद्ध रूप से भविष्य कथन (Prediction) करना कठिन हो जाता है। अन्य शब्दों में 2 × 2 तालिका के द्वि–भाजी आंकड़ों में ϕ की सहायता से एक चर के ज्ञान द्वारा दूसरे मान का भविष्य–कथन शुद्ध रूप से करना संभव नहीं होता है और फाई गुणांक ϕ में यह दोष निरंतर देखने में आता है। परंतु इस कमी के कारण फाई गुणांक ϕ की उपयोगिता कम

नहीं हुई है मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में इसका विशेष महत्व होता है और उस स्थिति में फाई गुणांक का महत्व और भी बढ़ जाता है जबकि आंकड़ों का स्वरूप वास्तव में द्वि–भाजी रहता है।

फाई गुणांक के मान की सार्थकता की जांच (Testing Significance of the value of ϕ)

फाई गुणांक के मान की सार्थकता की जांच के लिए कोई सुविधाजनक सूत्र नहीं है अतः फाई गुणांक की मानक त्रुटि (Standard Error) का पता लगाना कठिन है। परंतु (x^2) फाई–वर्ग के माध्यम से फाई गुणांक के मान की सार्थकता की जांच आसानी से की जा सकती है। इसके लिए पहले फाई गुणांक ϕ के मान को निम्न सूत्र द्वारा फाई–वर्ग (x^2) में परिवर्तित करते हैं।

$$x^2 = N(\phi)^2$$

इस अध्याय की 2×2 तालिका पर आधारित एक उदाहरण में फाई गुणांक का मान 0.37 है तथा N = 45 है इस मान को x^2 में परिवर्तित करने पर

$$x^2 = N\phi 2$$
$$x^2 = 45\,(0.37)\,(0.37)$$
$$x^2 = 45\,(.1369)$$
$$x^2 = 6.16$$

2×2 की तालिका में स्वतंत्रता (Degree of Freedom) = 1 होती है x^2 तालिका में सार्थकता मान

5% विश्वास स्तर पर 3.84

1% विश्वास स्तर पर 6.64 है

प्रस्तुत उदाहरण में प्राप्त x^2 का मान 6.16 5% विश्वास स्तर पर सार्थक है परंतु 1% के विश्वास स्तर पर सार्थक नहीं होते है। इस प्रकार ϕ फाई गुणांक के मान को कोई वर्ग (x^2) में परिवर्तित किया जाता है। तब फाई गुणांक ϕ का मान उसी विश्वास स्तर पर सार्थक होगा जिस पर x^2 का मान सार्थक होगा इसके विपरीत यदि x^2 का मान सार्थक नहीं आता है तो फाई गुणांक ϕ का मान भी सार्थक नहीं माना जाता है।

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध (Tetrachoric Correlation)

जब द्विचर आंकड़ों का स्वरूप सुविधाजनक द्वि–भाजी होता है तथा उनका विवरण निरंतर रहता है और ऐसे आंकड़ों के संबंध में कल्पना प्रसामान्य वितरण की रहती है तो ऐसी स्थिति में 2×2 तालिका के आधार पर फाई गुणांक के स्थान पर चतुष्कोष्टिक सह–संबंध की गणना अधिक उपयुक्त रहती है क्योंकि फाई गुणांक ऐसे दोनों चरों में व्याप्त सह–संबंध गुणांक का मूल्यांकन कम करता है। दूसरा फाई गुणांक की गणना में प्रसामान्य वितरण की कल्पना नहीं होती क्योंकि जब आंकड़े वास्तविक रूप से द्वि–भाजी होते हैं तो प्रसामान्य रूप से वितरित होने की कल्पना नहीं की जा सकती है।

जब आंकड़ों का वास्तविक स्वरूप तो निरंतर हो तथा दोनों चरों के द्वि–भाजी आंकड़ों का स्वरूप रेखीय हो लेकिन गणना की सुविधा के लिए किसी अन्य कृत्रिम आधार में दो भागों में विभाजित कर लिया जाता है तो ऐसे आंकड़ों का स्वरूप

द्वि–भाजी होते हुए भी निरंतर तथा कन्टिन्यूअम पर रहता है तो चतुष्कोष्टिक सह–संबंध गुणांक का प्रतीकात्मक चिह्न *rt* होता है। इसकी गणना का मौलिक सूत्र जटिल है इसी कारण इसका प्रयोग बहुत कम किया जाता है।

टिप्पणी

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध गुणांक *rt* को ज्ञात करने का सूत्र

(Formula for Calculating Tetrachoric Correlation)

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध गुणांक (*rt*) की गणना के लिए निम्नलिखित को साइन–पाई सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

$$rt = \text{Cos}\ Cos\left(\frac{180}{1+\sqrt{BC/AD}}\right)$$

यहां *rt* चतुष्कोष्टिक सह–संबंध गुणांक है ABC तथा D चतुष्कोष्टिक तालिका की कोष्ठिकाओं (Cells) की अलग–अलग आवृत्तियां हैं तथा पाई (π) का मान 180° है। *rt* को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

उदाहरण : समायोजन तथा शैक्षिक योग्यता में सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने के लिए दो अलग–अलग परीक्षणों के लिए एक कक्षा से संयोगिक आधार पर 125 विद्यार्थियों का चयन किया गया। समायोजन अनुसूची (Test *x*) के आधार पर 125 विद्यार्थियों में से 60 समायोजित तथा 65 असमायोजित पाए गये। दूसरे परीक्षण (Test *y*) में शैक्षिक योग्यता परीक्षण में 125 में 70 सफल तथा 55 असफल पाये गये। दोनों परीक्षणों द्वारा प्राप्त परिणाम को 2×2 की तालिका में अंकित किया गया है। दिये गये इन आंकड़ों के परिणाम के आधार पर दोनों चरों *x* तथा *y* में सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए।

x–चर

	असफल	सफल	योग
x–*चर*	A 30	B 40	A+B 70
	C 35	D 20	C+D 55
	A+C 65	B+C 60	N 125

हल :

उपरोक्त तालिका के आधार पर AD = 30 × 20 = 600

BC = 40 × 35 = 1400

$$rt = Cos\frac{180}{1+\sqrt{\frac{BC}{AD}}}$$

$$= Cost\left[\frac{180}{1+\sqrt{\frac{1400}{600}}}\right]$$

टिप्पणी

$$= \quad \text{Cosine}\ \frac{180 \times 24.495}{61.912}$$

$$= \quad \text{Cosine}\ \frac{4409.100}{61.912}$$

$$= \quad 71.2 \quad \text{or} \quad 71^\circ$$

$$= \quad .326 \quad \text{or}.33$$

(परिशिष्ट में दी गयी Cosine Table में 71° का मान देखने पर 71° = .326   0.033)

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध *rt* का अन्य उदाहरण।

उदाहरण : बुद्धि के स्तर तथा गणित की योग्यता में सह–संबंध को जांचने के लिए 50 छात्रों का संयोगिक आधार पर चयन किया गया और उनका बुद्धि परीक्षण किया गया बुद्धिलब्धि के आधार पर 180 छात्रों को दो भागों में विभाजित किया गया। (1) जिन्होंने 100 से ऊपर प्राप्तांक पाये (उच्चतर बुद्धि वाले (2) जिन्होंने 100 से कम प्राप्तांक पाये (निम्नतर बुद्धि वाले) फिर गणित परीक्षण में उन्हीं 100 छात्रों प्राप्तांकों के आधार पर सफल तथा असफल श्रेणी में रखा गया दोनों परीक्षणों के परिणाम नीचे 2 × 2 तालिका में दिये गये हैं।

	***x*–चर**		
	असफल	**सफल**	**योग**
y–चर	A 30	B 40	A+B 70
	C 35	D 20	C+D 55
	A+C 65	B+C 60	N 125

हल :

उपरोक्त तालिका के आधार पर

$$BC = 36 \times 26 = 936$$

$$AD = 24 \times 14 = 336$$

$$rt = \text{Cosine}\left[\frac{180}{1+\sqrt{\frac{BC}{AD}}}\right]$$

$$= \text{Cosine}\ \frac{[180]}{1+\sqrt{\frac{936}{336}}}$$

$$= \text{Cosine}\left[\frac{180}{1+\frac{30.594}{18.330}}\right]$$

टिप्पणी

$$= \text{Cosine}\left[\frac{180 \times 18.33}{48.924}\right]$$

$$= \text{Cosine}\left[\frac{3299.4}{48.924}\right]$$

$$= \text{Cosine}\, 67.43 \quad \text{or} \quad 67^\circ$$

तालिका में देखने पर 67° का मान = .391 है।

$$= 0.39$$

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध ज्ञात करने का संक्षिप्त सूत्र

1. $rt = \frac{BC}{AD}$ (यदि BC का मान AD के मान से अधिक हो) BC > AD

2. $rt = \frac{AD}{BC}$ (यदि AD का मान BC के मान से अधिक हो AD > BC)

यहां यह स्मरण रखने की बात है कि B तथा C कोष्ठिकाओं (Cells) के मान (++) तथा (– –) होने के कारण परस्पर सहमति को व्यक्त करते हैं अतः जब BC का मान AD के मान से अधिक रहता है तो धनात्मक सह–संबंध (Positive Correlation) प्राप्त होता है। इसके विपरीत A तथा D कोष्ठिकाओं (Cells) के मान (– +) तथा (+ –) होने के कारण परस्पर असहमति को प्रकट करते हैं अतः असहमति की स्थिति में ऋणात्मक सह–संबंध Negative Correlation प्राप्त होता है।

संक्षिप्त सूत्र द्वारा चतुष्कोष्टिक सह–संबंध की गणना की जांच–

अब rt के मान को सूक्ष्म सूत्र द्वारा ज्ञात करने के लिए ऊपर दिये गये उदाहरणों को ही प्रयोग में लाया गया है पहले उदाहरण में

1. AD का मान = 30 × 20 = 600 तथा
2. BC का मान 40 × 35 = 1400

अतः BC तथा AD का अनुपात

$$\frac{BC}{AD} \; \frac{1400}{600} = 2.33$$

प्राप्त BC/AD के अनुपात के मान को परिशिष्ट में दी गयी तालिका में देखने पर rt का मान = 0.32 आता है। Consine Pie सूत्र द्वारा यह मान = .326 आता है।

इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में,

जबकि BC (36) (26) = 936

AD = (24) (14) = 336

अतः BC व AD अनुपात

$$\frac{936}{336} = 2.786$$

2.786 का मान संबंधित तालिका में देखने पर rt का मान 0.385 आता है Consine Pie सूत्र द्वारा यह मान 0.39 आता है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि चतुष्कोष्टिक सह–संबंध गुणांक rt का संक्षिप्त सूत्र बहुत ही सरल एवं सुविधाजनक है इसमें गणना कम करनी पड़ती है और परिणाम दशमलव के दो अंकों तक शुद्ध रहते हैं।

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध के सूत्रों के प्रयोग की सीमाएं
(Limitation for the Use of *rt* Formula)

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध उसी स्थिति में उपयुक्त व उत्तम रहता है जबकि दोनों चरों के द्वि–भाजी आंकड़ों का विभाजन अपने–अपने मध्यांक के निकट हो, उनके विभाजन अपने वितरण में 0.5 भाग पर हो अथवा इस बिन्दु के आस–पास हो।

यदि आंकड़ों का विभाजन 0.95 तथा 0.5 के कटाव बिन्दुओं पर अथवा 0.90 तथा 0.10 पर हो तो इस सूत्र का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध की विश्वसनीयता (Relaiability of Tetrachoric Correlation)

चतुष्टकोष्टिक सह–संबंध rt का मान उन स्थितियों में सबसे अधिक विश्वसनीय रहता है जबकि इसकी गणना अधिक आंकड़ों पर की गयी हो तथा अब आंकड़ों के वितरण में विभाजन के कटाव बिन्दु 0.50 पर हो।

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध (*rt*) तथा गुणांक ϕ का मूल्यांकन तथा तुलनात्मक अध्ययन (Evaluation & Comparative Study of Terachoric Correlation & Phi Correlation)

- फाई गुणांक तथा चतुष्कोष्टिक सह–संबंध में वही संबंध है, जो बिन्दु द्वि–पंक्तिक ($rpbi$) तथा द्वि–पंक्तिक सह–संबंध (rb) में होता है।
- फाई गुणांक की गणना के लिए चरों का द्वि–भाजन वास्तव में द्वि–भाजी होता है लेकिन फाई गुणांक के संबंध में प्रसामान्य वितरण तथा निरंतर व रेखीय वितरण होने की कोई कल्पना नहीं रहती है। इसके विपरीत चतुष्कोष्टिक सह–संबंध (rt) के लिए द्वि–भाजी आंकड़ों का द्वि–भाजन कृत्रिम होता है व वितरण के प्रसामान्य होने की कल्पना भी रहती है तथा आंकड़ों का स्वरूप निरंतर व रेखीय रहता है।
- यदि दो एक समान 2×2 की तालिकाओं से (rt) तथा (ϕ) की गणना की जाए तब ϕ का मान सदैव rt से कम रहता है। अन्य शब्दों में ϕ एक प्रकार से rt का कम मूल्यांकन करता है।
- चतुष्कोष्टिक सह–संबंध गुणांक (rt) की मान त्रुटि की गणना जटिल होती है लेकिन फाई गुणांक की विश्वसनीयता की जांच ϕ के मान को x^2 फाई वर्ग में परिवर्तित करके सरलतापूर्वक की जा सकती है। यदि x^2 का मान दिये गये d.f पर विश्वसनीय है तब फाई–गुणांक का मान भी विश्वसनीय मान लिया जाता है।

- चतुष्कोष्टिक सह–संबंध गुणांक का मान सीमान्त योगों (Marginal Totals) से प्रभावित नहीं होता है लेकिन फाई–गुणांक ϕ के मान पर सीमान्त योगों का प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है।

आंशिक सह–संबंध तथा बहुचरीय सह–संबंध (Partial Correlation and Multiple Correlation)

अभी तक सह–संबंध की जिन विधियों का वर्णन किया गया है उनका संबंध दो चरों से रहा है। व्यवहार में अनेक परिस्थितियां ऐसी आती हैं जब तीन या चार चरों के बीच सह–संबंध ज्ञात करना होता है। मनोविज्ञान, शिक्षाशास्त्र तथा सामाजिक विज्ञानों में कभी–कभी ऐसी परिस्थितियां आती हैं जब हमें दो चरों के सह–संबंध में से तीसरे व चौथे के प्रभाव को अलग करना होता है, ऐसी स्थिति में आंशिक सह–संबंध ज्ञात किया जाता है। और कभी–कभी दो या इससे अधिक चरों के प्रभाव का किसी एक चर पर सह–संबंध ज्ञात करने की आवश्यकता होती है, ऐसी स्थिति में बहुचरीय सह–संबंध की गणना की जाती है।

आंशिक सह–संबंध में एक आश्रित चर (Dependent Variable) तथा एक स्वतंत्र (Independent Variable) में सह–संबंध इस आधार पर ज्ञात किया जाता है कि अन्य सभी चरों का प्रभाव स्थिर है अथवा उनके प्रभाव को हटा दिया गया है। अन्य शब्दों में आंशिक सह–संबंध गुणांक एक स्वतंत्र चर को छोड़कर अन्य सभी स्वतंत्र चरों को स्थिर मान लेता है।

जब कभी दो चरों में शुद्ध सह–संबंध ज्ञात करने के लिए किसी एक तीसरे चर के प्रभाव को स्थिर करना पड़ता है तो उस स्थिति में हमें जो आंशिक सह–संबंध प्राप्त होता है उसे प्रथम स्तरीय आंशिक सह–संबंध कहते हैं। और जब दो चरों में शुद्ध सह–संबंध ज्ञात करने के लिए अन्य संबंधित से चरो के प्रभावों को अलग अथवा स्थिर कर दिया जाता है तो उस स्थिति में प्राप्त होने वाले सह–संबंध गुणांक को द्वि–स्तरीय आंशिक सह–संबंध गुणांक को द्वि–स्तरीय आंशिक सह–संबंध कहते हैं। ऐसे आंशिक सह–संबंध का सांकेतिक चिह्न 12.34 होता है, इसका अर्थ है कि पहले, दूसरे चरों के सह–संबंध गुणांक में तीसरे व चौथे चर के प्रभाव को स्थिर कर दिया गया है। इसी प्रकार *r* 13.24 का अर्थ है पहले तथा तीसरे चर में सह–संबंध गुणांक के लिये दूसरे व चौथे चरों के प्रभाव को अलग कर दिया गया है।

आंशिक सह–संबंध का गणना सूत्र (Calculating Formula of Partial Correlation)

1. $r_{12.3} = \dfrac{r_{12} - r_{13}\, r_{23}}{\sqrt{1 - r_{13}^2}\,\sqrt{1 - r_{23}^2}}$

यहां– r_{12} = चर x_1 तथा x_2 में सह–संबंध गुणांक

r_{13} = चर x_1 तथा x_3 में सह–संबंध गुणांक

r_{23} = चर x_2 तथा x_3 में सह–संबंध गुणांक

$r_{12.3}$ = चर x_1 तथा x_2 में आंशिक सह–संबंध गुणांक तथा x_3 का प्रभाव स्थिर है।

2. $r_{12.3} = \frac{r_{13} - r_{12}\ r_{23}}{\sqrt{1 - r_{12}^{2}}\ \sqrt{1 - r_{23}^{2}}}$

टिप्पणी

$r_{13.2}$ x_1 तथा x_3 में आंशिक सह–संबंध है तथा x_2 का प्रभाव स्थिर है।

3. $r_{23.1} = \frac{r_{23} - r_{12}\ r_{13}}{\sqrt{1 - r_{12}^{2}}\ \sqrt{1 - r_{13}^{2}}}$

$r_{23.1}$ = चर x_2 तथा x_3 में आंशिक सह–संबंध है तथा चर x_1 का प्रभाव स्थिर है।

इसी प्रकार यदि चार चर (Four Variable) हों तो कुछ आंशिक सह–संबंध गुणांक निम्न सूत्रों के माध्यम से ज्ञात किए जाएंगे–

$$r_{14.2} \frac{r_{14} - r_{12}\ r_{24}}{\sqrt{\left(1 - r_{12}^{2}\right)\sqrt{1 - r_{24}^{2}}}}$$

x_1 तथा x_3 में आंशिक सह–संबंध है तथा x_4 का प्रभाव स्थिर है।

$$r_{12.4} \frac{r_{12} - r_{14}\ r_{24}}{\sqrt{\left(1 - r_{14}^{2}\right)\sqrt{1 - r_{24}^{2}}}}$$

x_1 तथा x_2 में आंशिक सह–संबंध है तथा x_4 का प्रभाव स्थिर है।

उदाहरण : तीन चरों वाले वितरण से निम्न सूचना प्राप्त है–

$r_{12} = 0.7 \quad r_{13} = 0.61 \quad r_{23} = .4$

तब,

$r_{23.1}$, $r_{13.2}$ तथा 12.3 के मान ज्ञात कीजिए।

1. $r_{23} \frac{r_{23} - r_{12}\ r_{13}}{\sqrt{\left(1 - r_{12}^{2}\right)\sqrt{1 - r_{13}^{2}}}}$

$$r_{23.1} \frac{0.4 - (0.7)\,(0.61)}{\sqrt{1 - (.7)^2\ \sqrt{1 - (.61)^2}}}$$

$$\frac{0.4 - 0.427}{\sqrt{1 - .49}\ \sqrt{1 - 0.3721}}$$

$$\frac{0.027}{\sqrt{0.51}\ \sqrt{0.6270}}$$

$$\frac{0.027}{0.714 \times .792} = \frac{0.027}{0.5658} = 0.0477 \ \ or \ \ 0.048$$

2. $r_{13.2} = \frac{r_{13} - r_{12}\ r_{23}}{\sqrt{\left(1 - r_{12}^{2}\right)}\ \sqrt{\left(1 - r_{23}^{2}\right)}}$

$r_{13} = 0.61$
$r_{12} = 0.7$
$r_{23} = 0.4$

$$r_{13.2} = \frac{0.61 - (.7)\,(.4)}{\sqrt{(1-(.7)^2}\,\sqrt{1-(.4)^2}}$$

$$r_{13.2} = \frac{0.61 - .28}{\sqrt{1-49}\,\sqrt{1-.16}}$$

$$\frac{0.33}{.51\sqrt{.84}} = \frac{0.33}{.6545} = 0.504$$

3. $$r_{12.3}\,\frac{r_{12} - r_{13}\,r_{23}}{\sqrt{\left(1-r_{13}^2\right)}\,\sqrt{1-r_{23}^2}}$$

$$r_{12.3}\,\frac{.7 - (0.61)\,(0.4)}{\sqrt{(1-(.61)^2}\,\sqrt{1-(.4)}}$$

$$\frac{0.7 - 0.244}{\sqrt{1-.3721}\,\sqrt{1-.16}}$$

$$\frac{0.456}{0.7262} = .6279 \quad or \quad .628$$

बहुगुणी/बहुचरीय सह–संबंध (Multiple Correlation)

बहुगुणी/बहुचरीय सह–संबंध के अंतर्गत एक चर तथा दो या दो से अधिक स्वतंत्र (Independent Variable) चरों के बीच सह–संबंध ज्ञात किया जाता है। जब एक चर के संबंध में आकलन अन्य दो या दो से अधिक चरों पर आधारित रहता है, तो उन संबंधित चरों के संयुक्त प्रभाव को ज्ञात करने के लिए उनके संयोजित सह–संबंध गुणांक की गणना करनी होती है। ऐसे संयोजित सह–संबंध को ही बहुचरीय सह–संबंध कहते हैं।

उदाहरण स्वरूप $x_1\,x_2$ तथा x_3 दिये गये हैं। x_1 भार x_2 लंबाई तथा x_3 उम्र को व्यक्त करता है। तो हम किसी लंबाई तथा उम्र के लिए भार ज्ञात कर सकते हैं। इसी प्रकार उम्र तथा भार के लिए लंबाई ज्ञात की जा सकती है। इसका संकेताक्षर R होता है। बहुगुणी/बहुचरीय सह–संबंध गुणांक को निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जा सकता है–

$$R_{1.23}\sqrt{\frac{r_{12} + r_{13}^2 - 2r_{12}\,r_{13}\,r_{23}}{1-r_{23}^2}}$$

$$R_{2.13}\sqrt{\frac{r_{12}^2 + r_{23}^2 - 2r_{12}\,r_{13}\,r_{23}}{1-r_{23}^2}}$$

$$R_{3.12}\sqrt{\frac{r_{13}^2 + r_{23}^2 - 2r_{12}\ r_{13}\ r_{23}}{1 - r_{13}^2}}$$

टिप्पणी

इसी प्रकार यदि चर Variable चार हैं तो सूत्र इस प्रकार होगा–

$$R_{1.24} = \sqrt{\frac{r_{12} + r_{14} - 2r_{12}\ r_{14}\ r_{24}}{1 - r_{24}^2}}$$

$$R_{.2.14} = \sqrt{\frac{r_{12} + r_{24}^2 - 2r_{12}\ r_{14}\ r_{24}}{1 - r_{14}^2}}$$

$$R_{1.34}\sqrt{\frac{r_{13}^2 + r_{14}^2 - 2r_{13}\ r_{14}\ r_{34}}{1 - r_{34}^2}}$$

$$R_{3.24}\sqrt{\frac{r_{23}^2 + r_{24}^2 - 2r_{23}\ r_{24}\ r_{34}}{1 - r_{24}^2}}$$

R के नीचे दशमलव के बायीं ओर आश्रित चर तथा दायीं ओर स्वतंत्र चर दिये जाते हैं। जैसे $R_{2.134}$ यहां x_2 आश्रित तथा $x_1\, x_3$ व x_4 स्वतंत्र चर हैं।

बहुचरीय सह–संबंध की गणना

$r_{12} = 0.98$

$r13 = 0.44$

$r_{23} = 0.54$

इन सूचनाओं के आधार पर पहले चर को आश्रित तथा दूसरे व तीसरे चर को स्वतंत्र मानकर बहुगुणी सह–संबंध की गणना कीजिए–

$$R_{1.23}\sqrt{\frac{r_{12}^2 + r_{13}^2 - 2r_{12}\ r_{13}\ r_{23}}{1 - r_{23}^2}}$$

$$\sqrt{\frac{(.98)^2 + (.44)^2 - 2(.98)\,(.44)\,(.54)}{1 - (.54)^2}}$$

$$\sqrt{\frac{.9604 + .1936 - .4557}{1 - .2916}}$$

$$\sqrt{\frac{.6883}{.7084}}$$

$$\sqrt{.9716262} = 0.9857 \quad or \quad 0.986$$

उदाहरण : निम्न सूचनाओं के आधार पर $R_{2.13}$ तथा $R_{3.12}$ ज्ञात कीजिए।

$r_{12} = 0.8$

$r_{13} = 0.4$

$r_{23} = 0.5$

टिप्पणी

$$R_{2.13}\sqrt{\frac{r_{12}^2 + r_{23}^2 - 2r_{12}\ r_{13}\ r_{23}}{1 - r_{13}^2}}$$

$$\sqrt{\frac{(.8)^2 + (.5)^2 - 2(.16)}{1 - (.4)^2}}$$

$$\sqrt{\frac{.64 + 25 - 2(.16)}{1 - .16}} = \sqrt{\frac{0.89 - .32}{.84}} = \frac{.57}{.84}$$

$$= \sqrt{.67857} = 0.8237 \ \ or \ \ 0.824$$

$$R_{3.12} = \sqrt{\frac{r_{13}^2 + r_{23}^2 - 2(r_{13})\,(r_{13})\,(r_{23})}{1 - r_{12}^2}} = \sqrt{\frac{(.4)^2 + (.5)^2 - 2(.8)\,(.4)\,(.5)}{1 - (.8)^2}}$$

$$= \sqrt{\frac{.09}{.36}} = \sqrt{.25} \ = 0.5$$

बहुचरीय सह–संबंध Multiple Correlation को ज्ञात करने के लिए x पर y तथा z के समानुपाती (Proportional) प्रभावों को संयोजित किया जाता है। y तथा z चरों के समानुपाती प्रभावों को संयोजित करने की विधियां काफी जटिल व कठिन हैं इसलिये यहां एक सरल विधि का प्रयोग किया गया है जिसे संचय वर्ग (Pooling Square) विधि कहते हैं। इसके उपयोग के लिए पहले विभिन्न चरों के सह–संबंध गुणांकों को निम्नलिखित तालिका में प्रस्तुत किया जाता है–यदि $x_4 = .86$, $xz = .72$ or $yz = .48$

संचय वर्ग तालिका (Pooling Square Table)

चर	*x*	*y*	*z*
x	1.0	.86	.72
y	.86	1.0	.48
z	.72	.48	1.0

यहा y तथा z के प्रभावों को संयोजित करने के लिए y तथा z वाले स्तंभों (Columns) को दोहरी रेखाओं में अलग कर दिया जाता है। उसके पश्चात् सह–संबंध मैट्रिक्स की निम्न आधार पर रचना की जाती है–

$$\begin{array}{c|c} a & c \\ \hline c & b \end{array} \qquad a = r_{xx} = 1.0$$

$$c = r_{xy} + r_{xz} = .86 + .72 = 1.58$$
$$b = r_{yy} + r_{yy} + r_{yz} + r_{yz}$$
$$1.0 + 1.0 + .48 + .48$$
$$2.96$$

यहां बहुचरीय सह–संबंध का सूत्र इस प्रकार होगा–

$$R = \frac{C}{\sqrt{ab}}$$

$$\frac{1.58}{\sqrt{(1)\,(2.96)}} = \frac{1.58}{\sqrt{2.96}}$$

टिप्पणी

$$\frac{1.58}{1.72} = .918 \;\; or \;\; 0.92$$

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि पहले x चर का y तथा z के साथ अलग–अलग सह–संबंध .86 तथा .72 था लेकिन बहुचरीय सह–संबंध (अथवा y तथा z के प्रभावों को संयोजित करने पर) 0.92 हो गया है। भविष्य कथन y तथा z चरों के संयोजित सह–संबंध अथवा बहुचरीय सह–संबंध के आधार पर किया जाता है।

कोटि सार्थकता परीक्षण एवं सहविचरण

Sir Wiliam S. Gosset (उपनाम ***student***) ने एक सार्थकता परीक्षण ***(Test of Significance)*** का विकास किया और यह प्रतिचयन सिद्धांत के छोटे प्रतिदर्श विश्लेषण में सार्थक योगदान देता है। जब जनसंख्या विचरन अज्ञात हो तो परीक्षण सामान्यत: t वितरण पर आधारित ***student*** का t परीक्षण कहते हैं।

सामान्य वितरण की तरह t वितरण भी सम्मित होता है परंतु सामान्य वितरण की तुलना में संतोषजनक होना चाहिए। और आगे हरेक संभव प्रतिदर्श आकार का t वितरण भिन्न होता है। अगर प्रतिदर्श आकार बड़ा हो तो t वितरण का आकार संतोषजनक नहीं होगा और लगभग सामान्य वितरण के बराबर हो जायेगा। वास्तविकता में ***30*** से बड़े प्रतिदर्श आकार के लिए t वितरण सामान्य के बहुत समीप होता है और हम उसका उपयोग लगभग सामान्य t वितरण की तरह करते हैं। जहाँ n छोटा है तो t वितरण सामान्य से दूर होगा परन्तु जब n अंतंत हो तो यह सामान्य वितरण की तरह होगा।

छोटे प्रतिदर्श के संदर्भ में t परीक्षण उपयोग करने के लिए सबसे पहले t के मान की गणना की जाती है तब दिए गए स्वतंत्र कोटि ***(Degrees of Freedom)*** के निश्चित सार्थकता स्तर पर t के सारणी मान से तुलना की जाती है। अगर t का परिकलित मान सारणी मान ($t_{0.05}$) से अधिक हो तो हम कह सकते हैं कि अंतर ***5%*** स्तर पर सार्थक है लेकिन यदि परिकलित मान t_0 सारणी मान की तुलना में कम है तो अंतर को सार्थक नहीं माना जायेगा।

जब दो स्थिति मौजूद हो तो t-परीक्षण का उपयोग होगा।

(i) प्रतिदर्श आकार ***30*** से कम हो, जब $n \leq 30$

(ii) जनसंख्या मानक विचलन ज्ञात हो

t-परीक्षण की मान्यताएँ निम्नलिखित हैं।

(i) जनसंख्या सामान्य या लगभग सामान्य है।

(ii) ~~यादृच्छिक रूप से लिया गया हो विश्लेषण स्वतंत्र है और प्रतिदर्श का~~

(iii) माप की कोई त्रुटि नहीं है।

(iv) दो प्रतिदर्श के विश्लेषण में अगर दो जनसंख्या माध्य की समानता का परीक्षण करना है तो जनसंख्या विचरन को समान माना जायेगा।

t मान की गणना करने के लिए निम्नलिखित सूत्र का सामान्यत: उपयोग किया जाता है।

(i) किसी यादृच्छिक प्रतिदर्श के माध्य का सार्थकता परीक्षण करने के लिए

$$t = \frac{|\bar{X} - \mu|}{S/\ SE_{\bar{X}}\bar{X}}$$

टिप्पणी

जहाँ $\bar{X}$ = प्रतिदर्श का माध्य।

μ = ब्रह्मांड का माध्य।

$S.E._{\bar{X}}$ = छोटे प्रतिदर्श के विश्लेषण में माध्य का *S.E.* और इसकी गणना ऐसे होगी।

$$S.E._{\bar{X}} = \frac{\sigma_s}{\sqrt{n}} = \frac{\sqrt{\frac{\Sigma(x_i - \bar{x})^2}{\sqrt{n}}}}{\sqrt{n}}$$

और स्वतंत्र कोटि = **(*n* – *1*)**

उपरोक्त सूत्र को ऐसे लिखा जा सकता है।

$$t = \frac{|\bar{x} - \mu|}{S.E._{\bar{x}}} = \frac{|\bar{x} - \mu|}{\frac{\sqrt{\frac{\Sigma(x - \bar{x})^2}{n-1}}}{\sqrt{n}}}$$

$$= \frac{|\bar{x} - \mu|}{\sqrt{\frac{\Sigma(x - \bar{x})^2}{n-1}}} = X\sqrt{n}$$

अगर हम छोटे प्रतिदर्श के विश्लेषण में जनसंख्या माध्य (μ) के संभावय सीमा की गणना करना चाहते हैं तो हम निम्नलिखित में से किसी का उपयोग कर सकते हैं।

(*a*) संभावय सीमा *95%* विश्वास स्तर पर

$$\mu = \bar{X} \pm SE_{\bar{x}}\,(t_{0.05})$$

(*b*) संभावय सीमा *99%* विश्वास स्तर पर

$$\mu = \bar{X} \pm SE_{\bar{x}}\,(t_{0.05})$$

दूसरे विश्वास स्तर के लिए विश्वास सीमा से इसी तरह से सारणी को ध्यान में रखकर परिकलित किया जा सकता है जैसे हमने $t_{0.05}$ *a* में और $t_{0.01}$ *b* में ऊपर लिया है।

(*ii*) दो प्रतिदर्श के माध्य के बीच अंतर का परीक्षण

$$t = \frac{|\bar{X}_1 - \bar{X}_2|}{SE_{\bar{x}_1 - \bar{x}_2}}$$

जहाँ, $\bar{X}_1$ = प्रतिदर्श *1* का माध्य

टिप्पणी

$\bar{X}_2$ = प्रतिदर्श 2 का माध्य

$SE_{\bar{x}_1 - \bar{x}_2}$ = दो प्रतिदर्श माध्य के अंतर का प्रमाप त्रुटि

$$SE_{\bar{x}_1 - \bar{x}_2} = \sqrt{\frac{\Sigma\left(x_{1i} - \bar{x}_2\right)^2 + \Sigma\left(x_{2i} - \bar{x}_2\right)^2}{n_1 + n_2 - 2}}$$

$$= X\sqrt{\frac{1}{n_1} + \frac{1}{n_2}}$$

और स्वतंत्र कोटि = $(n_1 + n_2 - 2)$

जब वास्तविक माध्य भिन्न में हो काल्पनिक माध्य का उपयोग सुगम होता है। ऐसे विश्लेषण में अंतर का मानक विचलन

$$\sqrt{\frac{\Sigma\left(x_{1i} - x_1\right)^2 + \Sigma\left(x_{2i} - \bar{x}_2\right)^2}{n_1 + n_2 - 2}}$$

उपरोक्त सूत्र की गणना निम्नलिखित लघु रीति सूत्र से की जा सकती है।

$$\frac{\sqrt{\Sigma\left(x_{1i} - A_1\right)^2} + \Sigma\left(x_{2i} - A_1\right)^2 - n_1\left(x_{1i} - A_2\right)^2 - n_2\left(x_{2i} - A_2\right)^2}{n_1 + n_2 - 2}$$

जहाँ, A_1 = प्रतिदर्श 1 का काल्पनिक माध्य।

A_2 = प्रतिदर्श 2 का काल्पनिक माध्य।

X_1 = प्रतिदर्श 1 का वास्तविक माध्य।

X_2 = प्रतिदर्श 2 का वास्तविक माध्य।

(iii) परिकलित सहसंबंध गुणांक का सार्थकता परीक्षण

$$t = \frac{r}{\sqrt{1 - r^2}} \times \sqrt{n - 2}$$

यहाँ t स्वतंत्र कोटि $(n - 2)$ पर आधारित है।

(iv) अंतर परीक्षण के संदर्भ में

अंतर परीक्षण युग्म आँकड़ों के विश्लेषण में लागू होता है और इसके संदर्भ में t की गणना निम्नलिखित है :

$$t = \frac{\bar{x}_{Diff} - 0}{\sigma_{Diff}\sqrt{n}} = \frac{\bar{x}_{Diff} - 0}{\sigma_{Diff}}\sqrt{n}$$

जहाँ, $\bar{X}_{Diff}$ या $\bar{D}$ = प्रतिदर्श मदों के अंतर का माध्य

0 = प्राक्कलन पर शून्य मान कि यहाँ कोई अंतर नहीं है।

टिप्पणी

σ_{Diff} = अंतर का मानक विचलन

$$= \sqrt{\frac{\Sigma\left(D - \bar{X}_{Diff}\right)^2}{n-1}}$$

या $$= \sqrt{\frac{\Sigma D^2 - \left(\bar{D}\right)^2 n}{n-1}}$$

D = अंतर

n = स्वतंत्र कोटि $(n-1)$ पर आधारित दो प्रतिदर्श में युग्मों की संख्या।

निम्नलिखित उदाहरण उपरोक्त सूत्र से t परीक्षण के अनुप्रयोग को दर्शाते हैं।

CHI-वर्ग परीक्षण (CHI-SQUARE TEST)

Chi-वर्ग परीक्षण ***Bivariatetabular*** विश्लेषण के लिए सांख्यिकी सार्थकता का अप्राचलिक परीक्षण है। किसी भी उपयुक्त सांख्यिकी सार्थकता परीक्षण में आपके पास प्राक्कलन की स्वीकारिता या अस्वीकारिता के लिए विश्वास कोटि होती है। विशिष्टत:, ***Chi***-वर्ग परीक्षण एक सांख्यिकी प्राक्कलन परीक्षण है जिसमें जब शून्य-प्राक्कलन यथार्थ हो तो सांख्यिकी परीक्षण में ***Chi***-वर्ग वितरण होता है। इसे भिन्न प्रतिदर्श (व्यक्तियों का) जो उनके व्यवहार जिसे हम चयनित प्रतिदर्श से सामान्यीकरण कर सके कि कुछ विशिष्टता में भिन्न होना चाहिए। प्रतिदर्श आँकड़ों के सार्थकता की जाँच में उपयोगी विभिन्न परीक्षणों में ***Chi***-वर्ग परीक्षण का विकास ***Pro. Fisher*** ने किया इसे एक महत्वपूर्ण परीक्षण माना जाता है।

Chi-वर्ग एक सांख्यिकी माप जिससे ब्रह्मांड के विश्लेषित और प्रत्याशित आँकड़ों के सार्थक अंतर का निर्धारण संभव है और जिसे संकेतानुसार χ^2 (उच्चारण ***ki***-वर्ग) लिखते हैं। ***Chi***-वर्ग परीक्षण हमें दो से अधिक जनसंख्या समानुपात जो समान माने जा सकते हैं के परीक्षण में सक्षम करता है। ***Chi***-वर्ग परीक्षण लागू कर सकने की स्थिति में दोनों बारम्बारताओं को समान रूप से समूहित और सैद्धान्तिक वितरण को विश्लेषित बारम्बारता के समान समायोजन समान कुल बारम्बारता के समान समायोजन समान कुल बारम्बारता के लिए अवश्य करना चाहिए। χ^2 को निम्नलिखित सूत्र की सहायता से गणना करते हैं।

$$\chi^2 = \Sigma\left\{\frac{(f_0 - f_e)}{f_e}\right\}^2$$

जहाँ, f_0 = विश्लेषित बारम्बारता का माध्य, और

f_e = प्रत्याशित बारम्बारता का माध्य

χ^2 का मान सार्थक है या नहीं यह χ^2 के सारणी मान (इस किताब के अंत में परिशिष्ट भाग में दिया गया है) दिए गए स्वतंत्र कोटि निश्चित विश्वास स्तर (सामान्यत: *5%* स्तर लिया जाता है) देख कर ज्ञात कर सकते हैं।

टिप्पणी

30 से अधिक स्वतंत्र कोटि के लिए $\sqrt{2\chi^2}$ के वितरण को लगभग समान माना जाता है जहाँ $\sqrt{2\chi^2}$ वितरण का माध्य $\sqrt{2df-1}$ और मानक विचलन *1* है। अगर χ^2 का अभिकलित मान सारणी मान से ज्यादा हो तो विश्लेषित और प्रत्याशित बारम्बारता के अंतर को सार्थक माना जाता है परन्तु यदि सारणी मान अभिकलित मान से ज्यादा हो तो विश्लेषित और प्रत्याशित बारम्बारता के अंतर को असार्थक माना जाता है उदाहरण परिणाम तक पहुँचते हैं और ऐसे परिणाम को नजरअंदाज करते हैं।

स्वतंत्र कोटि *(Degrees of Freedom)*

अगर, वहाँ *10* बारम्बारता वर्ग और एक स्वतंत्र प्रतिबंध है तो स्वतंत्र कोटि $(10-1) = 9$ होगा। यदि n समूहों की संख्या और एक प्रतिबंध जिसे विश्लेषित और प्रत्याशित बारम्बारता के योग से रखा गया तो $df = (n-1)$ जब दो प्रतिबंध अंकगणितीय माध्य के समान पहले की तरह रखा गया तब $df = (n-2)$ और ऐसी ही। आसंग सारणी विश्लेषण में (एक सारणी जिसमें दो स्तंभ और दो अधिक स्तंभ या दो कतार पंतु दो से अधिक स्तंभ सारणी या दो कतार और दो से अधिक स्तंभ सारणी) या 2×2 सारणी विश्लेषण में स्वतंत्र कोटि की गणना ऐसे होगी।

$$dF = (C - 1)\ (r - 1)$$

C = स्तंभों की संख्या

r = कतारों की संख्या

परीक्षण के अनुप्रयोग की स्थिति

(*a*) अंकित एवं उपयोगी विश्लेषण को यादृच्छिक आधार पर संग्रह किया गया है।

(*b*) प्रतिदर्श के सारे सदस्यों या मदों को अवस्थ स्वतंत्र होना चाहिए।

(*c*) किसी समूह में कम संख्या उदाहरणतः *10* से कम नहीं होनी चाहिए।

(*d*) मदों की कुल संख्या अधिक होनी चाहिए। छोटे समूहों में भी इसकी संख्या कम से कम *50* होनी चाहिए।

(*e*) प्रतिबंध रेखीय होना चाहिए। प्रसंग जो आसंग सारणी में बारम्बारता कक्ष में रेखीय समीकरण में शामिल हो को रेखीय प्रतिबंध कहते हैं।

***Chi*-वर्ग परीक्षण के अनु-प्रयोग का क्षेत्र**

Chi-वर्ग परीक्षण बहुत सारे समस्याओं में लागू होता है। यह परीक्षण वास्तविकता में एक तकनीक है जिससे उपयोग से हमारे लिए संभव है :

(*a*) *Fit* होने की अच्छाई का परीक्षण।

(*b*) एक बारम्बारता वितरण संख्या की एकरूपता का परीक्षण।

(*c*) प्राक्कलन स्थापित करने में।

(*d*) दो गुणों के मध्य संबंध का सार्थकता परीक्षण।

(*e*) दो चरों की निर्भरता का परीक्षण।

दूसरे शब्दों में *Chi*-वर्ग परीक्षण निर्भरता, *Fit* होने की अच्छाई और एकरूपता का एक परीक्षण है। *Chi*-वर्ग परीक्षण का उपयोग जनसंख्या विचरण में भी किया जाता है।

Fit होने की अच्छाई के रूप में, χ^2 परीक्षण हमें वितरण के विश्लेषित आँकड़ा काल्पनिक सैद्धान्तिक वितरण जैसे द्वि-पद वितरण ***(Binomial Distribution),*** प्वॉयसन वितरण ***(Poisson Distribution)*** और सामान्य वितरण में कितने अच्छे से उचित है देखने में सक्षम करता है।

निर्भरता परीक्षण के रूप में, χ^2 दो विशेषता संयुक्त है या नहीं यह वर्णन करने में सक्षम करता है। उदाहरण के लिए, हम यह जानना चाहते हैं कि एक नई दवाई बुखार की रोकथाम कर सकती है या नहीं और χ^2 परीक्षण इस विषय में मदद कर सकता है। ऐसे स्थिति में हम शून्य-प्राक्कलन कर सकते हैं कि दो विशिष्टता (नई दवाई और बुखार की रोकथाम) स्वतंत्र है। इसका अर्थ है कि नई दवाई बुखार की रोकथाम में प्रभावी नहीं है। इसे इस तरह भी कह सकते हैं कि χ^2 संबंध कोटि या दो गुणों के संबंध का रूप की माप नहीं है परन्तु यह साधारणत: दो विशिष्टताओं के ऐसे संख्या या संबंध के सार्थकता जाँच की तकनीक है।

एकरूपता परीक्षण के रूप में, χ^2 परीक्षण यह कहने में मदद करता है कि भिन्न प्रतिदर्श समान ब्रह्मांड से लिए गए हैं। इस परीक्षण के द्वारा हम वर्णन करते हैं कि ज्ञात प्राक्कलन के साथ प्रतिदर्श के आधार पर अभिकलित परिणाम सपोषक है या परिणाम दिए प्राक्कलन का समर्थन करने में असफल हो जाता है। ऐसे परीक्षण के निर्णय प्रक्रिया तकनीक में मुख्य रूप से उपयोग कर सकते हैं।

जनसंख्या विचरण के परीक्षण के रूप में, मुख्यत: छोटे प्रतिदर्श के विश्लेषण में विश्वास अंतराल के द्वारा जनसंख्या विचरण की सार्थकता परीक्षण के रूप में भी उपयोग कर सकते हैं।

Chi-वर्ग मान ज्ञात करने में शामिल सोपान

निम्नलिखित विविध सोपान शामिल है :

(a) प्रत्याशित बारम्बारता की गणना।

(b) वास्तविक बारम्बारता और प्रत्याशित बारम्बारता के अंतर और अंतर का वर्ग ज्ञात करना।

(c) परिणाम $(f_0 - f_e)^2$ में ज्ञात संख्या को संबंधित। प्रत्याशित बारम्बारता से विभाजित करना। $\frac{(f_0 - f_e)^2}{f_e}$ ज्ञात करने के लिए।

(d) $\frac{(f_0 - f_e)^2}{f_e}$ का योग ज्ञात करना जिसे χ^2 मान कहते हैं और संकेतानुसार $\frac{\Sigma(f_0 - f_e)^2}{f_e}$ लिखते हैं।

ऐसे ज्ञात χ^2 मान को संबंधित χ^2 सारणी मान से तुलना करते हैं और अनुमान उपरोक्त कथनानुसार करते हैं।

निम्नलिखित उदाहरण *Chi*-वर्ग परीक्षण का वर्णन करता है।

उदाहरण– निम्नलिखित आँकड़ों से χ^2 का मान ज्ञात करें–

वर्ग	*A*	*B*	*C*	*D*	*E*
विश्लेषित बारम्बारता	*8*	*29*	*44*	*15*	*4*
सैद्धान्तिक (या प्रत्याशित) बारम्बारता	*7*	*24*	*38*	*24*	*7*

हल–क्योंकि कुछ बारम्बारता ***10*** से कम है, सबसे पहले हमें दिए गए आँकड़ों को निम्नलिखित तरह से पुनः समूहित करना होगा और तब χ^2 के मान की गणना करनी होगी।

वर्ग	विश्लेषित बारम्बारता	प्रत्याशित बारम्बारता	$(f_0 - f_e)$	$\frac{(f_0 - f_e)^2}{f_e}$
A और *B*	*(8 + 29) = 27*	*(7 + 24) = 31*	*6*	*36/31*
C	*44*	*38*	*6*	*36/38*
D और *E*	*(15 + 4) = 19*	*(24 + 7) = 31*	*– 12*	*144/31*

$$\therefore \quad \chi^2 = \Sigma\left\{\frac{(f_0 - f_e)^2}{f_e}\right\} = 6.76 \text{ लगभग}$$

***Yates* का सुधार**

F-Yates ने अभिकलित χ^2 मान में सुधार ***(2 × 2)*** सारणी के साथ सुझाव दिया जब कक्षा बारम्बारता छोटी (कक्षा बारम्बारता नहीं हों) किसी भी विश्लेषण में ***5*** से कम होनी चाहिए हालांकि ***10*** अच्छा है पूर्वोक्त और χ^2 केवल सार्थकता स्तर पर हो। ***Yates*** द्वारा दिये सुधार को ***Yates*** का सुधार के रूप में लोकप्रिय ढंग से जानते हैं। इसमें प्रत्याशित बारम्बारता से विश्लेषित बारम्बारता के विचलन में कमी शामिल है जिससे निश्चित रूप से χ^2 का मान कम होगा।

सुधार को नियम विश्लेषित बारम्बारता के एक सारणी के हरेक कक्षा ***(2 × 2)*** में इस तरह करता है जिससे प्रत्याशित बारम्बारता से विश्लेषित बारम्बारता में उस कक्षा के लिए ***0.5*** कमी हो और हरेक कक्षा में इस तरह के समायोजन से सीमांत योग प्रभावित नहीं होता।

Yates के सुधार लागू करने पर χ^2का मान ज्ञात करने का सूत्र को लिखा जाता है।

$$\chi^2 = \frac{N.(ad - bc - 0.5N)^2}{(a+b)(c+d)(a+c)(b+d)}$$

अगर हम सामान्य सूत्र $\chi^2 = \Sigma\left\{\frac{(F_0 - F_e)^2}{F_e}\right\}$ से ***Chi***-वर्ग मान की गणना करते हैं तब ***Yates*** सुधार को इस तरह लागू किया जाता है।

$$\chi^2\,(\text{सुधार}) = \left[\left\{\frac{|F_{01} - F_{e1}| - 0.5}{F_{e1}}\right\}\right]^2 + \left[\frac{|F_{02} - F_{e2}| - 0.5}{F_{e2}}\right]^2 + \ldots\ldots$$

टिप्पणी

Chi-वर्ग (χ^2) की योगात्मक विशेषता

χ^2 का एक महत्वपूर्ण गुण इसकी योगात्मक प्रवृत्ति है। इसका अर्थ है विभिन्न χ^2 मान को एक साथ जोड़ सकते हैं और यदि स्वतंत्र कोटि है तो उसे भी जोड़ सकते हैं यह संख्या χ^2 के कुल मान का स्वतंत्र कोटि देता है। यदि χ^2 के कुछ मान जो समान आँकड़ों के कुछ प्रतिदशों से लिए हो तब इसके योगात्मक प्रवृत्ति के कारण हम विभिन्न χ^2 मान को मिश्रित कर सकते हैं आसान रूप से जोड़ कर। विभिन्न χ^2 मान का ऐसा योग एक χ^2 का मान देता है जिसके उपयोग से चयनित समस्या के बारे में अच्छी सोच का निर्माण कर सकते हैं। निम्नलिख्ति उदाहरण χ^2 के योगात्मक विशेषता को बताता है।

Chi-वर्ग (χ^2) परीक्षण की महत्वपूर्ण विशेषता

(a) यह परीक्षण बारम्बारता पर आधारित होता है। माध्य और मानक विचलन की तरह प्राचल पर नहीं।

(b) यह परीक्षण प्राक्कलन परीक्षण में उपयोगी होता है आकलन में नहीं।

(c) इस परीक्षण में योगात्मक गुण होता है।

(d) इस परीक्षण का उपयोग मिश्रित आसंग *Contingency* सारणी जिसमें *several* कक्षा हो और यह परीक्षण शोध कार्य में बहुत उपयोगी होता है।

(e) यह एक महत्वपूर्ण अप्राचलिक परीक्षण है जिसमें जनसंख्या के बारे में कोई आसान मान्यताएँ नहीं है और प्राचल मान की कोई आवश्यकता नहीं है। इसे गणितीय सूचना कम शामिल होती है।

Goodness of Fit

यह परीक्षण है कि कैसे सैद्धांतिक वितरण में विश्लेषित बारम्बारता वितरण *Fit* है। इस परीक्षण के लिए हमें सांख्यिकी *Chi*-वर्ग का उपयोग करना होगा जो लिखा जायेगा।

$$\chi^2 = \Sigma\frac{(O-E)^2}{E} = \Sigma\frac{O^2}{E} - n$$

O = विश्लेषित बारम्बारता

E = प्रत्याशित बारम्बारता

जहाँ n = कुल बारम्बारता और $d.f = n - 1$

अगर χ^2 का अभिकलित मान > χ^2 के सारणी मान से दिए गए सार्थकता स्तर पर, तो हम शून्य प्राक्कलन को अस्वीकार करते हैं। यहाँ विश्लेषित और प्रत्याशित बारम्बारता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

टिप्पणी

जनसंख्या विचरन परीक्षण

χ^2 का उपयोग कभी-कभी जनसंख्या विचरन की विश्वास अंतराल से सार्थकता परीक्षण में किया जाता है। इसका अर्थ है हम χ^2 परीक्षण यदि एक यादृच्छिक प्रतिदर्श सामान्य जनसंख्या से लिया गया है जिसका माध्य (μ) और निनिर्दिष्ट विचरन $(\sigma_p)2$ की जाँच में कर सकते हैं। इस स्थिति में शून्य प्राक्कलन के लिए सांख्यिकी परीक्षण होगा।

$$\chi^2 = \Sigma \frac{\left(X_i - \bar{X}_s\right)^2}{\left(\sigma_p\right)^2} = \frac{n(\sigma_s)^2}{\left(\sigma_p\right)^2} \text{ स्वतंत्र कोटि } (n - 1)$$

अभिकलित मान की एक निश्चिम सार्थकता स्तर पर $df\,(n-1)$ से सारणी मान से तुलना कर के हम प्राक्कलन को स्वीकार या अस्वीकार कर सकते हैं। यदि अभिकलित मान सारणी मान के बराबर या कम है तो शून्य प्राक्कलन को स्वीकार परंतु यदि अभिकलित मान सारणी मान से अधिक है तो शून्य प्राक्कलन अस्वीकार होगा। इन सभी को एक उदाहरण से स्पष्ट किया जाता है।

उदाहरण–*10* छात्रों का वजन निम्नलिखित है।

SL. No.	*1*	*2*	*3*	*4*	*5*	*6*	*7*	*8*	*9*	*10*
वजन *(kg)*	*38*	*40*	*45*	*53*	*47*	*43*	*55*	*48*	*52*	*49*

हल– सबसे पहले हम मानक विचलन की गणना करेंगे।

प्रतिदर्श मानक विचलन की गणना

Sl. No.	X_i वजन *(kg)*	$X_i - \bar{X}_s$	$\left(X_i - \bar{X}_s\right)^2$
1	38	– 9	81
2	40	– 7	49
3	45	– 2	04
4	53	+ 6	36
5	47	+ 0	00
6	43	– 4	16
7	55	+ 8	64
8	48	+ 1	01
9	52	+ 5	25
10	49	+ 2	04
$n = 10$	$\Sigma X_i = 470$		$\Sigma \left(X_i - \bar{X}_s\right)^2 = 280$

$$\bar{X}_s = \frac{\Sigma X_i}{n} = \frac{470}{10} = 47 \text{ kg}$$

$$\therefore \quad \sigma_s = \sqrt{\frac{\Sigma\left(X_i - \bar{X}_s\right)^2}{n}} = \sqrt{\frac{280}{10}} = \sqrt{28} = 5.3 \text{ kg}$$

टिप्पणी

$\therefore \qquad (\sigma_s)^2 = 28$

शून्य प्राक्कलन $H_0 : (\sigma_p)^2 = (\sigma_s)^2$ लेने पर

$$\text{सांख्यिकी परीक्षण } \chi^2 = \frac{n(\sigma_s)^2}{(\sigma_p)^2} = \frac{10 \times 28}{20} = \frac{280}{20} = 14$$

इस विश्लेषण में स्वतंत्र कोटि $(n - 1) = (10 - 1) = 9$

5: सार्थकता स्तर पर सारणी मान $\chi^2 = 16.92$ और 1: सार्थकता स्तर पर **21.67** ***df* 9** के लिए 1 दोनों विश्लेषण में सारणी मान अभिकलित मान से ज्यादा हैं। इसलिए हम शून्य प्राक्कलन को स्वीकार कर सकते हैं और निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि दिया गया वितरण ***20*** वर्ग ***kg 5%*** और ***1%*** सार्थकता स्तर पर लिया जा सकता है।

3.4.5 प्रतीपगमन विश्लेषण

प्रतीपगमन (Regression) शब्द का प्रथम उपयोग सर फ्रांसिस गाल्टन द्वारा 1877 में किया गया जिनके अध्ययन ने यह दिखाया कि लंबे माता-पिता के बच्चों में लंबाई की प्रवृत्ति जनसंख्या के औसत लम्बाई के पीछे या लौट आने की होती है। उन्होंने एक चर का दूसरे चर से पूर्वानुमान करने की प्रक्रिया के लिए प्रतीपगमन शब्द का प्रतिपादन किया। उन्होंने उस प्रक्रिया जिसके द्वारा कुछ चरों के उपयोग से दूसरे का पूर्वानुमान किया जाता है का वर्णन करने के लिए प्रतीपगमन शब्द का निर्माण किया। जहां चरों के बीच एक पूर्ण सुव्यवस्थित संबंध हो, तो दूसरे चर (ज्ञात या स्वतंत्र चर) के आधार पर इस संबंध के उपयोग से एक चर (अज्ञात या निर्भर चर) का अनुमान और पूर्वानुमान करना संभव है। जैसे एक Bank व्यापार क्षेत्र में प्रति व्यक्ति आय के आधार पर जमा का अनुमान लगा सकता है। एक विपणन मैनेजर विज्ञापन खर्च के क्रम में परिवर्तन के कुल बिक्री राजस्व पर अनुमानित परिवर्तन के आधार पर अपना विज्ञापन खर्च की योजना तैयार कर सकता है। समानत: एक अस्पताल संचालक कुल संख्या के आधार पर अपने बिस्तरों की जरूरत की परियोजना बना सकता है। ऐसे पूर्वानुमान प्रतीपगमन विश्लेषण के उपयोग से किये जा सकते हैं। एक अनुसन्धानकर्ता प्रतीपगमन विश्लेषण के उपयोग से अपने सिद्धांत के कारण और प्रभाव संबंध की जांच कर सकता है। इन सबसे इस बात की व्याख्या होती है कि व्यापार और उद्योग के समस्याओं का पूर्वानुमान करने के लिए प्रतीपगमन विश्लेषण एक अत्यधिक उपयोगी तकनीक है।

प्रतीपगमन की परिकल्पना

प्रतीपगमन तकनीक का पूर्वानुमान करते समय, यह हमेशा माना जाता है–

(*a*) निर्भर और स्वतंत्र चरों के बीच एक वास्तविक संबंध है।

(*b*) निर्भर चरों का मान यादृच्छिक हो परंतु स्वतंत्र चरों का मान अचर परिणाम में बिना किसी त्रुटि के हो और जिन्हें प्रयोगकर्ता के द्वारा चुना गया हो।

(*c*) संबंधों की दिशा के विषय में स्पष्ट संकेत हो। इसका अर्थ यह है कि आश्रित चर स्वतंत्र चर का फलन हो। (उदाहरण के लिए, जब हम यह कहते हैं कि विज्ञापन की बिक्री पर प्रभाव है तब हम यह कह रहे होते हैं कि बिक्री का विज्ञापन पर प्रभाव है)।

टिप्पणी

(*d*) प्रतीपगमन प्रारूप का उपयोग करते समय स्थिति (जो भी निर्भर और स्वतंत्र चरों के बीच प्रतीपगमन के द्वारा अनुमान लगाते समय) समान हो। दूसरे शब्दों में, आसान शब्दों में अर्थ है प्रतीपगमन समीकरण की गणना करते समय संबंध में परिवर्तन नहीं होना चाहिए।

(*e*) इस विश्लेषण का उपयोग श्रेणी (और श्रेणी के बाहर के मूल्यों के लिए नहीं) के अंदर के मूल्यों, जिसके लिए यह मान हो, का पूर्वानुमान करने में किया गया है।

प्रतीपगमन समीकरण

एक सामान्य रेखीय प्रतीपगमन विश्लेषण की स्थिति में, दिए गए चरों के बीच रेखीय संबंध ($Y = a + bX$ के प्रकार वर्णित संबंध) की पूर्वधारणा के आधार पर एक चर का उपयोग दूसरे चर के पूर्वानुमान में किया जाता है। जिस चर का पूर्वानुमान करना है उसे निर्भर चर और जिसके आधार पर करना है उसे स्वतंत्र चर कहते हैं।

सामान्य रेखीय प्रतीपगमन प्रारूप[1] (या प्रतीपगमन रेखा) को लिखा जाता है–

$$Y_i = a + bX_i + e_i$$

जहां, Y_i = निर्भर चर है

X_i = स्वतंत्र चर है

e_i = अपूर्वानुमानित यादृच्छिक तत्व (साधारण अवशिष्ट या त्रुटि पद कहते हैं)

(*a*) ***a Y*** के अन्तःखण्ड ***(Intercept)*** को बताता है, जब स्वतंत्र चर का मान शून्य हो तो अन्तःखण्ड आश्रित चर के मान का महत्व बताता है।

(परन्तु इस पद का प्रयोगात्मक अर्थ केवल उसी समय होगा जब स्वतंत्र चर के लिए शून्य मान संभव हो।)

(*b*) ***b*** अचर है, जो प्रतीपगमन रेखा की ढाल का संकेत देता है। रेखा की ढाल से स्वतंत्र चर के इकाई में बदलाव से निर्भर चर के मान में बदलाव का संकेत मिलता है।

प्रतीपगमन प्रारूप के अन्तःखण्ड एवं ढाल का अनुमान (प्रतीपगमन समीकरण अनुमान) दो नियतांक या मानदंड ***'a'*** एवं ***'b',*** जोकि प्रतीपगमन प्रारूप में समूची जनसंख्या या ब्रह्मांड के लिए होता है, मुख्यतः अज्ञात होते हैं एवं प्रतिदर्श सूचनाओं से इनका अनुमान लगाया जाता है।

अनुमान के लिए प्रयुक्त दो विधियां निम्नलिखित हैं–

(a) विक्षेप चित्र विधि

(b) न्यूनतम वर्ग विधि।

अगर दोनों अचर ज्ञात हैं तो ***Y*** के लिए हमारे पूर्वानुमान की सटीकता e_i के मान के परिमाण पर निर्भर करती है। यदि प्रारूप में सभी e_i का मान बहुत बड़ा हो

तो पूर्वानुमान उतना बेहतर नहीं होता है लेकिन यदि ये मान छोटे होते हैं तो पूर्वानुमान $(\hat{Y})$ मान वास्तविक मान (Y_i) के सन्निकट होगा।

टिप्पणी

1. साधारणत: Y के प्रतीपगमन को $\hat{Y}$ से संकेत किया जाता है और लिखा जाता है–

$$\hat{Y} = a + bX_i$$

यह पूर्वधारणा है कि निकाय के यादृच्छ विक्षोभ का औसत या परिलक्षित मान शून्य होता है। इस प्रतीपगमन प्रारूप को Y का X पर प्रतीपगमन रेखा के रूप में जाना जाता है जिसके लिए Y का मान दिए गए X के मानों से अनुमानित किया जाता है।

(क) विक्षेप चित्र विधि

इस विधि में विक्षेप का उपयोग होता है और इसे बिंदु चित्र विधि भी कहते हैं। विक्षेप चित्र विधि[2] दो ज्ञात चरों का आरेखीय प्रस्तुतीकरण है, उदाहरण स्वतंत्र चरों को ***X-axis*** और जिस चर का अनुमान करना है, निर्भर चर को ***graph paper*** के ***Y axis*** पर दिखाते हैं।

चित्र को ध्यान में रखकर निम्नलिखित सूचनाएं प्राप्त की गई हैं।

आय X (रुपए सौ में)	खपत व्यय Y (रुपये सौ में)
41	44
65	60
50	39
57	51
96	80
94	68
110	84
30	34
79	55
65	48

यह विक्षेप-आरेख आश्रित चरों के मानों के पूर्वानुमान के लिए अपने आप में पर्याप्त नहीं है। दो चरों के बीच संबंधों की कुछ औपचारिक अभिव्यक्ति पूर्वानुमान उद्देश्यों के लिए आवश्यक होती है। इस उद्देश्य के लिए, एक स्केल की मदद से विक्षेप आरेख में बिन्दुओं से होकर एक सरल रेखा खींची जाती है और इस तरह से खींची गई रेखा का अन्त:खण्ड एवं उसकी ढाल निर्धारित की जाती है और तब उस रेखा को परिभाषित किया जा सकता है।

टिप्पणी

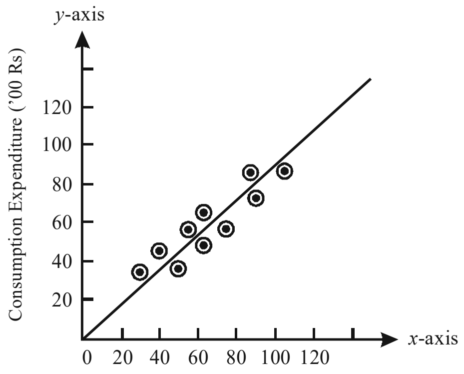

2.

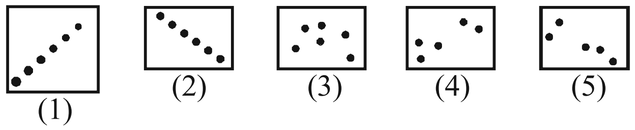

विक्षेप-आरेख की पूर्वधारणा में संभावित पांच रूप ऊपर दिए गए चित्र में दर्शाए गए हैं। प्रथम चित्र धनात्मक संबंध का पूर्ण सूचक है, दूसरा चित्र ऋणात्मक संबंध दिखाता है, तीसरा चित्र कोई संबंध नहीं दिखाता है, चौथा चित्र धनात्मक संबंध दिखाता है एवं पांचवां चित्र दो विचाराधीन चरों के बीच ऋणात्मक संबंध दर्शाता है।

(ख) न्यूनतम वर्ग विधि

रेखा (प्रतिगमन रेखा या उपयुक्त रेखा) को निश्चित करने की न्यूनतम वर्ग रीति एक विधि है जो निश्चित रेखा वर्गित उर्ध्वाधर विचलनों के योग को न्यूनतम करता है। दूसरे शब्दों में, निश्चित होने वाली रेखा प्रकीर्ण आरेख के बिन्दुओं के जरिए इस तरह जाएगा कि रेखा से इन बिन्दुओं का उदग्र विचलन के वर्गों का योग न्यूनतम होगा।

न्यूनतम वर्ग मानदण्डों का अर्थ नीचे के चित्र के जरिए समझा जा सकता है, जहां प्रकीर्ण आरेख के पहले वाले चित्र में इसे उस रेखा के साथ पुनः दिखाया गया जो आंकड़ा के निश्चित न्यूनतम वर्ग रेखा को दर्शाता है।

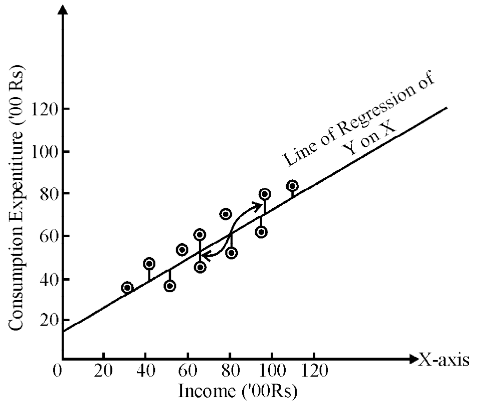

प्रकीर्ण आरेख, प्रतिगमन रेखा एवं लघु उदग्र रेखा 'e' दिखाते हुए

उपरोक्त आरेख में, रेखा का लम्बवत् विचलन का व्यक्ति बिन्दु छोटी लम्बवत् रेखा से जुड़े बिन्दुओं के छोटे उदग्र रेखा के रूप में दिखाई पड़ता है। ये विचलन प्रतीक *'e'* के रूप में दिखाया जाता है। *'e'* का मान एक बिन्दु से दूसरे तक बदलता है। कुछ स्थितियों में यह धनात्मक होता है, जबकि कुछ में यह ऋणात्मक होता है। यदि खींची गई रेखा न्यूनतम वर्ग रेखा हो, तब Σe_i का मान संभवतः न्यूनतम होगा। ऐसा

टिप्पणी

इसीलिए क्योंकि इस गुण के कारण यह विधि न्यूनतम वर्ग विधि के रूप में जानी जाती है।

हम वर्ग विचलन के योग को न्यूनतम करने पर जोर क्यों देते हैं, यह ऐसा प्रश्न है जिसकी व्याख्या आवश्यक है। यह वास्तविक मान Y से अनुमानित मान P से अनुमानित मान $\hat{Y}$ तक विचलनों को $\left(Y-\hat{Y}\right)$ या e_i के रूप में व्यक्त करते हैं, तब यह तर्कपूर्ण है कि हमें $\Sigma\left(Y-\hat{Y}\right)$ या $\sum_{i=1}^{n} e_i$ यथासंभव छोटा चाहिए।

हालांकि $\Sigma\left(Y-\hat{Y}\right)$ या $\sum_{i=1}^{n} e_i$ को केवल जांच करना अनुचित होगा, चूंकि कोई e_i धनात्मक या ऋणात्मक हो सकता है। किन्तु e_i के अपने चिह्न से मुक्त विशाल मान एक घटिया पूर्वानुमान बताते हैं। भले ही $\sum_{i=1}^{n}\left| e_i \right|$ की गणना करते समय हम चिह्नों की अवहेलना करें, कठिनाइयां आएंगी ही। अतः मानक विधि प्रत्येक अवलोकन को वर्ग कर चिह्नों के प्रभाव हो हटाना है। प्रत्येक पद को वर्ग करने के दो उद्देश्य हैं–

(i) यह अधिकतम त्रुटियों का विस्तार करता है एवं ***(ii)*** यह धनात्मक या ऋणात्मक मानों के प्रभाव को स्थगित करता है (चूंकि एक ऋणात्मक मान को वर्ग करने पर यह धनात्मक हो जाता है। निरपेक्ष मानों के योग की बजाय त्रुटियों के योग के वर्ग को न्यूनतम करना यह बताता है कि कुछ अधिक त्रुटियों की तुलना में कुछ त्रुटियां अधिक हैं। अतः प्रतिगमन रेखा को प्राप्त करने में हम इस विधि का अनुसरण करते हैं कि वर्ग विचलनों का योग न्यूनतम होगा एवं इस आधार पर *'a'* एवं *'b'* स्थिरांकों का मान एवं रेखा की ढाल निकल सकता है। यह निम्नलिखित दो सामान्य समीकरणों की सहायता से किया जा सकता है[3]–

$$\Sigma Y = na + b\Sigma X$$
$$\Sigma XY = a\Sigma X + b\Sigma X^2$$

उपरोक्त दो समीकरणों में, *'a'* एवं *'b'* अज्ञात हैं एवं अन्य सभी समान अर्थात् ΣX, ΣY, ΣX^2, ΣXY गुणनफलों का योग एवं प्रतिदर्श आंकड़ा से अभिकलित गुणनफलों का योग है तथा *'n'* का अर्थ प्रतिदर्श में अवलोकनों की संख्या है।

---

3 . यदि हम प्रत्येक चर में केंद्रीभूत होते हैं, अर्थात् इसके मूल को इसका माध्य मानते हैं, तब दो समीकरण होंगे।

$$\Sigma Y = na + b\Sigma X$$
$$\Sigma XY = a\Sigma X + b\Sigma X^2$$

किन्तु चूंकि ΣY एवं ΣX शून्य होगा, पहला समीकरण एवं दूसरे समीकरण का पहला पद गायब हो जाएगा तथा हमारे पास निम्नलिखित समीकरण होगा :

$$\Sigma XY = b\Sigma X^2$$
$$b = \Sigma XY/\Sigma X^2$$

टिप्पणी

'a' का मान इस तरह निकाला जा सकता है,

$$a = \bar{Y} - b\bar{X}$$

उदाहरण– दिए गए प्रतिदर्श की सूचना के लिए न्यूनतम वर्ग रीति से उचित प्रतीपगमन रेखा बनाएं।

विश्लेषण	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
आय *(X)* (*00*रु.)	41	65	50	57	96	94	110	30	79	65
खपत व्यय *(Y)* (*'00* रु.)	44	60	39	51	80	68	84	34	55	48

हल–हमें न्यूनतम वर्ग रीति से प्रतीपगमन रेखा दिए गए आंकड़ों से बनानी है। हमें सामान्य समीकरण से a और b के मानों की गणना करनी है और दिए गए प्रतिदर्श के आंकड़ों की सारणी में $\Sigma X, \Sigma Y, \Sigma XY, \Sigma X^2$ का प्रतीपगमन समीकरण के लिए संकलन करना होगा।

प्रतीपगमन समीकरण के लिए संकलन

विश्लेषण	आय X(*'00* रु.)	खपत व्यय (*'00* रु.)	XY	X^2	Y^2
1	41	44	1840	1681	1936
2	65	60	3900	4225	3600
3	50	39	1950	2500	1521
4	57	51	2907	3249	2601
5	96	80	7680	9216	6400
6	94	68	6392	8836	4624
7	110	84	9240	12100	7056
8	30	34	1020	900	1156
9	79	55	4345	6241	3025
10	65	48	3120	4225	2304
$n = 10$	$\Sigma X = 687$	$\Sigma Y = 563$	$\Sigma XY = 42358$	$\Sigma X^2 = 53173$	$\Sigma Y^2 = 34223$

सामान्य समीकरण में मानो को रखने पर,

$$563 = 10\ a + 6876$$

$$42358 = 687\ a + 53173\ b$$

इन दोनों समीकरणों को हल करने पर

$$a = 14 \text{ और } b = 0.616$$

तब, जरूरी प्रतीपगमन रेखा के लिए समीकरण होगा,

$$\hat{Y} = a + bX_i$$

$$\hat{Y} = 14 + 0.616X_i$$

इस समीकरण को Y का X पर प्रतीपगमन कहते हैं जिससे Y का मान चर के लिए गए मान का अनुमान लगा सकते हैं।[4]

समीकरण की सटीकता की जांच

ऊपर बताए गए अनुसार प्रतीपगमन रेखा ज्ञात कर उसकी सटीकता भी जांची जा सकती है। इस उद्देश्य के लिए जो विधि प्रयुक्त होती है वह न्यूनतम वर्ग रीति, जिसमें व्यक्तिगत धनात्मक एवं ऋणात्मक त्रुटियों का योग शून्य होता है, के रैखिक गणितीय गुणों पर आधारित है। दूसरे शब्दों में, सत्यता की जांच करने वाले समीकरण का उपयोग करते समय यह ज्ञात करना आवश्यक है कि पद $\Sigma\left(Y-\hat{Y}\right)$ शून्य है या नहीं, यदि ऐसा है तो इसी बात की आश्वस्तता हो जाती है कि समीकरण की सत्यता निर्धारण में कोई त्रुटि नहीं है।

पूर्वानुमान की समस्या

जब हम पूर्वानुमान या अनुमान की बात करते हैं, तो हम मुख्यतः $Y_i = a + bX_i + e_i$ इस संबंध की बात करते हैं तब प्रतीपगमन समीकरण $\hat{Y} = a + bX_i$, X के विशिष्ट मानों से जुड़े Y का अनुमान लगाने में एक आधार प्रदान करता है। उदाहरण में हमने आय एवं खपत संबंधी आंकड़ों के लिए प्रतीपगमन समीकरण प्राप्त किया जो इस प्रकार है–

$$\hat{Y} = 14.000 + 0.616X_i$$

इस समीकरण के आधार पर हम X के दिए गए मान के लिए Y का एक बिन्दु अनुमान लगा सकते हैं। माना कि हमें व्यक्तिगत खपत व्यय ज्ञात करनी हैं जबकि आय रु. *10,000* है। इसके लिए हम अपने समीकरण में $X = 100$ प्रतिस्थापित कर खपत व्यय का एक अनुमान इस तरह पा सकते हैं–

$$\hat{Y} = 14.000 + 0.616 \quad (100)$$
$$= 75.60$$

इस प्रकार, प्रतीपगमन संबंध बताता है कि *10,000* रु. आय वाले व्यक्ति खपत पर लगभग *7560* रु. व्यय कर सकते हैं। लेकिन यह केवल एक अनुमानित या अपेक्षित मान है और यह संभव है कि उस व्यक्ति की उसी आय के साथ वास्तविक खपत व्यय विचलित होती है अगर ऐसा होता है तो हमारे अनुमान में त्रुटि होती है जिसकी संभावना, एक व्यक्ति के विषय में अनुमान लगाने पर, अधिक हो जाती है। अन्तराल–अनुमान विधि बेहतर है और यह उस अंतराल को बताता है जिसमें अपेक्षित खपत व्यय निर्धारित किया जाता है।

यह स्मरणीय है कि अंतराल जितना ही बड़ा होगा आश्वश्तता का स्तर उतना ही बड़ा होगा लेकिन अंतराल का बड़ा होना विश्वास के एक विशेष स्तर से जुड़ा होता है एवं प्रतिदर्श में उपस्थित विचरणशीलता (इस स्थिति में खपत व्यय) पर निर्भर करता है। इस विचरणशीलता को मानक विचलन की त्रुटि के पद *'e'* के द्वारा मापा जाता है एवं इसे अनुमान की मानक त्रुटि के रूप में जाना जाता है।

अनुमान की मानक त्रुटि

अनुमान की मानक त्रुटि एक माप है जो सांख्यिकविदों द्वारा अनुमान के समीकरण की विश्वसनीयता मापने हेतु विकसित की गई। मानक विचलन की तरह, मानक त्रुटि *(S.E.)* $\hat{Y}$, प्रतीपगमन रेखा के सापेक्ष Y के अवलोकित मानों की विचरणशीलता मापता है। अनुमान की मानक त्रुटि ($\hat{Y}$ का *S.E.*) इस प्रकार से ज्ञात की जाती है–

---

4. इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि X के मान से चर Y के मान का अनुमान लगाने वाले समीकरण का प्रयोग चर Y के दिए गए मानो से चर X के मान का अनुमान लगाने में नहीं करना चाहिए। दूसरा प्रतीपगमन समीकरण (जोकि X का प्रतीपगमन समीकरण, $X = a + bY$ के Y पर आधारित कहलाता है) दोनों प्रयुक्त मानों को व्युत्क्रम कर देता है जो Y के मान से X का अनुमान लगाता है।

$$\hat{Y} \text{ का } S.E. \text{ (या } S_e) = \sqrt{\frac{\Sigma\left(Y-\hat{Y}\right)^2}{n-2}} = \sqrt{\frac{\Sigma e^2}{n-2}}$$

जहां, $\hat{Y}$ का *S.E.* (या S_e)= अनुमान की मानक त्रुटि

Y = Y का अवलोकित मान

$\hat{Y}$ = Y का अनुमानित मान

e = त्रुटि पद = $\left(Y-\hat{Y}\right)$

n = प्रतिदर्श में अवलोकनों की संख्या

स्मरणीय–ऊपर दिए गए समीकरण में n के बदले में $n - 2$ का उपयोग किया जाता है क्योंकि यह वास्तविकता है कि स्वतंत्रता की दो कोटियां प्रतिदर्श अवलोकनों की रेखा के सापेक्ष, जिसमें a एवं b दो नियतांकों का स्थान उसी प्रतिदर्श अवलोकनों के द्वारा निर्धारित किया जाता है, विचरणशीलता के अनुमान के आधारीकरण में विलुप्त हो जाती हैं।

S_e के वर्ग को त्रुटि पद की विचरणशीलता भी कहा जाता है जो कि विश्वसनीयता की एक मूल माप है। विचरणशील जितनी अधिक होगी *'e'* का परिमाण उतना ही महत्वपूर्ण होगा एवं आंकड़ों के पूर्वानुमान में प्रतीपगमन विश्लेषण उतना ही कम विश्वसनीय होगा।

अनुमान की मानक त्रुटि की विवेचना एवं बड़े और छोटे प्रतिदर्शों में अनुमान के लिए निश्चितता सीमाओं का निर्धारण :

अनुमान का *S.E.* (SE_e) जितना बड़ा होगा, तो प्रतीपगमन रेखा के सापेक्ष दिए गए अवलोकनों का विक्षेपण उतना ही बड़ा होगा। लेकिन यदि अनुमान का *S.E.* शून्य हो तो अनुमान के समीकरण को परतंत्र चरों का संपूर्ण अनुमानक या पूर्वानुमान कहा जाएगा।

टिप्पणी

बड़े प्रतिदर्शों की दशा में, जहां $n > 30$, हो तो ऐसा माना जाता है कि अवलोकित बिन्दु मुख्यत: प्रतीपगमन रेखा के सापेक्ष वितरित होते हैं। और इन्हें इस प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है–

SE_e सीमाओं के *68%* सारे बिन्दु $\hat{Y} \pm 1$ के अन्दर

SE_e सीमाओं के *95.5%* सारे बिन्दु $\hat{Y} \pm 2$ के अन्दर

SE_e सीमाओं के *99.7%* सारे बिन्दु $\hat{Y} \pm 3$ के अन्दर

इसे इस प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है,

1. Y का अवलोकित मान मुख्यत: $\hat{Y}$ के प्रत्येक अनुमानित मान के सापेक्ष वितरित होता है एवं

2. वितरण की विचरणशीलता $\hat{Y}$ के प्रत्येक संभव मान के सापेक्ष समान होती है।

छोटे प्रतिदर्शों की दशा में, जहां $n \leq 30$ एवं वितरण *'t'* को दो सीमाओं के सटीक निर्धारण में उपयोग किया जाता है।

ऐसा इस प्रकार से किया जाता है,

$$\text{उच्च सीमा} = \hat{Y} + 't'(SE_e)$$

$$\text{निम्न सीमा} = \hat{Y} - 't'(SE_e)$$

जहां, $\hat{Y}$ = दिए गए मान X के लिए Y का अनुमानित मान

SE_e = अनुमान की मानक त्रुटि

$'t'$ = एक विशिष्ट विश्वास के स्तर के लिए स्वतंत्रता की दी गई कोटियों के लिए सारणी मान *'t'* का

प्रतीपगमन गुणांक

प्रतीगमन गुणांक वह अनुमान है जो यह दर्शाता है कि एक श्रेणी के चर मूल्यों में एक का परिवर्तन होने से दूसरी श्रेणी के चर मूल्यों में औसतन कितना परिवर्तन होगा। प्रतीपगमन समीकरण की तरह प्रतीपगमन गुणांक भी दो प्रकार के होते हैं–

(i) X का Y प्रतीपगन गुणांक– इसे bxy संकेताक्षर द्वारा व्यक्त किया जाता है। यह गुणांक दर्शाता है कि X चर में एक इकाई का परिवर्तन होने पर Y में कितना परिवर्तन होगा। इसकी गणना निम्न समीकरण द्वारा की जाती है–

$$\text{bxy} = \text{r}\,\frac{\sigma x}{\sigma y},\ \text{bxy} = \text{X का Y पर प्रतीपगमन गुणांक।}$$

कभी-कभी समीकरण Y के अनुमान को Y का X पर प्रतीपगमन समीकरण भी कहा जाता है जो इस प्रकार से लिखा जा सकता है :–

$$\left(\hat{Y}-\bar{Y}\right) = r\frac{\sigma_Y}{\sigma_X}\left(X_i-\bar{X}\right)$$

या, $$\hat{Y} = r\frac{\sigma_Y}{\sigma_X}\left(X_i-\bar{X}\right)+\bar{Y}$$

जहां, r = X एवं Y के बीच सामान्य सहसंबंध गुणांक

σ_Y = Y का मानक विचलन

σ_X = X का मानक विचलन

$\bar{X}$ = X का माध्य

= Y का माध्य

= Y का मान जो अनुमानित किया जाना है

X_i = X का कोई भी दिया गया मान जिसके लिए Y अनुमानित किया जाना है

यह उस सूत्र पर आधारित है जिसका हमने उपयोग किया है

अर्थात्, $$\hat{Y} = a + bX_i$$

(ii) Y का X प्रतीपगमन गुणांक– इसे byx संकेताक्षर द्वारा व्यक्त किया जाता है। यह गुणांक बतलाता है कि X चर में एक इकाई का परिवर्तन होने पर Y में कितना परिवर्तन होगा। byx का माप Y की X पर प्रतीपगमन रेखा के ढाल को भी व्यक्त करता है। इसकी गणना के लिए निम्न समीकरण का प्रयोग किया जाता है–

X_i के गुणांक को इस प्रकार से परिभाषित किया जाता है।

$$X_i \text{ का गुणांक} = byx = r\frac{\sigma_Y}{\sigma_X}$$

(इसे X पर Y का प्रतीपगमन गुणांक या प्रतीपगमन रेखा Y का X पर ढाल के रूप में भी जाना जाता है)।

$$byx = \frac{\Sigma XY - n\overline{XY}\times\sqrt{\Sigma Y^2 - n\bar{Y}^2}}{\sqrt{\Sigma Y^2 - n\bar{Y}^2}\,\sqrt{\Sigma X^2 - n\bar{X}^2}\,\sqrt{\Sigma X^2 - n\bar{X}^2}}$$

$$= \frac{\Sigma XY - n\overline{XY}}{\Sigma X^2 - n\bar{X}^2}$$

एवं $$a = -r\frac{\sigma_Y}{\sigma_X}\bar{X}+\bar{Y} = \bar{Y}-b\bar{X} \quad (\text{चूंकि } b = r\frac{\sigma_Y}{\sigma_X})$$

इसी प्रकार, X का अनुमान समीकरण को Y पर X का प्रतीपगमन समीकरण भी कहा जाता है। जिसे इस प्रकार से दिखाया जा सकता है–

$$\left(\hat{X}-\bar{X}\right) = r\frac{\sigma_Y}{\sigma_X}\left(Y-\bar{Y}\right)$$

$$\hat{X} = r\frac{\sigma_X}{\sigma_Y}\left(Y - \bar{Y}\right) + \bar{X}$$

एवं X का Y पर प्रतीपगमन गुणांक (या b_{XY}) $= r\frac{\sigma_X}{\sigma_Y} = \frac{\Sigma XY - n\overline{XY}}{\Sigma Y^2 - n\bar{Y}^2}$

टिप्पणी

यदि हमें ऊपर बताए गए अनुसार, दो प्रतीपगमन समीकरण ज्ञात हों एवं नियतांकों *'a'* एवं *'b'* के मानों के साथ उसे हल कर X एवं Y के मान ज्ञात किए जाते हैं तब प्राप्त X एवं Y के मान X के माध्य मान $\left(\bar{X}\right)$ एवं Y के माध्य मान $\left(\bar{Y}\right)$ होते हैं।

यदि हमें दो प्रतीपगमन गुणांक (b_{XY} एवं b_{YX}) ज्ञात हो तो हम सहसंबंध गुणांक के मान केवल प्रतीपगमन गुणांकों के गुणनफल का वर्गमूल लेकर ज्ञात कर सकते हैं जो इस प्रकार है :

$$r = \sqrt{b_{XY}.b_{XY}} = \sqrt{r\frac{\sigma_Y}{\sigma_X}.r\frac{\sigma_X}{\sigma_Y}}$$

$$= \sqrt{r.r} = r$$

r के (±) चिह्न दिए गए प्रतीपगमन गुणांकों के चिह्नों के आधार पर निर्धारित किए जाते हैं। यदि प्रतीपगमन गुणांक का चिह्न ऋणात्मक है तो r का चिह्न भी ऋणात्मक होता है और यदि प्रतीपगमन गुणांक का चिह्न धनात्मक है तो r का चिह्न भी धनात्मक लिया जाता है। (यह स्मरणीय है कि दोनों प्रतीपगमन गुणांकों का चिह्न समान होता है चाहे वह ऋणात्मक हो या धनात्मक यह सहसंबंध गुणांक के चिह्न के द्वारा निर्धारित होते हैं।)

उदाहरण– निम्नलिखित सूचनाएं दी गई हैं–

	$\bar{X}$	$\bar{Y}$
माध्य	39.5	47.5
मानक विचलन	10.8	17.8

X एवं Y के बीच सामान्य सहसंबंध गुणांक $= +0.42$

Y एवं X का अनुमान समीकरण ज्ञात करें।

हल–Y के अनुमान समीकरण को इस प्रकार से ज्ञात किया जा सकता है–

$$\therefore \quad \left(\hat{Y} - \bar{Y}\right) = r\frac{\sigma_Y}{\sigma_X}\left(X_i - \bar{X}\right)$$

$$\hat{Y} = r\frac{\sigma_Y}{\sigma_X}\left(X_i - \bar{X}\right) + \bar{Y}$$

$$= 0.42\frac{17.8}{10.8}\left(X_i - 39.5\right) + 47.5$$

$$= 0.69X_i - 27.25 + 47.5$$

टिप्पणी

$$= 0.69X_i + 20.25$$

इसी प्रकार से, X के अनुमान समीकरण इस तरह ज्ञात किया जा सकता है–

$$\therefore \quad \left(\hat{X} - \bar{X}\right) = r\frac{\sigma_X}{\sigma_Y}\left(Y_i - \bar{Y}\right)$$

$$= r\frac{\sigma_X}{\sigma_Y}\left(Y_i - \bar{Y}\right) + \bar{X}$$

$$= 0.42\frac{10.8}{17.8}\left(Y_i - 47.5\right) + 39.5$$

$$= 0.26Y_i \;-\; 12.35 \;+\; 39.5$$

$$= 0.69Y_i \;+\; 27.15$$

प्रतीपगमन का उपयोग एवं अनुप्रयोग

1. प्रतीपगमन विश्लेषण का पूर्वानुमान और भविष्यवाणी में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है।
2. प्रतीपगमन विश्लेषण का प्रयोग दो चरों के बीच औसत संबंध की प्रकृति का अध्ययन करना है ताकि एक चर के आधार पर दूसरे चर का पूर्वानुमान लगाया जा सके।
3. प्रतीपगमन विश्लेषण में जहां एक चर को आश्रित चर के रूप में लिया जाता है वहां दूसरे चर को स्वतंत्र चर माना जाता है। इस प्रकार यह कारण-परिणाम संबंध के अध्ययन को संभव बनाता है।
4. प्रतीपगमन गुणांक मूल बिंदु में परिवर्तन के प्रति स्वतंत्र होते हैं परंतु पैमाने के प्रति स्वतंत्र नहीं होते हैं।
5. प्रतीपगमन विश्लेषण उस विभ्रम का माप करता है जो अनुमान लगाते समय प्रतीपगमन रेखा के प्रयोग के कारण उत्पन्न होता है।
6. प्रतीपगमन गुणांकों की सहायता से सहसंबंध गुणांक ज्ञात कर सकते हैं।

प्रतीगमन का अनुप्रयोग व्यापक होता है क्योंकि यह दो चरों के बीच गैर-रेखीय संबंध का अध्ययन करता है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. सांख्यिकी के मुख्यतः कितने प्रकार होते हैं?

   (क) 2 (ख) 3

   (ग) 4 (घ) 5

6. माध्य, माध्यिका और बहुलक निम्न में से किससे संबद्ध हैं?

   (क) सह–संबंध विश्लेषण (ख) केंद्रीय प्रवृत्ति की माप

   (ग) विचलनशीलता (घ) इनमें से कोई नहीं

टिप्पणी

3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (ख)
3. (क)
4. (घ)
5. (क)
6. (ख)

3.6 सारांश

परिमाणीकरण का विद्वानों तथा नीति निर्माताओं के लिए खास लाभ है। यह इस विश्वास का समर्थन करता है कि यह निर्णय लेने की प्रक्रिया में यथार्थता तथा सामान्यता बढ़ाता है, और पूर्वाग्रह, पक्षपात और भाई–भतीजावाद कम करता है। इस विचार के अनुसार, सांख्यिकीय विश्लेषण में इस्तेमाल किए जाने वाले गैर–संदर्भित और मूल्यमुक्त गणितीय चिह्न, निष्पक्षता, स्थिरता और उचित निर्णय लेने में सहायक होते हैं, क्योंकि निर्णय ज्यादा व्यापारिक हो जाते हैं। इस तरह, सामाजिक जीवन के परिमाणीकरण और मानकीकरण के मुक्त एवं स्वतंत्र करने के प्रभाव होते हैं। परिमाणीकरण किफायती भी होता है।

सर्वेक्षण का उद्देश्य विशेषतः अतीत में सामाजिक तथा शैक्षिक क्षेत्रों से संबंधित विषयों, समस्याओं व स्थितियों के विषय में व्यापक तथा विस्तृत आंकड़े संकलित करना रहा है। ऐसे अध्ययनों का स्वरूप प्रायः संगणात्मक (Relating to Census) अधिक रहता है। इसमें आधुनिक प्रतिचयन पद्धति का उपयोग प्रायः नहीं होता। अतः ऐसे सर्वेक्षणों का स्वरूप अत्यधिक विस्तृत, व्यापक और विशाल होता है। ऐसे ही विशालतम सर्वेक्षणों को प्रायः स्थिति–सर्वेक्षण की संज्ञा दी जाती है। स्पष्टतः ऐसे अध्ययनों को वैज्ञानिक अध्ययन कहना कठिन है क्योंकि ऐसे अध्ययनों का उद्देश्य विभिन्न चरों के पारस्परिक संबंधों के अध्ययन की अपेक्षा अधिकतर यथास्थिति (Status Quo) का अध्ययन करना होता है।

3.7 मुख्य शब्दावली

- **मात्रात्मक विधि** : जिसमें सांख्यिकी विश्लेषण और परिमाणात्मक मापन का प्रयोग होता है।
- **सर्वेक्षण** : किसी विषय के सही तथ्यों की जानकारी के लिए किया जाने वाला निरीक्षण।
- **परिचालन** : मात्रात्मक अनुसंधान में किसी अवधारणा को विधिपूर्वक मापने की प्रक्रिया
- **अभिकल्प** : डिजाइन।
- **मापन** : किसी भौतिक राशि का परिमाण संख्या में व्यक्त करना।

- **स्केलिंग** : एक सातत्य (Continuum) का निर्माण, जिस पर मापी गई वस्तुएं स्थित होती हैं।

टिप्पणी

3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. परिमाणीकरण का विद्वानों तथा नीति–निर्माताओं के लिए विशेष लाभ क्या है?
2. माप किसे संदर्भित करता है?
3. सांकेतिक स्तर को शोध में किसलिए प्रयोग किया जाता है?
4. सर्वेक्षण तकनीक के विविध रूपों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
5. निदर्शन को परिभाषित कीजिए।
6. सामाजिक अनुसंधान प्रक्रिया में तथ्य या आंकड़े संकलित करने की प्रमुख प्रविधियों के नाम बताइए।
7. मापन और स्केलिंग का अर्थ बताइए।
8. सामाजिक विज्ञान शोध में विश्वसनीयता और वैधता की महत्ता संक्षेप में बताइए।
9. सामाजिक विश्लेषण में कम्प्यूटर के उपयोग का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
10. केंद्रीय प्रवृत्ति की माप या माध्यों के नाम बताइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. परिमाणीकरण और माप की मान्यताओं को विस्तार से समझाइए।
2. सर्वेक्षण तकनीक के रूप, प्रकार, वर्गीकरण, उद्देश्य एवं चरणों का विश्लेषण कीजिए।
3. परिचालन और अनुसंधान अभिकल्प के विभिन्न पक्षों को विस्तारपूर्वक समझाइए।
4. निदर्शन रचना, इसके आधार, विशेषताओं, लाभ आदि के बारे में अपने विचार व्यक्त कीजिए।
5. प्रश्नावली, साक्षात्कार एवं अनुसूची के उद्देश्य, प्रकार, लाभ, सिद्धांत, विश्वसनीयता एवं सीमाओं की विवेचना कीजिए।
6. मापन और स्केलिंग से अपना अभिप्राय स्पष्ट कीजिए।
7. सामाजिक शोध की विश्वसनीयता और वैधता के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण कीजिए।
8. सामाजिक विश्लेषण में कम्प्यूटर के उपयोग, प्रक्रिया, प्रविधि एवं महत्व का रेखांकन कीजिए।
9. सामाजिक अनुसंधान में सांख्यिकी के प्रयोग, इसके प्रकार, विशेषताओं एवं महत्व का वर्णन कीजिए।
10. निम्न पर टिप्पणी लिखिए–

    (क) माध्य, माध्यिका और बहुलक

(ख) मानक विचलन, चतुर्थक विचलन

(ग) सह–संबंध विश्लेषण

(घ) प्रतीपगमन विश्लेषण

3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

Charles, C. Ragin. 1994. *Constructing Social Research: The Unity and Diversity of Method*. USA: Pine Forge Press.

Barton, Keith. C. 2006. *Research Methods in Social Studies Education.* USA: Information Age Publishing Inc.

Williman, Nicholas. 2006. *Social Research Methods.* London: Sage Publications Ltd.

Kumar, Dr. C. Rajendra. 2008. *Research Methodology.* New Delhi: APH Publishing Corporation.

Bulmer, Martin. 2003. *Sociological Research Methods: An Introduction*. USA: Transaction Publishers.

Scheurich, James J. 2001. *Research Method in The Postmodern.* Philadelphia: RoutleadgeFalmer.

Singh, Kultar. 2007. *Quantitative Social Research Methods.* New Delhi: Sage Publications India Private Ltd.

इकाई 4 गुणात्मक अनुसंधान तकनीक

टिप्पणी

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 गुणात्मक अनुसंधान की तकनीक और विधियां
4.2.1 अवलोकन की अवधारणा
4.2.2 सहभागी अवलोकन
4.2.3 नृवंशविज्ञान पद्धति
4.2.4 इंटरव्यू गाइड
4.2.5 केस अध्ययन पद्धति
4.2.6 सामग्री विश्लेषण
4.3 मौखिक इतिहास का विवरणात्मक विश्लेषण
4.3.1 मौखिक इतिहास की कार्य पद्धति
4.3.2 जीवन इतिहास वंशावली
4.4 गुणात्मक अनुसंधान में पद्धतिगत दुविधाएं और मुद्दे
4.4.1 फील्डवर्क का संघर्ष और अनुभव
4.4.2 कार्यक्षेत्र रिपोर्ट
4.4.3 गुणात्मक आंकड़ों का प्रारूप और प्रसंस्करण
4.5 गुणात्मक अनुसंधान में वैधता और विश्वसनीयता
4.5.1 गुणात्मक अनुसंधान में वैधता
4.5.2 गुणात्मक शोध में विश्वसनीयता
4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

गुणात्मक अनुसंधान में अवधारणाओं, विचारों या अनुभवों को समझने के लिए गैर–संख्यात्मक डेटा (जैसे, पाठ, वीडियो या ऑडियो) एकत्र करना और उनका विश्लेषण करना शामिल है। इसका उपयोग किसी समस्या में गहन अंतर्दृष्टि एकत्र करने या अनुसंधान के लिए नए विचार उत्पन्न करने के लिए किया जा सकता है। गुणात्मक अनुसंधान मात्रात्मक अनुसंधान के विपरीत है, जिसमें सांख्यिकीय विश्लेषण के लिए संख्यात्मक डेटा एकत्र करना और उसका विश्लेषण करना शामिल है। मानविकी, समाजशास्त्र, शिक्षा, स्वास्थ्य विज्ञान, इतिहास, सामाजिक विज्ञान आदि जैसे विषयों में आमतौर पर गुणात्मक अनुसंधान का उपयोग किया जाता है। गुणात्मक अनुसंधान की तकनीकों एवं विधियों में अवलोकन, इंटरव्यू, पत्राचार, डायरी, ऑडियो/वीडियो रिकॉर्डिंग, फीडबैक फॉर्म, फोकस समूह, सर्वेक्षण, माध्यमिक अनुसंधान आदि का प्रयोग सम्मिलित है।

प्रस्तुत इकाई में हम गुणात्मक अनसंधान तकनीक एवं सम्बद्ध विषयों का अध्ययन करेंगे।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

टिप्पणी

- गुणात्मक अनुसंधान की तकनीकों एवं विधियों के बारे में जान पाएंगे;
- मौखिक इतिहास के विवरणात्मक विश्लेषण से परिचित हो पाएंगे;
- गुणात्मक अनुसंधान में पद्धतिगत दुविधाओं और समस्याओं को समझ पाएंगे;
- गुणात्मक अनुसंधान में वैधता एवं विश्वसनीयता के महत्व का अध्ययन कर पाएंगे।

4.2 गुणात्मक अनुसंधान की तकनीक और विधियां

गुणात्मक अनुसंधान अनुसंधान का एक प्रकार है जो किसी प्रश्न के उत्तर की तलाश करता है जिसे व्यवस्थित रूप से किया जाता है और जिसमें साक्ष्य जुटाने की गतिविधि शामिल रहती है। हालांकि, गुणात्मक अनुसंधान इस अर्थ में अनोखा होता है कि आप ऐसे निष्कर्ष प्राप्त कर सकते हैं जो पूर्व में निश्चित नहीं थे तथा ऐसे निष्कर्षों को अध्ययन के क्षेत्र के बाहर भी लागू किया जा सकता है। यह तब और भी कारगर होता है जब आप शामिल किए गए विषयों के संबंध में सांस्कृतिक रूप से विशेष जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं, अर्थात मूल्यों, व्यवहारों तथा किसी विशेष आबादी के विचारों को जानना चाहते हैं।

गुणात्मक अनुसंधान की परिभाषा

गुणात्मक अनुसंधान एक सामान्य शब्द है जिसके अंतर्गत विभिन्न पद्धतियां शामिल रहती हैं जिनका प्रयोग सामाजिक घटनाओं को समझने और उनकी व्याख्या के लिए किया जाता है। इस क्षेत्र के कुछ प्रमुख विद्वानों ने इसे इस प्रकार परिभाषित किया है–

- गुणात्मक अनुसंधान घटनाओं की विवेचना उनके स्वाभाविक माहौल में करता है जिससे कि लोग उस माहौल के अनुसार उसका अर्थ समझ सकें। गुणात्मक अनुसंधान में व्यक्तिगत अनुभव, आत्मपरीक्षण, जीवन वृत्त, साक्षात्कार, अवलोकन, ऐतिहासिक आदान–प्रदान तथा दृश्य लेख शामिल रहते हैं जो लोगों के जीवन की महत्वपूर्ण और सार्थक घटनाओं के बारे में बताते हैं।
- गुणात्मक अनुसंधान में किसी विशेष परिस्थिति में अनोखे विचार विमर्श को समझने का प्रयास किया जाता है। यहां उद्देश्य यह अनुमान लगाने का नहीं होता कि क्या हो सकता है, बल्कि परिस्थिति के महत्व की गहराई और उसे सहभागियों द्वारा सार्थक बनाने तथा उस क्षण उनके साथ क्या हो रहा है, यह जानना होता है। गुणात्मक अनुसंधान का उद्देश्य सच्चाई से वर्तमान परिणामों को अन्य लोगों के समक्ष पेश करना होता है जो यह जानने में रुचि रखते हैं कि आप क्या कर रहे हैं।
- गुणात्मक अनुसंधानकर्ता विषयों का अध्ययन उनके प्राकृतिक परिवेश में करते हैं जिससे कि अनुसंधान करने वाले की नहीं बल्कि उन लोगों द्वारा समझे जाने वाले अर्थ का पता लगाया जा सके जिन पर अनुसंधान किया जा रहा है।

टिप्पणी

- गुणात्मक अनुसंधान से मनुष्य के अनुभव, धारणाओं, प्रेरणाओं, मंशाओं तथा वर्णन और अवलोकन से व्यवहारों को समझने तथा किसी विषय को स्वाभाविक व्याख्यात्मक पद्धति से उसकी परिस्थितियों के संदर्भ में समझने का प्रयास किया जाता है।
- गुणात्मक अनुसंधान प्राकृतिक जांच की एक प्रक्रिया है जो सामाजिक घटनाओं को उनके प्राकृतिक माहौल में गहराई से समझता है। यह सामाजिक घटना को लेकर 'क्या' की बजाय 'क्यों' पर जोर देता है तथा दैनिक जीवन में अर्थ देने वाले अभिकर्ता (एजेंट) के तौर पर मनुष्यों के प्रत्यक्ष अनुभव पर निर्भर रहता है।
- गुणात्मक अनुसंधान वह अर्थ है जिसका निर्माण लोगों ने किया है जिसमें अनुसंधानकर्ता आंकड़े जुटाने तथा विश्लेषण करने का प्राथमिक साधन होता है। यह इंडक्टिव यानी सहायक अनुसंधान रणनीति के लिए कार्यक्षेत्र को प्रमुख रूप से शामिल करता है जिसका जोर प्रक्रिया, अर्थ और पूर्ण रूप से वर्णित उत्पाद को समझने पर होता है।

गुणात्मक अनुसंधान की शुरुआत यह स्वीकार करने के साथ होती है कि विश्व को समझने और उसका अर्थ निकालने के अनेक तरीके होते हैं। आप यह भविष्यवाणी नहीं कर रहे होते कि भविष्य में क्या होने वाला है। आप लोगों को उस परिस्थिति में समझना चाहते है। उनका जीवन किस प्रकार है? वे विश्व के विषय में कैसी धारणा रखते हैं? संक्षेप में कहें, तो गुणात्मक अनुसंधान का संबंध हमारे संसार के सामाजिक पहलुओं से होता है।

गुणात्मक अनुसंधान की विधियां

सामाजिक विज्ञान के अतिरिक्त, गुणात्मक अनुसंधान का प्रयोग सार्वजनिक स्वास्थ्य, चिकित्सा, नर्सिंग, मार्केटिंग, शिक्षा तथा अंतर्राष्ट्रीय विकास अनुसंधान के लिए बढ़ रहा है। इन क्षेत्रों में गुणात्मक अनुसंधान की पद्धतियां लोकप्रिय हो रही हैं, लेकिन अनुसंधानकर्ता अब गुणात्मक पद्धतियों के विविध प्रकार के खजाने से भी नई–नई बातें सीख रहे हैं। प्रायोगिक अनुसंधान में भी गुणात्मक पद्धतियों का काफी हद तक प्रयोग होने लगा है क्योंकि उनकी सहायता से जिस आबादी का अध्ययन किया जा रहा है उसके विषय में महत्वपूर्ण जानकारी मिल जाती है।

गुणात्मक अनुसंधान का बहुत बड़ा योगदान सांस्कृतिक रूप से विशिष्ट तथा इसके द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले प्रासंगिक रूप से समृद्ध आंकड़े को माना जाता है। इस प्रकार के आंकड़े विभिन्न विषयों से जुड़ी समस्याओं को सुलझाने के लिए आवश्यक खाका प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, नर्सिंग और मनोविज्ञान के मध्यवर्ती कार्यक्रमों की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वे सांस्कृतिक मानकों, मानव जाति की पहचान, लिंग मानकों तथा सामाजिक–आर्थिक हैसियत जैसे सामाजिक–व्यावहारिक कारकों का समाधान कितनी अच्छी तरह कर पाते हैं। गुणात्मक अनुसंधान की तकनीक को इस प्रकार देखा जा सकता है–

टिप्पणी

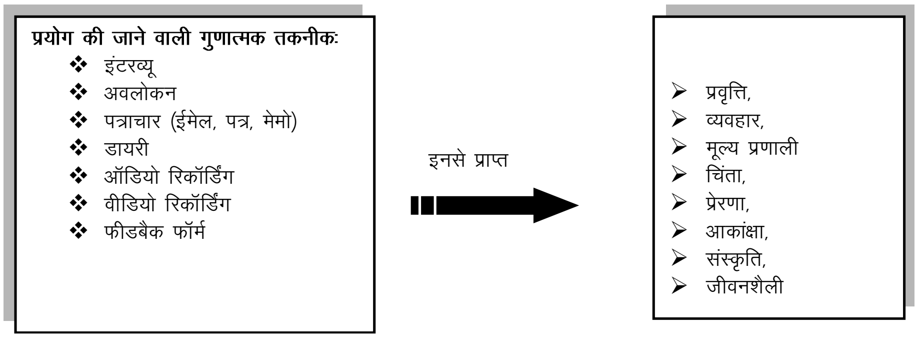

गुणात्मक और मात्रात्मक अनुसंधान

गुणात्मक अनुसंधान संपूर्ण व्याख्या की अपेक्षा व्यक्तिगत चरों और कारकों पर बल देता है। मात्रात्मक अनुसंधान में तथ्यों और मूल्यों को अलग–अलग किया जाता है। संदर्भ युक्त सामान्यीकरण और विशिष्टिकरण। इस प्रकार इस प्रक्रिया में अनुसंधानकर्ता की भूमिका प्राप्त करने वाले की होती है। 'गुणात्मक अनुसंधान संदर्भ संवेदनशीलता के पक्ष पर आधारित होता है... मनुष्य के व्यवहार पर भौतिक और सामाजिक माहौल का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है।' गुणात्मक अनुसंधान संपूर्ण व्याख्या पर बल देता है। तथ्यों और मूल्यों को आपस में पूरी तरह मिला दिया जाता है। यह काफी हद तक वर्णनात्मक व्याख्या पर निर्भर करता है। यह संख्या से प्रदर्शित सांख्यिकीय परिणामों पर पूर्णतया निर्भर करता है। गुणात्मक अनुसंधान अनेक तरीकों का प्रयोग मात्रात्मक अनुसंधान की तुलना में अधिक करता है। यह मानकीकृत अनुसंधान प्रक्रियाओं और पूर्वनिर्धारित तरीकों पर अधिक भरोसा करता है। अनुसंधान की शुरुआत करने के बाद गुणात्मक अनुसंधानकर्ता अधिक लचीला रुख अपनाते हैं। यह सामाजिक घटना को समझने के लिए किया जाता है। यह संबंधों, प्रभावों तथा कारणों का पता लगाने के लिए किया जाता है। शिक्षा में, दोनों ही तरीके महत्वपूर्ण हैं तथा शिक्षा पर प्रभाव डालने वाले अनेक कारकों को समझने में सहायक होते हैं।

गुणात्मक तथा मात्रात्मक प्रक्रियाएं अक्सर आपस में मिली–जुली होती हैं। हालांकि, उनकी पद्धतियों को विरोधाभास की अपेक्षा सतत कहा जा सकता है, क्योंकि वे गुणात्मक या मात्रात्मक स्वरूप की ओर प्रवृत्त रहती हैं।

मात्रात्मक और गुणात्मक अनुसंधान में अंतर

गुणात्मक और मात्रात्मक अनुसंधान में अंतर होता है और वे अनुसंधान करने के दोनों तरीकों के बीच अंतर को बताते हैं। मात्रात्मक अनुसंधान के प्रतिपादक इस आधार पर गुणात्मक अनुसंधान की आलोचना करते हैं कि यह वैज्ञानिक होने की बजाय अत्यधिक व्यक्तिवादी है।

1. **दर्शन**– सामान्यतया, गुणात्मक अनुसंधान को लेकर यह तर्क दिया जाता है कि यह घटनापरक होता है; जबकि मात्रात्मक अनुसंधान प्रत्यक्ष ज्ञान पर आधारित होता है।
2. **लक्ष्य**– इसकी पहचान लक्ष्य के आधार पर निम्न तरीकों से की जा सकती है–
   - गुणात्मक अनुसंधान में, हम लोगों द्वारा बनाई गई धारणा को समझने में रुचि रखते हैं। इस बात पर ध्यान अधिक होता है कि लोग इस संसार

का और अपने अनुभवों का अर्थ किस प्रकार लगाते हैं। उदाहरण के लिए, आप जब किसी शिक्षिका से उसकी प्रिंसिपल के नेतृत्व की शैली के विषय में पूछते हैं तो वह आपको प्रिंसिपल के साथ अपने अनुभव के आधार पर बताएगी कि वह कैसा महसूस करती है और प्रिंसिपल के साथ अपने संबंध की व्याख्या किस प्रकार करती है। आप उस शिक्षिका के निहितार्थों में रुचि रखते हैं कि प्रिंसिपल के साथ बातचीत और स्कूल में उसके अनुभव क्या कहते हैं।

- दूसरी तरफ, मात्रात्मक अनुसंधान में हम परिकल्पना के परीक्षण में अधिक रुचि रखते हैं। यह पता लगाते हैं कि अध्ययन के अंतर्गत आने वाले चरों में कितना अंतर है या जिन चरों की समीक्षा की गई है उनके बीच क्या संबंध है। हम अनुमान में अधिक अभिरुचि रखते हैं। उदाहरण के लिए, प्रेरणा और अकादमिक उपलब्धि के बीच संबंध ज्ञात करने के लिए।

3. **फोकस**– इन अवधारणाओं के बीच अंतर के फोकस को भी समझा जा सकता है।

- गुणात्मक अनुसंधान प्रक्रिया, अर्थ और समझ पर ध्यान केंद्रित करता है जो ठोस और सारगर्भित व्याख्या पर आधारित होता है। घटना की व्याख्या अंकों से नहीं बल्कि शब्दों और तस्वीरों से होती है। इसके साथ ही किसी परिस्थिति, शामिल लोग तथा गतिविधियों के अवलोकन पर भी बल दिया जाता है। सहभागियों के बीच की बातचीत से जुड़ी जानकारी, दस्तावेजों के तथ्य तथा वीडियो और ऑडियो रिकॉर्डिंग अध्ययन के निष्कर्षों का आधार होते हैं।
- गुणात्मक अनुसंधान में जांच के दौरान प्राप्त आंकड़े, पैमाना या प्रश्नावली पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। घटना का वर्णन करने के लिए अंकों (सांख्यिकी की सहायता से) का प्रयोग किया जाता है।

	गुणात्मक	**मात्रात्मक**
1. दर्शन	घटनात्मक	प्रत्यक्षवाद
2. लक्ष्य	समझ, अर्थ	अनुमान, परीक्षण परिकल्पना
3. फोकस	गुण (विशेषताएं)	मात्रा (कितने, अंक)
4. पद्धति	मानवजाति विज्ञान / कार्रवाई पर अनुसंधान	प्रयोग / अंतर्संबंध
5. आंकड़ों का संग्रह	साक्षात्कार, अवलोकन दस्तावेज, कलाकृतियां	प्रश्नावली, पैमाने, परीक्षण, सामग्री
6. अनुसंधान की डिजाइन	लचीला, विकासशील	ढांचागत, पूर्वनिर्धारित
7. सैंपल	छोटा, सार्थक	विशाल, निरुद्देश्य, प्रतिनिधित्वपूर्ण
8. सामान्यीकरण	विशेष मामले का चुनाव	सामान्यीकरण

4. **पद्धति**– परिस्थिति के अनुसार इस अवधारणा के अंतर्गत विभिन्न प्रकार की अनुसंधान पद्धतियां होती हैं।

टिप्पणी

- गुणात्मक अनुसंधान में, सबसे अधिक प्रचलित पद्धतियों में नृवंशविज्ञान पद्धति, एक्शन रिसर्च, गुणात्मक केस स्टडी, विषय विश्लेषण आदि विधियां हैं।
- दूसरी तरफ मात्रात्मक अनुसंधान में, प्रयोग और सर्वे, सहभागियों द्वारा प्रश्नावली के उत्तर या आमने–सामने के इंटरव्यू से आंकड़े जुटाए जा सकते हैं।

4.2.1 अवलोकन की अवधारणा

अवलोकन विधि में शोधकर्ता किसी भी व्यक्ति या घटना को देखकर आंकड़े एकत्रित करता है। जैसे कोई शोधकर्ता यह जानना चाहता है कि आज के विद्यार्थी की किन संदर्भ पुस्तकों में अधिक रुचि है तो वह किसी पुस्तक मेले में जाकर किसी एक या एक से अधिक दुकानों पर युवा ग्राहकों का अवलोकन करके इस विषय पर आंकड़े एकत्रित कर सकता है। अवलोकन विधि से आंकड़े देखकर या सुनकर एकत्रित किए जाते हैं। शोधकर्ता युवा ग्राहकों (जो उम्र से विद्यार्थी लग रहे हों) का पृथक–पृथक स्थितियों में निरीक्षण कर सकता है, जैसे–

1. उस समय, जब वे दुकान में आकर विक्रेता से किसी विशेष पुस्तक या पुस्तक श्रेणी के विषय में पूछते हैं।
2. उस समय, जब वे किसी दुकान में पुस्तकों का अवलोकन कर रहे हों।
3. बिलिंग के समय, जब वे पुस्तकें खरीदकर उनका भुगतान कर रहे हों।

अवलोकन : अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताएं

अवलोकन शब्द अंग्रेजी शब्द के Observation शब्द का पर्यायवाची है, जिसका अर्थ ''निरीक्षण करना' या 'देखना' होता है।

अवलोकन का आशय एक विशेष विषय से संबंधित घटनाओं को सुव्यवस्थित रूप से निरीक्षण करना तथा अपनी बुद्धि और कौशल के आधार पर घटनाओं के परिणामों को समझना है।

विभिन्न विद्वानों ने अवलोकन को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है –

सी. ए. मोजर – ''ठोस रूप में अवलोकन का आशय, कान व वाणी की तुलना में आंखों का अधिक उपयोग करना होता है।''

साइमंस – ''सहभागिता अवलोकन कोई विधि नहीं है अपितु कई विधियों तथा प्रविधियों का एक मेल है।''

पी. वी. यंग – ''अवलोकन घटनाओं के स्वभाविक रूप में घटित होते समय आंखों द्वारा किया गया व्यवस्थित और विचारित अध्ययन है।''

ए. वुल्फ – ''वस्तुओं तथा घटनाओं, उनकी विशेषताओं एवं उनके मूर्त रूप को समझने और उनके संबंध में हमारे मानसिक अनुभवों की प्रत्यक्ष चेतना को समझने एवं परखने की क्रिया को अवलोकन कहते हैं।''

ऑक्सफोर्ड कंसाईज डिक्शनरी – ''समग्र में घटनाएं जिस रूप में घटती हैं, उनके कारण तथा प्रभावों या उनके मध्य संबंधों को सही अर्थ में देखने तथा उनकी जांच करने की विधि को ही अवलोकन कहते हैं।"

अवलोकन की विशेषताएं

अपनी निम्नांकित अद्वितीय विशेषताओं के कारण अवलोकन पद्धति शोध अध्ययनों में सर्वाधिक लोकप्रिय रही है –

(1) **यह एक व्यवस्था है** – अवलोकन में व्यवस्था होती है। वैज्ञानिक अवलोकन चाहे जैसे नहीं किया जा सकता है। इसे सुनियोजित ढंग से ही करना होता है। किसी घटना का अवलोकन करने से पूर्व 'किन' 'कैसे' 'क्यों' तथा कहां आदि प्रश्नों के संबंध में एक योजना बना ली जाती है।

(2) **अधिक विश्वसनीय है** – यह एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। इसके द्वारा एकत्रित किए गए तथ्य अधिक विश्वसनीय होते हैं। यह एक सामान्य नियम है, जो कि सुनी हुई बातों की अपेक्षा यह आंखों देखी घटनाओं को अधिक विश्वसनीय एवं प्रामाणिक मानती है।

(3) **प्राथमिक सामग्री संकलन** – शोध अध्ययन क्षेत्र में जाकर वस्तु स्थिति को प्रत्यक्ष रूप से देखने के बाद ही प्राथमिक तथ्यों से विभाहित करके संकलित किया जाता है।

(4) **मानव इंद्रियों का प्रयोग** – अवलोकन में मानव–इंद्रियों का उपयोग होता है। इसमें कान, आंख व बोली का प्रयोग कर सकते हैं परंतु नेत्रों के प्रयोग पर अधिक बल दिया जाता है।

(5) **सूक्ष्मता** – अवलोकन का मुख्य उद्देश्य सामाजिक घटनाओं के मध्य पाए जाने वाले कारण–परिणाम संबंधों को ज्ञात करना होता है। घटनाओं के सूक्ष्म और गहन अवलोकन से ऐसा संबंध ज्ञात करना और भी सरल हो जाता है।

(6) **निष्पक्षता** – चूंकि शोधकर्ता स्वयं घटनाओं का निरीक्षण करता है। अपने निष्कर्षों की बार–बार जांच करता है एवं उसके द्वारा लिया गया निर्णय उसका स्वयं का निर्णय होता है अतः अवलोकन में पक्षपात का दोष उत्पन्न ही नहीं होता है।

अवलोकन के लाभ

आजकल तकनीक के युग में निरीक्षण का कार्य सीसीटीवी कैमरों एवं अन्य तकनीकी माध्यमों से भी किया जा रहा है। इससे गलती होने की संभावना बहुत कम हो जाती है। अवलोकन विधि के लाभ निम्नांकित हैं–

1. **पक्षपात रहित आंकड़े** : यदि शोधकर्ता पूरी ईमानदारी से काम करे तो वह अवलोकन विधि के प्रयोग से पक्षपातरहित आंकड़े एकत्रित कर सकता है, क्योंकि इसमें उत्तर देने वाले के पास कुछ भी छिपाने या झूठ बोलने का विकल्प नहीं रहता।
2. **तकनीक का उपयोग** : इस विधि में सीसीटीवी कैमरों, सेंसरों आदि का उपयोग किया जा सकता है जिससे न केवल आंकड़े पक्षपात रहित होते हैं अपितु उन्हें एकत्रित करने के लिए किसी की सहायता भी नहीं लेनी पड़ती और उन्हें प्रशिक्षित करने का खर्च भी बच जाता है।
3. **आंकड़े प्राप्त करने में सरलता** : अन्य विधियों की तुलना में इस विधि से आंकड़े एकत्रित करना अपेक्षाकृत सरल है। प्रश्नावली में अक्सर उत्तर देने वाले

व्यक्ति या तो रुचि ही नहीं लेते या फिर आधे–अधूरे उत्तर देते हैं। इसी प्रकार अनुसूची के लिए भी उत्तर देने वाले व्यक्ति को बहुत समय निकालना पड़ता है इसलिए इन दोनों विधियों में सूचना प्राप्ति की दर बहुत कम हो जाती है। निरीक्षण विधि में शोधकर्ता को इन समस्याओं से नहीं जूझना पड़ता।

अवलोकन की कमियां

अवलोकन विधि की कमियों का वर्णन निम्नांकित बिंदुओं के तहत किया जा सकता है–

1. **शोधकर्ता द्वारा पक्षपात की संभावना** : इस विधि में आंकड़ों का अवलोकन पूर्णतः शोधकर्ता के नियंत्रण में होता है। ऐसी स्थिति में शोधकर्ता द्वारा पक्षपात की संभावना रहती है।
2. **समय एवं धन का अधिक खर्च** : इस विधि में आंकड़ों के एकत्रीकरण के लिए शोधकर्ता को या तो व्यक्तिगत रूप में समय देना पड़ता है या उसे ऐसे सहायकों की नियुक्ति करनी पड़ती है और उन्हें प्रशिक्षण देने पड़ता है जो उसके लिए आंकड़े एकत्रित कर सकें। दोनों ही स्थितियों में अत्यधिक समय एवं धन खर्च होता है। हालांकि निरीक्षण के लिए तकनीक के उपयोग से समय की बचत तो हो जाती है परंतु महंगे उपकरणों के कारण शोध की लागत बढ़ जाती है।
3. **अवलोकन किए जाने वाले व्यक्ति की ओर से पक्षपात** : इस विधि में यदि उस व्यक्ति को, जिसका निरीक्षण किया जा रहा है, इस बात का पता लग जाता है तो वह अपने वास्तविक रूप से बदलकर 'सामाजिक रूप से स्वीकार किए जाने वाले रूप' में आ जाएगा जिससे उसकी वास्तविक रुचियों एवं क्रियाकलापों का पता नहीं लगेगा और शोध पक्षपातपूर्ण हो जाएगा।
4. **व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन** : बहुत से ऐसे विषय, जो संवेदनशील होते हैं या जिनमें व्यक्तिगत जानकारी की आवश्यकता होती है, वहां अवलोकन विधि का प्रयोग व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन माना जाता है। उन स्थितियों में यह विधि पूर्णतया नैतिक नहीं मानी जा सकती।
5. **विशेष अनुमति की आवश्यकता** : अवलोकन विधि के प्रयोग के लिए शोधकर्ता या उसके दल के किसी भी व्यक्ति को किसी संस्थान (विद्यालय, महाविद्यालय या उसके बाहर) में बैठना पड़ता है। इसके लिए उसे समुचित अनुमति लेनी पड़ती है और प्रधानाचार्य अथवा विद्यालय प्रबंधक यह नहीं चाहता कि कोई अन्य व्यक्ति उसके विद्यार्थियों अथवा संस्थान आदि के विषय में कोई ऐसी जानकारी प्राप्त करे जो सकारात्मक न हो, इसलिए कई बार आंकड़े एकत्रित करने के लिए अवलोकन की अनुमति भी नहीं मिलती है।

अवलोकन की कमियों को दूर करने के उपाय

निम्न उपायों के आधार पर सामान्यतया अवलोकन पद्धति के दोषों को दूर किया जा सकता है –

(1) अवलोकन पूर्व नियोजित ढंग से हो।

(2) अवलोकन के समय अवलोकनकर्ता द्वारा अनुसूची का प्रयोग करना चाहिए।

(3) अवलोकन के समय आधुनिक यंत्रों का प्रयोग करके घटनाओं को रिकॉर्ड कर लेना चाहिए तथा उसी के अनुसार बार–बार अध्ययन करना चाहिए।

(4) सामान्यतः सामूहिक अवलोकन विधि का प्रयोग करना अत्यधिक उपयोगी एवं प्रामाणिक होगा।

अवलोकन के प्रकार

अवलोकन के तीन प्रकार होते हैं–

(क) अनियंत्रित अवलोकन (ख) नियंत्रित अवलोकन (ग) सामूहिक अवलोकन

(क) अनियंत्रित अवलोकन– अनियंत्रित अवलोकन ऐसी प्रविधि है जिसमें अध्ययनकर्ता अथवा अध्ययन–विषय को नियंत्रित किए बिना घटनाओं का उनके वास्तविक रूप में अध्ययन किया जाता है। ऐसे अवलोकन की न तो कोई विशेष संरचना होती है और न ही इसका नियोजन बहुत औपचारिक प्रकृति का होता है।

अनियंत्रित अवलोकन की व्याख्या करते हुए पी.वी. यंग ने लिखा है कि अनियंत्रित अवलोकन में हम वास्तविक जीवन से संबंधित घटनाओं एवं परिस्थितियों का सावधानीपूर्वक अध्ययन करते हैं। इन विधियों में न तो यथार्थता उत्पन्न करने वाले यंत्रों का प्रयोग करते हैं और न ही अवलोकित घटना की शुद्धता की जांच करने का प्रयत्न किया जाता है। इस विधि में अवलोकनकर्ता को अवलोकन की दिशाओं, सामग्री का चयन तथा प्रलेखन करने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। वास्तविकता यह है कि अधिकांश सामाजिक घटनाओं की प्रकृति इस प्रकार की होती है कि उन्हें नियंत्रित नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में अनियंत्रित अवलोकन के द्वारा ही ऐसी सामाजिक घटनाओं का उनके यथार्थ रूप में अध्ययन किया जा सकता है।

(ख) नियंत्रित अवलोकन–नियंत्रित अवलोकन, अनियंत्रित अवलोकन का विकसित स्वरूप है। वस्तुतः अनियंत्रित अवलोकन के अनेक दोषों को दूर करने के लिए ही नियंत्रित अवलोकन का उद्भव हुआ है। नियंत्रित अवलोकन प्रविधि के अंतर्गत अवलोकनकर्ता अध्ययन की जाने वाली घटनाओं और परिस्थितियों को नियंत्रित करके तथ्यों का संकलन करता है। इसी कारण नियंत्रित अवलोकन को पूर्व नियोजित अवलोकन, संरचित अवलोकन तथा व्यवस्थित अवलोकन भी कहा जाता है। इस प्रकार के अवलोकन की एक मुख्य विशेषता यह है कि इसमें अवलोकनकर्ता पर तो नियंत्रण होता ही है साथ ही साथ अवलोकन की जाने वाली सामाजिक घटना पर भी नियंत्रण किया जाता है। इस संबंध में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में किसी भी विशेष परिस्थिति अथवा तथ्य को उस प्रकार नियंत्रित नहीं किया जा सकता जिस प्रकार प्राकृतिक घटनाओं पर नियंत्रण स्थापित करके उनका अध्ययन किया जा सकता है।

(ग) सामूहिक अवलोकन–सामूहिक अवलोकन नियंत्रित और अनियंत्रित अवलोकन विधियों का सम्मिश्रण है। इस प्रविधि में एक ही सामाजिक घटना अथवा समस्या का अवलोकन कई शोधकर्ताओं द्वारा होता है, जो कि उस सामाजिक घटना के विभिन्न पहलुओं के विशेषज्ञ होते हैं। इस प्रकार जब अवलोकन एक व्यक्ति द्वारा न होकर अनेक व्यक्तियों द्वारा सामूहिक रूप से किया जाता है, तब इस प्रकार के अवलोकन को सामूहिक अवलोकन अथवा समूह अवलोकन कहा जाता है।

''सिन–पाओ–यंग'' ने सामूहिक अवलोकन को इस प्रकार परिभाषित किया है–"सामूहिक अवलोकन नियंत्रित व अनियंत्रित अवलोकन का सम्मिश्रण है। इसमें कई व्यक्ति मिलकर सूचनाओं का संकलन करते हैं। यद्यपि सूचनाओं का संकलन एवं उनका प्रयोग एक केंद्रीय व्यक्ति द्वारा किया जाता है।"

टिप्पणी

4.2.2 सहभागी अवलोकन

सहभागी अवलोकन शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम लिंडमैन ने 1924 में अपनी पुस्तक 'सोशल डिस्कवरी' में किया। इसमें उन्होंने बताया कि किसी भी घटना के प्रत्यक्ष अवलोकन में जो कमियां रह जाती हैं उन्हें ध्यान में रखते हुए सहभागी अवलोकन का प्रयोग किया जाता है। सामान्यतः सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता अध्ययन समूह के साथ इस प्रकार घुल–मिल जाता है कि उस समूह के सभी सदस्य अवलोकनकर्ता के वास्तविक उद्देश्य से परिचित होते हुए भी उसे अपने समूह का वास्तविक सदस्य मान लेते हैं। सहभागी अवलोकन को स्पष्ट करते हुए लुंडबर्ग ने लिखा है "इस अवलोकन (सहभागी) में यह आवश्यक है कि केवल शोधकर्ता ही नहीं बल्कि अध्ययन किए जाने वाले समूह के सदस्य भी उसे समूह के एक अंग के रूप में स्वीकार करें।" अतः सहभागी अवलोकन में किसी तथ्य अथवा घटना का अर्थ तभी अधिक विश्वसनीय और विस्तृत हो सकता है जब शोधकर्ता परिस्थिति की गहराई में पहुंच जाता है।

सहभागी अवलोकन का मूल प्रयोग मानव विज्ञान में आदिवासियों के अध्ययनों से प्रारंभ हुआ। किसी भी समाज की गहराइयों में पहुंचने तथा व्यवहार एवं प्रतीकों के पीछे छिपे हुए मंतव्यों को जानने के लिए अध्ययन किए जाने वाले समूह का सदस्य होना आवश्यक है। फोरेक्स तथा रिचर ने इस संबंध में लिखा है कि ''सहभागिक अवलोकन में शोधकर्ता अध्ययन किए जाने वाले समूह का सदस्य बन जाता है।'' समूह का सदस्य बनने के तात्पर्य को स्पष्ट करते हुए पी.वी. यंग ने कहा है–''सामान्यतः अनियंत्रित अवलोकन का प्रयोग करते हुए, एक सहभागी अवलोकनकर्ता अध्ययन किए जाने वाले समूह के साथ रहता है अथवा उनके जीवन की गतिविधियों में भाग लेता है अर्थात शोधकर्ता स्वयं सहभागी के रूप में परिस्थितियों की गहराई में पहुंचकर विश्वसनीय परिणाम प्राप्त कर सकता है। अतः स्पष्ट है कि सहभागी अवलोकनकर्ता अध्ययन समूह का अंग अथवा सदस्य बनकर रहता है जिससे वह समूह के जीवन के प्रत्येक अंग की गहराई से छानबीन कर सके। वह तटस्थ होकर उनके जीवन के विविध पक्षों का अध्ययन नहीं कर सकता। इसमें शोधकर्ता को इस बात का ध्यान देना आवश्यक है कि वह जिन पक्षों का अवलोकन करना चाहता है वह अनुसंधान सामग्री के अनुरूप हो।

सहभागी अवलोकन की विशेषताएं अथवा गुण

सामाजिक विज्ञान के अंतर्गत घटनाओं का यथार्थ और सूक्ष्म अध्ययन करने के लिए अनेक समाजशास्त्रियों, अपराधशास्त्रियों और मानवशास्त्रियों ने सहभागी अवलोकन विधि का व्यापक रूप से उपयोग किया है। वास्तविकता यह है कि अनेक सामाजिक घटनाएं ऐसी होती हैं जिनका सहभागी अवलोकन के द्वारा ही अध्ययन किया जा सकता है किसी समूह के विश्वासों, रीति–रिवाजों, मजदूर संघों की कार्य–प्रणाली, नेतृत्व की प्रकृति, धार्मिक संगठनों की कार्य विधि, अपराधी व्यवहारों तथा व्यावसायिक

संगठनों का अध्ययन करने के लिए यह विधि प्रयोग में लाई जाती है। विभिन्न क्षेत्रों में इसके महत्व व विशेषताओं को निम्नांकित रूप में समझा जा सकता है–

टिप्पणी

1. इसके अंतर्गत अवलोकनकर्ता अध्ययन समूह का एक अस्थाई सदस्य बनकर उसके विभिन्न क्रियाकलापों में भाग लेकर उनसे संबंधित सभी प्रकार की घटनाओं और परिस्थितियों का प्रत्यक्ष अध्ययन कर सकता है।
2. सहभागी अवलोकन द्वारा अध्ययन समूह के सभी व्यवहारों का वास्तविक रूप में अध्ययन करना संभव हो पाता है।
3. सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता अधिक प्रभावित और विश्वसनीय तथ्य एकत्र करने में सफल हो पाता है क्योंकि वह स्वयं उन्हें देखता है और उनकी विवेचना करता है।
4. सहभागी अवलोकन में एक समूह के जीवन और क्रियाकलापों का गहन अध्ययन किया जा सकता है।
5. इस विधि द्वारा आवश्यकता पड़ने पर कभी भी संग्रहीत किए गए तथ्यों का पुनर्परीक्षण किया जा सकता है।
6. सहभागी अवलोकनकर्ता अध्ययन समूह का सदस्य होने के कारण अधिक सुविधापूर्वक अध्ययन करता है क्योंकि उसे बार–बार अध्ययन क्षेत्र में जाना नहीं पड़ता।
7. इस विधि में केवल घटनाओं का ही अवलोकन नहीं किया जाता अपितु घटनाओं की वास्तविकताओं को जानने के लिए समूह के सदस्यों से बातचीत भी की जाती है। इस प्रकार यह विधि जन औपचारिक साक्षात्कार तथा अवलोकन दोनों विधि का एक सम्मिश्रण है।
8. किसी भी समूह के सामाजिक तथा आर्थिक संबंधों की संरचना तथा प्रकार्यों की जटिलताओं का अध्ययन करने कि लिए सहभागी अवलोकन उत्तम विधि है।
9. यह विधि अवलोकनकर्ता को समूह की भावनाओं, विचारों तथा व्यवहारों के पीछे छिपे हुए भावों को जानने के लिए आवश्यक सूक्ष्म दृष्टि प्रदान करती है।

सहभागी अवलोकन की सीमाएं अथवा दोष

सहभागी अवलोकन विधि के जहां कुछ गुण हैं, वहीं इसके कुछ स्पष्ट अवगुण, दोष अथवा सीमाएं भी हैं। सैद्धांतिक तौर पर यह विधि जितनी सरल प्रतीत होती है व्यवहार में यह विधि उतनी सरल नहीं होती है। अतः इसका प्रयोग सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। इस प्रविधि की सीमाएं अथवा दोषों को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है–

1. **वस्तुपरकता की कमी**–इसमें अध्ययनकर्ता को अध्ययन समूह का सक्रिय सदस्य बनना होता है। इस कारण समूह के प्रति अध्ययनकर्ता की घनिष्ठता तथा भावना विकसित होने के कारण उसमें समूह के प्रति अत्यधिक लगाव होने की संभावना रहती है। हालांकि यह लगाव की भावना कई बार अध्ययनकर्ता को घटनाओं की वास्तविकता को जानने तथा इन्हें संकलित करने से वंचित कर देती है।

टिप्पणी

2. **पूर्ण सहभागिता संभव नहीं**—व्यावहारिक रूप से किसी भी अध्ययनकर्ता द्वारा किसी नये समूह के जीवन में पूरी तरह घुलना—मिलना संभव नहीं होता। इसमें अध्ययनकर्ता में थोड़ा—बहुत बनावटीपन आ जाता है। इससे उसकी वास्तविकता को कभी भी पहचाना जा सकता है। उदाहरण के लिए आदिवासियों

समूह के व्यक्ति अवलोकनकर्ता को अपना मुखिया मान लें अथवा प्रत्येक मामले में उसकी सलाह मानें तो समूह के व्यवहारों में परिवर्तन आने की पूरी संभावना रहती है।

8. **आलेखन की समस्या**—सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता घटनाओं को देखने के बाद उन्हें तुरंत नहीं लिख सकता, क्योंकि इससे समूह में उसे संदेह की दृष्टि से देखा जा सकता है। यदि आलेखन का कार्य कुछ समय बाद एकांत में किया जाए तो संभव है कि अवलोकनकर्ता सभी घटनाओं को पूरी तरह याद न रख सके।
9. **समुचित प्रतिनिधित्व की कमी**—इस प्रविधि का एक महत्वपूर्ण दोष यह है कि अवलोकनकर्ता जिस समूह का सदस्य बनता है उसका संपर्क उस समूह के कुछ विशेष व्यक्तियों तक ही सीमित रहता है। ऐसी स्थिति में उसे उन सदस्यों द्वारा जो सूचना मिलती है, उन्हीं के आधार पर वह संपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत करता है। इन सूचनाओं और तथ्यों की वास्तविकता का परीक्षण करना मुश्किल होता है।

रेमंड फर्थ ने लघु अवधि के लिए सहभागिता अवलोकन में निम्न सीमाओं का उल्लेख किया है—

- संपूर्ण अर्थ के बोध का अभाव।
- अस्थायी अर्थ के बोध का अभाव।
- अभिनति दशाओं को सामान्य दशा समझने का भ्रम।
- आत्मीय सूचनादाताओं को अधिक महत्व देने से उत्पन्न अभिनति।
- अध्ययनकर्ता की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि से उत्पन्न अभिनति।
- अध्ययनकर्ता द्वारा तथ्यों के चयन की प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न अभिनति।

सहभागी अवलोकन के उपर्युक्त गुणों और दोषों से स्पष्ट होता है कि यह एक अत्यंत वैयक्तिक विधि है। एक व्यक्ति इसके द्वारा न तो पूर्णतः विश्वसनीय तथा वस्तुपरक तथ्य प्राप्त कर सकता है और न ही कोई अध्ययनकर्ता एक ही घटना के अपने अवलोकन द्वारा सामान्य परिणाम प्राप्त कर सकता है। केवल सहभागी अवलोकन भी तभी उपयोगी बन सकता है, जब अनुसंधानकर्ता कुशल, अनुभवी तथा प्रशिक्षित हो। यह विधि अन्वेषणात्मक अनुसंधान हेतु उपयोगी अवधारणाओं तथा उपकल्पनाओं को विकसित करने के लिए उपयोग में लाई जाती है।

4.2.3 नृवंशविज्ञान पद्धति

नृवंशविज्ञान (मानव जाति विज्ञान) संबंधी अनुसंधान विभिन्न राष्ट्रीय तथा विदेशी संस्कृतियों पर अपना ध्यान केंद्रित करता है जिससे कि वह उन मूल निवासियों को समझ सके जो संस्कृति से कट गए हैं। इस प्रकार का अनुसंधान करने वाली एक प्रसिद्ध मानव विज्ञानी थी मार्गरेट मीड। तीन न्यू गिनिया संस्कृतियों पर उनके प्रसिद्ध अध्ययन ने उन संस्कृतियों के लिंग संबंधी विशेषताओं और भूमिकाओं पर महत्वपूर्ण जानकारी दी। विभिन्न सांस्कृतिक मानकों, लिंग की विशिष्टताओं और भूमिकाओं पर अध्ययन करने से, इस प्रकार के अनुसंधान से वैज्ञानिकों को प्रकृति बनाम पोषित लिंग संबंधी विशेषताओं को वर्गीकृत करने में सहायता मिली। अनेक मानव जाति विज्ञान

संबंधी अध्ययनों ने उन सांस्कृतिक भूमिकाओं को दस्तावेज का रूप दिया है जो जन्मजात लिंग संबंधी विशेषताओं के पश्चिमी पहलुओं को चुनौती देते हैं।

टिप्पणी

मानव जाति विज्ञान संबंधी अनुसंधान की विशेषताएं

मानव जाति विज्ञान संबंधी अनुसंधान के उद्देश्यों तथा तरीकों पर पहले जो कुछ कहा गया है, उसके आधार पर इस प्रकार के अनुसंधान की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं—

1. मानव जाति विज्ञान संबंधी अनुसंधान मौलिक रूप से मानव विज्ञान से जुड़ा है अर्थात उसकी मदद से ही यह किसी संस्कृति की व्याख्या करता है। अनुसंधानकर्ताओं द्वारा व्यवहारवादी विज्ञानों में इसका प्रयोग किसी संस्कृति की खोज और व्याख्या के लिए किया जाता है। 'संस्कृति' शब्द से हमारा अर्थ आम तौर पर लोगों के रहन—सहन और विवाह के तौर तरीकों से, उनकी उत्पत्ति के मूल तथा उनके द्वारा अपनाए जाने वाले मूल्यों और परंपराओं से लगाया जाता है। मानव विज्ञान संबंधी अनुसंधान में, अनुसंधानकर्ता उस समूह के विभिन्न पहलुओं, मानकों और मूल्यों पर गौर करते हैं जो उनके अध्ययन के अंतर्गत होता है।
2. मानव जाति विज्ञान संबंधी अनुसंधान का लक्ष्य स्वाभाविक रूप से प्रकट होने वाले मानव व्यवहार को उसके सामाजिक संदर्भ में प्रत्यक्ष रूप से देख—समझकर जानना होता है। यही कारण है कि यह स्वाभाविक परिवेश में किया जाता है— जैसे एक क्लासरूम, एक स्कूल, एक कॉलेज या स्वाभाविक रूप से दिखने वाला व्यक्तियों का जमावड़ा (जैसे जनजातीय समुदाय, बाजार, व्यावसायिक प्रतिष्ठान)। परिस्थिति पर किसी भी प्रकार के चर, उत्प्रेरणा या बाहरी ढांचे को थोपा नहीं जाता है। इस प्रकार, मानव विज्ञान संबंधी अनुसंधान को फील्ड रिसर्च कहा जाता है, जिसमें 'फील्ड' यानी 'क्षेत्र' का अर्थ उस स्वाभाविक माहौल से लगाया जाता है जिसमें अनुसंधान किया जा रहा है। (विर्सम एंड जूर्स, 2005:244)
3. मानव जाति विज्ञान की एक प्रमुख विशेषता किसी सामाजिक घटना के विषय में पूछताछ या खोज आधारित अध्ययन है, न कि इसमें स्पष्ट परिकल्पना की जांच की जाती है।
4. पारंपरिक रूप से, मानव जाति विज्ञान आदिम लोगों या जनजातियों की सांस्कृतिक विशेषता के अध्ययन से जुड़ा था। हालांकि, आजकल इसका प्रयोग विभिन्न समूहों, संगठनों और सभी प्रकार के समुदायों के लोगों के व्यवहार तथा जीवनशैली के अध्ययन के लिए किया जाता है। इस परिवर्तन के फलस्वरूप, ग्राहक और उपभोक्ता वस्तुओं, किसी भी मानवीय क्षेत्र को इसमें शामिल किया जाता है।
5. मानव जाति विज्ञान संबंधी अनुसंधान प्रमुख रूप से एक गुणात्मक अनुसंधान है, इस कारण, यह अपने उद्देश्य, पद्धति तथा लागू करने के तरीके में मात्रात्मक अनुसंधान से काफी अलग होता है।
   (क) इस प्रकार के अनुसंधान का उद्देश्य अध्ययन के अंतर्गत आने वाले लोगों के किसी समूह की संस्कृति तथा जीवनशैली की व्याख्या जीवंत रूप में करना होता है या संभव हो तो उनके स्वाभाविक और सामाजिक संदर्भ में

टिप्पणी

तस्वीर पेश करना होता है। यहां उद्देश्य कारणों और परिणामों की व्याख्या करना नहीं, बल्कि 'ज्यों का त्यों बताना' होता है जिससे कि इसकी कड़वी सच्चाई से परिचय हो सके।

(ख) मानव जाति विज्ञान संबंधी अनुसंधान से प्राप्त निष्कर्षों का उद्देश्य अन्य व्याख्यात्मक, मानक सर्वे या प्रयोगात्मक सर्वे की तरह सामान्यीकरण का पता लगाना नहीं होता है। उनका प्रमुख उद्देश्य जांच के अंतर्गत आने वाली घटना की 'ठोस व्याख्या' या 'सजीव' चित्रण करना होता है। इससे हमें किसी विशेष प्रकार के लोगों के विशेष किस्म के व्यवहार की व्याख्या में मदद मिलती है जो एक जैसे संदर्भ और परिस्थिति में रहते हैं।

(ग) मात्रात्मक अनुसंधान के उलट, इसमें अनुसंधानकर्ता (अधिकांशतया अकेले ही) स्वाभाविक माहौल में देखे गए व्यवहार की व्याख्या और निचोड़ (सार) निकालने का काम प्रमुखता से करता है। यही कारण है कि मानव विज्ञान संबंधी अनुसंधान को अक्सर एक 'स्वाभाविक जांच' कहा जाता है जो किसी सोद्देश्य प्रयास के समान नहीं होता जिसमें पूर्वनिर्धारित मान्यता या पहले से तैयार अनुसंधान परिकल्पना को स्थापित किया जाता है।

(घ) मानव विज्ञान संबंधी अनुसंधान की पद्धतियां अनुसंधानकर्ताओं को किसी विशेष सामाजिक समूह द्वारा 'जीये गए अनुभव' में ले जाती हैं तथा उन्हें उसके सदस्यों के समान ही सोच–विचार करने का अवसर देती हैं। मानव विज्ञान संबंधी अनुसंधानकर्ताओं में नृवंशविज्ञान की वह अनिवार्य दक्षता होनी चाहिए जिससे कि वे संबंधित लोगों के वास्तविक जीवन में झांक सकें और उनकी कार्यशैली को समझ सकें। उन्हें उन लोगों की तरह ही सोचना और उनके जीवन में डूबना पड़ता है जिनका अध्ययन वे कर रहे होते हैं। अनुसंधान के विषय से इतनी निकटता ने असल में सबसे वैध गुणात्मक आंकड़े पेश किए हैं जो पहले किसी अन्य अनुसंधान में संभव नहीं थे।

6. मानव विज्ञान संबंधी अनुसंधानकर्ता मात्रात्मक तथा गुणात्मक दोनों ही प्रकार के आंकड़ों का प्रयोग करते हैं, जिसके फलस्वरूप, परिस्थिति तथा आवश्यकता के अनुसार यह देखा जा सकता है कि वे किन–किन तकनीकों और पद्धतियों का प्रयोग कर आंकड़े जुटाते हैं।

7. अपने सामान्य प्रारूप में, लगभग सभी मानव विज्ञान संबंधी अनुसंधानकर्ता तीन प्रमुख प्रकार की तकनीकों से आंकड़े जुटाते हैं– (अ) गहन साक्षात्कार, (ब) प्रत्यक्ष अवलोकन और (स) लिखित दस्तावेज। आंकड़े जुटाने की इन तकनीकों के प्रयोग का एकमात्र उद्देश्य अनुसंधानकर्ता द्वारा 'वह कहानी' सुनाना है जो उनके द्वारा अनुसंधान किए जा रहे विषय से जुड़े ज्ञान और सूचनाओं के समृद्ध भंडार पर आधारित होती है।

मानव जाति विज्ञान संबंधी अनुसंधान के चरण

मानव जाति विज्ञान संबंधी अनुसंधान किसी घटना के संबंध में उसी जगह की जाने वाली एक संपूर्ण जांच और पूछताछ है जिसमें अनुसंधानकर्ता के पास उपलब्ध सारे

टिप्पणी

संसाधनों, पद्धति तथा तकनीकों (गुणात्मक तथा मात्रात्मक) का प्रयोग किया जाता है जिससे किसी समूह या जनजाति से जुड़ी कुछ अनोखी बातों का पता बिना किसी पूर्वधारणा या अनुमान के लगाया जाता है। इसके द्वारा पूर्ण होने वाले उद्देश्य को देखते हुए, मानव जाति विज्ञान संबंधी अनुसंधान में एक एकीकृत प्रक्रिया की पद्धति का प्रयोग किया जाता है। फलस्वरूप, मानव जाति विज्ञान संबंधी अनुसंधान में, हम अक्सर देखते हैं कि विभिन्न चरणों और स्तरों पर की जाने वाली गतिविधियां दोहराई जाती हैं। हालांकि, विभिन्न चरणों का अक्सर एक आरंभिक बिंदु होता है तथा अंतिम निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद अध्ययन समाप्त हो जाता है। इस सफर को तय करने के दौरान, विभिन्न प्रकार के पड़ावों और स्तरों को कमोबेश नीचे किए गए वर्णन के अनुसार पूरा किया जाता है–

चरण 1 – अध्ययन की जाने वाली घटना (समस्या) की पहचान

मानव जाति विज्ञान संबंधी अनुसंधान में, अनुसंधान के प्रश्न उसी स्थान पर तथा सामने आने वाली परिस्थिति के अनुसार तय किए जाते हैं, अर्थात विषयों की जांच उनकी संपूर्ण जटिलता, स्वाभाविक परिस्थिति में की जाती है। इस कारण, यह न तो वांछित होता है और न ही संभव होता है कि उस समस्या की पहचान और व्याख्या उस प्रकार संक्षेप और निश्चित रूप में की जाए जैसा कि अक्सर व्याख्यात्मक और प्रयोगात्मक अनुसंधानों में किया जाता है। इस कारण, अनेक मामलों में, मानव जाति विज्ञान संबंधी अनुसंधान करने वाले अनुसंधानकर्ता किसी समूह या जनजाति के बीच बिना किसी पूर्व धारणा या प्रश्नावली के शामिल हो जाते हैं। हालांकि, जैसा कि पहले कहा गया है, किसी भी खोज या मात्रा का एक आरंभिक बिंदु अवश्य होता है। परिणामतः, किसी मानव जाति विज्ञान संबंधी अनुसंधान की शुरुआत मन में कुछ प्रश्नों के साथ हो सकती है, साथ ही इतना लचीलापन भी रखा जाता है कि शोध के दौरान किसी दुविधा की स्थिति में परिस्थिति की मांग के अनुसार उसमें परिवर्तन किया जाए। उदाहरण के तौर पर, किसी मानव जाति के विज्ञान संबंधी अनुसंधान की शुरुआत में कुछ इस प्रकार के प्रश्नों से शुरुआत हो सकती है जैसे–'विभिन्न जातियों वाले जातीयता से पूर्ण गांव के उच्च विद्यालय में किस प्रकार का सामाजिक मेलमिलाप हो सकता है?' अनुसंधान के लिए इस प्रकार के प्रश्न से अनुसंधानकर्ता को अपने अध्ययन के लिए एक निश्चित दिशा मिल सकती है। वह अपने आप अपने अनुसंधान के प्रश्नों के उत्तर तलाशने के लिए योजना तैयार कर उचित मानव जाति विज्ञान संबंधी पद्धति को अपना सकता है।

चरण 2 – साहित्य की समीक्षा

इस स्तर पर, अनुसंधानकर्ता अपना पूरा ध्यान सभी प्रासंगिक साहित्य और पूर्व के अध्ययनों पर केंद्रित कर सकता है जो उसके विषय/अध्ययन क्षेत्र से संबंधित हो। इससे उसे अपनी आवश्यक योजना, तैयारी, कार्यान्वयन और अपने अध्ययन से निष्कर्ष निकालने का मार्ग मिल सकता है। उदाहरण के लिए, ऊपर वर्णित विषय के संदर्भ में, साहित्य के अवलोकन से इन बातों की जानकारी मिल सकती है (1) सामाजिक मेलजोल शब्द के अर्थ और प्रकृति के संबंध में, (2) जातिवाद से भरे समाज की बुराई/नकारात्मक प्रभावों के संबंध में, (3) किसी विशेष इलाके/क्षेत्र के ग्रामीण स्कूलों के नाम और पते तथा (4) समान विषयों पर अनुसंधान करने वाले विद्वानों के कार्य।

चरण 3 – नमूना चुनने के विषय में निर्णय (विषयों की पहचान)

प्रत्येक अनुसंधान कार्य को विषयों या सहभागियों की आवश्यकता पड़ती है जिससे अध्ययन के लिए जरूरी आंकड़ों और सूचना को इकट्ठा किया जाए। यही बात मानव जाति विज्ञान संबंधी अनुसंधान पर भी लागू होती है। यहां भी, किसी अनुसंधानकर्ता को किसी विषय या अनुसंधान की जाने वाली आबादी के सदस्यों से संपर्क करना पड़ता है जिससे उसे गुणात्मक और मात्रात्मक आंकड़े मिल सकें और वह अपने अनुसंधान के लिए उपयुक्त सैंपल चुन सके। हालांकि, सांख्यिकीय रूप से बात करें तो यादृच्छिकरण (व्याख्यात्मक और प्रयोगात्मक अध्ययनों के लिए अधिक लोकप्रिय) जैसा नमूना चुनने की तकनीक मानव जाति विज्ञान संबंधी अध्ययनों की प्रकृति के अनुरूप नहीं होती है। मानव जाति संबंधी अनुसंधान में नमूना चुनने की प्रक्रिया पूर्ण रूप से पुनरावर्ती और तदर्थ होती है न कि पहले से ही तय होती है। यह समय के साथ परिवर्तित होती है। इस विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए पैटन (1987:184) ने लिखा कि– "गुणात्मक अनुसंधान (मानव जाति विज्ञान संबंधी अनुसंधान सहित) में नमूने के आकार को लेकर कोई नियम नहीं होता, क्योंकि नमूने का आकार इस पर निर्भर करता है कि व्यक्ति क्या जानना चाहता है, अनुसंधान का उद्देश्य क्या है, क्या उपयोगी और विश्वसनीय होगा और संसाधन जैसे– समय, पैसा, लोग, सहयोग के अनुसार नए अनुसंधानकर्ता के लिए क्या करना सही होगा।"

इस कारण, यादृच्छिक सोद्देश्य नमूना विधि, स्तरीकृत उद्देश्यपूर्ण नमूने, अवसरवादी नमूना, स्नो वॉल सैंपलिंग, प्रतिष्ठा मामले नमूना, सुविधा नमूने, प्राथमिक और द्वितीयक सूचनाएं व्यवहारवादी विज्ञानों में मानव जाति संबंधी अध्ययनों के लिए आवश्यक होते हैं।

चरण 4 – समूह में शामिल होना तथा अपनी भूमिका बताना

अपने अध्ययन के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए, किसी भी मानव विज्ञान संबंधी अनुसंधानकर्ता को उस समूह, वर्ग, संगठन या जनजाति में प्रवेश का उपाय ढूंढ़ना पड़ता है जिसका वह अध्ययन करना चाहता है। अपने अनुसंधान के लिए आवश्यक आंकड़े जुटाने के लिए उसे उस आबादी से संपर्क बनाने या उसमें प्रवेश पाने में मुश्किलों का सामना करना पड़ सकता है। यदि आपको कोई मानव विज्ञान संबंधी अध्ययन के लिए किसी जाति–भेद से पूर्ण गांव के स्कूल में, जम्मू कश्मीर के सीमावर्ती इलाके में आतंकवादी गतिविधियों में शामिल जिहादी संगठन या उड़ीसा बस्तर (मध्य प्रदेश) के जनजातीय इलाके में सक्रिय नक्सली समूह में प्रवेश पाना हो तो आप कठिनाई का अंदाजा लगा सकते हैं। संपर्क स्थापित कर प्रवेश पाना और कठोर सच्चाई में अपने आपको डुबोकर जानकारी जुटाना आसान काम नहीं है। कभी–कभी, किसी समूह में किसी मध्यस्थ या गेटकीपर के माध्यम से प्रवेश मिल जाता है जो उस समूह के करीब है और जो समूह को अनुसंधानकर्ता की मंशा के बारे में आश्वस्त कर सकता है। किसी अन्य अवसर पर, अनुसंधानकर्ता अपने कौशल से किसी समूह तक अपनी पहुंच बना सकते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कोई निश्चित नियम नहीं हैं। ऐसा करने के उतने ही तरीके हैं जितने कि मानव विज्ञान संबंधी अनुसंधान करने के हैं। अपने अनुसंधान के विषय तक पहुंच बनाने के लिए किसी को भी अपने दिमाग का इस्तेमाल करना पड़ता है। ऐसा करते समय, किसी को भी अपना रूप धरने (अपनी पहचान जाहिर न कर उनके समूह का हिस्सा बनना) या खुले रूप में (समूह में शामिल होने की वजह उन्हें बताकर या

उनसे समूह में शामिल होने की अनुमति मांगने लेकिन अध्ययन का उद्देश्य न बताना) अनुसंधान करने का काम सोच विचार कर करना चाहिए। दोनों ही मामलों में, किसी को भी उस समूह में शामिल होने का कोई कारण तो सोचना ही होगा।

टिप्पणी

चरण 5 – क्षेत्र में संबंधों को बनाना और उन्हें निभाना

जांच के अंतर्गत आने वाले समूह से संपर्क बनाने या प्रवेश पाने के बाद, अगला कदम अध्ययन किए जाने वाले लोगों से आवश्यक संबंध बनाने का होता है जिससे कि आवश्यक सूचना जुटाई जा सके। संबंधों को बनाने और उन्हें निभाने का यह कार्य पूरे अध्ययन के दौरान चलता रहता है तथा क्षेत्र से निकल जाने के बाद भी जारी रहता है। ऐसा करने के लिए, अनुसंधानकर्ता को परिस्थिति के अनुसार कार्य करना होता है। कभी–कभी, उसे 'स्वीकार्य अक्षम' की भूमिका निभानी पड़ती है, अर्थात अनजान की तरह व्यवहार करना पड़ता है जिससे कि समूह के सदस्य उसे बातें बताने के लिए विवश हो जाएं। वह उनकी संस्कृति या जीवन शैली की सराहना करने का कोई अवसर नहीं चूकता है (मैकनील और चैपमैन, 2005:111)। अन्य अवसरों पर, जैसा कि ब्रूअर (2000:85) ने बताया, अनुसंधानकर्ता लोगों की भाषा, जीवन शैली को सीखकर, उनके जैसा खाना खाकर, और उनके जैसी ही बोली बोलकर उनका विश्वास जीतते हैं। हालांकि, विश्वास जीतने में समय लगता है और इस कारण, अनुसंधानकर्ताओं को क्षेत्र में पर्याप्त समय बिताना चाहिए जिससे कि लोगों को उसकी उपस्थिति की आदत पड़ जाए।

चरण 6 – आंकड़े जुटाना

उसे जिस समूह का अध्ययन करना है, उसका विश्वास जीत लेने के बाद, अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन के उद्देश्य की पूर्ति के लिए उचित सूचना जुटाने पर ध्यान केंद्रित करता है। एक मानव विज्ञान संबंधी अनुसंधानकर्ता सूचना जुटाने के लिए विभिन्न प्रकार की तकनीकों का प्रयोग करना जानता है। ऐसा कोई एक उपाय नहीं जिससे आंकड़े जुटाने के लिए आवश्यक उपकरण को निश्चित किया जा सके, बल्कि ऐसा 'उद्देश्य हेतु उपयुक्तता' से तय किया जाता है। यही नहीं, मानव जाति विज्ञान संबंधी अनुसंधान में आंकड़े जुटाने हेतु मात्रात्मक पद्धति के प्रयोग की भी बाध्यता नहीं है।

4.2.4 इंटरव्यू गाइड

मानव जीवन संबंधी अनुसंधान में सारे आंकड़े सहभागी अवलोकन से नहीं जुटाए जा सकते हैं। अवलोकन के द्वारा जुटाई गई सूचना के समर्थन में या उसे अस्वीकृत करने के लिए प्रमुख व्यक्तियों, प्राथमिक मुखबिरों (जासूसों) और अन्य सारे परोक्ष सूचना देने वालों/सहभागियों के इंटरव्यू किए जा सकते हैं। इंटरव्यू के तरीके की बात करें तो यह खुला और अनौपचारिक या संरचनात्मक हो सकता है। यह परिस्थिति तथा अध्ययन पर निर्भर करता है। हालांकि, मानव विज्ञान संबंधी अध्ययन में, इंटरव्यू लेने का कार्य इतना सरल नहीं होता, क्योंकि यह 'पूर्ण विवरण' और 'सजीव चित्रण' के लिए आंकड़े जुटाने का लक्ष्य रखता है। इस लिहाज से, जहां प्रभावी रूप से इंटरव्यू लेना संभव नहीं होता, उसके लिए कुछ उपयोगी दिशानिर्देश हैं। इन दिशानिर्देशों के अंतर्गत कुछ कारगर सुझावों की चर्चा इस प्रकार है–

1. मानव विज्ञान संबंधी अनुसंधान में सूचना जुटाने के उद्देश्य से इंटरव्यू लेने के लिए अनुसंधानकर्ता में पर्याप्त कौशल और दक्षता होनी चाहिए। उत्तर देने वालों

से प्रासंगिक सूचना निकलवाने के लिए इंटरव्यू लेने वाले को इंटरव्यू का तरीका सीखना चाहिए और उसका अभ्यास करना चाहिए।

2. अपने अध्ययन के उद्देश्य को अपनी इंटरव्यू तकनीक का प्रमुख पथप्रदर्शक बनाइए।
3. परिस्थिति के अनुसार सबसे उचित इंटरव्यू के तरीके को अपनाएं।
4. उत्तर देने वालों से मिलने वाली सूचना की प्रकृति का एक पक्का अनुमान लगाएं।
5. उत्तर देने वालों को यह बताकर सहज और निश्ंचित करें कि उन्हें पूर्ण सुरक्षा मिलेगी और उनके द्वारा दी गई जानकारी गुप्त रखी जाएगी।
6. उत्तर देने वालों से प्रश्न करने के सबसे अच्छे तरीके (सभी अनुमानित और अप्रिय बातों को संज्ञान में रखते हुए प्रश्न करने का उपयुक्त तरीका) को चुनें जिससे कि अनुसंधान के लिए उपयोगी आंकड़े मिल सकें।
7. उत्तर देने वालों को उत्तर देने के लिए पर्याप्त समय और स्वतंत्रता दें जिससे कि वे स्वाभाविक तरीके से सूचना दे सकें।
8. उत्तर देने वालों की प्रतिक्रिया को सुनने और समझने के लिए चौकस रहें।
9. उत्तर देने वालों के इंटरव्यू लेते समय एक गहन प्रेक्षक बनें। उनके व्यवहार संबंधी उत्तर के तरीके और लहजे, प्रतिक्रियाओं और हाव–भाव से अर्थ निकालने के लिए उचित नोट्स बनाएं।
10. कोई टिप्पणी न करें न ही आलोचनात्मक बातें कहें। आपका उद्देश्य सूचना निकालना है न कि उत्तर देने वाले के विषय में फैसला सुनाना।
11. इंटरव्यू के आगे बढ़ने के साथ ही उत्तर देने वाले की प्रतिक्रिया को दर्ज करने की उचित व्यवस्था करें।
12. इंटरव्यू की त्रुटियों और कमियों को दूर करने के लिए एक संपूर्ण जांच करने का प्रयास करें।
13. सदैव विनम्र और दयालु रहें तथा यह दिखाएं कि आप उत्तर देने वाले के प्रति आभारी हैं।

4.2.5 केस अध्ययन पद्धति

केस अध्ययन पद्धति (विधि) (Case Study) के स्वरूप को निम्न बिंदुओं के अंतर्गत विस्तृत रूप से समझा जा सकता है–

केस अध्ययन पद्धति की परिभाषा एवं स्वरूप

यह ऐसी पद्धति है जिसमें किसी सामाजिक इकाई के जीवन की घटनाओं का अन्वेषण एवं विश्लेषण किया जाता है। सामाजिक इकाई के रूप में किसी एक व्यक्ति, एक परिवार, एक संस्था, एक समुदाय, घटना, नीति, संगठन आदि को लिया जा सकता है। केस अध्ययन पद्धति में जो केस होता है उससे तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया या घटना से है जिसका एक आबद्ध संदर्भ होता है अर्थात केस में सम्मिलित की गयी घटना या इकाई की अपनी सीमाएं होती हैं।

इसी अर्थ में पी. वी. यंग ने केस अध्ययन विधि को इस प्रकार परिभाषित किया है– "केस अध्ययन एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा सामाजिक इकाई की जीवनी का अन्वेषण तथा विश्लेषण किया जा सकता है।"

गुडे तथा हाट्ट के मत में यह एक ऐसी विधि है जिसके सहारे किसी भी सामाजिक इकाई का अध्ययन पूर्णरूपेण किया जाता है। दूसरे शब्दों में, इस विधि में किसी सामाजिक इकाई जो एक व्यक्ति हो सकता है या कोई अन्य सामाजिक समूह भी हो सकता है, के एकात्मक स्वरूप को मूल रूप में रखते हुए उसका अध्ययन किया जाता है। गुडे तथा हाट्ट ने केस अध्ययन विधि को इस प्रकार परिभाषित किया है– "केस अध्ययन सामाजिक आंकड़ों को संगठित करने का एक तरीका है ताकि अध्ययन किए जाने वाले सामाजिक विषय के एकात्मक स्वरूप को बनाकर रखा जा सके। थोड़े भिन्न ढंग से इसकी अभिव्यक्ति करते हुए यह कहा जा सकता है कि यह एक ऐसा उपागम है जिसमें किसी भी सामाजिक इकाई को पूर्णरूपेण ढंग से देखा जाता है। करीब–करीब हमेशा ही इस उपागम में इकाई एक व्यक्ति, एक परिवार या अन्य सामाजिक समूह प्रक्रियाओं या संबंधों का एक सेट या संपूर्ण संस्कृति भी हो सकता है, का विकास सम्मिलित होता है।"

इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हमें केस अध्ययन विधि के अग्रलिखित तथ्यों का पता चलता है–

1. केस अध्ययन विधि में किसी सामाजिक इकाई की विकासात्मक घटनाओं का अध्ययन किया जाता है।
2. सामाजिक इकाई (social unit) के रूप में एक व्यक्ति विशेष का भी अध्ययन किया जा सकता है या अन्य सामाजिक समूह (social group) जैसे, परिवार या किसी संस्कृति (culture) का भी अध्ययन किया जाता है।
3. केस अध्ययन विधि का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि इसमें सामाजिक इकाई (social unit) के एकात्मक स्वरूप (unitary character) को टूटने नहीं दिया जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि अध्ययन हेतु चयनित सामाजिक इकाई का अध्ययन संपूर्ण रूप से करने की कोशिश की जाती है।
4. केस अध्ययन विधि में अध्ययन के लिए चयनित सामाजिक इकाई के 'क्या' तथा 'क्यों' दोनों पक्षों का अध्ययन किया जाता है।

केस अध्ययन विधि के प्रकार

केस अध्ययन विधि में शोधकर्ता किसी स्वतंत्र चर (independent variable) में जोड़–तोड़ कर उसके प्रभाव का अध्ययन नहीं करता है बल्कि वह सिर्फ उस पक्ष का अवलोकन करता है जो वर्तमान समय या बीते हुए समय में उपस्थित रहकर अध्ययन किए जाने वाली सामाजिक इकाई (social unit) में परिवर्तन लाता है। व्यवहारपरक वैज्ञानिकों ने केस अध्ययन के मुख्य दो प्रकार बताए हैं, जो निम्नांकित हैं–

(क) अपसरित केस विश्लेषण, तथा

(ख) पृथक नैदानिक केस विश्लेषण।

(क) **अपसरित केस विश्लेषण**– केस अध्ययन के इस प्रकार में शोधकर्ता (researcher) एक ही साथ दो ऐसे केसेज को लेता है जिसमें काफी समानता होते हुए भी

भिन्नता होती है। जैसे, अनुसंधानकर्ता यदि एक एकांडी जुड़वा युग्म (one identical twin pair) जिसमें से एक सामान्य है तथा दूसरा मनोविदालिता (schizophrenia) से ग्रसित है, का अध्ययन करता है तो यह अपसरित केस विश्लेषण का एक अच्छा उदाहरण होगा। इस उदाहरण में दोनों बच्चे चूंकि एकांडी जुड़वा (identical twin) हैं, इसलिए उनमें काफी अधिक समानता है परंतु फिर भी इन दोनों में भिन्नता है– एक मानसिक रोग से ग्रसित है तथा दूसरा सामान्य है। शोधकर्ता इन दोनों बच्चों का तुलनात्मक अध्ययन करके इस निष्कर्ष पर पहुंचने का प्रयास करेगा कि वे कौन–कौन कारक हैं जिनके कारण इन दोनों एकांडी जुड़वा बच्चों में इस तरह की भिन्नता हुई। इस तरह का केस विश्लेषण वारविक एवं ओशरसन द्वारा काफी किया गया है।

(ख) **पृथक नैदानिक केस विश्लेषण**– इस प्रकार के केस विश्लेषण विधि में शोधकर्ता वैयक्तिक इकाइयों का विश्लेषण उसके विश्लेषणात्मक समस्याओं के आलोक में करता है। इस ढंग के केस अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा किसी व्यक्ति के बीते हुए दिनों के घटनाचक्रों का विस्तृत विश्लेषण किया जाता है और उसके आधार पर एक अंतिम नतीजे पर पहुंचा जाता है। इस विधि का प्रयोग मनोविश्लेषण में सर्वाधिक होता है। फ्रायड ने मानव आत्मिक अनुक्रिया सिद्धांत का प्रतिपादन अनेक पृथक नैदानिक केसेज के विश्लेषण से उत्पन्न तथ्यों के आधार पर किया है। अभी हाल में विक्सेन (Wixen, 1973) ने एक अध्ययन पृथक नैदानिक केस विश्लेषण द्वारा किया जिसमें 'ब्रीवर' (Brewer) नामक एक बच्चा जो एक काफी धनी माता–पिता की संतान था, का विश्लेषण किया गया। इस अध्ययन के आधार पर विक्सेन धनी परिवार के बच्चों की विशिष्ट समस्याओं से अवगत हुए और उन समस्याओं के समाधान करने के संभावित एवं उपयुक्त उपायों की भी खोज की।

केस अध्ययन विधि (Case Study Method) के दोनों प्रकार काफी लोकप्रिय हैं। अंतर इतना ही है कि पृथक नैदानिक केस विश्लेषण का प्रयोग नैदानिक परिस्थितियों में अधिक होता है जबकि अपसरित केस विश्लेषण का प्रयोग सामान्य अवस्थाओं में अधिक होता है।

स्टेक (Stake, 1994) ने भी अपने ही द्वारा की गयी समीक्षा के आधार पर बताया है कि केस अध्ययन विधि में चूंकि कई प्रकार के केस होते हैं, अतः केस अध्ययन भी कई तरह के हो सकते हैं। उन्होंने निम्नांकित तीन तरह के केस अध्ययन का वर्णन किया है–

(क) **आंतरिक केस अध्ययन**– यह ऐसा केस अध्ययन होता है जहां अनुसंधानकर्ता इसलिए अध्ययन प्रारंभ करता है क्योंकि वह लक्षित केस के बारे में गहराई से जानना चाहता है।

(ख) **साधनात्मक केस अध्ययन**– यह ऐसा केस अध्ययन होता है जहां अनुसंधानकर्ता किसी विशेष केस का अध्ययन इसलिए करता है क्योंकि उससे समस्या को समझने में विशेष सूझ उत्पन्न होती है या किसी सिद्धांत को परिष्कृत करने में मदद मिलती है।

(ग) **सामूहिक केस अध्ययन**– यह एक ऐसा केस अध्ययन होता है जहां शोधकर्ता साधनात्मक केस अध्ययन का विस्तार कई केसेज का अध्ययन करने के लिए

करता है तथा जिसमें घटना, सामान्य अवस्था तथा जीव संख्या के बारे में अधिक कुछ सीखने का प्रयास किया जाता है।

केस अध्ययन विधि की प्रमुख विशेषताएं

केस अध्ययन विधि की निम्नांकित चार प्रमुख विशेषताएं होती हैं–

1. **केस अध्ययन एक सीमाबद्ध विधि होती है**– केस अध्ययन एक सीमाबद्ध विधि होती है क्योंकि इसमें जिस केस का विश्लेषण किया जाता है। उसकी सीमाएं होती हैं। यिन (Yin, 1984) के अनुसार संदर्भ (context) तथा केस (case) के बीच की सीमा हमेशा स्पष्ट नहीं होती है परंतु इस सीमा की वास्तविकता निश्चित रूप से होती है। शोधकर्ता विशेष प्रयास करके केस की सीमा की पहचान करता है तथा उसका वर्णन करता है।
2. **केस अध्ययन में केस किसी विषय (संदर्भ) का होता है**– केस अध्ययन में शोधकर्ता को यह पहचान करना होता है कि केस किस विषय (संदर्भ) का केस है। इससे उसे विश्लेषण की इकाई के बारे में निर्धारण करने में सुविधा होती है।
3. **केस अध्ययन में केस की संपूर्णता तथा अखंडता को संरक्षित रखने का प्रयास किया जाता है**– केस अध्ययन के एक केस की संपूर्णता तथा उसकी अखंडता को बनाकर रखते हुए उसका अध्ययन किया जाता है। चूंकि अनुसंधानकर्ता यह जानता है कि एक ही केस के प्रत्येक चीज का अध्ययन संभव नहीं है, इसलिए वह केस के कुछ पहलुओं पर विशिष्ट ध्यान इस प्रकार देता है कि उसकी अखंडता पर कोई आंच न आए।
4. **केस अध्ययन में विविध आंकड़ों के स्रोतों तथा उन्हें संग्रह करने की विधियों का उपयोग किया जाता है**– विशेषकर स्वाभाविक परिस्थितियों में किए जाने वाले केस अध्ययन में आंकड़े के भिन्न–भिन्न स्रोतों तथा आंकड़े संग्रह की भिन्न–भिन्न विधियों का उपयोग होता है। बहुत से केस अध्ययनों में प्रेक्षण, साक्षात्कार, शाब्दिक रिपोर्ट आदि द्वारा आंकड़े संग्रह किए जा सकते हैं। प्रश्नावली तथा संख्यात्मक आंकड़ों (numerical data) का भी उपयोग किया जा सकता है।

केस अध्ययन विधि के लाभ एवं दोष

केस अध्ययन विधि का प्रयोग मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में अधिक किया जाता है। इस विधि के कतिपय लाभ हैं तो इसमें कुछ नुकसान भी पाए गए हैं। इनका वर्णन निम्नांकित हैं–

- **लाभ**

1. केस अध्ययन विधि में दो विभिन्न केसेज को लेकर उनका तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।
2. केस अध्ययन विधि द्वारा अध्ययन के लिए चयन किए गए केस का गहन रूप से अध्ययन संभव है क्योंकि इसमें एक समय में किसी एक केस या सामाजिक इकाई का ही अध्ययन किया जा सकता है।

3. केस अध्ययन विधि द्वारा किसी प्राक्कल्पना (hypothesis) के निर्माण में काफी सहायता मिलती है।
4. केस अध्ययन विधि एक ऐसी विधि है जिससे प्राप्त तथ्यों के आधार पर भविष्य में किए जाने वाले अध्ययनों में उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों को पहले से ही आंका जा सकता है तथा उसे दूर करने के उपायों का वर्णन किया जा सकता है।
5. इस विधि में चूंकि सामाजिक इकाई का गहन अध्ययन किया जाता है, इसलिए इसमें संबंधित इकाई के व्यावहारिक पैटर्न को पूर्णरूप से समझने में मदद मिलती है।
6. यह विधि सामाजिक इकाई के स्वाभाविक इतिहास के बारे में जानने में मदद करने के साथ–ही–साथ उसका संबंध परिवेश के अन्य सामाजिक कारकों से भी स्थापित करने में मदद करता है।
7. केस अध्ययन विधि में शोधकर्ता द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर संबंधित कार्य के लिए प्रश्नावली या अनुसूची (schedules) बनाने में मदद मिलती है।
8. परिस्थिति की जरूरत के अनुरूप इस विधि में शोधकर्ता केस अध्ययन विधि में कई अनुसंधान प्रविधियों का उपयोग आसानी से कर लेता है।
9. केस अध्ययन विधि से शोधकर्ता की अनुभूतियां मजबूत होती है और इससे फिर उनमें परिस्थिति को समझने एवं विश्लेषण करने की क्षमता और भी अधिक तीक्ष्ण होती है।
10. केस अध्ययन विधि में चिकित्सीय एवं प्रशासनिक उद्देश्यों को अति महत्वपूर्ण समझा जाता है।

- **दोष**

1. केस अध्ययन विधि में आत्मनिष्ठता अधिक पाई जाती है जिसका प्रतिकूल प्रभाव अध्ययन के निष्कर्ष पर पड़ता है। इस विधि में शोधकर्ता तथा अध्ययन के लिए चुनी गई सामाजिक इकाई में अधिक घनिष्ठता तथा सौहार्द स्थापित हो जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि शोधकर्ता सामाजिक इकाई से प्राप्त तथ्य का सही–सही वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन नहीं कर पाता है।
2. केस अध्ययन विधि में शोधकर्ता में निश्चितता का मिथ्या भाव उत्पन्न हो जाता है। अनुसंधानकर्ता अपने निष्कर्ष के बारे में इतना आश्वस्त हो जाता है कि वह अपने अध्ययन में सम्मिलित केसेज को प्रतिनिधि मानकर एक खास तरह के परिणाम के बारे में पूर्णतः निश्चित हो जाता है।
3. केस अध्ययन विधि में शोधकर्ता पर पूर्ण जवाबदेही इस बात की भी दी जाती है कि वह किसी सामाजिक इकाई जैसे व्यक्ति या परिवार का इतिहास तैयार करे। ऐसा करने के लिए वह काफी प्रयास कर सामाजिक इकाई के बारे में बहुत सारी सूचनाओं की तैयारी करता है तथा उनका विश्लेषण करता है।
4. केस अध्ययन विधि द्वारा अध्ययन में समय काफी लगता है। शोधकर्ता को प्रत्येक केस के बारे में विस्तृत रूप से सूचनाएं तैयार करनी होती हैं।

टिप्पणी

5. केस अध्ययन विधि में चूंकि शोधकर्ता व्यक्ति से उसकी गत अनुभूतियों एवं घटनाओं के बारे में पूछकर एक इतिहास तैयार करता है (जिसका बाद में विश्लेषण कर किसी निष्कर्ष पर पहुंचा जाता है)। अतः इस बात की संभावना काफी अधिक बनी हुई रहती है कि व्यक्ति अपनी गत अनुभूतियों का विशेषकर उन अनुभूतियों का जो काफी समय पहले घटित घटनाओं पर आधारित हैं, ठीक–ठीक नहीं बता पाए। ऐसी परिस्थिति में इस विधि द्वारा प्राप्त सूचनाएं बहुत अर्थपूर्ण नहीं रह जाती।
6. केस अध्ययन विधि में शोधकर्ता किसी एक केस का अध्ययन कर निश्चित निष्कर्ष पर पहुंच जाना चाहता है। अक्सर देखा गया है कि मात्र किसी एक केस के अध्ययन के आधार पर लिया गया निष्कर्ष सही नहीं होता है।
7. केस अध्ययन में कई शोध पूर्वकल्पनाओं पर आधारित होते हैं जो कभी–कभी वास्तविकता की कसौटी पर सही नहीं उतरते हैं। परिणामस्वरूप केस अध्ययन विधि से प्राप्त आंकड़े हमेशा संदेह के घेरे में होते हैं।
8. केस अध्ययन का उपयोग सीमित क्षेत्र में होता है। इसे बड़े समूह या समाज के अध्ययन के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता है। इस विधि में निदर्शन का भी उपयोग संभव नहीं है।
9. केस अध्ययन विधि से प्राप्त आंकड़े संदूषित हो सकते हैं क्योंकि इसमें प्रयोज्य वही कहता है या लिखता है जो शोधकर्ता चाहता है।

केस अध्ययन विधि के दोष निवारक उपाय

केस अध्ययन विधि के दोषों को निम्न प्रकार से दूर किया जा सकता है–

1. कुछ वैज्ञानिकों जिनमें एरोन्सन (Aronson, 1980), गुडे तथा हाट्ट प्रमुख हैं, का मत है कि शोधकर्ता को इस विधि द्वारा अध्ययन करने में एक निदर्शन का निष्पक्ष चयन कर लेना चाहिए न कि सिर्फ किसी एक केस का गहन अध्ययन कर अपने आपको संतुष्ट कर लेना चाहिए। ऐसा करने से केस अध्ययन विधि की अधिकतर शिकायतें अपने आप दूर हो जाएंगी। जैसे, उपयुक्त निदर्शन के चयन के बाद अनुसंधानकर्ता द्वारा गलत निर्णय पर पहुंचने की संभावना समाप्त हो जाएगी। उसके द्वारा सूचना भी अधिक वैध एवं विश्वसनीय होगी।
2. शोधकर्ता को चाहिए कि केस अध्ययन विधि में जब वह एक निदर्शन का चयन कर रहा है, तो निदर्शन जीवन संख्या का सही–सही प्रतिनिधित्व करता हो। किसी निदर्शन में जब प्रतिनिधित्व का गुण बढ़ता है, तो उससे प्राप्त आंकड़ों की विश्वसनीयता तथा वैधता में भी वृद्धि होती है।
3. यदि शोधकर्ता केस अध्ययन विधि से प्राप्त आंकड़ों का एक वस्तुनिष्ठ कोडिंग करता है, तो इससे सूचनाओं में किसी तरह के हेर–फेर करने की संभावना समाप्त हो जाती है। तब उसका उचित सांख्यिकीय विश्लेषण भी आसानी से हो पाता है।
4. केस अध्ययन विधि को उन्नत बनाने का एक तरीका यह भी है कि शोधकर्ता जो इस विधि द्वारा अध्ययन करने वाला है, को विशिष्ट रूप से प्रशिक्षित किया जाए।

प्रशिक्षित अनुसंधानकर्ता के होने पर निश्चित रूप से इस विधि से प्राप्त आंकड़ों की विश्वसनीयता तथा वैधता काफी बढ़ जाएगी।

4.2.6 सामग्री विश्लेषण

कार्टराइट (1970) ने सामग्री विश्लेषण (Content Analysis) और (Coding) पारिभाषिक शब्दों को अदला–बदली के रूप में प्रयोग किया है, जैसे दोनों प्रक्रियाएं किसी भी सांकेतिक व्यवहार के, व्यवस्थित उद्देश्य, और मात्रात्मक विवरण को शामिल करती हैं। जबकि, सामग्री विश्लेषण वर्गीकरण, मूल्यांकन और संचार या दस्तावेज की सामग्री की तुलना के साथ सम्बद्ध है, यह कभी–कभी 'वृत्तचित्र गतिविधि' या 'सूचना विश्लेषण' के रूप में जाना जाता है। संचार एक खुली प्रश्नावली प्रतिक्रियाओं, साक्षात्कार के परिणामस्वरुप बातचीत, या फिर देखी गई गतिविधियों के विवरण के रूप में हो सकता है। यह सरकारी रिकॉर्ड (जनगणना, जन्म, दुर्घटना, अपराध, स्कूल, संस्थागत और व्यक्तिगत रिकॉर्ड) न्यायिक निर्णयों, कानून, बजट और वित्तीय रिकॉर्ड, संचयी रिकॉर्ड, अध्ययन के पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों, संदर्भ शब्द, समाचारपत्र–पत्रिकाओं या पत्रिकाओं की सामग्री, विभिन्न शिक्षण संस्थानों या विश्वविद्यालयों, आदि की विवरण पुस्तिका, प्रत्यक्ष निविदायें, और एक साक्षात्कार के नोट के रूप में भी हो सकता है।

सामग्री विश्लेषण के चरण

इस संक्रिया से संबंधित कुछ मुद्दों के साथ–साथ इस प्रक्रिया में निम्नलिखित चरण शामिल रहे हैं–

(i) विश्लेषण की इकाई को परिभाषित करना

सामग्री को एक शब्द, वाक्यांश, पूरा वाक्य, अनुच्छेद या फिर भारी मात्रा में सामग्रियों जैसे आर्टिकल्स और किताबों तक में सीमित किया जा सकता है। इनमें से किसी एक को इकाई के रूप में देखा जा सकता है, उनके निर्दिष्टित गुणों को विश्लेषित और निर्धारित किया जा सकता है। हेमैन (1968) ने सुझाव दिया कि इकाई काफी विस्तृत होनी चाहिए जिससे कि कम–से–कम कुछ सामग्रियों द्वारा ही अर्थ का पता चल जाये, लेकिन इतनी छोटी भी नहीं कि जिससे इसके प्रयोग में विषयी तत्वों की गुंजाइश ना रहे।

(ii) चर राशियों और श्रेणियों को विश्लेषित करना

एक बार जब इकाई परिभाषित कर दी जाती है, तब अनुसंधानकर्ता इसकी विश्लेषण व्यवस्था करता है जिससे कि विशिष्ट समूह से परे प्रतीकात्मक सामग्री का विश्लेषित वैज्ञानिक व्यवहार और सामान्यीकरण के लिए पुनरुत्पादनीय और वस्तुनिष्ठ डाटा उत्पन्न होता है। प्रतीकात्मक सामग्री को वस्तुनिष्ठ डाटा में परिणत करने के लिए 'चर' को स्पष्ट रूप से जिसके अनुसार वर्णन किया जाना है को निर्दिष्ट करना आवश्यक है। चर राशियों को कभी–कभी 'आयामों' या 'गुणों के प्रकारों' के रूप में भी उल्लिखित किया जाता है। ऐसी चर राशियों (Variables) के कुछ उदाहरण हैं– शब्दों की संख्या, व्यक्तिक सर्वनाम का प्रतिशत, निजीकरण के प्रति मनोभाव, शिक्षकों की आकर्षक विशेषतायें, एक दोस्त में विश्वास का स्तर, इत्यादि। कुछ चर राशियों के चयन के बाद, अर्थात मित्र में विश्वास का स्तर, बहुत सारे रास्ते हैं जिससे कि यह चर राशि श्रेणियों में विखंडित हो सकती हैं जैसे– (i) अयोग्य आत्मविश्वास, (ii) योग्य आत्मविश्वास, (iii)

समान रूप से संतुलित विश्वास और अविश्वास, (iv) योग्य अविश्वास, (v) अयोग्य अविश्वास, (vi) साक्षात्कारकर्ता द्वारा प्रश्नों का न पूछा जाना, (vii) प्रश्न पूछे गए परन्तु उत्तर ऊपर दी गयी श्रेणियों के अनुसार वर्गीकृत करने योग्य नहीं थे। इन्हीं चर राशि की श्रेणियों का दूसरा वर्गीकरण हो सकता है– (i) उच्च (ii) निम्न (iii) किसी में वर्गीकृत नहीं करने लायक। यह कहा जा सकता है कि एक ही सामग्री कोड के लिए दो अलग–अलग व्यक्ति हो सकते हैं, एक प्रथम श्रेणी समूह का उपयोग कर रहा होता है और दूसरा द्वितीय श्रेणी का, तब वे एक ही सामग्री का विभिन्न प्रकार से विवरण कर रहे होंगे। अतः प्रत्येक चर के साथ प्रयोग की गयी श्रेणियों की व्यवस्था का स्पष्ट विनिर्देश प्रतिलिपि प्रस्तुत करना योग्य विश्लेषण के लिए आवश्यक है।

(iii) आवृत्ति, दिशा और प्रगाढ़ता

एक बार जब इकाई परिभाषित कर दी जाती है और चर राशियां उनकी श्रेणियों के साथ निर्दिष्ट करने के लिए नियोजित की जाती हैं तब, विश्लेषक इकाइयों का वर्गीकरण करते हैं और आवृत्ति, दिशा और प्रगाढ़ता के अनुसार सामग्री का विश्लेषण किया जाता है।

आवृत्ति के लिए, विश्लेषक केवल उन्हीं इकाइयों की संख्या गिनते हैं जो उनकी श्रेणी में आती हैं। Cartwright (1970) इसे 'गणन की इकाई' के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इसके लिए 'गणन की इकाई' तथा 'अभिलेखित इकाई' समान हों यह आवश्यक नहीं है। लेकिन जब विश्लेषक केवल अभिलेखित इकाइयों की संख्या गिनते हैं जिसको वो एक निश्चित वर्गीकरण में पाते हैं तो अभिलेखित इकाई बिल्कुल गणन इकाई के रूप में ही होती है। उदाहरण के लिए, सार्वजनिक भाषण का एक अर्थशास्त्री द्वारा विश्लेषण, कई बार 'उच्च शिक्षा का निजीकरण' सरकार की किसी निश्चित नीति के 'तर्क' के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। इस मामले में, एक 'तर्क' को अभिलेख इकाई और गणन इकाई दोनों ही रूपों में लिया जाता है। एक दूसरे उदाहरण में, माना कि एक विश्लेषक 'उच्च शिक्षा के निजीकरण' पर इसके पक्ष या विपक्ष में एक सम्पादकीय का विश्लेषण करता है। मात्रा का ठहराव (क्वांटिफिकेशन) के उद्देश्यों के लिए, वह पूरे सम्पादकीय के कॉलम इंचों को गिनते हैं. इस मामले में, एक कॉलम इंच गणन की इकाई होगी जबकि पूर्ण रूप में सम्पादकीय अभिलेख इकाई कहलायेगा और इसीलिए दो इकाइयां समान नहीं हैं।

कुछ विशेष परिस्थिति में, यह इकाइयों की दिशा और प्रगाढ़ता के अनुसार वर्गीकरण में उपयोगी होता है। निर्देशन संदर्भित करता है कि संदर्भ अनुकूल, प्रतिकूल, या तटस्थ था। यह सुखद–अप्रिय, रोचक–शुष्क, और भयसूचक या निर्भयसूचक हो सकता है। तीव्रता इकाइयों के विश्लेषण में भावनात्मक प्रभाव दर्शाता है। क्या यह बड़ा है या छोटा और किस दिशा में है? निर्णय लिया जाता है कि केवल आवृत्ति की गिनती दिशा और तीव्रता से अधिक व्यक्तिपरक है।

(iv) आकस्मिकता विश्लेषण

आकस्मिकता विश्लेषण संदर्भ (Content) के भीतर जो इकाई पायी जाती है इसको ध्यान में रखते हुए लक्ष्य करता है। एक अनुसंधानकर्ता को शेष संचार के प्रकाश में एकल इकाई के पक्ष और विपक्ष पर विचार करना चाहिए ताकि इसका असली अर्थ खो न जाए।

(v) नमूने का चयन

सामग्री विश्लेषण में बड़ी और व्यावहारिक समस्याओं में से एक है नमूने का चयन। वह इकाई जिसका विश्लेषण एक अनुसंधानकर्ता करता है, जिससे वो संबंधित है, उसे कुल सामग्री का द्योतक होना चाहिए जिससे कि परिणाम का सामान्यीकरण किया जा सके। जाहिर है एक अनुसंधानकर्ता एक विशिष्ट सामग्री के विश्लेषण का दायित्व डाटा की व्यापकता के बारे में कुछ भेद खोलने के क्रम के लिए लेता है, बजाय कि सिर्फ उन प्रतीकात्मक सामग्री के जिसके साथ उसका सरोकार होता है।

(vi) सामग्री विश्लेषण रूपरेखा की तैयारी

सन्तुष्टिजनक सामग्री विश्लेषण की रूपरेखा तक पहुंचने के लिए निम्नलिखित छह चरणों की आवश्यकता होती है–

चरण 1. आवश्यक डाटा का उल्लेख करना : एक संतोषजनक विश्लेषण की रूपरेखा बनाने में एक अनुसंधानकर्ता को स्पष्ट रूप से डाटा निर्दिष्ट करना चाहिए जो कुल अनुसंधान के डिजाइन के लिए आवश्यक है, जिससे कि लम्बी दूरी तय करने में उसे कम परेशानियों का सामना करना पड़े। अंतिम सूचि की योजना बनाने के लिए आवश्यक डाटा के विनिर्देश काफी मददगार होते हैं जिसका उपयोग अनुसंधानकर्ता सामग्री विश्लेषण के बाद के चरणों में कर सकता है।

चरण 2. सारणीकरण के लिए योजना बनाना : एक अनुसंधानकर्ता बहुत सारी समस्याओं से बच सकता है अगर वह कोडेड डाटा के सारणीकरण के लिए स्पष्ट योजना बनाता है तो उन्हें पहले से अच्छी तरह यह निर्णय ले लेना चाहिए कि कोडेड डाटा का सारणीकरण कंप्यूटर द्वारा होगा या हस्तलिपि में।

चरण 3. रूपरेखा का ढांचा तैयार करना : जिस क्रम के अनुसार डाटा का कोडिंग किया जाना है अनुसंधानकर्ता उसे चर राशियों की सूची में रखता है। उदाहरण के लिए, अगर अध्ययन साक्षात्कार के विश्लेषण से संबंधित है, तो ये चर राशियां न केवल प्रतिवादी की मनोवैज्ञानिक बनावट के बारे में प्रश्न–उत्तर की विभिन्न विशेषताओं का वर्गीकरण करने में प्रयोग होंगी, बल्कि उसकी उम्र, योग्यता, आय, वैवाहिक स्थिति, और अन्य जनसांख्यिकीय एवं व्यावहारिक गुणों के मामले में भी प्रयुक्त होंगी, चर राशियों के सूचीकरण को रूपरेखा में भी शामिल किया जाना, अनुसंधानकर्ता को यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि जरूरी सारी सूचनाएं कंप्यूटर में/Microsoft Excel Sheet में रख दी गई हैं। एक रूपरेखा में अध्ययन के नाम की कोडिंग करने के उपाय, प्रत्येक गणन इकाई की संख्या (साक्षात्कार, पत्रिका या अखबार का मुद्दा इत्यादि), कोडिंग करने वाले का नाम तथा उससे संबंधित अन्य सहायक सूचनायें होनी चाहिए।

चरण 4. प्रत्येक चर राशि को श्रेणियों में रखें : एक अनुसंधानकर्ता को वर्गीकरण का प्रयोग करना चाहिए जो परस्पर विशेष श्रेणियों के साथ पूरी तरह से हो। इसकी श्रेणियां आपस में विशेष होती हैं, यदि उस श्रेणियों की प्रणाली के अंदर एक यूनिट रखने का एक और केवल एक ही स्थान हो। सभी श्रेणियों को एक ढांचे में परिभाषित करने के बाद श्रेणियों के परिचालन की परिभाषाओं को निर्देश की एक नियमावली के साथ तैयार किया जाना चाहिए।

चरण 5. एकीकृत सामग्री को स्थापित करने की प्रक्रिया : एक अनुसंधानकर्ता के लिए सामग्री के एकीकरण करने की एक प्रक्रिया स्थापित करना नितांत आवश्यक है। विशिष्ट काम की परिभाषाएं जो सामग्री विश्लेषण में प्रयोग किया जानी हैं, उनका इस तरह सूत्रीकरण किया जाना चाहिए कि भिन्न–भिन्न कोडर उस सामग्री का एक ही तरीके से प्रयोग कर सकें। इन परिभाषाओं को कोडिंग निर्देशों के भाग के रूप में लिखा जाना चाहिए।

चरण 6. रूपरेखा का विश्लेषण और एकीकरण की प्रक्रिया की पूर्व परीक्षाः सामग्री के नमूने की रूपरेखा का विश्लेषण और प्रक्रिया के एकीकरण की एक पूर्व परीक्षा करनी चाहिए जिससे खोज के क्रम में क्या–क्या संअनुसंधाननों की जरुरत है? यह पता चल सके। इन कोडिंग प्रक्रियाओं का पता करना एक प्रशिक्षण की तरह उनके लिए प्रयोग किया जाता है जिन्हें अंतिम कोडिंग में शामिल किया जाना है।

कोडर्स का चयन और प्रशिक्षण

कोडर्स एक संवेदनशील व्यक्ति तथा सांकेतिक सामग्रियों से अच्छी तरह परिचित होना चाहिए। उसे अर्थ के बहुत मामूली अंतर को भी पता लगाने में सक्षम होना चाहिए लेकिन वैसे अंतरों को नजरअंदाज भी करना चाहिए जो किसी विशेष उद्देश्य के लिए कोई अंतर नहीं बनाता हो। दूसरे शब्दों में, वह विश्लेषण रूपरेखा द्वारा अपेक्षित बुद्धिमतापूर्वक श्रेणियों का उपयोग करने में सक्षम होने चाहिए। ज्यादातर मनो–सामाजिक अनुसंधान में, इसका मतलब यह है कि कोडर को सामाजिक मनोविज्ञान से कुछ हद तक परिचित होना चाहिए। अगर रूपरेखा के विश्लेषण की आवश्यकता होती है या प्रारूपी श्रेणियों या प्रतिदिन के अध्ययन में उपयोगी परिभाषित श्रेणियों के प्रयोग की तो, कोडर एक साधारण व्यक्ति से बहुत बुद्धिमान होना चाहिए।

एक पूर्ण विकसित रूपरेखा का सफल और अर्थपूर्ण उपयोग एक कुशल कोडर पर निर्भर करता है और उसकी रूपरेखा में प्रभावशाली ट्रेनिंग अच्छी देखरेख में हुई हो ताकि कोडिंग की एक बेहतर प्रक्रिया का अनुकरण किया जा सके। अगर सामग्री बड़ी है, तो कोडिंग की प्रक्रिया पुनरावृत्ति विश्लेषण के प्रयोग से रूपरेखा की सामग्री शामिल की जाती है। यह समान संचालन परिभाषा की श्रेणियों की मांग करता है जैसे एक ही ढांचे का निर्देश एक ही डिग्री का अंतर इत्यादि, इससे समूची कोडिंग समान संचालन के अंतर्गत होती है। ऐसे मामलों में वह आदमी जो पुनरावृत्ति वाले काम की सरलता (आसानी) से संतुष्ट है, उसका कोडर के रूप में चयन नहीं करना चाहिए।

एक कुशल कोडर के चयन के बाद उन्हें रूपरेखा के विश्लेषण का उपयोग करने के लिए दक्ष करना आवश्यक है जिससे कि उनके पास प्रोजेक्ट के उद्देश्य की पूरी समझ आ जाये।

कोडिंग के अंतिम पड़ाव में कोडर नई चर राशियों को रूपरेखा की श्रेणियों में जोड़ सकता है, यदि वह पाता है कि रिकार्डिंग यूनिट में वह श्रेणी नहीं है। हालांकि, नई श्रेणियों को जोड़ने की क्षमता, निर्धारण द्वारा आंकी जानी चाहिए, कि वह नई श्रेणी, प्रणाली की श्रेणियों के औचित्य के अंतर्गत अर्थपूर्ण होगी। समय–समय पर कोडर के बीच विचार–विमर्श करना भी जरूरी है, यह सुनिश्चित करने के लिए कि सन्दर्भ के ढांचे और श्रेणियों की संचालन परिभाषा को समूची कोडिंग अवधि तक बनाए रखा जा सके।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. इंटरव्यू, अवलोकन, पत्राचार, डायरी, ऑडियो–वीडियो रिकॉर्डिंग एवं फीडबैक फार्म किस प्रकार के अनुसंधान से संबद्ध तकनीकें हैं?

   (क) मात्रात्मक अनुसंधान (ख) गुणात्मक अनुसंधान

   (ग) उपर्युक्त दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं

2. मात्रात्मक एवं गुणात्मक शोध में अंतर का प्रमुख आधार है–

   (क) दर्शन, लक्ष्य (ख) फोकस, पद्धति

   (ग) उपर्युक्त दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं

4.3 मौखिक इतिहास का विवरणात्मक विश्लेषण

विवरणात्मक विश्लेषण का तात्पर्य विभिन्न विश्लेषणात्मक उपागमों से है। किंतु इनमें न केवल विषय–सामग्री का बल्कि सामाजिक संदर्भ के भी एक प्रयोजन समेत कुछ खास धारणाएं होती हैं, जिनमें विवरण प्रस्तुत किए जाते हैं। विवरण कौन, किसे, कब और किस अभिप्राय से प्रस्तुत करता है? विवरण पर किसका प्रभाव है? इन विभिन्न उपागमों से इस बात का पता लगाया जाता है कि लोग कहानियां किस प्रकार सुनाते हैं और सुनाते हुए अपने जीवन के विवरणात्मक वृत्तांत किस प्रकार प्रस्तुत करते हैं।

'तथ्यात्मक' सूचना संग्रह पर ध्यान केंद्रित करने के अतिरिक्त, विवरणात्मक विश्लेषण का संबंध विवरणों के संग्रह और विषय–सामग्री (सत्य अथवा कल्पित) तथा अस्मिता की सामाजिक संरचना में विवरणों की भूमिका से भी होता है।

मौखिक इतिहास का विवरणात्मक विश्लेषण

मौखिक इतिहास में कुछ सीमा तक विवरणात्मक विश्लेषण का उपयोग किया जाता है, जिसका लक्ष्य यह पता लगाना होता है कि अतीत में जीवन कैसा था। वहीं, इसका लक्ष्य उन पुराने लोगों के संस्मरण ग्रहण कर उन्हें सहेज लेना भी है, जो आज भी जीवित हैं। मौखिक इतिहासों की संरचना विशेष रूप से लोगों के अनुभवों के आदान–प्रदान से की जाती है, जो समाज के स्वभाव पर प्रकाश डालते हैं। ज्यादातर मौखिक इतिहासों में विभिन्न दृष्टिकोणों को स्वीकार करते तथा घटनाओं की स्मृतियों को और उन घटनाओं का लोगों के लिए जो अर्थ था उसे बचाए रखते हुए एक सच्चे इतिहास को प्राथमिकता दी जाती है : उदाहरण के लिए, सन् 1850 के आसपास डबलिन में कामगार वर्ग का होना कैसा रहा होगा, प्रथम विश्वयुद्ध की खाइयों में किसी अनधिकृत पदाधिकारी सन् 1960 के दशक में टोटेनहैम हॉट्सपर के किसी समर्थक की स्थिति कैसी रही होगी। इस प्रकार, 'पौराणिक' कथाओं की स्मृतियां होते हुए भी विषय–सामग्री को प्राथमिकता दी जाती है। मौखिक इतिहास का विवरणों की संरचना के विश्लेषण से कोई गहरा संबंध नहीं है।

मौखिक इतिहासकारों में पोर्टेली के कार्य का एक विशिष्ट स्थान है, जिसमें एक ऐसे उपागम का सहारा लिया गया है, जो विवरणों के समकालीन विश्लेषकों के बहुत करीब है। पोर्टेली का कहना था कि मौखिक इतिहास में घटनाओं के अर्थ की तुलना

टिप्पणी

में उनका उल्लेख कम है और उनका मानना था कि मौखिक इतिहास साक्ष्य का एक व्यक्तिगत, व्यक्तिपरक रूप है। उनकी दृष्टि में मौखिक स्रोतों की क्षमता यह है कि वे अज्ञात घटनाओं अथवा ज्ञात घटनाओं के अज्ञात तत्वों को उजागर कर सकते हैं। मौखिक इतिहास हमें केवल यह नहीं बताता लोग क्या करते थे, बल्कि वे क्या करना चाहते थे, वे जो करते थे उसके प्रति क्या सोचते थे, वे अब क्या सोचते हैं कि वे क्या करते थे– इसका महत्व हो सकता है तथ्य के प्रति उसके लगाव में निहित न हो, किंतु कल्पना के रूप में इससे उसके विलगाव की स्थिति में प्रतीकात्मकता, और कामना उभरती हैं– व्यक्तिपरकता अपेक्षाकृत अधिक गोचर 'तथ्यों' की तरह ही इतिहास का मामला है। पोर्टेली का कहना था कि जहां सत्यापन आवश्यक है, वहीं कपोल कल्पनाएं (फैब्रिकेशन्स) और अशुद्ध कथाएं एक अंतर्निहित अर्थ का प्रतिपादन करती हैं और ऐतिहासिक लेख के लिए वह भी महत्वपूर्ण होता है।

मौखिक इतिहास के स्रोत विवरणात्मक स्रोत होते हैं। इसलिए मौखिक इतिहास की सामग्री के विश्लेषण में विवरणात्मक सिद्धांत द्वारा साहित्य व लोकसाहित्य में विकसित सामान्य पदों का लाभ लेना ही चाहिए। यह स्वतंत्र साक्षात्कारों में प्रस्तुत परिसाक्ष्य के प्रति भी उतना ही सत्य है जितना कि लोकसाहित्य का अति औपचारिक ढंग से संयोजित सामग्री के प्रति। उदाहरण के लिए, कुछ विवरणों में विवरण की 'गति' में, अर्थात, वर्णित घटनाओं की समयावधि और विवरण की समयावधि के बीच अनुपात में, पर्याप्त अंतर होते हैं। किसी सूचना में कुछ शब्दों में अनुभवों की पुनर्गणना हो सकती है, जो लंबे समय तक चले हों, अथवा जिन पर संक्षिप्त आख्यानों में विस्तार से विचार किया जाए। असमंजस की ये स्थितियां महत्वपूर्ण हैं, हालांकि हम व्याख्या की कोई आम कसौटी कायम नहीं कर सकते : किसी आख्यान पर सोचना उसके महत्व पर जोर देने का एक तरीका हो सकता है, किंतु यह अन्य संवेदनशील तथ्यों से ध्यान हटाने की एक नीति भी हो सकती है। सभी स्थितियों में, विवरण प्रस्तुत करने वाले के विवरण और अर्थ के बीच एक संबंध है। यही बात जेरार्ड जेनेट के विस्तृत विवरणों के अन्य पदों, जैसे 'अंतर' और 'परिप्रेक्ष्य', के बारे में भी कही जा सकती है, जो विवरण प्रस्तुत करने वालों की कहानी या विवरण के प्रति मनःस्थिति की व्याख्या करते हैं–

कमजोर वर्गों से प्राप्त मौखिक स्रोत लोक विवरण (लोक श्रुति) की परंपरा से जुड़े होते हैं। इस परंपरा में विवरण शैलियों के बीच अंतर शिक्षित वर्गों की लिखित परंपरा से भिन्न होते हैं। यह बात 'तथ्यात्मक' और 'कल्पित' विवरणों के बीच, 'घटनाओं' और भावना अथवा कल्पना के बीच व्यापक अंतर के प्रति सत्य है। हालांकि किसी वृत्तांत का 'सत्य' के रूप में बोध श्रुति के प्रति उतना ही प्रासंगिक होता है, जितना कि निजी अनुभव और ऐतिहासिक स्मृति के प्रति, किंतु, ऐतिहासिक सूचना को हस्तांतरित करने की कोई नियत औपचारिक मौखिक शैली नहीं है; ऐतिहासिक, काव्यात्मक और विवरणात्मक आख्यान अकसर जटिलता से उलझ जाते हैं।

परिणामतः जिन विवरणों में कथावाचक के वृत्तांत के बाहर जो होता है और उसके भीतर जो घटित होता है उन दोनों के बीच सीमा, व्यक्ति के सरोकार और समूहों के सरोकार के बीच सीमा बनती है, वे प्रचलित लिखित शैलियों से अधिक भ्रांतिजनक हो सकते हैं, और ऐसे में व्यक्तिगत 'सत्य' और सामूहिक 'कल्पना' एक जैसे हो सकते हैं।

इन कारकों को रीतिबद्ध और शैलीगत कारकों के उपयोग से प्रकाश में लाया जा सकता है। रीतिबद्ध सामग्री (कहावतें, गीत, सूत्र और रूढ़ियां) के ज्यादा या कम व्यवहार से उस अंश को मापा जा सकता है, जिसमें किसी व्यक्तिगत आख्यान के भीतर कोई सामूहिक दृष्टिकोण हो। मानक भाषा और बोली के बीच ये अंतर अकसर आख्यान पर वाचकों के नियंत्रण का एक संकेत देते हैं।

किसी विशिष्ट आवर्ती संरचना में समग्र रूप से मानक भाषा का उपयोग किया जाता है, जबकि बोली वाचक की अपेक्षाकृत अधिक निजी सहभागिता अथवा सामूहिक स्मृति के विन्यास के साथ अंतर्वेशन अथवा एकल वृत्तांत में पनपती है। दूसरी तरफ, मानक भाषा किसी द्वंद्वात्मक आख्यान में उभर सकती है, जब वह लोक क्षेत्र जैसे समाज व राजनीति से अपेक्षाकृत अधिक घनिष्ठता से जुड़े विषयों से संबद्ध हो। पुनः, इसका अर्थ विप्रलंभ (विलगाव) का साभिप्राय मान, अथवा समाज व राजनीति में भागीदारी से शुरू अभिव्यक्ति के एक अपेक्षाकृत अधिक 'शिक्षित' स्वरूप की 'विजय' की एक प्रक्रिया हो सकता है– फिर, पारिभाषिक पदों का उपभाषाकरण (बोलीकरण) परंपरागत भाषा और उस शैली की जीवंतता का एक संकेत हो सकता है, जिसमें वाचकगण अपनी संस्कृति के भावात्मक परिसर को विस्तार देते हैं।

स्कॉट्स एंड आइरिश इन न्यूजीलैंड के अपने अनुसंधान (कीर्नी, 2016) में सेलीन कीर्नी ने भी मौखिक इतिहास के विवरणात्मक विश्लेषण उपागम की खोज की है, जिसमें उन्होंने लंबे कथानक प्रस्तुत किये हैं। वह इस बात पर जोर देती हैं कि यह न केवल प्रत्यर्थियों (रिस्पांडेंट्स) का स्वर नहीं है, जो इतिहास को अर्थ देता है बल्कि पाठकों की एक भूमिका भी है।

कुल मिलाकर, मौखिक इतिहास में कहानियों का कल्पनात्मक पक्ष से प्रत्यक्ष संबंध कम होता है, केवल उन कहानियों को छोड़कर जो किसी निर्दिष्ट गतिविधि अथवा अभिवृत्तियों के लिए कोई तर्काधार प्रदान करती हों। इसलिए इस संदर्भ में आख्यानात्मक विश्लेषण में आख्यान के स्वरूप से अधिक विषय–सामग्री पर ध्यान दिया जाता है (पोर्टेल्ली जैसे मामले को छोड़कर) और इतिहास की पुनर्रचना के लिए ऐतिहासिक अथवा पौराणिक या लोकसाहित्य से अधिक आंकड़ों की तलाश हो सकती है, जिसे मानवशास्त्र के क्षेत्र के रूप में देखा जाता है।

4.3.1 मौखिक इतिहास की कार्य पद्धति

मौखिक इतिहास लोगों, परिवारों, महत्वपूर्ण घटनाओं अथवा दैनिक जीवन से संबद्ध ऐतिहासिक जानकारियों का संग्रह और अध्ययन है, जिसमें सुव्यवस्थित साक्षात्कारों के ऑडियोटेपों, वीडियोटेपों अथवा प्रतिलेखनों का उपयोग किया जाता है। इन साक्षात्कारों का संचालन उन लोगों के साथ किया जाता है, जो अतीत की घटनाओं का हिस्सा रहे हों या उन्हें देखा हो और जिनके इन घटनाओं के संस्मरण तथा ग्रहणबोध का भावी पीढ़ियों के लिए एक श्रव्य अभिलेख के रूप में संजो कर रखा जाना चाहिए। भौतिक इतिहास विभिन्न दृष्टिकोणों से सूचना प्राप्त करने का प्रयास करता है और इनमें से अधिकांश लिखित स्रोतों में नहीं मिल सकते। मौखिक इतिहास इस प्रकार से संचित सूचना तथा इन विवरणों पर आधारित किसी लिखित सामग्री (प्रकाशित अथवा

अप्रकाशित) की सहायता भी लेता है, जो अकसर ग्रंथागारों और बड़े पुस्तकालयों में सुरक्षित रखी होती है।

टिप्पणी

मौखिक इतिहास से प्राप्त ज्ञान इस अर्थ में विशिष्ट होता है कि इसके मुख्य स्वरूप में प्रत्यर्थियों का अंतर्निहित दृष्टिकोण, विचार, मत और समझ होते हैं। इतिहास के अनुसंधान में मौखिक इतिहास एक अंतर्राष्ट्रीय गतिविधि का रूप ले चुका है। इसका आंशिक श्रेय सूचना तकनीकी के विकास को जाता है, जिसमें अनुसंधान में योगदान के लिए मौखिकता पर आधारित एक विधि की संभावना रहती है, विशेष रूप से विभिन्न लोक विन्यासों में निर्मित व्यक्तिगत साक्ष्यों का उपयोग। उदाहरण के लिए, मौखिक इतिहासकारों ने इंटरनेट पर विवरण तथा सूचना प्रकाशित करने की असीम संभावनाओं का पता लगाया है, जिससे आवश्यकता पड़ने पर वे विद्वानों, शिक्षकों और आम लोगों को तत्काल उपलब्ध हो जाते हैं। इसने मौखिक इतिहास की व्यवहार्यता को और मजबूत किया क्योंकि हस्तांतरण की नई विधियों से इतिहास को ग्रंथागारों के ताकों से मुक्ति मिली और उन्हें वृहत्तर समुदाय तक पहुंचने का अवसर मिला।

इतिहासकार, लोककथाकार, मानवविज्ञानी, मानव भूगोलवेत्ता, समाजविज्ञानी, पत्रकार, भाषाविज्ञानी और कई अन्य लोग अपने अनुसंधान में साक्षात्कार के किसी स्वरूप का उपयोग करते हैं। हालांकि बहुविषयक, मौखिक इतिहासकारों ने सामान्य आचारनीति और मानदंडों को बढ़ावा दिया है, किंतु प्रत्यर्थियों का ''यथार्थ सहमति'' लेना सर्वाधिक आवश्यक है। आम तौर पर इस ध्येय की पूर्ति भेंट विलेख (उपहार विलेख) से हो जाती है, और यह भी सर्वाधिकार सुनिश्चित करता है जो प्रकाशन और पुरालेखीय संरक्षण के लिए आवश्यक होता है।

मौखिक इतिहासकार खुले प्रश्न पूछना पसंद करते हैं और गंभीर प्रश्नों से बचते हैं। ये खुले प्रश्न लोगों को यह सोचने के लिए प्रेरित करते हैं कि प्रत्यर्थी उन्हें क्या कहना चाहते हैं। कुछ साक्षात्कार ''जीवन की समीक्षा'' होते हैं, जो लोगों से किए जाते हैं, जिनका जीवन वृत्त पूरा हो चुका होता है। अन्य साक्षात्कारों में लोगों के जीवन के किसी काल विशेष अथवा घटना विशेष पर ध्यान दिया जाता है, जैसे पुराने या सेवानिवृत्त सैनिकों या फिर किसी समुद्री तूफान के शिकार लोगों के मामले में।

फेल्ड्स्टीन मौखिक इतिहास को पत्रकारिता के समान मानते हैं, दोनों का कार्य सत्य को उजागर करना और लोगों, स्थानों और घटनाओं के वृत्तांतों का संचय करना है। फेल्ड्स्टीन का मानना है कि दोनों को एक दूसरे की तकनीकों को अपनाने से लाभ मिल सकता है। मौखिक इतिहासकारों द्वारा प्रयुक्त अनुसंधान की व्यापक व सूक्ष्म भेद–युक्त कार्य–पद्धतियों की सहायता से पत्रकारिता को लाभ मिल सकता है। मौखिक इतिहासकार प्रत्यर्थी से जानकारी प्राप्त करने की एक युक्ति के रूप में पत्रकारों द्वारा प्रयुक्त साक्षात्कार की अपेक्षाकृत अधिक परिष्कृत तकनीकों का उपयोग कर अपनी कार्य प्रणाली का संवर्धन कर सकते हैं।

मौखिक इतिहास के आरंभिक लेखागारों में प्रमुख राजनेताओं, राजनयिकों, सैन्य पदाधिकारियों और प्रमुख व्यवसायियों के साक्षात्कारों को स्थान दिया गया। सन् 1960 और 1970 के दशकों तक आते–आते, नए सामाजिक इतिहास के उत्थान के प्रभाववश, निम्न स्तर से इतिहास की खोज करते समय इतिहासकारों ने अकसर साक्षात्कार का सहारा लेना शुरू किया। किसी परियोजना का क्षेत्र अथवा केंद्र जो भी हो, किसी

निर्दिष्ट घटना का अनुसंधान करते समय मौखिक इतिहासकार कई अलग–अलग लोगों के संस्मरण एकत्र करते हैं। किसी सामान्य व्यक्ति के साक्षात्कार से एक सच्चा चित्र प्राप्त होता है। लोग घटनाओं का स्मरण करने में चूक कर सकते हैं अथवा निजी कारणों से अपने वृत्तांत को तोड़–मरोड़ सकते हैं। विस्तृत साक्षात्कार से, मौखिक इतिहासकार कई अलग–अलग स्रोतों के प्रति परस्पर सहमति का प्रयास करते हैं, और विषयों की जटिलता को भी दर्ज करते हैं। संस्मरण का स्वरूप – निजी एवं सामुदायिक दोनों – मौखिक इतिहास की प्रथा का उसी प्रकार एक हिस्सा होता है, जिस प्रकार कहानियों के संग्रह का।

4.3.2 जीवन इतिहास वंशावली

जीवन का इतिहास (अथवा जीवन की कहानी) मौखिक इतिहास के समान ही है किंतु यह आम तौर पर किसी व्यक्ति की जीवनी और उसके वर्तमान स्थिति तक पहुंचने अथवा अपने जीवन की कड़वाहटों का सामना करने की कहानी होती है। शिकागो स्कूल ऑफ सोशियोलॉजी ने समाजशास्त्र में जीवन के इतिहास पर पर्याप्त बल दिया। वे यह पता लगाने के लिए जीवन के इतिहासों की सहायता लेते थे कि लोग सामाजिक रीतियों का विवेचन किस प्रकार करते थे और अपने जीवन में उन्हें किस प्रकार उतारते थे। जीवन के इस आरंभिक इतिहास के अधिकांश भाग में अभिप्रायों–प्रयोजनों की खोज की गई किंतु जीवन के इतिहास के विवरण के स्वरूप से उसका संबंध कम होता था और उसमें इस पर ध्यान दिया गया कि जीवन के अनुभव किस प्रकार अभिवृत्तियों और कार्यकलापों को आकार देते हैं।

विलियम आइ. थॉमस और फ्लोरियन ज्नानीकी का पोलिश पेजैंट इन यूरोप एंड अमेरिका शीर्षक अनुसंधान एक अग्रणी अनुसंधान था, जिसे आगे चलकर सन् 1938 में सोशल साइंस रिसर्च काउंसिल ने सर्वाधिक उल्लेखनीय अनुसंधान माना। इसमें 'जीवन के सैकड़ों अभिलेखों' (परिवार के सदस्यों को लिखे गए पत्र, न्यायालयों और सामाजिक कार्य संस्थाओं के अभिलेख, समाचारपत्रों के आलेख और 300 पृष्ठों की एक प्रतिनिधि जीवनी) का उपयोग किया गया था। पांच खंडों के इस अनुसंधान ग्रंथ के 2200 पृष्ठों में से लगभग 800 पृष्ठों में जीवन के इतिहास का विवरण है जो अनुसंधानकर्ताओं के निष्कर्षों को पुष्ट करते हैं और तथ्यों को व्यापक आयाम देते हैं। थॉमस और ज्नानीकी ने अभिवृत्तियों (विशिष्ट व्यक्तिपरक अर्थों) को मूल्यों–मानकों (सामाजिक स्थितियों) से जोड़ा और अभिवृत्तियों तथा मूल्यों के बीच संबंध की व्यक्तियों व समूहों की व्याख्या पर आधारित प्रयोजनार्थक व्याख्याओं का सुझाव दिया।

दि पोलिश पेजैंट में समाजशास्त्रीय कल्पना के लिए विशिष्ट कहानी की शक्ति दिखाई देती है। जीवन के इन दस्तावेजों की तथ्यात्मक, निर्देशीय स्थानीयता स्पर्शगोचर है जबकि अनुसंधानकर्तागण अभिवृत्तियों, जीवन की परिस्थितियों अथवा अपने निष्कर्षों की व्याख्या के रूप में पत्र प्रस्तुत करते हैं। जहां एक ओर लेखकों ने सामाजिक अनुसंधान की नई सामग्री प्रस्तुत की है, तो वहीं दूसरी ओर उन्हें इस बात का ज्ञान है कि उनके अनुसंधान का क्षेत्र समाजशास्त्र है।

किंतु, जैसाकि मिथ्स ऑफ दि शिकागो स्कूल में उल्लेख किया गया है, जीवन की कहानी के लिए समाजशास्त्र के आरंभिक विकास में अतीत को ध्यान में रखकर

टिप्पणी

उसकी भूमिका पर पर्याप्त बल देते हुए किसी ऐतिहासिक यथार्थता की प्रस्तुति करते समय व्यक्ति को सावधान रहना चाहिए। बीती शताब्दी के उत्तरार्ध में सन् 1970 तक अमेरिकी समाजविज्ञानियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण सरोकार 'स्थिति अध्ययन' के विवरण की विश्वसनीयता रही, जिसमें जीवन की कहानियां और आनुभविक तथा वैज्ञानिक विधा के रूप में समाजशास्त्र को उनकी देन शामिल हैं।

संक्षेप में, आदिकालीन जीवन की कहानी के उपागम में किसी विवरणात्मक विश्लेषण के उपागम का कोई स्थान नहीं था। जीवन के इतिहास के विवरणात्मक विश्लेषण की शुरुआत सन् 1970 के दशक के बाद जीवन की कहानी के पारूप के प्रति अभिरुचि के पुनः पनपने के कारण हुई। इस काल में अनुसंधान विश्वसनीयता और यथार्थता के विषय से हटकर इस विषय की स्वीकृति पर होने लगा कि सभी सामाजिक विवरण (आंकड़े), उनका स्वरूप चाहे जो भी हो, व्याख्याएं हैं।

डैनियल बर्तोक्स, फ्रित्ज शूत्स, नॉर्मन डेंजिम, केन प्लुमर और माइकल मैककॉल के अनुसंधान में आख्यानात्मक सिद्धांत और विधियों समेत एक विस्तृत अंतर्विषयक उपागम अपनाया गया है। इस उपागम ने, आदिकालीन जीवन के इतिहास के अध्ययन की तरह, सामग्री को विषय के प्रयोजनों का एक संकेत माना और व्यक्ति के जीवन में आए परिवर्तनों को एक समय–संबद्ध और स्थानिक अनुक्रम प्रदान किया। अंतर विषय के अर्थ के प्रति चिंता को लेकर था न कि इस चिंता को लेकर कि कहानी 'सच' थी अथवा उसका सत्यापन होना चाहिए था।

उदाहरण के लिए, बर्तोक्स ने सामाजिक गतिविधियों पर ब्रिटिश द्वीप (ब्रिटिश आइल), इटली, पश्चिम जर्मनी, फ्रांस और अमेरिका के छात्र आंदोलनों के सदस्यों से जीवन की कहानी के विवरण का उपयोग करते हुए सहयोगी अनुसंधान का बीड़ा उठाया। उनकी अभिरुचि केवल कार्यकर्ताओं की जीवनी से संबद्ध अनुभवों तक सीमित नहीं थी बल्कि विभिन्न देशों के वृत्तांतों में समानताओं के साथ–साथ सामाजिक आंदोलन की विचारधाराओं के प्रति संकल्प की प्रक्रियाओं को ध्यान में रखते हुए उन्होंने उन अनुभवों का समग्र रूप से विश्लेषण किया। किंतु, ह्यवारिनेन के अनुसार यह मार्टिन कोहली थे, जिन्होंने विशेष रूप से 'आख्यानात्मक विश्लेषण का दृष्टिकोण' प्रस्तुत किया।

कोहली जीवनी से संबद्ध विवरण पर उसके निर्माण की शर्तों के परिप्रेक्ष्य में विचार करते हैं और 'कोड' अथवा 'जीवनी के अर्थपूर्ण वृत्तांतों के निर्माण के लिए उपलब्ध मूल पाठ के समाकृतीकरण' पर ध्यान देना चाहते हैं। किंतु यह अनुसंधान की एक नई समस्या है, और अनुसंधानकर्ताओं को ''न केवल समाजशास्त्रीय उपागमों पर, बल्कि भाषा विज्ञान और साहित्य के उपागमों पर भी निर्भर करना है।'' जहां ''जीवन के अभिलेख'' विश्लेषण अतीत की घटनाओं को दर्ज करने की दिशा में ले जाते हैं, वहां जीवनी विषयक सामग्री की रचना में कोहली पहले से ही मौजूदा आंदोलन और भविष्य की अपेक्षाओं की सार्थकता पर ध्यान देते हैं। यह बात दृढ़ता से कहते हुए कि ''साहित्य और समाजशास्त्र का सामना मूल पाठों से होता है'', कोहली साहित्यिक विश्लेषण की सार्थकता पर ध्यान देते हैं {(कोहली, 1982,} पृ. 67)। उनके विश्लेषण का ढंग और दृष्टिकोण स्पष्टतः मौलिकतावादी है : जीवन की कहानियों का विश्लेषण साहित्यिक शिल्पकृतियों के रूप में होना चाहिए।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

3. निम्न में से किस मौखिक इतिहासकार के कार्य का विशिष्ट स्थान है?
   (क) पोर्टेली (ख) हेरोडोटस
   (ग) थूसीडाइड (घ) एलन नेविंस
4. 'दि पोलिश पेजेंट' शोध निम्न में से किस का उदाहरण है?
   (क) सहभागी अवलोकन (ख) केस अध्ययन पद्धति
   (ग) जीवन इतिहास वंशावली (घ) इनमें से कोई नहीं

4.4 गुणात्मक अनुसंधान में पद्धतिगत दुविधाएं और मुद्दे

सर्वाधिक शुद्ध परिणाम प्राप्त करने के लिए प्रत्येक अनुसंधान में एक सुस्पष्ट, अनुशासनबद्ध, सुव्यवस्थित (योजनाबद्ध, क्रमवार और सामान्य) पद्धति होनी चाहिए। गुणात्मक अनुसंधान अपने स्वरूप में आगमनात्मक होता है, और अनुसंधानकर्ता सामान्यतः किसी निर्दिष्ट स्थिति में अर्थों और परिज्ञानों का पता लगाते हैं।

इसका संबंध आंकड़ा संग्रह और विश्लेषण तकनीकों से है, जिनमें सोद्देश्य प्रतिदर्शन और अर्ध–संरचित, खुले साक्षात्कारों का उपयोग किया जाता है। इसका वर्णन एक प्रभावशाली प्रतिरूप के रूप में किया जाता है, जो किसी यथार्थ विन्यास में होता है और यथार्थ अनुभवों में उच्च अंतर्भाविता (involvement) से विवरण के किसी स्तर का विकास करने में अनुसंधानकर्ताओं की सहायता करता है (क्रेसवेल, 2009)। अनुसंधान में कुछ व्याख्यात्मक सामग्री की कार्यप्रणालियां होती हैं जो विश्व को गोचर बनाती हैं। यह एक विशिष्ट बहु–पद्धति है, जिसमें इसकी विषयवस्तु की एक मीमांसात्मक, यथार्थवादी पद्धति का समावेश होता है।

इसके अतिरिक्त, यह समाज विज्ञान के अनुसंधान का एक प्रकार है, जिसमें अगणित (non-numerical) आंकड़ों का संचय और उन्हीं के अनुरूप कार्य किया जाता है, और इन आंकड़ों के अर्थ को समझाने का प्रयास किया जाता है, जिससे हमें लक्षित जन समूहों या स्थानों के अध्ययन से सामाजिक जीवन को समझने में सहायता मिलती है। यह विभिन्न घटनाओं के लोगों के बोध की टिप्पणियां और व्याख्याएं हैं, और इसमें किसी यथार्थ विन्यास में लोगों के बोध के चित्र को शामिल किया जाता है। इसमें किसी निर्धारित कार्यक्रम के प्रति स्थानीय जानकारी और समझ, लोगों के अनुभवों, अर्थों तथा उन संबंधों और सामाजिक कार्य–प्रक्रियाओं एवं प्रसंगात्मक कारकों की जांच की जाती है, जो लोगों के एक वर्ग को अधिकार से वंचित करते हैं।

गुणात्मक अनुसंधान में ये प्रणालियां आती हैं : तर्क, नृजाति वर्णन, वार्ता विश्लेषण, स्थिति अध्ययन, खुला साक्षात्कार, सहभागी निरीक्षण, परामर्श, चिकित्सा, सुव्यवस्थित कार्यप्रणाली (सामाजिक घटना का अवलोकन) पर आधारित कोई सिद्धांत, जीवनी, तुलनात्मक प्रणाली, आत्मविश्लेषण, वाक्पटुता, बाजार अध्ययन, साहित्यिक आलोचना, चिंतन अभ्यास, इतिहास विषयक अनुसंधान, आदि। गुणात्मक अनुसंधान सामाजिक कार्यकलाप का एक रूप है, जो लोगों की विषय प्रस्तुति के ढंग पर बल देता

टिप्पणी

है, और लोगों के सामाजिक यथार्थ को समझने के लिए उनके अनुभवों का अर्थ बताता है। इसमें साक्षात्कारों, डायरियों, रोजनामचों, कक्षा की आलोचनाओं और चिंतनों तथा दृश्य व मूलपाठ की सामग्री के साथ–साथ श्रुत इतिहास की विषय सामग्री का विश्लेषण प्राप्त करने व विश्लेषण और व्याख्या करने के लिए खुली प्रश्नावलियों का उपयोग करता है। यह खोजपूर्ण होता है और कोई सामाजिक घटना या कार्यक्रम 'किस प्रकार' और क्यों कार्य करती है इसकी व्याख्या करना इसका उद्देश्य होता है, जैसा कि यह किसी विशेष संदर्भ में करता है। यह उस सामाजिक परिवेश को समझने में हमारी सहायता करने का प्रयास करता है, जिसमें हम रहते हैं। वहीं, इससे हमें यह समझने में भी सहायता मिलती है कि चीजें जैसी हैं, वैसी क्यों हैं। इसे सामाजिक क्षेत्र में अत्यधिक स्थान मिला है। इसका लक्ष्य मानव आचरण, संवेग, अभिवृत्तियों और अनुभवों का विस्तृत ज्ञान उपलब्ध कराना है।

गुणात्मक अनुसंधान के मुख्य मानदंड प्रत्यक्षवादी, व्याख्यात्मक और समीक्षात्मक मानदंड हैं। इसका उपयोग लोगों के आचार–व्यवहार, दृष्टिकोणों, भावनाओं और अनुभवों के साथ–साथ यह पता लगाने के लिए किया जाता है कि उनके जीवन के केंद्र में क्या निहित है। इसकी जड़ सामाजिक यथार्थ के व्याख्यात्मक दृष्टिकोण और मनुष्य के अनुभवों की प्रस्तुति के विवरण में निहित होती है। शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, शुश्रूषा–परिचर्या, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, मनोविज्ञान, प्रबंधन, सूचना प्रणालियों पर इसका गहरा प्रभाव है। गुणात्मक अध्ययन के अनुसंधानकर्ता लोगों की मान्यता, अनुभव लोगों के परिप्रेक्ष्य में अर्थ प्रणालियों में अभिरुचि रखते हैं। गुणात्मक अनुसंधान में सांख्यिकीय विश्लेषण और अनुभवाश्रित गणना का स्थान नहीं होता। गुणात्मक अनुसंधान की जड़ें सामाजिक एवं सांस्कृतिक मानवशास्त्र, दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान, इतिहास और समाजशास्त्र में निहित होती हैं।

गुणात्मक परंपरा का लक्ष्य 'व्यष्टि की गहरी समझ' है। गुणात्मक अनुसंधान का प्रयोजन लक्षित लोगों अथवा जनसंख्या की दृष्टि से समस्याओं या घटनाओं का सुव्यवस्थित वर्णन और व्याख्या और संप्रत्ययों व सिद्धातों का विकास करना है। अध्ययन प्रणाली के विकल्प का निर्धारण पूछे जाने वाले प्रश्नों के अनुरूप किया जाता है।

गुणात्मक अनुसंधान की स्पष्ट व्याख्या करना कठिन है। इसका अपना कोई सिद्धांत या मानदंड नहीं है। न ही गुणात्मक अनुसंधान का अपने तंत्रों या कार्यप्रणालियों का कोई विन्यास है। अनुसंधान के अन्य सभी प्रकारों की तरह ही, गुणात्मक अनुसंधान को अनुसंधान के कुछ प्रश्नों की आवश्यकता होती है। अनुसंधान के प्रश्नों में अनेकानेक विषय होते हैं, किंतु इनमें से अधिकांश किसी संदर्भ विशेष में अर्थों और सामाजिक जीवन के सहभागियों के ज्ञान पर केंद्रित होते हैं। गुणात्मक अनुसंधान में, अनुसंधानकर्ताओं के लक्ष्यों और अनुसंधानकर्ताओं के सैद्धांतिक संरचनाओं या बंधों के बीच एक घनिष्ठ संबंध होता है। सैद्धांतिक संरचनाओं में पूर्ववर्ती सभी अनुसंधान, निष्कर्ष परिणाम या सिद्धांत आते हैं; जिनका आधार अनुसंधानकर्ताओं द्वारा संघटित अध्ययन के विषय होते हैं। अध्ययन प्रणाली के विकल्प कोई गुणात्मक अनुसंधानपत्र तैयार करने के अन्य बिंदु हैं। ये इस पर निर्भर करते हैं कि चयन किन स्थितियों का किया जाता है, सूचना का संग्रह किस प्रकार किया जाता है, और आंकड़ा विश्लेषण का चयन किस प्रकार किया

टिप्पणी

जाता है। गुणात्मक अनुसंधान के आंकड़े वर्णनात्मक होते हैं, साक्षात्कार की टिप्पणियों, अभिलेखों के अवलोकन और प्रलेखों के रूप में; और आंकड़ों का विश्लेषण आगमनात्मक रूप से किया जाता है। अध्ययन में एक साकल्यवादी दृष्टिकोण (Holistic approach) और संप्राप्तियों पर बल दिया जाता है। यथार्थ जगत की स्थितियां, प्राकृतिक, अदूषित विन्यास आंकड़ों के स्रोत होते हैं। अनुसंधानकर्ता विन्यास के विस्तृत विवरणों में डूबे रहते हैं। गुणात्मक अनुसंधानकर्ताओं को अनुसंधान अभिकल्प के सिद्धांतों जैसे अनुसंधान के प्रश्नों को अध्ययन प्रणाली की पद्धतियों से जोड़ना, समेकित रूप में विश्लेषण और आंकड़ा संग्रह की समस्याओं पर विचार करना और अनुसंधान के प्रयोजनों के प्रति स्पष्ट संप्रत्यय अपनाना अति महत्वपूर्ण बिंदु हैं।

अनुसंधान की नीतियां सामाजिक अनुसंधान में मुख्य विषय का रूप ले चुकी हैं और नीतियों को उचित स्थान दिये बिना किसी भी अनुसंधान का संचालन नहीं किया जा सकता। अनुसंधान नीतियों के आदर्श पत्रों (प्रोटोकोल) की व्यवस्था और अनुमोदन के लिए नियामक संरचनाओं और नियामक संस्थाओं का गठन हो चुका है इसलिए, किसी शैक्षिक अनुसंधान कार्यक्रम के लिए आंकड़ा संचय का कार्य नैतिक अनुमति की मांग करने, अनुमति मिलने और एक नैतिक अनापत्ति प्रमाणपत्र निर्गत किये जाने के बाद ही आरंभ किया जा सकता है। उच्चतर शिक्षा में संचालित ज्यादातर अनुसंधानों के लिए, नैतिक अनुमति के आवेदनों का प्रबंधन और तैयारी संस्थान के निर्धारित कार्यालय करते हैं। अनुसंधान के आचार शैक्षिक अनुसंधान का एक मुख्य विषय हैं।

आचार नैतिक सिद्धांत हैं, जो किसी व्यक्ति के आचार–व्यवहार पर नियंत्रण रखते हैं। अनुसंधान आचारों को अनुसंधान का वह कार्य कहा जा सकता है जो नैतिक अथवा विधिक स्तर पर सही हों। वे वस्तुतः आचरण के वे मानदंड हैं, जो सही और गलत तथा मान्य व अमान्य के बीच अंतर करते हैं। रिसर्च एक्सिलेंस फ्रेमवर्क (अनुसंधान उत्कृष्टता संरचना), 2014 के अनुसार, अनुसंधान ''प्रभावपूर्ण ढंग से वितरित नई अंतदृष्टियां प्रस्तुत करने वाले अन्वेषण की एक प्रक्रिया'' है। अनुसंधान एक बहु–चरणी प्रक्रिया है। आचार इस अनुसंधान प्रक्रिया का मर्म है। अनुसंधानकर्ताओं को इस प्रक्रिया के अलग–अलग स्तरों पर विभिन्न नीतिपरक विषयों का ध्यान रखना चाहिए। वास्तव में अनुसंधान प्रक्रिया के प्रत्येक चरण में नीतिपरक प्रयोजन हो सकते हैं।

हालांकि विधान में अनुसंधान नीति के कुछ पक्षों का निर्धारण कर दिया गया है, किंतु अनुसंधान के संचालन का नियमन नैतिक मूल्य ही करते हैं। समस्त अनुसंधान समुदाय में नैतिक विचारों को उत्तरोत्तर सर्वाधिक महत्व दिया जाता रहा है। मानव अधिकारों और आंकड़ा संरक्षण में जांच व विधायी परिवर्तनों की सीमाओं के प्रति जन सरोकार में वृद्धि से, सामाजिक अनुसंधान में नैतिक विचारों को अंग्रिम पंक्ति में रखा गया है। तकनीकी के आविर्भाव के फलस्वरूप, संचार अनुसंधान के क्षेत्र में नैतिक समस्याएं उत्तरोत्तर बढ़ती रही हैं। ज्यादातर मानव एवं पशु सहभागियों पर चर्चा के बावजूद, समाज विज्ञानों की विभिन्न शाखाओं में विभिन्न तकनीकों और नैतिक समस्याओं पर चर्चा की जाती है। साझा मूल्यों और अनुभवों से सूचित निर्णयों के अतिरिक्त, नैतिक दिशा–निर्देश किसी अनुसंधानकर्ता के संव्यावसायिक नीतियों के साथ–साथ व्यक्तिगत निर्णयों को सक्षम बना सकते हैं।

टिप्पणी

निजी विवरणों पर विचार से संबद्ध अध्ययनों को उनके स्वरूप में अति संवेदनशील माना जाता है। रेसनिक (1998) के अनुसार अनुसंधान नीतिशास्त्र प्रत्यर्थियों और सहकर्मियों से अनुसंधानकर्ताओं के संबंध का सामान्य मापक है। अनुसंधानकर्ता अपने अनुसंधान के नीतिशास्त्रीय आचरण के प्रति स्वयं उत्तरदायी होते हैं। उन्हें अनुसंधान प्रक्रिया के हर चरण में आचरण के मानकों के सभी विषयों की परिचर्या करनी चाहिए। इंटरनेट पर उपलब्ध सामग्री में भी आचरण के मानकों के कई विषय होते हैं। जेनसेन (2002) के अनुसार, ''कुछ हद तक यह सामाजिक संदर्भ के रूप में कंप्यूटर–व्यवहित संचार–संप्रेषण के कारण होता है – किसी मापदंड पर सार्वजनिक से निजी – कुछ हद तक ऐसा इसलिए होता है कि सामाजिक संदर्भ के रूप में कंप्यूटर–व्यवहित संचार–संप्रेषण – सार्वजनिक से निजी तक के मापदंड पर – की स्थिति उलझनपूर्ण होती है।'' गुणात्मक अनुसंधान की शक्ति, गहराई भी ''अनुसंधान के मानकों के लिए गंभीर समस्याएं खड़ी करती है।'' विश्व भर के कई विश्वविद्यालयों ने मानव और पशु सहभागियों पर अनुसंधान का संचालन करने वाली अपनी मानक नीति तैयार की है। इसके अतिरिक्त, भारी संख्या में अनुसंधानकर्ता एवं संस्थान सोशल रिसर्च एसोसिएशन (सामाजिक अनुसंधान संघ) के सन् 1980 में निर्धारित और सन् 2003 में संशोधित मानक दिशा–निर्देशों का पालन करते हैं।

नैतिक लोकाचार (Ethical Ethos)

अनुसंधानकर्ताओं को अपने अनुसंधान के नैतिक प्रबंध का समस्त दायित्व स्वयं लेना होता है। सरल शब्दों में, हम कह सकते हैं कि नैतिकताओं का पालन करना अनुसंधानकर्ताओं का दायित्व है। सहभागियों की सुरक्षा, मान–मर्यादा, अधिकारों और कल्याण का ध्यान रखना किसी अनुसंधानकर्ता का सबसे पहला कर्तव्य है। अनुसंधानकर्ताओं को अनुसंधान प्रक्रिया के अलग–अलग चरणों में अन्य विभिन्न विषयों का ध्यान रखना चाहिए। अनुसंधानकर्ता और सहभागियों दोनों को एक अहम भूमिका का निर्वाह करना होता है। एक के अधिकार दूसरे के कर्तव्य होते हैं। अनुसंधानकर्ताओं को सहभागियों के अधिकारों का ध्यान रखना और अपने अनुसंधान पर सहभागियों की दृष्टि से विचार करना चाहिए। शेफील्ड विश्वविद्यालय के अनुसार, ''मानव सहभागियों, व्यक्तिगत विवरणों और मानव टिशू (मांस–तंतु/ऊतक?) पर अनुसंधान में सहभागियों की मान–मर्यादा, अधिकारों, सुरक्षा और कल्याण'' का ध्यान रखना मुख्य सरोकार है। वहीं, इसी विश्वविद्यालय के अनुसार, अनुसंधान प्रक्रिया के विभिन्न चरणों में सामने आई सभी समस्याओं का दो मुख्य स्तरों पर ध्यान रखा जा सकता है।

अनुसंधान प्रक्रिया के दौरान अनुसंधानकर्ताओं को विभिन्न कर्तव्यों का ध्यान रखना चाहिए। उन्हें अनिवार्य रूप से सुनिश्चित करना चाहिए कि उनके अनुसंधान का संचालन शुद्ध भाव, वस्तुनिष्ठता और सत्यनिष्ठा के साथ हो रहा है। अनुसंधानकर्ता को सहभागिता के लिए सहभागियों की सहमति लेनी चाहिए। उन्हें लोगों, उनकी संस्कृ तियों, मूल्यों–मान्यताओं, धर्मों, आर्थिक स्थिति आदि का सम्मान करना चाहिए। सहभागियों की सहमति के अनुरूप उनकी गोपनीयता और व्यक्तिगत जानकारी अथवा पहचान का ध्यान रखना अनुसंधानकर्ताओं का कर्तव्य है। अनुसंधानकर्ताओं को वैसे प्रयोगों से बचना चाहिए जो सहभागियों और अनुसंधानकर्ताओं दोनों के लिए संकट खड़ा कर सकते हों। सहभागियों के अतिरिक्त, समाज, अपने सहकर्मियों अथवा

अनुसंधानकर्ताओं व परियोजना के लिए धन उपलब्ध कराने वालों के प्रति भी अनुसंधानकर्ताओं का एक कर्तव्य होता है।

सहभागी के अधिकार

दूसरी तरफ, अनुसंधान परियोजनाओं में भाग लेने की सहमति देने, उनसे अलग होने अथवा भाग लेने से मना करने का सहभागियों का अपना अधिकार होता है। सहभागी गोपनीयता की मांग करने के साथ–साथ व्यक्तिगत जानकारी अथवा पहचान कराने वाले विवरणों को प्रकाशित या साझा करने से रोक सकते हैं। अपनी सुरक्षा और संरक्षा की मांग करना उनका अधिकार है। जब भी आवश्यक हो, विवरण सुरक्षित रखे जाने चाहिए और अनावश्यक अथवा असंगत संकटों से सहभागियों की रक्षा करनी चाहिए।

अनुसंधान एक लोक विश्वास (धर्मार्थ न्यास) है। इसलिए, शोधकर्ताओं को सच्ची अनुसंधान प्रथाएं सुनिश्चित करने के लिए रचित सिद्धांतों और नीतियों को पूरी तरह से समझना चाहिए। शोधकर्ता के लिए यह जानना आवश्यक होता है कि वे कौन से घटक हैं जो किसी नैतिक अनुसंधान की रचना करते हैं। नवीनतम जानकारी के साथ, शोधकर्ताओं को अध्ययन के सहभागियों की सुरक्षा और संरक्षा सुनिश्चित करने के लिए मूलभूत नैतिक सिद्धांतों समेत एक विधि का विकास करना चाहिए। अनुसंधान की विधि के अलग–अलग प्रकारों के लिए अलग–अलग नैतिक दिशानिर्देशों की आवश्यकता होती है। इसे समझने में सरल करने के लिए, हमें अनुसंधान की नीतियों को केवल दो वर्गों में विभाजित करना चाहिए; अनुसंधान–सहभागी नीतियां एवं सामान्य नीतियां।

अनुसंधानकर्ता का एक मुख्य दायित्व सहभागियों और अन्य अनुसंधानकर्ताओं के प्रति होता है। अनुसंधान प्रक्रिया के विभिन्न चरणों में उत्पन्न होने वाली नैतिक समस्याओं की सूची इस प्रकार है–

1. सहमति लेना अनुसंधानकर्ता का मुख्य कर्तव्य है। 'सूचित सहमति' नीतिशास्त्र की संव्यावसायिक संहिता की एक आदर्श प्रक्रिया है। लोगों से सहभागियों के लिए सहमति प्राप्त करें। बच्चों के मामलों तथा कुछ अन्य विशेष मामलों में, सहभागियों की, और उनके अभिभावकों की भी, सूचित सहमति अनिवार्य रूप से लेनी चाहिए।
2. अनुसंधानकर्ताओं को अनुसंधान से संबद्ध सभी खतरों को सहभागियों के समक्ष रखना चाहिए। सहमति प्रक्रिया के दौरान उन्हें अनुसंधान के नकारात्मक और सकारात्मक सभी पक्षों को रेखांकित करना चाहिए। सहभागियों को अनुसंधान के लक्ष्य, उद्देश्यों और स्वरूप, अध्ययन की अवधि, प्रायोजकों की जानकारी के साथ–साथ अन्य महत्वपूर्ण जानकारी भी दी जानी चाहिए।
3. अनुसंधानकर्ता और सहभागियों के बीच ज्ञान के अंतर पर विचार अवश्य किया जाना चाहिए।
4. सहभागियों की निजता, गुमनामी और गोपनीयता तथा विवरण पर समुचित विचार किया जाना चाहिए। संव्यावसायिक दिशा–निर्देशों और एक सांस्कृतिक आम सहमति पर अभी भी विमर्श चल रहा है, इसलिए अनुसंधान परियोजनाओं में गुमनामी, गोपनीयता और 'सूचित सहमति' पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए।

टिप्पणी

5. सहभागियों को विवरण–संग्रह हेतु कैमकॉर्डर्स, ऑडियो रिकॉर्ड्स आदि जैसे उपकरणों को मना करने की छूट होनी चाहिए।
6. प्रश्नावली और श्रेणी निर्धारण के अन्य मापदंड सहभागियों की स्थानीय भाषा में तैयार किए जाने चाहिए ताकि उन्हें समझने में सुविधा और आसानी हो।
7. सहभागियों की सुरक्षा मुख्य सरोकार है। उन्हें वैसे संकटों से बचाया जाना चाहिए, जो उनकी सामान्य जीवनशैली में आने वाले संकटों से बड़े हों।
8. वस्तुतः, अनुसंधान से उत्पन्न होने वाले संकटों से सहभागियों की रक्षा करना अनुसंधानकर्ता का दायित्व है।
9. अनुसंधानकर्ता को सहभागियों के अधिकारों और हितों की रक्षा करना और उन्हें बढ़ावा देना चाहिए।
10. अनुसंधानकर्ता को अपनी सुरक्षा का ध्यान स्वयं रखना चाहिए।
11. अनुसंधानकर्ता को सहभागियों के सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक, शारीरिक, जीववैज्ञानिक, राजनीतिक, सामाजिक और अन्य सरोकारों का ध्यान अनिवार्य रूप से रखना चाहिए।
12. अनुसंधानकर्ताओं से उनके अनुसंधान के नैतिक भावों (ethical implications) पर विचार करने की आशा की जाती है।
13. अनुसंधान प्रक्रिया में नैतिक मानकों को बनाए रखने के लिए, अनुसंधानकर्ताओं को सत्यनिष्ठा, शुद्ध भाव, वस्तुनिष्ठता और स्पष्टता का पालन और सम्मान करना चाहिए।

सामान्य नैतिकताएं (General Ethics)

ऊपर वर्णित दिशा निर्देशों के अतिरिक्त, एक अनुसंधानकर्ता को अनुसंधान प्रक्रिया के अलग–अलग चरणों के अन्य विभिन्न नैतिक विषयों का ध्यान रखना चाहिए, जो इस प्रकार हैं :

1. कुछ विषय अपने स्वरूप में विवादास्पद होते हैं, इसलिए अध्ययन के विषय की कोई अंतर्जात नैतिक जटिलता है या नहीं यह देखना अनुसंधानकर्ता का मुख्य कर्तव्य हो जाता है। इस प्रकार, विषय का निर्धारण करने से पहले, उस विषय के नैतिक भावों पर विचार अनिवार्य रूप से कर लेना चाहिए।
2. प्रत्यक्ष मानव संपर्क पर होने वाले अध्ययनों में नैतिकताओं की भूमिका अहम होती है। इसलिए, विषयों पर अनुसंधान के पड़ने वाले प्रभावों पर समुचित विचार किया जाना चाहिए। हानिप्रद अनुसंधान से परहेज करना चाहिए।
3. मानव विषयों पर अध्ययन करने वाले अनुसंधानकर्ताओं को अनुसंधान प्रारूप में अनुसंधान संलेख का स्पष्ट रूप से वर्णन करने के साथ–साथ उसे उचित सिद्ध करना चाहिए।
4. लेखन : पांडुलिपि में प्रत्येक लेखक को श्रेय दिया जाना चाहिए। इसी प्रकार, आलेख की सूची में लेखक के रूप में दर्ज सभी लोगों को अनुसंधान और लेखन में अर्थपूर्ण ढंग से योगदान देना चाहिए।

टिप्पणी

5. विवरण (आंकड़ा) प्रबंधन : विवरणों (आंकड़ों) का प्रबंधन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि इससे किसी को भी कष्ट या चोट न पहुंचे। द्वंद्व के सभी मामलों को दूर करने और सुलझाने हेतु, विवरण (आंकड़ा) प्रबंधन की एक स्पष्ट और नैतिक दृष्टि से ठोस योजना तैयार की जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त, (1) विश्वसनीय विवरणों (आंकड़ों) का नैतिक और सच्चा संग्रह, (2) स्वामित्व और संगृहीत विवरणों (आंकड़ों) का दायित्व, तथा (3) विवरणों (आंकड़ों) को रखना और सहकर्मियों तथा लोगों के साथ संगृहीत विवरणों (आंकड़ों) को साझा करना तीन अति महत्वपूर्ण नैतिक विषय हैं, जिनका विवरण (आंकड़ा) प्रबंधन प्रक्रिया में ध्यान रखा जाना चाहिए। विवरणों के साथ किसी प्रकार का छलकपट कतई नहीं किया जाना चाहिए।
6. साहित्यिक चोरी से परहेज करें : अनुसंधानकर्ताओं को समुचित ढंग से मूल स्रोत का उद्धरण देना चाहिए। उसे जिम्मेदारी के साथ कार्य करना और सर्वाधिकार, बौद्धिक संपदा, प्रारूपों तथा अन्य अधिकारों का ध्यान रखना चाहिए। अपने साहित्य की चोरी – अपने ही लेखन से नकल – किसी भी स्थिति में नहीं करनी चाहिए।
7. नकल के विपरीत, किसी विशाल अध्ययन को विभिन्न पत्रों में तोड़ना, बांटना अथवा उसके टुकड़े करना ''सलामी प्रकाशन'' या ''सलामी विभाजन'' कहलाता है। यह अनैतिक है क्योंकि वह अध्ययन समान परिकल्पना, विधि और लोगों पर आधारित होता है। समान निष्कर्ष–परिणाम पर आधारित अध्ययन को टुकड़ों में विभाजन और प्रकाशन नहीं करें।
8. विवरणों (आंकड़ों) अथवा परिणाम में किसी भी प्रकार की जालसाजी, झूठ अथवा गलत प्रस्तुति से बचें। चित्रों या वीडियो प्रस्तुति अथवा चित्रांकन के किसी अन्य कार्य में जोड़–तोड़ न करें। अनुसंधानकर्ता को विवरणों की प्रस्तुति निष्ठापूर्वक करनी चाहिए। अनुसंधान में कदाचार एक पाप है।
9. लेखक को कच्चे विवरण रखने चाहिए क्योंकि संपादकीय समीक्षा के समय उनसे विवरणों की मांग की जा सकती है।
10. अनुसंधानकर्ता/अनुसंधानकर्त्री को अपने व्यक्तिगत या वित्तीय हितों को भी प्रकट करने और पूर्वाग्रह से बचना चाहिए।
11. अनुसंधानकर्ताओं को किसी व्यक्ति, संस्कृति, धर्म आदि पर व्यक्तिगत कटाक्ष नहीं करना चाहिए।
12. उन्हें समाज के नैतिक मूल्यों को बनाए रखना चाहिए।
13. निष्ठापूर्वक कार्य करें और वचन का उल्लंघन न करें। जाति या जनसंख्या के आधार पर अथवा किसी अन्य स्थिति पर भेदभाव करने से बचें।
14. लापरवाही और असावधानी से अनिवार्य रूप से बचना चाहिए। अनुसंधानकर्ता को अपने कार्य के प्रति गंभीर होना चाहिए और वस्तुओं का एक प्रलेख (दस्तावेज) रखना चाहिए। आलोचना को खुले मन से स्वीकार करें।
15. अनुसंधानकर्ताओं को प्रलेखों (दस्तावेजों) और अन्य संवेदनशील सूचना की गोपनीयता बनाए रखनी चाहिए।

16. अनुसंधानकर्ताओं को शिक्षण प्रक्रिया में योगदान करना चाहिए। नकल से सर्वथा बचना चाहिए।
17. अनुसंधानकर्ताओं को क्षेत्र के स्थानीय नियमों और विनियमों का पालन करना चाहिए।
18. लोगों और पशुओं के साथ सावधानीपूर्वक व्यवहार करना चाहिए।
19. अनुसंधान के दौरान सामने आए नकारात्मक और सकारात्मक दोनों परिणाम प्रस्तुत करने चाहिए।
20. अनुसंधान के सभी कार्यों में पारदर्शिता और उत्तरदायित्व सुनिश्चित करें।
21. अध्ययन के परिणामों के प्रकाशन और वितरण के प्रति अनुसंधानकर्ता और संपादक के साथ–साथ अनुसंधान के प्रायोजक, प्रकाशक व समीक्षक के भी नैतिक उत्तरदायित्व होने चाहिए।
22. अनुसंधान के संचालन में जिन लोगों ने किसी भी तरह से सहायता की हो, उनके प्रति समुचित आभार प्रकट करना चाहिए।
23. अधिसंख्य युवा अनुसंधानकर्ता अलग–अलग समीक्षकों अथवा प्रकाशकों को एक ही समय में एक ही पांडुलिपि भेजते हैं। यह अनैतिक है, ऐसा नहीं करें।
24. प्रकाशित हो चुके किसी अनुसंधानपत्र अथवा आलेख में किंचित परिवर्तन कर अथवा अलग शीर्षक से किसी पत्रिका को भेजना ''अंतर्राष्ट्रीय सर्वाधिकार कानूनों, नैतिक आचरण और संसाधनों के लागत–प्रभावी उपयोग'' का उल्लंघन है।
25. अंतिम प्रतिवेदन में अध्ययन के प्रायोजक, संस्थान से संबंधन और हितों के टकराव की घोषणा अनिवार्य रूप से होनी चाहिए।
26. अनुसंधान के निष्कर्ष परिणाम सरलता से बोधगम्य प्रतिवेदन में प्रसारित किये जाने चाहिए।

4.4.1 फील्डवर्क का संघर्ष और अनुभव

जैसा कि हम जानते हैं कि अनुभव एवं विधि जिसका उपयोग किसी विशेष प्रकार की सामाजिक समस्या के अनुसंधान के लिए किया जाता है उसमें विशिष्ट प्रकार की पद्धति उपागम का चयन भी अनुसंधानकर्ता को करना होता है। अनुसंधान के लिए चयनित पद्धति के उपागम के अनुरूप ही अनुसंधानकर्ता को आंकड़ा संग्रह करने का कार्य वास्तविक कार्य क्षेत्र में से करना पड़ता है जिसे फील्ड वर्क अथवा क्षेत्र कार्य कहा जाता है। वह क्षेत्र जिसमें अनुसंधान कार्य किया जा सकता है उसे क्षेत्र कार्य फील्ड वर्क अथवा अनुसंधान क्षेत्र की श्रेणी में रखा जाता है।

समाजशास्त्र सामाजिक अन्तःक्रियाओं और सामाजिक संबंधों का अध्ययन–विश्लेषण करता है। समाजशास्त्र मनुष्य और समाज के विविध संगठनों, समुदायों, संस्थाओं, प्रक्रियाओं, संदर्भों, संघर्षों, परिवर्तनों, समस्याओं और समाधानों की विवेचना करता है। मानव अर्जित ज्ञान को प्रायः दो मुख्य भागों में विभक्त किया गया है– एक, प्राकृतिक या विशुद्ध विज्ञान, (भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान आदि) और दो, सामाजिक विज्ञान (राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र आदि)। आधुनिक समाजशास्त्र का इतिहास भले ही पुराना न हो किन्तु उसका संबंध तो मानवजाति के

टिप्पणी

अस्तित्व और विकास से जुड़ा है। साहित्य और समाज का संबंध मनुष्य की आदिम अवस्था से है। कालान्तर में समाजशास्त्र विकसित हुआ, इसकी पूर्णता, स्वतंत्रता, उपयोगिता, कार्यक्षेत्र आदि की महत्ता साबित करने हेतु प्रयास हुए। समाजशास्त्र के जनक ऑगस्ट कॉम्टे ने समाजशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञानों में कोई संबंध नहीं माना है। साहित्य और समाजशास्त्र, साहित्य का समाजशास्त्र, और समाजशास्त्र का साहित्यिक विवेचन को लेकर विशुद्ध समाजशास्त्रियों एवं साहित्यकारों में मतभेद हैं। समाजशास्त्री हरबर्ट स्पेन्सर (1820–1903) और इमाइल दुर्खीम (1858–1917) ने समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र को व्यापक मानते हुए ज्ञान के समाजशास्त्र, विज्ञान के समाजशास्त्र और कला के समाजशास्त्रीय विश्लेषण को समाजशास्त्र की विषयवस्तु में सम्मिलित किया है। समाजशास्त्र में जहां पद्धति का प्रयोग, तथ्यों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण, सिद्धांत–निर्माण एवं परीक्षण, कार्य–कारण संबंधों का विवेचन होता है, वहां क्षेत्र कार्य (Field-work) के लिए अवकाश अधिक होता है।

कार्बिन एवं स्ट्रोस के अनुसार तुलनात्मक कार्य करने का तात्पर्य इस संबंध से है कि अनुसंधानकर्ता भूतकाल में जाए अथवा वास्तविक कार्यक्षेत्र में जाए तथा प्रतिभागियों के दृष्टिकोण से सामाजिक घटनाओं एवं प्रपंचों को मनुष्य के दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न करें। वास्तव में यदि गुणात्मक आधार पर अनुसंधान करने का कार्य किया जा रहा है तो इसमें व्यक्तियों की प्रतिभागिता बहुत अधिक बढ़ जाती है एवं इस प्रतिभागिता से समाज के आंतरिक परिदृश्य को समता से देखने का अवसर प्राप्त होता है एवं फील्ड अथवा कार्य क्षेत्र में जाकर हम यह देखते हैं कि वास्तव में घटनाएं किस प्रकार से घटित हो रही हैं तथा सिद्धांत एवं अभ्यास में किस प्रकार का अंतर देखने को मिल रहा है। प्रतिभागियों से मिलनेवाले प्रश्न–उत्तर के माध्यम से अनुसंधानकर्ता एक तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है जिसमें वह अपने अनुसंधान क्षेत्र से प्राप्त किए गए आंकड़ों को तदनुसार प्रस्तुत करता है।

अनुसंधान कार्य में प्रेक्षणों तथा परीक्षणों के माध्यम से एकत्र किए गए मानव व्यवहार को प्रस्तुत करने के अनेक प्रकार हो सकते हैं जैसा कि नृवंशविज्ञान के उपागमों के चारित्रिक उपयोग में भी हम देखते हैं।

जो अनुसंधानकार्य गुणात्मक विधियों पर आधारित होता है वह प्रतिभागियों के आंतरिक अनुभवों को जानने में सहायक होता है। उससे यह भी जानकारी हो सकती है कि संस्कृति किस प्रकार से प्रभावित हो रही है। क्योंकि जब अनुसंधानकर्ता समाज में वास्तविक रूप से व्यक्तियों से व्यक्तिगत रूप से मिलता है तो विचारों का आदान–प्रदान होता है एवं अनुसंधानकर्ता समाज के उन अंदरूनी पहलुओं को भी नजदीक से देख लेता है जिनका सैद्धांतिक परिदृश्य साहित्य में उपलब्ध नहीं होता है। गुणात्मक विधियों द्वारा किए गए क्षेत्र कार्य के द्वारा अनुसंधानकर्ता को अध्ययन किए जा रहे प्रतिभागियों के आंतरिक अनुभव प्राप्त होते हैं।

फील्ड वर्क क्रियाविधि

आदिकाल में मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समूह में रहता था, उसके आपसी व्यवहार एवं संबंधों से समाज का निर्माण हुआ और वह एक सामाजिक प्राणी कहलाया। इसीलिए मैकाइवर एवं पेज ने सामाजिक संबंधों के जाल को समाज कहा है। समाजशास्त्र समाज के समस्त संदर्भों, समस्याओं एवं पहलुओं का क्रमबद्ध अध्ययन

टिप्पणी

करनेवाला विज्ञान है। ऑगस्ट कॉम्टे को समाजशास्त्र का जनक माना जाता है, इन्होंने सन् 1838 में इस शब्द का प्रयोग किया। हालांकि उन्होंने पहले 'सोशल फिजिक्स' कहा बाद में इसे समाजशास्त्र के नाम से स्वीकार किया गया। लैटिन शब्द Socius (समाज) और ग्रीक शब्द Logos (विज्ञान या अध्ययन) से अंग्रेजी शब्द Sociology बना है, इसे ही समाजशास्त्र कहा जाता है। समाजशास्त्र की विषयवस्तु की महत्ता एवं उपयोगिता, क्षेत्र की व्यापकता आदि के कारण समाजशास्त्रियों के लिए सर्वसम्मति से कोई एक परिभाषा दे पाना कठिन है।

फील्ड वर्क और अवलोकन

जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि समाजशास्त्र अथवा नृवंशविज्ञान के अध्ययन में गुणात्मक अनुसंधान पद्धति का उपयोग किया जा सकता है जो कि संयुक्त रूप से परीक्षण एवं फील्ड वर्क के ऊपर आधारित हो सकती है जिससे कि समाज के अनेक प्रकरणों एवं प्रपंचों को समझा जा सके। सामाजिक तथ्य प्रकरणों को सांस्कृतिक, आर्थिक व सामाजिक आधार पर परीक्षण एवं फील्ड वर्क के माध्यम से जानने का प्रयत्न किया जाता है। फील्ड वर्क एवं परीक्षण पर आधारित अनुसंधान कार्य समाजशास्त्र, मनोविज्ञान एवं अन्य सामाजिक विज्ञान की शाखाओं में बहुत प्रयोग किया जा रहा है क्योंकि यह मनुष्य से संबंधित अध्ययन है तथा मनुष्य समाज में रहते हैं एवं अनुसंधानकर्ता को समाज में जाकर व्यक्तियों से पारस्परिक व संबंधित प्रश्न पूछने होते हैं।

विधियां

फील्ड वर्क करने की अनेक विधियां हैं परंतु उन सबमें समानता यही है कि सभी में वास्तविक अथवा अनुसंधान क्षेत्र में जाकर आंकड़े संग्रहित करने होते हैं, भले ही वह आंकड़े मात्रात्मक अथवा गुणात्मक आधार पर हों। अनुसंधान समस्या के अनुरूप अनुसंधानकर्ता अपना सामाजिक अध्ययन तथा अपने लिए अनुसंधान क्षेत्र का चयन करते हैं एवं साहित्य क्षेत्र में निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में व्यक्तियों से प्रश्नोत्तर करते हैं ताकि प्रश्नों के संदर्भ में व्यक्तियों के उत्तर जान सकें। एक भली–भांति परिभाषित की गई अनुसंधान समस्या में एक स्पष्ट साक्षात्कार, सीधा परीक्षण, प्रतिभागियों का जीवन, सामूहिक विचार विमर्श तथा व्यक्तिगत साहित्य सामग्री का मूल्यांकन भी सम्मिलित है। यह निर्धारण विषय के आधार पर ही किया जाता है कि अनुसंधानकर्ता उपरोक्त में से किसका प्रयोग आंकड़ा संग्रहण के लिए कर रहा है।

फील्ड वर्क का महत्व

सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में फील्ड वर्क का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि प्रयोग संगत अनुसंधान कार्य के लिए समाज से आंकड़े संग्रहित करने पड़ते हैं, चयनित किए गए अनुसंधान क्षेत्र से ही तदनुसार अनुसंधानकर्ता आंकड़े एकत्रित करता है। इसी संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि अनुसंधानकर्ता के लिए फील्ड वर्क करना आवश्यक हो जाता है। अतः अनुसंधानकर्ता को यह समझ लेना चाहिए कि फील्ड वर्क का महत्व इसमें है कि अनुसंधानकर्ता स्वयं अनुसंधान क्षेत्र में जाए एवं तदनुसार अपने अनुसंधान के लिए आवश्यक आंकड़ों को एकत्रित करें जिसमें बहुत समय लगता है। व्यक्ति एवं समाज के अंदरूनी क्रियाकलापों की जानकारी अनुसंधानकर्ता को हो जाती है तथा वह केवल सैद्धांतिक अनुभव के आधार पर ही नहीं वरन फील्ड वर्क के आधार पर किए गए अनुभवों को भी अपने अनुसंधान कार्य में प्रस्तुत कर सकते हैं। समाजशास्त्र एक

वैज्ञानिक अध्ययन है इसीलिए समाज से एकत्रित किए गए आंकड़ों को अपने अनुभवों के साथ जोड़ते हुए प्रस्तुत कर दिया जाता है जिससे कि अनुसंधान सत्यापित हो जाता है तथा उसका स्वरूप वैज्ञानिक हो जाता है। परंतु इसमें आवश्यक यह है कि फील्ड वर्क पर्याप्त समय तक किया जाए। प्रतिभागी सामान्य रूप से सटीक उत्तर देने में समय लगाते हैं तथा यह समय उसी स्थिति में देना संभव हो पाता है जब अनुसंधानकर्ता प्रतिभागियों के साथ पर्याप्त परिचित हो चुका हो।

सामाजिक सर्वेक्षण

फील्ड वर्क करने के क्षेत्र में सामाजिक सर्वेक्षण एक महत्वपूर्ण घटक है तथा सामाजिक अनुसंधानकर्ता अपनी सामाजिक अनुसंधान समस्या के अनुसार सामाजिक सर्वेक्षण विधि एवं उपागम का चयन करते हैं। सामाजिक सर्वेक्षण करने का सबसे प्रचलित एवं सुगम सरल माध्यम प्रश्नावली है जिसे क्वेश्चनेयर भी कहा जाता है।

एक प्रभावी सामाजिक सर्वेक्षण करने की अनेक विधियां हैं जिनको निम्नलिखित रूप से समझा जा सकता है–

- सामाजिक सर्वेक्षण प्रतिभागियों को संबोधित करते हुए उत्तेजित करने का कार्य भी करता है।
- जो सूचना मांगी जा रही है अथवा ली जा रही है वह सूचना देने वाले को अथवा लेने वाले को बराबर रूप से समझाने का कार्य भी करता है।

प्रतिभागी तथा साक्षात्कारकर्ता दोनों को ही मित्रवत वातावरण में कार्य करने का प्रयत्न करना चाहिए। सामाजिक अनुसंधान एवं सर्वेक्षण में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि बोलने का विशेष ध्यान रखा जाए तथा सूचना देने वाले को स्वतंत्र रूप से अपनी बात कहने का अवसर प्रदान करना चाहिए। हालांकि यह सदैव संभव नहीं होता है परंतु फिर भी प्रयत्न करना चाहिए। अनुसंधानकर्ता प्रतिभागी के स्वतंत्र रूप से बोलने में बाधक ना बने।

विचार विमर्श का बिंदु एवं विषय क्षेत्र एक निश्चित सीमा में होना चाहिए तथा यह सीमित दायरे में ही होना चाहिए। साक्षात्कार लेने की विभिन्न विधियां भी सामाजिक सर्वेक्षण एवं अनुसंधान के संबंध में उपयोग की जाती हैं तथा किसी एक पारस्परिक विचार विमर्श पर आधारित साक्षात्कार को बहुत प्रभावी होने के लिए प्रमुख तथ्यों एवं बिंदुओं को समझ लेना चाहिए। समाज से संबंधित मुख्य बिंदुओं की सूचनाएं एकत्रित की जा सकती हैं। इस प्रकार की मुख्य सूचना किसी परिवार से संबंधित हो सकती हैं अथवा संसद से संबंधित हो सकती है। इस प्रकार के पारस्परिक विचार मंच के माध्यम से जो सूचनाएं मिलती हैं वह संपूर्ण समूह की सामूहिकता को प्रकट करती हैं तथा इस आधार पर किसी फोकस समूह से वांछित सूचनाएं एकत्रित की जा सकती हैं।

फील्ड वर्क की अवस्थाएं

प्रत्येक प्रकार के फील्ड वर्क करते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि यह पूर्णतः व्यवस्थित ढंग से हो तथा इसकी प्रत्येक अवस्था अथवा स्टेज को भली भांति परिभाषित कर देना चाहिए जिससे अनुसंधानकर्ता को यह जानकारी हो जाती है कि किस अवस्था में किस प्रकार की सूचनाओं को एकत्रित करना है तथा यह सूचनाएं किस माध्यम से एकत्रित करने का कार्य किया जा रहा है?

प्रभावी फील्ड वर्क

प्रभावी फील्ड वर्क से तात्पर्य उस कार्य से है जिसमें अनुसंधानकर्ता वास्तविक अनुसंधान क्षेत्र से आंकड़ों को संग्रहित करने का कार्य करता है। इस संदर्भ में वही फील्ड वर्क प्रभावी हो सकता है जो आवश्यकता के अनुसार पर्याप्त मात्रा में आंकड़ों के संग्रह में सहायक हो। इसलिए एक अनुसंधानकर्ता को भली भांति परिभाषित की गई रणनीति के माध्यम से फील्ड वर्क करना चाहिए जिसकी प्रमुख चारित्रिक विशेषताएं निम्नलिखित प्रकार से हो सकती हैं–

- फील्ड वर्क का उद्देश्य एक निश्चित पाठ्यक्रम तथा विषय से ही संबंधित होना चाहिए।
- फील्ड वर्क करने के लिए एक सुव्यवस्थित कार्यनीति बना लेनी चाहिए।
- पर्याप्त संख्या में भौगोलिक क्षेत्र का समावेश अनुसंधान क्षेत्र के रूप में कर लेना चाहिए।

फील्ड रिसर्च की सामर्थ्य

समाजशास्त्रियों एवं अन्य वैज्ञानिकों ने यह सत्य माना है कि सूचना एकत्रित करने का प्रभावी माध्यम फील्ड वर्क है। इसके माध्यम से समाज की वास्तविक जानकारी एवं सूचनाएं अनुसंधानकर्ता एकत्रित कर लेता है। रिसर्च की प्रमुख सामर्थ्य को निम्नलिखित रूप से देखा जा सकता है

कार्यक्षेत्र अनुसंधान के माध्यम से पर्याप्त एवं विस्तृत आंकड़े एकत्रित किए जा सकते हैं। कार्यक्षेत्र अनुसंधान के माध्यम से जो आंकड़े एकत्रित किए जाते हैं वह विभिन्न प्रतिभागियों के प्रत्युत्तर होते हैं एवं इस प्रकार से समाजशास्त्री यह स्पष्ट रूप से कह सकता है कि यह उत्तर वास्तविक अनुसंधान क्षेत्र से ही लिए गए हैं। कार्यक्षेत्र अनुसंधान वास्तविक सामाजिक तथ्यों को उजागर करने में सर्वोत्तम अनुसंधान विधि मानी जाती है।

फील्ड रिसर्च की कमियां

उपरोक्त वर्णित विशेषताओं एवं समर्थन के बावजूद फील्ड रिसर्च की भी कुछ कमियां होती हैं जिन्हें निम्नलिखित रूप से समझा जा सकता है–

- आंकड़ों के अनुरक्षण में बहुत असुविधा होती है।
- विस्तृत सूचना एकत्रित करने में बहुत समय लगता है।
- अनुसंधान कार्य में बहुत अधिक भिन्नता हो सकती है।
- कई बार ऐसा भी देखा गया है कि प्रतिभागी भावुक सूचना दे देते हैं जिसका अनुसंधान के ऊपर गंभीर प्रभाव पड़ सकता है।
- कार्य क्षेत्र से एकत्रित किए गए आंकड़ों का मूल्यांकन करना इनको अनुसंधान के अनुरूप प्रस्तुत करना बहुत जटिल कार्य है।

सामाजिक अनुसंधान करने में निम्नलिखित रूप से अपना अनुसंधान कार्य कर लेना चाहिए–

- सर्वप्रथम समस्या को परिभाषित कर लेना चाहिए।

- अनुसंधान समस्या के लिए मान्यताएं तथा हाइपोथीसिस का निर्माण कर लेना चाहिए।
- अनुसंधान अभिकल्प में यह निर्धारित कर लेना चाहिए कि यह प्रयोगात्मक अनुसंधान है अथवा कार्य क्षेत्र अनुसंधान के ऊपर निर्भर है।
- आंकड़ों को संग्रहित करने की एवं परीक्षण करने की विधियों का स्पष्टीकरण होना चाहिए।
- एकत्रित किए गए आंकड़ों का आकलन एवं मूल्यांकन की विधियों को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए।

4.4.2 कार्यक्षेत्र रिपोर्ट

अनुसंधान कार्य संपूर्ण हो जाने के पश्चात अनुसंधानकर्ता को एक संपूर्ण रिपोर्ट बनानी होती है जो कि एक कलात्मक कार्य है। अतः अनुसंधानकर्ता को कार्यक्षेत्र रिपोर्ट करने की विभिन्न विधियों का अध्ययन कर लेना चाहिए तथा तदनुसार एक प्रभावित एवं स्पष्ट कार्यक्षेत्र रिपोर्ट बना लेनी चाहिए जिसके प्रमुख बिंदु निम्न प्रकार से समझे जा सकते हैं–

अनुसंधानकर्ता जब वास्तविक क्षेत्र में कार्य कर रहा होता है तो प्रत्येक सूचना को भली भांति लिखित रूप से नोट कर लेना बेहतर होता है ताकि वह रिपोर्ट तैयार करते समय प्रयोग की जा सके।

रिपोर्ट तैयार करने से पूर्व अनुसंधानकर्ता आंकड़े एकत्रित कर रहा होता है, उसी समय यदि थोड़ा–थोड़ा रिपोर्ट राइटिंग का कार्य भी कर लिया जाए तो समय बच सकता है।

आंकड़ों को संग्रहित करने का कार्य तो कोई छात्र भी कर सकता है परंतु इन एकत्रित आंकड़ों का सही एवं सटीक प्रस्तुतीकरण करना एक अनुसंधानार्थी का ही कार्य हो सकता है। अतः रिपोर्ट राइटिंग तथा एकत्रित आंकड़ों के समुचित प्रस्तुतीकरण में दक्षता प्राप्त कर लेना एक अनुसंधान छात्र के लिए आवश्यक कार्य हो जाता है।

कार्यक्षेत्र रिपोर्ट के उद्देश्य एवं सिद्धांत

शोध रिपोर्ट का आधार मुख्यतः वैज्ञानिक पद्धति व प्रविधियों द्वारा संकलित तथ्य होते हैं। पर तथ्यों का ढेर स्वयं कुछ नहीं कर सकता जब तक कि उनका वर्गीकरण व सारणीयन न किया जाए। पर केवल वर्गीकरण व सारणीयन भी निरर्थक है जब तक इनके आधार पर तथ्यों का विश्लेषण व व्याख्या करके कुछ वैज्ञानिक निष्कर्षों को न निकाला जाए। इन निष्कर्षों को यदि सर्वेक्षणकर्ता या शोधकर्ता अपने दिमाग में ही भरकर रख दे तो उससे न तो विज्ञान का और न ही किसी और का कोई भला हो सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि संपूर्ण सर्वेक्षण व शोध–कार्य के उद्देश्य, क्षेत्र, प्रयुक्त पद्धति व प्रविधियों, संकलित तथ्यों का विवरण, विश्लेषण व व्याख्या तथा निष्कर्षों व सुझावों को एक लिखित रूप दिया जाए जिससे कि वह विज्ञान की एक धरोहर बन सके, दूसरे वैज्ञानिक, उसी विषय के संबंध में फिर से अनुसंधान कर उसके निष्कर्षों की पुनर्परीक्षा कर सकें तथा निष्कर्षों व सुझावों के आधार पर सामाजिक योजना व सुधार की रूपरेखा तैयार की जा सके। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संपूर्ण सर्वेक्षण शोध का एक लिखित विवरण तैयार किया जाता है। यही सर्वेक्षण या शोध की रिपोर्ट कहलाता है।

रिपोर्ट के स्वरूप के संबंध में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह किस प्रकार के पाठकों को ध्यान में रखकर लिखा गया है। शोध प्रतिवदेन के पाठकों में अन्य सामाजिक वैज्ञानिक बहुधा सबसे महत्वपूर्ण होते हैं। यदि शोध अनुप्रयुक्त विज्ञान के क्षेत्रों में हो तो उसके पाठकों में उसे प्रयुक्त करने वालों के भी होने की संभावना है। जैसे यदि लोक प्रशासन या व्यापार प्रबन्ध के क्षेत्र में कोई शोध कार्य हुआ हो तो संभवतः प्रशासक या प्रबन्धक भी उसके विषय में जानना चाहेंगे। जन–साधारण के कुछ सदस्य भी उसमें रुचि रखने वाले हो सकते हैं। इन विभिन्न प्रकार के लोगों की रुचि और ज्ञान में भेद होगा। सामाजिक, वैज्ञानिक तथा कुछ प्रशासनिक जन सांखियकीय तथा अन्य प्रकार के विश्लेषण को भी समझने और परखने की स्थिति में होंगे जबकि बहुत से अन्य पाठकों को इस विषय में उतना ज्ञान नहीं होगा। ग्राफिक्स की भूमिका वास्तविकता को समझना–परखना आसान बना देती है। इसलिए प्रतिवदेन लिखते समय शोधकर्ता को यह ध्यान रखना होता है कि उसके पाठक मुख्यतया कौन होंगे और फिर इसे उनके अनुरूप बनाना होता है। यह भी हो सकता है कि प्रतिवेदन कई प्रकार से लिखा जाए–जैसे, एक तो वैज्ञानिक पाठकों के लिए और दूसरे जन–साधारण के लिए। तालिकाओं, रेखाचित्रों, चित्रों, आंकड़ों की ग्राफिक्स दोनों में अहम होती है।

शोध रिपोर्ट तैयार हो जाने के बाद, एवं उसके प्रकाशन से पूर्व उसके मूल्यांकन की आवश्यकता पड़ती है। यह मूल्यांकन रिपोर्ट के उद्देश्यों, उसके निर्माणक सिद्धांतों, रिपोर्ट की विशिष्टता सम्मत रूपरेखा को ध्यान में रखकर सम्यक रूप से किया जाता है। अतः मूल्यांकन से संदर्भित इन पहलुओं की पूर्ण जानकारी अपेक्षित है।

रिपोर्ट निर्माण के उद्देश्य

गुडे एवं हाट्ट ने लिखा है कि शोध–प्रक्रिया वैज्ञानिक के लिए बड़ी ही रोचक तथा आकर्षक होती है। फिर भी आगे–पीछे कभी–न–कभी एक ऐसी स्थिति आती है जब कि रिपोर्ट तैयार करना आवश्यक हो ही जाता है। किसी भी प्रकार के अध्ययन में एक स्थिति ऐसी आती ही है जबकि उसके पश्चात अध्ययन–कार्य को चालू रखना अनुपयोगी एवं संकलित तथ्यों का और अधिक विश्लेषण व व्याख्या अनावश्यक प्रतीत होने लगती है। कभी–कभी ऐसा भी होता है कि किन्हीं पूर्व शर्तों के अनुसार एक वैज्ञानिक या आरंभिक विद्यार्थी के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह एक निर्धारित समय के अन्दर शोध–कार्य को समाप्त कर उसके निष्कर्षों को प्रस्तुत करे। साथ ही शोध या सर्वेक्षण के दौरान प्राप्त सामग्री एवं नवीन तथ्य इतने रुचिकर होते हैं कि अनुसंधानकर्ता उसके परिणामों को अन्य लोगों तक पहुंचाने के लिए स्वयं उत्सुक रहता है। अंत में, जिन–जिन लोगों ने अध्ययन–कार्य में अर्थ, सुझाव, सहायता व समय के रूप में योग दिया है, वे यह जानने के लिए उत्सुक रहते हैं कि उनके सहयोग या सहायता का क्या परिणाम निकाला। इन सब आवश्यकताओं व मांगों की पूर्ति करने के उद्देश्य से ही सर्वेक्षण के अंतिम चरण में एक रिपोर्ट तैयार की जाती है।

एक सर्वेक्षण या शोध की रिपोर्ट तैयार करने के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. **ज्ञान का एक प्रलेख प्रस्तुत करना** : प्रत्येक सर्वेक्षण या शोध–कार्य का निष्कर्ष निश्चय ही किसी–न–किसी प्रकार के ज्ञान का एक स्रोत होता है। इसमें पर्याप्त समय, धन तथा परिश्रम भी लग जाता है। इसके बाद भी अगर अध्ययन से प्राप्त ज्ञान को शोधकर्ता केवल अपने ही दिमाग में रख ले तो उस ज्ञान की

वास्तविक उपयोगिता स्वतः ही नष्ट हो जाएगी और दूसरों को उससे कोई लाभ नहीं होगा। अतः उसे एक क्रमबद्ध लिखित रूप प्रदान करना परमावश्यक है जिससे कि वह ज्ञान का एक लिखित प्रलेख (Document) बन जाए और विज्ञान की एक धरोहर के रूप में उसे सुरक्षित रखना सरल हो जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सर्वेक्षण या शोध की एक रिपोर्ट अवश्य ही तैयार की जाती है।

2. **ज्ञान के विस्तार के लिए :** रिपोर्ट तैयार करने का यह भी कम महत्वपूर्ण उद्देश्य नहीं है। हम जानते हैं कि तथ्यों के विश्लेषण व व्याख्या से न केवल अध्ययन–विषय का ही स्पष्टीकरण होता है और न केवल उस विषय से संबंधित कुछ निष्कर्ष निकलते हैं, अपितु इस बात की भी खोज हो जाती है कि उस विषय से संबंधित अन्य कौन–कौन सी समस्याएं हैं जिनके विषय में आगे और गहन अध्ययन किया जा सकता है। जब अपने शोध–कार्य तथा उसके निष्कर्षों को अनुसंधानकर्ता एक लिखित रूप देने बैठता है तो वह स्वतः ही अन्य ऐसी अनेक नई समस्याओं, नए प्रश्नों तथा विषयों की ओर भी संकेत करता है जोकि शोध या सर्वेक्षण का विषय बन सकते हैं। इस दृष्टिकोण से रिपोर्ट का एक उद्देश्य अनुसंधान के नए क्षेत्रों (avenues) से हमें परिचित करवा कर ज्ञान के विस्तार की निरंतरता को बनाए रखना है।

3. **अनुसंधान के परिणामों को दूसरों के सूचनार्थ प्रस्तुत करना :** शोधकर्ता के लिए अपने अनुसंधान के परिणामों को प्रदर्शित करना कई कारणों से आवश्यक हो जाता है।

प्रथम : शोधकार्य से प्राप्त निष्कर्षों या परिणामों को संबंधित लोगों अथवा शोध में रुचि रखने वाले व्यक्तियों के सामने प्रगट करना अनुसंधानकर्ता का कर्तव्य हो जाता है। उदाहरणार्थ, यदि अनुसंधान का विषय सार्वजनिक महत्व का है तो उसके परिणामों से लोगों को अवगत कराना आवश्यक हो जाता है।

द्वितीय : यदि सर्वेक्षण की रिपोर्ट के आधार पर ही कोई सरकारी अथवा गैर सरकारी कार्यवाही होनी है तो भी यह काम रिपोर्ट तैयार न होने तक रुका रहता है।

तृतीय : कभी–कभी सरकार किसी विशेष विषय पर सर्वेक्षण इसलिए करवाती है कि उससे संबंधित कोई योजना उसे बनानी होती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी रिपोर्ट तैयार करनी जरूरी हो जाती है।

चतुर्थ : जिन लोगों ने सर्वेक्षण–कार्य में अपना धन, परामर्श, सहायता व समय देकर सहयोग प्रदान किया है, उन सभी के मन में सर्वेक्षण के परिणामों को जानने की स्वभाविक इच्छा होती है। उनकी संतुष्टि के लिए भी रिपोर्ट को तैयार किया जाता है।

पंचम : जब अनुसंधान–कार्य किसी डिग्री या डिप्लोमा प्राप्त करने के लिए किया जाता है तो उस उद्देश्य की पूर्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक कि रिपोर्ट प्रस्तुत न की जाए।

षष्ठ : अंत में, प्रायः सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त नवीन तथ्य इतने रोचक व रुचिकर प्रतीत होते हैं कि स्वयं अनुसंधानकर्ता उनके परिणामों को अन्य लोगों को भी दिखाने व आत्मगौरव प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहता है।

अनुसंधान की एक व्यवस्थित रिपोर्ट तैयार हो जाने से उपरोक्त सभी छः उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती है।

टिप्पणी

4. **विषयों में अंतर्निहित वास्तविक स्थिति को समझाना :** रिपोर्ट का उद्देश्य केवल अनुसंधान के निष्कर्षों या परिणामों को व्यक्त करना ही नहीं अपितु उन्हें एक व्यवस्थित व वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करना है कि अध्ययन–विषय के विभिन्न पक्षों की वास्तविकताएं स्वतः ही प्रकट हो जाएं और उस रिपोर्ट को पढ़ने वाला प्रत्येक व्यक्ति उनमें अंतर्निहित वास्तविक स्थिति तथा अंतर्संबंधों को स्पष्ट रूप में समझ सके। सर्वेक्षण या शोध की सार्थकता, विषय को केवल स्वयं समझ लेने में नहीं अपितु दूसरों को भी समझाने में है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी रिपोर्ट इस ढंग से तैयार की जाती है कि विषय में रुचि रखने वाले सभी व्यक्ति उसे पढ़कर लाभ उठा सकें तथा अनुसंधान से प्राप्त नवीन तथ्यों व उनके सामाजिक परिणामों को समझ सकें।
5. **वैधता की जांच :** जब तक शोध या सर्वेक्षण रिपोर्ट को तैयार नहीं किया जाएगा, तब तक इस बात की जांच नहीं की जा सकती कि वह अध्ययन प्रामाणिक व प्रयोग सिद्ध है अथवा नहीं। रिपोर्ट की जांच करके ही यह बताया जाता है कि अनुसंधान में शुद्ध तथा यथार्थ सामग्री के आधार पर निष्कर्ष निकाले गए हैं अथवा केवल अनुमान और संदेहात्मक सूचना ही अध्ययन का आधार है। रिपोर्ट में वर्णित तथ्य व निष्कर्ष सार्वजनिक रूप से प्रकाशित एक विषय बन जाता है। (यदि रिपोर्ट को सरकार के द्वारा गुप्त न रखा जाए)। अतः यदि किसी को भी अध्ययन की वैधता के संबंध में संदेह होता है तो वह स्वयं फिर से अनुसंधान कर उसके निष्कर्षों की परीक्षा व पुनःपरीक्षा कर सकता है। इस प्रकार की परीक्षा व पुनःपरीक्षा से या तो पहले वाले अध्ययन की वैधता सिद्ध होती है अथवा उसके निष्कर्षों को तथ्यपूर्ण रूप में गलत प्रमाणित किया जाता है। दोनों ही दशाओं में विज्ञान की प्रतिष्ठा बढ़ती है। इसलिए यह कहा जाता है कि परीक्षा व पुनर्परीक्षा के योग्य होना वैज्ञानिक अध्ययन का सबसे उल्लेखनीय गुण है। अतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी रिपोर्ट तैयार करना आवश्यक हो जाता है।

रिपोर्ट निर्माण के सिद्धांत

1. रिपोर्ट अथवा प्रतिवेदन को पाठकों की श्रेणियों के अनुसार तैयार किया जाना चाहिए। पाठक तीन श्रेणियों में विभाजित किए जा सकते हैं–(क) विशेषज्ञ, (ख) जन–साधारण, (ग) प्रायोगिक अनुसंधानकर्ता। प्रतिवेदन का उद्देश्य अनुसंधानकर्ता के साथ–साथ संचार स्रोताओं के साथ संचार करना है।
2. प्रतिवेदन स्पष्ट तथा सार्थक होना चाहिए।
3. प्रतिवेदन के अंतर्गत विस्तार एवं सूक्ष्मता का उचित समावेश होना चाहिए।
4. प्रत्येक स्थान पर समझने के लिए आवश्यक सूचना अवश्य दी होनी चाहिए।
5. पाठकों को समालोचना हेतु पर्याप्त सूचना प्रदान की जानी चाहिए।
6. धनात्मक एवं ऋणात्मक दोनों ही प्रकार के निष्कर्षों के साथ ही उन मदों का भी उल्लेख किया जाना चाहिए जिनसे अनुसंधानकर्ता किसी भी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है।

7. यथासंभव अध्ययन के परिणामों को अन्य अध्ययनों के परिणामों तथा सामान्य समस्याओं से संबंधित किया जाना चाहिए।
8. यथासंभव कार्य–रीतियों, विशिष्टि–समस्याओं तथा अन्य शीर्षकों से संबंधित ऐसी सूचनाओं को सम्मिलित किया जाना चाहिए जो अन्य अनुसंधानकर्ता के लिए अभिरुचिपूर्ण हों।
9. सार्थकता परीक्षणों से प्राप्त परिणामों को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जाना चाहिए।
10. फुटनोटों (Footnotes) का प्रयोग आवश्यकतानुसार अवश्य ही किया जाना चाहिए।
11. व्यवहारिक अनुसंधान प्रतिवेदन में यह भी स्पष्ट रूप से बताया जाना चाहिए कि अनुसंधान परिणामों का प्रयोग किस प्रकार किया जा सकता है तथा इनकी प्रायोगिकता संबंधी सीमाएं क्या हैं ?
12. प्रतिवेदन का कार्य, प्ररचना तैयार होते ही आरंभ कर दिया जाना चाहिए तथा शीघ्रातिशीघ्र समाप्त किया जाना चाहिए।
13. अंतरिम प्रतिवेदन (Interim Reports) तैयार करते रहना चाहिए। ऐसा करना विशेष रूप से व्यवहारिक अनुसंधान में आवश्यक है।
14. प्रतिवेदन यथासंभव सूक्ष्म होने चाहिए।

रिपोर्ट की विशेषताएं एवं रूपरेखा

एक अच्छी रिपोर्ट की विशेषताओं के संबंध में विद्वानों में मतभेद हो सकता है, क्योंकि 'अच्छे'–'बुरे' की अवधारणा सबके लिए समान नहीं होती। फिर भी सर्वेक्षण की प्रक्रिया और रिपोर्ट को तैयार करना एक "टेकनिकल" काम होने के कारण, एक अच्छी रिपोर्ट की कुछ आधारभूत विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है। वे विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. एक अच्छी रिपोर्ट का बाह्य रूप स्वच्छ तथा आकर्षक होता है। सफेद रंग के अच्छे किस्म के कागज पर स्पष्ट तथा सुन्दर ढंग के टाइप से रिपोर्ट को छपवाया जाता है। साथ ही, उसे अधिक आकर्षक बनाने के लिए अकर्षक शीर्षकों, चित्रों, फोटों आदि का प्रयोग भी आवश्यकतानुसार किया जाता है।
2. रिपोर्ट की भाषा अत्यधिक सन्तुलित होती है। पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग आवश्यकतानुसार अवश्य ही करना पड़ता है। पर इस संबंध में, जैसा कि डॉ. श्यामचरण दुबे का सुझाव है, विषय का स्पष्टीकरण लेखक का उद्देश्य होता है और इसकी सिद्धि के लिए पारिभाषिक शब्दावली–संबंधी सैद्धांतिक मतभेदों के प्रति लेखक किसी भी प्रकार के विशिष्ट–आग्रह अथवा दुराग्रह को अपनाता नहीं। साथ ही, इन बातों का भी ध्यान रखा जाता है कि पारिभाषिक शब्दावली के अत्यधिक प्रयोग से रिपोर्ट कहीं इतनी बोझल और क्लिष्ट न हो जाए कि उसे समझने के लिए विशेषज्ञों की सहायता लेनी पड़े; दूसरी ओर, रिपोर्ट की भाषा में आलंकारिकता तथा साहित्यिक शैली भी इतनी अधिक न हो कि तथ्यों की वास्तविकताओं पर कोई दूसरा ही रंग चढ़ जाए या तथ्यों को बढ़ा चढ़ाकर कहने

से सत्यता प्रगट न हो सके। अतः भाषा तथा शैली के सौंदर्य की ओर झुककर रिपोर्ट को अतिश्योक्तिपूर्ण तथा अस्वाभाविक बना देने की प्रकृति से दूर रहकर ही संतुलित भाषा में रिपोर्ट को तैयार किया जाता है।

3. एक अच्छी रिपोर्ट में एक ही प्रकार के तथ्यों को बार–बार दोहराया नहीं जाता, क्योंकि ऐसा करने से रिपोर्ट को पढ़ते समय पाठक ऊब जाते हैं। तथ्यों में तार्किक क्रम अवश्य रहता है। अर्थात स्वतंत्र रूप से समझे जाने वाले तथ्य पहले आ जाते हैं और वे तथ्य बाद में प्रदर्शित किए जाते हैं जिनको समझने के लिए दूसरे तथ्यों की आवश्यकता पड़ती है।
4. एक अच्छी रिपोर्ट में तथ्यों का विश्लेषण व व्याख्या वैज्ञानिक तौर पर और सुस्पष्ट रूप में होती है ताकि रिपोर्ट को पढ़कर ही लोगों को यह विश्वास हो जाए कि रिपोर्ट में जो कुछ कहा गया है वह काल्पनिक नहीं है अपितु तथ्ययुक्त तथा प्रयोग–सिद्ध है। इसके लिए सूचनाओं के स्रोतों का उल्लेख रिपोर्ट में पृष्ठतल–टिप्पणियों आदि के रूप में प्रत्येक अध्ययन में दे दिया जाता है।
5. एक अच्छी रिपोर्ट में जो भी निष्कर्ष निकाले जाते हैं वे सभी प्रामाणिक, विश्वसनीय तथा वैज्ञानिक विकास के उपयुक्त रूप में प्रमाण–सहित प्रस्तुत किए जाते हैं अर्थात उन कारणों का भी उल्लेख किया जाता है जिन पर कि वह निष्कर्ष आधारित हैं।
6. एक अच्छी रिपोर्ट में व्यावहारिकता का तत्व भी स्पष्ट होता है। अर्थात उच्चस्तरीय रिपोर्ट इस प्रकार की होती है कि उसे पढ़कर अधिक–से–अधिक लोग लाभ उठा सकें। इस प्रकार की रिपोर्ट से केवल ज्ञान की ही वृद्धि नहीं अपितु कुछ व्यावहारिक लाभ भी होता है। अच्छी रिपोर्ट सामाजिक प्रगति व समाज–सुधार से संबंधित भविष्य–योजनाओं के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान करती है।
7. एक अच्छी रिपोर्ट में अध्ययन–पद्धति व प्रविधियों, अध्ययन क्षेत्र, निदर्शन आदि के संबंध में स्पष्ट तथा विस्तृत विवरण होता है और साथ ही सूचना के सभी स्रोतों का उल्लेख किया जाता है। ऐसा करने का उद्देश्य यह होता है कि यदि किसी भी व्यक्ति को अध्ययन के निष्कर्षों के संबंध में संदेह हो तो वह रिपोर्ट में उल्लेखित प्रविधियों आदि की सहायता से उन निष्कर्षों की वैधता की जांच कर सकता है।
8. एक अच्छी रिपोर्ट के अध्ययन में आई कठिनाइयों तथा सर्वेक्षण की सीमाओं का भी स्पष्ट रूप में उल्लेख होता है। दूसरे शब्दों में, कमियों को छिपाकर अध्ययन के पूर्णतया यथार्थ होने की डींग नहीं हांकी जाती है। ऐसा न करने का एक और उद्देश्य होता है और वह यह है कि अध्ययन की कठिनाइयों व कमियों को ईमानदारी से स्वीकार करने पर भविष्य के अध्ययनों में अन्य सर्वेक्षणकर्ताओं को पहले से ही उनके संबंध में सचेत रहने तथा उन्हें दूर करने के लिए आवश्यक कदम उठाने का अवसर मिलता है।

रिपोर्ट की रूपरेखा

एम. पार्टन ने प्रतिवेदन की निम्नलिखित रूपरेखा प्रस्तुत की है–

1. **प्रस्तावना संबंधी सामग्री** : (अ) शीर्षक पृष्ठ, (ब) संदर्भ सारिणी, (स) उदाहरणों, सारिणियों एवं चार्टों की सूची, (द) प्रस्तावना, प्राक्कथन अथवा संचारण पत्र, (य) परिणामों का सारांश, सार अथवा संस्तुतियां।

2. **प्रतिवेदन का विषय** : (अ) परिचय विषय जिस पर लिखा जा रहा है– (क) उद्देश्य–समस्या का कथन एवं परिभाषा, (ख) विषय क्षेत्र–सर्वेक्षण का समय, स्थान एवं सामग्री, (ग) संगठन एवं कार्यरीति (यहां सामान्य विवरण होना चाहिए किंतु विस्तुत विवरण परिशिष्टों में होना चाहिए)

   (i) प्रयोग में लाए गए ढंग एवं प्रविधियां, (ii) अनुसूचियां अथवा प्रश्नावलियां अथवा प्रयुक्त पत्रों की प्रतिलिपियां, (iii) इन्हें कभी–कभी परिशिष्टों में भी रखा जाता है।

   (ब) परिणामों का विश्लेषण एवं प्रस्तुतीकरण– (क) तथ्यों का प्रतिवेदन आंकड़ों, सारिणियों, रेखाचित्रों इत्यादि का प्रस्तुतीकरण, (ख) आंकड़ों का विश्लेषण एवं विवेचन, (ग) प्रस्तुत किए गए आंकड़ों पर आधारित निष्कर्ष एवं संभव संस्तुतियां, (घ) आवश्यक सामग्री का सूक्ष्म सारांश (यदि यह ऊपर एक में नहीं दिया गया है)।

3. **पूरक सामग्री** : (अ) परिशिष्ट (इनमें प्रायः सर्वेक्षण में प्रयुक्त प्रतिदर्शन एवं अन्य प्रणालियों का विस्तृत प्रतिवेदन होता है), (ब) ग्रंथ सूची, (स) सूची, (द) शब्द–संग्रह (यदि परिभाषा की आवश्यकता रखने वाले वैज्ञानिक शब्दों का प्रयोग किया हो)।

   यदि अनुसंधान कार्य विभिन्न चरणों में किया गया है तो रैचले मार्क्स द्वारा प्रस्तावित निम्नलिखित रूपरेखा को प्रयोग में लाया जा सकता है।

   शीर्षक

   1. सामान्य परिचय, 2. सामग्री एवं ढंगों का सामान्य विवरण, 3. प्रथम चरण– (अ) परिचय (ब) सामग्री एवं ढंग, (स) परिणामों का प्रस्तुतीकरण, (द) परिणामों पर विचार–विमर्श 4. द्वितीय चरण : (अ) परिचय, (ब) सामग्री एवं ढंग, (स) परिणामों का प्रस्तुतीकरण, (द) परिणामों पर विचार–विमर्श 5. तृतीय चरण : (अ) परिचय, (ब) सामग्री एवं ढंग, (स) परिणामों का प्रस्तुतीकरण, (द) परिणामों पर विचार–विमर्श 6. सामान्य विचार–विमर्श।

शोध रिपोर्ट का मूल्यांकन एवं प्रकाशन

एक अच्छे प्रतिवेदन की प्रमुख कसौटियां निम्नलिखित निश्चित की जा सकती हैं–

1. क्या प्रतिवेदन में शोध समस्या (प्राक्कल्पना) को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया है?
2. क्या प्रतिवेदन में अध्ययन की सामग्री एवं विषय–क्षेत्र को स्पष्ट रूप से लिखा गया है?
3. क्या प्रतिवेदन में प्रयोग की गई अवधारणाओं को परिभाषित किया गया है?

4. क्या प्रतिवेदन में तथ्य–संकलन की प्रविधियों का स्पष्ट वर्णन किया गया है?
5. क्या प्रतिवेदन में वर्गीकरण, संकेतीकरण, सारणीयन एवं अन्य उदाहरणों संबंधी सामग्री का उपयोग तर्कसंगत, क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित रूप से किया गया है?

टिप्पणी

6. क्या प्रतिवेदन को कहीं तोड़–मरोड़ कर तो प्रस्तुत नहीं किया गया है?
7. क्या शोध की सीमाओं का स्पष्ट वर्णन किया गया है?
8. क्या पाठकों की दृष्टि से प्रतिवेदन की भाषा, शैली आदि सरल और बोधगम्य है?
9. क्या प्रतिवेदन को व्यवस्थित एवं सावधानीपूर्वक तरीकों से प्रस्तुत किया गया है?
10. क्या परिणामों की शोधकर्ता ने, अन्य संबंधित उपलब्ध शोध–परिणामों से तुलना की है?
11. क्या शोधकर्ता ने विषय से संबंधित भविष्य में शोध की संभावनाओं के लिए सुझाव दिए हैं?

अनुसंधान के प्रतिवेदन का प्रकाशन एवं उसकी सफलता अनेक कारकों पर आधारित होती है।

कुछ प्रमुख कारकों को यहां पर प्रस्तुत किया जा रहा है–

1. प्रतिवेदन के विषय की रुचि का क्षेत्र क्या है? उसके पाठक किस वर्ग एवं श्रेणियों के हैं? उनकी संभावित संख्या क्या होगी? प्रतिवेदन का पाठक–समाज में महत्त्व क्या होगा?
2. प्रतिवेदन का आकार, पृष्ठों की संख्या तथा प्रत्येक पृष्ठ पर शब्दों की संख्या कितनी होगी? सारणियों, रेखाचित्रों आदि की संख्या एवं प्रकृति कैसी है?
3. प्रतिवेदन का प्रकाशन–मूल्य कितना होगा? उसका विक्रय–मूल्य कितना होगा? प्रकाशक एवं शोधकर्ता का लाभ का क्या प्रतिशत होगा?
4. संस्करण का आकार क्या होगा?
5. प्रतिवेदन के भविष्य में संस्करणों के प्रकाशन की क्या संभावनाएं हैं?
6. प्रतिवेदन के शोधकर्ता की योग्यता क्या हैं? उसके प्रतिवेदन की सफलता की संभावना क्या है?

4.4.3 गुणात्मक आंकड़ों का प्रारूप और प्रसंस्करण

गुणात्मक आंकड़ों का तात्पर्य अनुसंधान पद्धतियों की सहायता से आंकड़ों का संग्रह है। स्पष्टता और पूर्णता इन पद्धतियों की विशेषताएं हैं। अनुसंधानकर्ता इन पद्धतियों का उपयोग लोगों के संसार के प्रत्यक्ष अनुभवों को ग्रहण करने और उन अनुभवों में संसार के प्रति अपने दृष्टिकोणों से अर्थ जोड़ने के उद्देश्य से करते हैं। आम तौर पर गुणात्मक आंकड़ों के संग्रह के लिए किसी एक की नहीं, बल्कि कई पद्धतियों अथवा तकनीकों की आवश्यकता होती है। इसलिए आंकड़ों के प्रकारों में सूक्ष्म अथवा असंगठित साक्षात्कार, क्षेत्रीय टिप्पणियां, असंगठित क्षेत्रीय दैनंदिनियां (डायरियां), व्यक्तिगत दस्तावेज, छायाचित्र आदि आ जाते हैं। गुणात्मक अनुसंधान की आरंभिक अवस्था में उसका अर्थ होता है विशाल आंकड़े प्रस्तुत करना, बावजूद इसके कि अनुसंधानकर्ता ने जिस प्रतिदर्श (नमूने) का उपयोग किया हो उसका आकार छोटा हो।

हम कल्पनाओं के बिना गुणात्मक आंकड़ों का विश्लेषण नहीं कर सकते। किंतु, कल्पनाओं को आंकड़ों के विश्लेषण से ही जांचा और आकार दिया जा सकता है। जिस प्रकार आमलेट बनाने के लिए अंडों को तोड़ना और फेंटना पड़ता है, उसी प्रकार विश्लेषण में भी आंकड़ों को छोटे–छोटे टुकड़ों में बांटकर उनकी एक साथ निराई–गुड़ाई करनी पड़ती है, ताकि ये आंकड़े अपने अवयवों में स्पष्ट हो सकें, और उनके चारित्रिक तत्व सामने आ सकें। इस अर्थ में आप कह सकते हैं कि आंकड़ों के प्रक्रमण के कार्य को हम दो भागों में बांट सकते हैं, अर्थात–

- आंकड़ों की जांच और रूपांतरण करना (अंडों को तोड़ना)।
- तात्विक आंकड़ों का सृजन करना (साथ मिलाकर फेंटना)।

आंकड़ों की जांच और रूपांतरण की प्रक्रिया में निम्नलिखित तथ्य आते हैं–

(क) आंकड़ों की पूर्णता और गुणवत्ता के साथ–साथ आंकड़ों (जैसे साक्षात्कार, क्षेत्र टिप्पणियां, श्रव्य/दृश्य का अभिलेखन आदि) में संबंध और गोपनीयता की जांच करना।

(ख) आंकड़ों को एक ऐसे स्वरूप में बदलना अथवा स्थानांतरित करना, जो वितरण के लिए उपयुक्त हो। इस स्थिति में आंकड़ों की पूर्णता और गुणवत्ता (भौतिक स्थिति, पठनीयता/श्रव्यता, पुनः उपयोगिता के संदर्भ में) की जांच के अतिरिक्त किसी अनुसंधानकर्ता को गोपनीयता/गुमनामी, प्रतिषेध, अंकरूपण के लिए उपयुक्तता आदि से संबद्ध किसी भी समस्या को सामने लाना चाहिए।

हमने गोपनीयता/गुमनामी (अवैयक्तिकीकरण/अनामिकता) शब्द की चर्चा की है। आइए, अब इस शब्द की व्याख्या करें।

इसका अर्थ प्रत्यर्थियों अथवा किसी अन्य व्यक्ति या संस्था की गोपनीयता बनाए रखना है। अनुसंधान में गोपनीयता/गुमनामी (अवैयक्तिकीकरण/अनामिकता) के स्तर पर आप पहुंचते हैं, उसकी चर्चा करना आवश्यक होता है। कुछ मामलों में, आंकड़ों से छेड़–छाड़ किए बिना अनुसंधान के विषयों की पहचान को छिपाना आसान नहीं होता, पर यह छेड़–छाड़ उचित नहीं है। इसका अर्थ यह है कि किसी अन्य प्रयोजन से ऐसे आंकड़ों का पुनः उपयोग करना कठिन हो सकता है।

किसी आंकड़ा समुच्चय (डेटासेट) के लिए आप गोपनीयता के किस स्तर का उपयोग करें, यह अनुसंधान के स्वरूप पर निर्भर करता है और प्रत्येक स्थिति के सरोकारों का अपना एक विशिष्ट विन्यास होता है। इस संदर्भ में यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी नैतिक और विधिक स्वरूप के विषयों में जहां आग्रह हो, वहां गोपनीयता का पालन किया जाए। व्यावहारिक दृष्टि से, इस सब का अर्थ यह है कि आप सभी अभिज्ञापकों (आइडेंटिफायर) को हटाकर उनके स्थान पर, जहां उपयुक्त हो, छद्म नाम रखें। ध्यान रहे कि पूरे अनुसंधान में छद्मनामों का ही उपयोग हो। यह ध्यान भी विशेष रूप से रखना चाहिए कि आंकड़ों में किसी भी प्रकार की कोई निंदात्मक और अपमानजनक टीका–टिप्पणी कतई न हो। तात्विक आंकड़ों के सृजन की दूसरी प्रक्रिया का तात्पर्य संदर्भ की उस जानकारी से है, जो प्रक्रमण के दौरान कोई अनुसंधानकर्ता प्राप्त करता है, उदाहरण के लिए जीवनीपरक जानकारी देते हुए आप आंकड़ों की सूचियां बना सकते हैं, जो लिखित प्रतिलिपियों की पहचान को आसान बना सकते हैं अथवा यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि प्रत्यर्थी तथा साक्षात्कारकर्ता के नाम और प्रश्न/विषय की संदर्शिका के शीर्ष यथास्थान हों।

विश्लेषण एवं विवरण

टिप्पणी

विश्लेषण का उद्देश्य विवरण भर नहीं, बल्कि चित्रण, व्याख्या, समझ और संभवतः आगम कथन भी है। विवरण विश्लेषण के आधार पर कार्य करता है, जो पुनः अगले विवरण के लिए आधार तैयार करता है। आंकड़ों से संप्रत्यय ग्रहण करने के लिए हम अपने आंकड़ों का विभाजन करते हैं, जिसका पुनः आंकड़ों के वर्गीकरण के लिए उपयोग किया जाता है। हम अलग–अलग संकल्पनाओं के बीच कड़ियां जोड़ते हैं और ये कड़ियां फिर और अधिक विवरण का आधार तैयार करती हैं।

गुणात्मक विश्लेषण का पहला चरण अध्ययन के अधीन घटना के व्यापक विवरणों का विकास करना है।

गीर्त्ज (1973 बी) ने ''सांगोपांग विवरण (थिक डिस्क्रिप्शन)'' की अवधारणा दी। ''संक्षिप्त विवरण'' के विपरीत, जिसमें केवल तथ्यों का उल्लेख होता है, ''सांगोपांग विवरण'' में तीन विषयों की सूचना होती है – (क) किसी कार्य का संदर्भ, (ख) कर्ता के कार्य का अभिप्राय और अर्थ का श्रेय देना और (ग) प्रक्रिया जिसमें घटना चलती है।

आइए, इन बिंदुओं पर किंचित विचार करें–

- **संदर्भ** : ''संदर्भ'' से हमारा तात्पर्य कार्यकलाप को सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पृष्ठाधार के भीतर रखना है जिसके निमित्त यह होता है। संदर्भ अर्थ के लिए महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि अर्थ का संप्रेषण ''सही ढंग से'' तभी होता है जब संदर्भ भी समझ में आ जाए।
- **अभिप्राय** : गुणात्मक विश्लेषण में जिस रूप में कार्यकलाप संयोजित हो उसमें पात्रों द्वारा अंतर्निविष्ट व्यक्तिपरक अर्थों को समझने पर अत्यधिक जोर दिया जाता है।
- **प्रक्रिया** : प्रक्रिया के सिद्धांत का संबंध रूपांतरण से होता है। प्रक्रिया पर विचार करने में, हम अपना ध्यान संदर्भ और अभिप्रायों से हटाकर घटना के परिणामों पर ले जाते हैं। उदाहरणस्वरूप, पुराने सोवियत संघ में सन् 1980 के दशक के मध्य मिखाइल गोर्वाचोव की ''पेरेस्त्रोइका'' की नीति से आप संभवतः अवगत हैं। इसका संदर्भ अर्थव्यवस्था और समाज पर राज्य के नियंत्रण की क्षमता के प्रति मोहभंग था। गोर्वाचोव की सोच संभवतः एक अपेक्षाकृत अधिक न्यायसंगत, उदार व्यवस्था कायम करने की थी। किंतु परिणाम सोवियत संघ के विघटन और अमेरिका के प्रभाव में एक एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था के प्रति झुकाव के रूप में सामने आए।

वर्गीकरण

इसमें हमारे आंकड़ा पिंड का कुछ खास विशेषताओं पर आधारित ''वर्गों'' में संयोजन किया जाता है, जो आगे किसी संप्रत्यात्मक ढांचे के विकास में हमारी सहायता करता है, जिससे कार्यकलापों और घटनाओं को बोधगम्य बनाया जा सकता है। आपने निश्चय ही जिगसॉ पजल का खेल खेला है। अपने आंकड़ों पर जिगसॉ के सैकड़ों छोटे–छोटे अंशों के रूप में विचार करें, जिन्हें सावधानीपूर्वक रखा जाना चाहिए ताकि परिणाम का चित्र उस सामाजिक यथार्थ का एक सही रूप प्रस्तुत करे, जिसका आपने

अध्ययन किया है। आप इस चित्र को जोड़ें कैसे? अंशों के अलग–अलग समूह बनाकर। संभव है कि सभी ''नीले अंशों'' के मिलने से आकाश, ''हरे अंशों'' के मिलने से वन और ''भूरे'' अंशों के मिलने से पृथ्वी बने। कुछ खास विशेषताओं के अनुरूप आंकड़ों का समूहों में संयोजन श्रेणी निर्धारण की एक प्रक्रिया है। वर्गीकरण और श्रेणी निर्धारण हमेशा अनुसंधान के उद्देश्यों के अनुरूप होने चाहिए।

वर्णन और वर्गीकरण करना अपने आप में प्रयोजन नहीं हैं, किंतु वे एक अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण प्रयोजन को पूरा करने में सहायता करते हैं, अर्थात हमारे विश्लेषण का एक वृत्तांत प्रस्तुत करने में। जिन संप्रत्ययों का हम विकास करते हैं, वे मूलभूत अंग के समान होते हैं, जिन्हें सिद्धांतों के गारे से मिला होना चाहिए। हमें चर कारकों के बीच संबंधों का पता लगाना और आंकड़ों में प्रतिमानों को समझने का प्रयास करना चाहिए, ताकि हम अनियमितताओं के साथ–साथ रूपांतर व अपवादों को पहचान सकें।

सैद्धांतिक कूटलेखन (कोडिंग)

अपने आंकड़ों का विश्लेषण करने के लिए हमें इन्हें आपस में बातचीत करते हुए पढ़ना है, और निरंतर ''क्यों''? ''क्या''? ''कब''? ''कहां?'' और ''कैसे'' जैसे प्रश्न पूछते रहना है। इससे हमारे आंकड़े खुलेंगे और एक सृजनात्मक तरीके से इस पर सोचने में हमें सहायता मिलेगी। क्षेत्र सामग्री का संग्रह हो जाने पर, इसके प्रक्रमण के लिए उन अनुसंधानकर्ताओं को कठिन परिश्रम करना पड़ता है, जिन्हें क्षेत्र आंकड़ों के संचालन का अनुभव नहीं होता। यहां हमारा मुख्य सरोकार क्षेत्र सामग्री के सैद्धांतिक कूटलेखन से है। कूटलेखन का मुख्य कार्य सूचीपत्रों में सामग्री का कूट के उपयुक्त स्वरूप में रूपांतरण करना है। कूटलेखन (गूढ़लेखन) को एक थकाऊ और अतृप्त कार्य माना जाता है। इसके अतिरिक्त, यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें मात्रात्मक और गुणात्मक आंकड़ों के विश्लेषण की विधियां एक दूसरी की सहायता और संवर्धन करती हैं। उदाहरण के लिए, टर्नर (1957 और 1961) ने Unsacw/सोशल स्ट्रक्चर के अपने विवरण में ग्राम संरचना की गुणात्मक सामग्री का उपयोग किया है। अब हम कुछ तकनीकों और कार्यविधियों पर विचार करें, जिनसे हमें गुणात्मक आंकड़ों को समझने में सहायता मिलेगी।

''सैद्धांतिक कूटलेखन (गूढ़लेखन) एक 'आधारिक सिद्धांत (ग्राउंडेड थियॉरी)' का विकास करने की पहली विवेचित कार्यविधि है। इस कार्यविधि का प्रवर्तन ग्लेजर तथा स्ट्रॉस (1967) ने किया और फिर ग्लेजर (1978), स्ट्रॉस (1987) और स्ट्रॉस एवं कॉर्बिन (1990) ने इसकी व्याख्या की। कूटलेखन से आंकड़ों का विभाजन–वर्गीकरण और सार तैयार करने के साथ–साथ उन्हें नए रूप में प्रस्तुत करने में सहायता मिलती है। आधारिक सिद्धांत 'एक समृद्ध, सघन ताने–बाने वाला, व्याख्यात्मक सिद्धांत है, जो उस यथार्थ का सूक्ष्म आकलन करता है, जिसका वह निरूपण करता है'।'' (स्ट्रॉस एवं कॉर्बिन, 1990 : 57)।

आधारिक सिद्धांत में विश्लेषण में तीन मुख्य प्रकार के कूटलेखनों का समावेश होता है, अर्थात्

- विशद (विवृत) कूटलेखन;

- अक्षीय कूटलेखन; और
- चयनात्मक कूटलेखन

टिप्पणी

विशद (विवृत) कूटलेखन

विशद (विवृत) कूटलेखन का अर्थ आंकड़ों की गहन जांच करना है ताकि घटना को नाम देकर श्रेणीबद्ध किया जा सके। किसी साक्षात्कार से उसकी प्रतिलिपि की किसी टिप्पणी, किसी वाक्य, किसी पैरा को अलग कर उसे नाम दिया जाता है जो उस घटना का अर्थ बताता या निरूपण करता है। हम प्रश्न पूछते हैं, जैसे ''यह क्या है?'' ''यह किसका निरूपण करता/करती है?'' इस प्रक्रिया में हम तुलना करते हैं ताकि समान घटनाओं को समान नाम दिया जा सके।

मान लें, आप इस विषय पर कोई अनुसंधान कर रहे हैं कि बच्चे साथ मिलकर किस प्रकार खेलते हैं। आप किसी बच्चे को कोई खिलौना किसी दूसरे बच्चे से दूर रखते देखते हैं, और आप इसे 'हथियाना' नाम देते हैं। फिर आप दूसरे बच्चे को उसका खिलौना 'छिपाते' देख सकते हैं, कोई तीसरा बच्चा अपने खिलौने को बचाने के लिए अन्य बच्चों के साथ खेलने से 'बचता' दिखाई दे सकता है। इस प्रकार आप नाम पर नाम देते जाएंगे, पर इसका कोई फल नहीं निकलेगा। आपको श्रेणियों के रूप में अपने संप्रत्ययों को एक साथ समूहों में बांटना चाहिए। आप स्वयं से पूछ सकते हैं कि 'हथियाना', छिपाना और 'बचना' किस बात का संकेत देते हैं, और फिर निष्कर्ष निकालना चाहिए कि ये सब ''एक खिलौने को साझा करने से बचने की युक्तियां'' हैं।

स्ट्रॉस और कॉर्बिन (1990 : 70) सलाह देते हैं कि श्रेणियां तैयार कर लेने के बाद, उनके गुणों को पहचानना और फिर आकार देना चाहिए, यानी विषय–सामग्री की यथासंभव सटीक व्याख्या करने के लिए उन्हें एक सतत श्रृंखला के समानांतर रखा जाना चाहिए।

अब हम 'रंग' की श्रेणी पर विचार करें। इसके गुणों में छांव (धुंधलापन), गाढ़ापन, विविध रंग, आदि हो सकते हैं। इनमें से प्रत्येक गुण को आकार दिया जा सकता है; यानी, श्रृंखला के समानांतर उनमें अंतर होता है। यह रंग क्रमिक रूप से गाढ़े से फीका; विविध रंग में गाढ़े से हलका, आदि हो सकता है। स्ट्रॉस और कॉर्बिन पहले साक्षात्कार की एक–एक पंक्ति का विश्लेषण करने की सलाह देते हैं, ताकि संप्रत्ययों और श्रेणियों का सृजन आसानी से हो सके। फिर, एक–एक पैरा का या फिर समस्त प्रलेख अथवा स्थिति का विश्लेषण किया जा सकता है। कूटलेखन के प्रयास जारी रखना जरूरी है, जैसे श्रेणियों के सृजन, जिनका उपयोग तुलना करने में किया जा सकता है, के लिए मूल विषय का विभाजन करना और उसे समझना। विशद (विवृत) कूटलेखन के पश्चात 'कूट टिप्पणियों', जिनमें कूट सामग्री की व्याख्या होती है, के साथ कूटों और श्रेणियों की एक सूची तैयार की जानी चाहिए, जो मूल विषय के साथ–साथ ही हो। 'स्मरण लेख', जिनमें सामग्री की टिप्पणियां होती हैं, और इसके प्रति आपके विचार भी आधारिक सिद्धांत के विकास में बड़ी भूमिका निभाते हैं।

अक्षीय कूटलेखन

विशद (विवृत) कूटलेखन का अगला चरण तैयार की गई श्रेणियों का सुधार और उन्हें पृथक करना है। उन श्रेणीबद्ध श्रेणियों का चयन कर लिया जाता है, जिनमें और विकास की संभावना रहती है। अक्षीय कूटलेखन में, घटना को जन्म देने वाली

कारण—प्रतिबंध (कॉजल कंडिशंस) के संदर्भ में, घटना के गुणों के संदर्भ में उसके स्थान, प्रसंग, संचालन, प्रबंध, किसी निष्पादित कार्य/परस्पर व्यवहार के प्रसंग और परिणामों के संदर्भ में घटना की प्रतिक्रिया हेतु उपयोग की गई कार्य/परस्पर व्यवहारजन्य नीतियों के लिए श्रेणियों का सृजन किया जाता है। अक्षीय कूटलेखन में, तैयार किये गए कूटों और कूट टिप्पणियों से अनुसंधान प्रश्न के लिए सर्वाधिक प्रासंगिक श्रेणियों का चयन किया जाता है। फिर इन प्रासंगिक कूटों के साक्ष्य के रूप में पाठ में कई अलग—अलग उद्धरणों की आवश्यकता होती है।

चयनात्मक कूटलेखन

चयनात्मक कूटलेखन तीसरा चरण है, जो अक्षीय कूटलेखन को कल्पना के एक उच्च स्तर पर जारी रखता है। इसका लक्ष्य उस मुख्य श्रेणी को सामने लाना है, जिनके इर्द—गिर्द अन्य श्रेणियों को व्यवस्थित किया जा सके। दूसरे शब्दों में, यह ''स्थिति की कहानी'' को सामने लाता है। स्थिति की कहानी का तात्पर्य कहानी की रूपरेखा तैयार करने से पहले उसे संक्षेप में लिखना है। आप देखेंगे कि कूटलेखन पद्धति नितांत एक विवेचनात्मक पद्धति है। संदर्भ के अध्ययन और मूल विषय के अर्थ से, अनुसंधानकर्ता कूट एवं श्रेणियों के निरूपण के लिए अपनी व्याख्यात्मक क्षमताओं का उपयोग करते हैं, उन्हें कल्पना के उच्च स्तर पर ले जाते हैं और फिर किसी कहानी या वृत्तांत का सृजन करते हैं, जो समस्त आंकड़े के लिए उपयुक्त होता है। अनुसंधानकर्ता कह सकते हैं कि ''इन स्थितियों में, यही होता है।'' (स्ट्रॉस एवं कॉर्बिन, 1990 : 131)।

विषय—वस्तु का विश्लेषण

विषय—वस्तु का विश्लेषण मौलिक सामग्री, वे साक्षात्कार हों अथवा संचार माध्यम की सामग्री, के विश्लेषण की एक पारंपरिक प्रक्रिया है। यह कूटलेखन से इस अर्थ में भिन्न है कि आंकड़ों से ही श्रेणियों के सृजन की बजाय, इसमें बाहर से ली गईं श्रेणियों का उपयोग किया जाता है और उनके निमित्त आनुभविक सामग्री को ''जोड़'' दिया जाता है, किंतु ऐसा करते समय श्रेणियों में यथा आवश्यक सुधार कर लिया जाता है। गुणात्मक विषय विश्लेषण का लक्ष्य सामग्री को छोटा करना है ताकि उसे आनंददायक बनाया जा सके। क्लाइव रिक (1998) के गुणात्मक विषय विश्लेषण की तकनीकों के विवरण से ली गई नीचे प्रस्तुत सामग्री शिक्षण से संबद्ध शिक्षकों के अनुभव पर पीटर मेरिंग (1983) के लेखन पर आधारित है।

- **विषय विश्लेषण का सार तैयार करना** : इस प्रक्रिया में सामग्री का अन्वय (पैराफ्रेजिंग) किया जाता है, अर्थात् कम प्रासंगिक अथवा समान अर्थ वाले अंशों को हटा दिया जाता है (पहली कटौती)। समान अंशों को एक साथ मिलाकर सार तैयार किया जाता है (दूसरी कटौती)। इस प्रकार सामग्री अपेक्षाकृत अधिक सुसंगत, लाभप्रद और आनंददायक हो जाती है। यह सामग्री का सार तैयार करने के लिए उसका एक प्रकार का संपादन है।
- **वर्णनात्मक विषय विश्लेषण** : विश्लेषण की यह प्रक्रिया ऊपर वर्णित प्रक्रिया से भिन्न है। इसमें उलझनपूर्ण, विरोधाभासी अथवा अस्पष्ट विवरणों के संदर्भ को ध्यान में रखते हुए, या पाठ्य सामग्री के अन्य अंशों के सूत्रों—संकेतों, जिनसे उनके अर्थ को स्पष्ट करने में सहायता मिल सकती हो, की तलाश करते हुए, उनकी व्याख्या अथवा साफ—सफाई की जाती है।

टिप्पणी

- **विषय विश्लेषण की संरचना प्रक्रिया** : इसमें, अनुसंधानकर्ता अनुसंधान प्रश्नों की सृजन प्रक्रिया में ही बनी श्रेणियों का उपयोग करते, और तदनुरूप सामग्री का संयोजन करते हुए सामग्री में प्रकारों अथवा संरूप संरचनाओं की तलाश करते हैं।

इस प्रकार, गुणात्मक विषय विश्लेषण से श्रेणियों की एकरूप योजना का उपयोग करते हुए भारी–भरकम पाठ्य सामग्री को कम करने के साथ–साथ जिन स्थितियों में इसका उपयोग किया गया हो, उनकी तुलना करने में भी अनुसंधानकर्ताओं को सहायता मिलती है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. गुणात्मक अनुसंधान से जुड़ा नैतिक मुद्दा है–
   (क) नैतिक लोकाचार (ख) सहभागी के अधिकार
   (ग) सामान्य नैतिकताएं (घ) उपर्युक्त सभी
6. आधारित सिद्धांत में विश्लेषण में कितने मुख्य प्रकार के कूटलेखनों का समावेश होता है?
   (क) 3 (ख) 4
   (ग) 5 (घ) 6

4.5 गुणात्मक अनुसंधान में वैधता और विश्वसनीयता

विज्ञान व सांख्यिकी में, वैधता वह प्रसार है जहां तक एक सिद्धांत, निष्कर्ष या माप परिपक्व है और सही ढंग से वास्तविक दुनिया के अनुरूप है। वैधता के सापेक्ष ''वेलिड'' शब्द लैटिन भाषा के 'वेलीड्स' शब्द, जिसका अर्थ सशक्त होता है, से लिया गया है। एक मापक यंत्र (उदाहरण के लिए, शिक्षा के क्षेत्र में परीक्षा) की वैधता वह कोटि मानी जाती है जहां तक वह यंत्र मापता है जिसे वह मापने का दावा करता है। मनोमिती में, वैधता का एक विशिष्ट अनुप्रयोग होता है जिसे वैधता की परीक्षा कहा जाता है : ''वह कोटि जहां तक साक्ष्य एवं सिद्धांत परीक्षा के अंकों के निर्वचनों का समर्थन करते हैं।'' (जैसा कि परीक्षाओं के प्रस्तावित उपयोगों द्वारा अपरिहार्य बताया गया है।)

वैज्ञानिक अनुसंधान प्रारूप एवं प्रयोग के क्षेत्र में, वैधता का तात्पर्य यह होता है कि क्या अध्ययन से उन प्रश्नों के वैज्ञानिक रूप से उचित उत्तर प्राप्त हो रहे हैं जिनके उत्तर इसके द्वारा प्राप्त करने की अपेक्षा थी।

नैदानिक क्षेत्रों में, निदान एवं विभिन्न निदानार्थ परीक्षणों की वैधता का आकलन अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि निदान उपचारों, औषधियों, एवं रोगी के जीवन को संवर्धित करता है, यह ज्ञात होना अत्यंत महत्वपूर्ण है कि क्या निदानार्थ परीक्षणों के दौरान परीक्षणकर्ता वास्तव में उसकी ही जांच कर रहे हैं जिसकी वे जांच करने का प्रयोजन रखते हैं।

सामान्यतया यह स्वीकारा जाता है कि वैज्ञानिक वैधता का सिद्धांत वास्तविकता की प्रकृति के बारे में बताता है और इस प्रकार यह एक माप से संबंधित प्रश्न के

साथ–साथ एक ज्ञानवादी और दार्शनिक विषय है। तर्कशास्त्र में इस शब्द का उपयोग संकुचित है, जिसका संबंध आवासों से प्राप्त निष्कर्षों की सत्यता से है।

टिप्पणी

वैधता इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह किस प्रकार के परीक्षणों का प्रयोग करना है इसका निर्धारण करने में सहायता प्रदान कर सकती है, और यह सुनिश्चित करने में सहायता प्रदान करती है कि अनुसंधानकर्ता ऐसी विधियों का उपयोग कर रहे हैं जो कि न केवल नैतिक, और किफायती है, बल्कि ऐसी विधि है जो प्रश्न में विद्यमान विचार या अर्थ का वास्तव में मापन करती है।

गुणात्मक अनुसंधान की आलोचना अक्सर उसे पक्षपातपूर्ण, लघु, उपाख्यानात्मक, और/या विशुद्धता रहित कह कर की जाती है; हालांकि, जब इसे उचित रीति से किया जाता है तो यह अपक्षपातपूर्ण, गहरा, वैध, भरोसेमंद, विश्वसनीय और विशुद्ध होता है। गुणात्मक अनुसंधान में, ''दावे किस हद तक प्रत्यात्मक साक्ष्य द्वारा समर्थित हैं'' इसका आकलन करने के लिए साधन होना आवश्यक है। यद्यपि ये शब्द 'विश्वसनीयता' एवं 'वैधता' पारंपरिक रूप से मात्रात्मक अनुसंधान के साथ जोड़े जाते हैं, उन्हें गुणात्मक अनुसंधान में एक महत्वपूर्ण सिद्धांत के रूप में देखे जाने में वृद्धि हो रही है। डेटा की विश्वसनीयता एवं वैधता का परीक्षण करने से अनुसंधान की वस्तुनिष्ठता एवं विश्वसनीयता दोनों का आकलन किया जा सकता है। वैधता का संबंध अनुसंधान डेटा की सत्यता एवं यथार्थता से है; जबकि विश्वसनीयता का संबंध डेटा की पुनरूत्पादकता और स्थिरता से है।

4.5.1 गुणात्मक अनुसंधान में वैधता

साधारणतया, वैधता इसका संकेत है कि आपका अनुसंधान कितना गहरा है। अधिक विशेष तौर पर, वैधता आपके अनुसंधान के परिरूप और विधियों दोनों पर लागू होती है। डेटा एकत्रित करने के संदर्भ में वैधता का यह तात्पर्य है कि आपका निष्कर्ष परिणाम वास्तव में उस घटना को प्रस्तुत करता है जिसे आप मापने का दावा कर रहे हैं। वैध दावे ठोस दावे होते हैं।

अनुसंधान की वैधता एक मुख्य चिंता का विषय होती है। कोई भी अनुसंधान विभिन्न प्रकार के कारकों द्वारा प्रभावित हो सकता है जो, अनुसंधान के विषय से परे होने पर, निष्कर्ष परिणाम को अमान्य कर सकते हैं'' (सेलिगेर एवं शोहामी 1989, 95)। प्रत्येक अच्छे अनुसंधानकर्ता का प्राथमिक दायित्व अनुसंधान की वैधता को हानि पहुंचाने वाले सभी संभव कारकों को नियंत्रित करना होता है।

• **आंतरिक वैधता** – यह स्वयं अध्ययन में विद्यमान दोषों के द्वारा प्रभावित होती है जैसे अनुसंधान–साधन से कुछ प्रधान परिवर्ती राशियों (समस्या का एक परिरूप) या समस्याओं (एक डेटा एकत्रित करने की समस्या) को नियंत्रित नहीं करना।

''निष्कर्ष परिणाम को आंतरिक रूप से असामान्य कहा जा सकता है क्योंकि हो सकता है कि वे सोचे हुए कारकों से भिन्न कारकों द्वारा प्रभावित हुए हैं, या क्योंकि अनुसंधानकर्ता द्वारा किया गया डेटा का निर्वचन स्पष्टतया सह्य नहीं है'' (सेलिगेर एवं शोहामी 1989, 95)।

निम्नलिखित कुछ कारक हैं जो आंतरिक वैधता को प्रभावित करते हैं :

- विषय की परिवर्तनशीलता।
- विषयगत जनसंख्या का आकार।

टिप्पणी

- डेटा एकत्र करने और प्रयोगात्मक प्रअनुसंधानन हेतु दिया गया समय।
- इतिहास।
- संघर्षण।
- परिपक्वता।
- साधन/कार्य सूक्ष्मग्राहिता।

• **बाह्य वैधता** – वह सीमा है जहां तक आप एक बड़े समूह या अन्य संदर्भों के लिए अपने निष्कर्ष परिणाम का सामान्यीकरण कर सकते हैं। अगर आपके अनुसंधान में बाह्य वैधता का अभाव है, तो निष्कर्ष परिणाम को आपने जिस संदर्भ में अनुसंधान किया गया था उसके अतिरिक्त किसी अन्य संदर्भ में लागू नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, अगर सभी व्यक्ति एक ही जातीय समूह के सदस्य हैं, तो हो सकता है आपका निष्कर्ष परिणाम महिलाओं या अन्य जातीय समूहों पर लागू न हो। या, अगर आपने अपना अनुसंधान एक उच्च नियंत्रित प्रयोगशाला की परिस्थितियों में किया है, तो हो सकता है आपका निष्कर्ष परिणाम वास्तविक दुनिया में क्या हो सकता है उसे विश्वासपूर्वक प्रस्तुत न करे।

''निष्कर्ष परिणाम को बाह्य रूप से अमान्य कहा जा सकता है, क्योंकि इसे उसके अतिरिक्त जिस संदर्भ में अनुसंधान किया गया है बाहर के अन्य किन्हीं संदर्भों में विस्तारित या लागू नहीं किया जा सकता।'' (सेलिगेर और शोहामी 1989, 95)

बाह्य वैधता को प्रभावित करने वाले सात महत्वपूर्ण कारक इस प्रकार हैं–

- जनसंख्या के अभिलक्षण (विषय)।
- विषय के चुनाव और अनुसंधान का पारस्परिक प्रभाव।
- स्वतंत्र परिवर्ती राशि की विवरणात्मक सुस्पष्टता।
- अनुसंधान परिवेश का प्रभाव।
- अनुसंधानकर्ता या प्रयोगकर्ता का प्रभाव।
- डेटा एकत्रित करने की कार्य–प्रणाली।
- समय का प्रभाव।

संकल्पनात्मक वैधता पर प्रभाव

- अनावश्यक प्रतिलिपिकरण।
- सैद्धांतिक विलगन।

निर्माण वैधता पर प्रभाव

निर्माण वैधता स्वतंत्र एवं अवलम्बित परिवर्ती राशियों के विशिष्ट स्वरूपों के बारे में चुनाव की गुणवत्ता है। ये चयन अनुसंधान के निष्कर्ष के परिणाम की गुणवत्ता को प्रभावित करेंगे। प्रअनुसंधानन (डी वी का परिचालन, और प्रअनुसंधानन का प्रबंधन) के चयन, माप निष्कर्ष (डीवी का परिचालन, और माप का प्रबंधन) के चयन से निर्माण वैधता की हानि हो सकती है।

(अ) स्वतंत्र परिवर्ती राशि

- **स्वतंत्र परिवर्ती राशि पर विश्वसनीयता का अभाव**
- प्रशोधनों में विश्वसनीयता का अभाव होता है अगर वे एक अवसर से दूसरे तक इतना अधिक परिवर्तित होते हैं कि वे ऐसी परिवर्तनशीलता का परिचय देते हैं कि जिससे अध्ययनगत संबंध अस्पष्ट होता है।
- **स्वतंत्र परिवर्ती राशि की प्रतिनिधित्वता का अभाव**

  एक प्रशोधनों रुचिकर सैद्धांतिक निर्माण का एक पर्याप्त परिचालन प्रस्तुतीकरण होना आवश्यक है।
- **स्वतंत्र परिवर्ती राशि के प्रभाव का अभाव**

  एक प्रशोधनों को अनुसंधान–सहभागियों पर एक वास्तविक प्रभाव छोड़ना चाहिए; न तो बहुत अधिक और न ही बहुत कम प्रभाव।

(ब) अवलम्बित परिवर्ती राशि

- **अवलम्बित परिवर्ती राशि की विश्वसनीयता का अभाव (दस्तावेज)**

  प्रत्येक मापन एक ऐसा परिणाम प्रस्तुत करता है जिनमें असमानता होती है। अगर मापन में परिवर्तन अधिक है, तो माप की उपयोगिता पर संकट उपस्थित होता है।

  परीक्षा से पूर्व और परीक्षा के उपरान्त के मध्य परिवर्तन हो सकते हैं, क्योंकि मापन की प्रकृति में परिवर्तन आ जाता है। उदाहरण के लिए, रोगियों की जांच करने की 'रेटर' की योग्यता में समय के साथ सुधार हो सकता है।
- **अवलम्बित परिवर्ती राशि के प्रतिनिधित्व का अभाव**

  मापन हेतु पर्याप्त अंर्तनिहित वैधता आवश्यक है।
- मापन प्रक्रिया इतनी सचेतन होनी चाहिए कि परिणामों में अंतर की पहचान कर सके।

(स) प्रशोधन पुरावशेष

- प्रशोधन पुरावशेष अनुसंधान सहभागियों के लिए प्रशोधनों के वास्तविक प्रस्तुतीकरण के दौरान दृष्टिगोचर होने वाली एक प्रयोग की वैधता पर चेतावनी है। वे सहभागी व प्रयोगकर्ता के अभिरोचनों एवं कार्यों, और अनुसंधान विन्यास का परिणाम हैं।
- **अनुसंधान विन्यास में मांग के अभिलक्षण**

  सहभागीजन अनुसंधान विन्यास के द्वारा अघोषित मांगों पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। सहयोग करने की आकांक्षा, और मूल्यांकन के बारे में व्यग्रता दो ऐसी मांगें हैं।

  उदाहरण, हॉथोर्न इफेक्टः 1930 में वेस्टर्न इलेक्ट्रिक कम्पनी के हॉथोर्न संयंत्र के कार्यकर्ताओं ने दर्शाया कि उत्पादकता में वृद्धि हुई क्योंकि उन्होंने अध्ययन किया था।

टिप्पणी

- **प्रयोगकर्ता की प्रत्याशा का प्रभाव**

  अनुसंधानकर्ता सहभागियों से अपेक्षित परिणाम के विषय में उन्हें अनिच्छित संकेत प्रदान करते हैं। राजेन्थल इफेक्टः रोजेन्थल और जेकबसन ने विचारपूर्वक अपेक्षाओं को स्थापित किया।

- **प्रशोधनों हेतु परीक्षण पूर्व जागरूकता (''अभ्यास का प्रभाव'')**

  एसे परिरूप जो परीक्षण पूर्व कार्य (प्रशोधनों करवाने से पूर्व मापन) करते हैं, इससे सहभागी अध्ययन के उद्देश्यों के प्रति संवेदनशील बन सकते हैं। और यह सरलता से संशोधित प्रदर्शन के परिणामों का अभ्यास करने के लिए अवसर प्रदान कर सकता है।

- **क्रम के प्रभाव (''आगे स्थानान्तरित प्रभाव'')**

  अगर एक अध्ययन एक से अधिक प्रशोधनों पुनरावर्ती उपायों या अनावरण का उपयोग करता है...

(द) मापन पुरावशेष

- **अनुसंधान सहभागियों के द्वारा सामरिक प्रतिक्रिया**

  सहभागी सामरिक प्रतिक्रिया नीतियां विकसित कर सकते हैंः अनुसंधानकर्ता का 'सहयोग' करना' या उसे 'चुनौती देना'

- **अवलम्बित मापन प्रक्रिया में भाषायी/संस्कृति का पूर्वाग्रह**

  क्या सहभागी प्रश्नों को समझकर सही प्रकार से उनके उत्तरों का संवाद कर सकते हैं?

(य) आंतरिक वैधता पर प्रभाव

- **विषयेतर प्रभाव (इतिहास)**

  क्या सहभागी प्रशोधनों के अतिरिक्त घटनाक्रमों से अवगत हैं, जिसका उनके व्यवहार पर प्रभाव पड़ने से स्वतंत्र परिवर्ती राशि के प्रभाव धुंधले पड़ सकते हैं?

- **ऐहिक प्रभाव (परिपक्वन; श्रम)**

  क्या सहभागी स्वतंत्र परिवर्ती राशि के प्रभावों से असंबद्ध तरीकों में समय के गुजरने के साथ परिवर्तित होते हैं?

- **सामूहिक संयोजन के प्रभाव (चुनाव)**

  अगर विभिन्न समूहों को प्रशोधनों के प्रभावों की तुलना करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है, तो क्या पूर्ववर्ती समूहों में विद्यमान भिन्नताएं स्वतंत्र परिवर्ती राशि के प्रभावों को धुंधला कर सकती हैं?

- **ऐहिक और सामूहिक संयोजन प्रभावों की पारस्परिक प्रक्रियाएं**

  क्या पूर्ववर्ती समूहों में विद्यमान भिन्नताओं से संबंधित समय के साथ सहभागियों के व्यवहार में हुआ परिवर्तन स्वतंत्र परिवर्ती राशि के प्रभावों को धुंधला कर सकता है?

- **संघर्षण का प्रवरणशील नमूना**

  क्या सहभागी एक व्यवस्थित या प्रवरणशील तरीके से अध्ययन के दौरान समूहों को छोड़ देते हैं? इस कारण समूहों के मध्य मतभेद उत्पन्न हो सकते हैं जो स्वतंत्र परिवर्ती राशि के प्रभावों को धुंधला कर सकते हैं।

- **सांख्यिकीय परावर्तन प्रभाव (मध्यमान का परावर्तन)**

  पुनःपरीक्षा करने पर मध्यमान के समीप चरम (बहुत उच्च या बहुत निम्न) अंकों के स्थित होने कि प्रवृत्ति। यह मापन करने पर सहभागियों की प्रतिक्रियाओं में परिवर्तन का कारण हो सकता है।

(र) बाह्य वैधता पर प्रभाव

- **गैर अप्रतिनिधिक प्रतिचयन**

  क्या अनुसंधान अध्ययन में सम्मिलित सहभागी जिन लोगों को समझा जाना है उनके प्रति इतने अप्रतिनिधिक हैं? यह पूर्व से पश्चात् तक के अनुसंधान परिणामों के सामान्यिकरण को प्रतिबंधित कर देगा।

- **अप्रतिनिधिक अनुसंधान संदर्भ**

  क्या जिस संदर्भ में अनुसंधान अध्ययन किया गया था, वह उन संदर्भों के प्रति इतना अप्रतिनिधिक है जहां प्रश्नगत व्यवहार पूर्व से पश्चात् तक के अनुसंधान परिणामों के सामान्यीकरण को प्रतिबंधित करने के लिए घटित होता है?

सांख्यिकीय निष्कर्ष वैधता पर प्रभाव

- सांख्यिकीय तकनीकों का अनुचित प्रयोग।
- पर्याप्त शक्तिहीन सांख्यिकीय परीक्षा का उपयोग।
- अनुसंधान परिकल्पना हेतु समर्थन के लिए तुच्छतापूर्ण प्रभाव की त्रुटि करना।

जैसे कि पहले व्यक्त किया गया है कि अनुसंधानकर्ताओं को उनके निष्कर्ष परिणाम व योजना की वैधता व विश्वसनीयता के लिए जोखिमपूर्ण बहु–कारकों से सुर मिलाने और उन्हें नकारने या उनका सामना करने के लिए युक्तियों एवं नीतियों को लागू करने की आवश्यकता है। एक प्रमुख कारक जो कि वैधता एवं विश्वसनीयता को प्रभावित करता है वह है त्रुटि। त्रुटि समस्त जांच–प्रक्रियाओं में अंतर्निहित होती है तथा यह वैधता व विश्वसनीयता से प्रतीपक्रम में संबंधित है। जितनी अधिक बड़ी त्रुटि होगी उतने ही कम सही एवं सत्य परिणाम होंगे। अतः अनुसंधानकर्ताओं को अवश्य ही अपने अध्ययनों की योजना बनाते व उन्हें लागू करते समय मुख्यतया स्रोतों में विद्यमान त्रुटियों के प्रति सजग रहना चाहिए।

4.5.2 गुणात्मक शोध में विश्वसनीयता

गुणात्मक शोध की यह मांग रहती है कि संकलित आंकड़े विश्वसनीय एवं वैध हों। विश्वसनीयता का संबंध पुनरावृत्ति (Repeatability) से है अर्थात् यदि दो शोधकर्ता एक जैसे निष्कर्ष निकालते हैं अथवा एक शोधकर्ता द्वारा निकाले गए निष्कर्ष दो भिन्न समयों पर सुसंगत (Consistent) होते हैं, तो ऐसे अध्ययनों को विश्वसनीय कहा जाता है। यदि माप में निदर्शन त्रुटि (Sampling error) पाई जाती है तो उसे अविश्वसनीय माना जाता है। विश्वसनीयता की एक उच्च एवं निम्न सीमा होती है। गुणात्मक अध्ययनों

टिप्पणी

में आंकड़ों की विश्वसनीयता एक गंभीर समस्या मानी जाती है क्योंकि गुणात्मक प्रकृति के कारण इनकी विश्वसनीयता की परख करना सम्भव नहीं है। चूंकि ऐसे अध्ययनों में कोई वस्तुनिष्ठ पैमाना प्रयोग में नहीं लाया जाता। इसलिए विश्वसनीयता का प्रश्न अधिक उठाया जाता है। गुणात्मक शोध की विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाले कारणों में किसी अध्ययनरत समूह की संरचना का बाह्य एवं आन्तरिक कारणों के प्रभावों से निरन्तर परिवर्तित होना, इस संरचना का समय के अन्तराल में अत्यधिक परिवर्तित हो जाना, अध्ययन संबंधी कसौटी के रूप में अंतर आ जाना आदि प्रमुख हैं।

गुणात्मक अध्ययनों की विश्वसनीयता को मापने की भी निम्नलिखित तीन पद्धतियां हैं–

(1) **परीक्षा–पुनर्परीक्षा (Test-retest)**– विश्वसनीयता को मापने की इस पद्धति में एक ही माप को अध्ययनरत समूह पर दो भिन्न समयों पर लागू किया जाता है। यदि दोनों समयों पर निष्कर्ष एक समान होते हैं, तो उस माप को विश्वसनीय मान लिया जाता है।

(2) **तुल्यनीय प्रकार (Equivalent form)**– इस पद्धति में मापन हेतु दो एक समान मापकों का निर्माण किया जाता है। यदि दोनों द्वारा एक समान निष्कर्ष प्राप्त होते हैं तो उन्हें विश्वसनीय मान लिया जाता है।

(3) **आंतरिक संगति (Internal consistency)**– यह सर्वाधिक प्रचलित पद्धति है। इसमें माप में सम्मिलित प्रश्नों को स्वैच्छिक रूप में दो समूहों में विभाजित किया जाता है। इन दोनों समूहों में पाया जाने वाला सहसंबंध आंतरिक संगति तथा माप की विश्वसनीयता को दर्शाता है।

विश्वसनीयता के विपरीत, वैधता का संबंध सूचना संकलित करने में प्रयुक्त प्रविधि एवं पद्धति की यथार्थता या परिशुद्धता एवं सत्यता से है। इसमें दो बातें महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं– प्रथम यह कि चयनित प्रविधि या पद्धति द्वारा उसी विषय का अध्ययन किया जा रहा है जिसका कि हम करना चाहते हैं या नहीं तथा दूसरे यह अध्ययन सही रूप से किया जा रहा है या नहीं। गुणात्मक शोध में प्रविधि की वैधता को स्थापित करने में निम्नलिखित कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है–

(1) सामाजिक अवरोधों के कारण एक समूह के व्यक्ति प्रायः अपनी स्वाभाविक नापसंदों को व्यक्त नहीं करते हैं।

(2) सामान्यतया सूचनादाता उचित संपर्क के अभाव में सही सूचनाएं नहीं देते हैं।

(3) शोधकर्ता एवं सूचनादाता की स्थिति में अंतर के परिणामस्वरूप दोनों में वार्तालाप के स्तर में तारतम्य स्थापित नहीं रह पाता। यदि सूचनादाता में निम्नता की भावना (Inferiority complex) आ जाती है तो वह सूचनाओं को बढ़ा–चढ़ा कर देने का प्रयास करता है।

(4) सूचनादाता अल्पसंख्यक समूहों के प्रति प्रायः अपनी स्वाभाविक प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करने में संकोच करते हैं।

गुणात्मक शोधों में बहुधा किसी एक ही प्रविधि द्वारा आंकड़ों का संकलन किया जाता है जिससे आंकड़ों की विश्वसनीयता को प्रमाणित नहीं किया जा सकता है। इसलिए आंकड़ों की विश्वसनीयता बढ़ाने हेतु एक से अधिक प्रविधियों एवं स्रोतों का

टिप्पणी

प्रयोग किया जाना अनिवार्य है। निर्वचन करते समय व्यक्तिनिष्ठता से बचाव भी अध्ययन की विश्वसनीयता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। वैधता हेतु गुणात्मक शोध में उपयुक्त शोध प्रविधि का चयन किया जाना तथा उसका किसी अन्य संपूरक प्रविधि द्वारा सत्यापन अत्यंत आवश्यक है। निर्वचन एवं मुख्य निष्कर्षों के बारे में किसी विशेषज्ञ से विचार–विमर्श भी गुणात्मक शोध को अधिक वैध बना सकता है। गुणात्मक शोध की विश्वसनीयता एवं वैधता के बारे में दो बातें ध्यान देने योग्य हैं– प्रथम, प्रासंगिक शोध प्रश्नों अथवा समस्या का निर्माण करना तथा द्वितीय, उन प्रश्नों का उत्तर देने अथवा उस समस्या के समाधान हेतु सर्वाधिक उपयुक्त प्रविधि का चयन करना। यदि इन दोनों में कोई चूक नहीं होती तो गुणात्मक शोध विश्वसनीय एवं वैध हो सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

7. वैधता के सापेक्ष 'वेलिड' शब्द किस भाषा से लिया गया है?

(क) रोमन (ख) लैटिन

(ग) अंग्रेजी (घ) जर्मन

8. गुणात्मक अध्ययनों की विश्वसनीयता को मापने की कितनी पद्धतियां हैं?

(क) 1 (ख) 2

(ग) 3 (घ) 4

4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (ग)
3. (क)
4. (ग)
5. (घ)
6. (क)
7. (ख)
8. (ग)

4.7 सारांश

गुणात्मक अनुसंधान अनुसंधान का एक प्रकार है जो किसी प्रश्न के उत्तर की तलाश करता है जिसे व्यवस्थित रूप से किया जाता है और जिसमें साक्ष्य जुटाने की गतिविधि शामिल रहती है। हालांकि, गुणात्मक अनुसंधान इस अर्थ में अनोखा होता है कि आप ऐसे निष्कर्ष प्राप्त कर सकते हैं जो पूर्व में निश्चित नहीं थे तथा ऐसे निष्कर्षों को अध्ययन के क्षेत्र के बाहर भी लागू किया जा सकता है। यह तब और भी कारगर होता है जब आप शामिल किए गए विषयों के संबंध में सांस्कृतिक रूप से विशेष जानकारी

प्राप्त करना चाहते हैं, अर्थात मूल्यों, व्यवहारों तथा किसी विशेष आबादी के विचारों को जानना चाहते हैं।

टिप्पणी

सहभागी अवलोकन शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम लिंडमैन ने 1924 में अपनी पुस्तक 'सोशल डिस्कवरी' में किया। इसमें उन्होंने बताया कि किसी भी घटना के प्रत्यक्ष अवलोकन में जो कमियां रह जाती हैं उन्हें ध्यान में रखते हुए सहभागी अवलोकन का प्रयोग किया जाता है। सामान्यतः सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता अध्ययन समूह के साथ इस प्रकार घुल–मिल जाता है कि उस समूह के सभी सदस्य अवलोकनकर्ता के वास्तविक उद्देश्य से परिचित होते हुए भी उसे अपने समूह का वास्तविक सदस्य मान लेते हैं। सहभागी अवलोकन को स्पष्ट करते हुए लुंडबर्ग ने लिखा है "इस अवलोकन (सहभागी) में यह आवश्यक है कि केवल शोधकर्ता ही नहीं बल्कि अध्ययन किए जाने वाले समूह के सदस्य भी उसे समूह के एक अंग के रूप में स्वीकार करें।" अतः सहभागी अवलोकन में किसी तथ्य अथवा घटना का अर्थ तभी अधिक विश्वसनीय और विस्तृत हो सकता है जब शोधकर्ता परिस्थिति की गहराई में पहुंच जाता है।

नृवंशविज्ञान (मानव जाति विज्ञान) संबंधी अनुसंधान विभिन्न राष्ट्रीय तथा विदेशी संस्कृतियों पर अपना ध्यान केंद्रित करता है जिससे कि वह उन मूल निवासियों को समझ सके जो संस्कृति से कट गए हैं। इस प्रकार का अनुसंधान करने वाली एक प्रसिद्ध मानव विज्ञानी थी मार्गरेट मीड। तीन न्यू गिनिया संस्कृतियों पर उनके प्रसिद्ध अध्ययन ने उन संस्कृतियों के लिंग संबंधी विशेषताओं और भूमिकाओं पर महत्वपूर्ण जानकारी दी। विभिन्न सांस्कृतिक मानकों, लिंग की विशिष्टताओं और भूमिकाओं पर अध्ययन करने से, इस प्रकार के अनुसंधान से वैज्ञानिकों को प्रकृति बनाम पोषित लिंग संबंधी विशेषताओं को वर्गीकृत करने में सहायता मिली। अनेक मानव जाति विज्ञान संबंधी अध्ययनों ने उन सांस्कृतिक भूमिकाओं को दस्तावेज का रूप दिया है जो जन्मजात लिंग संबंधी विशेषताओं के पश्चिमी पहलुओं को चुनौती देते हैं।

मानव जीवन संबंधी अनुसंधान में सारे आंकड़े सहभागी अवलोकन से नहीं जुटाए जा सकते हैं। अवलोकन के द्वारा जुटाई गई सूचना के समर्थन में या उसे अस्वीकृत करने के लिए प्रमुख व्यक्तियों, प्राथमिक मुखबिरों (जासूसों) और अन्य सारे परोक्ष सूचना देने वालों/सहभागियों के इंटरव्यू किए जा सकते हैं। इंटरव्यू के तरीके की बात करें तो यह खुला और अनौपचारिक या संरचनात्मक हो सकता है। यह परिस्थिति तथा अध्ययन पर निर्भर करता है। हालांकि, मानव विज्ञान संबंधी अध्ययन में, इंटरव्यू लेने का कार्य इतना सरल नहीं होता, क्योंकि यह 'पूर्ण विवरण' और 'सजीव चित्रण' के लिए आंकड़े जुटाने का लक्ष्य रखता है।

यह ऐसी पद्धति है जिसमें किसी सामाजिक इकाई के जीवन की घटनाओं का अन्वेषण एवं विश्लेषण किया जाता है। सामाजिक इकाई के रूप में किसी एक व्यक्ति, एक परिवार, एक संस्था, एक समुदाय, घटना, नीति, संगठन आदि को लिया जा सकता है। केस अध्ययन पद्धति में जो केस होता है उससे तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया या घटना से है जिसका एक आबद्ध संदर्भ होता है अर्थात केस में सम्मिलित की गयी घटना या इकाई की अपनी सीमाएं होती हैं।

कार्टराइट (1970) ने सामग्री विश्लेषण (Content Analysis) और (Coding) पारिभाषिक शब्दों को अदला–बदली के रूप में प्रयोग किया है, जैसे दोनों प्रक्रियाएं किसी भी सांकेतिक व्यवहार के, व्यवस्थित उद्देश्य, और मात्रात्मक विवरण को शामिल करती हैं। जबकि, सामग्री विश्लेषण वर्गीकरण, मूल्यांकन और संचार या दस्तावेज की

सामग्री की तुलना के साथ सम्बद्ध है, यह कभी–कभी 'वृत्तचित्र गतिविधि' या 'सूचना विश्लेषण' के रूप में जाना जाता है। संचार एक खुली प्रश्नावली प्रतिक्रियाओं, साक्षात्कार के परिणामस्वरुप बातचीत, या फिर देखी गई गतिविधियों के विवरण के रूप में हो सकता है। यह सरकारी रिकॉर्ड (जनगणना, जन्म, दुर्घटना, अपराध, स्कूल, संस्थागत और व्यक्तिगत रिकॉर्ड) न्यायिक निर्णयों, कानून, बजट और वित्तीय रिकॉर्ड, संचयी रिकॉर्ड, अध्ययन के पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों, संदर्भ शब्द, समाचारपत्र–पत्रिकाओं या पत्रिकाओं की सामग्री, विभिन्न शिक्षण संस्थानों या विश्वविद्यालयों, आदि की विवरण पुस्तिका, प्रत्यक्ष निविदायें, और एक साक्षात्कार के नोट के रूप में भी हो सकता है।

मौखिक इतिहास में कुछ सीमा तक विवरणात्मक विश्लेषण का उपयोग किया जाता है, जिसका लक्ष्य यह पता लगाना होता है कि अतीत में जीवन कैसा था। वहीं, इसका लक्ष्य उन पुराने लोगों के संस्मरण ग्रहण कर उन्हें सहेज लेना भी है, जो आज भी जीवित हैं। मौखिक इतिहासों की संरचना विशेष रूप से लोगों के अनुभवों के आदान–प्रदान से की जाती है, जो समाज के स्वभाव पर प्रकाश डालते हैं। ज्यादातर मौखिक इतिहासों में विभिन्न दृष्टिकोणों को स्वीकार करते तथा घटनाओं की स्मृतियों को और उन घटनाओं का लोगों के लिए जो अर्थ था उसे बचाए रखते हुए एक सच्चे इतिहास को प्राथमिकता दी जाती है।

मौखिक इतिहास लोगों, परिवारों, महत्वपूर्ण घटनाओं अथवा दैनिक जीवन से संबद्ध ऐतिहासिक जानकारियों का संग्रह और अध्ययन है, जिसमें सुव्यवस्थित साक्षात्कारों के ऑडियोटेपों, वीडियोटेपों अथवा प्रतिलेखनों का उपयोग किया जाता है। इन साक्षात्कारों का संचालन उन लोगों के साथ किया जाता है, जो अतीत की घटनाओं का हिस्सा रहे हों या उन्हें देखा हो और जिनके इन घटनाओं के संस्मरण तथा ग्रहणबोध का भावी पीढ़ियों के लिए एक श्रव्य अभिलेख के रूप में संजो कर रखा जाना चाहिए। भौतिक इतिहास विभिन्न दृष्टिकोणों से सूचना प्राप्त करने का प्रयास करता है और इनमें से अधिकांश लिखित स्रोतों में नहीं मिल सकते। मौखिक इतिहास इस प्रकार से संचित सूचना तथा इन विवरणों पर आधारित किसी लिखित सामग्री (प्रकाशित अथवा अप्रकाशित) की सहायता भी लेता है, जो अकसर ग्रंथागारों और बड़े पुस्तकालयों में सुरक्षित रखी होती है।

जीवन का इतिहास (अथवा जीवन की कहानी) मौखिक इतिहास के समान ही है किंतु यह आम तौर पर किसी व्यक्ति की जीवनी और उसके वर्तमान स्थिति तक पहुंचने अथवा अपने जीवन की कड़वाहटों का सामना करने की कहानी होती है। शिकागो स्कूल ऑफ सोशियोलॉजी ने समाजशास्त्र में जीवन के इतिहास पर पर्याप्त बल दिया। वे यह पता लगाने के लिए जीवन के इतिहासों की सहायता लेते थे कि लोग सामाजिक रीतियों का विवेचन किस प्रकार करते थे और अपने जीवन में उन्हें किस प्रकार उतारते थे। जीवन के इस आरंभिक इतिहास के अधिकांश भाग में अभिप्रायों–प्रयोजनों की खोज की गई किंतु जीवन के इतिहास के विवरण के स्वरूप से उसका संबंध कम होता था और उसमें इस पर ध्यान दिया गया कि जीवन के अनुभव किस प्रकार अभिवृत्तियों और कार्यकलापों को आकार देते हैं।

गुणात्मक अनुसंधान की स्पष्ट व्याख्या करना कठिन है। इसका अपना कोई सिद्धांत या मानदंड नहीं है। न ही गुणात्मक अनुसंधान का अपने तंत्रों या कार्यप्रणालियों का कोई विन्यास है। अनुसंधान के अन्य सभी प्रकारों की तरह ही, गुणात्मक अनुसंधान को अनुसंधान के कुछ प्रश्नों की आवश्यकता होती है। अनुसंधान के प्रश्नों में

टिप्पणी

अनेकानेक विषय होते हैं, किंतु इनमें से अधिकांश किसी संदर्भ विशेष में अर्थों और सामाजिक जीवन के सहभागियों के ज्ञान पर केंद्रित होते हैं। गुणात्मक अनुसंधान में, अनुसंधानकर्ताओं के लक्ष्यों और अनुसंधानकर्ताओं के सैद्धांतिक संरचनाओं या बंधों के बीच एक घनिष्ठ संबंध होता है। सैद्धांतिक संरचनाओं में पूर्ववर्ती सभी अनुसंधान, निष्कर्ष परिणाम या सिद्धांत आते हैं; जिनका आधार अनुसंधानकर्ताओं द्वारा संघटित अध्ययन के विषय होते हैं। अध्ययन प्रणाली के विकल्प कोई गुणात्मक अनुसंधानपत्र तैयार करने के अन्य बिंदु हैं। ये इस पर निर्भर करते हैं कि चयन किन स्थितियों का किया जाता है, सूचना का संग्रह किस प्रकार किया जाता है, और आंकड़ा विश्लेषण का चयन किस प्रकार किया जाता है। गुणात्मक अनुसंधान के आंकड़े वर्णनात्मक होते हैं, साक्षात्कार की टिप्पणियों, अभिलेखों के अवलोकन और प्रलेखों के रूप में; और आंकड़ों का विश्लेषण आगमनात्मक रूप से किया जाता है। अध्ययन में एक साकल्यवादी दृष्टिकोण (Holistic approach) और संप्राप्तियों पर बल दिया जाता है। यथार्थ जगत की स्थितियां, प्राकृतिक, अदूषित विन्यास आंकड़ों के स्रोत होते हैं।

अनुसंधानकर्ताओं को अपने अनुसंधान के नैतिक प्रबंध का समस्त दायित्व स्वयं लेना होता है। सरल शब्दों में, हम कह सकते हैं कि नैतिकताओं का पालन करना अनुसंधानकर्ताओं का दायित्व है। सहभागियों की सुरक्षा, मान–मर्यादा, अधिकारों और कल्याण का ध्यान रखना किसी अनुसंधानकर्ता का सबसे पहला कर्तव्य है। अनुसंधानकर्ताओं को अनुसंधान प्रक्रिया के अलग–अलग चरणों में अन्य विभिन्न विषयों का ध्यान रखना चाहिए। अनुसंधानकर्ता और सहभागियों दोनों को एक अहम भूमिका का निर्वाह करना होता है। एक के अधिकार दूसरे के कर्तव्य होते हैं। अनुसंधानकर्ताओं को सहभागियों के अधिकारों का ध्यान रखना और अपने अनुसंधान पर सहभागियों की दृष्टि से विचार करना चाहिए।

आदिकाल में मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समूह में रहता था, उसके आपसी व्यवहार एवं संबंधों से समाज का निर्माण हुआ और वह एक सामाजिक प्राणी कहलाया। इसीलिए मैकाइवर एवं पेज ने सामाजिक संबंधों के जाल को समाज कहा है। समाजशास्त्र समाज के समस्त संदर्भों, समस्याओं एवं पहलुओं का क्रमबद्ध अध्ययन करनेवाला विज्ञान है। ऑगस्ट कॉम्टे को समाजशास्त्र का जनक माना जाता है, इन्होंने सन् 1838 में इस शब्द का प्रयोग किया। हालांकि उन्होंने पहले 'सोशल फिजिक्स' कहा बाद में इसे समाजशास्त्र के नाम से स्वीकार किया गया।

समाजशास्त्र अथवा नृवंशविज्ञान के अध्ययन में गुणात्मक अनुसंधान पद्धति का उपयोग किया जा सकता है जो कि संयुक्त रूप से परीक्षण एवं फील्ड वर्क के ऊपर आधारित हो सकती है जिससे कि समाज के अनेक प्रकरणों एवं प्रपंचों को समझा जा सके। सामाजिक तथ्य प्रकरणों को सांस्कृतिक, आर्थिक व सामाजिक आधार पर परीक्षण एवं फील्ड वर्क के माध्यम से जानने का प्रयत्न किया जाता है। फील्ड वर्क एवं परीक्षण पर आधारित अनुसंधान कार्य समाजशास्त्र, मनोविज्ञान एवं अन्य सामाजिक विज्ञान की शाखाओं में बहुत प्रयोग किया जा रहा है क्योंकि यह मनुष्य से संबंधित अध्ययन है तथा मनुष्य समाज में रहते हैं एवं अनुसंधानकर्ता को समाज में जाकर व्यक्तियों से पारस्परिक व संबंधित प्रश्न पूछने होते हैं।

विश्लेषण का उद्देश्य विवरण भर नहीं, बल्कि चित्रण, व्याख्या, समझ और संभवतः आगम कथन भी है। विवरण विश्लेषण के आधार पर कार्य करता है, जो पुनः अगले विवरण के लिए आधार तैयार करता है। आंकड़ों से संप्रत्यय ग्रहण करने के लिए हम

अपने आंकड़ों का विभाजन करते हैं, जिसका पुनः आंकड़ों के वर्गीकरण के लिए उपयोग किया जाता है। हम अलग–अलग संकल्पनाओं के बीच कड़ियां जोड़ते हैं और ये कड़ियां फिर और अधिक विवरण का आधार तैयार करती हैं।

विशद (विवृत) कूटलेखन का अर्थ आंकड़ों की गहन जांच करना है ताकि घटना को नाम देकर श्रेणीबद्ध किया जा सके। किसी साक्षात्कार से उसकी प्रतिलिपि की किसी टिप्पणी, किसी वाक्य, किसी पैरा को अलग कर उसे नाम दिया जाता है जो उस घटना का अर्थ बताता या निरूपण करता है। हम प्रश्न पूछते हैं, जैसे ''यह क्या है?'' ''यह किसका निरूपण करता/करती है?'' इस प्रक्रिया में हम तुलना करते हैं ताकि समान घटनाओं को समान नाम दिया जा सके।

गुणात्मक शोध की यह मांग रहती है कि संकलित आंकड़े विश्वसनीय एवं वैध हों। विश्वसनीयता का संबंध पुनरावृत्ति (Repeatability) से है अर्थात् यदि दो शोधकर्ता एक जैसे निष्कर्ष निकालते हैं अथवा एक शोधकर्ता द्वारा निकाले गए निष्कर्ष दो भिन्न समयों पर सुसंगत (Consistent) होते हैं, तो ऐसे अध्ययनों को विश्वसनीय कहा जाता है। यदि माप में निदर्शन त्रुटि (Sampling error) पाई जाती है तो उसे अविश्वसनीय माना जाता है। विश्वसनीयता की एक उच्च एवं निम्न सीमा होती है। गुणात्मक अध्ययनों में आंकड़ों की विश्वसनीयता एक गंभीर समस्या मानी जाती है क्योंकि गुणात्मक प्रकृति के कारण इनकी विश्वसनीयता की परख करना सम्भव नहीं है। चूंकि ऐसे अध्ययनों में कोई वस्तुनिष्ठ पैमाना प्रयोग में नहीं लाया जाता। इसलिए विश्वसनीयता का प्रश्न अधिक उठाया जाता है। गुणात्मक शोध की विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाले कारणों में किसी अध्ययनरत समूह की संरचना का बाह्य एवं आन्तरिक कारणों के प्रभावों से निरन्तर परिवर्तित होना, इस संरचना का समय के अन्तराल में अत्यधिक परिवर्तित हो जाना, अध्ययन संबंधी कसौटी के रूप में अंतर आ जाना आदि प्रमुख हैं।

4.8 मुख्य शब्दावली

- **गुणात्मक** : अंकों की बजाय गुणों पर आधारित।
- **सहभागी अवलोकन** : अवलोकनकर्ता का अध्ययन समूह के सदस्यों में घुलमिल कर अध्ययन करना।
- **नृवंशविज्ञान पद्धति** : गुणात्मक अनुसंधान विधि जिसका प्रयोग मानवशास्त्र और समाजशास्त्र में किया जाता है।
- **आवृत्ति** : बारंबारता।
- **मौखिक इतिहास** : अलिखित इतिहास।
- **फील्डवर्क** : लोगों के बीच जाकर किया जाने वाला कार्य।

4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. गुणात्मक अनुसंधान का अर्थ एवं उपयोग बताइए।
2. मौखिक इतिहास से क्या तात्पय है? समझाइए।

टिप्पणी

3. मौखिक इतिहास की कार्य पद्धति को संक्षेप में समझाइए।
4. गुणात्मक अनुसंधान में पद्धतिगत मुद्दों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
5. गुणात्मक अनुसंधान में विश्वसनीयता का महत्व संक्षेप में बताइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. गुणात्मक अनुसंधान की तकनीक एवं विधियों को सविस्तार समझाइए।
2. गुणात्मक एवं मात्रात्मक अनुसंधान में अंतर पर प्रकाश डालिए।
3. मौखिक इतिहास का विवरणात्मक विश्लेषण कीजिए।
4. मौखिक इतिहास की कार्य पद्धति विस्तारपूर्वक समझाइए।
5. मौखिक इतिहास के अंतर्गत जीवन इतिहास वंशावली विषय को विस्तार से समझाइए।
6. गुणात्मक अनुसंधान में पद्धतिगत दुविधाओं और मुद्दों का विश्लेषण कीजिए।
7. गुणात्मक आंकड़ों के प्रारूप और प्रसंस्करण से आप क्या समझते हैं? सविस्तार बताइए।
8. फील्डवर्क के संघर्ष और अनुभव की व्याख्या कीजिए।
9. गुणात्मक अनुसंधान में वैधता और विश्वसनीयता पर अपने विचार बताइए।
10. निम्न पर टिप्पणी लिखिए–

    (क) सहभागी अवलोकन (ख) नृवंशविज्ञान पद्धति (ग) इंटरव्यू गाइड, (घ) जीवन इतिहास वंशावली, (ङ) नैतिक लोकाचार (च) सहभागी के अधिकार (छ) सामान्य नैतिकताएं

4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

Charles, C. Ragin. 1994. *Constructing Social Research: The Unity and Diversity of Method*. USA: Pine Forge Press.

Barton, Keith. C. 2006. *Research Methods in Social Studies Education.* USA: Information Age Publishing Inc.

Williman, Nicholas. 2006. *Social Research Methods.* London: Sage Publications Ltd.

Kumar, Dr. C. Rajendra. 2008. *Research Methodology.* New Delhi: APH Publishing Corporation.

Bulmer, Martin. 2003. *Sociological Research Methods: An Introduction*. USA: Transaction Publishers.

Scheurich, James J. 2001. *Research Method in The Postmodern.* Philadelphia: RoutledgeFalmer.

Singh, Kultar. 2007. *Quantitative Social Research Methods.* New Delhi: Sage Publications India Private Ltd.

इकाई 5 सामाजिक अनुसंधान में समष्टि सांख्यिकी और द्वितीयक स्रोत, त्रिकोणीय सर्वेक्षण विधियां एवं सीमाएं

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 सामाजिक अनुसंधान में समष्टि सांख्यिकी एवं द्वितीयक स्रोतों की विधियां और उपयोग (दुर्खीम का आत्महत्या का सिद्धांत, जनगणना तथा राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण
- 5.2.1 समष्टि सांख्यिकी
- 5.2.2 तथ्य संकलन के द्वितीयक स्रोत
- 5.2.3 दुर्खीम का आत्महत्या का सिद्धांत
- 5.2.4 जनगणना
- 5.2.5 राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण

5.3 त्रिकोणीय सर्वेक्षण : गुणात्मक और मात्रात्मक पद्धति का मिश्रण
- 5.3.1 मात्रात्मक एवं गुणात्मक शोध
- 5.3.2 मात्रात्मक एवं गुणात्मक शोध में अंतर

5.4 सामाजिक शोध, क्रियात्मक शोध, सहभागी शोध : सामाजिक शोध में नैतिक मुद्दे
- 5.4.1 क्रियात्मक शोध
- 5.4.2 सहभागी शोध
- 5.4.3 सामाजिक शोध में नैतिक मुद्दे

5.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.6 सारांश
5.7 मुख्य शब्दावली
5.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.9 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय

सामाजिक अनुसंधान (शोध) वह क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक अध्ययन विधि है जिसके आधार पर सामाजिक घटनाओं के संबंध में हम नवीन ज्ञान की प्राप्ति करते हैं या पहले से प्रतिपादित नियमों की पुनः परीक्षा करते हैं तथा साथ ही तथ्यों के कार्य कारण को स्पष्ट करते हैं। सामान्यतः यह माना जाता है कि सामाजिक शोध, सामाजिक अनुसंधान का ही एक रूप है क्योंकि इसमें संपूर्ण ज्ञान वैज्ञानिक पद्धति (निरीक्षण, वर्गीकरण, प्रयोग, निष्कर्षीकरण) द्वारा प्राप्त किया जाता है और इसी पद्धति के द्वारा पूर्व स्थापित सिद्धांतों की पुनर्परीक्षा की जाती है व सत्यता की जांच की जाती है।

सामाजिक विज्ञान में त्रिकोणीयकरण एक ही घटना के अध्ययन में कई अनुसंधान पद्धतियों के संयोजन को संदर्भित करता है। त्रिकोणीय सर्वेक्षण पद्धति समाजशास्त्र में बहुत लोकप्रिय है। विशेष रूप से इसका प्रयोग मात्रात्मक और गुणात्मक अध्ययन में किया जाता है। यह गुणात्मक विश्लेषण की विश्वसनीयता को स्थापित करने की एक उपयुक्त विधि है। यह वैधता और विश्वसनीयता जैसे पारंपरिक मानदंडों का विकल्प बन जाती है।

दुर्खीम का आत्महत्या पर अध्ययन उनके कार्यों में अभौतिक सामाजिक तथ्यों पर उनके कार्य का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। उनके मूलभूत कारण संबंधी नमूनों में, अभौतिक सामाजिक तथ्यों में परिवर्तन से अंततः आत्महत्या की दर में अंतर स्पष्ट होता है। दुर्खीम ने चार प्रकार की आत्महत्या में अंतर स्पष्ट किया – अहंकारी, परोपकारी, विरत एवं भाग्यवादी और साथ ही यह भी दर्शाया है कि ये किस प्रकार सामाजिक धारा में विभिन्न परिवर्तन से प्रभावित होते हैं। दुर्खीम एवं उनके समर्थकों के द्वारा आत्महत्या के अध्ययन को समाजशास्त्र के समाज विज्ञान में एक न्यायोचित स्थान के साक्ष्य के रूप में लिया गया है। यह तर्क दिया गया कि यदि समाजशास्त्र द्वारा आत्महत्या को व्यक्तिगत कार्य के रूप में व्याख्यायित किया जाता है तब इसका प्रयोग निश्चय ही सामाजिक जीवन के कम व्यक्तिगत पहलुओं की व्याख्या के लिए भी किया जाएगा।

द्वितीयक स्रोतों के अंतर्गत आने वाले ऐतिहासिक प्रलेखों, जीवन इतिहासों, ऐतिहासिक डायरियों का महत्व कम नहीं है। इतिहास की उपेक्षा सामाजिक अनुसंधानों में नहीं की जाती। जॉन ए, मेज का मत है, ''ऐतिहासिकता को समाजशास्त्र की श्रेणी से बाहर कर देना कोई बुद्धिमता का कार्य नहीं है, केवल नाम मात्र के समाजशास्त्री ही प्रलेखों के उपयोग का त्याग करते हैं, चाहे वे सामाजिक हो अथवा प्राचीन।'' अतः पूर्व इतिहास के बिना किसी घटना के महत्व को नहीं समझ सकते। यदि सामाजिक संस्थाओं, घटनाओं का अध्ययन करना है तो ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि को जानना आवश्यक होगा।

क्रियात्मक शोध मुख्यतया स्थानिक समस्याओं का हल करने के लिए किया जाता है। इसका निष्पादन मुख्यतया शोधार्थियों द्वारा तब किया जाता है जब उन्होंने शोध की धारणाओं एवं विधियों को अच्छी तरह से सीख लिया हो। यहां यह समझना आवश्यक है कि क्रियात्मक शोध एक मनःस्थिति भी है। उदाहरणतया जो अध्यापक क्रियात्मक शोधार्थी होते हैं वे निरंतर अपने विद्यार्थियों का अवलोकन करते रहते हैं एवं यह सोचते रहते हैं कि किस प्रकार से वे अपने विद्यार्थियों को बेहतर समझाने के लिए शिक्षण पद्धति, कक्षा प्रबंध, अनुशासन, उपस्थिति, समय पालनता आदि में सुधार कर सकते हैं।

प्रस्तुत इकाई में आप सामाजिक अनुसंधान में समष्टि सांख्यिकी, द्वितीयक स्रोत, त्रिकोणीय सर्वेक्षण की विधियां, दुर्खीम का आत्महत्या सिद्धांत, जनगणना तथा राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण और सामाजिक शोध में नैतिक मुद्दे आदि तथ्यों का अध्ययन करेंगे।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- सामाजिक अनुसंधान में समष्टि सांख्यिकी एवं द्वितीयक स्रोतों के विभिन्न पक्षों को जान पाएंगे;
- त्रिकोणीय सर्वेक्षण में गुणात्मक और मात्रात्मक सर्वेक्षण पद्धतियों के मिश्रित उपयोग को समझ पाएंगे;
- सामाजिक शोध, क्रियात्मक शोध, सहभागी शोध एवं सामाजिक शोध के नैतिक मुद्दों का अध्ययन कर पाएंगे।

5.2 सामाजिक अनुसंधान में समष्टि सांख्यिकी एवं द्वितीयक स्रोतों की विधियां और उपयोग (दुर्खीम का आत्महत्या का सिद्धांत, जनगणना तथा राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण

इन विषयों का अध्ययन निम्नानुसार किया जा सकता है–

5.2.1 समष्टि सांख्यिकी

सांख्यिकी की अर्थशास्त्र के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका है। जीवन के सभी क्षेत्रों में सांख्यिकी आंकड़ों की आवश्यकता रहती है। वस्तुतः किसी भी अनुसंधान का अध्ययन तब तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक कि उसके परिमाणात्मक प्रमाण व आंकड़े नहीं मिल जाते। सांख्यिकी में समष्टि (मैक्रो) सांख्यिकी का विशेष अध्ययन किया जाता है।

हालांकि समष्टि (मैक्रो) की जानकारी ज्यादा सटीक नहीं होती है। इसका मतलब यह है कि अपर्याप्त प्रासंगिक समष्टि डेटा और तथ्यों के कारण सही निर्णय लेने में चूक हो सकती है। ऊंची लागत, प्रतिबंधों और बाहरी प्रभावों के कारण जानकारी बेकार चली जाती है। अच्छा शोध कार्य महंगा होता है और केवल तभी लाभदायक होता है जब कुछ प्रतिभागियों की जानकारी का स्तर उच्च होता है। यदि जानकारी का स्तर कम हो तो शोध निष्कर्ष आम तौर पर व्यापारिक निर्णय लिए जाने योग्य नहीं होते हैं।

2007–09 के बहुत बड़े वित्तीय संकट ने यह साबित कर दिया कि वित्तीय स्थिरता के मुद्दों में सूक्ष्म (Micro) और स्थूल (Macro) दोनों पक्ष महत्वपूर्ण हैं। सूक्ष्म (Micro) स्तर पर – अर्थात, व्यक्तिगत संस्थाओं, लेनदेन या उपकरणों के स्तर पर – विशिष्ट क्षेत्रों में सामना किया जाने वाला तनाव पूरी वित्तीय प्रणाली में तेजी से प्रतिध्वनित होता है। वृहद (Macro) स्तर पर – यानी, समग्र रूप से (राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय) अर्थव्यवस्था के स्तर पर, संकट से पहले एक वित्तीय उछाल आया था, जिसमें तेजी से ऋण वृद्धि, परिसंपत्ति की कीमतों में वृद्धि और समायोजन की नीतियां शामिल थीं, जिसके कारण पूरे सिस्टम में भंगुरता का निर्माण हुआ। 2007–2009 के आर्थिक संकट ने दिखाया कि समेकित डेटा पर्याप्त नहीं होता हैः आपको "शुद्ध" सूक्ष्म जानकारी पर विचार करने की आवश्यकता होती है जो मैक्रो परिप्रेक्ष्य से प्रासंगिक भी हो। मैक्रो आंकड़ों को बेहतर बनाने के तरीके के रूप में माइक्रो डेटा एकत्र करने के लाभों को पहचानने के लिए आम सहमति बन रही है। निश्चित रूप से, सूक्ष्म (माइक्रो Data) जरूरी नहीं कि पूर्णता का पर्याय हो। बड़ी मात्रा में संपूर्ण और बारीक जानकारी (माइक्रो Data) के संग्रह पर निर्भर हुए बिना भी मैक्रो सांख्यिकी को बढ़ाने की आवश्यकता है।

परिभाषा

सांख्यिकीय पद्धति के अनुरूप सांख्यिकीय माइक्रोडेटा (Micro डाटा) के एक उद्देश्यपूर्ण एकत्रीकरण द्वारा प्राप्त एक अवलोकन डेटा को मैक्रोडेटा (Macro डाटा) कहते हैं।

सांख्यिकी द्वारा समूह या समुच्चय के माइक्रोडेटा से प्राप्त डेटा को मैक्रोडेटा कहते हैं, जैसे कि संख्या, माध्य या आवृत्तियां।

समष्टि प्रवृत्ति संकेतक (Macro trend indicators)

चूंकि उपलब्ध मैक्रो डेटा की सीमा बहुत बड़ी होती है, इसलिए उन्हें अनिवार्य रूप से सार्थक संकेतकों के छोटे प्रबंधनीय सेटों में संघनित किया जाना चाहिए। आम तौर पर, एक मैक्रो ट्रेंड इंडिकेटर को एक अद्यतन करने योग्य समय श्रृंखला के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो एक सार्थक आर्थिक या वित्तीय प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है और जिसे व्यापार हेतु योग्य प्रदर्शन के लिए मैप किया जा सकता है। मैक्रो ट्रेंड इंडिकेटर्स के लिए सूचना के तीन प्रमुख स्रोत होते हैं–

- आर्थिक डेटा,
- वित्तीय बाजार डेटा, और
- विशेषज्ञ निर्णय

नवंबर 2009 में, G–20 ने वैश्विक वित्तीय संकट के बाद पहचाने गए डेटा अंतराल (data gap) को बंद करने के लिए 20 सिफारिशों का समर्थन किया ताकि नीति विश्लेषण में वृद्धि का समर्थन किया जा सके।

वित्तीय स्थिरता उद्देश्यों के लिए सूक्ष्म (Micro) और स्थूल (Macro) सांख्यिकीय डेटा को जोड़ कर प्रयुक्त किया जाता है। "पारंपरिक" समष्टि (Macro) आंकड़ों की सटीकता/विवरण एवं गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए एक विचार यह हो सकता है कि सूक्ष्म (Micro) डेटा स्रोतों की समृद्धि का उपयोग किया जाए।

5.2.2 तथ्य संकलन के द्वितीयक स्रोत

'द्वितीयक स्रोत' (Secondary Sources) शब्द से ऐसा प्रतीत होता है कि इनका महत्व नहीं है। अनुसंधानकर्ता केवल प्राथमिक स्रोतों पर ही अपने अनुसंधान की सामग्री के लिए निर्भर नहीं रह सकता। "द्वितीयक स्रोत भी उसे मूल्यवान महत्वपूर्ण एवं आवश्यक सामग्री प्रदान करते हैं तथा उनके अनुसंधान के बचे हुए या अधूरे कार्य को पूरा करने में सहायक हैं।" द्वितीयक स्रोत वे स्रोत हैं जिनमें प्रकाशित या अप्रकाशित प्रलेख या समस्त लिखित सामग्री सम्मिलित है।

प्राचीन युग में प्राथमिक स्रोतों का ही अधिक प्रचलन था। अनुसंधानकर्ता इसको ही महत्वपूर्ण एवं प्रामाणिक मानकर चलता था, परंतु अब द्वितीयक स्रोतों की जैसे–जैसे उसको जानकारी मिलती रहती है, वह अपनी अनुसंधान सामग्री के लिए इन स्रोतों पर पर्याप्त निर्भर होता जा रहा है।

तथ्य संकलन के द्वितीयक स्रोत को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं :

(क) व्यक्तिगत प्रलेख (Personal Document)

(ख) सार्वजनिक प्रलेख (Public Document)

(क) व्यक्तिगत प्रलेख (Personal Document)

व्यक्तिगत प्रलेख वह लिखित सामग्री है जिसमें एक व्यक्ति द्वारा अपने स्वयं के बारे में या सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक घटनाओं के बारे में वर्णन अपने दृष्टिकोण से किया हुआ हो। व्यक्तिगत प्रलेखों में सामान्यतः लेखक स्वयं के विचार, मनोवृत्तियां, आवेग, भावनाओं एवं दृष्टिकोण का समावेश करता है। स्वयं के निजी कार्यों, अनुभवों एवं विश्वासों का एक स्वतः लिखित प्रथम पुरुष वर्णन है। इससे स्पष्ट होता है कि (1) व्यक्तिगत प्रलेख व्यक्ति द्वारा स्वयं लिखे हुए होते हैं या यों कहिए उसकी स्वयं की रचना होती है, (2) इन प्रलेखों में उनकी मनोवृत्तियां और किसी घटना विशेष के बारे में दृष्टिकोण का पता चलता है, (3) ये रचनाएं व्यक्ति के स्वयं के अनुभवों पर निर्भर होती हैं, एवं (4) इसमें उसके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होती है।

व्यक्तिगत प्रलेखों का आज फैशन ही चल रहा है। इनको लिखने वाले महान व्यक्ति–लेखक, दार्शनिक, उच्चकोटि के नेता, साहित्यकार, कवि, कूटनीतिज्ञ आदि होते हैं। इन प्रलेखों में विस्तृत सामग्री मिल जाती है, जिससे अनुसंधानकर्ता को यह सुविधा और स्वंतत्रता रहती है कि वह जितनी सामग्री अर्थपूर्ण एवं उपयोगी समझे, उनका संकलन कर सके। क्योंकि ये प्रलेख व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित हैं अतः हमें लेखक के आन्तरिक भावों का पता चलता है कि उसका दृष्टिकोण किसी भी घटना के संबंध में एक विशेष प्रकार का क्यों हो रहा है? उसकी आंतरिक गहराइयों में छानबीन करने का हमें सुअवसर मिलता है, जो शायद हमें अन्य स्रोतों से नहीं मिलता। जेर के अनुसार, ''व्यक्तिगत प्रलेख अपने बिना मांगे रूप में बहुत मूल्यवान होते हैं। किसी विशेष सामाजिक सर्वेक्षण में भी वे उसकी प्रारंभिक खोज तथा प्राक्कल्पना निर्माण के साधन के रूप में अच्छा मार्गदर्शन कर सकते हैं।''

व्यक्तिगत प्रलेखों को लिखने के कारण

आलपोर्ट ने प्रलेखों को लिखने के पीछे कतिपय निम्नलिखित मुख्य कारण बताए हैं –

1. कार्य के औचित्य को सिद्ध करने के लिए।
2. अपने दोष, बुराइयों को स्वीकार करने के लिए।
3. व्यक्तिगत अनुभवों को साहित्य रूप देकर, आनन्द उठाने के लिए।
4. मानसिक तनावों और संघर्षों से छुटकारा पाने के लिए।
5. किसी सौंपे हुए कार्य की पूर्ति के लिए।
6. योग्यता प्रदर्शन के लिए।
7. धन व सम्मान पाने के लिए।
8. जनकल्याण की भावना द्वारा प्रेरित होकर।

व्यक्तिगत प्रलेखों के स्रोत

(1) जीवन इतिहास (life-Histories)

(2) डायरियां (Diaries)

(3) पत्र (Letters)

(4) संस्मरण (Memories)

1. **जीवन इतिहास** (life-Histories)—जॉन मेजर के शब्दों में, ''जीवन इतिहास का सच्चे अर्थ में तात्पर्य विस्तृत आत्मकथा से है। सामान्य अर्थ में इसका प्रयोग ढीले–ढाले तौर पर होता है तथा किसी भी जीवन संबंधी सामग्री के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है।''

महापुरूषों द्वारा लिखी गई आत्मकथाओं में केवल व्यक्तिगत जीवन की ही झांकी नहीं मिलती है। जवाहर लाल नेहरू व गांधी जी द्वारा लिखित आत्मकथाएं भारतीय संस्कृति तथा स्वाधीनता संघर्ष की जीती–जागती आत्मकथाएं हैं जिनमें पता चलता है कि भारतवर्ष का कौन सा स्वर्णिम युग रहा, कौन सी विकट समस्याएं किन–किन युगों में आईं, उस समय देश की क्या राजनीतिक, आर्थिक स्थिति थी, आदि।

जीवन इतिहास के सामान्यतः तीन प्रकार हैं —

(क) **स्वतः प्रेरित आत्मकथाएं** (Spontaneous Autobiography)—व्यक्ति अपनी इच्छा से जीवन अनुभवों का स्मरण कर जीवन की घटनाओं का क्रमिक रूप से ब्यौरा लिखता है।

(ख) **स्वैच्छिक–आत्म लेखन प्रमाण** (Volunteered Self-records)—ये प्रायः किसी परिवार, मित्रों, अनुसंधानकर्ता या सरकार से प्रेरणा मिलने या उनके कहने पर लिखी जाती है।

(ग) **संकलित जीवन इतिहास** (Compiled Life-History)—ये वे जीवनियां हैं जिन्हें व्यक्ति स्वयं नहीं लिखता बल्कि उसके द्वारा दिए गए, भाषण, प्रकाशित लेख साक्षात्कार, प्रेस स्टेटमेंट आदि में संकलित करके अन्य व्यक्ति उसके जीवन इतिहास को तैयार करता है।

इन जीवन कथाओं में न केवल विवरणात्मक सामग्री होती है बल्कि बड़े ही रोचक, हृदयस्पर्शी दृष्टांत पढ़ने को मिलते हैं जो प्रायः बड़े महत्व के होते हैं। हमें इस प्रकार नैतिकता एवं आदर्शों की ट्रेनिंग (प्रशिक्षण) भी मिलती है। यह तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक घटनाओं के संबंध में जानकारी प्राप्त करने का श्रेष्ठ साधन है।

इन जीवनियों का इतना महत्व होते हुए भी, इनकी कुछ सीमाएं हैं —

(1) इसमें लेखक के व्यक्तित्व के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है पर अन्य घटनाओं का वर्णन संक्षेप में ही मिलता है जिसे अनुसंधानकर्ता अनुसंधान सामग्री का आधार नहीं बना सकता।

(2) जीवनियों के प्रकाशन का उन्हें पहले से ही पता होता है, अतः वे कई बातों को छिपा देते हैं जिससे आत्मकथा या जीवनी का उद्देश्य विफल हो जाता है।

(3) लेखक का राजनीतिक सुझाव भी उसके मार्ग में बाधक हो जाता है जिसके कारण वह तथ्यों का उद्घाटन नहीं करना चाहता।

(4) प्रकाशक अपने स्वार्थवश उनके बारे में बढ़ा–चढ़ाकर लिखते हैं और घटनाओं को तोड़–मरोड़कर प्रस्तुत करते हैं।

(5) लेखक केवल उसी घटना को सम्मिलित करने की कोशिश करता है जो उसके दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है।

2. डायरियां (Diaries)—डायरियों में बहुत से लोग जीवन की विभिन्न घटनाओं को प्रस्तुत करते हैं। इनमें घटनाओं के प्रति अपनी प्रतिक्रियाओं और भावनाओं का समावेश होता है। जीवन के कटु अनुभव, विशेष परिस्थिति में स्वयं की मनः स्थिति, प्रक्रियाएं, रोष, सुख–दुख, मनोभाव आदि का वर्णन अक्सर डायरियों में मिलता है। इसमें अति गोपनीय बातों का भी जिक्र मिल जाता है। इस अर्थ में डायरियां आत्मकथाओं की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय होती हैं। जॉन मेंज के अनुसार, ''डायरियां सबसे अधिक रहस्योद्‌घाटन करने वाली होती हैं, क्योंकि जनता के समक्ष प्रस्तुत किए जाने का भय न होने के कारण, तथ्यों को तोड़ा–मरोड़ा नहीं जाता। ये डायरियां लेखक के अनुभवों तथा क्रियाओं का निष्पक्ष एवं स्पष्ट रूप से वर्णन करती हैं।'' डायरियां संबंधी स्रोत में प्रायः निम्नलिखित दोष पाए जाते हैं—

(क) अधिकांशतः जीवन के संघर्ष–पक्ष को बढ़ा–चढ़ाकर प्रकट किया जाता है तथा जीवन का सामान्य एवं शांन्तिपूर्ण पक्ष प्रायः बिल्कुल ही छोड़ दिया जाता है।

(ख) स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता क्योंकि लेखक कई बार सांकेतिक भाषा में स्वयं के समझने के लिए लिख देता है।

(ग) घटनाओं में क्रमबद्धता नहीं रहती क्योंकि कई बार डायरियों को महीनों तक नहीं लिखा जाता। बीमारी, घरेलू समस्याएं, आपत्तियां, उलझनें, अन्य व्यस्त कार्यक्रम आदि इतने हावी हो जाते हैं कि वह लिख नहीं पाता।

(घ) कभी–कभी इनमें भी कृत्रिमता आ जाती है क्योंकि डायरी लेखक सचेत रहते हैं कि एक दिन ये डायरियां प्रकाशित हो सकती हैं या होंगी। अतः इनमें निष्पक्षता नहीं आ पाती।

इन दोषों के बावजूद डायरियां अधिक प्रमाणित और विश्वसनीय मानी जाती हैं।

3. पत्र (Letters)—चूंकि पत्र व्यक्तिगत होते हैं, अतः इनके माध्यम से लेखक के वास्तविक विचारों, भावनाओं एवं दृष्टिकोणों का पता आसानी से लग जाता है। सामाजिक जीवन जैसे विवाह, प्रेम, तलाक या यौन पर लिखे पत्र तो वास्तविकताओं का ही चित्रण करते हैं। राजनीतिज्ञ द्वारा लिखे गुप्त पत्र देश की विदेश नीति का रहस्योद्‌घाटन करते हैं। राष्ट्राध्यक्षों के मध्य पत्र व्यवहार से पता चल सकता है कि देशों के आपसी संबंध कैसे रहे हैं, मधुर या कटु। पत्र शिक्षा व परीक्षण के भी अच्छे साधन हैं जैसे नेहरू जी द्वारा इन्दिरा को लिखे गए पत्र।

इनमें निम्नलिखित दोष पाए जाते हैं— (1) गोपनीय होने के कारण ये आसानी से मिल नहीं पाते। (2) घटनाओं का क्रमिक रिकॉर्ड नहीं मिलता। (3) कई महत्वपूर्ण तथा अनुसंधान से संबंधित पत्र प्राप्त नहीं हो पाते क्योंकि कई

तो गुम ही हो जाते हैं, कुछ बिल्कुल फटी हालत में होते हैं जिन्हें पढ़ा भी नहीं जा सकता। (4) कई बार भावनाओं में बहकर बहुत कुछ लिख दिया जाता है, बाद में अफसोस भी प्रकट किया जाता है । अतः क्षणिक भावनाओं पर आधारित ऐसे पत्र तथ्यों का उद्घाटन नहीं करते।

4. **संस्मरण** (Memories)–कई बार लोगों द्वारा जीवन की घटनाओं विभिन्न यात्राओं तथा महत्वपूर्ण परिस्थितियों के संस्मरण, अनुसंधानकर्ता को महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करते हैं। संस्मरण किसी देश या सामाज की आर्थिक, सांस्कृतिक, एवं शैक्षणिक परिस्थितियों के बारे में वास्तविक चित्रण प्रस्तुत करते हैं। प्राचीन काल में यात्रा वर्णनों, तथ्यों, स्मरणों ने ऐतिहासिक महत्व की सामग्री प्रदान की है। ह्वेननसांग, फाहियान, इब्नबतूता, के वर्णन भारतीय संस्कृति के बारे में प्रथम स्तर की महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं। इस प्रकार के विवरणों से हमें रीति–रिवाज, रहन–सहन, धर्म, वंश, भाषा एवं राजनीतिक परिस्थियों तथा सामाजिक वातावरण के बारे में उपयोगी सामग्री प्राप्त होती है। आज–कल बड़े–बड़े राजनेताओं जैसे चर्चिल, नेहरू, इन्दिरा गांधी आदि के संस्मरण बड़े ही महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

दोष (Defects)

(1) संस्मरण अधिकांशतः व्यक्ति प्रधान होते हैं।

(2) कई बार घटनाओं का वर्णन बढ़ा–चढ़ाकर किया जाता है।

(3) इसमें भी घटनाओं का क्रम नहीं होता है।

(4) साधारणतः भाषा की दृष्टि से सुंदर रूप में प्रस्तुत किए जाने का प्रयत्न रहता है।

व्यक्तिगत प्रलेखों का महत्व (Significance of Personal Documents)

सामाजिक अनुसंधान में व्यक्तिगत प्रलेखों का काफी महत्व है। प्रलेखों के माध्यम से भावनाओं, आवेगों और दृष्टिकोणों का स्पष्ट रूप से पता चलता है। इनके द्वारा घटनाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इनका महत्व तब और भी बढ़ जाता है जब ये प्रकाशन की दृष्टि से नहीं लिखे गए होते हैं। तुलनात्मक अध्ययन के लिए, व्यक्तिगत प्रलेख बड़े महत्व के हैं।

व्यक्तिगत प्रलेखों की स्वयं की कुछ सीमाएं (Limitations)–व्यक्तिगत प्रलेखों की स्वयं की कुछ सीमाएं हैं–

(1) व्यक्तिगत होने के कारण इनको आसनी से उपलब्ध नहीं किया जा सकता। हर व्यक्ति की पहुंच इन तक नहीं होती।

(2) व्यक्तिगत प्रलेख गोपनीय होते हैं अतः लेखक उनको देने में भी हिचकिचाता है क्योंकि उसे अपनी प्रतिष्ठा का बड़ा ख्याल रहता है।

(3) कई बड़े प्रलेखों में घटनाओं को क्रमबद्ध रूप में नहीं लिखा जाता क्योंकि लेखक की अपनी सीमायें होती हैं। अतः हमें पता नहीं चल पाता कि वे किस संदर्भ में लिखी गई हैं।

(4) इनमें कल्पना एवं आदर्श को अधिक स्थान मिलता है जिससे वास्तविकता छुप जाती है।

(5) लेखक का स्वयं का दृष्टिकोण पक्षपातपूर्ण हो सकता है क्योंकि उसे यह चेतना रहती है कि इन्हें प्रकाशित किया जाएगा।

(6) कभी–कभी केवल मात्र विद्वता को दिखाने के लिए ये लिख दिए जाते हैं। अतः वास्तविक प्रयोजन गौण हो जाता है।

(7) व्यक्तिगत होने के कारण ये प्रयोग समूचे समाज का प्रतिनिधित्व नहीं करते।

अंत में यही कहा जा सकता है कि यदि अनुसंधानकर्ता स्वयं कुछ सावधानी बरतें तो व्यक्तिगत प्रलेखों का महत्वपूर्ण उपयोग अपने अनुसंधान में कर सकता है।

(ख) सार्वजनिक प्रलेख (Public Documents)

सार्वजनिक प्रलेख उन्हें कहते हैं जिन्हें कोई सरकारी या गैर–सरकारी संस्था तैयार करती है। उन्हें प्रकाशित या अप्रकाशित रूप में जनता के लाभ के लिए उपलब्ध कराया जाता है। देश में विभिन्न प्रकार के आयोजन या कार्यक्रम रखे जाते हैं, उनका फिर रिकॉर्ड सरकार अपने पास रखती है। योजनाएं जैसे परिवार नियोजन, प्रौढ़ शिक्षा, तकनीकी प्रगति तथा औद्योगिक विकास आदि के संबंध में कई कार्यक्रम समय–समय पर होते रहते हैं। इनके संबंध में आंकड़े, सूचनाएं सुरक्षित रखी जाती हैं। कुछ अर्द्ध या गैर सरकारी संस्थाएं भी अलग से आंकड़े और सूचनाएं रखती हैं।

सार्वजनिक प्रलेख को भी दो भागों में विभाजित किया गया है –

(अ) प्रकाशित प्रलेख (Published Documents)

(ब) अप्रकाशित प्रलेख (Unpublished Documents)

(अ) प्रकाशित प्रलेख (Published Documents)–केवल उन्हीं प्रलेखों को प्रकाशित किया जाता है जो आम जनता द्वारा प्रयोग किए जा सकते हैं। ये सार्वजनिक स्थानों जैसे सार्वजनिक वाचनालयों, स्कूल और कॉलेज पुस्तकालयों में उपलब्ध हो सकते हैं। सार्वजनिक प्रलेख मुख्यतः निम्न प्रकार के होते हैं–

(1) **रिकॉर्ड** (Record)–विभिन्न सरकारी तथा गैर–सरकारी संगठन या संस्थायें अपनी आवश्यकताओं के लिए अनेक सूचनाओं का रिकॉर्ड रखती हैं जिनसे सामाजिक घटनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त हो सकती है पर क्या, बदनाम चरित्रों, समाज विरोधी तत्वों के रिकॉर्ड सरकार के पास रहते हैं? जिसकी जानकारी अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन हेतु प्राप्त कर सकता है। विभिन्न प्रकार की समितियां–सम्मेलन अपनी रिपोर्ट प्रकाशित करते रहते हैं और कुछ का रिकॉर्ड ब्योरों से प्राप्त हो सकता है। प्राइवेट कम्पनी के डायरेक्टर (निर्देशक) अपनी–अपनी कम्पनियों की सभाएं बुलाते हैं, जिनमें लाभ, नुकसान का ब्योरा दिया जाता है। कई प्रस्ताव आते हैं, जो महत्व के होते हैं उनको रिकॉर्ड के रूप में रख लिया जाता है।

(2) **प्रकाशित आंकड़े** (Published statistics)–सरकार तथा प्राइवेट संस्थाएं समय–समय पर आंकड़े प्रदान करती हैं। सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय द्वारा विभिन्न महत्वपूर्ण विषयों पर आंकड़े प्रकाशित किए जाते हैं जिनसे पता चलता है कि हमने विभिन्न क्षेत्रों में क्या उपलब्धियां प्राप्त की हैं, क्या हमारे उद्देश्य हैं तथा हम किस

रफ्तार से प्रगति पथ पर चल रहे हैं। ''भारत'' 1973, 1974, 1975 हर साल प्रकाशित होता है जिससे लगभग सभी विषयों पर आंकड़ों का संकलन मिलता है।

(3) **पत्र व पत्रिकाओं की रिपोर्ट** (report of the news paper and magazines)—विभिन्न प्रकार के सप्ताहिक, मासिक, द्वैमासिक, त्रैमासिक, अर्द्ध वार्षिक एवं वार्षिक पत्र पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं जिनमें सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा अंतर्राष्ट्रीय-घटनाओं का ब्योरा मिलता है। अनुसंधानकर्ता अपने कार्य संबंधी सामग्री को इनके माध्यम से प्राप्त कर सकता है। इनमें संपादकीय लेख बहुत महत्व के होते हैं जिनसे जनमत का पता लगाया जा सकता है।

(4) **विविध सामग्री** (Miscellaneous Materials)— पत्र, पत्रिकाओं, पुस्तकों, उपन्यासों में विविध प्रकार की प्रकाशित सामग्री का लाभ अनुसंधानकर्ता अपने अनुसंधान में उठा सकता है। कई उपन्यास जिनका उद्देश्य सामाजिक समस्याओं को प्रस्तुत कर उनका समाधान बताना होता है, वे सामाजिक अनुसंधानकर्ता के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। कई चलचित्र सामाजिक बुराइयों के भंडाफोड़ करने एवं उनमें सुधार करने के लिए किए गए प्रयत्नों को दर्शाते हैं, इनसे भी संबंधित जानकारी प्राप्त होने की सुविधा रहती है।

(ब) अप्रकाशित प्रलेख (Unpublished Documents)—इनमें निम्नलिखित प्रकार सम्मिलित हैं—

(1) **गोपनीय रिकॉर्ड** (Confidential Records)—ये वे रिकॉर्ड होते हैं जो सार्वजनिक होते हुए भी परिस्थितिवश प्रकाशित नहीं किए जा सकते। सार्वजनिक हित, सुरक्षा एवं व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए इनका प्रकाशन नहीं किया जाता। न्यायालयों के रिकॉर्ड, सैनिक दफ्तरों के रिकॉर्ड, जो प्रतिरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बोर्ड तथा विश्वविद्यालयों के परीक्षाफल रिकॉर्ड विभिन्न कम्पनियों तथा बैंकों के रिकॉर्ड जो गोपनपीय प्रकृति के होते हैं, उन्हें प्रकाशित नहीं किया जाता। संबंधित सूचनाएं उसी स्थिति में दी जा सकती हैं जब अधिकारी को स्वयं विश्वास हो जाता है कि प्राप्त सूचना का उद्देश्य केवल मात्र अनुसंधान कार्य के लिए है, या प्रमाणित प्रतिलिपियों जैसे– जन्म तिथि, संसद की कार्यवाही आदि के लिए इनकी आवश्यकता होती है।

(2) **दुर्लभ हस्तलेख** (Rare Manuscripts)—कई हस्तलेख विद्वानों, विचारकों, लेखकों व प्रतिभाशाली साहित्यकारों द्वारा लिखे गए हैं पर किसी कारणवश (जैसे अकस्मात मृत्यु या प्रकाशक द्वारा मुद्रित न करना) अप्रकाशित रह जाते हैं। अनेक हस्तलेख स्वयं द्वारा लिखे हुए होने के कारण या तो पढ़ने योग्य नहीं होते या वे किसी कारण विकृत या बर्बाद हो जाते हैं। इन हस्तलेखों से बड़ी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो सकती है। कई दुर्लभ हस्तलेख विभिन्न संग्रहालयों में पाए जाते हैं जिनका प्रयोग अनुसंधान के संबंध में सूचना प्राप्त करने के लिए किया जाता है।

(3) **शोध रिपोर्ट** (Research Reports)—ये रिपोर्ट विद्यार्थियों द्वारा विश्वविद्यालयों में एम.ए. या पीएच.डी. डिग्री प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत की जाती है। इनका प्रकाशन बहुत मुश्किल से हो पाता है। व्यक्ति स्वयं इनका प्रकाशन आर्थिक परिस्थितियों के कारण नहीं करवा पाता और प्रकाशक को जब तक मुनाफा होता नहीं दिखाई देता, वह इन शोध कार्यों को प्रकाशित नहीं करता। परिणाम यह होता है कि इन प्रकाशित शोध रिपोर्टों का उपयोग विश्वविद्यालयों तक ही सीमित रहता है।

द्वितीयक स्रोतों के गुण, दोष एवं सावधानियां (Merit, Demerit, and Precautions of secondary Sources)

गुण (Merit)

(1) भूतकालीन एवं ऐतिहासिक महत्व के तथ्य द्वितीयक स्रोतों से ही प्राप्त हो सकते हैं न कि प्राथमिक स्रोतों से।

(2) व्यक्तिगत डायरियों तथा संस्मरणों से व्यक्ति के मनोभाव, प्रकृति तथा आन्तरिक गहराइयों का पता स्पष्ट रूप से चलता है, अतः मनावैज्ञानिक विश्लेषण के लिए इनसे प्राप्त सामग्री बहुत महत्वपूर्ण होती है।

(3) जो सूचना साधरणतः किसी अध्ययनकर्ता को नहीं मिल सकती, वह सरकारी रिकॉर्ड द्वारा आसानी से प्राप्त हो जाती है।

(4) आत्मकथाओं से प्राप्त सूचना, विश्वसनीय व लाभप्रद होती है क्योंकि इसके अंतर्गत विविध सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक पक्षों का वर्णन निष्पक्ष दृष्टि से किया जा सकता है।

(5) इन स्रोतों से प्राप्त सामग्री के फलस्वरूप समय और धन की बचत होती है।

दोष (Demerit)

(1) व्यक्तिगत प्रलेखों द्वारा प्राप्त सामग्री व्यक्तित्व के बारें में विस्तृत जानकारी देती है न कि विशेष रूप से सामाजिक घटनाओं की।

(2) व्यक्तिगत प्रलेखों में कई बार बातें बढ़ा–चढ़ा कर लिखी जाती हैं जो निष्पक्ष एवं विश्वसनीय नहीं हो सकतीं।

(3) निंदा व आलोचना के भय से लेखक सत्य का उद्घाटन अपनी आत्मकथाओं व पत्रों में नहीं करता, अतः इनसे वास्तविकता का पता लगाना मुश्किल है।

(4) अक्सर घटनाओं का जिक्र क्रमहीन होता है अतः वे विशेष उपयोगी नहीं हो सकतीं।

(5) सरकारी आंकड़ों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। कई बार आंकड़ों व वास्तविकता के बीच मेल नहीं खाता।

(6) कई गोपनीय रिकॉर्ड उपलब्ध नहीं हो पाते, अतः अभीष्ट जानकारी मिलना दुर्लभ हो जाता है।

सावधानियां (Precautions)

अनुसंधानकर्ता को द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त आंकड़ों का बड़ी सावधानी से प्रयोग करना चाहिए। आंकड़ों को प्रयोग में लाने से पहले उसकी विश्वसनीयता की जांच करनी चाहिए। सरकारी आंकड़ों को ज्यों का त्यों नहीं मान लेना चाहिए क्योंकि वे काल्पनिक हो सकते हैं अतः इनकी पुनर्परीक्षा कर लेनी चाहिए। डॉ. वाउले के शब्दों में, ''प्रकाशित आंकड़ों को बिना उनका अर्थ तथा सीमाएं समझे हुए ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेना जोखिम से मुक्त नहीं है और यह सदैव जरूरी है कि उन पर आधारित किए जाने वाले तर्कों की आलोचना कर ली जाए।''

5.2.3 दुर्खीम का आत्महत्या का सिद्धांत

एमिल दुर्खीम का जन्म 15 अप्रैल, 1858 को एपिनल, फ्रांस में हुआ था। वे यहूदी धर्माधिकारी के वंशज थे और उन्होंने स्वयं भी यहूदी धर्माधिकारी बनने की पढ़ाई की। यद्यपि जब वे अपनी किशोरावस्था में थे, उन्होंने अपनी परंपरा को छोड़ दिया तथा नास्तिक बन गए। यहां से जीवनपर्यन्त धर्म के प्रति उनकी रुचि आध्यात्मिक की बजाय शैक्षणिक की रही। वे अपनी धार्मिक शिक्षा से संतुष्ट नहीं थे। वे अपनी स्कूली शिक्षा वैज्ञानिक तरीके से चाहते थे एवं सामाजिक जीवन के लिए नैतिक सिद्धान्तों की अनिवार्यता को समझते थे। उन्होंने दर्शन के लिए पारंपरिक शैक्षणिक वृत्ति का चुनाव नहीं किया, बल्कि समाज को नैतिक मार्गदर्शन में योगदान देने के लिए वैज्ञानिक शिक्षण प्राप्त करने का प्रयास किया। हालांकि उनकी रुचि वैज्ञानिक समाजशास्त्र में थी जबकि उस समय इस विशेष प्रकार का समाजशास्त्र नहीं था। इसलिए 1882 और 1887 के मध्य उन्होंने प्रांतीय विद्यालयों में दर्शनशास्त्र का अध्यापन कार्य किया।

विज्ञान के प्रति उनकी जिज्ञासा जर्मन की एक यात्रा से और बढ़ गई जहां उन्होंने विल्हेम वुन्ड को वैज्ञानिक मनोविज्ञान के अन्वेषक के रूप में देखा। जर्मनी यात्रा के तुरंत बाद के वर्षों में उन्होंने अपने अनुभवों के बारे में अपनी अवधारणा पर आधारित कुछ सामग्री छपवायीं। इन प्रकाशनों ने उन्हें 1887 में बॉरडॉक्स विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग में स्थान बनाने में मदद प्रदान की। दुर्खीम ने एक फ्रांसीसी विश्वविद्यालय को समाज विज्ञान के पहले पाठ्यक्रम का प्रस्ताव दिया। यह एक विशेष उपलब्धि थी क्योंकि केवल एक दशक पहले एक फ्रांसीसी विश्वविद्यालय में ऑगस्ट कॉम्टे द्वारा दिए गए एक शोध व्याख्यान में अत्यधिक उत्तेजना उभरी थी। दुर्खीम की मुख्य जिम्मेदारी स्कूली शिक्षकों को शिक्षण पाठ्यक्रम में शिक्षा देना था तथा उनका सबसे महत्त्वपूर्ण पाठ्यक्रम नैतिक शिक्षा का क्षेत्र था। उनका उद्देश्य शिक्षकों में नैतिक शिक्षा का संचार करना था जिसके बारे में उन्हें उम्मीद थी कि वे उसे युवा लोगों में फैलाएंगे तथा जिससे फ्रांसीसी समाज में हो रहे नैतिक पतन को रोकने में मदद मिलेगी।

बाद के वर्षों में दुर्खीम को मिली व्यक्तिगत सफलताओं के कारण विशेष हैं। 1893 में उन्होंने अपनी पहली डॉक्टरेट शोध 'द डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसायटी' के साथ मॉन्टेस्क्यू पर शोध प्रकाशित किया। उनका प्रमुख सैद्धान्तिक वाक्य 'द रूल्स ऑफ सोशियोलॉजिकल मेथड' 1885 में आया तथा इसके बाद 1887 में आत्महत्या से संबंधित अध्ययन में उनके वे अनुभवजन्य तरीके छपे। 1896 तक वे बॉरडॉक्स विश्वविद्यालय में पूर्ण रूप से प्रोफेसर बन चुके थे। 1902 में उन्हें विख्यात फ्रांसीसी विश्वविद्यालय सॉरबॉन द्वारा आमंत्रित किया गया तथा 1906 में 'शिक्षा के विज्ञान के प्रोफेसर' के रूप में विख्यात हुए। यह उपाधि 1913 में बदल कर 'शिक्षा के विज्ञान एवं समाजशास्त्र के प्रोफेसर' हुई। 1912 में उनका एक अन्य विख्यात कार्य 'द ऐलीमेन्ट्री फॉर्म्स ऑफ रिलिजियस लाइफ' प्रकाशित हुआ।

वर्तमान में दुर्खीम मुख्यतया राजनीतिक रूढ़िवादी के रूप में देखे जाते हैं एवं समाजशास्त्र में निश्चय ही उनका प्रभाव एक रूढ़िवादी का रहा है। तथापि अपने समय में वे एक उदारवादी माने जाते थे। इसका दृष्टांत अल्फ्रेड ड्रेफ्स तथा यहूदी सैनिक

कप्तान का बचाव करने में उनकी सक्रिय भूमिका निभाना है जिसे राजद्रोह के कारण कोर्टमार्शल देने के संबंध में यहूदी विरोधी कार्य के रूप में माना जा रहा था।

दुर्खीम ड्रेफ्स के मामले में, विशेष रूप से इसके यहूदी विरोधी होने के कारण बहुत नाखुश थे। यद्यपि दुर्खीम ने इसे फ्रांसीसियों में नस्लवाद के कारण यहूदी विरोधी होना नहीं माना था। उन्होंने इसे विशेष रूप से पूरे फ्रांसीसी समाज में नैतिक पतन के लक्षण के रूप में देखा था।

दुर्खीम का ड्रेफ्स के मामले में रुचि उनके जीवनपर्यन्त नैतिकता के प्रति गहरी आस्था एवं आधुनिक समाज के नैतिक संकट से गुजरने के कारण थी। दुर्खीम के लिए ड्रेफ्स के मामले और इस जैसे संकट का उत्तर समाज में नैतिक अव्यवस्था की समाप्ति में था। क्योंकि यह आसानी और शीघ्रता से नहीं किया जा सकता था उन्होंने सरकारी प्रयासों का सुझाव दिया जिससे आम लोगों को यह दर्शाया जा सके कि वे किस प्रकार गुमराह किये जा रहे हैं। उन्होंने लोगों से यह अपील की कि उनमें अपनी सोच को जोरदार तरीके से प्रकट करने का साहस होना चाहिए तथा उन्हें एकजुट होकर लोक उन्माद के विरूद्ध संघर्ष कर अपनी जीत सुनिश्चित करना चाहिए (लुकास, 1972, 347)।

दुर्खीम की साम्यवाद में अभिरुचि भी उनके प्रति रूढ़िवादिता के विचार के विरुद्ध एक साक्ष्य है, परन्तु उनके प्रकार का साम्यवाद उस समय परिकल्पना के बाहर था (लुकास, 1972, 323)। दुर्खीम के लिए साम्यवाद एक प्रकार के आंदोलन का प्रतीक था जिसमें वैज्ञानिक नैतिकता के द्वारा नैतिक पुनर्जीवित करने का उद्देश्य था तथा उन्हें साम्यवाद के किसी लघुकालीन राजनीतिक या आर्थिक तरीकों के पहलू में कोई अभिरुचि नहीं थी। वे सर्वहारा को समाज की मुक्ति के रूप में नहीं देखते थे तथा वे उत्तेजना या हिंसा के घोर विरोधी थे। दुर्खीम के लिए साम्यवाद हमारे द्वारा सामान्य रूप से विचारित साम्यवाद से बिल्कुल भिन्न था और वे इसे एक ऐसी व्यवस्था के रूप में देखते थे जिसके अन्तर्गत वैज्ञानिक समाजशास्त्र द्वारा अन्वेषित नैतिक सिद्धान्त प्रयुक्त किये जाने थे।

दुर्खीम का समाजशास्त्र के विकास में गहरा प्रभाव था, लेकिन उनका प्रभाव केवल यहीं तक सीमित नहीं था। अन्य क्षेत्रों में भी उनका प्रभाव था जो उनके द्वारा 1898 में स्थापित एक पत्रिका 'ले एन्नि सोशियोलॉजिक' के माध्यम से उद्घाटित हुआ। इस पत्रिका से संबद्ध एक बुद्धिजीवी वर्ग का उदय हुआ जिसके केन्द्र में दुर्खीम थे। इसके माध्यम से मानव विज्ञान, इतिहास, भाषा–विज्ञान, मनोविज्ञान आदि विषय पर भी उनके विचारों का प्रभाव पड़ा।

दुर्खीम का निधन बुद्धिजीवी वर्ग में एक प्रख्यात व्यक्ति के रूप में 15 नवंबर, 1917 में हुआ। यद्यपि बीस साल के बाद, टेलकॉट पार्सन्स के द्वारा 1937 में प्रकाशित 'द स्ट्रक्चर ऑफ सोशल एक्शन' हुआ जिससे अमेरिकन समाजशास्त्र पर उनके कार्यों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा।

आत्महत्या का अध्ययन

दुर्खीम ने पुस्तक 'सुसाइड' में आत्महत्या पर अध्ययन किया है। उनका उद्देश्य इस पुस्तक में मात्र आत्महत्या से संबंधित विवरण देना नहीं है, अपितु यह भी दृष्टांत प्रस्तुत करना है कि किस प्रकार मनुष्य के अधिकांश कार्य में इन पद्धतियों को प्रयुक्त किया

जाता सकता है। दुर्खीम ने इस पुस्तक में दर्शाया है कि व्यक्ति किस सीमा तक सामूहिक वास्तविकता से निर्धारित होते हैं। दुर्खीम ने यह प्रदर्शित किया कि किस प्रकार सामाजिक ढंग में अपने जीवन को लेना सर्वाधिक वैयक्तिक एवं व्यक्तिगत कार्य रूप है। उन्होंने यह भी दर्शाया कि व्यक्ति के बाहर की स्थिति, सामाजिक शक्तियां व्यक्ति के आत्महत्या करने के लिए संभावना बनाते हैं।

आत्महत्या को स्वयं व्यक्ति के द्वारा किए गए कार्य को सकारात्मक या नकारात्मक कार्य के रूप में परिभाषित किया जाता है जो परिणामस्वरूप प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उसकी मृत्यु के रूप में होती है। किसी व्यक्ति के द्वारा अपने सिर में गोली मार लेना या अपने को लटका देना सकारात्मक कार्य के रूप का उदाहरण होगा। आत्महत्या का नकारात्मक कार्य का उदाहरण है कि यदि वह अपने जलते हुए घर में रहे या अपने लिए सभी पोषण को नकार दे जिससे भूख से उसकी मृत्यु हो जाएगी। दुर्खीम की परिभाषा के अनुसार, आत्महत्या के रूप में किसी व्यक्ति की भूख हड़ताल करने से हुई मृत्यु का उदाहरण ले सकते हैं। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष में अंतर सकारात्मक एवं नकारात्मक के बीच तुलना से संबद्ध है। अपने सिर में गोली मारने से हुई मृत्यु प्रत्यक्ष है, परन्तु किसी के द्वारा भोजन का त्याग करना अथवा जलते हुए घर में रह जाना जैसे नकारात्मक कार्य से वांछित परिणाम के रूप में अप्रत्यक्ष या निकट भविष्य में मृत्यु होगी।

आत्महत्या के अध्ययन का सरोकार –आधुनिक समाज के रोगात्मक पहलू के साथ एवं व्यक्ति का सामूहिकता के संबंध की सर्वाधिक स्पष्ट घटना– दोनों से है। दुर्खीम के द्वारा यह दर्शाया गया है कि व्यक्ति सामूहिक सत्यता से निर्धारित होता है। जबकि यह तथ्य कि किसी के द्वारा अपनी जान लेना सर्वोच्च रूप से व्यक्तिगत माना जाता है तब एक असाधारण शक्ति आत्महत्या की घटना के साथ जोड़ा जा रहा होता है। दुर्खीम के अनुसार यदि वे यह पाते कि समाज इस घटना से शासित होता है, तब उन्होंने इसे अपने शोध की सत्यता से इस घटना के प्रतिकूल मामले के द्वारा सिद्ध कर दिया होता। दुर्खीम के अनुसार यह समाज ही है जो निराश व्यक्ति के एकांत में किये गये कार्य को शासित करता है और जो किसी भी कीमत पर अपने जीवन को समाप्त करना चाहता है। आत्महत्या की अवधारणा को मात्र इस तरह नहीं लिया जाना चाहिए, बल्कि इसे एक अधिकारी के आत्महत्या के उदाहरण से समझना चाहिए कि वह अपने जहाज पर अपने दुश्मनों के समक्ष आत्मसमर्पण करने की बजाय स्वयं को उड़ा देता है। इस आत्महत्या को वीरता एवं गर्व की आभा से आच्छादित स्वैच्छिक मृत्यु के उदाहरण की तरह समझा जा सकता है। ये तथाकथित सामान्य आत्महत्या उस तरह की नहीं होती हैं जैसे एक फंसे हुए अपराधी, एक बर्बाद हो गए बैंकर और एक निराश प्रेमी द्वारा की गई होती है।

इस घटना की परिभाषा के बाद दूसरे स्तर पर इसके आंकड़ों को देखते हैं। जब एक खास जनसंख्या से संबद्ध इसकी आवृत्ति का अध्ययन करते हैं तो आत्महत्या का दर अपेक्षाकृत स्थिर होता है। यह विशेषता एक क्षेत्र, उपनिवेश या एक पूरे समाज में देखी जा सकती है। दुर्खीम के विश्लेषण के अनुसार, आत्महत्या की दर को सामाजिक घटना के रूप में देखा जा सकता है। सिद्धान्त के दृष्टिकोण से सामाजिक घटना

(आत्महत्या की दर) एवं वैयक्तिक घटना (आत्महत्या) के संबंधों में अंतर सबसे महत्वपूर्ण बात है।

दुर्खीम के द्वारा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को नकार दिया गया। यद्यपि, वे कहते हैं कि आत्महत्या की ओर मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति होती है तथा इस प्रवृत्ति की व्याख्या मनोवैज्ञानिक या मनोरोग के अर्थ में हो सकती है। दिमागी बीमारी से पीड़ित व्यक्ति में विशेष परिस्थितियों में अपने को मार डालने की संभावना होती है। फिर भी, दुर्खीम के अनुसार आत्महत्या सामाजिक बल के द्वारा निर्धारित होती है न कि मनोवैज्ञानिक कारकों के द्वारा होती है। सामाजिक निर्धारक एवं मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों के बीच के अंतरों को सावधानीपूर्वक समझना चाहिए।

दुर्खीम ने मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के अंतर्गत समाजशास्त्रीय विचार के सूत्र को सिद्ध करने के लिए आनुशंगिक रूपान्तरण की पारंपरिक पद्धतियों का प्रयोग किया। उन्होंने यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया कि मनोरोग अवस्था की आवृत्ति एवं आत्महत्या के बीच कोई संबंध नहीं है तथा उन्होंने विभिन्न आबादी वर्ग में आत्महत्या की दर की खास भिन्नताओं की भी पड़ताल की। आत्महत्या की दर एवं आनुवंशिक प्रवृत्तियों के बीच कोई संबंध नहीं पाया जाता है। यह आत्महत्या के प्रभावी कारण आनुवंशिकता के द्वारा स्थानान्तरित होते हैं। इसकी परिकल्पना की तुलना उम्र बढ़ने के साथ आत्महत्या की दर में वृद्धि के साथ कठिनाई से की जा सकती है। इस तरह से एक ही परिवार में आत्महत्या के मामलों की व्याख्या को नकारा जा सकता है। फिर भी आत्महत्या की प्रवृत्ति का आनुवंशिकता के द्वारा स्थानान्तरण हो सकता है जैसे कि एक ही परिवार में आत्महत्या के कई मामले थे।

यद्यपि दुर्खीम ने दोनों ही परिकल्पनाओं को तथा अनुकरण की घटना के द्वारा आत्महत्या की व्याख्या को नकार दिया। गेब्रिएल टार्ड के द्वारा सामाजिक व्यवस्था के मूल सिद्धान्त के रूप में अनुकरण को देखा गया। अनुकरण में तीन भ्रामक घटनाएं होती हैं। प्रथम, बड़ी संख्या में लोगों के द्वारा आपसी संवेदनाओं की अनुभूति करना चेतना संयोजना है। क्रांतिकारियों की भीड़ इसका एक सटीक उदाहरण है। व्यक्तिगत चेतना की पहचान की प्रवृत्ति क्रांतिकारियों की भीड़ में मिल जाती है, अनुभूति की जाने वाली भावनाएं एक–दूसरे में एक जैसी हो जाती हैं और परस्पर एक–दूसरे की संवेदनाओं से व्यक्ति उद्वेलित हो जाते हैं। भावावेश, कार्य एवं विश्वास एक–दूसरे के प्रति संबद्ध हो जाते हैं, क्योंकि वे सभी से संयुक्त हो जाते हैं। एक या अन्य व्यक्ति नहीं, बल्कि सामूहिकता ही घटना का आधार बन जाती है।

व्यक्ति प्रायः अपने को सामूहिकता से जोड़ लेता है और अन्य के जैसा व्यवहार करने लगता है। चेतना को कोई वास्तविक संयोजन नहीं होता है। व्यक्ति की इच्छा अपने को विशिष्ट दिखाने की नहीं होती है तथा सामाजिक अनिवार्यताओं को जो कम या अधिक होता है वह अर्जित करता है। सामाजिक अनिवार्यताओं को प्रचलन के रूप में लिया जा सकता है। यदि एक व्यक्ति अलग तरह की पोशाक पहनता है जो मौसम के अनुसार फैशन में नहीं है, तब वह अपने को अपमानित महसूस करता है। इस प्रकार, इस मामले में हम पाते हैं कि अनुकरण की बजाय सामूहिकता के शासन के प्रति व्यक्ति

की अधीनता थी। अनुकरण का प्रयोजन भावना में यथार्थ मूल्य हैं तथा पूर्व में किसी के द्वारा किए गए कार्य का बिना किसी अवरोध के प्रतिरूप समान है।

इस संदर्भ को समझने के लिए एक ऐसे व्यक्ति का उदाहरण दिया जा सकता है जो छींकना और खांसना आरंभ करता है एवं एक उबाऊ व्याख्यान के क्रम में संक्रमण का रूप ले लेता है। तब व्यक्ति कम या अधिक रूप में यांत्रिक प्रतिक्रिया के प्रभाव में आ जाता है जो कभी–कभी बड़ी सभा में घटता है। संक्रमण या महामारी दो घटना के रूप में लिए जाते हैं। ये दोनों अंतर काफी उपयोगी हैं। पहले, खांसने के रूप में संक्रमण अंतर्वैयक्तिक या व्यक्तिगत घटना कहा जा सकता है। इस प्रकार की घटना एक से दूसरे में जाती है। महामारी के मामले में संक्रमण की प्रक्रिया के अतिरिक्त कुछ और घटित होता है। महामारी एक सामूहिक घटना है जिसका आधार सम्पूर्ण समाज होता है लेकिन यह संक्रमण के द्वारा फैल सकती है।

अनुकरण की घटना आत्महत्या की दर की अवधारणा में निर्धारक कारक है। जैसा दुर्खीम ने ऊपर के औपचारिक विश्लेषण के बाद विश्लेषित किया है। निराकरण की प्रक्रिया के अनुसार आत्महत्या को संक्रमणकारी माना जाता है। एक व्यक्ति के द्वारा आत्महत्या के भौगोलिक वितरण को दर्शाया गया जहां आत्महत्या की दर अधिक थी वहां के उद्यम में विकिरण विशेष रूप से अधिक थी और यह दूसरे क्षेत्र में भी फैल रही थी। लेकिन आत्महत्या के भौगोलिक क्षेत्र के विश्लेषण में इस तरह का कुछ भी नहीं दर्शाया गया। वह क्षेत्र जहां आत्महत्या की दर विशेष रूप से कम है वह दूसरे क्षेत्र में प्रतीत होता है जहां आत्महत्या की दर विशेष रूप से अधिक है। इसलिए, संक्रमण की परिकल्पना आत्महत्या की दर के असामान्य वितरण के प्रति असंगत है।

दुर्खीम के अनुसार, आत्महत्या के आंकड़ों के लिए अधूरे एवं आंशिक आंकड़ों की कम संख्या को लिया गया है। आंकड़ों के परिमाण के बारे में एक सोच रखना महत्वपूर्ण है। अपर्याप्त संख्या एवं आंकड़ों में संभाव्य अशुद्धि से संशयात्मकता के कारण डाक्टर यह बताते हैं कि आत्महत्या की दर से संबंधित अध्ययन लगभग बिना परिणाम के हैं। जैसा कि दुर्खीम ने पाया कि खास संख्या की परिस्थितियों में आत्महत्या दर परिवर्तित होती है। दुर्खीम ने माना कि आत्महत्या के सामाजिक प्रकारों का निर्धारण सांख्यिकीय सहसंबंधों के द्वारा हो सकता है। तीन प्रकार की आत्महत्याओं को दुर्खीम ने परिभाषित किया है–

1. अहंकारी आत्महत्या
2. परोपकारी आत्महत्या
3. विमुखताकारी आत्महत्या

आत्महत्या की दर एवं सामाजिक संदर्भ जैसे परिवार एवं धर्म, शादी एवं बच्चों के रूप में है। इनके बीच सहसंबंध का परिणाम पहले प्रकार की आत्महत्या अर्थात् अहंकारी आत्महत्या का रूप है। सामान्य तौर पर आत्महत्या की दर उम्र के साथ परिवर्तित होती है और यह उम्र के साथ बढ़ती है एवं पुरुष में महिलाओं की अपेक्षा अधिक होती है। दुर्खीम के जर्मनी से संबंधित आंकड़ों के अनुसार, उन्होंने धर्म से संबद्ध आत्महत्या की दर में अंतर का भी विश्लेषण किया। उन्होंने यह स्थापित किया कि आत्महत्या की आवृत्ति प्रोटेस्टेंट जनसंख्या की अपेक्षा कैथोलिक जनसंख्या में कम थी।

इस विषय में आगे दुर्खीम ने एकल अथवा विधवा महिला एवं पुरुष तथा विवाहित महिला एवं पुरुष की स्थितियों की तुलना की। सामान्य सांख्यिकीय पद्धतियों के द्वारा इनकी तुलना की गई। एक ही उम्र के विवाहित एवं एकल पुरुषों की आत्महत्या की आवृत्ति की तुलना की गई, जिसे दुर्खीम ने गुणांक का संरक्षण कहा। विवाह के कारण एक खास उम्र की आत्महत्या की आवृत्ति में गिरावट पाई गई। इसी प्रकार, एकल या विवाहित महिला, विधवा एवं विधुर के लिए वे संरक्षण का गुणांक या उद्दीपन का गुणांक स्थापित करते हैं। खास सांख्यिकीय आंकड़ों के अनुसार, विवाहित महिलाएं उद्दीपन के गुणांक को सहती हैं। यदि वे बिना बच्चे के हैं तो वे संरक्षण के गुणांक को नहीं पा सकती हैं। इसे सटीक नाम देने के लिए आजकल के मनोवैज्ञानिकों ने महिलाओं के बच्चे नहीं रहने पर उनमें इस प्रकार की स्थिति को निराशा की तरह परिभाषित किया है। अपेक्षा और पूर्ति के बीच विषमता बहुत बड़ी है।

अहंवादी पुरुष एवं महिलाएं मुख्य रूप से अपने बारे में ही सोचते हैं, वे किसी सामाजिक समूह के साथ समन्वित नहीं होते हैं, और उनकी आकांक्षाएं उन्हें प्रेरित करती हैं। समूह की सामाजिक सत्ता के संबंध में मानव नियति के माप की संगत तक वे सीमित नहीं रहते हैं। ऐसे व्यक्ति जब इस तरह की परिस्थितियों के समक्ष आते हैं अन्य लोगों की अपेक्षा उनमें आत्महत्या अधिक देखी जाती है।

दूसरे प्रकार की आत्महत्या 'परोपकारी आत्महत्या' है। दुर्खीम की पुस्तक में दो मुख्य उदाहरण दिए गए हैं। सामूहिकता में पहले उदाहरण की आवश्यकता है, जैसा कि प्राचीन समाज में देखा जाता था कि पति की मृत्यु के बाद विधवा हुई पत्नी भी अपने मृत पति की चिता में स्वयं को जीवित जला लेती थी। इस प्रकार के उदाहरण में, वैयक्तिकता का पूर्ण रूप से समूह में लोप हो जाता है तथा यह आत्महत्या अत्यधिक वैयक्तिकता के कारण नहीं होती है। यहां व्यक्ति अपने जीने के अधिकार को लेकर दृढ़ नहीं रहता है बल्कि सामाजिक अनिवार्यता से समरूपता के कारण मृत्यु का चयन करता है।

इसी प्रकार, परोपकारी आत्महत्या के बारे में कहा जा सकता है कि यह उस जहाज के कप्तान के जैसी है जो इसके नुकसान के पश्चात बचे नहीं रहना चाहता है। व्यक्ति अपने स्व–संरक्षण की प्रकृति को दबा देता है, वह समूह के आदेषों का पालन करता है और सामाजिक अनिवार्यता को आत्मसात कर स्वयं का बलिदान कर देता है। आधुनिक समय के उदाहरण के तौर पर आत्महत्या की दर में वृद्धि सैनिकों में देख सकते हैं। एक ही उम्र एवं वर्ग के नागरिकों की अपेक्षा सैनिकों में आत्महत्या की घटना कुछ अधिक बार होती है। विशेषतया ऐसे सैनिक जो गैर–कमीशन प्राप्त अधिकारी हैं या वे जो मजबूत संगठित समूह से संबद्ध होते हैं, उनके द्वारा की गई आत्महत्या अहंकारी आत्महत्या की श्रेणी में नहीं आती है। यहां कमीशन प्राप्त अधिकारियों के बारे में इसलिए बताया गया कि भर्ती किए गए व्यक्ति अपनी सैन्य स्थिति को अस्थायी मान सकते हैं एवं अपनी व्यवस्था के मूल्यांकन में वे आज्ञाकारिता से बहुत छूट के साथ जुड़े होते हैं।

दुर्खीम के द्वारा अंतिम मुख्य प्रकार में विमुखताकारी आत्महत्या की विवेचना की गई है एवं आधुनिक समाज की विशेषताओं के कारण इसमें उनकी सर्वाधिक अभिरुचि

टिप्पणी

है। इस प्रकार की आत्महत्या के द्वारा आत्महत्या की अवृत्ति एवं आर्थिक संकट के बीच सांख्यिकीय सहसंबंध इंगित किया जा सकता है। सांख्यिकी के द्वारा आर्थिक संकट के समय एक प्रवृत्ति को दर्शाया जाता है। सांख्यकीय संख्याओं के अनुसार, बड़ी राजनीतिक घटना के समय आत्महत्या की आवृत्ति में गिरावट देखी जा सकती है। उदाहरण के तौर पर युद्ध के समय आत्महत्या की संख्या कम होती है।

आर्थिक संकट के समय विमुखताकारी आत्महत्या की आवृत्ति बढ़ती है और तलाक की दर में वृद्धि से भी आत्महत्या की आवृत्ति बढ़ती है। दुर्खीम के द्वारा तलाक के प्रभावों का पुरुष एवं महिलाओं से संबद्ध आत्महत्या की आवृत्ति का अध्ययन किया गया। तलाकशुदा महिला में तलाकशुदा पुरुष की अपेक्षा आत्महत्या की आशंका कम होती है। प्रथा की सहनशीलता के कारण पुरुष के पास एक निश्चित स्वतंत्रता होती है एवं शादी में वह एक संतुलन एवं अनुशासन पाता है, दूसरी ओर महिला शादी से मिली स्वतंत्रता की अपेक्षा अधिक कुशल रूप से अनुशासित होती है। तलाक के बाद पुरुष इच्छा एवं संतुष्टि की असमानताओं के बीच फिर से अनुशासनहीन हो जाता है। दूसरी ओर महिला तलाक के बाद अधिक स्वतंत्र महसूस करती है। सामाजिक अस्तित्व प्रथाओं से शासित नहीं होते हैं, व्यक्तियों में अनंत प्रतिस्पर्धा होती है। जीवन से अपेक्षाएं बहुत हैं, इससे मांग भी बहुत हैं। इच्छा एवं संतुष्टि के बीच असमानता निरंतर बढ़ती जाती है एवं यह मानसिक एवं शारीरिक स्तर पर अधिक पीड़ा का कारण बनती है। इसलिए आत्महत्या करने लायक आवेग बढ़ता जाता है, परिणामस्वरूप असहजता एवं असंतोष वातावरण में बढ़ जाता है।

एक अन्य चौथे प्रकार की आत्महत्या है जो दुर्खीम के कार्यों में संक्षिप्त रूप में आई है। यह भाग्यवादी आत्महत्या का प्रकार है। विमुखताकारी आत्महत्या नियमों के बहुत निर्बल होने की स्थिति में अधिक संभाव्य होती है जबकि भाग्यवादी आत्महत्या नियमों के अति होने की स्थिति में अधिक होती है। दुर्खीम के अनुसार, ऐसे व्यक्ति जिनका भविष्य दमनकारी अनुशासन के कारण निर्दयतापूर्वक अवरुद्ध हो गया है या उनकी लालसाओं को हिंसक तरीके से घोंट दिया गया हो उनमें भाग्यवादी आत्महत्या करने की संभावना अधिक होती है। इस आत्महत्या के लिए उपयुक्त उदाहरण एक गुलाम के द्वारा अपने जीवन को अपने कार्यों के प्रति दमनकारी नियमों से संबद्ध अत्यन्त निराशा के कारण समाप्त करना है।

व्यक्तिगत घटना होने के बावजूद आत्महत्या का कारण अनिवार्य रूप से सामाजिक होता है। आत्महत्या करने लायक आवेग व्यक्ति में सामूहिकता से आता है। ये शक्ति वास्तविक एवं आत्महत्या के निर्धारक कारक होते हैं। दुर्खीम के अनुसार, आत्महत्या करने लायक आवेग व्यक्ति में बिना सोचे–समझे नहीं होता है। यदि कोई व्यक्ति आत्महत्या करता है तो इसकी पूरी संभावना होती है कि वह अपनी मनोवैज्ञानिक बनावट, स्नायुविक निर्बलता एवं विक्षिप्त असंतुलन के कारण इस तरह का व्यवहार करता है। आत्महत्या करने लायक आवेग मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के कारण उत्पन्न होते हैं, जो सामाजिक परिस्थितियों से जनित होते हैं, क्योंकि आधुनिक समाज में रहने वाले मनुष्य में अपनी संवेदनाओं को चोट पहुंचाने का खतरा अधिक है।

इसका वास्तविक कारण सामाजिक प्रभाव हैं। ये सामाजिक प्रभाव एक–दूसरे से भिन्न होते हैं, एक धर्म से दूसरे धर्म एवं एक समूह से अलग समूह में भिन्न होते हैं। यह हमें दुर्खीम के समाज की मुख्य अवधारणा की ओर ले जाता है जिसके अनुसार समाज प्राकृतिक रूप से व्यक्ति के संबंध में विविधतापूर्ण होता है, जहां घटना का प्रभाव होता है और जिसका आधार सामूहिकता में होता है, न कि व्यक्ति की समग्रता में होता है। घटना या प्रभाव की व्याख्या तभी हो सकती है जब इसे व्यक्तियों द्वारा जनित सम्पूर्णता में लिया जाता है। इसलिए कहा जा सकता है कि व्यक्तिगत घटना विशेष रूप से सामाजिक घटना से शासित होती है, प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा आज्ञा का पालन कर अपने जीवन को समाप्त करना सामाजिक प्रभावों का सर्वाधिक प्रभावी उदाहरण है जो व्यक्ति को उनकी मृत्यु के लिए प्रेरित करता है।

आधुनिक समाज की विभिन्न विशेषताओं में सामाजिक विभेदन, कायिक एकजुटता, जनसंख्या घनत्व, संचार की सघनता एवं उत्तरजीविता के लिए संघर्ष हैं। ये सभी घटनाएं असामान्य नहीं हैं क्योंकि वे आधुनिक समाज की वास्तविकता से संबद्ध हैं।

आधुनिक समाज में कुछ खास तरह के रोगजनित लक्षण विद्यमान हैं, सामूहिकता से अपर्याप्त वैयक्तिक संयोजन इनमें सर्वोपरि है। दुर्खीम के अनुसार इस प्रकार की आत्महत्या विमुखताकारी है एवं यह उस प्रकार के अनुरूप है जो आर्थिक संकट एवं सम्पन्नता के समय से होती है, अर्थात् जब किसी कार्य की अधिकता होती है, तो संसर्ग एवं प्रतिस्पर्धा का प्रवर्धन होता है जो समाज से अभिन्न होते हैं तथा जिस समाज में हम रहते हैं, कार्य की अधिकता एक निश्चित सीमा से परे जाने पर रोगजनित हो जाती है।

दुर्खीम के अनुसार धर्म विमुखताकारी आत्महत्या की समस्या का हल नहीं कर सकता है। रोगजनित आत्महत्या को रोकने के लिए धर्म कोई समाधान नहीं उपलब्ध करा सकता है। दुर्खीम ने अनुशासन को समूह के लिए आधारभूत माना एवं जो संयोजन का माध्यम भी है। मनुष्य को अवश्य ही अपनी आकांक्षाओं को सीमित करना चाहिए, उन्हें अनिवार्यता का अनुपालन करना चाहिए जिससे वे अपने उद्देश्यों को निश्चित कर माध्यम का सही तरीके से उपयोग कर सके।

5.2.4 जनगणना

प्राचीन भारत जनगणना से अनभिज्ञ नहीं रहा था। यूनान से लेकर ब्रिटेन तक के देशों की भांति भारत का संगणना इतिहास भी प्राचीनतम सभ्यताओं से ही प्रारम्भ किया जा सकता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में, जिसका समय (321–269 ई.पू.) चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन काल था, जनगणना करने की विधि के अतिरिक्त कृषि संगणना एवं आर्थिक गणना की विधि का भी उल्लेख मिलता है।

अंग्रेजों द्वारा शासन संभालने के अनेक दशकों बाद जनगणना के प्रयास किए जाने लगे। ईस्ट इंडिया कम्पनी के तत्वाधान में सर थॉमस मुनरो ने सन् 1802, 1813, 1815 एवं 1862 में मद्रास प्रेजीडेन्सी टाउन की भी जनगणनाएं की थीं। जनगणना के संबंध में ठोस प्रयास 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही प्रारम्भ हो गए थे। भारत में प्रथम पद्धति पूर्ण जनगणना 1872 में की गई किंतु इसमें एकरूपता का अभाव था। अगली जनगणना 17 फरवरी, 1881 को की गई और तब से प्रति दसवें वर्ष जनगणना की जाती

रही है। नवीनतम जनगणना 2011 में हुई। इस प्रकार अब तक 14 जनगणना हो चुकी है। इस पूरे काल में जनगणना की विधि, क्षेत्र व स्वरूप में पर्याप्त परिवर्तन आ चुका है अतःगणना विधि के परिवर्तनों को ध्यान में रखकर समस्त जनगणना काल को निम्न आठ भागों में बांटा जा सकता है—

1. सन् 1931 तक की जनगणनाएं,
2. सन् 1941 की जनगणना,
3. सन् 1951 की जनगणना,
4. सन् 1961 की जनगणना,
5. सन् 1971 की जनगणना,
6. सन् 1981 की जनगणना,
7. सन् 1991 की जनगणना, तथा
8. सन् 2001 की जनगणना।

यहां हम 1981, 1991, 2001 तथा 2011 की जनगणना की विस्तृत चर्चा करेंगे—

सन् 1981 की जनगणना

रूपरेखा (Outline): जनगणना एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय कार्य है, जिसे हम प्रत्येक दस वर्ष के अंतराल में सम्पन्न करते हैं। हमारे देश में सन् 1872 से इसकी एक गौरवशाली परम्परा रही है। यह जनगणना कार्य नियोजन, प्रशासन व निर्वाचन आदि कार्यों के लिए महत्त्वपूर्ण आधारभूत आंकड़े प्रदान करती है।

जनगणना, भारतीय जनगणना अधिनियम 1948 के प्रावधानों के अनुसार की जाती है। इस अधिनियम के अंतर्गत जनगणना अधिकारी (चार्ज अधिकारी, सुपरवाइजर एवं प्रगणक आदि) केवल वही प्रश्न पूछ सकता है जिन्हें गज़ट में प्रकाशित किया गया हो। किसी नागरिक द्वारा दी गई सूचना गोपनीय होती है। उसे किसी भी कार्यवाही में पक्ष या विपक्ष में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी जानकारी और विश्वास के अनुसार प्रश्नों के उत्तर देने के लिए कानूनी रूप से बाध्य है। जनगणना अधिकारी भी दिए गए किसी कर्तव्य का पालन न करने या उसमें आवश्यक तत्परता न बरतने, जानबूझकर कोई आपत्तिजनक या अनुचित प्रश्न करने या जनगणना कार्य से सम्बन्धित कोई सूचना अन्यत्र प्रकट करने के लिए दण्ड का भागी होगा। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति जानबूझकर गलत उत्तर देता है या दिए गए मकान नम्बरों को मिटाता है अथवा किसी व्यक्ति द्वारा जनगणना के कार्यो को सम्पन्न कराने में बाधा उत्पन्न कराता है तो वह दण्ड का भागी है अधिनियम के अंतर्गत उसपर एक हजार रुपये तक जुर्माना हो सकता है और कुछ मामलों में छः मास की सजा भी हो सकती है।

जनगणना दो चरणों में की जाती है। प्रथम चरण में मकान सूचीकरण तथा द्वितीय चरण में प्रगणना की जाती है। मकान सूचीकरण का मुख्य उद्देश्य उन सभी मकानों का सूचीकरण करना है जहां मनुष्य रहते हैं या उनके रहने की संभावना है। इस प्रकार मकान सूचीकरण, प्रगणना के लिए एक ढांचे का काम करता है। प्रगणना कार्य फरवरी/मार्च 1981 में किया गया।

सामान्तया जिन व्यक्तियों ने मकान सूचीकरण का कार्य किया, उन्हें ही प्रगणना कार्य के लिए नियुक्त किया गया। अतः परिवारों एवं व्यक्तिगत सूचियों संबंधी सूचनाएं एकत्र करने में विशेष कठिनाइयां नहीं आईं।

नजरी नक्शा– नजरी नक्शा तैयार करने का मुख्य अभिप्राय प्रत्येक जनगणना ब्लाक की स्थिति को स्पष्ट किया जाना है। इसे किसी पैमाने पर नहीं बनाया जाता है। इसमें ब्लाक की सीमाओं के भीतर भौगोलिक विवरण व मुख्य भू–चिह्न अंकित किए जाते हैं।

खाका– यह सभी गलियों, सड़कों एवं भवनों को प्रदर्शित करते हुए प्रगणन ब्लाक का एक विस्तृत नक्शा है। यह भी नजरी नक्शे की भांति किसी पैमाने पर नहीं बनाया जाता है। नजरी नक्शे में दिखाए जाने वाले भौगोलिक विवरण यहां भी दिखाए जाते हैं। पक्के मकानों को वर्ग एवं कच्चे मकानों को त्रिभुज से दिखाया जाता है। जो मकान पूर्ण तौर पर गैर–आवासीय हैं, उनके लिए इन चिह्नों में शेडिंग कर दी जाती है। सामान्यतः कच्चे भवन वे होते हैं जो अधिक टिकाऊ न हों और उनमें कच्ची ईंटों, बांस, मिट्टी, घास, सरकन्डों, पत्तियों इत्यादि का उपयोग हुआ हो या जिसमें पत्थर, पक्की ईंटों आदि ढीली–ढीली बिना गारे–सीमेंट की चिनाई की गई हो।

भवन– आमतौर पर एक पूरी इमारत को भवन कहते हैं। कभी–कभी इमारतों में एक से अधिक संघटक इकाइयां होती हैं, जिन्हें भिन्न–भिन्न उपयोगों में लाया जाता है जैसे भवन के एक भाग में दुकान है, दूसरे में निवास है, तीसरे में वकील/डाक्टर/चार्टर्ड एकाउंटेंट आदि का कार्यालय है आदि। अनेक फ्लेटों वाली बहुमंजिली इमारत को एक भवन माना जाना चाहिए। परंतु यदि स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा प्रत्येक फ्लैट को स्वतंत्र नम्बर दिया गया है तथा इन नम्बरों को प्रयोग में ला रहे हैं तो प्रत्येक फ्लैट को अलग भवन मान लिया जाता है। यदि एक बड़े अहाते में अनेक संरचनाएं हों तो प्रत्येक संरचना को अलग भवन माना जाता है। लेकिन एक बंगले या कोठी, जिसके अहाते में अनेक संरचनाएं हो तो प्रत्येक संरचना को अलग भवन माना जाता है। लेकिन एक बंगले या कोठी, जिसके अहाते में मुख्य मकान तथा कुछ अन्य सहायक संरचनाएं जैसे गैरेज आदि हों तो ऐसी दशा में इसे एक भवन की संज्ञा दी जाती है। दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों में एक अहाते में बनी हुई झोंपड़ियों के समूह को जिनका प्रयोग रहने, रसोई, बैठक, गोदाम, पशु बांधने आदि के लिए किया जाता हो, को एक भवन की संज्ञा दी जाती है। मन्दिरों, पम्प–घरों और इसी प्रकार की अन्य संरचनाओं को भी अवश्य ध्यान में रखा जाता है क्योंकि ये वे स्थान हैं, जहां लोग रह सकते हैं अथवा उद्यम चलाए जा सकते हैं।

नगरों में, जहां स्थानीय अधिकारियों द्वारा क्रमानुसार एवं सन्तोषजनक नम्बर दिए गए हैं, उन्हीं को अपनाया गया है। बिना छत की संरचना भवन नहीं है। भवन नम्बर देने के बाद जो नया भवन मिलता है, उसे साथ वाले पिछले निकटवर्ती भवन का उप–नम्बर दिया गया, यथा 10/1, जिसका अर्थ होगा–भवन 10 के बाद का एक नया भवन जो भवन नम्बर 11 से पहले आता है।

जनगणना मकान– जनगणना मकान एक भवन या भवन का वह भाग है जिसका अलग प्रवेश द्वार है। यह द्वार रास्ते या साझे के अहाते, बरामदे या जीने इत्यादि में हो सकता है। किंतु जनगणना–मकान का एक पृथक इकाई के रूप में

उपयोग होना आवश्यक है। हो सकता है कि यह उपयोग में आता हो या खाली पड़ा हो। हो सकता है कि ये रहने के काम में आता हो या गैर–आवासीय उपयोग में या दोनों ही प्रकार के उपयोग में आता हो।

एक भवन में आने वाले जनगणना मकानों को भवन नम्बर के बाद ब्रैकेट में उप–नम्बर दिए गए, जैसे 10(1), 10(2), 11(1),11(2), 11(3) आदि। यदि एक भवन अपने आप में जनगणना मकान है तो जनगणना मकान का नम्बर वही होगा जो भवन का नम्बर है।

जनगणना मकान के निर्धारण के लिए पृथक प्रवेश द्वार, एक अलग इकाई होना और उपयोग का एकत्व, तीन मापदण्ड हैं बहुमंजिली इमारत के विभिन्न फ्लैट अलग–अलग जनगणना मकान माने गए। एक बंगले में बनी हुई संरचनाएं जिनके प्रवेश द्वार पृथक–पृथक हों, अलग–अलग जनगणना मकान माने गए। यह धारणा थी कि पृथक प्रवेश द्वार का अर्थ शाब्दिक रूप से नहीं लगाना चाहिए अन्यथा एक होस्टल का प्रत्येक कमरा एक जनगणना मकान बन जाएगा। यदि झोंपड़ियों का एक समूह एक भवन माना जाता है तो पशु शेड तथा वर्क शेड के रूप में उपयोग आने वाली झोंपड़ियों को पृथक जनगणना मकान समझा जाना चाहिए।

परिवार– परिवार ऐसे व्यक्तियों के समूह को कहते हैं जो सामान्यतः एक साथ रहते हों। यदि काम की आवश्यकता उन्हें मजबूर न करे तो एक ही रसोई में खाना खाते हों। असम्बन्धित व्यक्तियों के परिवार को ''संस्थागत परिवार'' कहा जाता है। परिवार एक व्यक्ति का, दो व्यक्तियों और अनेक व्यक्तियों का हो सकता है।

एक जनगणना मकान में परिवारों की पहचान जनगणना मकान नम्बर के बाद उनमें (क), (ख), (ग) आदि लगाकर हुई। यदि जनगणना मकान नम्बर 10(1) में दो परिवार हैं तो उन परिवारों के नम्बर 10(1) (क) और (ख) हुए। यदि जनगणना मकान में केवल एक ही परिवार रहता है तो उस परिवार का नम्बर वही होगा जो जनगणना मकान का नम्बर है। इसी प्रकार एक भवन में यदि एक जनगणना मकान का नम्बर है, जिसमें एक ही परिवार रहता है तो ऐसी दशा में जनगणना मकान एवं परिवार नम्बर वही माना गया जो भवन का नम्बर है।

प्रगणना– संक्षिप्त मकान सूची को अद्यतन (up-to-date) करते हुए प्रगणक ने अपने क्षेत्र के प्रत्येक परिवार के लिए परिवार अनुसूची और प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक व्यक्तिगत पर्ची, जिसमें 16 प्रश्न थे, भरी। जनगणना का सन्दर्भ काल 1 मार्च, 1981 का सूर्योदय था। प्रगणना कार्य दो चरणों में किया गया।

(क) प्रथम चरण के अंतर्गत 9 फरवरी, 1981 से 28 फरवरी, 1981 की अवधि में गणना कार्य सम्पन्न हुआ। बेघर (बिना मकानों) परिवारों की गणना 28 फरवरी से 1 मार्च, 1981 की रात्रि में की गई।

(ख) द्वितीय चरण के अंतर्गत 1 मार्च, 1981 के सूर्योदय काल के सन्दर्भ में जानकारी को अद्यतन करने के लिए 1 मार्च, 1981 से 5 मार्च, 1981 तक जांच कार्य (रिवीजनल राउन्ड) पूरा हुआ।

प्रगणना की कार्यवाही निम्न क्रम में की गई–

(i) अपने प्रगणना ब्लाक का नजरी नक्शा और खाका अद्यतन करना।

(ii) संक्षिप्त मकान सूची को अद्यतन करना।

(iii) परिवार अनुसूची भाग–1 : परिवार के विवरण भरना।

(iv) परिवार अनुसूची भाग–2 : जनसंख्या रिकार्ड, कालम 1 से 7 भरना।

(v) परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए व्यक्तिगत पर्ची भरना।

(vi) परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए व्यक्तिगत पर्ची की प्रविष्टियों के सन्दर्भ में परिवार अनुसूची के भाग–2 : जनसंख्या रिकार्ड के 8 से 35 कॉलम भरना।

(vii) डिग्रीधारकों और तकनीकी कर्मियों की अनुसूची उपयुक्त व्यक्तियों में भरवाना (केवल सैम्पल क्षेत्रों में)।

(viii) जांच का कार्य (रिवीजन राउन्ड) करना और रिकार्ड को अद्यतन करना।

(ix) प्रगणक सार को तैयार करने के लिए प्रगणक की वर्किंग शीट को भरना।

(x) प्रगणक सार भरना।

(xi) संक्षिप्त मकान सूची के भाग–1 को भरना।

(xii) डिग्रीधारकों और तकनीकी कर्मियों के लिए प्राप्त/जारी/वापस किए गए फार्मों को दर्शित करने वाला विवरण भरना।

(xiii) सभी कागजातों को अपने सुपरवाइजर के सुपुर्द करना।

इस जनगणना में व्यक्तिगत प्रगणन पर्ची में 17 प्रश्न रखे गए थे। जिनमें से 13 प्रश्न सामान्य सूचना से सम्बन्धित थे जबकि प्रश्न संख्या 14,15 उप 16 आर्थिक क्रियाओं की सूचनाएं थीं। जिससे बेरोजगारी की समस्या का अनुमान लगाया जा सका। इस गणना में उन सभी व्यक्तियों को कामकाजी (Working) की श्रेणी में रखा गया जिन्होंने विगत वर्ष में एक भी दिन कार्य किया था। समस्त व्यक्तियों को कामकाजी एवं गैर–कामकाजी में बांट दिया गया। कामकाजी को फिर पूर्णकालिक एवं सीमान्तिक (Marginal) में बांटा गया। तत्पश्चात् उनके कार्यों का विवरण लिया गया। गैर–कामकाजी के संबंध में कैसे समय बिताया? तथा क्या काम की तलाश में हैं? प्रश्न पूछे गए। आर्थिक कार्य–कलापों को चार भागों में बांटा गया–

कामकाजी

1. काश्तकार (cultivator)
2. खेतिहर मज़दूर (Agricultural Labourer)
3. पारिवारिक उद्योग (Household Industry)
4. अन्य कार्य (Other Workers)

गैर–कामकाजी

जो लोग कार्यरत नहीं हैं उन्हें निम्न श्रेणियों में विभक्त किया गया–

1. घरेलू कार्य (Household duties)
2. विद्यार्थी (Students)
3. आश्रित (Dependents)
4. अवकाश प्राप्त (Retired persons or Rentiers)
5. भिखारी (Beggars)

6. संस्थागत (Immates of institution)
7. अन्य कार्य (Other)

आवासीय सूचना के लिए मकान सूची का प्रयोग किया गया। मकान के उपयोग से सम्बन्धित सूचना विस्तार से एकत्र की गई।

सैम्पल क्षेत्र की जनगणना

सन् 1981 की जनगणना की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमें जनगणना के साथ–साथ कुछ क्षेत्रों को सैम्पल क्षेत्र घोषित किया गया। इन सैम्पल क्षेत्रों में जनगणना के लिए व्यक्तिगत प्रगणन पर्ची में छः प्रश्न अतिरिक्त थे। प्रथम चार प्रश्न निवास से सम्बन्धित थे। प्रथम प्रश्न जन्म–स्थान के बारे में था। द्वितीय प्रश्न पूर्व निवास–स्थान के बारे में, तृतीय प्रश्न पूर्व निवास–स्थान छोड़ने के कारण एवं चतुर्थ प्रश्न गांव अथवा नगर में निवास की अवधि से सम्बन्धित था। अंतिम दो प्रश्न प्रजननता से सम्बन्धित थे। प्रश्न संख्या पांच सभी महिलाओं से सम्बन्धित था तो छठा प्रश्न वर्तमान समय में विवाहित महिलाओं से ही पूछा गया। पांचवें प्रश्न में विवाह के समय आयु, वर्तमान समय में जीवित बच्चों की संख्या, कुल जीवित प्रसवों की संख्या से सम्बन्धित था तो छठा प्रश्न विगत वर्ष में क्या आपने किसी बच्चे को जन्म दिया से सम्बन्धित था।

इन सैम्पल विकास खण्डों में डिग्रीधारक एवं तकनीकी कार्मिकों के लिए पृथक–पृथक अनुसूचियां भी भरी गईं, जिससे शिक्षित एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों में व्याप्त बेरोजगारी का अनुमान लगाया जा सके।

सन् 1981 की जनगणना के परिणाम– 1 मार्च, 1981 को भारत की जनसंख्या 68. 38 करोड़ थी। जनघनत्व 221 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर था। विभिन्न राज्यों के बीच जनघनत्व में अत्यधिक विषमता थी। केरल में जनघनत्व 665 था तो सिक्किम में 45 और अरुणाचल में केवल 8 था।

इस जनगणना के अनुसार भारत में 45.5 करोड़ पुरुष तथा 33.1 करोड़ महिलाएं थीं। इस प्रकार भारत के 1000 पुरुषों के पीछे 935 महिलाएं थीं। केवल केरल में पुरुषों की तुलना में महिलाएं अधिक थीं, वहां यह अनुपात 1032 महिलाएं था। राज्यों में सिक्किम में महिलाओं का अनुपात सबसबे कम 835 था। इसी प्रकार संघ शासित प्रदेशों में अण्डमान और निकोबार द्वीपसमूहों का भी क्षेत्र ऐसा ही था, जहां 1000 पुरुषों के पीछे महिलाओं का औसत सबसे कम 790 था।

सन् 1981 की जनगणना से पूर्व भारत में परिवार नियोजन के कठोर कदम उठाए गए थे, अतः यह आशा थी कि जनसंख्या की वृद्धि दर में पर्याप्त कमी आ गई होगी, किंतु परिणामों को देखकर निराशा ही हाथ आई।

सन् 1991 की जनगणना

सन् 1991 की जनगणना भारत की तेरहवीं एवं स्वतंत्र भारत की पांचवीं जनगणना थी। जनगणना में सर्वप्रथम कार्य भवनों की गणना करना होता है जो वर्ष 1990 में सम्पन्न हुआ। यह प्रस्ताव किया गया कि जनगणना का सन्दर्भ समय 1 मार्च, 1991 सूर्योदय हो। जनगणना 9 फरवरी से 28 फरवरी के बीच की गई, बेघर लोगों की गणना 28

फरवरी की रात्रि को की गई। जनगणना की पुनरावृत्ति का दौर 1 मार्च से 5 मार्च के बीच रहा, और उसी से समंकों को सन्दर्भ समय के अनुसार अद्यतन (up-to-date) कर लिया गया। जनगणना 1981 की ही भांति विधि–सिद्ध पद्धति से हुई जिसे विस्तारित तथ्य सिद्ध (Extended de factor method) भी कहा जाता है जिसमें एक अवधि के अन्दर जितने भी लोगों का आगणन एक क्षेत्र के सन्दर्भ में होगा, उन्हें वहीं की जनसंख्या मान लिया जाता है।

जनगणना अनुसूचियां (Census Schedules): 1991 की जनगणना में चार अनुसूचियां भरी गईं– (i) मकान अनुसूची (Houselist), (ii) उपक्रम अनुसूची (Enterprises list), (iii) परिवार अनुसूची (Houselold schedule), तथा (iv) व्यक्तिगत प्रगणन पर्ची (Individual Enumeration slip)।

जनगणना प्रक्रिया– सन् 1991 की जनगणना तत्कालीन जनगणना आयुक्त श्री ए. आर.नन्दा जी की देखरेख में सम्पन्न हुई। मार्च 1988 से तैयारी प्रारम्भ की गई। अप्रैल से सितम्बर 1990 के दौरान मकान सूची तैयार कर नजरी नक्शा (Layout maps) बनाने के कार्य पूरे हुए। जिसमें पक्के मकानों को वर्ग [□] से व कच्चे मकानों को त्रिभुज (Δ) से दिखाया जाने लगा। तत्पश्चात् भवनों को गेरूए रंग से नम्बर दिए गए। इस नम्बरीकरण के बाद मकान–सूची–सार (House List Abstract) तैयार किया गया। इस मकान–सूची–सार की सहायता से संक्षिप्त मकान सूची (Abridged house-schedule) तैयार की गई जिसके 8 खाने व तीन भाग (3 parts) थे।

सन् 1991 की जनगणना में उद्यम/उपक्रम सूची तैयार करने का कार्य मकान सूची तैयार करने के साथ–साथ किया गया और प्रत्येक प्रगणक को इस अनुसूची को भरने के लिए 50/– का अलग से मानदेय दिया गया। यह सूची उत्पादन की मात्रा, कच्चा–माल, ऊर्जा, रोजगार में लगे लोगों की संख्या, पूंजी की मात्रा आदि विवरण एकत्र करती है।

प्रगणन कार्य फील्ड वर्क वास्तव में 9 फरवरी से 28 फरवरी के बीच किया गया। उन सभी व्यक्तियों को सामान्य निवास पर ही शामिल कर लिया गया जो जनगणना काल में उपस्थित थे अथवा जिनके 28 फरवरी तक वापिस लौट आने की आशा थी। प्रगणन अवधि की अंतिम रात्रि (28 फरवरी की रात) बेघर एवं खानाबदोशों की गणना की गई।

व्यक्तिगत प्रगणन पर्ची

व्यक्तिगत प्रगणन पर्ची में 23 प्रश्न थे। इस पर्ची में शुरू के 13 प्रश्न (1से 13तक) सामान्य प्रकृति के थे जैसे नाम, लिंग, वैवाहिक स्थिति, मातृभाषा, धर्म, शिक्षा, साक्षर अथवा निरक्षर इत्यादि। सन् 1991 की जनगणना में 0–6 वर्ष की आयु के बच्चों को साक्षरता की दृष्टि से अलग निकाल दिया गया। अर्थात् यदि 4–5 वर्ष का कोई बच्चा स्कूल जाता भी है तो उसे साक्षरों में शामिल नहीं किया जाएगा। साक्षरों का प्रतिशत निकालने के लिए 0–6 वर्ष तक के बच्चों की संख्या को समग्र में से ही घटा दिया जाता है।

व्यक्तिगत प्रगणन पर्ची में प्रश्न 14,15 एवं 16 आर्थिक जानकारियां लेने के लिए पूछे गए, प्रश्न 16 ख (क्या आपने पहले कभी काम किया है) इस बार नया जोड़ा गया है। रक्षा मंत्रालय के निर्देश पर प्रश्न 17 (क्या आप भूतपूर्व सैनिक हैं यदि हां तो पेंशन

भोगी है या गैर–पेंशन भोगी) इस बार नया जोड़ा गया। प्रश्न 18 से 21 प्रवास संबंधी जानकारियों से सम्बन्धित थे। प्रवास के कारणों में व्यवसाय एवं प्राकृतिक आपदाएं दो नए कारण जोड़े गए। अंतिम प्रश्न 22 एवं 23 प्रजननता से सम्बन्धित थे।

परिवार अनुसूची– इसमें 34 कॉलम थे जिसमें से शुरू के 7 जनगणना से पूर्व और शेष 27 जनगणना के उपरान्त भरे गए।

जनगणना के दो माह बाद स्नातकोत्तर डिग्रीधारकों एवं तकनीकी कर्मियों का सर्वेक्षण (PG,DH,TP) उसी प्रकार किया गया जिस प्रकार 1981 में किया गया था।

जांच दौर– 1 से 5 मार्च के बीच जांच का दौर चला और 1 मार्च, 1991 सूर्योदय से पहले कोई जन्म या मृत्यु हुई हो जो उसे जोड़ा या घटा दिया गया।

चूंकि जनगणना के उपरान्त कम्प्यूटर से समंकों का सारणीयन हुआ। अतः इस जनगणना के परिणाम बहुत शीघ्र प्रकाशित हो गए।

सन् 1991 की जनगणना के परिणाम

कुल जनसंख्या	84.63 करोड़,
पुरुष	43.92 करोड़
महिलाएं	40.71 करोड़
दशकीय वृद्धि	21.4%
लिंगानुपात	927
साक्षरता दर	52.21%
कार्य सहभागिता दर	37.46%
पुरुष साक्षरता दर	64.13%
महिला साक्षरता दर	39.29%
शहरी जनसंख्या का अनुपात	25.7%
जनसंख्या घनत्व	267 प्रति वर्ग किलोमीटर
0–6 वर्ष की आयु के बच्चों की संख्या	(17.04%)
	15.18 करोड़
जीवन प्रत्याशा	60.3 वर्ष

सन् 2001 की जनगणना

देश की 14वीं, स्वतंत्र भारत की छठी तथा 21वीं शताब्दी की पहली जनगणना है। देश की अगली जनगणना 2011 में आयोजित की गई।

जनगणना 2001 का प्रगणन काल 9 फरवरी से 28 फरवरी, 2001 तथा सन्दर्भ तिथि 1 मार्च, 2001 का सूर्योदय रखा गया। प्राप्त जानकारी को अद्यतन रखने के लिए 1 मार्च के बीच जांच दौर सम्पन्न किया गया, ताकि सन्दर्भ तिथि तक होने वाले नए जन्मों या मृत्यु का सही–सही पता लगाया जा सके।

2001 की जनगणना में मूलतः विधि–सिद्ध पद्धति का ही प्रयोग किया गया जिसके अंतर्गत व्यक्तियों की गणना उनके स्थायी निवास स्थान के आधार पर की जाती है किंतु दोहरी गणना से बचने के लिए विस्तृत तथ्य सिद्ध पद्धति का भी प्रयोग किया गया, जैसा कि जनगणना 1991 में किया गया था।

2001 की जनगणना का प्रशासनिक ढांचा

स्तर	अधिकारी
1. केन्द्रीय स्तर	महारजिस्ट्रार एवं जनगणना आयुक्त
2. राज्य स्तर	जनगणना कार्य निदेशक
3. क्षेत्रीय स्तर	जनगणना उप–निदेशक
4. जनपद / महापालिका	

जनपद	महापालिका
प्रमुख जनगणना अधिकारी (जिला अधिकारी)	प्रमुख जनगणना अधिकारी (मुख्य नगर अधिकारी)
जिला जनगणना अधिकारी (अतिरिक्त जिला अधिकारी)	नगर जनगणना अधिकारी (उपनगर अधिकारी)
अतिरिक्त जिला जनगणना अधिकारी (जिला संख्या अधिकारी)	अतिरिक्त नगर जनगणना अधिकारी (जिला संख्या अधिकारी)
5. प्रभार / चार्ज प्रभारी अधिकारी (ग्रामीण क्षेत्र)	प्रभारी अधिकारी (नगरीय क्षेत्र)
ग्रामीण क्षेत्र तहसीलदार	तहसीलदार / अधिशासी अधिकारी
अतिरिक्त / सहायक प्रभारी (बी.डी.ओ / नायब तहसीलदार / विद्यालयों के एस.डीआई.	अतिरिक्त सहायक प्रभारी (शिक्षा / कर अधीक्षक)
6. पर्यवेक्षक	पर्यवेक्षक (प्रति पांच प्रगणकों पर एक)
7. प्रगणक	नगरीय क्षेत्र

जनगणना 2001 में प्रत्येक राज्य में क्षेत्रीय स्तर पर क्षेत्रीय उपनिदेशक तथा जनपद स्तर पर जिलाधिकारी एवं महापालिका स्तर पर मुख्य नगर अधिकारी को अपने–अपने क्षेत्र में क्रमशः प्रमुख जनगणना अधिकारी एवं प्रमुख नगर जनगणना अधिकारी नामांकित किया गया। प्रत्येक जिले में जनगणना संबंधी क्रियाओं के समन्वय एवं पर्यवेक्षण की जिम्मेदारी जिला जनगणना अधिकारी की होती और यह कार्य अतिरिक्त जिला जनगणना अधिकारी को सौंपा गया। ग्रामीण क्षेत्रों में तहसीलदार को तथा नगरीय क्षेत्रों में अधिशासी अधिकारी को प्रभारी अधिकारी नियुक्त किया गया। समन्वय एवं पर्यवेक्षण की दृष्टि से प्रति पांच प्रगणकों पर एक पर्यवेक्षक नियुक्त किया गया। इस तरह जनगणना की सम्पूर्ण प्रक्रिया की अंतिम कड़ी– 'प्रगणक' हुआ जिसे जनगणना का मूलाधार भी कह सकते हैं।

जनगणना 2001 : तैयारी के प्रमुख चरण

जनगणना 2001 का तैयारी कार्य मार्च 1998 में ही प्रारम्भ कर दिया गया था। इस दौरान जनगणना में प्रयुक्त होने वाली अनुसूचियां अथवा प्रश्नावलियां तैयार की गईं

और प्रतिदर्श क्षेत्र में उनकी पूर्व–परीक्षा करके उन्हें अंतिम रूप दिया गया। जनगणना के सम्पूर्ण कार्य को निम्न चरणों में पूरा किया गया–

1. **प्रारम्भिक कार्य**– सर्वप्रथम राज्य स्तर पर नगरों तथा तहसीलों के नजरी नक्शे तैयार किए गए तथा प्रगणन खण्डों का निर्धारण किया गया। नगरीय क्षेत्र में 600 व्यक्तियों की जनसंख्या तथा ग्रामीण क्षेत्रों में 750 व्यक्तियों की जनसंख्या को एक खण्ड माना गया।

2. **मकान सूचीकरण कार्य**– जनगणना प्रक्रिया के अंतर्गत अप्रैल से सितम्बर, 2000 के दौरान मकान–सूची तैयार करने का कार्य किया गया। इसके अंतर्गत प्रत्येक खण्ड का नजरी नक्शा तैयार करके खण्ड का खाका बनाया गया जिसमें गलियां और उसमें स्थित भवन दर्शाए गए, ताकि प्रत्येक गणक इस खाके के आधार पर गणना कार्य पूरा कर सके। कच्चे तथा पक्के मकानों को चिह्नित कर उन पर नम्बर डाले गए और उनका विवरण मकान सूची में दर्ज कर दिया गया। मकान अनुसूची में कुल 23 विवरण मदों को सम्मिलित किया गया ।

   इस मकान अनुसूची में नवीनता यह रही कि इसमें यह प्रश्न पूछा गया था कि क्या घर के दम्पत्ति के पास सोने के लिए अलग कक्ष है? तथा क्या घर में शौचालय है? इसके उपरान्त मकान सूची सार तैयार किया गया, ताकि प्रत्येक खण्ड में स्थित जनगणना मकानों की संख्या, परिवारों की संख्या और अन्य विवरणों का सारांश एक दृष्टि में उपलब्ध हो सके।

3. **प्रगणन कार्य**– जनगणना का यह सबसे महत्वपूर्ण चरण था जिसमें 9 फरवरी से 28 फरवरी, 2001 के बीच प्रगणन कार्य पूरा किया गया। प्रत्येक प्रगणक ने अपने निर्धारित खण्ड में स्थित प्रत्येक मकान पर दस्तक देकर परिवार और उससे जुड़े निम्न व्यक्तियों की उनके सामान्य निवास के आधार पर गणना पूरी की–(i) वे सभी व्यक्ति जो सामान्यतया परिवार में रहते हों और प्रगणन काल के दौरान वहीं उपस्थित हों। (ii) जनगणना के दिन अनुपस्थित हों परंतु 28 फरवरी, 2001 से पूर्व उनके वापस लौटने की पूरी उम्मीद हो।

   टिप्पणी– यदि कोई व्यक्ति सम्पूर्ण गणना–अवधि में अपने सामान्य निवास से बाहर हो तो उसकी गणना उस स्थान पर ली गई जहां वह गणना के दिन पाया गया परंतु ऐसे व्यक्तियों को यह निर्देश दिया गया कि यदि वे इस दौरान कहीं अन्यत्र जाएं तो अपनी गणना दुबारा न होने दें।

   बेघर व्यक्तियों की गणना– प्रगणन विधि की अंतिम रात्रि अर्थात् 28 फरवरी की रात को उन बेघर व्यक्तियों तथा खानाबदोश परिवारों की गणना का कार्य पूरा किया गया जो प्रायः रेलवे प्लेटफार्मों, मन्दिरों, मस्जिदों, सड़क की पटरियों, पुलों के नीचे, बड़े पाइपों के अन्दर या खुले आसमान में जीवनयापन करते हैं।

   प्रगणन के दौरान दो अनुसूचियां– (i) व्यक्तिगत विवरण तथा (ii) परिवार अनुसूची का प्रयोग किया गया जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नवत् हैः

   भारत की जनगणना 2001 : व्यक्तिगत– विवरण/पर्ची

तहसील–विकास खण्ड / मण्डल आदि का नाम–कोड़ नं ( ) नगर / गांव का नाम– कोड नं. ( )

वार्ड का नम्बर या नाम

व्यक्तिगत विवरण

1. नाम
2. परिवार के मुखिया से संबंध
3. लिंग–पुरुष / स्त्री
4. आयु (गत जन्मदिन पर)
5. वर्तमान वैवाहिक स्थिति– (अविवाहित / विवाहित / विधवा–विधुर / तलाकशुदा)
6. विवाह के समय आयु
7. धर्म
8. यदि अनुसूचित जाति के हैं तो जाति का नाम
9. यदि अनुसूचित जनजाति के हैं तो जनजाति का नाम
10. मातृभाषा
11. अन्य भाषाओं का ज्ञान
12. साक्षर / निरक्षर
13. प्राप्त शिक्षा का उच्चतम स्तर (डिप्लोमा / डिग्री धारक की स्थिति में विशेषज्ञता का विषय)
14. शिक्षा प्राप्त करने का वर्तमान संस्थान (स्कूल / कॉलेज / व्यावसायिक संस्थान / अन्य)
15. शारीरिक / मानसिक विकलांगता
16. क्या गत वर्ष कोई काम–काज किया (इसमें खेत खलिहान / घरेलू उद्यम में अंशकालिक या अवैतानिक काम शामिल है)

    यदि हां तो 6 माह से कम या अधिक या कोई काम नहीं किया।
17. (i) दीर्घकालिक या अल्पकालिक कर्मी के कार्य की श्रेणी, (ii) व्यक्ति का पेशा, (iii) कार्यरत उद्योग, व्यापार अथवा सेवा का स्वरूप, (iv) कर्मी का वर्ग– मालिक / कर्मचारी / एक कमी, पारिवारिक कर्मी
18. गैर आर्थिक कार्यकलाप की दशा में–विद्यार्थी / गृहकार्य / आश्रित / पेंशनभोगी / भिखारी / अन्य,
19. अल्पकालिक कर्मी / गैर–कर्मी की दशा में क्या व्यक्ति काम की खोज में है / काम के लिए उपलब्ध है?
20. कार्यस्थल– निवास से दूरी तथा सफर का साधन
21. जन्मस्थान– (i) ग्राम / नगर, (ii) राज्य / देश, (iii) जिला।
22. पूर्व निवास स्थान (यदि अन्य स्थल से इस गांव / नगर में आया है)

    पूर्व निवास का : (i) राज्य / देश, (ii) जिला, (iii) पूर्व निवास का क्षेत्र

ग्रामीण/नगरीय (iv) स्थान परिवर्तन का कारण, (v) स्थान परिवर्तन के बाद वर्तमान गांव/नगर में निवास की अवधि।

23. प्रजननता विवरण– उन सभी महिलाओं के लिए जो विवाहित हैं या थीं: (i) वर्तमान समय में जीवित बच्चों की संख्या, (ii) जीवित पैदा हुए कुल बच्चों की संख्या (iii) विगत एक वर्ष के दौरान जीवित उत्पन्न बच्चों की संख्या

व्यक्तिगत विवरण/पर्ची

व्यक्तिगत विवरण जनगणना का मूल आधार होता है। वर्ष 2001 की जनगणना में व्यक्तिगत विवरण से सम्बन्धित 23 प्रश्नों वाली अनुसूची का प्रयोग किया गया। इस अनुसूची के प्रश्नों का विवरण इस प्रकार हैः

(अ) **सामान्य प्रश्न**– व्यक्तिगत विवरण/व्यक्तिगत पर्ची के 13 प्रश्न सामान्य प्रकृति के थे, जैसे–नाम, लिंग, वैवाहिक स्थिति, आयु, धर्म, शिक्षा, साक्षर व निरक्षर आदि। इस अनुसूची में प्रश्न 6 विवाह के समय आयु, एक नया प्रश्न जोड़ा गया है।

(ब) **आर्थिक प्रश्न**– व्यक्तिगत विवरण के अगले 4 प्रश्न (16,17,18,19) आर्थिक प्रश्न थे। इनका उद्देश्य जनसंख्या के आर्थिक कार्यकलापों अर्थात रोजगार की मात्रा व स्वरूप और बेरोजगारी की व्यापकता का पता लगाना था। प्रश्न 20 इस पर्ची में नया जोड़ा गया जिसमें यह पूछा गया था–(क) निवास के कार्य स्थल की दूरी, (ख) कार्य स्थल तक के सफर का साधन।

(स) **प्रवास संबंधी प्रश्न**– दो प्रश्न (21 तथा 22) जन्म स्थान तथा प्रवास अर्थात् निवास स्थान परिवर्तन से सम्बन्धित थे। पूर्व निवास से स्थान परिवर्तन के सात कारण पूछे गए– (i) काम–काज/रोजगार, (ii) व्यापार, (iii) शिक्षा, (iv) विवाह, (v) जन्म के पश्चात् स्थान परिवर्तन, (vi) परिवार के साथ स्थान परिवर्तन तथा (vii) अन्य कारण।

(द) **प्रजननता संबंधी प्रश्न**– अंतिम प्रश्न (23) प्रजननता के संबंध में था। प्रश्न 23 (i) तथा 23 (ii) उन सभी महिलाओं से पूछा गया जो प्रश्नकाल के समय विवाहित, विधवा, तलाकशुदा या संबंध विच्छेदित थीं। इसका उद्देश्य प्रजननता–प्रतिमान का पता लगाना था। प्रश्न 23 (iii) उन महिलाओं से पूछा गया जो वर्तमान में विवाहित थीं। इसका उद्देश्य वर्तमान प्रजनन दर का पता लगाना था।

परिवार अनुसूची

परिवार अनुसूची तीन भागों में विभाजित की गई थी। भाग I में लोकेशन विवरण, भाग II में परिवार सदस्यों का व्यक्तिगत विवरण तथा भाग III में काश्तकारी/बागान में कार्यरत परिवारों के संबंध में सूचना प्राप्त की गई थी। परिवार अनुसूची में कुल 39 कॉलम थे जिन्हें प्राप्त सूचनाओं के आधार पर भरा जाना था।

वर्किंग शीट तथा प्रगणक सार

प्रगणन कार्य के अंत में प्रगणकों द्वारा परिवार अनुसूची की सहायता से अलग–अलग सामान्य परिवार/संस्थान/बेघरों के लिए वर्किंट शीट तैयार की गई। इसमें परिवार के सदस्यों की कुल संख्या (पुरुष तथा स्त्रियों), 0–6 आयु वर्ग के बच्चों की संख्या (पुरुष + स्त्री), साक्षरों की संख्या, निरक्षरों की संख्या, दीर्घकालिक कर्मियों की संख्या, अल्पकालिक कर्मियों की संख्या, गैर–कर्मियों की संख्या, काश्तकार, खेतिहर, मजदूर, पारिवारिक उद्योग एवं अन्य कर्मी आदि का समावेश है। इसके उपरानत प्रगणक सार तैयार किया गया।

4. **सुधार वक्र**– 1 से 5 मार्च, 2001 के बीच सुधार कार्य पूरा किया गया। इस अवधि में सभी प्रगणकों ने अपने प्रखण्ड में प्रत्येक परिवार से पुनः सम्पर्क करके इन तीन बातों की जानकारी प्राप्त की कि (i) क्या उस परिवार की गणना के बाद और एक मार्च, 2001 के सूर्योदय से पहले वहां नया जन्म या मृत्यु तो नहीं हुई। (ii) उस परिवार में कोई नया व्यक्ति तो नहीं आया जो प्रगणन काल के दौरान अपने सामान्य निवास स्थान से अनुपस्थित रहा हो। (iii) उस प्रखण्ड में कोई ऐसा नया परिवार तो नहीं आया जिसकी गणना अभी तक कहीं भी न हुई हो।
5. **समंक विधायन**– प्रगणन कार्य एवं जांच कार्य के उपरान्त बड़े पैमाने पर समंक सारणीयन का कार्य प्रारम्भ किया गया। समंक विधायन हेतु कम्प्यूटर प्रणाली का प्रयोग किया गया जिसके फलस्वरूप जनसंख्या समंकों की शीघ्र उपलब्धता संभव हो पायी।

भारत की जनगणना 2001 के अंतिम परिणाम

जनगणना 2001 की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत् रहीं–

भारत में जनसंख्या का आकार एवं वृद्धि दर अपने जनांकिकीय इतिहास के लिए अभूतपूर्व एवं चिन्ताजनक है। भारत की जनसंख्या जो 1901 में 23.8 करोड़, 1951 में 36.10 करोड़, 1991 में 84.3 करोड़ थी, वह बढ़कर 2001 में 102.70 करोड़ हो गई। भारत की जनसंख्या में यह निरपेक्ष वृद्धि ब्राजील की कुल जनसंख्या से अधिक है जो विश्व का पांचवां सबसे बड़ा देश है।

1991–2001 के दशक में जनसंख्या की वृद्धि दर 21.34 प्रतिशत (औसत वार्षिक वृद्धि दर 1.93%) रही, जबकि 1981–91 में यह वृद्धि दर के संबंध में निम्नवत् तथ्य उल्लेखनीय हैं–

1. वर्ष 1991 से 1921 के बीच देश की जनसंख्या में धीमी गति से वृद्धि हुई। इसका कारण– रहा उच्च जन्मदर के साथ विद्यमान उच्च मृत्युदर। जनसंख्या में उच्च मृत्युदर का कारण रहा– इस अवधि में देश में पड़ने वाला भीषण अकाल तथा महामारी।
2. 1921 से 1951 के बीच देश की जनसंख्या लगभग स्थिर दर से उत्तेरात्तर बढ़ती रही। इस अवधि में जनसंख्या वृद्धि का प्रमुख कारण था– अकाल एवं महामारियों पर नियन्त्रण से हुई मृत्युदर में कमी। इस तरह इस अवधि में मृत्युदर तो घट गई परंतु जन्मदर में कोई कमी नहीं हुई।

3. 1951–1981 के बीच जनसंख्या में अत्यधिक तेजी से वृद्धि हुई। इसका कारण रहा– इस अवधि में मृत्यु दर का लगातार घटते जाना तथा जन्मदर में लगभग स्थिरता की स्थिति का बने रहना।
4. 1981–2001 के बीच देश की जनसंख्या में वृद्धि तो हुई परंतु उसकी वृद्धि दर में गिरावट का रूख जारी रहा। इसका कारण रहा– लोगों में छोटे परिवार की धारणा के बलवती होने से आई जन्मदर में मामूली गिरावट।

2001 की जनगणना के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत जनसंख्या संक्रमण की चतुर्थ अवस्था की ओर धीरे–धीरे अग्रसर हो रहा है। अनुमान है कि भारत 2020 के उपरान्त इस अवस्था में प्रवेश कर सकेगा। जब यहां मृत्युदर में कमी के साथ–साथ जन्मदर में भी कमी आ जाएगी। इस तरह भारत में जनसंख्या वृद्धि के सन्दर्भ में स्थिरता प्राप्त करने में अपेक्षाकृत अधिक समय लगने की संभावना है। 2001 की जनगणना के आधार पर भारतीय जनसंख्या संबंधी कुछ तथ्य निम्न प्रकार हैं–

1. **जनसंख्या घनत्व**– 2001 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या घनत्व अर्थात् देश में प्रति वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में 324 व्यक्ति निवास करते हैं। देश में सबसे अधिक जनसंख्या घनत्व (9,294 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी.) दिल्ली में है, जबकि सबसे कम जनसंख्या घनत्व वाला प्रदेश अरूणाचल प्रदेश है जहां प्रति वर्ग किमी. में मात्र 13 व्यक्ति निवास करते हैं। देश में सबसे अधिक घना प्रदेश पश्चिम बंगाल है जहां जनसंख्या घनत्व 904 है। बिहार दूसरा सबसे घना प्रदेश है तथा केरल का स्थान जनसंख्या घनत्व की दृष्टि से तीसरा है।
2. **शिशु जनसंख्या**– 2001 की जनगणना के अनुसार देश में 0.6 आयु वर्ग की जनसंख्या 15.78 करोड़ थी। इस तरह कुल जनसंख्या का लभग जनसंख्या में लड़कों की संख्या 8.19 करोड़ तथा लड़कियों की संख्या 7.59 करोड़ थी। देश में लड़कियों की घटती संख्या से भविष्य में लिंग अनुपात और अधिक सन्तुलित होने का भय है।
3. **स्त्री–पुरुष अनुपात**– जनगणना 2001 के अनुसार देश में कुल पुरुषों की संख्या 53.13 करोड़ तथा स्त्रियों की संख्या 49.57 करोड़ है। इस तरह 2001 में स्त्री–पुरुष अनुपात 933:100 था अर्थात् प्रति हजार पुरुषों के पीछे 933 स्त्रियां थी, जबकि 1991 में इनका अनुपात 927:1000, 1981 में 934:1000 था। देश में स्त्री–पुरुष अनुपात का यह असन्तुलन इस बात का संकेत करता है कि देश में स्त्रियों की स्थिति सम्मानजनक नहीं है। राज्यानुसार स्त्री–पुरुष अनुपात सबसे अधिक केरल में, 1,058 तथा सबसे कम सम्मानजनक नहीं है। राज्यानुसार स्त्री–पुरुष अनुपात अधिक केरल में 1,058 तथा सबसे कम चण्डीगढ़ में 733 है।
4. **शहरी जनसंख्या का अनुपात**– 2001 की जनगणना के अनुसार देश की कुल जनसंख्या में शहरी जनसंख्या 28.5 करोड़ और ग्रामीण जनसंख्या 74.1 करोड़ थी। अन्य शब्दों में , 2001 में शहरी जनसंख्या से कुल जनसंख्या का अनुपात 27.8 प्रतिशत था। 1991 में यह अनुपात 25.78 प्रतिशत तथा 1981 में 23.3 प्रतिशत था। इस तरह देश में शहरीकरण की प्रवृत्ति बढ़ी है। अर्थात् गांवों से शहरों की ओर पलायन निरन्तर जारी है।

5. **कार्य–सहभागिता दर**– कार्य सहभागिता दर से अभिप्राय जनसंख्या में कुल श्रमिकों के प्रतिशत से है। 2001 की जनगणना के अनुसार, कुल जनसंख्या में कुल श्रमिकों का प्रतिशत 39.13 है। इस तरह देश में रोजगार की स्थिति सन्तोष जनक नहीं है।

6. **साक्षरता दर**– 2001 की जनगणना के अनुसार देश में साक्षरता दर बढ़कर 65. 38 प्रतिशत (पुरुषों में 75.85% तथा स्त्रियों में 54.16% हो गई, जबकि 1991 में यह दर 52.21 प्रतिशत तथा 981 में 43.57 प्रतिशत थी। उल्लेखनीय है कि 2000 की जनगणना में साक्षरता दर की गणना में 7 वर्ष या उससे अधिक आयु के व्यक्तियों को सम्मिलित किया गया है अर्थात् 7 वर्ष से कम आयु के सभी बच्चों को निरक्षर माना गया है चाहे वे किसी स्तर की शिक्षा ग्रहण किए हैं। 2001 की जनगणना में उन्हीं व्यक्तियों को साक्षर माना गया है। जो किसी भाषा को पढ़–लिख अथवा समझ सकते हैं। साक्षर होने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि व्यक्ति ने कोई औपचारिक शिक्षा प्राप्त की है अथवा कोई परीक्षा पास की हो।

   साक्षरता दर के संबंध में अन्य निष्कर्ष इस प्रकार हैं 1. सबसे अधिक साक्षरता दर 90.92 प्रतिशत केरल में है और सबसे कम 47.53 प्रतिशत बिहार में है। पुरुष एवं स्त्री दोनों की साक्षरता दर केरल में सबसे अधिक (क्रमशः 94.20% तथा 87.86%) तथा बिहार में सबसे क्रम (क्रमशः 60.32% तथा 33.57%) है। देश में कुल 13 राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों की साक्षरता का स्तर देश की साक्षरता दर से कम है।

सन् 2001 की जनगणना की विशेषताएं– पूर्व की जनगणनाओं विशेषकर 1981 व 1991 की तुलना में 2001 की जनगणना की कुछ विशिष्टताएं हैं जो इसे अन्य जनगणनाओं से भिन्नता व श्रेष्ठता प्रदान करती हैं। संक्षेप में यह निम्नलिखित हैं–

1. **नवीन प्रश्नों का समावेश**– सन् 2001 की जनगणना में कई सूचियों में नवीन प्रश्नों को जोड़कर जनगणना को कहीं अधिक व्यावहारिक बनाने का प्रयास किया गया। इसका विस्तृत वर्णन पूर्व पृष्ठों में किया जा चुका है मगर फिर भी निम्न प्रश्नों का उल्लेख किया जा सकता है–
   - क. मकान सूची में जो नए प्रश्न जोड़े गए, वे ग्रामीण क्षेत्र के परिवारों में शौचालय की सुविधा, खाना पकाने में ईधन के प्रयोग के प्रकार से सम्बन्धित थे। विशेषकर ईंधन संबंधी प्रश्न का उद्देश्य इसके वन संसाधनों पर पड़ने वाले प्रभाव व वैकल्पिक ऊर्जा के प्रयोग के कारण महत्वपूर्ण है।
   - ख. इसी प्रकार व्यक्तिगत पर्ची में प्रश्न जोड़ा गया कि क्या भूतपूर्व सैनिक वेतनभोगी है अथवा नहीं।
   - ग. बेरोजगारों के संबंध में प्रश्न जोड़ा कि क्या आपने इससे पहले काम किया है? इस प्रश्न का उद्देश्य श्रम शक्ति में नवीन प्रवेशार्थियों के बारे में जानकारी प्राप्त करना था।

2. **श्रेष्ठ आयोजन, समन्वय एवं कार्यान्वयन**– पिछली सभी जनगणनाओं की तुलना में इस जनगणना का आयोजन व कार्यान्वयन सम्पूर्ण शीर्ष स्तर से लेकर

निम्नतम खण्ड स्तर तक पूर्ण समन्वय व प्रभावी झंग से किया गया। इससे सम्बद्ध सभी अधिकारियों व कर्मचारियों की नियुक्ति, उनका प्रशिक्षण व निर्देशन अति प्रभावशाली ढंग से हुआ जिससे इसके परिणाम कही अधिक यथार्थ हो सके।

3. **कम्प्यूटरीकरण व शीघ्र परिणाम**– इस जनगणना में सम्पूर्ण कार्य–समंकों का विधायन माइक्रो कम्प्यूटर के द्वारा किया गया। परिणामस्वरूप जनगणना के परिणाम अति शीघ्रता से मिल सके और तद्नुसार योजना व अन्य आर्थिक व सामाजिक नीतियों में इनका समावेश करने से श्रेष्ठ व सफल नीतिकरण में सहायता मिली है।

4. **अशुद्धियों पर रोक**– इस जनगणना में अशुद्धियों पर रोक लगाने के लिए दो उपाय प्रगणेत्तर जांच सर्वेक्षण एवं जनगणना मूल्यांकन अध्ययन किए जिनसे अशुद्धियों पर रोक लगाने में सहायता मिली।

5. **साक्षरता दर**– इस संबंध में महत्वपूर्ण परिवर्तन यह किया गया कि 0–6 वर्ष की आयु के बच्चों को निरक्षर माना गया, जबकि पूर्ण जनगणनाओं में 0.4 वर्षों की आयु के बच्चों को निरक्षर माना गया था। इस प्रकार साक्षरता की गणना को नया आधार दिया गया है।

6. **अवैतनिक कार्यरत स्त्रियों व बच्चों के संबंध में**– इस जनगणना में कृषि व घरेलू उद्यम क्षेत्र में अवैतनिक आधार पर कार्यरत स्त्रियों व बच्चों के द्वारा गत वर्ष कार्य करने के बारे में जानकारी एकत्रित कर अवैतनिक कर्मियों को समुचित महत्व दिया गया।

7. **प्रवासन के दो कारण**– व्यक्तिगत पर्चियों में प्रवासन (Migration) के दो कारणों का समावेश इस जनगणना में किया गया। ये कारण क्रमशः: व्यवसाय व प्राकृतिक कारण, जैसे–सूखा, बाढ़ आदि थे। इससे प्रवासन के कारणों को अधिक व्यापक बनाया गया।

8. **अग्रिम कार्यवाही**– पूर्व जनगणनाओं में मकान सूचीकरण, प्रगणन काल में ही किया जाता था इस जनगणना कार्य से 10 माह पूर्व ही करा लिया गया था। परिणामस्वरूप प्रगणन कार्य अधिक पूर्णता व शुद्धता से सम्पन्न हो सका।

भारतीय जनगणना 2001 के आंकड़ों के अनुसार जनसंख्या की दृष्टि से उत्तर प्रदेश अभी भी सबसे बड़ा प्रदेश है। यहां की वर्तमान जनसंख्या (16.6 करोड़) पाकिस्तान की कुल जनसंख्या से अधिक है जो विश्व का छठा सबसे बड़ा देश है। जनसंख्या की दृष्टि से सिक्किम देश का सबसे छोटा राज्य है। केन्द्र शासित प्रदेशों में दिल्ली की जनसंख्या (1.38 करोड़) सबसे अधिक तथा लक्षद्वीप की जनसंख्या सबसे कम है।

सन् 2011 की जनगणना

भारत की वर्ष 2011 की जनगणना के फाइनल आंकड़े केन्द्रीय गृहमंत्री सुशील कुमार शिंदे ने 30 अप्रैल, 2013 को जारी किए। देश की यह 15वीं जनगणना फरवरी 2011

में सम्पन्न कराई गई थी तथा इसके अंतिम (Provisional) आंकड़े 31 मार्च, 2011 को जारी किए गए थे। जनगणना 2011 के अंतिम आंकड़ों में देश कुल जनसंख्या (1 मार्च, 2011 को) 1,21,01,93,422 (121.02 करोड़) आकलित की गई थी, जबकि फाइनल आंकड़ों में यह 1,21,07,27,932 (121.07करोड़) बताई गई है। भारत के रजिस्ट्रार जनरल एवं जनगणना आयुक्त की 7 फरवरी, 2014 की विज्ञप्ति के अनुसार मणिपुर के सेनापति जनपद के माओ–माराम, पाओमाता एवं पुरूल सब–डिवीजिनलों के आंकड़ों के प्रकाशन के साथ भारत की अंतिम जनसंख्या 1,21,08,54,977 है, इसमें 62,32,70,258 पुरुष तथा 58,75,84,719 महिलाएं है। इस प्रकार वास्तविक आंकड़े अंतिम आंकड़ों के काफी निकट ही रहे हैं।

फाइनल आंकड़ों के अनुसार 2001–11 के दशक में देश में कुल जनसंख्या में 18.196 करोड़ (17.7 प्रतिशत) की वृद्धि हुई। इससे पूर्व 1991–2001 के दशक में जनसंख्या में वृद्धि 21.54 प्रतिशत रही थी। पुरुषों की संख्या में 2001–2011 के दशक में निरपेक्ष वृद्धि जहां 9.097 करोड़ की हुई, महिला संख्या में वृद्धि 9.099 करोड़ की हुई। इस प्रकार महिला संख्या में वृद्धि पुरुषों की तुलना में मामूली अधिक रही। राज्यों की जनसंख्या में सर्वाधिक 25.4 प्रतिशत की वृद्धि बिहार में दर्ज की गई।

तालिका वर्तमान शताब्दी में भारत की जनसंख्या

जनगणना वर्ष	जनसंख्या (करोड़ में)	दशक में परिवर्तन (करोड़ में)	दशक में वृद्धि की दर (प्रतिशत)	औसत वार्षिक घातांक वृद्धि दर (प्रतिशत)	स्त्री–पुरूष अनुपात (प्रति हजार पुरूषो पर महिलाएं)	कुल जनसंख्या में ग्रमीण जनसंख्या का प्रतिशत
1891	2.60	-	-	-	-	-
1901	23.84	+0.24	-	-	972	89.2
1911	25.21	+1.37	+5.75	0.56	964	89.7
1921	25.13	-.08	-0.31	-0.03	955	88.8
1931	27.90	+2.77	+11.00	1.04	950	88.0
1941	31.87	+3.97	+14.22	1.33	945	86.1
1951	36.11	+4.24	+13.31	1.25	946	82.7
1961	43.92	+7.81	+21.64	1.96	941	82.0
1971	54.82	+10.90	+24.80	2.22	930	80.1
1981	68.33	+13.51	+24.66	2.20	934	76.7
1991	84.64	+16.30	+23.87	2.14	927	74.3
2001	102.87	+18.23	+21.54	1.95	933	72.2
2011	121.08	+18.15	-17.7	1.64	943	68.8

तालिका जनसंख्या के राज्यवार आंकड़े –2011

क्र0	राज्य / केन्द्र – शासित क्षेत्र	कुल जनसंख्या			लिंगानुपात (प्रति हजार व्यक्तियों पर महिलाओं की संख्या)	जनसंख्या घनत्व (प्रति वर्ग किमी)	दशक में जन– संख्या वृद्धि (प्रतिशत)	साक्षरता दर (प्रतिशत)			कुल जनसंख्या में राज्य की जनसंख्या का अंश (प्रतिशत में)
		संख्या	पुरुष	महिला				समस्त जन– संख्या में	पुरूष	महिला	
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
	सम्पूर्ण भारत	**1,21,08,54,977***	**62,32,70,258**	**58,75,84,719**	**943**	**382**	**17.7**	**73.0**	**80.9**	**64.6**	**100.00**
1.	जम्मू कश्मीर	1,25,41.302	66,40,662	59,00.640	889	124	23.6	67.2	76.8	56.4	1.04
2.	हिमाचल प्रदेश	68,64,602	34,81,873	33,82,729	972	123	12.9	82.8	89.5	75.9	0.57
3.	पंजाब	2,77,43,338	1,46,39,465	1,31,03,873	895	551	13.9	75.8	80.4	70.7	2.29
4.	चण्डीगढ़	10,55,450	5,80,663	4,74,784	818	9258	17.2	86.0	90.0	81.2	0.09
5.	उत्तराखण्ड	1,00,86,292	51,37,773	49,48,519	963	189	18.8	78.8	87.4	70.0	0.83
6.	हरियाणा	2,53,51,462	1,34,94,734	1,18,56,728	879	573	19.9	75.6	84.1	65.9	2.09
7.	दिल्ली	1,67,87,941	89,87,326	78,00,615	868	11320	21.2	86.2	90.9	80.8	1.39
8.	राजस्थान	6,85,48,437	3,55,50,997	3,29,97,440	928	200	21.3	66.1	79.2	52.1	5.66
9.	उत्तरप्रदेश	19,98,12,341	10,44,80,510	9,53,31,831	912	829	20.2	67.7	77.3	57.2	16.51
10.	बिहार	10,40,99,452	5,42,78,157	4,98,21,295	918	1106	25.4	61.8	71.2	51.5	8.60
11.	सिक्किम	6,10,577	3,23,070	2,87,507	890	86	12.9	81.4	86.6	75.6	0.05
12.	अरूणाचल प्रदेश	13,83,727	7,13,912	6,69,815	938	17	26.0	65.4	72.6	57.7	0.11
13.	नागलैण्ड	19,78,502	10,24,649	9,53,853	931	119	-0.6	79.6	82.8	76.1	0.16
14.	मणिपुर	28,55,794	14,38,586	14,17,208	985	128	31.79	79.2	86.1	72.4	0.23
15.	मिजोरम	10,97,206	5,55,339	5,41,867	976	52	23.5	91.3	93.3	89.3	0.09
16.	त्रिपुरा	36,73,917	18,74,376	17,99,541	960	350	14.8	87.2	91.5	82.7	0.30
17.	मेघालय	29,66,889	14,91,832	14,75,057	989	132	27.9	74.4	76.0	72.9	0.25
18.	असम	3,12,05,576	1,59,39,443	1,52,66,133	958	398	17.1	72.2	77.8	66.3	2.58
19.	पश्चिम बंगाल	9,12,76,115	4,68,09,027	4,44,67,088	950	1028	13.8	76.3	81.7	70.5	7.54
20.	झारखण्ड	3,29,88,134	1,69,30,315	1,60,57,819	949	414	22.4	66.4	76.8	55.4	2.73
21.	ओडिशा	4,19,74,218	2,12,12,136	2,07,62,082	979	270	14.0	72.9	81.6	64.0	3.47
22.	छत्तीसगढ़	2,55,45,198	1,28,32,895	1,27,12,303	991	189	22.6	703.3	80.3	60.2	2.11
23.	मध्यप्रदेश	7,26,26,809	3,76,12,306	3,50,14,503	931	236	20.3	69.3	78.7	59.2	6.00
24.	गुजरात	6,04,39,692	3,14,91,260	2,89,48,432	919	308	19.3	78.0	85.8	69.7	4.99
25.	दमन एवं दीव	2,43,247	1,50,301	92,946	618	2191	53.8	87.1	91.5	79.5	0.02
26.	दादरा एवं नगर हवेली	3,43,709	1,93,760	1,49,949	774	700	55.9	76.2	85.2	64.3	0.03
27.	महाराष्ट्र	11,23,74,333	5,82,43,056	5,41,31,277	929	365	16.0	82.3	88.4	75.9	9.28
28.	आन्ध्रप्रदेश	8,45,80,777	4,24,42,146	4,21,38,631	993	308	11.0	67.0	74.9	59.1	6.99
29.	कर्नाटक	6,10,95,297	3,09,66,657	3,01,28,640	973	319	15.6	75.4	82.5	68.1	5.05
30.	गोवा	14,58,545	7,39,140	7,19,405	973	394	8.2	88.7	92.6	84.7	0.12
31.	लक्षद्वीप	64,473	33,123	31,150	947	2149	6.3	91.8	95.6	87.9	0.01
32.	केरल	3,34,06,061	1,60,27,412	1,73,78,649	1084	860	4.9	94.0	96.1	92.1	2.76
33.	तमिलनाडु	7,21,47,030	3,61,37,975	3,60,09,055	966	555	15.6	80.1	86.8	73.4	5.96
34.	पुदुचेरी	12,47,953	6,12,511	6,35,442	1037	2546	28.1	85.8	91.3	80.7	0.10
35.	अण्डमान एवं निकोबार द्वीपसमूह	3,80,581	2,02,871	1,77,710	876	46	6.9	86.6	90.3	82.4	0.03

टिप्पणी

तालिका जनसंख्या (1901–2011)

जनगणना वर्ष	जनसंख्या	दशकीय वृद्धि	
		परिशुद्ध	प्रतिशत
1	2	3	4
1901	23,83,96,327	-	-
1911	25,20,93,390	1,36,97,063	5.75
1921	25,13,21,213	-7,72,177	-0.31
1931	27,89,77,238	2,76,83,342	11.00
1941	31,86,60,580	3,96,83,342	14.22
1951	36,10,88,090	4,24,27,510	13.31
1961	43,92,34,771	7,81,46,681	21.64
1971	54,81,59,652	10,89,24,881	24.80
1981	68,33,29,097	13,51,69,445	24.66
1991	84,64,21,039	16,30,91,942	23.87
2001	1,02,87,37,436	18,23,16,397	21.54
2011	1,21,08,54,977	18,21,17,541	17.70

साक्षरता

साक्षरता के मामले में 5 प्रतिशत से अधिक सुधार 2001–2011 के दशक में हुआ है। 2001 में देश में साक्षरता की दर 68.84 प्रतिशत थी जो 2011 के अंतिम आंकड़ों में 74.04 प्रतिशत (पुरुषों में 82.16 प्रतिशत व महिलाओं में 65.46 प्रतिशत) आकलित की गई थी। ताजा फाइनल आंकड़ों के अनुसार 2011 में देश में साक्षरता दर 73 प्रतिशत रही। पुरुषों में साक्षरता दर 80.9 प्रतिशत व महिलाओं में यह 64.6 प्रतिशत पाई गई। ताजा आंकड़ों के अनुसार 2001–11 के दशक में साक्षरता दर में सर्वाधिक 18.6 प्रतिशत बिन्दु की वृद्धि दादरा एवं नगर हवेली में दर्ज की गई जहां यह 57.6 प्रतिशत से बढ़कर 76.2 प्रतिशत हो गई। इसके पश्चात् बिहार में 14.8 प्रतिशत (47.0 प्रतिशत से बढ़कर 61.8 प्रतिशत) व त्रिपुरा में 14.0 प्रतिशत (73.2 प्रतिशत से बढ़कर 87.2 प्रतिशत) बिन्दु की वृद्धि साक्षरता दर में हुई।

तालिका

भारत में साक्षरता (1951–2011)			
	साक्षरता (प्रतिशत में)		
जनगणना वर्ष	समस्त जनसंख्या में	पुरुषों में	महिलाओं में
1951	18.33	27.16	8.86
1961	28.3	40.40	15.35
1971	34.45	45.96	21.97
1981	43.57	56.38	29.76
1991	52.21	64.13	39.39
2000	64.84	75.26	53.67
2011	73.0	80.9	64.6

नोट– 1951, 1961 व 1971 की जनगणना के साक्षर व्यक्तियों की गणना 5 वर्ष व उससे अधिक उम्र के लोगों में की गई थी, जबकि 1981 व उसके पश्चात् यह 7 वर्ष व उससे अधिक उम्र की जनसंख्या में की गई है।

जनसंख्या घनत्व

2011 की जनगणना के फाइनल आंकड़ों के अनुसार 1 मार्च, 2011 को देश में जनसंख्या घनत्व (प्रति एक वर्ग किमी क्षेत्र में रहने वाले लोगों की संख्या) 382 थी।

टिप्पणी

इससे पूर्व अनंतिम आंकड़ों में भी 2011 में घनत्व 382 ही आकलित किया गया था। 2001 में देश में जनसंख्या घनत्व 325 था। 2011 में देश में सर्वाधिक जनघनत्व वाला राज्य बिहार था जहां यह घनत्व 1106 दर्ज किया गया।

सर्वाधिक जनघनत्व वाला प्रदेश पं. बंगाल था। सभी राज्यों व केन्द्रशासित क्षेत्रों में मिलाकर सर्वाधिक जनघनत्व दिल्ली में 11320 व दूसरे स्थान पर चण्डीगढ़ में 9258 पाया गया। संख्या का न्यूनतम घनत्व अरूणाचल प्रदेश में (17) दर्ज किया गया है। 2001 में भी इन तीनों राज्यों/केन्द्र–शासित क्षेत्रों की यही स्थिति थी।

लिंगानुपात

लिंगानुपात से तात्पर्य प्रति हजार पुरुषों पर महिलओां की संख्या से है। 2001 में देश में लिंगानुपात प्रति 1000 पुरुषों पर 933 महिलाओं का था। 2011 की जनगणना के फाइनल आंकड़ों में यह अनुपात 943 महिलाएं प्रति हजार पुरुष पाया गया है। लिंगानुपात के मामले में शीर्ष स्थान केरल का व सबसे निचला स्थान हरियाणा का बरकरार है। 2011 में केरल में प्रति हजार पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या जहां 1084 थी। वहीं हरियाणा में यह 879 दर्ज की गई है। उत्तर प्रदेश में यह 912 व बिहार में 918 पाई गई है। 0–6 वर्ष आयु वग्र में लिंगानुपात 2001 में 927 था, जो घटकर 2011 में 919 रह गया है।

कुल जनसंख्या में 0–6 वर्ष तक के आयु वर्ग की जनसंख्या 16.38 करोड़ 2001 में थी जो कि 2011 में 16.45 करोड़ रही है।

तालिका

लिंगानुपात की दृष्टि से शीर्ष 5 राज्य	
राज्य	**प्रति हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या**
केरल	1084
तमिलनाडु	996
आन्ध्रप्रदेश	993
छत्तीसगढ़	991
ओडिशा	979

भारत में लिंगानुपात (1901–2011)	
जनगणना वर्ष	**लिंगानुपात (प्रति हजार पुरुषों पर महिलाएं)**
1901	972
1911	964
1921	955
1931	950
1941	945
1951	946
1961	941
1971	930
1981	934
1991	926
2001	933
2011	943

2001—11 में असम में मुस्लिम जनसंख्या की संवृद्धि दर सर्वाधिक

अधिकृत तौर पर जनगणना 2011 के धर्मानुसार आंकड़े यद्यपि अभी जारी नहीं किए गए हैं तथापि 2011 में भारत की कुल जनसंख्या में हिन्दुओं की जनसंख्या का प्रतिशत 2001 में 80.45 प्रतिशत से घटकर 2011 में 78.35 प्रतिशत रह गया। इसी अवधि में मुस्लिम जनसंख्या 13.4 प्रतिशत से बढ़कर 2011 में 14.2 प्रतिशत हो गई। जनगणना के आंकड़े बताते हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से 2011 तक भारत की कुल जनसंख्या में हिन्दुओं के हिस्से में 5.75 प्रतिशंताक की कमी आई है, जबकि मुस्लिमों के हिस्से में 4 प्रतिशतांक से अधिक की वृद्धि हो गई है।

मुस्लिम जनसंख्या की दशकीय संवृद्धि दर 1991—2001 में 29 प्रतिशत से घटकर 2001—11 के दशक में 24 प्रतिशत रह गई तथापि यह राष्ट्रीय औसत (17.7%) प्रतिशतांक अधिक है।

2001—11 के दशक में मुस्लिमों की जनसंख्या में सर्वाधिक वृद्धि दर असम (34. 2%) में दर्ज की गई, जबकि 1991—2001 के दशक में असम में जनसंख्या की संवृद्धि दर 30.9% ही थी।

मणिपुर भारत का एकमात्र ऐसा राज्य है जिसमें 2001—11 की अवधि में मुस्लिम जनसंख्या की संवृद्धि दर सबसे कम रही है। देश की कुल जनसंख्या में मुस्लिम की जनसंख्या में अधिक वृद्धि दर्ज करने वाले अन्य राज्य हैं— उत्तराखण्ड (2 प्रतिशतांक) केरल (1.9 प्रतिशतांक) पश्चिमी बंगाल (1.0 प्रतिशंताक) जम्मू—कश्मीर (1.3 प्रतिशंताक) जम्मू—कश्मीर की जनसंख्या में मुस्लिम जनसंख्या का प्रतिशत सर्वाधिक (68.3%) है। असम में यह 34.2% तथा पं. बंगाल में 27% है।

अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या

2011 में देश में 132.08 करोड़ की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जाति की जनसंख्या 20.14 करोड़ व अनुसूचित जन—जाति की जनसंख्या 10.43 करोड़ थी इससे पूर्व 2001 में इन वर्गों की यह जनसंख्या क्रमशः 16.66 करोड़ व 8.43 करोड़ थी।

कुल प्रजनन दर से तात्पर्य किसी महिला द्वारा अपने सम्पूर्ण प्रजनन काल में जन्म दिए जाने वाले शिशुओं की औसत संख्या से है। देश में जनसंख्या स्थिरता की स्थिति के लिए यह दर 2.1 प्राप्त करनी होगी।

भारत में शिशु मृत्यु दर में गिरावट— गोवा में मणिपुर में शिशु मृत्यु दर सबसे कम, मध्य प्रदेश में यह सर्वाधिक है। सामाजिक एवं चिकित्सकीय सुविधाओं के विस्तार के चलते देश में शिशु मृत्यु दर (Infant Mortality Rate-IMR) में संतोषजनक गिरावट विगत वर्षो में दर्ज की गई है। इस संबंध में ताजा आंकड़े भारत के महापंजीयक (Registrar General of India) की अक्टूबर 2012 की एक रिपोर्ट में उपलब्ध हैं। नमूना पंजीकरण प्रणाली (Sample Registration System) पर आधारित रिपोर्ट में बताया गया है कि 2013 के दौरान देश में शिशु मृत्यु दर 2 अंक घटकर 40 प्रति 1000 जीवित जन्म (40 per thousand live births) रह गई थी। ग्रामीण क्षेत्रों में यह जहां 48 प्रति हजार से घटकर 44 प्रति हजार जीवित जन्म रह गई थी, वहीं शहरी क्षेत्रों में यह 29 प्रति हजार से घटकर 27 प्रति हजार जीवित जन्म रह गई थी।

महापंजीयक की इस रिपोर्ट के अनुसार 2013 में देश में सबसे कम शिशु मृत्यु दर गोवा व मणिपुर में (9 प्रति हजार) रही, जबकि केरल में यह 12 प्रति हजार दर्ज की गई। 2013 में सर्वाधिक शिशु मृत्यु दर वाला राज्य मध्यप्रदेश तथा असम रहा, जहां दर 54 प्रति हजार पाई गई। उसके पश्चात उत्तर प्रदेश व ओडिशा में यह दर 50 प्रति हजार दर्ज की गई, रिपोर्ट के अनुसार जिन अन्य राज्यों में शिशु मत्यु दर राष्ट्रीय औसत (40 प्रति हजार) से अधिक दर्ज की गई उनमें असम, छत्तीसगढ़, बिहार, राजस्थान व मेघालय, हरियाणा शामिल हैं।

BPL जनसंख्या तथा जातीय जनसंख्या की गणना का कार्य प्रारम्भ

निर्धनता के नीचे के लोगों की ठीक–ठीक पहचान के लिए देश में सामाजिक–आर्थिक एवं जातिगत जनगण–2011 (Socio-Economic & Caste Census 2011) प्रारम्भ हो गई इसका शुभारम्भ 29 जून, 2011 को त्रिपुरा के एक जनजातीय गांव संखोला (Sankhola) से किया गया है। केन्द्र सरकार के वित्तीय व तकनीकी समर्थन से यह गणना राज्य व केन्द्रशासित क्षेत्रों की सरकारों द्वारा सम्पन्न कराई जाएगी। इसके लिए भारत इलेक्ट्रॉनिक लि0 द्वारा निर्मित हस्तचालित इलेक्ट्रॉनिक उपकरण का इस्तेमाल गणनाकारों द्वारा किया जा रहा है। यह गणना मार्च 2012 तक पूरी की जानी थी तथा इसके आंकड़ों का इस्तेमाल 12वीं पंचवर्षीय योजना में विभिन्न सरकारी योजनाओं के लिए लक्षितों के निर्धारण के लिए किया जाना है। किसी भी प्रकार के मोटराइज्ड वाहन (मोटर साइकिल, कार, ट्रैक्टर व हार्वेस्टर आदि) के धारक रू0 50 हजार से अधिक लिमिट वाले किसान, क्रेडिट कार्डधारक तथा आय कर/व्यवसाय कर देने वालों को इस गणना में शामिल नहीं किया गया है। ऐसे सभी परिवार जिनके किसी सदस्य की मासिक आय रू. 10 हजार प्रतिमाह से अधिक हो, भी इस गणना से बाहर रहेंगे। 3–4 कमरों वाले पक्के मकानों के स्वामियों व ऐसे परिवारों जिनके पास रेफ्रीजरेटर है या लैण्डलाइन टेलीफोन है, को भी इस गणना के दायरे से बाहर रखा गया है।

शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या वितरण के आंकड़े

वर्ष 2011 की जनसंख्या के अंतिम परिणाम 31 मार्च, 2011 को जारी किए गए थे। जनसंख्या के शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों में वितरण के आंकड़े उन आंकड़ों में शामिल नहीं थे। जनगणना आयुक्त चंद्रमौलि के साथ यह आंकड़े गृह सचिव आर0के0 सिंह ने 15 जुलाई, 2011 को नई दिल्ली में जारी किए। इन आंकड़ों के अनुसार देश की कुल 121 करोड़ जनसंख्या में 37.7 करोड़ शहरी क्षेत्रों में व शेष 83.3 करोड़ ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। इससे पूर्व 2001 की जनगणना के अनुसार देश में शहरी व ग्रामीण जनसंख्या का वितरण क्रमशः 27.81 प्रतिशत व 72.19 प्रतिशत था। 2001 में देश की कुल जनसंख्या में शहरी व ग्रामीण जनसंख्या जहां क्रमशः 28.61 करोड़ व 74.26 करोड़ थी, इन आंकड़ों के अनुसार 2001–11 के दशक में देश में शहरी जनसंख्या में जहां 9.10 करोड़ की वृद्धि हुई है, ग्रामीण जनसंख्या में वृद्धि 9.05 करोड़ रही है। इस प्रकार 2001–11 के दशक में देश में ग्रामीण जनसंख्या में जहां 12.18 प्रतिशत में वृद्धि 31.8 प्रतिशत रही है।

टिप्पणी

तालिका ग्रामीण तथा शहरी जनसंख्या

जनगणना वर्ष	जनसंख्या (मिलियन में)		कुल जनसंख्या का प्रतिशत	
	ग्रामीण	शहरी	ग्रामीण	शहरी
1901	213	26	89.2	10.8
1911	226	26	89.7	10.3
1921	223	28	88.8	11.2
1931	246	33	88	12
1941	275	44	86.1	13.9
1951	299	62	82.7	17.3
1961	360	79	82	18
1971	439	109	80.1	19.9
1981	524	159	76.7	23.3
1991	629	218	74.3	25.7
2001	743	286	72.2	27.8
2011	833	377	68.8	31.2

ताजा उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार राज्यों में तमिलनाडु में सर्वाधिक 48.5 प्रतिशत जनसंख्या शहरी है। इसके पश्चात् क्रमशः केरल (47.72 प्रतिशत), महाराष्ट्र (45.23 प्रतिशत) व गुजरात (42.58 प्रतिशत) के स्थान इस मामले में हैं।

नई जनसंख्या नीति 2000

केन्द्र सरकार ने अपनी नई जनसंख्या नीति की घोषणा 15 फरवरी, 2000 को कर दी है। नई राष्ट्रीय जनसंख्या नीति–2000 को तीन मुख्य उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में निर्धारित किया गया है। नीति का तात्कालिक (Immediate Objective) आपूरित क्षेत्रों में पर्याप्त मात्रा में गर्भ निरोधकों, स्वास्थ्य सुरक्षा ढांचा व स्वास्थ्य कर्मियों की आपूर्ति करना है जबकि मध्यकालीन उद्देश्य (Medium Term Objective) सन् 2010 तक कुल प्रजननता दर (TFR) को 2:1 के प्रतिस्थापन स्तर (Replacement Level) तक लाना है। नई जनसंख्या नीति का दीर्घकालिक उद्देश्य (Long Term Objective) सन् 2045 तक स्थिर जनसंख्या के लक्ष्य को प्राप्त करना बताया गया है। जनसंख्या को ऐसे स्तर पर स्थिर बनाने की बात कही गई है, जो आर्थिक वृद्धि, सामाजिक विकास तथा पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से अनुरूप हो।

राज्यों का जनसांख्यिकीय परिदृश्य यह स्पष्ट करता है कि केरल, तमिलनाडु और पंजाब सहित 9 राज्य और संघ राज्य क्षेत्र प्रजनन के प्रतिस्थापन दर की स्थिति पर पहुंच गए हैं।

नई जनसंख्या नीति में राज्यों की निर्भय सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए लोक सभा की संरचना को 2001 के पश्चात् 25 वर्षों तक और आगे अपरिवर्तित रखने की घोषणा की गई है। इसके लिए संविधान के अनुच्छेद 84 में पुनः संशोधन करना होगा। इसके मौजूदा प्रावधानों के तहत सन् 2001 तक लोक सभा में राज्यों से सीटों का निर्धारण 1971 की जनसंख्या के आधार पर ही किया गया है। इसी व्यवस्था को सन् 2026 तक बढ़ाने से किसी भी राज्य को इस अवधि में जनसंख्या में होने वाली वृद्धि

का कोई लाभ नहीं मिल सकेगा। इसका तात्पर्य यह है कि लोक सभा में निर्वाचित सीटों की संख्या अब 2027 तक 543 ही बनी रहेगी तथा प्रत्येक राज्य से सीटों की संख्या भी तब तक यथावत् रहेगी।

15 फरवरी, 2000 को केन्द्रीय मंत्रिमण्डल द्वारा अनुमोदित नई जनसंख्या नीति की घोषणा करते हुए केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री ने बताया कि छोटे परिवार (प्रति दम्पती 2 बच्चे) का मानक अपनाने के लिए प्रोत्साहन एवं प्रेरणा प्रदान करने के लिए इसमें 16 उपायों को शामिल किया गया है। इनमें गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वालों को 21 वर्ष की निर्धारित आयु के पश्चात् विवाह करने, दो बच्चों के मानक अपनाने तथा दो बच्चों के पश्चात् नसबंदी करने पर यथोचित पुरस्कार दिए जाने के उपाय शामिल हैं।

वर्ष 2010 तक के लिए राष्ट्रीय जनसंख्या नीति–2000 के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य निर्धारित किए गए थे–

1. TFR को कम करके 2:1 करना।
2. दो बच्चों के मापदण्ड को अपनाने के लिए उच्चकोटि की गर्भ निरोधक सेवाओं को सार्वजनिक तौर पर मुहैया कराना।
3. जन्म, मृत्यु, विवाह और गर्भधारण के पंजीकरण को पूरा कवरेज प्रदान करना।
4. शिशु मृत्यु–दर को कम करके 30 प्रति हजार जीवित नवजात तक ले आना
5. टीकाकरण के द्वारा नियंत्रित किए जाने वाले रोगों से बच्चों का प्रतिरक्षण।
6. मातृ मृत्यु–दर को कम करके 100 प्रति एक लाख जीवित जन्मजात से नीचे लाना।
7. लड़कियों के देरी से विवाह को बढ़ावा देना और प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण तथा प्राथमिक व माध्यमिक स्तरों पर लड़के और लड़कियों दोनों के लिए स्कूल छोड़ देने की दर में कमी करके उसे 20 प्रतिशत से नीचे लाना।

राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग एवं जनसंख्या परिदृश्य

नई जनसंख्या नीति के कार्यान्वयन पर निगरानी रखने व उसकी समीक्षा के लिए 11 मई, 2000 को प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय 100 सदस्यीय 'राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग' (National population commission) का गठन किया गया।

आयोग की पहली बैठक 22 जुलाई, 2000 को नई दिल्ली में सम्पन्न हुई जिसमें जनसंख्या नियंत्रण की परियोजनाओं के वित्तीयन के लिए एक जनसंख्या स्थिरीकरण कोष के गठन की घोषणा की गई।

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के कार्यान्वयन की समीक्षा एवं निगरानी के लिए गठित राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग (National Commission on Population-NCP) का पुनर्गठन तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ0 मनमोहन सिंह ने 19 मई, 2005 को किया था। पुनर्गठन आयोग में भी प्रधानमंत्री स्वयं इस आयोग के अध्यक्ष हैं, जबकि केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं

परिवार कल्याण मंत्री व योजना आयोग के उपाध्यक्ष इसके दो उपाध्यक्ष हैं। यह आयोग अभी तक योजना आयोग के अधीन रहा था, किंतु आगे से इसे स्वास्थ्य मंत्रालय के अधीन रखा गया है।

भारतीय जनगणना के दोष

यद्यपि भारतीय जनगणना के पिछले 120 वर्षों के लम्बे सफर के दौरान उसकी क्रिया पद्धति और विषय व्याप्ति में महत्वपूर्ण सुधार किए गए हैं तथापि इसमें कुछ दोष एवं कठिनाइयां आज भी विद्यमान हैं, जिनका निराकरण करना आवश्यक है। ये दोष निम्न प्रकार हैं–

1. **अपर्याप्त पारिश्रमिक**– उचित पारिश्रमिक किसी भी कार्य–प्रेरणा (Work Incentive) का आधार होता है। भारत में प्रगणना–कार्य अधिकतर स्कूल अध्यापकों, लेखपालों व छोटे स्तर के सरकारी कर्मचारियों द्वारा कराया जाता है। इन्हें न तो पर्याप्त प्रशिक्षण दिया जाता है और न ही उचित पारिश्रमिक दिया जाता है। सन् 1961 के पूर्व यह कार्य एक तरीके से मुफ्त लिया जाता था। सन् 1961 में पहली बार एक प्रगणक को 24 रुपये सन् 1971 में 40 रुपये, सन् 1981 में 100 रुपये और 1991 में 325 रुपये का भुगतान किया गया। सच तो यह है कि उचित पारिश्रमिक के अभाव में उत्तरदायित्व, कुशलता व तत्परता का बनाए रखना न तो संभव है और न इसकी आशा की जानी चाहिए।
2. **व्यावसायिक वर्गीकरण में एकरूपता की कमी**– व्यवसाय के अनुसार वर्गीकरण किसी भी जनगणना का सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा होता है क्योंकि यह कार्यशील जनसंख्या के प्रारूप और रोजगार दशाओं को प्रतिबिम्बित करता है परंतु भारत की पिछली सात जनगणनाओं में व्यावसायिक वर्गीकरण के आधार, वर्गों की संख्या और उनके निर्वचन आदि के मामले में काफी असमानता रही है।
3. **जनता की उदासीनता**– सूचना देने वाले व्यक्तियों द्वारा प्रायः उदासीनता के कारण प्रश्नों के उत्तर बिना सोचे–समझे ही दिए जाते हैं अथवा दिए ही नहीं जाते। बहुत–से लोग इन सब बातों को व्यर्थ का प्रपंच मानते हैं और यह सोचते हैं कि हम अपने बारे में किसी को सूचना क्यों दें? संसूचकों की उदासीनता के मुख्य कारण उनकी अज्ञानता, झूठी आशंकाएं, करारोपण का डर, परिवार–नियोजन, आय का असमान वितरण व साम्प्रदायिकता हैं।
4. **तुलनीयता का अभाव**– पिछली जनगणनाओं में प्रयुक्त अवधारणाओं (Concepts), भौगोलिक व्याप्ति (Geographical Coverage) तथा समंकों के वर्गीकरण एवं सारणीयन के आधार (Basis) भिन्न–भिन्न रहे हैं जिसके कारण उनमें तुलनीयता का अभाव बना रहा। उदाहरण के तौर पर, पिछली पांच जनगणनाओं में जनगणना मकान, भवन तथा परिवार शब्द की परिभाषा अलग–अलग ढंग से ही की गई है। फिर प्रत्येक जनगणना की व्यक्तिगत पर्ची में पूछे जाने वाले प्रश्नों में भी अंतर रहा है। 1961 की जनगणना में 13 प्रश्न पूछे गए थे, 1971 में 17 प्रश्न, 1981 में 22 प्रश्न, 1991 में 23 प्रश्न और 2001 में 23 प्रश्न शामिल किए गए। साक्षरता दर का आगणन करने हेतु कभी 0–4 वर्ष आयु

वर्ग तो कभी 0–6 आयु वर्ग को आधार माना गया। किसी जनगणना में असम राज्य को छोड़ दिया गया तो अगली जनगणना में जम्मू–कश्मीर बाहर हो गया।

5. **प्रगणकों का प्रशिक्षण**– जनगणना की परिशुद्धता मूल रूप से प्रगणकों की कुशलता पर निर्भर करती है क्योंकि जनगणना के ये आधार स्तम्भ हैं। प्रगणकों में ऐसे लोगों की संख्या अधिक होती है जिन्हें इस काम में न तो कोई रुचि होती है और न उन्हें पर्याप्त प्रशिक्षण दिया जाता है। फलस्वरूप परिणाम अशुद्ध निकलते हैं।

6. **जनगणना विभ्रम**– भारतीय जनगणना में दो प्रकार के विभ्रम या त्रुटियां पाई जाती हैं–व्याप्ति विभ्रम (Coverage Errors) तथा विषय–सामग्री विभ्रम (Content Errors)। 1951 की जनगणना में अल्प–प्रगणन विभ्रम (Uder Enumeration Error) 11 प्रति हजार थी, 1961 में 7 प्रति हजार, 1971 में 1.7 प्रति हजार, 1981 में 1.8 प्रति हजार तथा 1991 में 2.2 प्रति हजार थी। ये विभ्रम मूलतः अशुद्ध सूचनाओं का परिणाम होते हैं जिसके लिए एक तरफ संसूचकों (Informants) की अज्ञानता, अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता व मनोवैज्ञानिक धारणाएं तो दूसरी तरफ प्रगणकों की अभिनति (Bias) तथा उदासीनता जिम्मेदार हैं।

आवश्यक सुझाव

उपरोक्त दोषों को दूर करने के यथासंभव प्रयास किए गए हैं। अगली जनगणनाओं में सुधार की दृष्टि से कुछ आवश्यक सुझाव दिए जा रहे हैं–

1. **प्रगणकों की नियुक्ति एवं प्रशिक्षण**– प्रगणकों एवं गणना–निरीक्षकों की नियुक्ति स्थायी रूप में होनी चाहिए और उनके प्रशिक्षण पर विशेष बल दिया जाना चाहिए। उन्हें पर्याप्त पारिश्रमिक का भुगतान भी होना चाहिए। इससे वे लगन, निष्ठा और तत्परता के साथ कार्य कर सके।

2. **अंतर्राष्ट्रीय तुलनीयता**– जनसंख्या समंकों में तुलनीयता विशेष रूप से अंतर्राष्ट्रीय तुलनीयता बनाए रखने के लिए पारिभाषिक शब्दों में एकरूपता रहनी चाहिए और अंतर्राष्ट्रीय मानक व्यावसायिक औद्योगिक वर्गीकरण को आधार बनाया जाना चाहिए।

3. **स्त्री प्रगणक**– पर्दानशीन तथा निरक्षर स्त्रियों से पूछताछ के लिए पुरुषों के बजाय स्त्री प्रगणकों की नियुक्ति की जानी चाहिए।

4. **जनसहयोग**– जनता का पूर्ण सहयोग प्राप्त हो सके, इसके लिए आवश्यक है कि निरन्तर प्रचार व प्रसारण द्वारा जन–जागृति लाई जाए और जनसम्पर्क को बढ़ावा दिया जाए। विशेष रूप से, जनजागरण–कार्य से कुछ समय पूर्व जनता के सुझाव आमन्त्रित किए जाने चाहिए, ताकि आम आदमी उससे जुड़ सके। फिर प्रगणना–कार्य में गैर–सरकारी संस्थाओं का सहयोग लेने से भी जन–सहयोग को बढ़ावा मिलता है।

5. **शीघ्र प्रकाशन**– जनगणना के परिणामों का प्रकाशन विस्तृत रूप में तथा शीघ्र होना चाहिए जिससे कि जनता अपने और अपने राष्ट्र के प्रति सामयिक जानकारी तुरन्त प्राप्त कर सके।

6. **योजनाओं का स्थायी अंग**– जनसंख्या की तीव्र वृद्धि भारत की प्रमुख समस्या है। अतः जनसंख्या नियन्त्रण अथवा परिवार नियोजन कार्यक्रम की प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए प्रजननशीलता (Fertility) तथा प्रजनन संबंधी सूचना को जनजागरण में शामिल करना बहुत जरूरी है। अतः जनगणना जैसे महत्वपूर्ण कार्य को योजनाओं का स्थायी अंग बना दिया जाना चाहिए।
7. **जनगणना शोध**– जनगणना एक अत्यन्त व्यापक तथा महत्वूपर्ण कार्य है। इसके उच्च स्तरीय अध्ययन के लिए जनगणना शोध अनुभाग (Census Research Division) की स्थापना की जानी चाहिए।
8. **पूर्व परीक्षण**– मूल जनगणना कार्य से पहले प्रश्नों का पूर्व–परीक्षण होना जरूरी है, ताकि संसूचकों की उन प्रश्नों के बारे में प्रतिक्रिया ज्ञात हो सके। इस क्रिया से प्रगणन–विभ्रम में कमी आती है।
9. **समंक विधयन**– समंकों के विधायन के लिए यान्त्रिक सारणीयन तथा कम्प्यूटर प्रणाली का प्रयोग किया जाना चाहिए, ताकि जनगणना परिणामों का शीघ्र विश्लेषण एवं प्रकाशन किया जा सके। प्रसन्नता की बात है कि 2001 की जनगणना में समंक विधायन का कार्य कम्प्यूटर प्रणाली द्वारा सम्पन्न किया गया है।

5.2.5 राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (National Sample Survey Organisation (NSSO)) भारत सरकार के सांख्यिकी मंत्रालय के अधीन एक संगठन है। अब इसका नाम 'राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण कार्यालय' (National Sample Survey Office) हो गया है। यह भारत का सामाजिक–आर्थिक सर्वेक्षण करने वाला सबसे बड़ा संगठन है। इसकी स्थापना 1958 में की गयी थी। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (NSSO) सामाजिक आर्थिक सर्वेक्षण करता है तथा उद्योगों के वार्षिक सर्वेक्षण के लिए कार्य क्षेत्र और आर्थिक जनगणना के अनुवर्ती सर्वेक्षण करता है।

एनएसएस (NSS) एक सर्वेक्षण करने का संस्थान है। यह एक ऐसा संस्थान है, जो मुख्य रूप से महानिदेशक की अध्यक्षता में अखिल भारतीय आधार पर विभिन्न क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर नमूना सर्वेक्षण का संचालन करता है। इसके साथ ही इसी सर्वेक्षण के माध्यम से विभिन्न सामाजिक–आर्थिक विषयों, एनुअल सर्वे ऑफ इंडस्ट्रीज (एएसआई) आदि पर डेटा एकत्र करने का काम संपन्न किया जाता है। इसके अलावा, एनएसएसओ ग्रामीण और शहरी कीमतों पर भी डेटा एकत्र करने का काम करता है और साथ ही फसल आंकड़ों में सुधार लाने का प्रयास करता है।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (एनएसएस) विकासशील देशों में सबसे पुराने और कार्यरत घरेलू नमूना सर्वेक्षणों में से एक है। भारत की प्रमुख आंकड़े संग्रह एजेंसी, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (NSSO) द्वारा नियमित रूप से सर्वेक्षण किया जाता है। 1972 से, NSSO भारत सरकार के सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय (GOI) के अधीन आ गया है।

एनएसएस की भूमिका को भारतीय आर्थिक विकास के व्यापक संदर्भ में देख सकते हैं। स्वतंत्रता के समय और अपने अधिकांश प्रारंभिक विकास के माध्यम से, देश

को एक निर्वाह उत्पादन संरचना (मुख्य रूप से कृषि में) का सामना करना पड़ा, जिसमें बड़े पैमाने पर गरीबी और भूख थी। गरीबी की सीमा, परिमाण और प्रतिरूप के साथ–साथ घरेलू उपभोग प्रतिरूप और प्रवृत्तियों पर व्यवस्थित आंकड़े, सूचित नीति हस्तक्षेपों के लिए आसानी से उपलब्ध नहीं थे। इसका समाधान करने के लिए, भारत सरकार ने घरेलू संरचना, उपभोग और उत्पादन पर राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिनिधि जानकारी एकत्र करने के लिए एनएसएस की शुरुआत की।

पहला एनएसएस सर्वेक्षण 1950–1951 में आयोजित किया गया था और इसमें ग्राम स्तर पर भूमि उपयोग, आवश्यक वस्तुओं की कीमतों और कुशल व अकुशल मजदूरों की दैनिक मजदूरी की जानकारी शामिल थी। घरेलू स्तर पर, जनसांख्यिकीय विशेषताओं के साथ–साथ भूमि के स्वामित्व, खेती और उपयोग पर डेटा प्राप्त किया गया था। इसके अलावा, नमूना किए गए घरों के एक सबसेट से मासिक और साप्ताहिक खपत के साथ–साथ उद्यमशीलता की गतिविधियों पर विस्तृत डेटा एकत्र किया गया था। पहला दौर कुल 560,000 में से केवल 1,833 गांवों के यादृच्छिक नमूनों पर आधारित था।

सर्वेक्षणों में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। अलग–अलग सूचनाओं की अधिक बढ़ती मांग के साथ, नमूने के आकार में काफी विस्तार हुआ है, पहले सर्वेक्षण में 1,833 गांवों से 14,000 से अधिक ग्रामीण गांवों और शहरी ब्लॉकों में सर्वेक्षण हुआ। हाल के सर्वेक्षण में नमूना आकार में बड़ी वृद्धि के साथ, एक निर्णय लिया गया (1973–1974 के दौर से शुरुआत) सर्वेक्षण को दो भागों में विभाजित कियागया। पहला परिवारों के एक बड़े नमूने पर लगभग पांच साल के अंतराल पर किए गए पंचवर्षीय सर्वेक्षण (लगभग 120,000)) और दूसरा नमूनों (नमूनों का लगभग 35 से 40 प्रतिशत) पर बीच की अवधि के दौरान किए गए सर्वेक्षण। नमूना आकार का विस्तार, विशेष रूप से उपभोग व्यय और रोजगार पर आंकड़ों के संग्रह के लिए, एनएसएस अनुमानों को राज्य से नीचे (लेकिन जिला नहीं) के स्तर पर प्रतिनिधि होने की अनुमति दी गई है। क्षेत्रों के स्तर पर एनएसएसओ प्रतिनिधि हैं– मोटे तौर पर समान कृषि–जलवायु परिस्थितियों के आधार पर कई जिलों के संग्रह को एक साथ समूहीकृत किया गया है। क्षेत्र प्रशासनिक इकाइयां नहीं हैं। एनएसएस ने देश में कुल 78 क्षेत्रों को चित्रित किया है।

एनएसएस का क्षेत्र अलग–अलग सर्वेक्षण में अलग–अलग होता है। प्रत्येक सर्वेक्षण में हमेशा उपभोग और रोजगार के बारे में जानकारी प्राप्त होती है; हालांकि, सर्वेक्षण में अतिरिक्त मॉड्यूल के रूप में स्वास्थ्य, स्कूली शिक्षा, या विकलांगता जैसे अन्य विषयों को भी शामिल किया गया है। इस प्रकार, उदाहरण के लिए, 58वें सर्वेक्षण में विकलांगता, आवास की स्थिति, गाँव की सुविधाओं और शहरी मलिन बस्तियों पर ध्यान केंद्रित किया गया, जबकि 60वें सर्वेक्षण में रुग्णता, स्वास्थ्य देखभाल और बुजुर्गों की स्थिति को कवर किया गया। अपनी स्थापना के बाद से, एनएसएस ने अपने सर्वेक्षणों में लगभग पचास अलग–अलग विषयों को शामिल किया है, जैसे कि घरेलू ऋण और निवेश, साक्षरता और संस्कृति, स्वास्थ्य, स्कूली शिक्षा और गांव–स्तरीय बुनियादी ढांचा।

1998 तक एनएसएस (NSS) से यूनिट रिकॉर्ड आंकड़े जनता के लिए उपलब्ध नहीं था। इसने शोधकर्ताओं द्वारा सर्वेक्षणों के व्यापक उपयोग को काफी सीमित कर दिया। वास्तव में, केवल कुछ अध्ययन एनएसएस आंकड़े पर आधारित थे, जिनमें गरीबी और बेरोजगारी की माप और मूल्य सूचकांकों का निर्माण शामिल है।

एनएसएस ने कभी–कभी अपनी आंकड़े संग्रह पद्धति को बीच में बदल भी दिया है, और इसने समय के साथ एनएसएस अनुमानों की तुलना को प्रभावित किया है। यह विशेष रूप से 55वें सर्वेक्षण का मामला था, जब एनएसएस ने कुछ प्रकार के उपभोग व्यय के लिए एक अलग रिपोर्टिंग अवधि को अपनाया, उस सर्वेक्षण से उपभोग और गरीबी के अनुमानों को पहले की अवधि से अतुलनीयता प्रदान की गई।

केंद्रीय सांख्यिकी और कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय (Ministry of Statistics and Programme Implementation) के राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय (National Statistical Office– NSO) ने राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (National Sample Survey– NSS) के 76वें सर्वेक्षण के रूप में देश में पेयजल, साफ सफाई और स्वच्छता की स्थिति पर एक सर्वेक्षण कराया।

उद्देश्य

राष्ट्रीय सर्वेक्षण नमूने के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

- इस सर्वेक्षण का मूल उद्देश्य परिवारों को उपलब्ध पेयजल, स्वच्छता और आवास सुविधाओं तथा घरों के आसपास उपलब्ध वातावरण की जानकारी जुटाना था जो लोगों के लिये गुणवत्ता युक्त रहन सहन की स्थितियां सुनिश्चित करती हैं।
- जिन महत्वपूर्ण तथ्यों के आधार पर ये जानकारियां जुटाई गईं उनमें आवासीय इकाइयों के प्रकार (अलग मकान, फ्लैट आदि) हैं। ऐसी इकाइयों के मालिकाना हक का प्रकार, आवासीय इकाइयों का ढांचा (जैसे– पक्का, कच्चा–पक्का या कच्चा) आवासीय इकाइयों की स्थिति, आवासीय इकाइयों का धरातल क्षेत्र, उनके निर्माण का समय, ऐसी इकाइयों में पेयजल, बाथरूम आदि की सुविधा तथा ऐसी इकाइयों के आसपास जल निकासी, कचरे और गंदे जल के निस्तारण की सुविधा आदि शामिल हैं।

आंकड़ों का आधार

2018 में जारी NSS के 76वें सर्वेक्षण में पेयजल, साफ–सफाई, स्वच्छता और आवास की स्थिति प्रतिभागियों के पूर्वाग्रह से ग्रस्त होने की बात को स्वीकार किया गया है।

- इसका अर्थ हुआ कि जब यह सवाल किसी परिवार से पूछा जाता है कि क्या उसे सरकार की ओर से कभी भी कोई लाभ प्राप्त हुआ है, तो वह परिवार अपने यहां शौचालय या एलपीजी सिलेंडर होने की बात को इस उम्मीद में स्वीकार नहीं करता है कि उसे सरकार की ओर से अतिरिक्त लाभ प्राप्त होंगे।
- संभवतः इसी पूर्वाग्रह की वजह से स्वच्छता क्षेत्र के वास्तविकता से काफी कम होने की जानकारियां प्राप्त होती हैं।

- विभिन्न परिवारों के इस तरह के पूर्वाग्रह से ग्रस्त होने का तथ्य अक्सर तब सामने आता है जब सरकार द्वारा कार्यान्वित व वित्तपोषित लाभार्थी योजनाओं से जुड़ी चीजों और मुद्दों के बारे में उनसे पूछा जाता है।

सरकार द्वारा खण्डन

किसी अहम सवाल से जुड़ी इस तरह की सीमा को स्वीकार करते हुए NSS (राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण) की रिपोर्ट में स्वयं एक अस्वीकरण जारी किया गया है– ''NSS के 76वें दौर के सर्वेक्षण में 'पेयजल, स्वच्छता, आवास, विद्युतीकरण और एलपीजी कनेक्शन की सुविधाओं से जुड़ी सरकारी योजनाओं से परिवारों को प्राप्त लाभ' पर विभिन्न सूचनाओं का संकलन पहली बार किया गया।

- प्रतिभागी इस उम्मीद में नकारात्मक उत्तर देता है कि सरकारी सुविधाएं न मिलने या उन तक पहुंच न होने की बात कहने पर उन्हें सरकारी योजनाओं के ज़रिये अतिरिक्त लाभ प्राप्त होने में मदद मिल सकती है।
- विभिन्न सरकारी योजनाओं से लोगों को प्राप्त लाभों और संबंधित सुविधाओँ तक लोगों की पहुंच होने से जुड़े निष्कर्षों की व्याख्या करते वक्त इन बिंदुओं को ध्यान में रखा जाएगा।''

सांख्यिकी एवं कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय और जल शक्ति मंत्रालय के पेयजल एवं स्वच्छता विभाग ने यह बात दोहराई है कि इस सीमा के कारण भारत में स्वच्छता की स्थिति के बारे में निष्कर्ष निकालने के लिये इस रिपोर्ट के परिणामों या निष्कर्षों का उपयोग करना सही नहीं है।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के विभाग

NSS के प्रमुख रूप से चार विभाग होते हैं, जो इस प्रकार से हैं–

(क) **फील्ड ऑपरेशंस डिवीजन (FOD)**: इसका मुख्यालय दिल्ली/फरीदाबाद में स्थित है। यह डिवीजन छह क्षेत्रीय कार्यालयों, 49 क्षेत्रीय कार्यालयों और 118 उप–क्षेत्रीय कार्यालयों का एक नेटवर्क माना जाता है, जो मुख्य रूप से सर्वेक्षणों के प्राथमिक आंकड़ों का संग्रह करता है।

(ख) **सर्वेक्षण डिजाइन और अनुसंधान प्रभाग (SDRD)**: सर्वेक्षण डिजाइन और अनुसंधान प्रभाग का कार्यालय कोलकाता में स्थित है। एसडीआरडी प्रभाग, सर्वेक्षणों की तकनीकी योजना, अवधारणाओं और परिभाषाओं के निरूपण, नमूना डिजाइन, जांच अनुसूचियों के डिजाइन, सारणीयन योजना की रूपरेखा, विश्लेषण और सर्वेक्षण परिणामों की प्रस्तुति करने की जिम्मेदारी बखूबी निभाता है।

(ग) **डेटा प्रोसेसिंग डिवीजन (DPD)**: इसका मुख्यालय कोलकाता में स्थित है, जो अपने विभिन्न स्थानों पर 6 अन्य डेटा प्रोसेसिंग केंद्रों के साथ, सर्वेक्षण के माध्यम से एकत्र किए गए डेटा के नमूना चयन, सॉफ्टवेयर विकास, प्रसंस्करण, सत्यापन और सारणीकरण बनाने का काम करता है।

(घ) **समन्वय और प्रकाशन प्रभाग (CPD)**: इसका मुख्यालय नई दिल्ली में स्थित है, जो प्रमुख रूप से NSS के कई प्रभागों की सभी गतिविधियों का

समन्वय करता है। इसके साथ ही इसे एनएसएसओ की द्वि–वार्षिक पत्रिका भी निकालने की जिम्मेदारी सौंपी गई है, जिसका शीर्षक "सर्वेक्षण" है। इसके अलावा यह एनएसएसओ द्वारा किए गए विभिन्न सामाजिक–आर्थिक सर्वेक्षणों के परिणामों पर राष्ट्रीय सेमिनार का आयोजन करता है।

एनएसएसओ (NSSO) क्षेत्र की निगरानी और राज्य एजेंसियों के फसल आकलन सर्वेक्षण के जरिये शहरी क्षेत्रों में नमूना सर्वेक्षण में उपयोग के लिए शहरी क्षेत्र इकाइयों का पूरा एक ढांचा तैयार रखता है। इसलिए इसे एक महत्वपूर्ण सर्वेक्षण कहा जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. द्वितीयक स्रोत को हम कितने भागों में विभाजित कर सकते हैं?

   (क) 4 (ख) 3

   (ग) 2 (घ) 5

2. दुर्खीम ने कितने प्रकार की आत्महत्याओं को परिभाषित किया है?

   (क) 3 (ख) 4

   (ग) 5 (घ) 6

5.3 त्रिकोणीय सर्वेक्षण : गुणात्मक और मात्रात्मक पद्धति का मिश्रण

त्रिकोणीय सर्वेक्षण गुणात्मक और मात्रात्मक पद्धति का मिश्रण है। त्रिकोणीय सर्वेक्षण से तात्पर्य गुणात्मक अनुसंधान में कई तरीकों या डेटा स्रोतों के उपयोग से होता है ताकि घटना की व्यापक समझ विकसित हो सके। विभिन्न स्रोतों से जानकारी के अभिसरण के माध्यम से वैधता का परीक्षण करने के लिए त्रिकोणीय सर्वेक्षण (Triangulation) गुणात्मक शोध रणनीति के रूप में भी प्रयोग किया गया है। यह उस विधि को कहा जाता है, जिसमें सर्वेक्षण के लिए दिए गए क्षेत्र को त्रिकोणीय टुकड़ों के जाल के रूप में बांटकर सर्वेक्षण को सरलतापूर्वक कर लिया जाता है। इसका सिद्धांत बहुत सरल है। ज्ञात दूरी पर स्थित किन्हीं भी दो बिंदुओं से किसी तीसरे बिंदु द्वारा बनाए गए कोणों को मापकर त्रिकोणमित्तीय सर्वसमिकाओं की सहायता से उस तीसरे बिंदु की सही स्थिति निर्धारित की जा सकती है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें दूरी का मापन कम से कम करना पड़ता है और कोणों के मापन से काम चल जाता है। कोणों का मापन अधिक शुद्धता से, कम समय में, कम मेहनत से हो जाता है। सामान्यतः जहां दो दूर के बिंदुओं के बीच सीधी दूरी नाप पाना संभव न हो, मगर वे आपस में दृष्टिगत हों, वहां त्रिकोणीय सर्वेक्षण बड़ा लाभप्रद होता है।

कोहेन ने त्रिकोणीय सर्वेक्षण को "एक से अधिक दृष्टिकोण से अध्ययन करके मान व्यवहार की समृद्धि और जटिलता को पूरी तरह से बाहर करने या अधिक स्पष्ट रूप से व्याख्या करने के प्रयास के रूप में परिभाषित किया है।"

शोध विधि वह रीति है, जो वर्तमान एवं अतीत की घटनाओं को उनके सही दृष्टिकोण एवं आयामों में प्रस्तुत करने का प्रयास करती है। यह हमारी इस बात में सहायता करती है कि इतिहास में लेखन कैसे किया जाए? ऐतिहासिक तथ्यों की प्रकृति के कारण यह एक कठिन कार्य है। चूंकि इतिहास विज्ञान एवं कला दोनों क्षेत्रों से संबंधित विषय है, इसलिए इसके लेखन में प्रयुक्त विधि अन्य सभी विषयों में प्रयुक्त होने वाली विधियों से भिन्न होती है। इतिहास में पूर्ण वस्तुनिष्ठता की स्थापना लगभग असंभव है, ऐसी स्थिति में अतीत की घटनाओं का अधिक से अधिक यथार्थ वर्णन किए जाने का प्रयास होना चाहिए। इस कार्य के लिए अपेक्षित है कि उपलब्ध स्रोतों का अत्यंत सावधानीपूर्वक उपयोग किया जाए तथा आंकड़ों की अधिकाधिक सत्यता सुनिश्चित की जाए। इसके अतिरिक्त विषय–वस्तु का आलोचनात्मक मूल्यांकन, लेखक का सत्य उद्देश्य तथा धीरे–धीरे विषय की गहराई में जाने से ऐतिहासिक सत्यता की प्राप्ति होती है। ऐतिहासिक तथ्यों की विवेचना में भ्रांतियों एवं कल्पनाओं की समस्या सामने आती है। किंतु इससे बचने के लिए इतिहासकार को तर्क, संतुलित रुख, दूरदर्शिता एवं विश्लेषणात्मक रुख अपनाना चाहिए।

5.3.1 मात्रात्मक एवं गुणात्मक शोध

मात्रात्मक शोध आंकड़ों पर आधारित होता है और गुणात्मक शोध गुणों पर। शोध के इन गुणों का विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार से है–

मात्रात्मक शोध

गिवन के अनुसार, "समाजशास्त्र में, मात्रात्मक शोध से अभिप्राय है सामाजिक तथ्य का सांख्यिकीय, गणितीय अथवा मात्रात्मक आंकड़ों या गणनात्मक तकनीकों से व्यवस्थित अनुभवजन्य अन्वेषण।"

बिजनेस डिक्शनरी के अनुसार, "प्रतिचयन तकनीकों, जैसे सर्वेक्षण आदि के प्रयोग से जिस शोध के परिणामों को मात्रात्मक रूप से प्रदर्शित किया जाए और जो गणितीय व्यवहार कौशल की अनुपालना करता हो तथा शोधकर्ता को भविष्य की घटनाओं अथवा मात्राओं के विषय में अनुमान लगाने के योग्य बनाए, उसे मात्रात्मक शोध कहते हैं।"

मात्रात्मक शोध की विशेषताएं

मात्रात्मक शोध की विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

- **मात्रात्मक सूचनाओं का प्रयोग**– मात्रात्मक शोध में मात्रात्मक सूचनाओं अर्थात संख्यात्मक आंकड़ों का प्रयोग होता है। यही आंकड़े शोध समस्या के संबंध में शोधकर्ता को जानकारी देते हैं एवं शोधकर्ता इन आंकड़ों पर सांख्यिकीय तकनीकों का प्रयोग करके शोध के परिणाम निकालता है।
- **सांख्यिकीय तकनीकों का प्रयोग**– मात्रात्मक शोध में आंकड़ों का विश्लेषण शोधकर्ता के विवेक के आधार पर नहीं होता, विश्लेषण सांख्यिकीय तकनीकों की मदद से किया जाता है। सांख्यिकीय तकनीक का चयन आंकड़ों की मात्रा एवं विशेषताओं पर निर्भर करता है।
- **परिकल्पना का परीक्षण**– हालांकि मात्रात्मक शोध में परिकल्पना का परीक्षण किया जाना अनिवार्य नहीं है, परंतु जब मात्रात्मक शोध प्रयोगात्मक रूप ले लेता

है तब परिकल्पना का प्रयोग अनिवार्य हो जाता है। परिकल्पना का परीक्षण वर्णनात्मक शोध में भी किया जाता है।

- **व्यापकीकरण संभव**– मात्रात्मक विधि से शोध परिणाम एक निष्कर्ष के रूप में सामने आते हैं जो किसी विशेष वर्ग के उत्तरदाताओं/जनसंख्या या समग्र की विशेषताओं का वर्णन करते हैं। इन परिणामों (प्रतिचयन) के आधार पर संपूर्ण जनसंख्या अथवा समग्र पर इनका व्यापकीकरण अथवा सामान्यीकरण किया जा सकता है।
- **मुख्यतया निष्कर्षात्मक शोध**– मात्रात्मक शोध मुख्यतया निष्कर्षात्मक (वर्णनात्मक) शोध होता है जिसमें किसी विषय के बारे में नए आयामों का अध्ययन नहीं किया जाता अपितु ऐसे चरों की विशेषताओं एवं परस्पर संबंधों का वर्णन किया जाता है जिन पर पहले से ही अन्वेषात्मक अध्ययन हो चुका हो।
- **सुव्यवस्थित शोध प्रारूप**– मात्रात्मक शोध का शोध प्रारूप सुव्यवस्थित होता है। इसमें शोधकर्ता यह प्रयास करता है कि वह प्रश्नावली, अनुसूची अथवा साक्षात्कार का इस प्रकार निर्माण करे, उत्तरदाता उसे प्रश्नों के उत्तर ऐसे ढंग से दे कि उसे सीधे–सीधे मात्रात्मक आंकड़े मिल जाएं। इसके लिए उस प्रश्नावली में विभिन्न प्रकार के पैमानों का भी प्रयोग किया जाता है।
- **भावी प्रवृत्तियों का पूर्वानुमान**– मात्रात्मक शोध सांख्यिकीय विधियों की सहायता से भावी प्रवृत्तियों का पूर्वानुमान एवं भविष्यवाणी करता है। ये भविष्यवाणी कारणात्मक शोध में बहुत अधिक महत्व रखती है जहां यह पूर्वानुमान लगाया जाता है कि किसी एक तत्व का परिवर्तन दूसरे तत्व में कितना परिवर्तन लाएगा।

मात्रात्मक शोध की विधियां

मात्रात्मक शोध की विधियों को मुख्यतया तीन आधारों पर विभाजित किया जा सकता है–

1. **विश्लेषण/शोध संरचना के आधार पर** : शोध संरचना के आधार पर मात्रात्मक विधियों के चार प्रकार हैं– वर्णनात्मक, सह संबंधात्मक, कारणात्मक – तुलनात्मक एवं प्रयोगात्मक।
2. **आंकड़ों के संकलन के आधार पर** : आंकड़ों के संकलन के आधार पर मात्रात्मक शोध को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है – सर्वेक्षण विधि पर आधारित (प्रधान/प्राथमिक आंकड़े), कार्यालय शोध पर आधारित (गौण आंकड़े)।
3. **समय के आधार पर** : अनुप्रस्थ काट एवं अधोमुखी/निदानात्मक शोध।

विश्लेषण/शोध संरचना के आधार पर मात्रात्मक शोध

1. **वर्णनात्मक** : वर्णनात्मक शोध किसी अध्ययन में विषयों के वर्तमान स्तर से संबंधित प्रश्नों के उत्तर जानने अथवा परिकल्पना का परीक्षण करने के लिए आंकड़ों के संकलन को समाहित करता है। यह इस बात को निर्धारित करता है एवं बताता है कि चीजें कैसी एवं किस रूप में हैं।
2. **सह–संबंधात्मक** : सह संबंधात्मक शोध यह निर्धारित करने का प्रयत्न करता है कि दो या दो से अधिक मात्रात्मक चरों के बीच सह संबंधात्मक संबंध है

अथवा नहीं एवं उसका परिमाण क्या है। यह संबंध सह संबंध गुणांक के रूप में प्रदर्शित किया जाता है जिसका मूल्य .00 एवं 1.00 के बीच में होता है।

3. **कारणात्मक–तुलनात्मक** : कारणात्मक– तुलनात्मक शोध कारण–प्रभाव संबंध को स्थापित करता है। यह सम्बन्धों की तुलना करता है परंतु इसमें कारण को परिवर्तित नहीं किया जाता। अर्थात यह प्रयोगात्मक शोध से भिन्न है जिसमें स्वतंत्र चर में परिवर्तन कर उसकी जांच आश्रित चर पर की जाती है।

4. **प्रयोगात्मक** : प्रयोगात्मक शोध कारण–प्रभाव के संबंध को स्थापित करता है परंतु इसमें कारण (स्वतंत्र चर) में परिवर्तन करके उसके आश्रित चर पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। प्रयोगात्मक शोध के तीन प्रकार बहुत प्रचलित हैं:

1. **प्रयोग से पहले एवं बाद में बिना नियंत्रण समूह के** : यह प्रयोगात्मक शोध की सबसे प्रचलित विधि है। इसमें आश्रित चर का मापन स्वतंत्र चर को लागू करने से पहले भी किया जाता है और बाद में भी। फिर पहले और बाद के मापन का अंतर ज्ञात करके निर्धारित सार्थकता के स्तर पर उसकी जांच की जाती है एवं यह पता लगाया जाता है कि अंतर सार्थक है अथवा नहीं। इसे निम्न चित्र के माध्यम से दर्शाया जा सकता है–

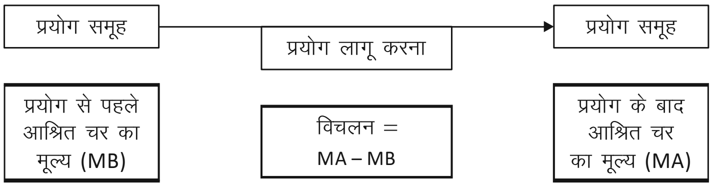

चित्र प्रयोग से पहले चर लागू करना

MA = Measurement after Treatment

MB = Measurement before Treatment

2. **केवल प्रयोग के बाद एवं नियंत्रण समूह के साथः** इस प्रकार के प्रयोगात्मक प्रारूप में दो समूह होते हैं – एक जांच समूह एवं दूसरा नियंत्रण समूह। जांच समूह वह है जिस पर प्रयोग किया जाता है अर्थात स्वतंत्र चर को लागू किया जाता है एवं नियंत्रण समूह वह है जिस पर प्रयोग नहीं किया जाता और उसे तुलनात्मक अध्ययन के लिए रखा जाता है। प्रयोग केवल जांच समूह पर लागू किया जाता है एवं प्रयोग के बाद दोनों में आश्रित चर का मापन करके विचलन निकाला जाता है।

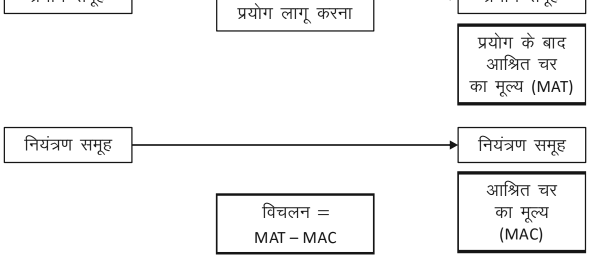

चित्र प्रयोग के बाद विचलन निकालना

MAT = Measurement After (Test Group)

MAC = Measurement After (Control Group)

3. **प्रयोग के बाद भी एवं पहले भी नियंत्रण समूह के साथ :** इस प्रकार के प्रयोगात्मक प्रारूप में भी दो समूह होते हैं – एक जांच समूह एवं दूसरा नियंत्रण समूह। परंतु इसमें स्वतंत्र चर का मापन प्रयोग से पहले भी किया जाता है और प्रयोग के बाद भी। इसके बाद शुद्ध विचलन ज्ञात करने के लिए जांच समूह के बाद एवं पहले के विचलन में से नियंत्रण समूह के बाद एवं पहले के विचलन को घटाया जाता है। इसे हम निम्न चित्र के माध्यम से सरलता से समझ सकते हैं:

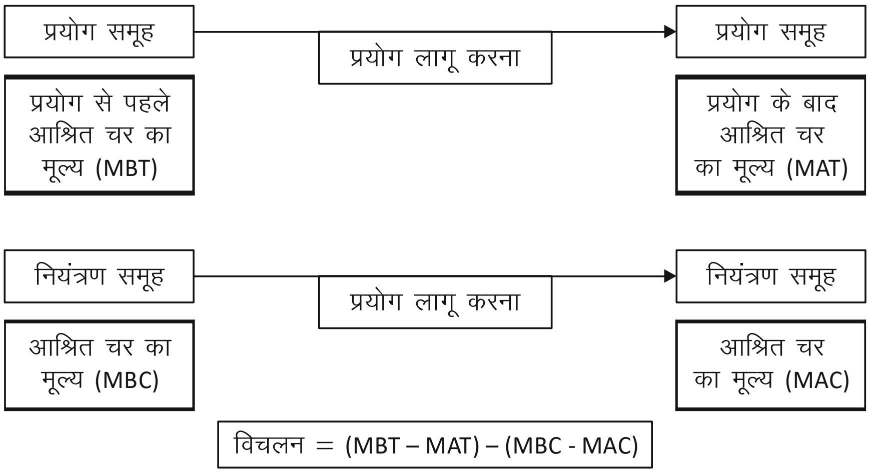

चित्र प्रयोग के बाद और प्रयोग से पहले चर का मापन

MBT = Measurement Before (Test Group)

MBC = Measurement Before (Control Group)

MAT = Measurement After (Test Group)

MAC = Measurement After (Control Group)

सर्वेक्षण विधि : सर्वेक्षण विधि मात्रात्मक शोध की सबसे प्रचलित विधि है। इस विधि में आंकड़ों का संकलन सर्वेक्षण द्वारा किया जाता है। सर्वेक्षण का अर्थ है प्रश्नावली, अनुसूची या साक्षात्कार द्वारा आंकड़ों का संकलन उत्तरदाता के क्षेत्र में जाकर/उत्तरदाता के पास जाकर करना। आजकल प्राथमिक आंकड़ों के संकलन की विधियों जैसे दूरभाष से साक्षात्कार एवं इंटरनेट की मदद से प्रश्नावली भेजी एवं भरवाई जाती है। इन्हें सर्वेक्षण की नई तकनीकें भी कहा जा सकता है जिनके लिए शोधकर्ता या शोध दल के सदस्य का क्षेत्र में जाना आवश्यक नहीं है।

सर्वेक्षण विधि की निम्न विशेषताएं हैं :

1. यह प्राथमिक आंकड़ों के संकलन की विधि है।
2. इसमें समय, धन एवं परिश्रम अधिक लगता है।
3. इसके लिए बहुत अधिक अनुभवी एवं प्रशिक्षित शोधकर्ता की आवश्यकता नहीं होती।
4. यह शोध की सबसे प्रचलित विधियों में से एक है।

5. प्राथमिक आंकड़ों के कारण इस विधि में प्राथमिक आंकड़ों के सभी गुण/दोष पाए जाते हैं जैसे – उत्तरदाता का पक्षपातपूर्ण होना, कम उत्तरों की दर इत्यादि।

कार्यालय शोध : कार्यालय शोध मुख्यतया विश्लेषणात्मक अथवा ऐसे शोध में प्रयोग किया जाता है जिसमें मुख्यतया द्वितीय आंकड़ों का प्रयोग हो और उन्हें किसी वेबसाइट, छपी हुई सामग्री अथवा आंकड़ाकोश से आंकड़े लेने हों। ऐसे आंकड़ों के लिए किसी क्षेत्र में जाने की आवश्यकता नहीं है तथा इन्हें शोधकर्ता अपने कार्यालय में ही कम्प्यूटर, पुस्तकों, निर्देशिकाओं आदि से प्राप्त कर लेता है। कार्यालय शोध की निम्न विशेषताएं हैं :

1. कम समय, धन एवं परिश्रम का खर्च।
2. आंकड़ों को शोध के लिए उपयुक्त बनाना आवश्यक है।
3. अधिक अनुभवी एवं प्रशिक्षित शोधकर्ता की आवश्यकता।
4. गहन अध्ययन के लिए उपयुक्त।
5. आधारभूत शोध के लिए अधिक उपयुक्तता।
6. द्वितीय आंकड़ों की सभी विशेषताओं का समावेश।

समय के आधार पर मात्रात्मक शोध के प्रकार

1. **अधोमुखी/निदानात्मक शोध** : इस प्रकार की संरचना में समग्र इकाई के एक निश्चित प्रतिचयन अथवा प्रतिचयनों का बार–बार उन्ही चरों के अध्ययन के लिए मापन करना अधोमुखी संरचना कहलाता है। निदानात्मक शोध का प्रमुख उद्देश्य किसी समस्या के समाधान के लिए तब तक एक निश्चित समय अंतराल पर निरंतर शोध करना है जब तक उस समस्या का निदान नहीं हो जाता। अर्थात इस शोध प्रारूप में उत्तरदाताओं के समूह की समस्याओं का अध्ययन करके एक निदान लागू किया जाता है। फिर एक निश्चित समय अंतराल के बाद उन्हीं उत्तरदाताओं की उन्हीं समस्याओं के विषय में पुनः अध्ययन किया जाता है और यह पता लगाया जाता है कि क्या उन्हें लागू किए गए निदान से लाभ मिला या नहीं। यदि लाभ मिलता है तो वह निदान लंबे समय तक चलाया जा सकता है और यदि नहीं तो शोध के परिणामों का पुनरीक्षण करके पुनः दूसरा निदान लागू किया जाता है। इस प्रकार इस प्रारूप के अंतर्गत शोध की प्रक्रिया निरंतर एक निश्चित समय अंतराल के बाद उन्हीं उत्तरदाताओं के समूह पर उसी समस्या के निदान के लिए दुहराई जाती है। इसमें सूचना एकत्रित करने की विधियां वही होती हैं जिनका प्रयोग वर्णनात्मक शोध मे किया जाता है।
2. **अनुप्रस्थ काट** : अनुप्रस्थ काट संरचना वह है जिसमें समग्र के दिए हुए प्रतिचयन से केवल एक बार ही सूचना प्राप्त की जाती है। अनुप्रस्थ काट संरचना दो प्रकार की होती हैः

   अ. एकल अनुप्रस्थ काट : एकल अनुप्रस्थ काट संरचना में समग्र के केवल एक ही प्रतिचयन से केवल एक ही बार सूचना एकत्रित की जाती है।

ब. **बहु अनुप्रस्थ काट** : बहु अनुप्रस्थ काट संरचना में उत्तरदाताओं के ऐसे दो या दो से अधिक प्रतिचयन होते हैं जिनसे सूचना एकत्रित की जाती है। प्रायः अलग अलग प्रतिचयनों से अलग अलग समय में जानकारी एकत्रित की जाती है।

गुणात्मक शोध

डेंजिन नॉर्मन एवं लिंकन यवोना एस. के अनुसार, "गुणात्मक शोध एक जांच की विधि है जिसका प्रयोग विभिन्न शैक्षणिक क्षेत्रों, परंपरागत रूप से समाज विज्ञान, बाजार शोध और अन्य संदर्भों में किया जाता है।"

गुणात्मक शोधकर्ताओं का उद्देश्य मानवीय व्यवहार और ऐसे व्यवहार को 'शासित करने वाले कारणों को गहराई से समझना है। गुणात्मक विधि निर्णय के न केवल क्या, कहां, कब की छानबीन करती है, बल्कि क्यों और कैसे को खोजती है। इसलिए, बड़े नमूनों की बजाय अकसर छोटे पर संकेंद्रित नमूनों की जरूरत होती है।

गुणात्मक विधियां केवल विशिष्ट अध्ययन किए गए मामलों में जानकारी उत्पन्न करती हैं, और इसके अतिरिक्त कोई भी सामान्य निष्कर्ष केवल परिकल्पनाएं (सूचनात्मक अनुमान) हैं। इस तरह की परिकल्पनाओं में सटीकता के सत्यापन के लिए मात्रात्मक पद्धतियों का प्रयोग किया जा सकता है।

गुणात्मक शोध की विशेषताएं

गुणात्मक शोध की निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं–

1. **विश्लेषणात्मक शोध** : गुणात्मक शोध में लिखित सूचनाओं का प्रयोग होता है और मुख्यतया उनका विश्लेषण किया जाता है। इसमें मात्रात्मक शोध की तरह संख्यात्मक आंकड़ों का प्रयोग नहीं किया जाता।
2. **शोधकर्ता का ज्ञान एवं अनुभव** : गुणात्मक शोध में शोधकर्ता के ज्ञान एवं अनुभव का बहुत अधिक महत्व है, क्योंकि यह संख्यात्मक आंकड़ों पर आधारित नहीं होता जिसमें सांख्यिकीय तकनीकें अपने आप शोध के परिणाम निकाल लेती हैं। परंतु गुणात्मक/लिखित सूचनाओं में शोध के परिणाम निकालने के लिए शोधकर्ता को स्वयं सभी लेखों एवं उनके अर्थों को गहराई से समझना पड़ता है।
3. **सूचनाओं के स्रोत** : गुणात्मक शोध में सूचनाओं के स्रोत मुख्यतया लिखित सामग्री, पुस्तकें, गुणात्मक सूचनाएं आदि होती हैं। ये सभी सूचनाएं गैर संख्यात्मक रूप में होती हैं।
4. **विश्लेषण की तकनीकें** : गुणात्मक शोध में विश्लेषण के लिए मुख्यतया "विषय वस्तु विश्लेषण", प्रकरण अध्ययन एवं 'महत्वपूर्ण शब्द विश्लेषण' आदि विधियों का प्रयोग होता है।

गुणात्मक शोध की विधियां

गुणात्मक शोध की मुख्य विधियां निम्न हैं :

1. **नृवंश शोध प्रारूप/विधि** : नृवंश विवरण एक शोध प्रारूप है जिसमें सांस्कृतिक तथ्यों अथवा वस्तुओं का अन्वेषण किया जाता है। नृवंश विवरण का अर्थ है रेखा चित्रों एवं लेखन के माध्यम से किसी संस्कृति अथवा समूह का

प्रतिनिधित्व करना। सामान्यतया नृवंश विवरण उस एक सांस्कृतिक समूह में जीवन के अर्थ से संबंधित है जो ज्ञान एवं व्यवस्था को प्रदर्शित करता है।

नृवंश विवरण मानव समाज एवं संस्कृति में अनुभवजन्य आंकड़ों के साथ जीवविज्ञान, सामाजिक एवं सांस्कृतिक शाखाओं में प्रवर्तक रहा है परंतु यह सामान्य समाज शास्त्र में समाज विज्ञान, सम्प्रेषण अध्ययन, इतिहास जहां जहां भी लोग जातीय समूह, निर्माण, संरचना एवं पुनर्स्थापन, समाज कल्याण, अध्यात्म आदि का अध्ययन करते हैं, उसमें भी लोकप्रिय हुआ है।

परंपरागत नृवंश अध्ययन एक समग्र अध्ययन है जो संक्षिप्त इतिहास, भू भाग, जलवायु, आवास आदि का विश्लेषण है। इन सभी मामलों में इस विधि को पूर्वसंबंधी होना चाहिए, मनुष्यों के सामाजिक जीवन को समझने में एक मूल्यवान योगदान देना चाहिए जिससे पाठक पर न केवल एक कलात्मक प्रभाव पड़े अपितु अध्ययन वास्तविकता को विश्वसनीय भी बनाए।

2. **ऐतिहासिक शोध विधि** : ऐतिहासिक शोध विधि भूतकाल की घटनाओं के कारणों, प्रभावों एवं प्रवृत्तियों से संबंधित परिकल्पना की जांच के लिए आंकड़ों का व्यवस्थित संकलन एवं वस्तुपरक विश्लेषण है जो वर्तमान घटनाओं की व्याख्या एवं भावी घटनाओं की भविष्यवाणी करने में सहायता कर सकता है।

   ऐतिहासिक विधि उस तकनीक एवं मार्गदर्शन को समाहित करती है जिसके द्वारा इतिहासकार शोध के लिए और फिर भूतकाल के आधार पर इतिहास लिखने के लिए प्राथमिक स्रोतों एवं पुरातन तथ्यों के साथ अन्य तथ्यों का प्रयोग करते है।

   डिक्शनरी रेफेरंस (रेंडम हाउस डिक्शनरी) के अनुसार ऐतिहासिक शोध विधि, "ऐतिहासिक घटनाओं के अध्ययन अथवा उनके क्रमिक विकास को ध्यान में रखते हुए सामान्य तथ्यों एवं सिद्धांतों को स्थापित करने की प्रक्रिया है।"

   कॉलिन्स अंग्रेजी शब्दकोश के अनुसार ऐतिहासिक शोध, "उद्भव एवं विकास को ध्यान में रखते हुए किसी भी चीज के अध्ययन का ढंग है।"

3. **विषय वस्तु विश्लेषण** : अरल बेब्बी के अनुसार विषय वस्तु विश्लेषण, "दर्ज किए गए मानव संप्रेषणों जैसे – पुस्तकें, वेबसाइट, चित्रकलाएं एवं कानून इत्यादि का अध्ययन है।"

   हैरोल्ड लासवेल ने विषय वस्तु विश्लेषण के केन्द्रीय प्रश्नों का निर्माण किया : "किसने क्या कहा, किसे कहा, क्यों, किस सीमा तक और किस प्रभाव के साथ?"

   विषय वस्तु विश्लेषण किसी लिखित सामग्री में कुछ विशेष शब्दों की उपस्थिति का निर्धारण करने के लिए प्रयोग किया जाता है। शोधकर्ता विश्लेषण करने के लिए ऐसे शब्दों एवं धारणाओं के अर्थों एवं सम्बन्धों को मात्रात्मक रूप देता है और फिर संदेश के बारे में परिणाम निकालता है। लेखक, श्रोता, और यहां तक कि संस्कृति एवं समय भी इसके भाग हैं।

4. **स्थलीय विचारधारा** : जी. एलन के अनुसार, "स्थलीय सिद्धांत अथवा विचारधारा सिद्धांतों के निर्माण के लिए समाज विज्ञान में आंकड़ों का विश्लेषण करने की एक व्यवस्थित विधि है।" स्थलीय विचारधारा शोध की एक ऐसी विधि है जो परंपरागत समाज विज्ञान शोध के ठीक विपरीत दिशा में कार्य करती है। एक परिकल्पना से प्रारंभ होने की अपेक्षा, इसका पहला चरण विभिन्न विधियों द्वारा आंकड़ों का संकलन है। संकलित आंकड़ों से, महत्वपूर्ण बिन्दुओं एवं कूटों

को चिह्निनत किया जाता है जिन्हें लिखित सामग्री से निकाला जाता है। कूटों का समान श्रेणियों में समूहीकरण किया जाता है ताकि उन्हें अधिक क्रियान्वयन के योग्य बनाया जा सके। इनसे धारणाओं एवं श्रेणियों का निर्माण किया जाता है जो किसी सिद्धांत के निर्माण अथवा एक विपरीत अभियांतिक परिकल्पना का आधार होते हैं। यह शोध के परंपरागत प्रतिरूप का विरोध करता है जहां शोधकर्ता एक किताबी रूपरेखा का चयनकर्ता है और तभी चीजों के अध्ययन के लिए प्रतिरूपों को लागू करता है।

स्थलीय विचारधारा में विश्लेषण के चार स्तर

स्तर	उद्देश्य
कूट	ऐसे ठहरावों का पता लगाना जो आंकड़ों के संकलन के मुख्य बिन्दुओं का आधार बनें।
धारणाएं	समान विषय वाले कूटों का संकलन करना जो आंकड़ों के समूहीकरण का आधार बनें।
श्रेणियां	समान धारणाओं वाले बड़े समूहों का निर्धारण जिनसे सिद्धांत का निर्माण किया जा सके।
सिद्धांत	व्याख्याओं का एक समूह जो विषय विशेष के शोध की व्याख्या करता हो।

संदर्भ : विकिपीडिया

5. **क्रियात्मक अनुसंधान** : क्रियात्मक अनुसंधान किसी समुदाय की विशेषताओं को ध्यान में रखकर, नियोजित प्रयास, जो सामुदायिक जीवन के अनेक पहलुओं को प्रभावित करते हैं और सामाजिक प्रयोजनों की पूर्ति के लिए किए जाते हैं, इस अनुसंधान के अंतर्गत आते हैं, जैसे आवास, खेती, सफाई, मनोरंजन से संबंधित कार्यक्रम। समुदाय के सदस्यों का सहयोग, आर्थिक स्थिति, संगठित विरोध आदि विशेषताओं का मूल्यांकन करके कार्यक्रम को सफल बनाने का प्रयत्न किया जाता है। यह अनुसंधान भारत में चलने वाले नियोजन का एक मुख्य उपकरण है।

6. **प्रकरण अध्ययन पद्धति** : प्रकरण अध्ययन पद्धति गुणात्मक शोध का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। हालांकि यह मात्रात्मक सूचनाओं पर आधारित भी हो सकती है परंतु इसकी वास्तविक एवं मुख्य पद्धति गुणात्मक ही है।

   प्रकरण अध्ययन आधुनिक शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग है। प्रकरण अध्ययन के माध्यम से विद्यार्थियों के समक्ष किसी भी समस्या, घटना अथवा प्रकरण इत्यादि का विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत किया जाता है एवं उनसे उस घटना में उत्पन्न हुई समस्या का समाधान पूछा जाता है।

   सामान्यतया जिस प्रकरण अध्ययन में समस्या का समाधान भी 'प्रकरण' के साथ दिया होता है उसे 'प्रकरण अध्ययन' एवं जिस प्रकरण में समस्या का समाधान प्रकरण के साथ नहीं दिया होता उसे केवल 'प्रकरण' कहते हैं। अधिकांशतः विद्वानों का मत है कि शोध संरचना के रूप में प्रकरण अध्ययन पद्धति शोध समस्या का हल नहीं करती अपितु किसी भी व्यक्ति, समूह या घटना का केवल गहन अध्ययन करती है।

शेपर्ड एवं रॉबर्ट तथा रॉबर्ट के. यिन ने अपनी पुस्तकों क्रमशः 'सोशियोलॉजी एंड यू' तथा 'केस स्टडी रिसर्च डिजाइन एंड मेथड्स' में लिखा है कि समाज विज्ञान एवं

जीव विज्ञान में प्रकरण अध्ययन पद्धति एक व्यक्ति, समूह अथवा घटना का एक वर्णनात्मक, अन्वेषणात्मक अथवा व्याख्यात्मक विश्लेषण है।

द फ्री डिक्शनरी के अनुसार प्रकरण विश्लेषण, "किसी व्यक्ति, समूह, विशेषतः किसी चिकित्सकीय, मनोविकारी, मनोचिकित्सकीय मॉडल के रूप में अथवा किसी सामाजिक वस्तु का विस्तृत वर्णन है।"

बिजनेस डिक्शनरी डॉट कॉम के अनुसार प्रकरण अध्ययन जीवन के किसी भी वास्तविक परिस्थिति अथवा कल्पित दृश्य का एक लिखित अध्ययन है जिसे व्यावसायिक शिक्षा के संस्थानों एवं कंपनियों में एक प्रशिक्षण के उपकरण के रूप में प्रयोग किया जाता है।

प्रकरण अध्ययन अकसर छिपी हुई बातों को सामने लाता है। यह गुणात्मक भी हो सकता है और मात्रात्मक भी। अकसर प्रकरण अध्ययन की आवश्यकता उस समय महसूस होती है जब कोई व्यक्ति असाधारण कार्य करता है अथवा कोई महत्वपूर्ण व्यक्ति अचानक गर्त में जाने लगता है या कोई समूह (सामाजिक अथवा व्यावसायिक) बहुत जल्द बहुत तरक्की कर लेता है इत्यादि।

प्रकरण अध्ययन घटनाओं के विश्लेषण की सर्वश्रेष्ठ विधि है। इसमें गुणात्मक एवं मात्रात्मक, औपचारिक एवं अनौपचारिक सभी प्रकार के उपकरणों का प्रयोग होता है जिससे कि शोधकर्ता जिस विषय पर केन्द्रित है उससे संबंधित समस्त सूचनाएं एकत्रित की जा सके एवं उन्हें एक प्रकरण का रूप दिया जा सके। प्रकरण अध्ययन किसी भी विषय का बहुत गहराई से विश्लेषण करता है। यह किसी भी विषय से संबंधित महत्वपूर्ण सूचनाओं को एकत्रित करके उन्हें आपस में जोड़ता है एवं किस भी व्यक्ति, समूह, परिस्थिति एवं घटना की पूर्ण तस्वीर प्रस्तुत करता है।

1. **व्यक्तिगत प्रकरण अध्ययन** : व्यक्तिगत प्रकरण अध्ययन उन महत्वपूर्ण व्यक्तियों पर किए जाते हैं जिन्होंने अप्रत्याशित सफलता हासिल की हो, समाज को बदल कर दिखाया हो और जिनका व्यक्तित्व अद्भुत हो।
2. **समूह से संबंधित प्रकरण अध्ययन** : ऐसे प्रकरण अध्ययन किसी समूह की कार्यशैली, उपलब्धियों, सफलताओं अथवा असफलताओं का गहन अध्ययन करते हैं। ये समूह सामाजिक भी हो सकते हैं और व्यावसायिक भी। व्यावसायिक जगत में समूहों की विशेष घटनाओं पर प्रकरण अध्ययन करना एक सतत प्रक्रिया एवं परंपरा है।
3. **घटनाओं से संबंधित प्रकरण अध्ययन** : घटनाओं पर प्रकरण अध्ययन इस विधि का सबसे महत्वपूर्ण रूप है। अकसर व्यक्तियों एवं समूहों पर प्रकरण अध्ययन उनकी सफलता की कहानी तक ही सीमित रह जाते हैं। परंतु घटनाओं पर किए गए प्रकरण अध्ययन अधिक समीक्षात्मक होते हैं। ऐसे अध्ययन पाठक के लिए अनेक प्रश्न उत्पन्न भी करते हैं एवं उसका बौद्धिक विकास करते हैं। ऐसे शोधों का समाज विज्ञान में सबसे अधिक महत्व है।
4. **ग्रन्थों एवं फिल्मों की विषय वस्तु पर प्रकरण अध्ययन** : ग्रन्थों एवं फिल्मों पर प्रकरण अध्ययन उनकी विषय वस्तु का गहन एवं विस्तृत विश्लेषण कर उन महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर प्रकाश डालता है जिनका सामाजिक एवं व्यावसायिक जीवन में योगदान हो सकता है।

5.3.2 मात्रात्मक एवं गुणात्मक शोध में अंतर

मात्रात्मक शोध आंकड़ों पर आधारित होता है और इसका निष्कर्ष भी आंकड़ों द्वारा निर्धारित होता है। इन आंकड़ों के आधार पर एक नए आंकड़े को निकालना ही परिमाणात्मक शोध का उद्देश्य होता है। परिमाणात्मक शोध किसी भी प्रकार के पक्ष या फिर भाव से रहित होता है।

क्रमांक	अंतर का आधार	मात्रात्मक शोध	गुणात्मक शोध
1	मुख्य उद्देश्य	मात्रात्मक शोध का मुख्य उद्देश्य किसी विषय से संबन्धित विभिन्न चरों की विशेषताओं एवं परस्पर सम्बन्धों का मात्रात्मक प्रस्तुतीकरण करना है ताकि परिकल्पनाओं का परीक्षण किया जा सके।	गुणात्मक शोध का मुख्य उद्देश्य शोध के विषय पर नए तत्वों/चरों आदि के विषय में नए आयामों का पता लगाना है ताकि परिकल्पनाओं का निर्माण किया जा सके।
2	निगमन अथवा आगमन	मात्रात्मक शोध के अंतर्गत मुख्यतया निगमन विधि का प्रयोग किया जाता है। इसका उपयोग पूर्व निर्धारित या पूर्व स्थापित अवधारणा या परिकल्पना के परीक्षण के लिए किया जाता है, जिससे विशेष सिद्धांतों का निर्माण होता है।	गुणात्मक शोध मुख्यतः आगमन विधि पर आधारित है। इसका उपयोग सिद्धांतों एवं परिकल्पना के निर्माण के लिए किया जाता है।
3.	प्रतिचयन का आकार	मात्रात्मक शोध में प्रतिचयन का आकार बड़ा होता है।	गुणात्मक शोध में प्रतिचयन का आकार सामान्यतः छोटा होता है।
4	प्रतिचयन की विधि	मात्रात्मक शोध में प्रतिचयन के लिए सामान्यतः प्रायिकता पर आधारित विधियों का प्रयोग किया जाता है।	गुणात्मक शोध में मुख्यतः गैर प्रायिकता विधियों का प्रयोग किया जाता है।
5	आंकड़ों का संकलन	मात्रात्मक शोध मात्रात्मक या सांख्यकीय सूचनाओं पर आधारित होता है। यह सर्वेक्षण, व्यवस्थित साक्षात्कार, व्यवस्थित अवलोकन, द्वितीय आंकड़े (संख्यात्मक जो किसी सुव्यवस्थित एवं विश्वसनीय आंकड़ाकोश से प्राप्त किए जाएं) आदि पर आधारित होता है।	गुणात्मक शोध केन्द्रित समूह साक्षात्कार, गहन साक्षात्कार, अव्यवस्थित प्रश्नावली एवं अनुसूची (मुख्यतः खुली प्रश्नावली जिसमें उत्तरदाता संख्यात्मक कूटों को चिन्हित करने की अपेक्षा लिखित सामग्री के रूप में अपनी राय देते हैं) आदि का प्रयोग किया जाता है।
6	वस्तुनिष्ठ /व्यक्तिनिष्ठ	मात्रात्मक शोध अधिकांशतः वस्तुनिष्ठ होता है। इसमें स्थिति या समस्या के स्पष्ट दिखने वाले प्रभाव या परिणाम का वर्णन होता है।	यह अधिकांशतया व्यक्तिनिष्ठ होता है। इसके अंतर्गत किसी समस्या या स्थिति का वर्णन करना शोधकर्ता के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।
7	संख्यात्मक /गुणात्मक	मात्रात्मक शोध संख्यात्मक (संख्या आधारित) होता है।	गुणात्मक शोध गुणात्मक या वर्णनात्मक (वर्णन आधारित) होता है।
8	सांख्यिकीय तकनीकों का प्रयोग	मात्रात्मक शोध में प्रयोग के सांख्यिकीय उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। यह परिकल्पनाओं का परीक्षण करके निष्कर्ष निकालता है।	गुणात्मक शोध में किन्हीं सांख्यिकीय तकनीकों के प्रयोग की संभावना बहुत कम होती है। कुछ विधियों में गुणात्मक सूचनाओं को मात्रात्मक सूचनाओं में परिवर्तित करके शोध को मात्रात्मक बनाया जा सकता है।
9	सूचनाओं का विस्तार	मात्रात्मक शोध अधिकाधिक विषयों से संबन्धित सूचनाएं प्रदान करता है।	गुणात्मक शोध के अंतर्गत कुछ विषयों पर अधिक गहराई से तथा विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।
10	शोध की विश्वसनीयता का मापन	मात्रात्मक शोध के अंतर्गत शोध के परिणाम की वैधता और विश्वसनीयता का मापन सांख्यिकीय तकनीकों की सहायता से किया जा सकता है।	गुणात्मक शोध के अंतर्गत शोध के परिणाम की वैधता और विश्वसनीयता शोधकर्ता की पक्षपात रहित भावना, विवेक, ज्ञान आदि पर निर्भर करती है।
11	व्यापकीकरण	मात्रात्मक शोध में व्यापकीकरण की सम्भावना अधिक होती है।	गुणात्मक शोध में व्यापकीकरण की सम्भावना कम होती है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. गुणात्मक और मात्रात्मक पद्धतियों के मिश्रण वाले सर्वेक्षण को क्या कहते हैं?
   (क) त्रिकोणीय सर्वेक्षण (ख) चतुष्कोणीय सर्वेक्षण
   (ग) पंचकोणीय सर्वेक्षण (घ) षटकोणीय सर्वेक्षण
4. M.A. से क्या तात्पर्य है?
   (क) Measurement after Treatment (ख) Matter Approach
   (ग) Matter Aligned (घ) Matter Applied

5.4 सामाजिक शोध, क्रियात्मक शोध, सहभागी शोध : सामाजिक शोध में नैतिक मुद्दे

संसार के विभिन्न प्राणियों में से केवल मानव ही ऐसा प्राणी है जो प्रारंभ से ही अपने पर्यावरण के प्रति जागरूक एवं जिज्ञासु रहा है। इसकी यह प्रवृत्ति प्राचीनकाल से चली आ रही है तथा चलती रहेगी। आदिकाल से अध्ययनरत होते हुए ही वह वर्तमान वैज्ञानिक युग में विचरण करने लगा है। यह सब मानव की बुद्धि, विवेक एवं कार्यक्षमता की ही देन है कि उसने आज चांद पर तक अपनी पकड़ बना ली है। मनुष्य के पास ज्ञान का अपार भंडार है। इस अपार भंडार के माध्यम से ही ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित कर अज्ञानता को समाज से दूर भगा रहा है। मानव का यह प्रयत्न कभी भी शांत नहीं हो सकता बल्कि निरंतर आगे बढ़ता जाएगा। सत्य तक पहुंचने के लिए अध्ययनकर्ता को कठिन से कठिन परिश्रम करना पड़ता है। समाज से संबंधित विषयों में अध्ययनकर्ता को सफलता तभी प्राप्त हो सकती है जब वह निष्पक्ष होकर अध्ययन करे। मानव आज ऐसे अन्वेषण व परीक्षण करने लगा है कि जिसकी कभी कल्पना तक नहीं की जा सकती थी। कोई भी कार्य चाहे वह प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में हो या समाज विज्ञान के क्षेत्र में अगर उसके व्यवस्थित ढंग तथा वस्तु विशेष की महत्ता को समझ कर अध्ययन किया जाए तो उसके परिणाम सदैव ठीक निकलते हैं। यदि अध्ययनकर्ता अपने कार्य के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित है तो उसके द्वारा संपादित कार्यों में कोई गलती की संभावना नहीं रह जाती है। इसके अभाव में वास्तविकता सामने नहीं आ सकती है। यही कारण है कि सामाजिक अनुसंधानकर्ता सामाजिक अनुसंधान की मदद से ही समाज में व्याप्त हर स्थिति/परिस्थिति का अध्ययन कर वास्तविकता को समाज के सम्मुख प्रकट करने में सक्षम होता है। इसलिए सामाजिक घटनाओं के संबंध में सत्य की खोज ही सामाजिक शोध है।

सामाजिक शोध : अर्थ एवं परिभाषाएं

मानव ने आज तक का संपूर्ण ज्ञान वैज्ञानिक शोध के द्वारा ही प्राप्त किया है। इसी के द्वारा मनुष्य ने अपने संपूर्ण सामाजिक संगठन, अपने पर्यावरण, अनेक प्रचलित नियमों के बारे में जानकारी प्राप्त की है। प्रत्येक शोध को वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता है

टिप्पणी

केवल वही शोध वैज्ञानिक होगी जिसमें इसके दो आवश्यक तत्त्व 1. निरीक्षण 2. कारण दर्शाना सम्मिलित हों।

वैज्ञानिकों ने सामाजिक अनुसंधान की निम्नलिखित परिभाषाएं दी हैं :

पी. वी. यंग (P. V. Young) के अनुसार, "सामाजिक शोध एक वैज्ञानिक योजना है, जिसका उद्देश्य तार्किक तथा क्रमबद्ध पद्धतियों के द्वारा नवीन तथ्यों का अन्वेषण अथवा पुराने तथ्यों का पुनर्परीक्षण एवं उनमें पाए जाने वाले अनुक्रमों (Sequences), अंतर्संबंधों; कारण सहित व्याख्याओं तथा उनको संचालित करने वाले स्वाभाविक नियमों का विश्लेषण करना है।"

मोसर (Moser) ने लिखा है कि सामाजिक घटनाओं व समस्याओं के संबंध में नवीन ज्ञान की प्राप्ति के लिए किए गए व्यवस्थित अनुसंधान को हम सामाजिक शोध कहते हैं।

बोगार्डस (Bogradus) के अनुसार, "एक साथ रहने वाले लोगों के जीवन में क्रियाशील अंतर्निहित प्रक्रियाओं का अनुसंधान ही सामाजिक शोध है।"

ह्विटने (Whitney) का कथन है, "समाजशास्त्रीय शोध में मानव–समूह के संबंधों का अध्ययन होता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि सामाजिक शोध वास्तव में सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों के विषय में अध्ययन करने की एक वैज्ञानिक योजना है। चूंकि यह वैज्ञानिक है अतः इसके अंतर्गत समस्त अनुसंधान–कार्य वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार ही होता है। इसमें असंबद्ध तरीकों का कोई भी स्थान नहीं हैं। यह तार्किक तथा क्रमबद्ध पद्धतियों पर निर्भर है और इन्हीं पद्धतियों के द्वारा यह सामाजिक जीवन व घटनाओं के विषय में अन्वेषण करता है। पुराने सिद्धांतों की पुनः परीक्षा करता है तथा विभिन्न सामाजिक तथ्यों के बीच पाए जाने वाले अंतर्संबंधों व अनुक्रमों को दर्शाता है।

सामाजिक शोध की प्रकृति एवं उद्देश्य

सामाजिक अनुसंधान की उपर्युक्त परिभाषाओं में वैज्ञानिकों के द्वारा व्यक्त अनेक लक्षण और विशेषताएं उभर कर सामने आती हैं, जो इसकी प्रकृति को भी स्पष्ट करती हैं। वे इस प्रकार हैं :

1. **प्राक्कल्पना की जांच** (Testing of Hypothesis): सामाजिक अनुसंधान प्राक्कल्पना के निर्माण से प्रारंभ होता है तथा इसका मुख्य उद्देश्य समाज से संबंधित प्राक्कल्पनाओं की जांच करना होता है।
2. **व्यावहारिक एवं शुद्ध अनुसंधान** (Pure and Applied Research): गुडे एवं हाट ने लिखा है कि सामाजिक अनुसंधान समाज से संबंधित दो प्रकार के अनुसंधान होते हैं–

   (1) शुद्ध अनुसंधान, तथा (2) व्यावहारिक अनुसंधान।

शुद्ध अनुसंधान पुस्तकालय में उपलब्ध विषय से संबंधित सामग्री का क्रमबद्ध संकलन, वर्गीकरण तथा विश्लेषण करके शुद्ध सिद्धांत का निर्माण करना है। व्यावहारिक अनुसंधान वास्तविक समस्या से संबंधित क्षेत्र से तथ्य एकत्र करके प्राक्कल्पना का परीक्षण करता है।

3. **कार्य–कारण संबंध का अध्ययन** (Study of Cause-Effect Relation): सामाजिक अनुसंधान प्राक्कल्पना अथवा अध्ययन की समस्या से संबंधित तथ्यों के परस्पर कारण–प्रभाव संबंध का अध्ययन करता है। प्राक्कल्पना में वर्णित समीकरण की जांच कारण–प्रभाव के संदर्भ में करता है।

4. **वैज्ञानिक चरणों का पालन** (Following Scientific Steps): सामाजिक अनुसंधान में अनुसंधानकर्ताओं द्वारा वैज्ञानिक शोध के चरणों (प्राक्कल्पना का निर्माण तथ्यों का संकलन, वर्गीकरण तथा निष्कर्ष) का कठोरता से पालन किया जाता है।

5. **तथ्यों की खोज** (Discovery of Facts): सामाजिक अनुसंधान में समाज, सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक अनुसंधान संगठन आदि से संबंधित नवीन तथ्यों की खोज की जाती है तथा पुराने तथ्यों की जांच की जाती है।

6. **सिद्धांतों का परीक्षण** (Testing of Theory): सिद्धांत कई प्रकार के होते हैं जैसे– विश्लेषणात्मक, आदर्शात्मक, तत्त्वमीमांसीय आदि। सामाजिक अनुसंधान जब प्राक्कल्पना अथवा सिद्धांत का परीक्षण करके निर्माण करता है तो वह वैज्ञानिक सिद्धांत कहलाता है। वैज्ञानिक सिद्धांतों की जांच नवीन तथ्यों द्वारा समय–समय पर उनकी प्रामाणिकता, विश्वसनीयता तथा सत्यता के लिए होती रहनी चाहिए। यह कार्य सामाजिक अनुसंधान करता है। सामाजिक अनुसंधान वैज्ञानिक सिद्धांतों का परीक्षण करके उन्हें पुनः स्थापित, खण्डित, संशोधित करता है अथवा त्याग देता है।

7. **नवीन प्रविधियों की खोज** (Discovery of New Techniques): सामाजिक अनुसंधान में प्राक्कल्पना की जांच, तथ्यों का संकलन, सिद्धांतों की सत्यता आदि से संबंधित अध्ययन करने के अतिरिक्त नवीन प्रविधियों की खोज भी की जाती है। अनेक ऐसी प्राक्कल्पनाएं हैं जिनकी जांच करने तथा उनके संबंधित तथ्य–संकलन की प्रविधियां विज्ञान में नहीं होती हैं। ऐसी प्राक्कल्पनाओं का परीक्षण करने के लिए सामाजिक अनुसंधान सर्वप्रथम नवीन प्रविधि की खोज करता है। सामाजिक शोध की प्रकृति के संबंध में अंतिम बात यह है कि यह सामाजिक जीवन व घटनाओं पर अधिकाधिक नियन्त्रण पाने का प्रयत्न करता है। यहां नियंत्रण का अर्थ यह नहीं है कि समाज के सदस्यों को डरा–धमकाकर अपने वश में कर लेता है। यहां नियंत्रण से तात्पर्य यह है कि अपने अनुसंधान–कार्य में प्रयोगात्मक पद्धति का उपयोग करने के लिए कुछ सामाजिक घटनाओं को नियंत्रित करके उसी प्रकार की अन्य सामाजिक घटनाओं पर विभिन्न कारकों के प्रभावों को देखना है। इस प्रकार का नियंत्रण विषय के संबंध में शोधकर्ता के उत्तरोत्तर ज्ञान पर निर्भर होता है। सामाजिक जीवन व घटनाओं के संबंध में अधिकाधिक ज्ञान द्वारा उन पर अधिक नियंत्रण पाना सामाजिक शोध का प्राथमिक लक्ष्य है।

सामाजिक शोध के उद्देश्य

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम सामाजिक शोध के निम्नलिखित उद्देश्यों का उल्लेख कर सकते हैं; परंतु यहां प्रारंभ में ही यह कह देना उचित होगा कि सामाजिक शोध के उद्देश्यों को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– प्रथम, सैद्धांतिक अथवा ज्ञान संबंधी उद्देश्य और द्वितीय, व्यावहारिक अथवा प्रयोगवादी उद्देश्य। उपर्युक्त परिभाषाओं में विशेषतया उद्देश्य पर बल दिया गया है; परंतु यह भी उल्लेखनीय है कि इन विद्वानों द्वारा सामाजिक शोध के व्यावहारिक (Applied) पक्ष की भी अवहेलना नहीं की गई है जैसा कि निम्नलिखित विवेचना से स्पष्ट होगा :

1. **सैद्धांतिक उद्देश्य** (Theoretical Objectives) सैद्धांतिक अनुसंधान के उद्देश्य और भूमिकाएं सामाजिक विज्ञानों में बहुत महत्वपूर्ण हैं। सामाजिक विज्ञानों में सिद्धांत, ज्ञान तथ्य–संकलन, अनुसंधान की दिशा (अभिविन्यास), तथ्यों का पूर्वानुमान, ज्ञान में कमी को बताना आदि अनेक उद्देश्य सैद्धांतिक अनुसंधान के हैं। इतना ही नहीं सामाजिक अनुसंधान में अवधारणा के विकास की प्रक्रिया तथा वर्गीकरण का महत्वपूर्ण कार्य भी सैद्धांतिक अनुसंधान करता है। इन उपर्युक्त कार्यों, उद्देश्यों तथा भूमिकाओं का उल्लेख गुडे एवं हाट ने किया है–

   (क) **अनुसंधान का दिशा निर्धारण** (Determination of Research) : अनुसंधान का प्रमुख सैद्धांतिक उद्देश्य विभिन्न सामाजिक विज्ञानों में अध्ययन का क्षेत्र, विषय–सामग्री, अध्ययन का दृष्टिकोण आदि को निश्चित करना है। फुटबाल का कई परिप्रेक्ष्यों के अनुसार अध्ययन कर सकते हैं। सैद्धांतिक अनुसंधान तय करेगा कि किस सामाजिक विज्ञान में इसका अध्ययन किन प्रभावों को ध्यान में रखकर किया जाए। सैद्धांतिक अनुसंधान इस बात की परिभाषा करने में मदद करता है कि किस प्रकार के तथ्य संबंधित कारक हैं और कौन से नहीं हैं।

   (ख) **संक्षिप्तीकरण** (Summarization): सैद्धांतिक अनुसंधान का दूसरा और महत्वपूर्ण उद्देश्य उस समस्त ज्ञान का संक्षिप्तीकरण करना है जो किसी अध्ययन के संबंध में उपलब्ध है। इस ज्ञान के संक्षिप्तीकरण को निम्नलिखित दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– (1) आनुभविक सामान्यीकरण, और (2) विभिन्न प्रस्थापनाओं के संबंधों की व्यवस्था। तथ्यों को विज्ञान में जिस दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए वह सैद्धांतिक अनुसंधान प्रदान करता है तथा ज्ञान का संक्षिप्तीकरण करता है।

   (ग) **ज्ञान की कमी बताना** (Points Gap in the Knowledge) : गुडे एवं हॉट का कहना है कि जब सैद्धांतिक अनुसंधान उपलब्ध ज्ञान का संक्षिप्तीकरण करता है तथा यह भी निर्देश देता है कि किन तथ्यों को एकत्र करना है तथा कौन–कौन से तथ्य एकत्र किए जा चुके हैं तो वह यह भी बताता है कि अभी और कौन–कौन से तथ्यों को एकत्र करना शेष है तथा कौन–कौन से अध्ययन करने शेष हैं। इसके द्वारा विशिष्ट सामाजिक विज्ञान में कौन–कौन से अध्ययन नहीं हुए हैं का भी पता चल जाता है।

जहां उपलब्ध ज्ञान का संक्षिप्तीकरण हो चुका है उससे यह भी पता चल जाता है कि कौन से तथ्य वर्गीकृत तथा संगठित नहीं किए गए हैं।

(घ) **तथ्यों का पूर्वानुमान** (Forecast of Facts) : सैद्धांतिक अनुसंधान का एक प्रमुख उद्देश्य विज्ञान में तथ्यों की भविष्यवाणी अथवा पूर्वानुमान प्रस्तुत करना है। सैद्धांतिक अनुसंधान का कर्तव्य है कि वह स्पष्ट करे कि कौन–कौन से तथ्यों के घटने की संभावना है। यह निर्देश देता है कि कौन से तथ्य एकत्र करने हैं और कौन से तथ्य नहीं।

(ङ) **तथ्यों का वर्गीकरण** (Classification of Fact) : सैद्धांतिक अनुसंधान विज्ञान में उपलब्ध ज्ञान, तथ्यों आदि का वर्गीकरण, सारणीयन आदि करता है। इसके द्वारा सामाजिक वैज्ञानिकों को विषय की पूर्ण जानकारी हो जाती है कि कौन–कौन से अध्ययन के क्षेत्र शेष हैं जिनका अध्ययन करना बाकी है। इस अनुसंधान का यह उद्देश्य तथा कार्य विशेष महत्वपूर्ण है।

(च) **समस्याओं के कारणों की खोज** (Disvovery of Causes of Problems) : सैद्धांतिक अनुसंधान का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक अनुसंधान व्यावहारिक समस्याओं के केंद्रीय कारकों का पता लगाना है। मान लीजिए कि विभिन्न प्रजाति के समुदाय खेल के मैदान में लड़ते हैं। इस समस्या का तत्काल समाधान यह कर दिया जाता है कि अलग–अलग प्रजाति समूहों को अलग–अलग समय में खेल का मैदान खेलने को दिया जाए। परंतु सैद्धांतिक अनुसंधान इनका समाधान प्रस्तुत करेगा कि उन्हें समाजीकरण, सामाजिक अंतःक्रिया, समूह के मानदंड आदि बचपन से सिखाए जाएं तो बड़े होकर वे परस्पर मित्रतापूर्वक रहेंगे। सैद्धांतिक अनुसंधान सामान्य ज्ञान से कहीं अधिक दूर की जानकारी देता है।

(छ) **समस्याओं का समाधान** (Remedy for Problems) : सैद्धांतिक अनुसंधान अनेक विकल्पों तथा समाधानों का विकास करता है जिसके परिणामस्वरूप समस्याओं के अनेक समाधान उपलब्ध हो जाते हैं। समाधान से समस्याओं के निराकरण की लागत कम हो जाती है। गुडे एवं हाट का कहना है कि सिद्धांतों के विकास के द्वारा अनेक व्यावहारिक समस्याओं का समाधान संभव है।

(ज) **प्रशासन को व्यवस्थित करना** (Systematizing of Administration) : अनुसंधान प्रशासन को व्यवस्थित रूप से चलाने में सहायता पहुंचाता है। सरकारी तथा व्यापारिक संगठनों ने अनुसंधान केंद्रों से सूचनाएं एकत्र करके उनका उपयोग करना शुरू कर दिया है। सामाजिक सैद्धांतिक अनुसंधान, उपकरणों तथा तकनीकों का मूल्यांकन करते हैं, जिनका पुरानी तथा नई समस्याओं के समाधान में उपयोग किया जाता है। गुडे एवं हाट के अनुसार सैद्धांतिक अनुसंधान का एक प्रमुख उद्देश्य समस्याओं का समाधान प्रदान करना है जो प्रशासन को मानकात्मक पद्धति प्रदान करता है।

2. **व्यावहारिक उद्देश्य** (Applied Objectives)–सामाजिक शोध के दूसरे उद्देश्य की प्रकृति व्यावहारिक है। इसका तात्पर्य यह है कि सामाजिक शोध सामाजिक जीवन तथा विभिन्न घटनाओं के संबंध में हमें जो जानकारी प्रदान करता है उसका उपयोग हम अपने व्यावहारिक जीवन में भी कर सकते हैं। और भी स्पष्ट रूप से सामाजिक शोध सामाजिक जीवन के संबंध में हमारे ज्ञान का एक महत्त्पूर्ण शोध है। वह ज्ञान हमें सामाजिक समस्याओं को हल करने व सामाजिक जीवन को अधिक प्रगतिशील बनाने के लिए आवश्यक योजना बनाने में मदद कर सकता है। इस दृष्टिकोण से सामाजिक शोध के व्यावहारिक उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते हैं–

(क) ज्ञान का विकास (Development of Knowledge): अनुसंधान का प्रमुख उद्देश्य ज्ञान का विकास करना है। सामाजिक अनुसंधान का उद्देश्य सामाजिक घटनाओं, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्थाओं, सामाजिक जीवन, सामाजिक परिर्वतन आदि के संबंध में ज्ञान का विकास करना है। यह अनुसंधान समाज की संरचना और उसके कार्यों की व्याख्या तथा वर्णन करता है। यह हर क्षेत्र में ज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि करता है। उपलब्ध ज्ञान को एकत्र करके क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित करता है। संचयित ज्ञान के आधार पर आगे अनुसंधान करता है। नवीन तथ्यों की खोज करता है।

(ख) प्रकार्यात्मक अध्ययन (Function at Study): व्यावहारिक अनुसंधान सामाजिक घटनाओं तथा अध्ययन की सामग्री से संबंधित तथ्यों का प्रकार्यात्मक अध्ययन करता है। तथ्यों में परस्पर एक–दूसरे के बीच कारण–प्रभाव का क्या संबंध है? सामाजिक व्यवस्था को समझने के लिए, संबंधित तथ्यों के गुण और प्रभाव का अध्ययन आवश्यक है। सामाजिक अनुसंधान इस कार्य को क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित रूप से करके हमारे सामने प्रस्तुत करता है कि तथ्यों के क्या–क्या गुण, दोष, प्रभाव आदि हैं। विभिन्न तथ्य दूसरे तथ्यों से कैसे प्रभावित होते हैं तथा किस प्रकार से उनको प्रभावित करते हैं। इससे सामाजिक व्यवस्थाओं तथा अन्य सामाजिक घटनाओं को समझने में सुगमता रहती है। समाज के सन्तुलन, गतिशीलता, निरंतरता तथा व्यवस्था आदि के लिए इन सबका ज्ञान आवश्यक है, जो सामाजिक अनुसंधान, समाजशास्त्रियों, सामाजिक वैज्ञानिकों, समाज सुधारकों, योजनाकारों आदि को उपलब्ध करवाते हैं। गुडे एवं हॉट ने भी लिखा है कि बाल–अपराध, निर्धनता, बेकारी आदि सामाजिक समस्याओं को समझने में यह ज्ञान उपयोगी रहता है।

(ग) सिद्धांतों की खोज (Discovery of theories): व्यावहारिक अनुसंधान का एक प्रमुख उद्देश्य नए–नए सिद्धांतों की खोज करना है। सिद्धांत तथ्यों का परस्पर संबंध बताते हैं। सिद्धांत तथ्यों का संक्षिप्तीकरण करते हैं। सिद्धांतों की खोज करना तथा निर्माण करना व्यावहारिक अनुसंधान के विभिन्न

चरणों में से अंतिम चरण, नियमों अथवा सिद्धांतों का निर्माण, जांच, संशोधन आदि हैं। सामाजिक घटना से संबंधित तथ्यों का संकलन करने के बाद व्यावहारिक अनुसंधान तथ्यों के आधार पर उनके परस्पर संबंधों को कथन के रूप में प्रस्तुत करता है। ये कथन प्रयोग–सिद्ध तथ्यों पर आधारित होते हैं। व्यावहारिक अनुसंधान सिद्धांतों के द्वारा सामाजिक संगठन की व्याख्या तथा पूर्वानुमान करता है। इसके द्वारा घटनाओं का अनुमान लगाना सरल हो जाता है।

(घ) **अवधारणाओं का विकास** (Development of Concepts): व्यावहारिक अनुसंधान के अनेक चरण हैं। यह कहना तो बहुत कठिन है कि कौन–सा चरण अधिक महत्वपूर्ण है और कौन–सा कम; परंतु प्रत्येक चरण के अंतर्गत कोई–न–कोई उद्देश्य अवश्य निहित होता है। इसमें एक चरण अवधारणाओं की व्याख्या, स्पष्टीकरण तथा संक्षिप्तीकरण का होता है। अवधारणाएं तथ्यों की व्याख्या करती हैं। जब नए–नए तथ्य अनुसंधान द्वारा खोजे जाते हैं तो उनकी व्याख्या करने वाली अवधारणाओं की भी पुनः परीक्षा करनी होती है। नए तथ्यों के संदर्भ में पुरानी अवधारणाओं की पुनः व्याख्या करना, स्पष्टीकरण करना, सुनिश्चित करना आदि कार्य सामाजिक अनुसंधान को करना आवश्यक हो जाता है। बदली हुई परिस्थितियों में अनुसंधान नए–नए तथ्यों, अवधारणाओं और सिद्धांतों की खोज करता है, निर्माण करता है, इनकी स्थापना करता है। तथा इनमें आवश्यक होता है तो संशोधन भी करता है।

उपरोक्त विवेचन से यह कदापि नहीं समझ लेना चाहिए कि सामाजिक शोधकर्ता ही ज्ञान को व्यावहारिक अथवा सैद्धांतिक रूप प्रदान करता है। वह केवल ज्ञान प्राप्त करता है तथा तथ्यों के आधार पर सिद्धांतों को स्थापित करता है। श्रीमती यंग लिखती हैं कि सामाजिक शोध का उद्देश्य केवल सामाजिक जीवन को समझकर उस पर अधिक नियन्त्रण स्थापित करना होता है।

5.4.1 क्रियात्मक शोध

स्टीफन कोरे के अनुसार, "क्रियात्मक अनुसंधान ऐसा शोध है जिस पर अभ्यासकर्ता अपने अभ्यास को सुधारने के उद्देश्य से कार्य करते हैं।"

इलियट (1991) के अनुसार, "क्रियात्मक शोध वह शोध है जहां शोधकर्ता का प्रमुख उद्देश्य अपनी क्षमता एवं तदुपरांत अभ्यास को बेहतर बनाना है न कि सैद्धांतिक ज्ञान में वृद्धि करना।"

अभ्यास में वृद्धि करने से अभिप्राय है प्रक्रिया एवं उत्पादों के परिणाम की गुणवत्ता में सुधार करना। क्रियात्मक शोध की एक पारिभाषिक विशेषता यह है कि इसमें शोधकर्ता स्वयं परिवर्तन के लिए इस आधार पर पहल करता है कि उसने इस संबंध में कुछ ऐसा महसूस किया है कि किसी चीज को परिवर्तित करके किस प्रकार से स्थितियों को बेहतर बनाया जा सकता है। शोधकर्ता प्रक्रिया के माध्यम से शोध के

अहसास के प्रति एवं मूल्यों के कायाकल्प के लिए मार्गदर्शन प्रदान करता है। शोध के परिणाम पहले से ही निर्धारित उद्देश्य अथवा विशिष्ट लक्ष्यों की तरह परिभाषित नहीं होते।

रीडन एवं ब्रैडबरी के अनुसार, "दोनों मात्रात्मक एवं गुणात्मक व्यावहारिक शोध का उद्देश्य पहले शोध कार्य करना, उसके परिणामों को पत्रिकाओं एवं अधिवेशनों में प्रकाशित करवाने के बाद अभ्यास में सुधार करना एवं समस्याओं का समाधान करना है। जबकि क्रियात्मक शोधकर्ता स्वयं अपने ही शैक्षणिक ज्ञान का कायाकल्प करने के उद्देश्य रखता है।"

क्रियात्मक शोध की विशेषताएं

क्रियात्मक शोध की निम्न विशेषताएं हैं—

- **उद्देश्य** : क्रियात्मक शोध का निष्पादन विद्यमान स्थिति में सुधार के लिए किया जाता है। क्रियात्मक शोध का उद्देश्य किसी शैक्षणिक व्यवस्था में सुधार लाना है। चाहे वह कक्षा की स्थिति हो अथवा समस्त विद्यालय की। क्रियात्मक शोध का प्रयोग बड़े संगठनों अथवा संस्थानों द्वारा पेशेवर शोधकर्ताओं के मार्गदर्शन एवं सहयोग से किया जा सकता है। वहां इसका उद्देश्य उस वातावरण में, जहां ये संस्थान कार्यरत हैं, के अंतर्गत रणनीतियों, गतिविधियों एवं ज्ञान में सुधार करना है। शोधकर्ता एक प्रारूप निर्माता एवं हिस्सेदार के रूप में दूसरों के साथ इस उद्देश्य के लिए कार्य करता है कि वह कार्य करने का कोई नया ढंग प्रस्तुत करेगा जो कार्याभ्यास को बेहतर बनाएगा।
- **सहभागिता** : क्रियात्मक शोध एक सहभागितापूर्ण वातावरण में संस्थान के लोगों की प्रतिभागिता के साथ संपूर्ण होता है। ये सभी लोग कार्य करने के किसी नए एवं बेहतर ढंग में रुचि रखते हैं। क्रियात्मक शोध में मुक्त सम्प्रेषण के माध्यम से एक सहभागिता का वातावरण तैयार किया जाता है।
- **निरंतर शोध** : क्रियात्मक शोध एक प्रकार का निरंतर किया जाने वाला शोध है। क्रियात्मक शोध किसी भी गतिविधि की प्रक्रिया एवं कार्य करने के ढंग अथवा व्यवस्था में बेहतरी एवं सुधार की बात करता है। इसलिए इसे निरंतर रूप से किया जा सकता है।
- **पूर्व निर्धारित प्रारूप** : क्रियात्मक शोध में कोई पूर्व निर्धारित उद्देश्य नहीं होता। इस शोध का शोध प्रारूप लचीला होता है। शोध समस्या का निर्माण भी बेहतरी एवं सुधार के दृष्टिकोण से किया जाता है। अतः शोधकर्ता इस आधार पर शोध की दिशा किसी भी समय बदल सकता है।
- **त्वरित परिणाम** : क्रियात्मक शोध न तो आधारभूत शोध की तरह लंबे समय के लिए अर्थात सिद्धांतों के निर्माण के रूप में परिणाम देता है और न ही व्यावहारिक शोध की तरह किसी समस्या का समाधान करता है। क्रियात्मक

शोध के परिणाम एक विशिष्ट (सामान्यतया छोटे एवं किसी एक समस्या की गहराई में) समस्या का त्वरित समाधान प्रदान करते हैं।

- **विशिष्ट परिणाम** : क्रियात्मक शोध के परिणामों का व्यापकीकरण अथवा सामान्यीकरण संभव नहीं होता, क्योंकि इस प्रकार का शोध एक बहुत ही विशिष्ट समूह अथवा विषय को ध्यान में रखकर किया जाता है। हालांकि यदि वैसी ही समस्या कहीं और उत्पन्न होती है अथवा कहीं और उसी प्रकार का सुधार किया जाना होता है तो पुराने परिणामों से सहायता ली जा सकती है।

5.4.2 सहभागी शोध

व्हायटे के अनुसार, "सहभागी शोध वह है जहां शोध का प्रमुख उद्देश्य एक ऐसा वातावरण एवं प्रक्रिया का निर्माण करना होता है जहां संदर्भ से बंधा हुआ ज्ञान एक 'स्थानिक सिद्धांत' के विकास के रूप में उदित होता है जो कि समझने योग्य भी होता है और क्रियात्मक भी। सहभागी शोध की पहल संगठनों द्वारा अपनी रुचि के लिए की जाती है। शोधकर्ता एवं प्रतिभागी एक बंधनमुक्त रूप से परिभाषित समूह प्रक्रिया में अध्ययन एवं अपनी सामाजिक वास्तविकता को बदलने के लिए सक्रिय रूप से भाग लेते हैं।"

सहभागी क्रियात्मक शोध के लक्ष्य– बेहतर योग्यता एवं अभ्यास और सहभागी शोध के लक्ष्य– सामाजिक वास्तविकता को बदलने एवं व्यावहारिक उद्देश्यों को समूह प्रतिभागिता द्वारा प्राप्त करने, इन दोनों लक्ष्यों को जोड़ता है। शोध की इस सोच के प्रारूप का निर्माण संयुक्त रूप से पेशेवर विशेषज्ञों के मध्य चर्चा एवं संगठन के कुछ सदस्यों की सक्रिय सहभागिता द्वारा होता है। सहभागी क्रियात्मक शोध यह स्वीकार करता है कि जो लोग किसी समस्या से प्रभावित होते हैं वे उस समस्या को सबसे बेहतर समझ सकते हैं एवं उसका हल प्रदान कर सकते हैं। इसके अंतर्गत स्थानिक एवं अनुभवजन्य ज्ञान को महत्व दिया जाता है। प्रतिभागी आंकड़ों का संकलन करते हैं एवं परिणामों का विश्लेषण करते हैं।

शोधकर्ता के पास शोध के विषय अथवा प्रारूप पर कठोर नियंत्रण नहीं होता, परंतु वह उस स्थिति में होना आवश्यक है कि शोध समस्या प्रतिभागियों के लिए प्रासंगिक एवं महत्वपूर्ण रहे और वह विश्वासप्रद विधियों का प्रयोग करे।

क्रियात्मक एवं व्यावहारिक शोध में अंतर

कई बार व्यावहारिक शोध एवं क्रियात्मक शोध को एक ही समझा जाता है। कुछ विद्वान क्रियात्मक शोध को व्यावहारिक शोध का ही एक विशेष प्रकार मानते हैं। क्रियात्मक एवं व्यावहारिक शोध को अधिक गहराई से समझने के लिए अग्रलिखित अंतर प्रस्तुत हैं–

क्रमांक	अंतर का आधार	क्रियात्मक शोध	व्यावहारिक शोध
1	उद्देश्य	क्रियात्मक शोध का उद्देश्य किसी भी प्रक्रिया अथवा अभ्यास में सुधार करना एवं उसे बेहतर बनाना है।	व्यावहरिक शोध का उद्देश्य किसी भी समस्या का समाधान करना है।
2	शोध समस्या के उत्पत्ति	इसमें वास्तव में शोध के लिए कोई समस्या विद्यमान नहीं होती। जब भी शोधकर्ता को कहीं भी सुधार का कोई क्षेत्र दिखाई पड़ता है वह उसे शोध समस्या में परिवर्तित कर लेता है।	इसमें शोध समस्या पहले से ही तैयार होती है केवल उसे तराशने में समय लगता है।
3	शोध समस्या के निर्धारक	शोध समस्या का निर्धारण स्वयं शोधकर्ता द्वारा किया जाता है।	शोध समस्या का निर्धारण शोध ग्राहक द्वारा। शोधकर्ता केवल उसे बेहतर बनाकर अपनी सलाह देता है।
4	महत्व	क्रियात्मक शोध न केवल शिक्षा अपितु अन्य क्षेत्रों में भी महत्वपूर्ण है। यह हर वातावरण में कार्याभ्यास से संबन्धित प्रक्रियाओं को बेहतर बनाता है। परंतु इसका महत्व शिक्षा एवं व्यवसाय के क्षेत्र में सबसे अधिक है, क्योंकि वहां बहुत सी गतिविधियों में निरंतर सुधार की आवश्यकता होती है।	व्यावहारिक शोध का महत्व व्यवसाय के क्षेत्र में सबसे अधिक है, क्योंकि व्यावसायिक जगत में समस्याएं सबसे अधिक एवं निरंतर रूप से उत्पन्न होती हैं।
5	शोध प्रविधि	क्रियात्मक शोध में शोध प्रविधि व्यावहारिक शोध की अपेक्षा लचीली होती है। शोध का मुख्य उद्देश्य प्रक्रिया में सुधार होता है, अतः शोध प्रविधि में किसी भी समय इस उद्देश्य के अनुसार परिवर्तन किया जा सकता है।	व्यावहारिक शोध की शोध प्रविधि मौलिक शोध की अपेक्षा लचीली होती परंतु क्रियात्मक शोध की अपेक्षा कठोर होती है, क्योंकि इसमें समस्या का समाधान प्रमुख होता है इसलिए बहुत अधिक भटकाव की गुंजाइश नहीं होती।
6	व्यापकीकरण	इसमें व्यापकीकरण संभव नहीं होता, क्योंकि यह स्थानिक समस्याओं का समाधान करता है जैसे एक कक्षा एवं एक समूह के विद्यार्थियों से संबन्धित।	इसमें एक सीमा तक व्यापकीकरण संभव है (यह सीमा समग्र एवं प्रतिचयन द्वारा निर्धारित की जाती है)।
7	क्षेत्र	इसका क्षेत्र बहुत संकुचित होता है।	व्यावहारिक शोध का क्षेत्र क्रियात्मक शोध की अपेक्षा विस्तृत होता है।
8	शोधकर्ता की निपुणता	इसमें शोधकर्ता का शोध प्रविधि में बहुत अधिक निपुण होना आवश्यक नहीं है, परंतु उसे उस वातावरण का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है जिसमें शोध किया जा रहा है।	इसमें शोधकर्ता को शोध प्रविधि एवं समस्या से व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक ज्ञान में निपुण होना चाहिए।
9	अनुप्रयोग का निर्धारण	इसका अनुप्रयोग तुरंत किया जाता है।	इसका अनुप्रयोग क्रियात्मक शोध की अपेक्षा अधिक समय लेता है। हालांकि क्रियात्मक शोध की तरह इसमें भी शोध परिणामों का अनुप्रयोग पूरी तरह से सुनिश्चित एवं पूर्व निर्धारित होता है।

5.4.3 सामाजिक शोध में नैतिक मुद्दे

अधिकांश व्यक्ति जब नैतिकता का विचार करते हैं तो बहुधा ये उचित व अनुचित के मध्य भेद करने के नियमों के विषय में सोचते हैं, जैसे कि स्वीकार्य व अस्वीकार्य व्यवहार के मध्य अन्तर करने की आचार–संहिता बनाने के संदर्भ में नैतिकता का विचार रखा जाता है। सामान्यतः घर पर बाल्यावस्था में ही व्यक्ति को नैतिक सिद्धान्त सिखा दिये जाते हैं, फिर अन्य सांस्कृतिक अथवा सामाजिक व्यवस्थापनों में नीति–ज्ञान प्रदान किया जाता है। वैसे नैतिक विकास आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है जिसे किसी स्थान अथवा आयु–अवस्था तक सीमित समझकर नहीं देखा जा सकता। नैतिक नियम सर्वव्यापक होते हैं कि इन्हें सहजबोध कहा जा सकता है। अब प्रश्न यह उठता है कि जब नैतिकता सहजबोध समान है तो फिर विश्व में इतने अधिक नैतिक विवाद एवं समूचे समाज में इतने नीति–सम्बन्धी विरोधाभास क्यों हैं?

इन असहमतियों की एक आंशिक व्याख्या यह की जाती है कि सभी लोग सर्वसाधारण नैतिक नियमों को मानते हैं परन्तु प्रत्येक व्यक्ति इन्हें भिन्न प्रकार से परिभाषित व लागू करता है तथा विभिन्न रीतियों में इन नियमों को संतुलित करने के प्रयासों के मध्य उसके अपने मूल्य व जीवन–अनुभव दूसरों से भिन्न होते हैं।

नीति और विधि

अधिकांश समाज में वैधानिक प्रावधान किये गये हैं जिनसे आचरण को विनियमित रखने के प्रयास किये जाते हैं परन्तु नैतिक नियम अधिक व्यापक होते हैं व विधियों (कानूनों) की अपेक्षा अधिक अनौपचारिक होते हैं। यद्यपि अधिकांश समाज द्वारा व्यापक स्वीकृत नैतिक मानदण्डों का प्रवर्तन (लागू) कराने हेतु विधि (कानून) का प्रयोग किया जाता है तथा नैतिक व वैधानिक नियमों में समान अवधारणाएं उपयोग की जाती हैं किन्तु फिर भी यह स्मरण रखना महत्वपूर्ण है कि नीतिशास्त्र व विधि समान नहीं हैं।

कोई कार्य किसी देश में वैध माना जा रहा हो किन्तु सम्भव है कि वह नैतिक न हो। ऐसा भी हो सकता है कि उसे अवैध घोषित कर दिया गया हो परन्तु वह नैतिक हो। हम विधियों की समालोचना, मूल्यांकन, प्रयोजनसंगतता सिद्ध करने व व्याख्या करने में भी नैतिक अवधारणाओं एवं सिद्धान्तों को उपयोग में ला सकते हैं। वस्तुतः विगत शताब्दी में कई समाज–सुधारकों ने जनता को इस दिशा में प्रेरित किया कि विधि–कानूनों की अवहेलना की जाये ताकि अनैतिक अथवा अन्यायसंगत विधि–कानूनों को हटाया जा सके। शांतिपूर्ण नागरिक–अवज्ञा राजकीय दृष्टिकोणों को व्यक्त करने की एक नैतिक रीति है।

'नीतिशास्त्र' को परिभाषित करने के एक अन्य रूप में ऐसे विषयों पर जोर दिया जाता है जिनमें आचार के मानकों का अध्ययन किया जाता है, जैसे कि दर्शन, धर्मशास्त्र, विधि, मनोविज्ञान अथवा सामाजिकी। उदाहरणार्थ 'चिकित्सात्मक नीतिशास्त्री' वह व्यक्ति होता है जो चिकित्सा के क्षेत्र में नैतिक मापदण्डों का अध्ययन करता है। नीतिशास्त्र को ऐसी विधि (मेथड), कार्यविधि अथवा संदर्भ के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है जिसमें यह निर्णय किया जाता है कि जटिल समस्याओं व प्रसंगों में कार्य व विश्लेषण कैसे करना है। उदाहरण के लिए वैश्विक तापोन्नयन (ग्लोबल वार्मिंग) जैसे जटिल प्रसंग का विचार करते समय इस समस्या की ओर आर्थिक, पारिस्थितिकीय, राजकीय व नैतिक समस्त परिप्रेक्ष्यों को साथ में रखकर देखना आवश्यक होता है। अर्थवेत्ता वैश्विक तापोन्नयन से जुड़ी विभिन्न नीतियों की लागत व लाभ–हानियों के खाके पर विचार करेगा जबकि पर्यावरणविद् इस विषय में संकट में पड़े विभिन्न नैतिक मूल्यों व सिद्धान्तों का विचार करेगा।

कई विभिन्न विषयों, संस्थानों एवं वृत्तियों में अपने–अपने लक्ष्यों व उद्देश्यों के अनुकूल नियम व व्यवहार निर्धारित कर लिए गये होते हैं। इन नियम–व्यवहारों से उस विषय के सदस्य अपने कार्यकलापों व गतिविधियों में समन्वय ला पाते हैं एवं जन–विश्वास बनाये रखते हैं। उदाहरणार्थ चिकित्सा, विधि, अभियांत्रिकी एवं व्यापार में लागू नैतिक नियमों से तत्सम्बन्धित विषयों में कार्यरत् लोगों के व्यवहार को विनियंत्रित रखा जाता है। नैतिक नियमों से शोध के लक्ष्यों का निर्धारण भी किया जाता

है एवं इन्हें ऐसे लोगों पर लागू किया जाता है जो वैज्ञानिक शोध, अन्य विद्वत् गतिविधियों अथवा रचनात्मक कार्यकलापों में संलग्न होते हैं। इस विषय में विशेषज्ञताप्राप्त विषय पृथकता से निर्धारित कर लिया गया है जिसे शोध–नीतिशास्त्र कहा जाता है।

शोध में नैतिकता की महत्ता

शोध में नैतिक नियमों का पालन करना अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसके कई कारण हैं–

1. नियमों से शोधों के लक्ष्यों को बढ़ावा मिलता है, जैसे– ज्ञान, सत्य की प्राप्ति एवं त्रुटि से बचना। उदाहरणार्थ इसके अनु कूटकरण (जालसाजी), मिथ्याकरण, शोध–तथ्यों की भ्रामक व्याख्या पर लगाये प्रतिबंधों से सत्य की ओर प्रेरित होने व त्रुटि से बचने को प्रोत्साहित किया जाता है।
2. चूंकि शोध में विभिन्न विषयों व संस्थानों में कई भिन्न–भिन्न लोगों में सहकार व समन्वय का अत्यधिक महत्व होता ही है अतः नैतिक नियमों के निर्धारण से ऐसे मूल्यों को बढ़ावा मिलता है जो सहकारी कार्य में आवश्यक हैं, जैसे– विश्वास, जवाबदेही, पारस्परिक सम्मान व निष्पक्षता। उदाहरणार्थ शोध के कई नैतिक नियमों से बौद्धिक सम्पदा–लाभों को सुरक्षा मिलती है एवं साहचर्य प्रोत्साहित होता है, जैसे कि लेखकाधिकार हेतु दिशानिर्देश, कॉपीराइट, पेटेंट नीतियां, डाटा–शेयरिंग नीतियां एवं संगी–साथियों द्वारा समीक्षा के दौरान गोपनीयता–नियम इत्यादि। अधिकांश अनुसंधाता अपने योगदान के लिए श्रेय अर्जित करने के इच्छुक रहते हैं व अपने विचारों को चोरी जाने देना अथवा सार्वजनिक घोषणा से पूर्व उजागर होने देना नहीं चाहते।
3. कई नैतिक नियमों से यह सुनिश्चित करने में सहायता रहती है कि शोधकर्ताओं को जनता के प्रति जवाबदेह ठहराया जा सकता है। उदाहरणार्थ विभिन्न देशों में ऐसे अधिनियम बनाये गये हैं कि शोध–कदाचार को रोका जाये, मानव–शरीर को सुरक्षा प्रदान की जाये, पशु–क्रूरता से बचा जाये इत्यादि द्वारा यह सुनिश्चित किया जाता है कि सार्वजनिक धनराशि से निधिपूर्ति किये जाने वाले शोधकर्ता प्रजा के प्रति उत्तरदायी हैं।
4. शोध में नैतिक नियमों से शोध हेतु जन–सहयोग प्राप्त करने में भी सहायता होती है। लोग तब शोध–परियोजना की निधि–पूर्ति के इच्छुक हो सकते हैं जब वे शोध की गुणवत्ता व अखण्डता पर विश्वास करें। अन्ततः कई शोध–नियम अन्य महत्वपूर्ण नैतिक व सामाजिक मूल्यों को बढ़ावा देते हैं, जैसे कि सामाजिक उत्तरदायित्व, मानवाधिकार, जन्तु–कल्याण, विधि–अनुपालन, स्वास्थ्य व सुरक्षा। शोध में नैतिक गिरावट से मानवीय व पशु विषय दुष्प्रभावित हो जाते हैं, शिक्षार्थी व जनता पर भी गम्भीर कुप्रभाव पड़ते हैं। उदाहरणार्थ क्लिनिकल ट्रायल में आंकड़ों का कूटकरण कर रहा शोधकर्ता रोगियों के मरने अथवा हानि पहुंचने का कारण बन सकता है एवं जैविक सुरक्षा अथवा विकिरण से सम्बन्धित विनियमों व दिशानिर्देशों का विधिवत् अनुकरण न करने वाला शोधकर्ता अपने व अपने अधीनस्थों सहित रोगियों एवं शिक्षार्थियों के भी जीवन, स्वास्थ्य अथवा सुरक्षा को संकट में डालता है।

जिन शोधों में मानव को प्रयोग–सामग्री के रूप में प्रयोग किया जाना हो वहां जटिल नैतिक, वैधानिक, सामाजिक व राजकीय प्रसंग पनपते हैं। शोध में विशेष रुचि ऐसे नैतिक प्रसंगों के विश्लेषण में रहती है जो शोध में सहभागियों के रूप में लोगों के सम्मिलित होने से उभरते हैं। शोध में नैतिकता के उद्देश्य भिन्न होते हैं–

- मानव–सहभागियों को सुरक्षित रखना।
- यह सुनिश्चित करना कि शोध का संचालन इस प्रकार किया जायेगा कि व्यक्तियों, समूहों एवं/अथवा समग्र समाज का हित होगा।
- विशिष्ट शोध गतिविधियों व परियोजनाओं को परखने के लिए इनकी नैतिक प्रखरता तथा सतर्क पूर्व सहमति की प्रक्रिया, गोपनीयता की सुरक्षा एवं जोख़िम–प्रबन्धन जैसे मुद्दे।

अपने अधिकांश भाग में शोधात्मक–नीतिशास्त्र में जैवचिकित्सात्मक शोध को पारम्परिक बल दिया जाता है। शोधात्मक–नीतिशास्त्र का अनुप्रयोग करते हुए जैवचिकित्सात्मक शोध का परीक्षण व मूल्यांकन किया जाता रहा है एवं इसे विगत शताब्दी में विकसित किया गया एवं इसने शोध के नैतिक संचालन के दिशानिर्देशों व वर्तमान प्रविधियों को बहुत प्रभावित किया है। वैसे मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान शोध में भिन्न–भिन्न प्रकारों के नैतिक प्रसंग पनपते हैं। शोध करने की नवीन व उभरती हुई विधियां, यथाः ऑटो–एथ्नोग्रॉफ़ी एवं सहभागी कार्य–शोध में महत्वपूर्ण किन्तु स्पष्टतया भिन्न नैतिक प्रसंग सामने आते हैं व शोधकर्ताओं हेतु बाध्यताएं प्रस्तुत होती हैं।

सुभेद्य व्यक्तियों (जैसे कि बच्चे, वैकासिक या संज्ञानात्मक अक्षमताओं वाले अथवा गृहविहीन अथवा वैधानिक स्थिति में जूझ रहे व्यक्ति) की भागीदारी वाले शोध में किसी भी शोध–परिदृश्य में सर्वथा भिन्न प्रसंग उत्पन्न हो जाया करते हैं।

शोधात्मक–नीतिशास्त्री वर्तमान में सर्वत्र उन चुनौतियों से जूझ रहे हैं जिनमें अन्य विषयी विस्तार क्षेत्रों की वैश्विक चिंताएं छलक रही हैं, जैसे कि विकासशील देशों में शोध–संचालन, आनुवंशिक पदार्थ युक्त शोध की सीमाएं एवं प्रौद्योगिकी व इंटरनेट क्षमताओं में प्रोन्नति में निजता की सुरक्षा।

कनाडा में शोध में नैतिकता के संबंध में वर्तमान वाद–विवाद व चुनौतियों में उन धारणाओं को चुनौती मिलनी सम्मिलित है जिनसे शोध की ओर बढ़ा जाता है। इसीलिए औपचारिक नीतिशास्त्री समीक्षा आवश्यक होती है। संघीय व प्रान्तीय स्तरों पर शोधात्मक–नीतिशास्त्र मण्डलों (जिन्हें यू.एस. में संस्थागत समीक्षा मण्डल कहा जाता है) के कार्य की निगरानी की जाती है। शैक्षणिक, क्लिनिकल व कॉर्पोरेट व्यवस्थापनों में इन मण्डलों के न्यायाधिकार से शोध सहकार भाव का बहुविषयी आयाम बढ़ रहा है एवं कठोर संघीय व प्रान्तीय निजता–विधिनिर्माण द्वारा व्युत्पन्न चुनौतियों से निपटा जा रहा है। शोधात्मक–नीतिशास्त्र में वर्तमान में भांति–भांति के ज्वलन्त प्रसंगों की विस्तृत सूची तैयार है। इस गतिशील क्षेत्र में ज्ञान–मीमांसा से लेकर दार्शनिक प्रसंगों तक शोध–नीतिशास्त्रियों द्वारा संस्थानों से सम्बन्धित सर्वांगीण प्रसंगों व व्यष्टिगत शोधात्मक–नीतिशास्त्र की समीक्षाओं के स्तर पर उपख्यानमूलक प्रसंगों से भी निपटा

जा रहा है जिनमें शोधात्मक–नीतिशास्त्री की समीक्षाएं की जाती हैं एवं शासन के सम्बद्ध सामाजिक, वैधानिक व राजकीय प्रसंगों की शोध–समीक्षाएं की जाती हैं तथा शोधात्मक–नीतिशास्त्रीय गतिविधियों का निरीक्षण किया जाता है।

शोध में नैतिकता हेतु संहिताएं एवं नीतियां

शोध संचालित करने के महत्व को स्वीकारते हुए कई व्यावसायिक संगठनों व संघों सहित शासकीय विभागों एवं विश्वविद्यालयों ने भी शोधात्मक–नीतिशास्त्र से सम्बन्धित विशिष्ट संहिताओं, परिनियमों व नीतियों को अपनाया है। निधिप्राप्त (फ़ण्डेड) अनुसंधाताओं के लिए NIH Ethics Program, National Science Foundation (NSF), Food and Drug Administration (FDA), Environmental Protection Agency (EPA), and the US Department of Agriculture (USDA) जैसे शासकीय विभागों ने नीतिशास्त्री नियम बनाये हुए हैं। अन्य प्रभावी शोधात्मक–नीतिशास्त्रीय नीतियों के अन्तर्गत Biomedical Journals (International Committee of Medical Journal Editors), the American Chemical Society, The Chemist Professional's Code of Conduct, Code of Ethics (American Society for Clinical Laboratory Science)American Psychological Association, Ethical Principles of Psychologists and Code of Conduct, Statements on Ethics and Professional Responsibility (American Anthropological Association), Statement on Professional Ethics (American Association of University Professors), the Nuremberg Code and the World Medical Association's Declaration of Helsinki को पाण्डुलिपियां सौंपने हेतु अपेक्षित एकरूप आवश्यकताएं सम्मिलित हैं। विभिन्न संहिताओं में जिन नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों का समावेश किया जाता है उनमें से निम्न मुख्य हैं–

- **निष्ठा (ईमानदारी)**– समस्त वैज्ञानिक संवादों में सत्यनिष्ठा, डाटा की निष्ठापूर्वक रिपोर्ट देना, परिणामों, विधियों व कार्यविधियों सहित प्रकाशन–स्थिति के प्रति भी निष्ठावान् रहना, डाटा को कूटकृत, मिथ्याकृत अथवा भ्रामक रूप से व्याख्यायित करना, सहकर्मियों से, अनुदानदात्री संस्थाओं से व जनता से कपट न करना।
- **विषयपरकता**– प्रयोगात्मक अभिकल्प, डाटा–विश्लेषण, डाटा–व्याख्या, संगी–समीक्षा, कार्मिक निर्णयों, अनुदान–लेखन, विशेषज्ञीय विवरण एवं शोध के अन्य परिप्रेक्ष्यों में पक्षपात से बचना जहां विषयपरकता अपेक्षित अथवा आवश्यक हो। छल–कपट अथवा पक्षपात करने से दूर रहना है। ऐसे व्यक्तिगत अथवा वित्तीय स्वार्थों को सार्वजनिक करना होता है जिनसे शोध पर प्रभाव पड़ सकता हो।
- **अखण्डता**– अखण्डता अत्यंत महत्वपूर्ण है। अपने वचन व करार निभायें; गम्भीरता से कार्य करें; विचार व कर्म में समरूपता रखें।
- **सजगता**– लापरवाही व अज्ञानता से बचना आवश्यक है। अपने स्वयं के कार्य को भी ध्यानपूर्वक व निर्णायकरूपेण परखें और अपने सहकर्मियों के कार्यों को भी जांचें। शोध–गतिविधियों के अभिलेख अनुरक्षित करें, जैसे कि डाटा–एकत्रण, शोध अभिकल्प एवं अभिकरणों व पत्रिकाओं इत्यादि से पत्राचार को भी।

- **स्पष्टता**– डाटा, परिणामों, विचारों, औजारों, संसाधनों इत्यादि को भी साझा करना आवश्यक है। समालोचना एवं नवीन विचारों के प्रति खुलापन रखें।
- **बौद्धिक सम्पदा का आदर**– कॉपीराइट्स, पेटेंट व बौद्धिक सम्पदा के अन्य रूपों का मान रखना चाहिए। वैधानिकरूपेण लिखित पूर्वानुमति के बिना किसी अप्रकाशित डाटा, विधियों अथवा परिणामों का प्रयोग न करें। प्रकाशन के बाद भी समस्त तथ्यों व आंकड़ों के लिए स्रोतों का उल्लेख अवश्य करें जहां श्रेय दिया जाना हो। शोध में सबके योगदानों के लिए आभार जतायें।
- **गोपनीयता**– गोपनीय संवादों को गुप्त रखें, जैसे कि प्रकाशन हेतु प्रस्तुत किये गये प्रपत्र अथवा अनुदान; कार्मिक अभिलेख, व्यापारिक अथवा सैन्य रहस्य, पेटेंट अभिलेख।
- **उत्तरदायी प्रकाशन**– शोध व अध्येतावृत्ति को आगे बढ़ाने के लिए प्रकाशन करें, न कि बस अपने भविष्य को आगे ले जाने के लिये। निरर्थक व दोहरावयुक्त प्रकाशन से बचें।
- **उत्तरदायी परामर्शदान**– शिक्षार्थियों को शिक्षित, पथ–प्रदर्शित करते व सुझाव देते हुए सहायता करें। उनके कल्याण को प्रेरित करें एवं उन्हें अपने निर्णय स्वयं करने की अनुमति प्रदान करें।
- **सहकर्मियों के प्रति सम्मान**– अपने सहकर्मियों का सम्मान करें एवं उनके संग निष्पक्ष व्यवहार करें।

सामाजिक उत्तरदायित्व– सामाजिक कुशलक्षेम को बनाये रखें व उसे बढ़ावा दें। शोध, लोक–शिक्षण व क्षेत्र–समर्थन द्वारा सामाजिक हानियों को शून्य अथवा अल्पतम करने की ओर सचेष्ट बढ़ते रहें।

भेदभाव–रहितता– लिंग, जाति, नस्ल अथवा ऐसे अन्य कारकों के आधार पर सहकर्मियों व शिक्षार्थियों के प्रति किसी भी प्रकार का भेदभाव न करें जिनका सम्बन्ध इनके वैज्ञानिक सामर्थ्य व अखण्डता से न हो।

सामर्थ्य–आजीवन शिक्षण व स्वाध्याय द्वारा अपनी स्वयं की क्षमताएं बढ़ाते व नवीन क्षमताएं उपजाते रहें एवं विशेषज्ञता में और सुधार लाते रहें क्योंकि विशेषज्ञ भी सर्वज्ञ नहीं होते। समग्र विज्ञान में सामर्थ्य–अभिवृद्धि को बढ़ावा देने की दिशा में कदम बढ़ायें।

वैधानिकता– सम्बन्धित विधि–प्रावधानों व संस्थागत सहित शासकीय नीतियों की सटीक जानकारियां रखें व इनका अनुसरण करें।

पशु देखभाल– शोध में पशु–पक्षियों का उपयोग किये जाने की स्थिति में भी इनके प्रति यथोचित सम्मान व देखभाल का भाव बनाये रखें। अनावश्यक अथवा ढंग से तैयार न किये गये जन्तु–क्रियाकलाप न ही करें।

मानव सुरक्षा– प्रयोग माध्यम के रूप में मनुष्य का शोध करते समय हानियों व जोख़िमों को न्यूनतम रखें एवं लाभ को अधिक रखे; मानव–गरिमा, निजता व स्वायत्तता का सम्मान करें; संवेदनशील जनसंख्या के प्रति विशेष सावधानियां बरतें। शोध के लाभों व भारों का वितरण भी निष्पक्षता से करें।

शोध में नैतिक निर्णयन

यद्यपि संहिताएं, नीतियां व सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण व उपयोगी होते हैं परन्तु जैसा कि अन्य नियमों के सन्दर्भ में देखा जाता है इनमें भी प्रत्येक परिस्थिति को इनकी परिधि में रखकर देखना दूरदर्शिता की दृष्टि से उपयुक्त नहीं होता। कई बार इनमें पारस्परिक विरोधाभास–सा उत्पन्न हो जाता है एवं इनकी सुचारु व्याख्या अधिक आवश्यक हो जाती है। इसीलिए अनुसंधाताओं के लिए यह महत्वपूर्ण है कि विभिन्न शोधात्मक–नियमों की व्याख्या करना, आकलन करना व लागू करना सीखें तथा यह भी सीखें कि भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में निर्णय किस प्रकार करने हैं व कार्य कैसे करने हैं। अधिकांश निर्णयों में नैतिक नियमों का स्पष्टवादी अनुप्रयोग किया जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. "समाजशास्त्रीय शोध में मानव समूहों के संबंधों का अध्ययन होता है।"– निम्न कथन किस समाजशास्त्री का है?

   (क) बोगार्डस (ख) ह्विटने

   (ग) मोसर (घ) पी.वी. यंग

6. व्यावहारिक अनुसंधान का प्रमुख उद्देश्य क्या है?

   (क) ज्ञान का विकास (ख) प्रकार्यात्मक अध्ययन

   (ग) सिद्धांतों की खोज (घ) उपरोक्त सभी

5.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (क)
3. (क)
4. (क)
5. (ख)
6. (घ)

5.6 सारांश

प्राचीन युग में प्राथमिक स्रोतों का ही अधिक प्रचलन था। अनुसंधानकर्ता इसको ही महत्वपूर्ण एवं प्रमाणिक मानकर चलता था, परंतु अब द्वितीयक स्रोतों की जैसे–जैसे उसको जानकारी मिलती रहती है, वह अपनी अनुसंधान सामग्री के लिए इन स्रोतों पर पर्याप्त निर्भर होता जा रहा है।

द्वितीयक स्रोतों के अंतर्गत आने वाले ऐतिहासिक प्रलेखों, जीवन इतिहासों ऐतिहासिक डायरियों का महत्व कम नहीं है। इतिहास की उपेक्षा सामाजिक अनुसंधानों में नहीं की जाती।

व्यक्तिगत प्रलेखों का आज फैशन ही चल रहा है। इनको लिखने वाले महान व्यक्ति–लेखक, दार्शनिक, उच्चकोटि के नेता, साहित्यकार, कवि, कूटनीतिज्ञ आदि होते हैं। इन प्रलेखों में विस्तृत सामग्री मिल जाती है, जिससे अनुसंधानकर्ता को यह सुविधा और स्वंतत्रता रहती है कि वह जितनी सामग्री अर्थपूर्ण एवं उपयोगी समझे, उनका संकलन कर सके। क्योंकि ये प्रलेख व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित हैं अतः हमें लेखक के आन्तरिक भावों का पता चलता है कि उसका दृष्टिकोण किसी भी घटना के संबंध में एक विशेष प्रकार का क्यों हो रहा है? उसकी आंतरिक गहराइयों में छानबीन करने का हमें सुअवसर मिलता है, जो शायद हमें अन्य स्रोतों से नहीं मिलता।

सार्वजनिक प्रलेख उन्हें कहते हैं जिन्हें कोई सरकारी या गैर–सरकारी संस्था तैयार करती है। उन्हें प्रकाशित या अप्रकाशित रूप में जनता के लाभ के लिए उपलब्ध कराया जाता है। देश में विभिन्न प्रकार के आयोजन या कार्यक्रम रखे जाते हैं, उनका फिर रिकॉर्ड सरकार अपने पास रखती है। योजनाएं जैसे परिवार नियोजन, प्रौढ़ शिक्षा, तकनीकी प्रगति तथा औधोगिक विकास आदि के संबंध में कई कार्यक्रम समय–समय पर होते रहते हैं। इनके संबंध में आंकड़े, सूचनाएं सुरक्षित रखी जाती हैं। कुछ अर्द्ध या गैर सरकारी संस्थाएं भी अलग से आंकड़े और सूचनाएं रखती हैं।

केवल उन्हीं प्रलेखों को प्रकाशित किया जाता है जो आम जनता द्वारा प्रयोग किए जा सकते हैं। ये सार्वजनिक स्थानों जैसे सार्वजनिक वाचनालयों, स्कूल और कॉलेज पुस्तकालयों में उपलब्ध हो सकते हैं।

दुर्खीम का समाजशास्त्र के विकास में गहरा प्रभाव था, लेकिन उनका प्रभाव केवल यहीं तक सीमित नहीं था। अन्य क्षेत्रों में भी उनका प्रभाव था जो उनके द्वारा 1898 में स्थापित एक पत्रिका 'ले एन्नि सोशियोलॉजिक' के माध्यम से उद्घाटित हुआ। इस पत्रिका से संबद्ध एक बुद्धिजीवी वर्ग का उदय हुआ जिसके केन्द्र में दुर्खीम थे। इसके माध्यम से मानव विज्ञान, इतिहास, भाषा–विज्ञान, मनोविज्ञान आदि विषय पर भी उनके विचारों का प्रभाव पड़ा।

समाजशास्त्र की स्थापना करने वालों में एक ऑगस्ट कॉम्टे के प्रत्यक्षवाद को दुर्खीम के द्वारा 'विज्ञान' के एक नमूने के रूप में लिया गया। यह ध्यान रखना अनिवार्य है कि दुर्खीम के समाजशास्त्र पर ऑगस्ट कॉम्टे का गहरा प्रभाव है। ऑगस्ट कॉम्टे के विचारों ने सभी विज्ञानों की सकारात्मक प्रगति का, जिसका अंतिम पड़ाव समाजशास्त्र होगा, बचाव किया (जिसे उन्होंने आरंभ में सामाजिक भौतिक का नाम दिया) यह सबसे अधिक परिष्कृत सकारात्मक विज्ञान था क्योंकि इसने पूर्व के सभी विज्ञानों के योगदानों को अध्ययन की विषयवस्तु में एकीकृत किया।

दुर्खीम ने पुस्तक 'सुसाइड' में आत्महत्या पर अध्ययन किया है। उनका उद्देश्य इस पुस्तक में मात्र आत्महत्या से संबंधित विवरण देना नहीं है, अपितु यह भी दृष्टांत प्रस्तुत करना है कि किस प्रकार मनुष्य के अधिकांश कार्य में इन पद्धतियों को प्रयुक्त किया जाता सकता है। दुर्खीम ने इस पुस्तक में दर्शाया है कि व्यक्ति किस सीमा तक सामूहिक वास्तविकता से निर्धारित होते हैं। दुर्खीम ने यह प्रदर्शित किया कि किस प्रकार सामाजिक ढंग में अपने जीवन को लेना सर्वाधिक वैयक्तिक एवं व्यक्तिगत कार्य रूप है। उन्होंने यह भी दर्शाया कि व्यक्ति के बाहर की स्थिति, सामाजिक शक्तियां व्यक्ति के आत्महत्या करने के लिए संभावना बनाते हैं।

प्राचीन भारत जनगणना से अनभिज्ञ नहीं रहा था। यूनान से लेकर ब्रिटेन तक के देशों की भांति भारत का संगणना इतिहास भी प्राचीनतम सभ्यताओं से ही प्रारम्भ किया जा सकता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में, जिसका समय (321–269 ई.पू.) चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन काल था, जनगणना करने की विधि के अतिरिक्त कृषि संगणना एवं आर्थिक गणना की विधि का भी उल्लेख मिलता है।

अंग्रेजों द्वारा शासन संभालने के अनेक दशकों बाद जनगणना के प्रयास किए जाने लगे। ईस्ट इंडिया कम्पनी के तत्वाधान में सर थॉमस मुनरो ने सन् 1802, 1813, 1815 एवं 1862 में मद्रास प्रेजीडेन्सी टाउन की भी जनगणनाएं की थीं। जनगणना के संबंध में ठोस प्रयास 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही प्रारम्भ हो गए थे। भारत में प्रथम पद्धति पूर्ण जनगणना 1872 में की गई किंतु इसमें एकरूपता का अभाव था। अगली जनगणना 17 फरवरी, 1881 को की गई और तब से प्रति दसवें वर्ष जनगणना की जाती रही है। नवीनतम जनगणना 2011 में हुई। इस प्रकार अब तब 14 जनगणना हो चुकी है।

संसार के विभिन्न प्राणियों में से केवल मानव ही ऐसा प्राणी है जो प्रारंभ से ही अपने पर्यावरण के प्रति जागरूक एवं जिज्ञासु रहा है। इसकी यह प्रवृत्ति प्राचीनकाल से चली आ रही है तथा चलती रहेगी। आदिकाल से अध्ययनरत होते हुए ही वह वर्तमान वैज्ञानिक युग में विचरण करने लगा है। यह सब मानव की बुद्धि, विवेक एवं कार्यक्षमता की ही देन है कि उसने आज चांद पर तक अपनी पकड़ बना ली है। मनुष्य के पास ज्ञान का अपार भंडार है। इस अपार भंडार के माध्यम से ही ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित कर अज्ञानता को समाज से दूर भगा रहा है। मानव का यह प्रयत्न कभी भी शांत नहीं हो सकता बल्कि निरंतर आगे बढ़ता जाएगा। सत्य तक पहुंचने के लिए अध्ययनकर्ता को कठिन से कठिन परिश्रम करना पड़ता है। समाज से संबंधित विषयों में अध्ययनकर्ता को सफलता तभी प्राप्त हो सकती है जब वह निष्पक्ष होकर अध्ययन करे। मानव आज ऐसे अन्वेषण व परीक्षण करने लगा है कि जिसकी कभी कल्पना तक नहीं की जा सकती थी। कोई भी कार्य चाहे वह प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में हो या समाज विज्ञान के क्षेत्र में अगर उसके व्यवस्थित ढंग तथा वस्तु विशेष की महत्ता को समझ कर अध्ययन किया जाए तो उसके परिणाम सदैव ठीक निकलते हैं। यदि अध्ययनकर्ता अपने कार्य के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित है तो उसके द्वारा संपादित कार्यों में कोई गलती की संभावना नहीं रह जाती है। इसके अभाव में वास्तविकता सामने नहीं आ सकती है। यही कारण है कि सामाजिक अनुसंधानकर्ता सामाजिक अनुसंधान की मदद से ही समाज में व्याप्त हर स्थिति/परिस्थिति का अध्ययन कर वास्तविकता को समाज के सम्मुख प्रकट करने में सक्षम होता है। इसलिए सामाजिक घटनाओं के संबंध में सत्य की खोज ही सामाजिक शोध है।

क्रियात्मक शोध मुख्यतया स्थानिक समस्याओं का हल करने के लिए किया जाता है। इसका निष्पादन मुख्यतया शोधार्थियों द्वारा तब किया जाता है जब उन्होंने शोध की धारणाओं एवं विधियों को अच्छी तरह से सीख लिया हो। यहां यह समझना आवश्यक है कि क्रियात्मक शोध एक मनःस्थिति भी है। उदाहरणतया जो अध्यापक क्रियात्मक शोधार्थी होते हैं वे निरंतर अपने विद्यार्थियों का अवलोकन करते रहते हैं एवं यह सोचते रहते हैं कि किस प्रकार से वे अपने विद्यार्थियों को बेहतर समझाने के लिए

शिक्षण पद्धति, कक्षा प्रबंध, अनुशासन, उपस्थिति, समय पालनता आदि में सुधार कर सकते हैं।

सहभागी शोध वह है जहां शोध का प्रमुख उद्देश्य एक ऐसा वातावरण एवं प्रक्रिया का निर्माण करना होता है जहां संदर्भ से बंधा हुआ ज्ञान एक 'स्थानिक सिद्धांत' के विकास के रूप में उदित होता है जो कि समझने योग्य भी होता है और क्रियात्मक भी। सहभागी शोध की पहल संगठनों द्वारा अपनी रुचि के लिए की जाती है। शोधकर्ता एवं प्रतिभागी एक बंधनमुक्त रूप से परिभाषित समूह प्रक्रिया में अध्ययन एवं अपनी सामाजिक वास्तविकता को बदलने के लिए सक्रिय रूप से भाग लेते हैं।

अधिकांश व्यक्ति जब नैतिकता का विचार करते हैं तो बहुधा ये उचित व अनुचित के मध्य भेद करने के नियमों के विषय में सोचते हैं, जैसे कि स्वीकार्य व अस्वीकार्य व्यवहार के मध्य अन्तर करने की आचार–संहिता बनाने के संदर्भ में नैतिकता का विचार रखा जाता है। सामान्यतः घर पर बाल्यावस्था में ही व्यक्ति को नैतिक सिद्धान्त सिखा दिये जाते हैं, फिर अन्य सांस्कृतिक अथवा सामाजिक व्यवस्थापनों में नीति–ज्ञान प्रदान किया जाता है। वैसे नैतिक विकास आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है जिसे किसी स्थान अथवा आयु–अवस्था तक सीमित समझकर नहीं देखा जा सकता। नैतिक नियम सर्वव्यापक होते हैं कि इन्हें सहजबोध कहा जा सकता है।

अधिकांश समाज में वैधानिक प्रावधान किये गये हैं जिनसे आचरण को विनियमित रखने के प्रयास किये जाते हैं परन्तु नैतिक नियम अधिक व्यापक होते हैं व विधियों (कानूनों) की अपेक्षा अधिक अनौपचारिक होते हैं। यद्यपि अधिकांश समाज द्वारा व्यापक स्वीकृत नैतिक मानदण्डों का प्रवर्तन (लागू) कराने हेतु विधि (कानून) का प्रयोग किया जाता है तथा नैतिक व वैधानिक नियमों में समान अवधारणाएं उपयोग की जाती हैं किन्तु फिर भी यह स्मरण रखना महत्वपूर्ण है कि नीतिशास्त्र व विधि समान नहीं हैं।

यद्यपि संहिताएं, नीतियां व सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण व उपयोगी होते हैं परन्तु जैसा कि अन्य नियमों के सन्दर्भ में देखा जाता है इनमें भी प्रत्येक परिस्थिति को इनकी परिधि में रखकर देखना दूरदर्शिता की दृष्टि से उपयुक्त नहीं होता। कई बार इनमें पारस्परिक विरोधाभास–सा उत्पन्न हो जाता है एवं इनकी सुचारु व्याख्या अधिक आवश्यक हो जाती है। इसीलिए अनुसंधाताओं के लिए यह महत्वपूर्ण है कि विभिन्न शोधात्मक–नियमों की व्याख्या करना, आकलन करना व लागू करना सीखें तथा यह भी सीखें कि भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में निर्णय किस प्रकार करने हैं व कार्य कैसे करने हैं। अधिकांश निर्णयों में नैतिक नियमों का स्पष्टवादी अनुप्रयोग किया जाता है।

5.7 मुख्य शब्दावली

- **समष्टि सांख्यिकी** : सांख्यिकी का व्यापक दृष्टिकोण (समष्टि अर्थशास्त्र)
- **द्वितीयक स्रोत** : अन्य संस्थाओं या व्यक्तियों द्वारा एकत्रित आंकड़े।
- **संस्मरण** : महत्वपूर्ण घटनाओं, कृत्यों आदि का स्मृति के आधार पर उल्लेख।

- **जनगणना** : निश्चित अंतराल में होने वाली जनसंख्या गणना।
- **राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (NSS)** : सामाजिक–आर्थिक सर्वेक्षण करने वाला एक संगठन।

5.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. समष्टि सांख्यिकी से आशय स्पष्ट कीजिए।
2. द्वितीयक स्रोत के प्रकार बताइए।
3. त्रिकोणीय सर्वेक्षण से आशय स्पष्ट कीजिए।
4. ऐतिहासिक शोध की विधियां संक्षेप में बताइए।
5. सामाजिक शोध में नैतिकता से संबद्ध नीति और विधि का वर्णन कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. द्वितीयक स्रोतों से आशय, प्रकार, विधियों एवं इसके गुण–दोषों का विस्तारपूर्वक विश्लेषण कीजिए।
2. दुर्खीम के आत्महत्या सिद्धांत, जनगणना एवं राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के संदर्भ में समष्टि सांख्यिकी तथा द्वितीयक स्रोतों की विधियों एवं उपयोग की व्याख्या कीजिए।
3. गुणात्मक एवं मात्रात्मक पद्धति युक्त त्रिकोणीय सर्वेक्षण की विवेचना कीजिए।
4. सामाजिक शोध, क्रियात्मक शोध तथा सहभागी सहयोग के बारे में बताइए।
5. "सामाजिक शोध में नैतिक मुद्दों का ध्यान रखना अति आवश्यक है।" कथन की व्याख्या कीजिए।
6. निम्न पर नोट लिखिए
   - व्यक्तिगत प्रलेख
   - सार्वजनिक प्रलेख
   - जनगणना
   - राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण

5.9 सहायक पाठ्य सामग्री

Charles, C. Ragin. 1994. *Constructing Social Research: The Unity and Diversity of Method*. USA: Pine Forge Press.

Barton, Keith. C. 2006. *Research Methods in Social Studies Education.* USA: Information Age Publishing Inc.

Williman, Nicholas. 2006. *Social Research Methods.* London: Sage Publications Ltd.

Kumar, Dr. C. Rajendra. 2008. *Research Methodology.* New Delhi: APH Publishing Corporation.

Bulmer, Martin. 2003. *Sociological Research Methods: An Introduction*. USA: Transaction Publishers.

Scheurich, James J. 2001. *Research Method in The Postmodern.* Philadelphia: RoutledgeFalmer.

Singh, Kultar. 2007. *Quantitative Social Research Methods.* New Delhi: Sage Publications India Private Ltd.